

الملكوت  
الاول  
الاول



﴿ يُسْقَوْنَ مِنْ رَحِيقٍ مَخْتُومٍ ﴾

# الرحيق المختوم

رابط عالم اسلامي مكة المكرمة جي زيراہتمام منعقد سيرت نگاريءَ جي عالمي  
مقابلي ۾ اول ايندڙ عربي ڪتاب جو سنڌي ترجمو، تحقيقي اضافي حاشيه

تصنيف

الشيخ العلامة صفي الرحمن مبارڪپوري رحمه الله

سنڌيڪار

قاضي مقصود احمد

ناشر



المركز الاسلامي للبحوث العلميه

ڪراچي سنڌ پاڪستان

©. المركز الاسلامي للبحوث العلميه 2008 ع 1428هـ  
بي\_132 گلستانِ جوهر بلاک نمبر\_1 یونیورسٹی روڈ کراچی

سمورا حق محفوظ آهن. المركز الاسلامي للبحوث العلميه جي اڳواٽ تحريري اجازت کان سواءِ هن ڪتاب جي ڪنهن به حصي جو نقل، ترجمو، ڪنهن به قسم جو ذخيرو جتان اهو ٻيهر حاصل ڪري سگهجي يا ڪنهن به شڪل ۾ يا ڪنهن به طريقي سان ترسيل نه ٿيو ڪري سگهجي. ٻيهر ڇاپي واسطي المركز الاسلامي للبحوث العلميه جي هيٺ ڏنل ائڊريس تان معلومات حاصل ڪريو.

پهريون ڇاپو: 2008 ع موافق 1428 هـ

تعداد: 2000

قيمت:

پرترز: نجم پرتنگ پريس کراچي.

Islamic Centre for Academic Research (ICAR)

B-132 Block-1, Gulistan-e-Jauhar Opposite N.E.D University Karachi,

Pakistan

Tel: 92 21 4025175 Email: icar.edu@gmail.com

## فهرست

|   |  |
|---|--|
| <p>78..... عبدالله رسول الله ﷺ جو والد محترم</p> <p><b>ولادت ۽ حياتيءَ جا چاليهه ورهيه</b></p> <p>81..... ولادت باسعادت</p> <p>82..... بني سعد</p> <p>84..... سينو چيرڻ وارو واقعو (واقعہ شق صدر)</p> <p>85..... ماءَ جي پيار پري هنج</p> <p>85..... ڏاڏي جي مهربانين جي چانو</p> <p>86..... مهربان چاچي جي سنڀال</p> <p>پاڻ سڳورن ﷺ جي مينهن لاءِ دعا</p> <p>86..... گهرڻ</p> <p>86..... بحيرا نالي راهب</p> <p>87..... فجار واري جنگ</p> <p>87..... حلف الفضول</p> <p>88..... سخت محنت واري حياتي</p> <p>پاڻ سڳورن ﷺ جي بيبي خديجه رضي</p> <p>89..... الله عنها سان شادي</p> <p>ڪعبي جي اڏاوت ۽ حجر اسود جي تڪرار</p> <p>90..... جو فيصلو</p> <p>نبوت کان اڳ پاڻ سڳورن ﷺ جي</p> <p>91..... ڪردار جو جائزو</p> <p><b>نبوت ۽ رسالت جي زندگيءَ جو مڪي دور</b></p> <p>94..... <b>نبوت ۽ دعوت جو مڪي دور</b></p> <p>95..... <b>نبوت ۽ رسالت جي چانو ۾</b></p> <p>95..... غار حرا</p> <p>96..... جبرئيل وحي آڻي ٿو</p> <p>96..... وحي اچڻ جو مهينو، ڏينهن ۽ تاريخ</p> <p>99..... وحيءَ جي روڪ</p> <p>جبرئيل عليه السلام جو ٻيهر وحي کڻي</p> <p>100..... اچڻ</p> | <p>14..... <b>ناشر پاران ٻه لفظ</b></p> <p>16..... سنڌيڪار پاران ٻه لفظ</p> <p>18..... سيرت ﷺ جي سرهاڻ</p> <p>20..... سيرت نگاري</p> <p>21..... عرض مؤلف</p> <p>26..... پنهنجي زباني</p> <p>29..... هن ڪتاب بابت</p> <p><b>عربستان جي جاگرافيائي بيهڪ ۽ اتي</b></p> <p>30..... <b>رهندڙ قومون</b></p> <p>40..... <b>عرب حڪومتون ۽ سرداريون</b></p> <p>40..... يمن جي بادشاهي</p> <p>42..... حيره وارن جي بادشاهي</p> <p>44..... شام جي بادشاهي</p> <p>45..... حجاز جي امارت</p> <p>51..... عربستان جون ٻيون راڄداريون</p> <p>52..... سياسي حالتون</p> <p>53..... <b>عربستان جا مذهب</b></p> <p>حضرت ابراهيم جي دين ۾</p> <p>61..... قرينن جون بدعتون</p> <p>63..... ديني حالت</p> <p>65..... <b>اڻ سٽريل سماج جا ڪجهه ڏيک</b></p> <p>66..... اجتماعي حالتون</p> <p>69..... اقتصادي حالت</p> <p>73..... <b>خاندان نبوت، ولادت باسعادت</b></p> <p>73..... نسب</p> <p>76..... زمزم جي کوھ جي کوٽائي</p> <p>76..... هاتين وارو واقعو</p> |
|---|--|

|          |  |
|----------|--|
| 139..... | ابو طالب کي قریشن جي ڌمڪي                |
| 140....  | قریشن جو وري ابو طالب وٽ اچڻ             |
| 140..... | پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ جي رٿا               |
| 143....  | حضرت حمزة رضی اللہ عنہ جو اسلام قبول ٿيڻ |
| 144..... | حضرت عمر رضی اللہ عنہ جو اسلام قبول ٿيڻ  |
|          | قریشن جي نمائندي جو                      |
| 150..... | پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچڻ                       |
|          | ابو طالب جو بني هاشم ۽ بني مطلب کي       |
| 152..... | گڏ ڪرڻ                                   |
| 154....  | <b>مڪمل بائڪاٽ، مڪمل ناتو توڙڻ</b>       |
| 154..... | ڏاڍ ۽ ڌم جوڻ حدون                        |
| 155..... | تي سال شعبِ ابي طالب ۾                   |
| 155..... | دستاويز جو ڦاٽڻ                          |
| 158....  | <b>ابو طالب وٽ قریشن جو آخري وفد اچڻ</b> |
| 161..... | <b>ڏک جو سال (عام الحزن)</b>             |
| 161..... | ابو طالب جي وفات                         |
| 162..... | بيبي خديجه رضی اللہ عنہا جو اررحمت ۾     |
| 163..... | ڏک جو دور                                |
| 164..... | بيبي سوڌة رضی اللہ عنہا سان شادي         |
| 165..... | <b>اوائلي مسلمانن جو صبر ۽ ثابت قدمي</b> |
|          | تيون مرحلو                               |
| 175..... | <b>مڪي کان ٻاهر اسلام جي دعوت</b>        |
| 175..... | پاڻ سڳورا ﷺ طائف ۾                       |
| 181..... | <b>قبيلن ۽ فردن کي اسلام جي دعوت</b>     |
|          | اهي قبيلاجن کي اسلام جي دعوت ڏني         |
| 181..... | وئي                                      |
| 182..... | مڪي کان ٻاهر ايمان جا ڪرڻا               |
| 187..... | يٿر جا ڇهه ڀلارا روح                     |
| 188..... | بيبي عائشه رضی اللہ عنہا سان نڪاح        |
| 189..... | <b>اسراءِ ۽ معراج</b>                    |
| 196..... | <b>پهرين بيعت عقبه</b>                   |

|          |   |
|----------|---|
| 101..... | وحيءَ جا قسم                            |
| 105..... | <b>تبليغ جو حڪم ۽ ان جا مضمرات</b>      |
| 108..... | دعوت جا دور ۽ مرحلا                     |
|          | <b>مڪي واري زندگي تن مرحلن تي مشتمل</b> |
| 109..... | <b>هتي</b>                              |
|          | پهريون مرحلو                            |
| 110..... | <b>تبليغي ڪوششون</b>                    |
| 110..... | لڪل دعوت جا ٽي ورهيه                    |
| 110..... | پهريان مسلمان                           |
| 112..... | نماز                                    |
| 113..... | قریشن کي سڻس پوڻ                        |
|          | ٻيو مرحلو                               |
| 114..... | <b>کليل تبليغ</b>                       |
|          | کلي عام دعوت ڏيڻ جو پهريون              |
| 114..... | حڪم                                     |
| 114..... | متن مائٽن ۾ تبليغ                       |
| 115..... | صفا جي چوٽيءَ تي                        |
|          | حق جو چٽن لفظن ۾ اعلان ۽                |
| 117..... | مشرڪن جو ردعمل                          |
| 119..... | قریش ابو طالب وٽ                        |
| 119..... | حاجين کي روڪڻ لاءِ مجلس شورا            |
| 121..... | محاذ آرائيءَ جا مختلف انداز             |
| 122..... | محاذ آرائيءَ جي ٻي صورت                 |
| 122..... | محاذ آرائيءَ جي ٽي صورت                 |
| 123..... | محاذ آرائيءَ جي چوٿين شڪل               |
| 124..... | ظلم ۽ ستم                               |
| 130..... | مسلمانن تي ظلم جي هڪ جهلڪ               |
| 132..... | دار ارقم                                |
| 132..... | حبشه ڏانهن پهرين هجرت                   |
| 135..... | حبشه ڏانهن ٻي هجرت                      |
|          | حبشه ڏانهن لڏيندڙن خلاف                 |
| 135..... | قریشن جي سازش                           |

|          |  |
|----------|--|
| 240..... | <u>نئين سماج جي جوڙجڪ</u>              |
| 240..... | مسجد نبويءَ جي اڏاوت                   |
| 241..... | مسلمانن ۾ پائيجارو                     |
| 243..... | اسلامي تعاون جو واعدو                  |
| 244..... | معاشري تي اثر                          |
| 248..... | <u>يهودين سان ٺاه</u>                  |
| 248..... | ٺاه جا نقطا                            |
| 250..... | <u>هٿياربند جهڙپون</u>                 |
|          | هجرت کان پوءِ مسلمانن خلاف قريشن       |
|          | جون سازشون ۽ عبدالله بن ابي سان لڪيڙهه |
|          | مسلمانن تي مسجد الحرام جا دروازا بند   |
| 251..... | تيڻ جو اعلان                           |
| 251..... | مهاجرن کي قريشن جي ڌمڪي                |
| 252..... | ويڙهاند (جنگ) جي اجازت                 |
| 253..... | سريه ۽ غزوه                            |
| 254..... | سيف البحر وارو سريو                    |
| 254..... | رابغ وارو سريو                         |
| 255..... | خرار وارو سريو                         |
| 255..... | غزوه ابواء يا ودان                     |
| 255..... | غزوه بُواط                             |
| 256..... | غزوه سفوان                             |
| 256..... | غزوه ذي العُشيرة                       |
| 257..... | نخل وارو سريو                          |
| 262..    | <u>بدر واري جنگ اسلام جي پهرين جنگ</u> |
| 262..... | غزوي جو ڪارڻ                           |
| 263..    | اسلامي لشڪر جو تعداد ۽ جتن جي ورڇ      |
| 264..... | بدر ڏانهن اسلامي لشڪر جو وڌڻ           |
| 263..... | مڪي ۾ خطري جو اعلان                    |
| 264..... | مڪي وارن جي جنگ لاءِ تياري             |
| 264..... | مڪي جي لشڪر جو تعداد                   |
| 264..... | بنوبڪر جي قبيلن جو مسئلو               |

|          |   |
|----------|---|
| 197..... | مديني ۾ اسلام جو سفير   |
| 197..... | وڏي ڪاميابي   |
| 201..... | <u>بي بيعت عقبه</u>   |
|          | ڳالهه بولھه جي شروعات ۽ حضرت عباس <small>رضي الله عنه</small> |
| 202..... | پاران معاملي جي نزاکت جي تشريح                                |
| 203..... | بيعت جا شرط   |
| 204..... | بيعت جي نزاکت جي يادگيري ڪرائڻ                                |
| 205..... | بيعت جي تڪميل   |
| 206..... | بارنهن نقيب   |
| 206..... | شيطان جو معاهدي کي ظاهر ڪرڻ                                   |
| 206..... | قريشن کي ڏک هڻڻ لاءِ انصارن جي تياري                          |
| 207..... | بشر جي وڏيرن سان قريشن جو احتجاج                              |
|          | پڪي خبر پوڻ ۽ بيعت ڪرڻ وارن جي                                |
| 207..... | پنيان لڳڻ   |
| 209..... | <u>هجرت جا هر اول دستا</u>                                    |
| 212..... | <u>دار الندوة ۾ قريشن جي گڏجاڻي</u>                           |
|          | ميڙ ۾ پاڻ سڳورن <small>رضي الله عنه</small> کي مارڻ جي رت     |
| 213..... | پاس ٿيڻ   |
| 215..... | <u>پاڻ سڳورن <small>رضي الله عنه</small> جي هجرت</u>          |
| 216..... | پاڻ سڳورن <small>رضي الله عنه</small> جي گهر جو گهيرو         |
| 217..... | پاڻ سڳورن <small>رضي الله عنه</small> جو گهر ڇڏڻ              |
| 218..... | گهر کان غار تائين   |
| 219..... | غار ۾   |
| 219..... | قريشن جي پيچ ڊڪ   |
| 220..... | مديني جي راهه ۾   |
| 221..    | <u>اچو ته هاڻي رستي جا ڪجهه واقعا ٻڌندا هلون</u>              |
| 226..... | قبا ۾ پهچڻ  |
| 228..... | مديني ۾ پهچڻ  |
| 231..... | <u>مديني جي زندگي</u>   |
|          | پهريون مرحلو:   |
| 232..... | <u>هجرت مهل مديني جون حالتون</u>                              |

|          |  |
|----------|--|
| 289..... | غنيمت جي مال جو مسئلو.                               |
| 290..... | اسلامي لشڪر جو مديني ڏانهن وڌڻ.                      |
| 290..... | مبارڪون ڏيندڙن جو اچڻ.                               |
| 290..... | قيدين جو معاملو.                                     |
| 293..... | قرآن جو تبصرو.                                       |
| 294..... | پيا واقعا.   |
| 296..... | <b>بدر کانپوءِ جون جنگي سرگرميون</b>                 |
| 297..... | غزوه بني سليم، ڪُڍرو وٽ.                             |
| 297..... | پاڻ سڳورن ﷺ کي قتل ڪرڻ جي سازش.                      |
| 299..... | غزوه بني قينقاع.                                     |
| 300..... | يهودين جي چالاڪيءَ جو هڪ نمونو.                      |
| 301..... | بنوقينقاع جي عهد شڪني.                               |
| 303..... | ڪٿو چاڙهڻ، هٿيار ڦٽا ڪرڻ ۽ جلاوطني.                  |
| 304..... | غزوه سويق.   |
| 305..... | غزوه ذي امر.   |
| 306..... | ڪعب بن اشرف جو قتل.                                  |
| 310..... | غزوه بحران.  |
| 310..... | سري زيد بن حارثه <small>رضي الله عنه</small> .       |
| 312..... | <b>احد واري لڙائي</b>                                |
| 312..... | پلائڊ وٺڻ لاءِ قريشن جون تياريون.                    |
| 313..... | قريشن جو لشڪر، جنگي سامان ۽ مهنداري.                 |
| 313..... | مڪي جي لشڪر جي روانگي.                               |
| 314..... | مديني ۾ خبر پهچڻ.                                    |
| 314..... | هنگامي حالتن جي مقابلي جون تياريون.                  |
| 314..... | مڪي جو لشڪر مديني جي ويجهو.                          |
| 314..... | مديني جي بچاءَ لاءِ حڪمت عملي جوڙڻ.                  |
| 315..... | لاءِ مجلس شوري جي گڏجاڻي.                            |
| 315..... | اسلامي لشڪر جي ترتيب ۽ جنگ جي ميدان ڏانهن روانو ٿيڻ. |
| 316..... |  |

|          |   |
|----------|---|
| 264..... | مڪي جي لشڪر جي روانگي.                              |
| 265..... | قافلو بچي نڪتو.                                     |
| 265..... | مڪي جي لشڪر جو واپسيءَ جو ارادو ۽ پاڻ ۾ قوت پوڻ.    |
| 265..... | اسلامي لشڪر لاءِ نازڪ حالتون.                       |
| 266..... | مجلس شوري جي گڏجاڻي.                                |
| 268..... | اسلامي لشڪر جو باقي سفر.                            |
| 268..... | دشمن جي خبرچار وٺڻ.                                 |
| 268..... | مڪي جي لشڪر بابت اهم ڄاڻ حاصل ڪرڻ.                  |
| 269..... | رحمت پريو مينهن وسڻ.                                |
| 269..... | اهم فوجي مرڪزن ڏانهن اسلامي لشڪر جي اڳرائي.         |
| 270..... | قيادت جو مرڪز (مورجو).                              |
| 270..... | لشڪر جي ترتيب ۽ رات گذارڻ.                          |
| 270..... | جنگ جي ميدان ۾ مڪي جي لشڪر جو پيڇڻ ۽ منجهن قوت پوڻ. |
| 271..... | بئي لشڪر آمهون سامهون.                              |
| 273..... | جنگ جو پهريون ڪاڇ.                                  |
| 274..... | دوبدو مقابلو.                                       |
| 275..... | عام لڙائي.  |
| 275..... | پاڻ سڳورن ﷺ جي دعا.                                 |
| 276..... | فرشتن جو نازل ٿيڻ.                                  |
| 276..... | جوابي حملو.   |
| 277..... | ابليس جو ميدان ڇڏي پيڇڻ.                            |
| 279..... | مشرڪن جي هار.                                       |
| 279..... | ابوجهل جي آڪڙ.                                      |
| 280..... | ابوجهل جو قتل.                                      |
| 282..... | ايمان جا روشن نقش.                                  |
| 285..... | بنهي ڌرين جا مقتول.                                 |
| 286..... | مڪي ۾ هارائڻ جي خبر پهچڻ.                           |
| 288..... | فتح جي خبر مديني ۾ پهچڻ.                            |



- 343..... أُبَي بن خلف جو مارحڻ.  
حضرت طلحة رضي الله عنه جو پاڻ سڳورن عليه السلام کي  
کٽڻ..... 343
- 344..... مشرڪن جو آخري حملو.  
شهيدن جو مثلو..... 344
- 344..... مسلمانن جو آخر تائين ويڙه لاءِ تيار رهڻ.  
جبل جي لڪ ۾ ساھ پٽڻ کانپوءِ..... 346
- ابوسفينان جو توڪون هڻڻ ۽ حضرت عمر  
رضي الله عنه سان ڏي وٺ..... 346
- بدر ۾ هڪ ٻي جنگ وڙهڻ جا وعا وعايد. 347
- مشرڪن جي مؤقف جي جاچ..... 348
- شهيدن ۽ گهايلن جي خبرگيري..... 348
- پاڻ سڳورن عليه السلام جي الله جي ساراه ۽  
وڏائي بيان ڪرڻ ۽ دعا گهرڻ..... 351
- مديني ڏانهن موت ۽ محبت ۽ جانثاريءَ جا  
انمول واقعا..... 352
- پاڻ سڳورا عليه السلام مديني ۾..... 353
- مديني ۾ هنگامي حالتون..... 354
- غزوه حمراء الاسد..... 354
- احد واري جنگ جو ايتار..... 357
- هن جنگ تي قرآن جو تبصرو..... 358
- جنگ بابت الله جون حڪمتون ۽ مقصد..... 359
- 361..... **احد کان پوءِ جون فوجي مهمون**
- سريه ابو سلمه رضي الله عنه..... 361
- عبدالله بن انيس رضي الله عنه وارو سريو..... 362
- رجيع وارو حادثو..... 362
- بئر معونه وارو الميو..... 364
- غزوه بني نضير..... 366
- غزوه نجد..... 370
- بدر واري ٻي لڙائي..... 371
- دُومة الجندل واري جنگ..... 372
- 374..... **غزوة احزاب (خندق واري جنگ)**
- لشڪر جي چڪاس..... 317
- احد ۽ مديني جي وچ ۾ رات گذارڻ..... 318
- عبدالله بن ابي ۽ سندس ساتارين جي  
سرڪشي..... 318
- بچيل اسلامي لشڪر احد جي دامن ۾..... 319
- بچاءَ جي رت..... 320
- پاڻ سڳورن عليه السلام پاران لشڪر ۾ شجاعت  
جو روح ڦوڪڻ..... 321
- مڪي جي لشڪر جي تنظيم..... 322
- قريش جي سياسي چالبازي..... 322
- همت ڏيارڻ لاءِ قريش عورتن جو تڪسات..... 323
- جنگ جو پهريون ڪاچ..... 324
- ويڙهانده جو مرڪز ۽ علمبردار جو موت..... 324
- بين حصن ۾ جنگ جي ڪيفيت..... 325
- حضرت حمزة رضي الله عنه جي شهادت..... 327
- مسلمانن جي سرسي..... 328
- عورت جي هنج کان تلوار جي ڌار تائين..... 328
- تير اندازن جو ڪارنامو..... 328
- مشرڪن جي هار..... 328
- تيراندازن جي خوفناڪ غلطي..... 329
- اسلامي لشڪر مشرڪن جي گهيري ۾..... 330
- پاڻ سڳورن عليه السلام جو دليرانو فيصلو..... 330
- مسلمانن ۾ ڦڙڦوٽ..... 331
- پاڻ سڳورن عليه السلام جي ويجهو ڇڏي ويڙه..... 333
- پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ اصحابي سڳورن جو  
اچي گڏ ٿيڻ..... 337
- مشرڪن جي دٻاءَ ۾ واڌارو..... 338
- بيمثال جانبازي..... 339
- پاڻ سڳورن عليه السلام جي شهادت جي خبر ۽  
ويڙه تي ان جو اثر..... 341
- پاڻ سڳورن عليه السلام جي لاڳيتي ويڙه ۽  
حالتن تي قابو پائڻ..... 341

- 417..... عمرو ڪرڻ لاءِ پڙهو گهمائڻ.
- 417..... مڪي ڏانهن مسلمانن جو وڌڻ.
- 418..... ڪعبة الله پهچڻ کان مسلمانن کي جهلڻ جي ڪوشش.
- 418..... خوني ٽڪراءَ کان بچڻ جي ڪوشش ۽ رستو مٽائڻ.
- 419..... بُديل بن ورقاءَ جي تياڪڙي.
- 420..... قريش جو قاصد.
- 421..... اهو ئي آهي، جيڪو سندن هٿ اوهان کان روڪي ٿو.
- 422..... حضرت عثمان رضي الله عنه جي سفارت.
- 423..... حضرت عثمان رضي الله عنه جي شهادت جو افواه ۽ بيعت رضوان.
- 423..... ٺاه ۽ ٺاه جا نقطا.
- 425..... ابو جنڊل رضي الله عنه جي موت.
- 425..... عمرو ادا ڪرڻ لاءِ قرباني ڏيڻ ۽ وار ڪٽائڻ.
- 426..... مهاجر عورتن کي موتائڻ کان انڪار.
- 427..... ٺاه جي شرطن جو ايتار.
- مسلمانن جو ڏک ڪرڻ ۽ حضرت عمر رضي الله عنه جي بحث ڪرڻ.
- 429..... ڪمزور مسلمانن جي مسئلي جو حل.
- 430..... قريش سردارن جو مسلمان ٿيڻ.
- 431..... پيو مرحلو
- 432..... نئين تبديلي
- 433..... بادشاهن ۽ سردارن ڏي موڪليل خط.
- حش جي بادشاهه نجاشيءَ ڏانهن لکيل خط.
- 433..... مصر جي بادشاهه مقوقس ڏانهن خط.
- 436..... فارس (ايران) جي بادشاهه خسرو پرويز ڏانهن لکيل خط.
- 438..... روم جي قيصر ڏانهن لکيل خط.
- 440..... منذر بن ساوي ڏانهن خط.
- 444.....
- 387..... غزوه بنو قريظ
- 394..... نيون مهمون
- 394..... سلام بن ابي الحقيق جو مارچڻ.
- 396..... محمد بن مسلم رضي الله عنه وارو سريو.
- 397..... غزوه بنو لحيان.
- 397..... عمر وارو سريو.
- 398..... ذوالقصة وارو پهريون سريو.
- 398..... ذوالقصة وارو ٻيو سريو.
- 398..... جموم وارو سريو.
- 398..... عيص وارو سريو.
- 399..... طرف يا طرق وارو سريو.
- 399..... وادي القريءَ وارو سريو.
- 399..... سريو خبط.
- غزوه بني المصطلق يا غزوه مريسيه
- 401..... (سن 5 يا 6 هـ)
- غزوه بني المصطلق کان اڳ ڪپتين (مناققن) جو رويو.
- 403..... غزوه بنو المصطلق ۾ مناققن جو ڪردار.
- 407..... مديني جي سڀ کان بيچڙي ماڻهوءَ کي ڪيڏن جي ڳالهه.
- 407..... اڻڪ وارو واقعو.
- 410.....
- غزوه مريسيه کانپوءِ جون فوجي مهمون
- 414..... ديار بني ڪعب جي ماڳ وارو سريو (دومة الجندل جو علائقو).
- 414..... ديار بني سعد جي ماڳ وارو سريو (فدڪ وارو علائقو).
- 414..... وادي القريءَ وارو سريو.
- 414..... عرنيين وارو سريو.
- 417..... صلح حديبيه (ذي القعد 6 هـ)
- 417..... عمري تي وڃڻ جو سبب.

- 470..... وادي القري.....
- 471..... تيماء.....
- 471..... مديني ڏانهن روانگي.....
- 471..... أبان بن سعيد وارو سريو.....
- 473..... غزوة ذات الرقاع (سنه 7 هـ).....
- 477..... سنه 7 هجريءَ جا ڪجهه سريا.....
- 477..... سريه قديد (صفر يا ربيع الاول 7 هـ).....
- 477..... حسمي وارو سريو.....
- 477..... ترهه وارو سريو.....
- 477..... فدڪ جي پرياسي ۾ موڪليل سريو.....
- 477..... ميفعه وارو سريو (رمضان 7 هـ).....
- 478..... خيبر موڪليل سريو (شوال 7 هـ).....
- 478..... يمن و جبار ڏانهن موڪليل سريو.....
- 478..... غابه ڏانهن موڪليل سريو.....
- 479..... قضا ڪيل عمرو.....
- 482..... ڪجهه ٻيا سريا.....
- 482..... ابوالعوجاءَ رضي الله عنه وارو سريو (ذوالحج 7 هـ).....
- 482..... غالب بن عبدالله رضي الله عنه وارو سريو (صفر 7 هـ).....
- 482..... ذات اطح وارو سريو (ربيع الاول 8 هـ).....
- 482..... ذات العرق وارو سريو (ربيع الاول 8 هـ).....
- 483..... موت واري جهڙپ.....
- 483..... جهڙپ جو ڪارڻ.....
- لشڪر جا امير ۽ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي
- 483..... وصيت.....
- اسلامي لشڪر جي نڪرڻ مهل حضرت
- 484..... عبدالله بن رواحه رضي الله عنه جو روئڻ.....
- اسلامي لشڪر جو اڳتي وڌڻ ۽ اوچتي
- 485..... مصيبت ۾ قاسم.....
- معان ۾ مجلس شوريءَ جي گڏجاڻي.....
- 485..... اسلامي لشڪر جو دشمن ڏانهن وڌڻ.....
- جنگ چڙڻ ۽ سپهه سالارن جو هڪٻئي
- 485..... پويان شهيد ٿيڻ.....
- 445..... هوڏه بن علي ڏانهن لڪيل خط.....
- دمشق جي حاڪم حارث بن ابي شمر
- 445..... غسانيءَ ڏانهن لڪيل خط.....
- 446..... عمان جي بادشاهه ڏانهن لڪيل خط.....
- 451..... حديبيه واري ٺاهه کانپوءِ فوجي سرگرميون.....
- 451..... غزوه غابه يا غزوه ذي قرد.....
- 454..... غزوه خيبر ۽ غزوه وادي القري (محرم 7 هـ) ..
- 454..... خيبر ڏانهن اسرڻ.....
- 455..... اسلامي لشڪر جو تعداد.....
- 455..... يهودين لاءِ منافقن جي ڊوڙڪ.....
- 456..... خيبر جي واٽ تي.....
- 457..... واٽ جا ڪي واقعا.....
- 458..... اسلامي لشڪر خيبر جي دامن.....
- 459..... جنگ جي تياري ۽ خيبر جا قلعا.....
- جنگ جو آغاز ۽ ناعمر نالي قلعو هٿ
- 460..... ڪرڻ.....
- 462..... صعب بن معاذ نالي قلعو کڻڻ.....
- 462..... زبير نالي قلعي جي فتح.....
- 463..... ابي نالي قلعي جي فتح.....
- 464..... نزار نالي قلعي جي فتح.....
- 464..... خيبر جي ٻئي اڏ جي فتح.....
- 464..... ٺاهه لاءِ ڳالهه بول.....
- ابوالحقيق جي ٻنهي پٽن جي بدعهدي ۽
- 465..... انهن جو مارجڻ.....
- 465..... غنيمت جي مال جي ورڇ.....
- حضرت جعفر بن ابي طالب ۽ اشعري
- 467..... اصحابين جو اچڻ.....
- 467..... بيبي صفيه رضي الله عنها جن سان پرڻجڻ.....
- 468..... زهريلي پڪريءَ وارو واقعو.....
- خيبر واري جنگ ۾ ٻنهي ڌرين جا مارجي
- 469..... ويل.....
- 469..... فدڪ.....

- صفوان بن امية ۽ فضاله بن عمير جو  
مسلمان ٿيڻ..... 508
- فتح جي بئي ڏهاڙي پاڻ سڳورن ﷺ جو  
خطبو..... 508
- انصارن جي ائٽڻ..... 509
- بيعت..... 509
- مڪي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي رهائش ۽  
سرگرميون..... 511
- سريا ۽ وفد..... 511
- تيو مرحلو..... 514
- غزوه حنين**..... 515
- دشمن جو نڪرڻ ۽ اوطاس ۾ اچي  
لهڻ..... 515
- جنگي ماهر جي سپهه سالار تي تنقيد..... 515
- دشمنن جا خابرو..... 516
- پاڻ سڳورن ﷺ جا خابرو..... 516
- پاڻ سڳورا ﷺ مڪي کان حنين ڏانهن..... 516
- اسلامي لشڪر تي تيراندازن جو اوچتو حملو..... 517
- دشمنن جي هار..... 519
- دشمنن جو تعاقب ۾..... 520
- غنيمت..... 520
- طائف وارو غزوو..... 521
- جعراڻه ۾ غنيمت جي مال جي وڃ..... 522
- انصارن ۾ ڏک ۽ بيچينيءَ جي لهر..... 524
- هوازن جي وفد جو پهچڻ..... 525
- عمرو ۽ مديني ڏانهن موت..... 527
- مڪي جي فتح کانپوءِ موڪليل سر يا ۽ اهلڪار**..... 528
- زڪاوة وٺندڙ اهلڪار..... 528
- سريا..... 529
- عبيد بن حصن فرازي وارو سريو  
(محرم سنه 9 هه)..... 529
- جهنڊو الله جي تلوارن مان هڪ تلوار جي  
هٿ..... 487
- جنگ جي پڄاڻي..... 487
- بنيي ڌرين جا مارجي ويل..... 488
- هن جهڙپ جو اثر..... 488
- ذات السلاسل وارو سريو..... 489
- خضره وارو سريو (شعبان 8هه)..... 490
- مڪي جي فتح**..... 491
- مڪي تي چڙهائيءَ جو ڪارڻ..... 491
- ٺاهه جي تجديد لاءِ ابوسفيان مديني ۾..... 493
- جنگ جون گجهيون تياريون..... 495
- اسلامي لشڪر مڪي جي وات تي..... 497
- مرالظهران ۾ اسلامي لشڪر جو لهڻ..... 498
- ابوسفيان جو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچڻ..... 498
- اسلامي لشڪر مرالظهران کان مڪي  
ڏانهن..... 500
- اسلامي لشڪر اوچتو قريش جي مٿان..... 502
- اسلامي لشڪر ڏي طوي ۾..... 503
- اسلامي لشڪر مڪي ۾..... 503
- پاڻ سڳورن ﷺ جو مسجد الحرام ۾  
گهڙي بت پڇڻ..... 504
- ڪعبه الله ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي نماز  
۽ قريش کي خطاب..... 504
- عام معافيءَ جو اعلان..... 505
- ڪعبي جي ڪنجي (حق حقدار کي  
ڏيڻ)..... 505
- ڪعبي جي ڇت تي بلال رضه جي  
بانگ..... 506
- شڪراني جي نماز..... 506
- جنگي ڏوهارين کي مارڻ جي  
چوٽ..... 506

548.....غزون تي هڪ نظر  
 551.....الله جي دين ۾ ٽولن جا ٽولا داخل ٿيڻ  
 552.....وفد  
 567.....دعوت جي ڪاميابي ۽ اثر  
حجة  
 570.....الوداع  
 577.....آخري فوجي مهڙ  
 578.....رفيق الاعليٰ ڏانهن سفر  
 578.....موڪلاڻيءَ جا اهڃاڻ  
 579.....مرض جو آغاز  
 579.....آخري هفتو  
 579.....وفات کان پنج ڏهاڙا اڳ  
 581.....چار ڏينهن اڳ  
 582.....هڪ يا ٻه ڏينهن اڳ  
 583.....هڪ ڏينهن اڳ  
 583.....ڄمار جو آخري ڏهاڙو  
 584.....سڪرات ۾  
 585.....حضرت عمر رضي الله عنه جو موقف  
 586.....حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جو موقف  
 587.....ڪفن ۽ دفن  
 589.....پاڻ سڳورن عليه السلام جو گهراڻو  
اخلاق ۽ ڪردار  
 599.....حليو مبارڪ  
 604.....نفس جي ڪماليٽ ۽ سهڻا اخلاق  
 611.....علم جي پياسن لاءِ هڪ عظيم خوشخبري

530..قطب بن عامر وارو سريو (صفرسنه 9هه)  
 530.....ضحاک بن سفيان ڪلابي وارو سريو  
 530.....(ربيع الاول سنه 9هه)  
 530.....علقمه بن مجرز مدلجي وارو سريو (ربيع  
 530.....الآخر سنه 9 هه)  
 530.....حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه وارو سريو  
 530.....(ربيع الاول سنه 9هه)  
 534.....غزوه تبوك  
 534.....غزوي جا ڪارڻ  
 535.....روم ۽ غسان جي تياريءَ جو جوڙپول  
 536.....روم ۽ غسان جي تياريءَ جون خاص خبرون  
 536.....فڪر جو ڳڻين حالتن ۾ واڌ  
 537.....پاڻ سڳورن عليه السلام پاران هڪ هڪاڻيءَ جو  
 537.....فيصلو  
 537.....رومين سان وڙهڻ لاءِ سنبرڻ جو  
 537.....اعلان  
 537.....ويڙهه جي تياريءَ لاءِ مسلمانن جي ڊوڙ  
 538.....ڊڪ  
 539.....اسلامي لشڪر تبوك جي وات تي  
 541.....اسلامي لشڪر تبوك ۾  
 542.....مديني ڏانهن موت  
 543.....مخالف  
 545.....هن غزوي جا اثر  
 545.....هن غزوي بابت قرآني آيتون  
 546.....سنه 9 هه جا ڪي اهم واقعا  
حج سنه 9 هه (حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جي  
 547.....اڳواڻيءَ ۾)

## بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

### ناشر پاران به لفظ

الحمد لله والصلاة والسلام على رسول الله وعلي آله وصحبه ومن والاه  
سن 1999ع جي آخر ۾ الله جي فضل و كرم سان بلاد الحرمين ۾ تعليم  
حاصل ڪرڻ جي سلسلي ۾ خوش نصيب موقعو فراهم ٿيو. چند ڏينهن گذارڻ بعد  
راقم کي مديني جي هڪ عظيم شخصيت سان مسجد نبوي جي احاطي ۾ ملاقات ٿي.  
اها شخصيت الشيخ العلامة صفي الرحمن مبارڪپوري صاحب رحمہ الله جن جي هئي.  
ان وقت الرقيق المختوم جي ڀر رونق سيرت نگاري جا ٿي اهي اثرات ان شخصيت جي  
هيبت ۽ كيفيت مان محسوس ٿي رهيا هئا.

ڪجهه عرصي کان پوءِ فضيلة الشيخ صفي الرحمن صاحب جن سان ٻيهر  
ملاقات ٿيڻ جو موقعو مليو ۽ محترم فضيلة الشيخ علم جي پيائن سان تمام محبت  
پري انداز سان ملي پنهنجا قيمتي مشورا به پڻ فراهم ڪندا هئا. ان دوران مون کي  
پنهنجي محترم ڀاءُ محمد يوسف الهندي جن هي مشورو به عنايت ڪيو ته توهان  
الرحيق المختوم جو سنڌي زبان ۾ ترجمو ڪريو.

بهرحال اهي طالب علميءَ جا ڏينهن گذرڻ بعد تدريسي مرحلي ۾ آئون المعهد  
السلفي للتعليم والتربية ۾ ٽي سال گذارڻ بعد منهنجي ملاقات تمام مهربان ۽  
محترم ڀاءُ معيد سان ٿي جيڪي انهن ڏينهن ۾ سعودي عرب مان پاڪستان آيل هئا ۽  
اهي اسلام هائوس ويب سائٽ [www.islamhouse.com](http://www.islamhouse.com) جا انچارج هئا. ان موقعي تي انهن  
هي مشورو عنايت فرمايو ته توهان سنڌي زبان ۾ مختلف ڪتابن جا ترجما ڪرائي  
اسان جي ويب سائٽ لاءِ تيار ڪرايو ٿاڪ پوري دنيا ۾ سنڌي زبان ڄاڻندڙن جي لاءِ  
آساني ٿي وڃي ۽ انهن لاءِ پنهنجو دين سڪڻ آسان ٿي وڃي. ان مشوري کي مون ڀلي  
ڪار چئي ۽ پوءِ مون پنهنجي ڀاءُ محترم عبدالرحمن ميمڻ حفظه الله سان رابطو  
ڪيو ۽ انهن هيءُ خوشخبري ٻڌائي ته اسان جي محترم ڀاءُ قاضي مقصود احمد جن  
الرحيق المختوم جو سنڌي ترجمو ڪيو آهي، جيڪڏهن توهان مناسب سمجهو ته اهو  
ڪتاب ان لائق آهي جو ان کي ويب سائٽ تي رکيو وڃي. اها آڇ مون پنهنجي ڀاءُ معيد  
جي سامهون رکي ته انهن فوراً ان کي قبوليو ۽ انجي ٿوري گهڻي تصحيح ڪرڻ بعد  
اهو ڪتاب [www.islamhouse.com](http://www.islamhouse.com) اپ لوڊ ڪيو ويو.

انهيءَ تصحيحِي مرحلي دؤران المركز السلامي للبحوث العلميه ۾ هڪ دارالترجمه قائم ڪيو ويو جنهن ۾ هن ڪتاب کي نيت تي اپ لوڊ ڪيو ويو. المركز الاسلامي جي ڪاميٽيءَ هن ڪتاب کي عملي طور ڇپرائڻ جو پڪو پھ ڪيو. جنهن ۾ بالخصوص اسانجي محترم پيءُ ڊاڪٽر ذوالفقار تنيو صاحب، ڊاڪٽر حبيب الله ڀٽو ۽ محترم پيءُ نوفل شاه رخ ۽ محترم پيءُ سعود الكثيري، محترم پيءُ منيب الرحمن بيگ، محترم پيءُ ماجد ڪورائي ۽ مطيع الرحمن جن جي پريور ڪاوش آهي. جن پنهنجن مفيد مشورن، ڪاوشن، جي ذريعي هن ڪتاب کي آخري مرحلي تائين پهچايو. الله تعاليٰ اسان سڀني ڀائرن کي پنهنجي خوشنودي حاصل ڪرڻ لاءِ چونڊي وٺي.

آخر ۾ هيءُ ڪتاب المركز الاسلامي للبحوث العلميه جي ننڍي ۽ بهترين ڪاوش آهي اسان اداري پاران قارئین کي التجا ڪيون ٿا ته جيڪڏهن هن ڪتاب ۾ جيڪا جهول ۽ چڪ هجي انکي ضرور اسان تائين پهچائيندا. ڪتاب جي تياريءَ جي آخري مرحلي ۾ اڪادمي ادبيات پاڪستان جي ريزيڊنٽ ڊائريڪٽر صوبه سنڌ آغا نور محمد پناڻ ڪتاب جي ڪمپوز ٿيل مواد جي نظرثاني ڪئي ۽ نهايت لاپائتا مشورا ڏنا ان سان ڪتاب جي مواد کي مستند بناڻ جو ڪم تڪميل تي پهتو.

آخر ۾ برادرر فيض محمد سمون جو به خاص طور تي ذڪر ڪرڻ ضروري سمجهان ٿو جنهن نهايت محنت ۽ محبت سان ڪمپوز ٿيل مواد جي نئين سري سان ترتيب ڏني ۽ ان جي تصحيح ۾ اهم ڪردار ادا ڪيو. ادارو انهن سڀني مهربانن جو دل سان ٿورائتو آهي ۽ ڏٺي در دعا آهي ته الله پاڪ انهن کي انهيءَ جو اجر دنيا ۽ آخرت ۾ عطا ڪري. (آمين)

اميد آهي ته هي ڪتاب سنڌي زبان ۾ ادب جي سينگار ۾ اضافو ڪندو ۽ سيرت رسول ﷺ جي سونهن ۽ هٻڪار کي دنيا ۾ سنڌي ڳالهائيندڙن جي اندر پکيڙيندو. (آمين)

مسعود احمد محمد داؤد السنڌي

ڪراچي پاڪستان

جمع 20-شوال المڪرم بمطابق 2-نومبر 2007ع

## سنديڪار پاران ٻه لفظ

1988ع کان دل ۾ اها خواهش پيدا ٿيڻ شروع ٿي ته حضرت ڪريم صلي الله عليه وسلم جي سيرت طيبه تي ذاتي مطالعي جي آڌار تي هڪ ڪتاب لکجي. ڪڏهن ڪڏهن اها خواهش وڌي ويندي هئي ته هڪ نشست ۾ ويهي چند ورق لکي ڇڏبا هئا ۽ وري اهو سوچي اڌ ۾ ڪم ڇڏي ڏبو هو ته ڪٿي مان ۽ ڪٿي سيرت طيبه جو موضوع! ڪٿي ڪا پل چڪ ٿي وڃي ته ”نيڪي برباد، گناهه لازم“ وارو معاملو ٿي پوي. هونئن به پلان پليءَ جو چيهه ڪونهي، منهنجو لکيل مقالو سيرت طيبه تي لکيل بي مثال ڪتابن ۾ ڪٿي نهندو!

بهرحال ان ٻڌتر واري ڪيفيت ۾ 2000ع ۾ الرحيق المختوم پڙهڻ جو موقعو مليو ۽ ان سان گڏ محترم پيءُ عبدالرحمان ميمڻ (مدير مڪتبه دعوة السلفية) جي ان خواهش جو به پتو پيو ته جيڪڏهن ڪير اهو ڪتاب ترجمو ڪري ته ان جي اشاعت جو انتظام ڪيو ويندو.

مون الرحيق المختوم جو مطالعو ڪيو هو ۽ ڏٺم ته ان جي تحرير متوازن آهي. ۽ وڏي ڳالهه ته اسلامي دنيا جي انعام يافته ڪتابن منجهان هڪ آهي. تنهن ڪري ان ڪتاب کي پنهنجي خواهش جي تڪميل جو ذريعو سمجهي ڪتاب جي ترجمي جي ڪم کي جنبي ويس ۽ ڇهن مهينن جي مدي ۾ ڪتاب جو ترجمو پورو ڪري ورتم. بلڪ ان بعد وقت ڪڍي سڄو ڪتاب سنڌيءَ ۾ ڪمپوز ڪري عبدالرحمان جي حوالي ڪيم، پر قسمت سان هن ڪتاب جي ڇپائي جو خواب شرمندو تبديل ٿيڻ ۾ ڪجهه عرصو لڳي ويو. 2006ع ۾ خبر پئي ته محترم پيءُ حافظ مسعود احمد (مدير المركز الاسلامي للبحوث العلميه) هن ڪتاب جي اشاعت جي معاملي ۾ ذاتي دلچسپي وٺي رهيو آهي. جڏهن پنهنجي ڪتاب ”تاريخ مٽياري“ جي اشاعت جي سلسلي ۾ نومبر 2006ع ۾ ڪراچي اچڻ ٿيو ته اتي محترم پيءُ حافظ مسعود احمد صاحب سان بالمشافه ملاقات ٿي ۽ سندس ارادي جي مضبوطيءَ هڪ ڀيرو وري هن ڪتاب جي اشاعت جي سلسلي ۾ پر اميد ڪيو. ان بعد جولاءِ 2007ع ۾ مونکي هن ڪتاب جا پهريان پروف پڙهڻ لاءِ مليا. انهن سمورن مرحلن مان گذرندي نيٺ هيءُ ڪتاب اڄ پڙهندڙن جي هٿن ۾ پهچي چڪو آهي. جنهن جي لاءِ برادرر حافظ مسعود احمد ۽ محترم پيءُ عبدالرحمان ميمڻ ڪيرون لهن.



هيءُ ڪتاب پڙهندڙن آڏو گذارش آهي ته پاڪستان نهڻ کانپوءِ ملڪ ۾ اردو ٻوليءَ جي ترويج جي سلسلي ۾ ڪنيل خصوصي قدمن جي ڪري سنڌي ماڻهن لاءِ اردو ٻولي ڪنهن به ريت اوڀري نه رهي آهي. هاڻي جڏهن اسان اردو ٻوليءَ ۾ موجود ڪتاب اهل زبان وانگر پڙهي سگهون ٿا ته اهڙيءَ صورت ۾ اردوءَ ۾ موجود ڪنهن ڪتاب جو سنڌي ترجمو ڪرڻ ايسٽائين سودمند نه ٿو ٿي سگهي، جيستائين اسان بامحاوره ترجمو ڪري ان کي مڪمل طور تي پنهنجي ٻوليءَ جي قالب ۾ نه ٿا آڻي وجهون. بدقسمتيءَ سان وڏن شهرن ۾ رهندڙ اسانجو پڙهيل لکيل طبقو ۽ خاص طور تي پنهنجي مذهبي طبقي جا ماڻهو پنهنجن شهرن ۾ پنهنجي مادري ٻوليءَ جي تعليم حاصل نه ڪري سگهڻ جي ڪري پنهنجي ٻوليءَ جا اساس وڃائي رهيا آهن. ان ڪري ٿي سگهي ٿو ته اهڙن ماڻهن کي هن ڪتاب ۾ استعمال ڪيل ڪجهه لفظ اوڀرا لڳن، ڪي محاوره سمجهه ۾ نه اچن، يا ڪنهن جملي کي گرامر جي چڪ سمجهي ويهي رهن، پر اصل ۾ اهي لفظ اڄ جي سنڌيءَ ٻوليءَ ۾ عام مروج هجن، محاوره به نيٺ سنڌي هجن ۽ جملا به گرامر مطابق لکيل هجن. ياد رهي ته اسان جي سنڌي ٻولي دنيا جي شاهوڪار زبانن مان هڪ آهي. اسانجي ٻوليءَ کي ئي عباسي خليفن جي دور ۾ قرآن شريف جو سڀ کان پهريون ترجمو ٿيڻ جو شرف حاصل آهي. اسانجي ٻولي اڄ به ڪنهن ٻوليءَ مان فطري انداز ۾ مواد ترجمو ڪرڻ جي ڀرپور صلاحيت رکي ٿي تنهنڪري بهتر ٿيندو ته انهن لفظن ۽ محاورن جي اصليت تي غور ڪيو وڃي ۽ پنهنجي ٻوليءَ جي خوبصورتيءَ کي محسوس ڪندي ان مان حظ حاصل ڪيو وڃي.

قاضي مقصود احمد

متياري

22- سيپٽمبر 2007ع

## سیرت نبوی ﷺ جي سرهاڻ

21 صديءَ جو آغاز آهي. دنيا هڪ طرف انتهائي ترقيءَ جون منزلون طيءَ ڪري رهي آهي ته ٻي طرف انساني روياءَ اسفل السافلين جي تهه کي چهي رهيا آهن. دنيا جي طاقت ور قومن هڪ دفعو وري برن ۽ بحرن ۾ فساد برپا ڪري ڇڏيو آهي. ظاهري طرح ته انسان ۽ ان جون وسنديون روڊ، رستا، واديون سهڻيون لڳن ٿيون، رات جون تاريخون به بجليءَ جي زور تي روشنيءَ ۾ بدلجي چڪيون آهن. پر انساني ذهن ۽ قلب وڌيڪ تاريخين ۾ گم ٿي ويا آهن، ماڻهو ماڻهوءَ کان ناآشنا ٿي چڪو آهي. پيءُ پيٽ ۽ پيارت جا رشتا به اوڀرا بڻجي چڪا آهن. فقط مفادات وارو رشتو قائم ۽ دائر رهجي ويو آهي. بظاهر علم ۽ هنر جو وڏو چرچو آهي پر اهو سڀ ڪجهه انسانيت جي تعمير لاءِ نه پر ان جي تباهي، بربادي جا هٿيار ٺاهڻ ۽ ڪمرشل استعمال لاءِ علمي اوسر ٿي رهي آهي، هاڻي تاريخ، فلسفو، اخلاقيات، سیرت جا ڪتاب پڙهڻ لاءِ ماڻهو وقت کونهي ۽ نه ئي ان موضوع تي علمي ڪچهريون ۽ مجلسون ٿين ٿيون پر هاڻي سٽي بازاری، شيئر مارڪيٽ، سوڊي ڪاروبار ۽ بينڪاري جي موضوعن تي ڪچهريون عام جام آهن ۽ انهيءَ لاءِ اشتهارات سان پرنٽ ۽ اليڪٽرانڪ ميڊيا روزانو پري پئي آهي، ويچاري عورت جو حال اهو آهي جو هاڻي ماءُ، پيٽ ۽ نياڻيءَ جو تقدس مفقود ٿي ويو آهي. عورت کي فقط اشتهار جي زينت بڻائڻ لاءِ ان جو ڪمرشل ڪارج رهجي ويو آهي ان ڪري هي سرزمين هاڻي ڪڏهن انسانيت جي مقتل جو ڏيک ڏئي ٿي يا وري هڪ جانورن جي منڊي لڳي ٿي جتي انساني قدرن ۽ هنرن جي خريد و فروخت جو ڪاروبار جاري ۽ ساري آهي. اهڙي دور ۾ هي ويچارو انسان رڃ ۾ رڙيون ڪري ٿو ۽ روحاني سکون جي تلاش ۾ آهي ته هي پريشان ۽ اجايل مسافر ڪٿي ويهي ٿڪ پيڇي؟؟؟

هن ڪيفيت ۾ فقط هڪ ئي اميدن جو ڏيئو ۽ روشنيءَ جو مينار آهي اها سرور ڪائنات حضرت محمد ﷺ جي ذات مبارڪ آهي، جيڪا انسان ذات لاءِ سوجهري جو سبب بڻجي ٿي، حضور ﷺ جي سیرت پڙهڻ سان اسان کي ان انسان ڪامل جي روين کان آگاهي ملي ٿي ته ڪيئن پاڻ ﷺ زندگيءَ جي هر موڙ تي ۽ بحیثیت ٻار، نوجوان سوت ۽ دوست، خاوند ۽ گهريلو زندگيءَ جي مختلف امور ۽ سول سوسائيتيءَ جي مختلف شعبن، بين الاقوامي تعلقات ۾ انسان ذات جي ڪيئن رهنمائي ڪئي آهي.

اسان کي خبر آهي ته قرآن جي تعليمات ”هداً للناس“ آهي اهڙيءَ طرح حضور ﷺ جي سيرت به هداً للناس آهي. اها ڪنهن هڪ قوم يا قبيلي جي لاءِ ناهي پر خاتم النبي جي حيثيت ۾ سموري انسان ذات لاءِ آهي، هر دور لاءِ آهي ڇو ته ان جي امت خير امت آهي جيڪا هاڻي انسان ذات جي رهنمائي جو فريضو انجام ڏئي رهي آهي، حضور ﷺ جي سيرت هن دور ۾ پتڪيل انسان ذات لاءِ هڪ رهنمائي جو واحد ذريعو آهي، خاص طور تي ان حوالي سان ته حضور پاڪ ﷺ جي تعليم اها آهي جيڪا قرآن پاڪ جي تعليم آهي ۽ قرآن پاڪ جي تعليم سمورن انبياءِ ڪرام ڏانهن موڪليل وحي جو مستند مجموعو آهي سيرت تي هن وقت تائين هزارين ڪتاب مختلف ٻولين ۾ ڇپجي چڪا آهن. الحمد للہ سنڌي ٻوليءَ ۾ به انهن ڪتابن جو انگ سون ۾ آهي ۽ تازو سيرت جي هن ايوارڊ يافتہ ڪتاب جيڪو عالمي سطح تي مقبوليت ۽ مڃتا ماڻي چڪو آهي ان جو سنڌي زبان ۾ ترجمو سنڌي ٻوليءَ جي سيرت واري ادب ۾ هڪ قيمتي اضافو آهي.

هن ڪتاب جو ترجمو اسان جي فاضل مترجم قاضي مقصود احمد نهايت سهڻي اسلوب سان ڪيو آهي جنهن لاءِ هو مبارڪن جو مستحق آهي. اميد آهي ته سيرت جو هي ڪتاب سنڌ ۾ سيرت پاڪ ﷺ جي سرهاڻ کي ڦهلائيندو.

محترم حافظ مسعود احمد خاص طور تي مبارڪن جو مستحق آهي جنهن هن ڪتاب جي سنڌي ترجمي جي اهم ڪردار ۾ ڀڃڻي ۾ هٿ ڳنڍيو ۽ هن سيرت پاڪ ﷺ جي شاهڪار ڪتاب جي ترجمي جي نه فقط نظرثاني ڪئي پر ان تي نهايت قيمتي، معلوماتي، تحقيقي حاشيه به لکيا، جنهن سان هاڻي پڙهندڙن کي قرآن و حديث جي روشنيءَ ۾ سيرت پاڪ ﷺ جو مستند مواد ملندو.

طالب علم

آغا نور محمد پٺاڻ

ريڊيڊنٽ ڊائريڪٽر

اڪادمي ادبيات پاڪستان. سنڌ.

## سيرت نگاري

سيرت نگاري پنهنجي فن جي لحاظ کان هڪ اهڙو علم آهي، جنهن ۾ هٿ وجهڻ پل صراط تي هلڻ کان به مشڪل آهي. ڪو اهل علم ئي ان جو حق ادا ڪري سگهي ٿو. ڪي اهل علم ان ۾ عقيدت جي ڪري اهڙا گم ٿي ويندا آهن، جو پنهنجي قلم کي قابو رکي نه سگهندا آهن يا ان شخصيت جي باري ۾ افراط جو شڪار ٿي ويندا آهن يا وري تفريط جو. حقيقي معنيٰ ۾ اصل سيرت نگار اهڙي مصنف چورائڻ جي لائق آهي جيڪو ان شخصيت جي تمام پهلوئن تي انتهائي جانبداريءَ سان قلم استعمال ڪري. تاريخ انسانيءَ ۾ جيڪڏهن ڏٺو وڃي ته هڪ ئي اهڙي شخصيت نظر اچي ٿي جنهن جي زندگي جا سڀئي پهلو عيبن کان پاڪ آهن ۽ پنهنجو يا غير بلاجهڪ ان جي تمام پهلوئن تي غير جانبدارانہ قلم کڻي سگهي ٿو. اها شخصيت آهي جناب محمد رسول الله ﷺ جي آهي جنهن جي پوري زندگي صاف ۽ شفاف نظر اچي ٿي. پاڻ ﷺ جي سيرت تي دنيا جي مختلف ملڪن ۽ مختلف زبانن ۾ مختلف عنوانن تي ڪئي ڪتاب لکيا ويا.

الرحيق المختوم موجوده دور ۾ سيرت نگاريءَ جو اهڙو معياري نمونو آهي. جيڪو انڌي عقيدت، مبالغه آرائي ۽ فڪر پرستيءَ کان پاڪ آهي. جنهن کي رابطہ عالمي اسلاميءَ مان پهريون انعام مليو. هي اصل ڪتاب عربي زبان ۾ آهي پر مصنف پنهنجي قلم سان ان کي اردو زبان جو اهڙو ته عملي جامو پهرايو جو ائين محسوس ٿئي ٿو ته هيءُ ڪتاب اصل اردو ۾ ئي آهي. هن ڪتاب جي پذيرائي ۽ مقبوليت جو اندازو ان ڳالهه مان لڳائي سگهجي ٿو ته دنيا ۾ ڪابه زبان هن ڪتاب جي ترجمي کان خالي نه رهي.

اڄ ڏينهن تائين اسان جي سنڌي زبان ۾ سيرت تي خاطر خواه ڪم نه ٿيو آهي ان ڪري ان ڳالهه جي اشد ضرورت محسوس ڪئي وئي ته سيرت النبيءَ ﷺ تي ڪو اهڙو ڪتاب مرتب ڪيو وڃي جيڪو مبالغه آرائي ۽ انڌي عقيدت کان آجوهجي.

ڪيترن ئي ڏينهن کان اهو خيال دل ۾ ايندو رهيو. آخر ڪار هڪ ڏينهن پيءُ مقصود احمد قاضي سان ان خيال جو اظهار ٿيو ته منهنجي اها تمنا آهي ته الرحيق المختوم کي سنڌي زبان ۾ منتقل ڪري اهل سنڌ کي سيرت پاڪ ﷺ جي اصل گوشن کان آگاهه ڪيو وڃي ته برادر مقصود قاضيءَ اهو ڪم پنهنجي ڪلهن تي کنيو ۽ ڇهن مهينن جي مختصر عرصي ۾ ڪتاب جو ترجمو ڪري راقم جي حوالي ڪيو. تقريباً چار سال گذرڻ بعد اڄ هي ڪتاب اوهان جي هٿن ۾ آهي. الله تعاليٰ کان دعا آهي ته هن ڪتاب جي ترجمي ڪندڙ، ڇپائيندڙ، ڪاوش ڪندڙن سڀني کي دنيا ۽ آخرت ۾ اجر عطا فرمائي. (آمين)

عبدالرحمن ميمڻ

مڪتبه الدعوة السلفيه ميمڻ ڪالوني - مٽياري

## عرض مؤلف

الحمد لله والصلاة والسلام على رسول الله وعلى آله وصحبه ومن والاه اما بعد.

اها ڳالھه ربيع الاول 1396 هـ (مارچ 1976ع) جي آهي جو ڪراچيءَ ۾ اسلامي دنيا جي پهرين سيرت ڪانفرنس ٿي. جنهن ۾ رابطہ عالم اسلامي مڪرم ڪرم پريورحصو ورتو ۽ ڪانفرنس جي خاتمي تي سڄي دنيا جي ليکڪن کي دعوت ڏني وئي ته سيرتِ نبوي ﷺ جي موضوع تي دنيا جي ڪنهن به زندهه زبان ۾ مقالا لکن. پهرين، ٻي، ٽي، چوٿين ۽ پنجين پوزيشن حاصل ڪرڻ وارن کي بالترتيب پنجاهه، چاليهه، ٽيهه، ويهه ۽ ڏهه هزار رپيا جا انعام ڏنا ويندا. هي اعلان "رابطہ" جي سرڪاري ترجمان اخبار "العالم الاسلامي" جي ڪافي اشاعتن ۾ شايع ٿيو، پر مون کي ان اعلان جو علم وقت تي نه ٿي سگهيو.

ڪجهه ڏينهن بعد جڏهن آئون "بنارس" مان پنهنجي ڳوٺ "مبارڪپور" ويس ته منهنجي پڦاٽ ۽ محترم استاد مولانا عبدالرحمان صاحب مبارڪپوري حفظه الله (ابن شيخ الحديث مولانا عبيدالله رحمان صاحب رحمة الله) مون سان ان جو ذڪر ڪيو ۽ زور ڀريو ته آئون به ان مقابلي ۾ حصو وٺان. مون پنهنجي ٿوري علم ۽ ناتجربڪاريءَ جو بهانو ڪيو پر مولانا زور ڀريندو رهيو ۽ هر هر معذرت ڪرڻ تي فرمايائين ته آئون اهو انعام حاصل ڪرڻ لاءِ نه پيو چوان، پر اهو توڙي چاهيان ته ان بهاني ڪو ڪم ٿي وڃي. مون سندن لاڳيتي زور ڀرڻ تي ڪڍي ماڻ ڪئي. باقي نيت اهائي هيم ته هن مقابلي ۾ حصو نه وٺندس.

ڪجهه ڏينهن کان پوءِ "جميعت اهلحديث هند" جي ترجمان پندرهن روزه "ترجمان دهلي" ۾ رابطہ جي ان اعلان جو اردو ترجمو شايع ٿيو ته مون لاءِ عجيب صورتحال پيدا ٿي وئي. جامع سلفيه جي متوسط ۽ منتهي درجي جو جيڪو به شاگرد مليو ٿي، تنهن مون کي ان مقابلي ۾ شرڪت جو مشورو ڏنو ٿي. دل ۾ خيال آيو ته شايد خلق جي هيءَ زبان "الله جو حڪم" هجي، تنهن هوندي به مقابلي ۾ حصو نه وٺڻ واري پنهنجي پهرئين فيصلو تي اڃا قائم هوس. ڪجهه ڏينهن کانپوءِ شاگردن جا مشورا ۽ مطالبه جيئن ته ختم ٿي ويا، پر ڪجهه شاگرد اڃا به گهر ڪري رهيا هئا ۽ ڪن جي ترغيب ته اصرار جي انتها تي پهچي چڪي هئي. ڪن ته مقالي لاءِ خاڪو به ٺاهي ورتو هو. آئون به ٻڌ ٿر ۾ "ها" ڪري وينس.

ڪم شروع ٿيو پر آهستي آهستي. اهو به اڃا شروعاتي مرحلي ۾ هو ته رمضان جون موڪلون ٿي ويون. هوڏانهن "رابطہ" ايندڙ محرم الحرام جي پهرين تاريخ تي مقالن جي وصوليءَ لاءِ آخري تاريخ مقرر ڪري ڇڏي. اهڙيءَ طرح ڏنل وقت مان ساڍا پنج مهينا گذري چڪا هئا. هاڻي وڏو ساڍن ٽن مهينن ۾ مقالو پورو ڪري موڪلڻو هو ته جيئن وقت تي پهچي سگهجي. هوڏانهن پورو

ڪم اڃا رهيل هو. مون کي يقين ڪونه هو ته ان ٿوري عرصي ۾ تياري، نظرثاني ۽ ڇنڊ ڇاڻ جو ڪم پورو ٿي سگهندو. پر زور ڀرڻ وارن هلندي هلندي تاڪيد ڪئي ته ڪنهن به قسم جي غفلت کان سواءِ هن ڪم ۾ جنبي وڃان، رمضان کانپوءِ منهنجي مدد ڪئي ويندي. آئون به فرصت کي غنيمت ڄاڻي ڪم کي لڳي ويس. پوري موڪل سهڻي خواب وانگر گذري وئي ۽ جڏهن اهي موتيا ته مقالي جو به ڀاڱي ٽيون حصو مرتب ٿي چڪو هو. جيئن ته نظر ثانيءَ لاءِ وقت نه هو. ان ڪري اصل مسودو انهن صاحبين کي ڏنر ته اتارڻ، ڇنڊ ڇاڻ ڪرڻ ۽ حوالا پيٽڻ جو ڪم ڪري وٺن. رهيل حصي جي تياريءَ جي سلسلي ۾ به ڪانئن ڪجهه تعاون ورتو ويو. ”جامعہ“ جون سرگرميون شروع ٿيڻ ڪري موڪل واري رفتار برقرار رکڻ ممڪن نه رهي. تنهن هوندي به ڏيڍ مهيني کانپوءِ عيدالاضحيٰ جي موڪل مهل راتين جي اوجاڳي جي برڪت سان مقالو آخري مرحلن ۾ پهچي ويو. جيڪو پوءِ جلد ئي ختم ڪري محرم اچڻ کان ٻارنهن تيرنهن ڏينهن اڳ ٽپال جي حوالي ڪيو ويو.

ڪافي مهينا پوءِ مون کي ”رابط“ جي طرفان هفتي ڏهن ڏينهن جي فرق سان به رجسٽرڊ خط مليا. جن مطابق منهنجو مقالو شرطن تي پورو هئڻ ڪري مقابلي ۾ شامل ڪيو ويو هو. تنهن تي مون سک جو ساھ ڪنيو.

ڏينهن گذرندا ويا. تانجو ڏيڍ سال جو عرصو گذري ويو. پر ”رابط“ وارن جي چين تي مهر لڳل رهي. مون به ڀيرا خط لکي معلومات وٺڻ چاهي پر جواب نه مليا. پوءِ آئون به پنهنجن ڪمن ڪارن ۾ ڦاسي اها ڳالهه وساري وينس ته ڪو مون به هن مقابلي ۾ حصو ورتو آهي.

شعبان 1398ھ جي شروع ۾ (6، 7، 8، جولاءِ 1978ع تي) ڪراچيءَ ۾ پهرين ايشيائي اسلامي ڪانفرنس منعقد ٿي رهي هئي. مون کي ان جي ڪارروائين سان دلچسپي هئي، ان ڪري ان بابت اخبارن جي ڪنڊن ۾ لکيل خبرون به ڳولهي پڙهندو هئس. هڪ ڏينهن ”پدوهي“ اسٽيشن تي دير سان ايندڙ ريل جي انتظار ۾ اخبار پڙهيم پئي ته اوچتو هڪ ننڍڙي خبر تي اک پير ته ڪانفرنس جي ڪنهن اجلاس ۾ ”رابط“ وارن سيرت نگاريءَ جي مقابلي ۾ ڪاميابي ماڻيندڙ پنجن نالن جو اعلان ڪيو آهي ۽ انهن ۾ هڪ هندستاني به آهي. هيءَ خبر پڙهي وڌيڪ ڄاڻ حاصل ڪرڻ جو اشتياق ٿيو. بنارس واپس اچي تفصيل معلوم ڪرڻ جي ڪوشش ڪيم پر ڪوبه ڪڙتيل نه نڪتو.

10 جولاءِ 1978ع تي چاشت جي وقت ”بجرويهه“ جي مناظري جا شرط طئه ڪرڻ بعد گهري نند ۾ سٽو پيو هئس ته اوچتو حجري سان لاڳو ڏاڪڻ تان شاگردن جو گوڙ ٻڌڻ ۾ آيو ۽ اک کلي پئي. ايتري ۾ شاگردن جو ريلو اندر اچي ويو. سندن منهن تي مسرت جا آثار ۽ زبانن تي مبارڪن جا لفظ هئا.

”ڇا ٿيو؟ ڇا مخالف مناظر، مناظري کان انڪار ڪري ڇڏيو؟“ مون پڇيو.

”نه، پر اوهان سيرت نگاريءَ جي مقابلي ۾ اول آيا آهيو.“

"الله! تنهنجو شڪر. توهان کي ان جو پتو ڪيئن پيو؟ مان اتي وينس.  
 "مولوي عزيز شمس اها خبر آندي آهي."  
 "مولوي عزيز هتي اچي چڪو آهي؟"  
 "جي ها."

پوءِ ٿوري دير بعد مولوي عزيز مون کي تفصيل ٻڌائي رهيو هو.

22 شعبان 1398 هـ (29 جولاءِ 1978ع) تي "رابط" وارن جو رجسٽري ٿيل خط پهتو. جنهن ۾  
 ڪاميابيءَ جي اطلاع سان گڏ محرم 1399 هـ ۾ مڪي مڪرم ۾ رابط وارن جي آفيس ۾ انعام  
 ورهائڻ لاءِ هڪ تقريب منعقد ڪئي ويئي ۽ ان جي دعوت پڻ ڏني وئي هئي، جنهن ۾ مون کي  
 شرڪت ڪرڻي هئي. اها تقريب محرم بدران 12 ربيع الآخر 1399 هـ تي منعقد ٿي.  
 ان تقريب ڪري مون کي پهريون ڀيرو حرمين شريفين جي زيارت جي سعادت نصيب ٿي. 10  
 ربيع الآخر تي خميس جي ڏهاڙي وچين نماز (عصر) کان ڪجهه اڳ مڪي مڪرم جي پرنور  
 فضاءن ۾ داخل ٿيس. ٽئين ڏينهن ساڍي اٺين وڳي رابط وارن جي دفتر ۾ حاضريءَ جو حڪم هو.  
 جتي ضروري ڪارروائيءَ کانپوءِ اٽڪل ڏهين وڳي قرآن پاڪ جي تلاوت سان تقريب شروع ٿي.  
 سعودي عدليه جو چيف جسٽس عبدالله بن حميد (هن وقت هو رئيس مجلس شوري آهي) مجلس  
 جو صدر هو. انعامن ورهائڻ لاءِ شاهه عبدالعزيز جو پوٽو ۽ مڪي جو نائب گورنر امير سعود بن  
 عبدالمحسن آيل هو، جنهن جي مختصر تقرير بعد "رابط" جي نائب سيڪريٽري جنرل شيخ علي  
 المختار خطاب ڪيو. جنهن تفصيل سان مقابلي جي مقصد ۽ طريقه ڪار جي وضاحت ڪئي ته  
 "رابط" جي اعلان بعد هڪ هزار کان وڌيڪ (يعني 1182) مقالا موصول ٿيا. جن جو مختلف رخن  
 کان جائزو وٺڻ بعد ابتدائي ڪميٽيءَ 183 مقالن کي مقابلي لاءِ چونڊيو ۽ آخري فيصلي لاءِ انهن کي  
 تعليم جي وزير شيخ حسن بن عبدالله آل الشيخ جي اڳواڻيءَ ۾ جوڙيل اٺن ماهرن جي ڪميٽيءَ جي  
 حوالي ڪيو ويو. ڪميٽيءَ جا اهي اٺ رڪن جدي جي ملڪ عبدالعزيز يونيورسٽي جي شاخ ڪلية  
 الشريعة (موجوده جامعة أم القرى) مڪه مڪرم جا استاد ۽ سيرت نبوي ﷺ ۽ تاريخ اسلام جا  
 ماهر ۽ متخصص آهن. انهن جا نالا هن ريت آهن.

1. ڊاڪٽر ابراهيم علي شعوط
2. ڊاڪٽر احمد سيد دراج
3. ڊاڪٽر عبدالرحمان فهمي محمد
4. ڊاڪٽر فائق بڪر صواف
5. ڊاڪٽر محمد سعيد صديقي
6. ڊاڪٽر شاڪر محمود عبدالمنعم

7. ڊاڪٽر فكري احمد عڪاز

8. ڊاڪٽر عبدالفتاح منصور

انهن استادن ڇنڊ ڇاڻ کانپوءِ گڏيل فيصلن مطابق پنجن مقالن کي هن ريت انعامن جو مستحق قرار ڏنو.

1. الرحيق المختوم (عربي) تاليف صفي الرحمان مبارڪپوري. جامعة سلفيه بنارس هند (پهريون)

2. خاتم النبیین ﷺ (انگريزي) تاليف ڊاڪٽر ماجد علي خان جامعة اسلاميه دهلي هند (ٻيو)

3. پيغمبر اعظم و آخر (اردو) تاليف ڊاڪٽر نصير احمد ناصر وائس چانسلر جامعة اسلاميه بهاولپور پاڪستان (ٽيون)

4. منتقي النقول في سيرت اعظم رسول (عربي) تاليف شيخ حامد محمود بن محمد منصور ليمود، جيزه مصر (چوٿون)

5. سيرت النبي الهدى الرحمة (عربي) استاد عبدالسلام هاشم، مدينه منوره، مملكت سعوديہ عربيہ. (پنجون)

نائب سيڪريٽري جنرل محترم شيخ علي المختار انهن وضاحتن کان پوءِ حوصلا افزائي، مبارڪن ۽ دعائن سان پنهنجي تقرير ختم ڪئي.

ان کانپوءِ مون کي ڳالهائڻ لاءِ سڏيو ويو. مون پنهنجي تقرير ۾ رابطو وارن جو هندستان ۾ دعوت ۽ تبليغ جي ڪن ضروري ۽ نظر انداز ڪيل معاملن ڏانهن ڌيان ڇڪرايو ۽ انهن جي متوقع اثر ۽ نتيجن تي روشني وڌي. رابطو وارن ان جو حوصلا افزاءِ جواب ڏنو.

ان کانپوءِ امير محترم سعود بن عبدالمحسن ترتيبوار پنج ئي انعام ورهايا ۽ پوءِ قرآن مجيد جي تلاوت سان تقريب پڄاڻي تي پهتي.

خميس 17 ربيع الآخر تي اسان جي قافلي جو رخ مديني پاڪ ڏانهن هو. رستي تي بدر واري جنگ جي تاريخي ميدان جو دورو مشاهدو ڪندي اڳتي وڌياسين ته وچين نماز کان ڪجهه اڳ مسجد نبويءَ جي درٻار جو جلال ۽ جمال اکين جي سامهون هو. ڪجهه ڏهاڙن کانپوءِ هڪ ڏينهن صبح پهر خيبر به وياسين ۽ اتي جو تاريخي قلعو اندران ۽ ٻاهران ڏٺوسين ۽ ڪجهه تفريح ڪري شام جو ئي مديني موٽي آياسين ۽ پيغمبر آخر الزمان ﷺ جي ان جلوه گاهه، جبرئيل امين ۽ پاڪ فرشتن جي لهڻ جي جاءِ اسلام جي هن انقلابي مرڪز ۾ ٻه هفتا رهي حرم پاڪ ڏانهن راهي تياسين. جتي طواف ۽ سعي جي مشغولي ۾ وڌيڪ هڪ هفتو گذارڻ جو شرف حاصل ڪيوسين. عزيزن، دوستن، بزرگن، عالمن ۽ مشائخن نه صرف مڪي مديني ۾ پر هر جڳهه تي اسان



جو دلي آذر پاء ڪيو. ائين منهنجن خوابن ۽ خواهشن جي سر زمين حجاز مقدس ۾ هڪ مهيني جو عرصو اک ڇنڀ ۾ گذري ويو ۽ آئون وري هندستان جي ڌرتيءَ تي واپس موٽي آيس. حيف در چشم زدن صحبت يار آخر شد  
روءِ گل نديدم وبهار آخر شد

حجاز کان موٽيس ته پاڪستان ۽ هندستان جي اردو پڙهندڙ طبقي پاران ڪتاب جي اردو ترجمي جو مطالبو شروع ٿي ويو، جيڪو ڪيترا سال گذرڻ بعد به قائم رهيو. هوڏانهن وڌندڙ مصروفيتن ڪارڻ ترجمي لاءِ وقت ڪيڏ مشڪل ٿي ويو. مصروفيتن هوندي به ترجمي جو ڪم شروع ڪري ڏنم ۽ الله جا لڪ احسان جو ڪجهه مهينن جي توري ڪوشش سان ترجمو پورو ٿي ويو. ولله الامر من قبل ومن بعد.

آخر ۾ آئون انهن سمورن بزرگن، دوستن ۽ عزيزن جو ٿورو مڃڻ ضروري ٿو سمجهان، جن هن ڪم ۾ ڪنهن به طرح منهنجو ساٿ ڏنو. خاص طور تي استاد محترم مولانا عبدالرحمان صاحب رحمان ۽ قربائتي شيخ عزيز صاحب ۽ حافظ محمد الياس صاحب فاضل مدينه يونيورسٽي، جن جي مشوري ۽ همت افزائيءَ مون کي مقرر وقت تي هن مقالي جي تياريءَ ۾ وڏي مدد ڏني. الله تعاليٰ انهن سڀني کي خير جو صلو ڏي، اسان جو حامي ۽ ناصر بڻجي. ڪتاب کي قبوليت جو شرف بخشي ۽ مؤلف ۽ تعاون ڪندڙن ۽ ڪتاب مان لاپ پرائيندڙن جي لاءِ پلائيءَ ۽ چوٽڪاري جو ذريعو بنائي. آمين.

**صفي الرحمان مبارڪپوري**

18 رمضان المبارڪ 1404 هـ

## پنهنجي زباني

الحمد لله رب العالمين والصلاة والسلام على سيد الاولين والآخرين محمد خاتم النبيين وعلى آله وصحبه اجمعين و بعد :-

جيئن ته رابطہ عالم اسلامي سیرت نبوي جي مقابلي ۾ حصو وٺڻ وارن کي پنهنجي زندگيءَ جو احوال لکڻ جو پابند ڪيو آهي، ان ڪري هيٺ پنهنجي سادي زندگيءَ جا چند خاڪا ڏئي رهيو آهيان.

نسبي سلسلو:- صفي الرحمان بن عبدالله بن محمد اڪبر بن محمد علي بن عبدالؤمن بن فقير الله مبارڪپوري اعظمي

ڄم:- سند (سرٽيفڪيٽ) ۾ منهنجي ڄم جي تاريخ 6 جون 1943ع لکيل آهي، پر اهو هڪ اندازو آهي. تحقيق سان معلوم ٿيو ته منهنجي پيدائش 1942ع جي وچ ڌاري ڳوٺ حسين آباد ۾ ٿي، جيڪو مبارڪپور جي اتر ۾ هڪ ميل پري هڪ ننڍو ڳوٺ آهي. مبارڪپور، اعظم ڳڙهه ضلعي جو هڪ مشهور علمي ۽ صنعتي شهر آهي.

تعليم:- مون ننڍپڻ ۾ قرآن مجيد جو ڪجهه حصو پنهنجي ڏاڏي ۽ چاچي وٽ پڙهيو ۽ 1948 ۾ مبارڪپور جي مدرسه دارالتعليم مبارڪپور ۾ داخل ٿيس. اتي ڇهن سالن ۾ پرائمري ۽ مڊل جي نصاب جي تعليم مڪمل ڪئي. ڪجهه فارسي به پڙهيم. ان کانپوءِ جون 1954ع ۾ مدرسه احياءِ العلوم مبارڪپور ۾ داخلا وٺي عربي ٻولي ۽ قواعد، صرف نحو ڪجهه ٻين فنن جي تعليم حاصل ڪرڻ شروع ڪيم. ٻن سالن کان پوءِ مدرسه فيض عام ”مئو“ پهتس. ان مدرسي کي علائقي ۾ هڪ اهم ديني درسگاهه جي حيثيت حاصل هئي ۽ ”مئو ناٿ پڄن“ مبارڪپور کان 35 ميل پري آهي.

فيض عام ۾ منهنجي داخلا مئي 1956ع ۾ ٿي، جتي پنج سال گذاريم. مون عربي ٻوليءَ جا قواعد شرعي علوم ۽ فنون يعني تفسير، حديث، اصول حديث، فقه ۽ اصول فقه وغيره جي تعليم حاصل ڪيم. جنوري 1961ع ۾ منهنجي تعليم مڪمل ٿي ۽ مون کي باقائده شهادة التخرج (يعني تڪميلي سند) ملي. اها سند فضيلت في الشريعة ۽ فضيلت في العلوم جي سند آهي تدریس ۽ افتاء جي اجازت تي مشتمل آهي. منهنجي خوش نصيبي آهي جو مون کي تمام امتحانن ۾ سٺين مارڪن سان ڪاميابي حاصل ٿيندي هئي.

تعليم دوران مون اله آباد بورڊ جي امتحانن ۾ به شرڪت ڪئي. فيبروري 1959ع ۾ مولوي ۽ فيبروري 1960ع ۾ عالم جا امتحان ڏنا ۽ ٻنهي ۾ فرسٽ ڊويزن ۾ پاس ٿيس.

**زندگيءَ جي علمي ۽ عملي ميدان ۾:-** 1961ع ۾ "مدرسه فيض عام" مان فارغ ٿي پهرين ضلعي اله آباد پوءِ ناگپور شهر ۾ درس و تدريس ۽ تقرير و خطابت جو ڪم شروع ڪيو. ٻه سال پوءِ مارچ 1963ع ۾ مدرسه فيض عام جي ناظر اعلى مون کي تدريس جي دعوت ڏني پر مون اتي وڏي مشڪل سان ٻه سال گذاريا پر حالتن ان کان عليحده ٿيڻ تي مجبور ڪيو. ٻيو سال جامعة الرشاد اعظم ڳڙھ ۾ گذريو ۽ فيبروري 1966ع کان مدرسه دارالحدیث "مئو" جي دعوت تي اتي مدرس ٿي ويس. هتي ٽي سال تدريس کان علاوه بحیثیت نائب صدر مدرس تعليمي ۽ داخلي انتظامن جي نگهڊاريءَ ۾ به شريڪ رهيس.

آخري ڏينهن ۾ مدرسي جي انتظاميه ۾ اختلاف ٿي پيا. ائين پئي لڳو ته مدرسو ئي بند ٿي ويندو. اهي اختلاف ڏسي عين عید جي ڏهاڙي مون استعفيٰ ڏئي ڇڏي ۽ مدرسه دارالحدیث مان استعفيٰ کي ڪجهه ڏينهن ئي گذريا مدرسه فيض العلوم "سيوٽي" ۾ وڃي مامور ٿيس. جيڪو "مئونات پجن" کان اٽڪل ست سؤ ڪلوميٽر پري مڌيا پرديش ۾ هو.

"سيوٽي" ۾ منهنجي تقرر جي جنوري 1969ع ۾ ٿي. اتي درس ۽ تدريس کان سواءِ صدر مدرس طور مدرسي جا سڀ داخلي ۽ خارجي انتظام سنڀالي ورتو. جمعي جو خطبو پڙهائڻ ۽ پرپاسي جي ڳوٺن ۾ وڃي تبليغ ڪرڻ منهنجو معمول ٿي ويو. چار سال اتي رهيس. 1972ع جي آخر ۾ سالياني موڪل تي ڳوٺ واپس آيس ته مدرسه دارالتعليم مبارڪپور جي رڪن هتي تعليمي انتظام سنڀالڻ ۽ پڙهائڻ تي مجبور ڪيو. مون کي اها آڇ قبول ٿي پئي. اهڙيءَ طرح مون پنهنجي پهرئين علمي گهر ۾ نيون ذميداريون سنڀالي ورتيون. ٻن سالن کان پوءِ جامعة سلفيه جي ناظر اعليٰ، مدرسه دارالتعليم جي سرپرست سان ڳالهه ٻولهه ڪئي ته مون کي جامعة سلفيه منتقل ڪيو وڃي. جامع جي خيرخواهي ۽ پراڻن رابطن ڪري معاملو طئي ٿي ويو ۽ آڪٽوبر 1974ع شوال 1394ھ ۾ جامعة سلفيه هليو آيس. تڏهن کان هتي ڪم ڪري رهيو آهيان.

**تاليف:-** تعليم مڪمل ڪرڻ بعد گذريل ڪافي عرصي کان درس ۽ تدريس سان گڏ تاليف ۽ تصنيف جو ڪجهه نه ڪجهه ڪم جاري رکيو آهي. مختلف مضمونن ۽ مقالن کانسواءِ هيستائين اٽڪل ويهه عدد ڪتابن ۽ رسالن جي تاليف ۽ ترجمي جو ڪم ڪري چڪو آهيان، جيڪي هن ريت آهن.

1. شرح ازهار العرب (عربي) ازهار العرب علامه محمد سورتی رحمته الله عليه جو سهيڙيل نفيس

- عربي شعرن جو هڪ چونڊ مشهور مجموعو آهي. شرح 1962ع ۾ لکي اٿم پر ڪافي اڻپوري آهي ۽ اڃا ڇپائي نه وئي آهي.
2. المصايح في مسألة التراويح للسيوطي جو اردو ترجمو (1963ع) ۾ ٿي پيرا ڇپيل آهي.
3. ترجمة الكلمة الطيب لابن تيمية رحمه الله (1966ع) اڻڇپيل
5. صحف يهود و نصارىٰ ميں محمد صلى الله عليه وسلم ڪے بارے ميں بشارتیں (اردو 1970ع) اڻڇپيل
6. تذڪره شيخ الاسلام محمد بن عبدالوهاب رحمه الله (1972ع) هي ڪتاب ٿي پيرا ڇپيل آهي. اصل ۾ قطر جي المحكمة الشرعية جي قاضي شيخ احمد بن حجر جي عربي تاليف جو ترجمو آهي. پر ان ۾ ڪجهه واڌارو ۽ سڌارو ڪيو ويو آهي.
7. تاريخ آل سعود (اردو 1972ع) تذڪره شيخ الاسلام محمد بن عبدالوهاب جي پهرئين ۽ ٻئي ڇاپي سان گڏ ڇپيل آهي.
8. اتحاف الكرام تعليق بلوغ المرام لابن حجر عسقلاني (عربي 1974ع) ڇپيل
9. قاديانيت اپنے آئينے ميں (اردو) 1976ع ۾ ڇپيل
10. فتنه قاديانيت اور مولانا ثناء الله امرتسري (اردو 1976ع) ڇپيل
11. الرقيق المختوم، جيڪو رابط عالم اسلامي وارن جي مقابلي لاءِ لکيو ويو.
12. انڪار حديث ڪيون؟ (اردو 1976ع) ڇپيل. 13- انڪار حديث حق يا باطل؟ (اردو 1976ع) ڇپيل
14. رزم حق و باطل (بجر ديھ جي مناظر جو احوال جو قصو 1978ع ۾ ڇپيل)
15. ابرار الحق و الصواب في مسألة السفور و الحجاب (عربي 1978ع) پردي بابت
- علامہ ڊاڪٽر تقی الدين هلالی مراڪشي حفظ الله جي راءِ تي تنقيد جيڪو مجله جامعة السلفية ۾ قسطوار شايع ٿيو.
16. تطور الشعوب و الديانات في الهند و مجال الدعوة الإسلامية فيها (عربي 1979ع) ڪجهه قسطنطنية مجلة الجامعة السلفية ۾ شايع ٿيل آهي.
17. الفرقة الناجية و الفرق الإسلامية الأخرى (عربي 1982ع) اڻڇپيل
18. اسلام اور عدم تشدد (اردو 1984ع) اڻڇپيل. 19. هجعة النظر في مصطلح أهل الأثر (عربي)
20. اهل تصوف کی کارستانیان (اردو 1986ع). 21. الأحزاب السياسية في الإسلام (عربي 1986ع)
- ان کان علاوه ماهوار "محدث بنارس" جي اول دور کان آخر تائين ڪل ساڍا چار سال ايڊيٽريءَ جا فرائض به انجام ڏنر.
- والله الموفق وازمة الامور كلها بيده ربنا تقبله منا بقبول حسن و انبته نباتا حسنا

## هن ڪتاب بابت

الحمد لله الذي ارسل رسوله بالهدى و دين الحق ليظهره على الدين كله فجعله شاهدا ومبشرا ونذيرا، وداعيا الى الله باذنه وسراجا منيرا، وجعل فيه اسوة حسنة لمن كان يرجو الله واليوم الآخر وذكر الله كثيرا، اللهم صل وسلم وبارك عليه وعلى آله وصحبه ومن تبعهم باحسان الى يوم الدين اما بعد!

هيءَ تمام خوشيءَ جي ڳالهه آهي ته پاڪستان ۾ ربيع الاول 1396ھ ۾ ٿيل سيرت ڪانفرنس جي پڄاڻيءَ تي رابطو عالم اسلامي وارن سيرت جي موضوع تي مقالا لکڻ جي هڪ عالمي مقابلي جو اعلان ڪيو آهي. جنهن جو مقصد قلمڪارن ۾ نئين امنگ ۽ فڪري هر آهنگي پيدا ڪرڻ آهي. منهنجي خيال ۾ اهو هڪ ڀلاو قدم آهي. ڇو ته جيڪڏهن گهراڻيءَ سان ڏٺو وڃي ته معلوم ٿيندو ته حقيقت ۾ سيرت نبوي ﷺ ۽ اسوه محمدي ئي اهو واحد ذريعو آهي. جنهن مان اسلامي دنيا جي زندگيءَ توڙي انساني معاشري لاءِ سعادت جا چشما ڦٽن ٿا. پاڻ سڳورن ﷺ جي ذات بابرڪت تي بيشمار درود ۽ سلام هجن.

ان ڀلائي مقابلي ۾ شرڪت ڪرڻ مون لاءِ سعادت ۽ خوش بختي آهي پر منهنجي اوقات ئي ڇا آهي جو مان سيد الاولين والآخرين ﷺ جي زندگي مبارڪ تي روشني وجهي سگهان. ائون ته پنهنجي پوري خوش بختي ۽ ڪاميابي ان ۾ سمجهان ٿو ته مون کي پاڻ سڳورن ﷺ جي شفاعت جو ڪجهه حصو نصيب ٿي وڃي. جيئن تاريخين ۾ پٽڪي هلاڪ ٿيڻ بدران پاڻ سڳورن ﷺ جي هڪ امتيءَ جي حيثيت ۾ سندن ڏسيل روشن رستي تي هلندي زندگي گهاريان ۽ ان راهه تي هلندي مون کي موت اچي ۽ پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي شفاعت جي برڪت سان الله تعاليٰ منهنجن گناهن تي معافيءَ جي لڪير ڦيري ڇڏي.

هن ڪتاب جي تحريري انداز بابت هڪ ننڍڙي ڳالهه ٻڌائڻ ضروري ٿو سمجهان مون ڪتاب لکڻ مهل اهو رٿيو هو ته هن ڪتاب کي اجائي ڊيگهه يا اجائي اختصار کان بچائي وڃولي درجي ۾ مرتب ڪندس، پر جڏهن سيرت جي ڪتابن تي نظر وڌي ته واقعن جي ترتيب ۽ جزئيات جي تفصيل ۾ اختلاف ڏٺو. ان ڪري فيصلو ڪيو ته اهڙي صورت ۾ بحث جي هر پاسي تي نظر وجهي ڀرپور تحقيق ڪري جيڪو نتيجو ڪيان، سو اصل ڪتاب ۾ درج ڪريان ۽ دليلن ۽ شاهدين جي تفصيل ۽ ترجيح جي سببن جو ذڪر نه ڪريان نه ته ڪتاب ضرورت کان وڌيڪ ڊگهو ٿي ويندو. پر جتي هي ڊپ هيو ته منهنجي تحقيق پڙهندڙن لاءِ حيرت ۽ تعجب جو باعث بڻبي. يا جن واقعن بابت عام لکندڙن ٻيو موقف پيش ڪيو آهي، جيڪو منهنجي ليکي صحيح نه آهي ته اتي دليلن جو به اشارو ڏنو اٿم.

يا الله! مون لاءِ دنيا ۽ آخرت جي ڀلائي مقدر فرمائ تون پڪ سان غفور ۽ ودود آهين. عرش جو مالڪ ۽ بزرگ ۽ برتر آهين.

جمعة المبارڪ 24 رجب 1396ھ مطابق 23 جولاءِ 1976ع

صفي الرحمان مبارڪپوري

جامعہ سلفیہ بنارس ھند .

## عربستان جي جاگرافيائي بيهڪ ۽ اتي رهندڙ قومون

رسول الله ﷺ جي سيرت درحقيقت ان الاهي پيغام جي عملي صورت آهي. جنهن کي نبي اڪرم ﷺ قول، فعل، ارشاد ۽ سلوڪ جي ذريعي انسان ذات آڏو پيش ڪيو هو ۽ جنهن جي ذريعي زندگيءَ جا پيمانہ بدلائي ڇڏيا هئا ۽ برائي کي چڱائي ۾ بدلایو ويو ۽ انسانن کي اوندھ مان ڪڍي روشنيءَ ۾ ۽ بانھن جي بندگيءَ مان ڪڍي الله جي بندگيءَ ۾ داخل ڪري ورتو هو. ايتري تائين جو تاريخ جو رخ ۽ زندگيءَ جو ڍنگ بدلجي ويو. جيئن ته سيرت پاڪ جي مڪمل تصوير ڪشي ايستائين ممڪن نه آهي، جيستائين ان الاهي پيغام نازل ٿيڻ کان اڳ ۽ پوءِ جي حالتن ۾ ڀيٽ نه ڪئي وڃي، انڪري اصل بحث کان اڳ هن باب ۾ اسلام کان اڳ جي عرب قومن ۽ انھن جي اوسر، حڪومتن، ان وقت جي قبيلائي نظامن، عادتن ۽ رسمن، سياسي اقتصادي ۽ اجتماعي حالتن ۽ رھڻي ڪرڻي جو بيان ڪندي انھن حالتن بابت هڪ خاڪو پيش ڪيو پيو وڃي، جن حالتن ۾ رسول الله ﷺ جي بعثت ٿي.

**عربستان جي جاگرافيائي بيهڪ:-** "عرب" لفظ جي لغوي معنیٰ آهي رڻ پٽ ۽ ريگستان. پراڻي دور کان اهو لفظ عربستان ۽ ان ۾ رهندڙ قومن لاءِ ڳالهائجي ٿو. عربستان جي الهندي ۾ ڳاڙهو سمنڊ ۽ سينا جو اڀيٽ آهي. اوڀر ۾ عربي نار ۽ ڏکڻ ۾ عراق جو هڪ وڏو حصو آهي. ڏکڻ ۾ عربي سمنڊ به آهي، جيڪو اصل ۾ هندي سمنڊ جو ئي حصو آهي. اتر ۾ شام جو ملڪ ۽ ڪجهه علائقو اتر عراق جو آهي. ان سلسلي ۾ ڪجهه سرحدن ۾ اختلاف به آهي. سڄي علائقي جي پکيڙ ڏه لک کان تيرنهن لک چورس ميل ٻڌائي وڃي ٿي.

عربستان طبعي ۽ جاگرافيائي حيثيت کان وڏي اهميت رکي ٿو. داخلي طرح هي علائقو چئني پاسن کان ريگستان ۾ گهيريل آهي. جنهن جي ڪري ايڏو محفوظ قلعو ٿي پيو آهي جو ٻاهرين قومن لاءِ ان تي قبضو ڪرڻ ۽ پنهنجو اثر رسوخ قائم ڪرڻ سخت مشڪل رهيو آهي. اهو ئي ڪارڻ آهي جو عربستان جي علائقي جا ماڻهو پراڻي زماني کان پنهنجن سڀني معاملن ۾ مڪمل طرح آزاد ۽ خودمختيار رهيا آهن. حالانڪ اهي ٻن اهڙن وڏين طاقتن جا پاڙيسري رهيا آهن، جو جيڪڏهن نوس قدرتي بند رڪاوٽ نه هجي ها ته سندن حملا روڪي سگهڻ عربستان جي رهواسين جي وس جي ڳالهه نه هئي.

خارجي طور تي هي علائقو پراڻي دنيا جي سڀني وڏن کنڊن جي وچ ۾ آهي ۽ خشڪي توڙي سامونڊي رستن سان ڳنڍيل آهي. ان جي اتر اولهه واري ڪنڊ، آفريڪا ڪنڊ ۾ داخل ٿيڻ جو دروازو آهي. اتر اوڀر واري ڪنڊ يورپ جي ڪنجي آهي. اوڀر پاسي واري حصي کان ايران، وچ ايشيا ۽ مشرقي بعيد جي ملڪن جا رستا نڪرن ٿا جيڪي هندستان ۽ چين تائين پهچن ٿا. اهڙيءَ طرح هر ڪنڊ سمنڊ جي رستي به عرب علائقي سان ڳنڍيل آهي ۽ انهن جا جهاز عربستان جي بندرگاهن تي سڌيءَ طرح اچي لنگر هڻندا آهن. ان جاگرافيائي بيهڪ ڪري عربستان جا اترين ۽ ڏاکڻان علائقا مختلف قومن لاءِ تجارت، ثقافت، فنن ۽ مذهبن جا وڏا مرڪز رهي چڪا آهن.

عرب قومون:- تاريخدانن، نسلي اعتبار کان عرب قومن کي ٽن قسمن ۾ ورهايو آهي.

(1) عرب بائده:- يعني اهي قديم عرب قبيلن ۽ قومون جيڪي بلڪل منجھي چڪا آهن ۽ انهن بابت ضروري معلومات به نٿي ملي. جهڙوڪ عاد، ثمود، طسر، جديس، عمالقه، اميم، جرهم، حضور، دبار، حضرموت وغيره.

(2) عرب عاربه:- يعني اهي عرب قبيلن جيڪي يشجب بن يعرب بن قحطان جي نسل مان آهن. انهن کي قحطاني عرب چئجي ٿو.

(3) عرب مستعربه:- يعني اهي عرب قبيلن جيڪي حضرت اسماعيل عليه السلام جي نسل مان آهن. انهن کي عدناني عرب چئبو آهي.

عرب عاربه:- يعني قحطاني عربن جو اصل مرڪز يمن جو ملڪ هو. هتان ئي انهن جا مختلف خاندان ۽ قبيلن ٿي نڪتا. انهن مان ٻن قبيلن وڏي شهرت حاصل ڪئي. انهن مان هڪ حمير بن سبا ۽ ٻيو ڪهلان بن سبا آهن سبا جي ٻئي اولاد جو تعداد يارنهن يا چوڏهن هو. انهن جو ڪوبه قبيلو نهي نه سگهيو. اهي سبائي سڏائين ٿا.

(الف) حمير بن سبا:- جون مشهور شاخون هي آهن.

(1) قضاة: بهراءِ بلي، عذره، وبره، نالي قبيلن آهن.

(2) سڪا سڪا: اهي بنو زيد بن وائله بن حمير آهن، جن جو لقب سڪا سڪا آهي. هي ڪنده جي سڪا سڪا کان عليحدہ آهي جن جو ذڪر بنو ڪهلان جي بيان ۾ ايندو.

(3) زيد الجمهور: حمير اصغر، سبا اصغر، حضور ذواصب، ان جي شاخن مان آهن.

(ب) ڪهلان: - جنهن جون مشهور شاخون همدان، الهان، اشعر، طي، مذحج، ( مذحج مان عنس ۽

نخع)

لحم، ( لحم مان ڪنده ۽ ڪنده مان بنو معاويه، سڪون ۽ سڪا سڪ ) جذام، عائله، خولان، معافر، انار، ( انار مان خنعم، بجيله، بجيله مان احمس ) ۽ ازد، ۽ ازد مان اوس، خزرج، خزاعه ۽ اولاد جفنه آهن. جن اڳتي هلي شام جي آس پاس ۾ بادشاهت قائم ڪئي ۽ آل غسان جي نالي سان مشهور ٿيا.

عام ڪهلاني قبيلن يمن کي ڇڏي عربستان جي مختلف علائقن ۾ پکڙجي ويا. سندن گهڻي لڏپلاڻ سيل عمر جي واقعي کان اڳ ان وقت ٿي جڏهن رومين، مصر ۽ شام تي قبضو ڪري يمن وارن جي سامونڊي واپاري رستن تي قبضو ڄمائي ورتو ۽ خشڪيءَ جي رستن تي ڏنل سهولتن کي تباهه ڪري ڪهلانين جي واپار کي ڪاپاري ڌڪ هنيو ۽ چيو وڃي ٿو ته سيل عمر کان پوءِ انهن ان وقت لڏ پلاڻ ڪئي، جڏهن واپار جي ناڪاميءَ کان پوءِ انهن جي زرعي پيداوار ۽ چوپايو مال به تباهه ٿي ويو ۽ زندگي گذارڻ جا تمام وسيلا ختم ٿي ويا.

ممڪن آهي ته ڪهلاني ۽ حميري خاندانن ۾ رنجشون ۽ جهڙپون به رهيون هجن ۽ اهي به ڪهلانين جي لڏپلاڻ جو سبب بڻيون هجن. ان جو اشارو ان ڳالهه مان ملي ٿو ته ڪهلانين ته لڏپلاڻ ڪئي پر حميري قبيلن اتي ئي رهيا. لڏپلاڻ ڪندڙ ڪهلانين کي چئن قسمن ۾ ورهائي سگهجي ٿو.

1. ازد: - انهن پنهنجي سردار عمران بن عمرو مزيقياءَ جي چوڻ تي وطن ڇڏيو. پهرين ته اهي يمن ۾ ئي هڪ جڳهه کان ٻي جڳهه تي منتقل ٿيندا رهيا ۽ حالتن جي خبرچار وٺڻ لاءِ هر اول دستن کي موڪليندا رهيا، پر آخرڪار اتر ۽ اوڀر ڏانهن روانا ٿيا ۽ پوءِ مختلف شاخون گهمنديون ڦرنديون مختلف علائقن ۾ سدائين لاءِ رهي پيون. ان جو تفصيل هيٺ ڏجي ٿو.

ثعلبه بن عمرو: - هن پهرين حجاز جو رخ ڪيو ۽ ثعلبه ۽ ذي قار جي وچ ۾ رهائش اختيار ڪئي. جڏهن ان جو اولاد وڏو ٿيو ۽ خاندان مضبوط ٿيو ته مديني ڏانهن لڏپلاڻ ڪري ان کي پنهنجو مستقل وطن بنائون ان ئي ثعلبه جي نسل مان اوس ۽ خزرج ٿيا، جيڪي ثعلبه جي پٽ حارثه جا پٽ هئا.

حارثه بن عمرو: - يعني خزاعه ۽ ان جو اولاد، هي پهرين حجاز جي علائقي ۾ گهمندي ”مرالظهران“ ۾ اچي رهيا. پوءِ حرم تي ڪاهي پيا ۽ بنو جرهم کي ڪڍي پاڻ مڪي ۾ رهڻ لڳا.



عمران بن عمرو:- هن ۽ سندس اولاد ”عمان“ ۾ رهائش اختيار ڪئي. ان ڪري هي ماڻهو ”ازد عمان“ سڏبا آهن.

نصر بن ازد:- هن سان تعلق رکندڙ قبيلن ”تهام“ ۾ رهائش اختيار ڪئي. اهي ”ازدشنوءَ“ سڏبا آهن.

جفنه بن عمرو:- هيءُ پنهنجي اولاد سميت شام ۾ وڃي رهيو. هيءُ ئي شخص غساني بادشاهن جو وڏو ڏاڏو هو. انهن کي ”آل غسان“ ان ڪري چئجي ٿو جو اهي شام ۾ اچڻ کان اڳ ڪجهه وقت حجاز ۾ ”غسان“ نالي چشمي وٽ رهيا هئا.

2- لخر ۽ جذام:- هنن ماڻهن اوڀر ۽ اتر طرف لڏ پلاڻ ڪئي. انهن لخمين مان ئي نصر بن ربيعه ٿيو، جيڪو ”حيرة“ جي شاهي خاندان ”آل منذر“ جو وڏو ڏاڏو هو.

3 - بنو طيء:- هن قبيلي، بنو ازد جي وطن ڇڏڻ بعد اتر طرف رخ ڪيو ”اجاءَ“ ۽ ”سلمي“ نالي بن جبلن جي ويجهو هميشه لاءِ رهي پيا. ايتري تائين جو اهي ٻئي جبل طي قبيلي جي نسبت سان مشهور ٿي ويا.

4 - ڪنده:- هي پهرين بحرين يعني موجوده ”الاحساء“ ۾ اچي رهيا پر پوءِ مجبور ٿي اتان لڏي حضر موت هليا ويا. راتي به سڪ نه ملين. آخرڪار نجد ۾ اچي پنهنجا خيما کوڙيائون. هتي انهن هڪ وڏي پاڻي جي حڪومت جو بنياد وڌو پر اها حڪومت گهڻو نه هلي سگهي ان جا آثار به جلد ئي مٽجي ويا.

ڪهلان کانسواءِ حمير جو به رڳو قبيلو قضاة اهڙو آهي، جنهن جو حميري هجڻ ئي مشڪوڪ آهي، جنهن يمن مان لڏپلاڻ ڪري عراق جي حدن ۾ بادية السماوه ۾ رهائش اختيار ڪئي.  
(1)

عرب مستعرب:- انهن جو وڏو ڏاڏو حضرت ابراهيم عليه السلام اصل عراق جي شهر ”ار“ جو رهاڪو هو. اهو شهر فرات نديءَ جي الهندي ڪناري تي ڪوفي جي ويجهو واقع آهي. ان جي ڪوتائيءَ بعد جيڪي ڪتبا مليا آهن تن مان هن شهر بابت ڪافي تفصيل منظر تي اچي چڪا آهن ۽ حضرت

<sup>1</sup>- انهن قبائلن ۽ انهن جي لڏ پلاڻ جي مڪمل تفصيل لاءِ هي ڪتاب ڏسڻ گهرجن جهمرة النسب ، العقد الفريد ، قلائد الجمان ،  
نهاية الأرب ، تاريخ ابن خلدون

ابراهيم عليه السلام جي خاندان جي ڪن تفصيلن ۽ اتي جي رهاڪن جي ديني ۽ سماجي حالتن تان به پردو کڻي چڪو آهي.

اهو معلوم آهي ته حضرت ابراهيم عليه السلام هتان کان هجرت ڪري حران شهر ڏانهن هليو ويو هو ۽ پوءِ اتان فلسطين وڃي ان ملڪ کي پنهنجن پيغمبرائين سرگرمين جو مرڪز بڻايو هو. ملڪ ۾ ۽ ملڪ کان ٻاهر دعوت ۽ تبليغ لاءِ هتان کان ئي ڪوششون ورتائون.<sup>(1)</sup> هڪ دفعو پاڻ مصر ويا. فرعون سندن بيبي ساره عليها السلام جي حڪم جي هاڪ ٻڌي ته سندس نيت خراب ٿي ويئي. ۽ کين پنهنجي درٻار

۾ بري ارادي سان سڏيائين پر الله تعاليٰ، بيبي ساره عليها السلام جي دعا گهرڻ تي فرعون کي اهڙي غيبي پڪڙ ۾ ورتو جو هو چڙيون هڻي تڙپڻ لڳو. ان کي سندس نيت جو سلو مليو. ۽ حادثي جي نوعيت مان هو سمجهي ويو ته بيبي ساره عليها السلام الله تعاليٰ جي نهايت خاص ٻانهي آهي. هو بيبي صاحبه جي ان نيڪ خصلت کان ايترو متاثر ٿيو جو پنهنجي ڌيءَ هاجره<sup>(2)</sup> سندن خدمت ۾ ڏئي ڇڏيائين. بيبي ساره عليها السلام وري بيبي هاجره عليها السلام، حضرت ابراهيم عليه السلام سان پرڻائي ڇڏي.<sup>(3)</sup>

حضرت ابراهيم عليه السلام جن بيبي ساره عليها السلام ۽ بيبي هاجره عليها السلام کي وٺي واپس فلسطين آيا. پوءِ الله تعاليٰ کين بيبي هاجره جي بطن مبارڪ مان حضرت اسماعيل عليه السلام نالي فرزند عطا ڪيو. ان تي بيبي ساره کي ڪاوڙ آئي ڇو ته پاڻ بي اولاد هئي. پاڻ حضرت ابراهيم عليه السلام کي مجبور ڪري ڇڏيائون ته بيبي هاجره عليها السلام کي ابهر ٻار سميت جلاوطن ڪري ڇڏي. حضرت ابراهيم عليه السلام کي حالتن ڪري سندن ڳالهه مڃڻي پئي ۽ پاڻ بيبي هاجره عليها السلام ۽ حضرت اسماعيل عليه السلام کي وٺي حجاز هليا ويا ۽ کين هڪ سڄي واديءَ ۾ بيت الله شريف جي ويجهو رهايو. ان وقت بيت الله شريف نه هو. صرف دڙي وانگر اڀريل زمين هئي. اتان سيلاب ايندو هو ته ان جي ساڄي ۽ کاٻي پاسن سان ٽڪرائجي گذري ويندو هو. اتي ئي مسجد الحرام جي مٿئين حصي ۾ زمزم وٽ هڪ وڏو وڻ هو. پاڻ ان وڻ وٽ ئي بيبي هاجره عليها السلام ۽ حضرت اسماعيل عليه السلام

<sup>1</sup> رحمة للعالمين (10/1)

<sup>2</sup> - مشهور آهي ته بيبي هاجره عليها السلام ڪنيز هئي پر علامه منصور پوري تفصيلي تحقيق سان ثابت ڪيو آهي ته اها ڪنيز نه پر آزاد هئي ۽ فرعون جي ڌيءَ هئي. ان لاءِ ڏسو رحمة للعالمين (37-36/2). تاريخ ابن خلدون (77 / 1 / 2)

<sup>3</sup> - ساڳيو ڪتاب 34/2 واقعي جي تفصيل لاءِ ڏسو صحيح بخاري 474/1.

ڪي ڇڏي ويا. ان وقت مڪي ۾ نه پاڻي هو نه ئي وري ڪو ماڻهو وغيره هو. ان ڪري حضرت ابراهيم عليه السلام جن هڪ ٿيلهيءَ ۾ ڪجيون ۽ هڪ ڪليءَ (سانداريءَ) ۾ پاڻي رکي ڇڏيون ۽ پاڻ فلسطين موٽي ويا. ڪجهه ڏينهن ۾ ئي ڪجيون ۽ پاڻي ختم ٿي ويو ۽ کين ڏکيائي ٿيڻ لڳي. پر ان ڏکئي وقت تي الله جي مهربانيءَ سان زمزم جو چشمو ڦٽي پيو، جيڪو ڪافي عرصي تائين رزق جي ضرورت پوري ڪندو رهيو. ان جو تفصيل هرڪو ڄاڻي ٿو. (1)

ڪجهه وقت کانپوءِ يمن جو هڪ قبيلو آيو جنهن کي تاريخ ۾ جرهم ثاني چئجي ٿو. هي قبيلو اسماعيل عليه السلام جي والده کان اجازت وٺي اتي رهي پيو. چيو وڃي ٿو ته هي قبيلو پهرين مڪي جي آسپاس وادين ۾ رهندو هو. صحيح بخاريءَ ۾ ايتري وضاحت موجود آهي ته (رهائش لاءِ) اهي مڪي ۾ حضرت اسماعيل جي اچڻ کانپوءِ ۽ سندن جوان ٿيڻ کان اڳ آيا هئا. باقي ان واديءَ مان سندن حضرت گذرڻ پهرين به ٿيندو رهندو هو. (2)

حضرت ابراهيم عليه السلام جن پنهنجن پوٽن جي خبرچار وٺڻ لاءِ ڪڏهن ڪڏهن مڪي ۾ ايندا رهندا هئا پر اهو معلوم نه ٿي سگهيو آهي ته پاڻ هتي گهڻا پيرا آيا. باقي ڪتابن ۾ سندن چار پيرا اچڻ جو تفصيل محفوظ آهي، جيڪو هتي ڏجي ٿو.

1. قرآن مجيد ۾ بيان ٿيل آهي ته الله تعاليٰ حضرت ابراهيم عليه السلام کي خواب ۾ ڏيکاريو ته هو پنهنجي فرزند (حضرت اسماعيل عليه السلام) کي ذبح ڪري رهيو آهي. هي خواب هڪ طرح سان الله جو حڪم هو ۽ پيءُ پٽ ٻئي ان حڪم جي پورائي لاءِ تيار ٿي ويا. جڏهن ٻئي رضامند ٿيا ۽ پيءُ پنهنجي پٽ کي نرڙ ڀر لبتائي ڇڏيو ته الله تعاليٰ سڏ ڪيو ته "اي ابراهيم! تو خواب کي سچ ڪري ڏيکاريو. اسين چڱن کي ان طرح ئي صلوه ڏيندا آهيون. يقيناً اها هڪ کليل آزمائش هئي ۽ الله ان جي فديي ۾ هڪ عظيم ذبيحو عطا ڪيو. (3)

مجموعه بائيبل جي ڪتاب پيدائش ۾ مذڪوره آهي ته حضرت اسماعيل عليه السلام جن حضرت اسحاق عليه السلام کان تيرنهن سال وڏا هئا ۽ قرآن شريف ڄاڻائي ٿو ته مٿيون واقعو حضرت اسحاق عليه السلام جي پيدائش کان اڳ ٿيو. ڇو ته پورو واقعو بيان ڪرڻ کانپوءِ حضرت اسحاق عليه السلام جي ولادت جي بشارت جو ذڪر ڪيل آهي. هن واقعي مان ثابت ٿئي ٿو ته حضرت اسماعيل عليه السلام جي جوان ٿيڻ کان اڳ گهٽ ۾ گهٽ هڪ ڀيرو حضرت ابراهيم عليه السلام جن مڪي شريف آيا هئا. باقي ٽن سفرن جو تفصيل صحيح بخاريءَ

<sup>1</sup> ڏسو صحيح بخاري، ڪتاب الانبياء، (474/1، 475) (حديث نمبر 3364، 3365)

<sup>2</sup> صحيح بخاري ڪتاب الانبياء (475/1).

<sup>3</sup> سورة الصافات آيت نمبر: (103-107) (فلما اسلما - بذبح عظيم)

جي هڪ ڊگهي روايت ۾ آيل آهي. جيڪا حضرت ابن عباس کان مرفوعا مروِي آهي (1) ان جو خلاصو هيءُ آهي.

2. حضرت اسماعيل عليه السلام جڏهن جوان ٿيا ۽ جرهم وارن کان عربي سڪي ورتائون ۽ کين پسند ڪيائون تڏهن انهن سندن شادي پنهنجي خاندان جي هڪ عورت سان ڪرائي ڇڏي. ان دوران بيبي هاجره عليها السلام وفات ڪري ويئي. هوڏانهن حضرت ابراهيم عليه السلام کي پنهنجي پوٽيرن جي ڏسڻ جو خيال ٿيو. تنهن ڪري پاڻ مڪي آيا پر حضرت اسماعيل عليه السلام سان سندن ملاقات نه ٿي. پر حضرت اسماعيل عليه السلام جن گهر ۾ موجود نه هئا. تنهن کان خبر چار ورتائون ته ان تنگدستيءَ جي شڪايت ڪئي. تنهن تي پاڻ وصيت ڪري ويا ته اسماعيل عليه السلام اچي ته ان کي چئجو ته گهر جي چائنٺ مٽائي ڇڏي. حضرت اسماعيل عليه السلام جن ان پيغام کي سمجهي ويا ۽ پنهنجي زال کي طلاق ڏئي بي عورت سان شادي ڪيائون جيڪا جرهم جي سردار مضا بن عمرو جي نياڻي هئي. (2)

3. ان بي شاديءَ کانپوءِ هڪ ڀيرو وري حضرت ابراهيم عليه السلام جن مڪي آيا پر هن ڀيري به سندن ملاقات حضرت اسماعيل عليه السلام سان نه ٿي. تنهن کان خبر چار ورتائون ته ان الله جي ساراه ڪئي. پاڻ وصيت ڪري ويا ته: اسماعيل عليه السلام پنهنجي گهر جي چائنٺ ساڳي رکي ۽ پوءِ فلسطين هليا ويا.

4. ان کان پوءِ پاڻ وري (مڪي) آيا ته حضرت اسماعيل عليه السلام جن ان مهل زمزم جي ويجهو هڪ وڏ هيٺان تير چلي رهيا هئا. جڏهن حضرت ابراهيم عليه السلام کي ڏٺائون ته والهائي انداز ۾ اٿي سندن طرف وڌيا ۽ اهو سڀ ڪجهه ڪيائون جيڪو اهڙن موقعن تي پيءُ پٽ سان ۽ پٽ پيءُ سان ڪندو آهي. هيءَ ملاقات ايڏي ڊگهي عرصي کانپوءِ ٿي هئي جو ڪو نرم دل ۽ شفيق پيءُ پنهنجي فرمانبردار پٽ کان مشڪل سان ئي ايترو ويوڙو برداشت ڪري سگهي ٿو. هن ڀيري بنهي ملي خدا جي گهر (ڪعبي) جي تعمير ڪئي، بنياد کوٽيا ۽ پٽيون ڪنيون ۽ ابراهيم عليه السلام سڄي دنيا جي ماڻهن کي حج جو سڏ ڏنو.

الله تعاليٰ مضا بن نياڻيءَ مان اسماعيل عليه السلام کي ٻارنهن پٽ عطا ڪيا (3) جن جا نالا هن ريت آهن. نابت يا نبايوط، قيذار، ادبائيل، مبشام، مشماع، دوما، ميشا، حدد، تيماء، يطور، نفيس، قيدهمان. انهن ٻارنهن پٽن مان ٻارنهن قبيلن پيدا ٿيا، جيڪي مڪي ۾ ئي رهيا. انهن

<sup>1</sup> صحيح بخاري ڪتاب الانبياء (1/475/476)

<sup>2</sup> قلب جزيره العرب (ص:230).

<sup>3</sup> قلب جزيره العرب. (ص:230)

جي گذر سفر جو دارومدار گهڻو ڪري يمن، مصر ۽ شام سان ٿيندڙ واپار تي هو. پوءِ اهي قبيلو عربستان جي مختلف پاسن ۾ بلڪه عربستان کان ٻاهر به پکڙجي ويا ۽ سندن حالتون وقت جي گهري ڌنڌ ۾ ڍڪجي ويون. رڳو نابت ۽ قيدار جو اولاد گمناميءَ کان بچيل رهيو. نبطين جي تمدن حجاز جي اتر ۾ واڌ ويجهه ٿي. انهن هڪ سگهاري حڪومت قائم ڪري آسپاس جي ماڻهن کي پنهنجو ڏن ڀرو ڪيو. بطراء انهن جي گاديءَ جو هنڌ هو. ڪنهن کي ساڻن مقابلي جي سگهه نه هئي. پوءِ رومين جو دور آيو، جن نبطين کي ماضيءَ جو قصو بناڻي ڇڏيو. نسب نامن جو علم رکندڙ اهل علم جو خيال آهي ته آل غسان ۽ انصار يعني اوس ۽ خزرج قحطاني عرب نه هئا بلڪ ان علائقي ۾ نابت بن اسماعيل عليه السلام جو بچيل نسل هو. امام بخاري جو به اهو ئي خيال آهي. جيئن صحيح بخاري ۾ هڪ باب جو عنوان هن ريت آهي ”نسبة اليماني الى اسماعيل“ ان تي پاڻ ڪن حديثن مان استدلال ورتو اٿس. حافظ ابن حجر ان جي شرح ۾ چوي ٿو ته: قحطان نابت بن اسماعيل جي نسل مان آهي (1) قيدار بن اسماعيل عليه السلام جو نسل مڪي ۾ ئي وڌندو ويجهندو رهيو. تان جو عدنان ۽ ان جي پٽ معد جو زمانو آيو. عدناني عربن جو نسل صحيح طور تي ايسٽائين ئي محفوظ آهي.

عدنان، نبي ڪريم ﷺ جي نسبي سلسلي ۾ ايڪهين پيڙهي تي اچي ٿو. ڪن روايتن ۾ اچي ٿو ته پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجو شجرو ٻڌائيندا هئا ته عدنان تي پهچي بيهي رهندا هئا ۽ اڳتي نه وڌندا هئا ۽ فرمائيندا هئا ته شجري جا ماهر غلط ٿا چون (2) پر عالمن جي هڪ گروهه جو خيال آهي ته اڳتي به شجرو بيان ڪري سگهجي ٿو. انهن هن روايت کي ڪمزور قرار ڏنو آهي، پر خود انهن جي وچ ۾ ايترو اختلاف آهي جو ڪو نتيجو نٿو ڪڍي سگهجي. علامه منصور پوريءَ جو رجحان ابن سعد جي جائيل قول ڏانهن آهي جنهن کي طبري ۽ مسعوديءَ پڻ قولن سان گڏ لکيو آهي ته سندن تحقيق مطابق عدنان ۽ حضرت ابراهيم عليه السلام جي وچ ۾ چاليهه پيڙهيون آهن. (3)

بهرحال معد جي پٽ نزار مان، جنهن بابت چيو وڃي ٿو ته ان کان سواءِ معد کي ٻيو ڪو به اولاد نه هو، ڪيترائي ئي خاندان وجود ۾ آيا. حقيقت ۾ نزار جا چار پٽ هئا ۽ هر پٽ هڪ وڏي قبيلي جو جد (ڏاڏو) ثابت ٿيو. چئني جا نالا هن ريت آهن. ايام، انمار، ربيعه، مضر. آخري ٻن جون شاخون ۽ انهن جون به گهڻيون شاخون ٿيون. ربيعه مان اسد بن ربيعه، اسد مان عنزه ۽ جديله، جديله مان عبدالقيس ۽ نمر، وائل، وائل مان بڪر، تغلب ۽ بنوبڪر مان بنو قيس، بنو

<sup>1</sup> صحيح بخاري ڪتاب المناقب باب نسبة اليماني الى اسماعيل (3507) فتح الباري (6/ 621، 623)

<sup>2</sup> - تاريخ الطبري - تاريخ الامم والملوك (191/2 - 194)، الاعلام (6/5)

<sup>3</sup> ابن سعد 1/ 56، تاريخ الطبري 2/ 291، تاريخ ابن خلدون 2/ 2، 298، فتح الباري 6/ 622،

شيبان، بنو حنيفه وغيره وجود ۾ آيا. مضر جو اولاد بن وذن قبيلن ۾ ورهائجي ويو. 1. قيس عيلان بن مضر. 2. الياس بن مضر.

قيس عيلان مان بنو سليم، بنو هوازن، بنو ثقيف، بنو صعصعه، بنو غطفان، غطفان مان عبس، ذبيان، اشجع ۽ غني بن اعصر نالي قبيلائتي نڪتا.

الياس بن مضر مان تمير بن مره، هذيل بن مدرڪه، بنواسد بن خزيمه ۽ ڪنانه بن خزيمه نالي قبيلائتي نڪتا. ڪنانه مان قريش قبيلو وجود ۾ آيو. هي قبيلو فھر بن مالڪ بن نصر بن ڪنانه جو اولاد آهي.

پوءِ قريش به مختلف شاخن ۾ ورهائجي ويا. قريش جون مشهور شاخون هن ريت آهن. جمع، سهر، عدي، مخزوم، تيمر زهره ۽ قصي بن ڪلاب مان نڪتل خاندان يعني عبدالدار، اسد بن عبدالعزيز ۽ عبدمناف. اهي ٽي قصي جا پٽ هئا. تن مان عبدالمناف کي چار پٽ ٿيا، جن مان چار ننڍا قبيلائتي نڪتا. يعني، عبدشمس، نوفل، مطلب ۽ هاشم. ان هاشم جي نسل مان الله تعاليٰ اسان جي نبي سڳوري حضرت محمد صلي الله عليه وآله وسلم جي چونڊ ڪئي.

رسول الله ﷺ جو ارشاد آهي ته الله تعاليٰ حضرت ابراهيم عليه السلام جي اولاد مان اسماعيل عليه السلام کي چونڊيو ۽ اسماعيل عليه السلام جي اولاد مان ڪنانه کي چونڊيو ۽ ڪنانه جي نسل مان قريش کي چونڊيو ۽ قريش مان بنو هاشم کي چونڊيو ۽ بنو هاشم مان منهنجي چونڊ ڪئي. (1)

ابن عباس رضي الله عنه جو بيان آهي ته رسول الله ﷺ فرمايو ته "الله تعاليٰ جڏهن مخلوق کي پيدا ڪيو ته مون کي سڀ کان چڱي گروهه ۾ رکيو، پوءِ ان جي ٻن گروهن مان وڌيڪ چڱي ۾ مون کي رکيو. پوءِ قبيلن ۾ سڀ کان پلي قبيلي ۾ مون کي رکيو. پوءِ گهراڻا چونڊيا ويا ته سڀ کان بهتر گهراڻي ۾ مون کي رکيو. ان ڪري مان پنهنجي ذات جي لحاظ سان سڀ کان بهتر آهيان ۽ پنهنجي گهراڻي جي لحاظ سان به سڀ کان بهتر آهيان. (2) بهرحال عدنان جي نسل ۾ واڌ ويجهه ٿيڻ بعد اهي چارئي پاڻيءَ جي ڳولا ۾ عرب جي مختلف پاسن ۾ پکڙجي ويا. جيئن عبدالقيس قبيلي، بڪر بن وائل جي ڪيترين ئي شاخن ۽ بنو تمير جي خاندانن بحرين جو رخ ڪيو ۽ اتي ئي آباد ٿيا.

1. صحيح مسلم (245/2) (حديث نمبر 5897) كتاب الفضائل، جامع ترمذي (201/2) (حديث نمبر 3605)

2. ضعيف: جامع ترمذي (201/2) (حديث نمبر 3607) - (3073)

بنو حنيفه بن صعيب بن علي بن بكر يمامه جو رخ ڪيو ۽ ان جي مرڪز حجر ۾ رهائش اختيار ڪئي.

بكر بن وائل جي باقي بچيل شاخن يمامه کان بحرين، ساحل ڪاظم، نار واري علائقي عراق جي شهرن، ”اهل“ ۽ ”هيت“ تائين وڃي رهائش اختيار ڪئي.

بنو تغلب فراتيه نالي بيت ۾ وڃي رهيا، جڏهن ته انهن جي ڪن شاخن بنو بكر سان رهائش اختيار ڪئي.

بنو تميمير باديه بصره کي پنهنجو ديس بنايو.

بنو سليمير مديني جي ويجهو وڃي ويٺا. انهن جو علائقو واديءُ القريٰ کان شروع ٿي، خيبر ۽ مديني جي اوڀر مان گذرندي حره بنو سليمير سان لڳو لڳ ٻن ٽڪرين تي ختم ٿئي ٿي.

بنو ثقيف، طائف کي پنهنجو ديس بنايو ۽ بنو هوازن مڪي جي اوڀر ۾ اوطاس نالي واديءَ جي آس پاس وڃي ويٺا. انهن جي وسندي مڪي ۽ بصري واري رستي تي هئي.

بنو اسد، تيماءَ جي اوڀر ۽ ڪوفي جي اولهه ۾ وڃي ويٺا. انهن جي ۽ تيماءَ جي وچ ۾ بنوطي جو هڪ خاندان بحتر آباد هو. بنو اسد جي وسندي ۽ ڪوفي جي وچ ۾ پنج ڏينهن جو پنڌ هو. بنو ذبيان، تيماءَ جي ويجهو حوران جي آسپاس آباد ٿيا.

تهامه ۾ بنو ڪنانه جا خاندان رهجي ويا هئا. جن مان قريشي خاندانن جي رهائش مڪي ۽ ان جي آسپاس هئي. اهي ماڻهو ڇڙوڇڙ هئا تان جو قصي بن ڪلاب منظر عام تي اڀري آيو ۽ قريشن کي گڏي شرافت، عزت، اوجائين ۽ وقار جي لائق بڻايائين. (1)

\*\_\*\_\*

## عرب حڪومتون ۽ سرداريون

اسلام کان اڳ عربستان جي حالتن تي ڳالهائڻ ڪرڻ مهل مناسب ٿيندو ته اتي جي حڪومتن، سردارين ۽ مذهبن جو به هڪ مختصر خاڪو پيش ڪيو وڃي. جيئن اسلام جي اچڻ واري دور جي حالتن جو آسانيءَ سان اندازو ڪري سگهجي.

جنهن دور ۾ عربستان تي اسلام جي سچ جون روشن شعاعون پوڻ شروع ٿيون ان دور ۾ اتي ٻن قسمن جا حڪمران هئا. هڪ تاجدار بادشاهه جيڪي حقيقت ۾ مڪمل طور تي آزاد ۽ خودمختيار نه هئا ۽ ٻيا قبائلي سردار جن جي به اختيارن ۽ مرتبي جي لحاظ کان تاجدار بادشاهن جهڙي حيثيت هئي. انهن جي اڪثريت کي ته اهو مرتبو به حاصل هو ته اهي مڪمل طرح آزاد ۽ خودمختيار هئا. تاجدار بادشاهه هي هئا، يمن جا حڪمران، آل غسان (شام جا حڪمران ۽ حيره (عراق) جا حڪمران. ٻيا عرب حڪمران تاجدار نه هئا.

يمن جي بادشاهي: - عرب عاربه مان جيڪا پراڻي ۾ پراڻي يماني قوم معلوم ٿي سگهي اها قوم سبا هئي. اُڙ (عراق) مان جيڪي ڪتبا مليا آهن، انهن مان اڍائي هزار ق.م هن قوم جو ذڪر ملي ٿو. پر ان جي عروج جو زمانو يارهين صدي ق.م کان شروع ٿئي ٿو. ان جي تاريخ جا اهم دور هن ريت آهن.

1. 650 ق.م کان اڳ جو دور: هن دور ۾ سبا جي حڪمرانن جو لقب ”مڪرب سبا“ هو. جنهن جي گادي صرواح ۾ هئي. جنهن جا کنڊر اڄ به مآرب جي اتر- اولهه ۾ هڪ ڏينهن جي پنڌ (پنجاهه ڪلوميٽر جي فاصلي) تي ملن ٿا ۽ خريبه جي نالي سان مشهور آهن. ان دور ۾ مآرب جي مشهور بند جي پيڙهه رکي وئي، جنهن کي يمن جي تاريخ ۾ وڏي اهميت حاصل آهي. چيو وڃي ٿو ته ان دور ۾ سبا جي سلطنت کي ايترو عروج حاصل ٿيو جو انهن عربستان جي اندر ۽ ٻاهر جتي ڪٿي پنهنجون نيون وسنديون قائم ڪري ورتيون هيون.

2. 620 ق.م کان 115 ق.م تائين وارو دور: هن دور ۾ سبا جي بادشاهن ”مڪرب“ لفظ ڇڏي ”ملڪ“ (بادشاهه) جو لقب اختيار ڪيو ۽ صرواح بدران مآرب کي گاديءَ جو هنڌ بنايو. ان شهر جا کنڊر اڄ به صنعاءَ کان 192 ڪلوميٽر اوڀر ۾ ملن ٿا.<sup>(1)</sup>

<sup>1</sup> اليمن عبر التاريخ (77, 83, 124, 130), تاريخ العرب قبل الاسلام (101, 112)



3. 115 ق.م کان 300ع تائين جو دور: هن دور ۾ سبا رياست تي حمير قبيلي کي غلبو حاصل رهيو ۽ ان مآرب بدران ريدان کي گاديءَ جو هنڌ بنايو. پوءِ ريدان جو نالو ظفار پئجي ويو. جنهن جا کنڊر اڄ به "يرير" شهر جي ويجهو هڪ ٽڪريءَ تي ملن ٿا.

هن ئي دور ۾ سبا جو زوال شروع ٿيو. پهرين نبطين اتر حجاز ۾ پنهنجي حڪومت قائم ڪري سبا کي سندن نين وسندين مان ڪڍي ڇڏيو. پوءِ رومين، مصر، شام ۽ اتر حجاز تي قبضو ڪري انهن جي واپاري ۽ سامونڊي رستن کي بند ڪري ڇڏيو. اهڙيءَ طرح سندن واپار آهستي آهستي تباهه ٿي ويو. هوڏانهن قحطاني قبيلن پاڻ ۾ وڙهي پيا هئا. انهن حالتن جي نتيجي ۾ اهي پنهنجو ديس ڇڏي هيڏي هوڏي ڇڙوڇڙ ٿي ويا.

4. 300ع کان پوءِ اسلام جي شروع واري دور تائين: هن دور ۾ يمن ۾ لڳاتار اضطراب ۽ انتشار ۽ (بي چيني ۽ ڏقيڙ) رهيو. انقلاب آيا، خانہ جنگيون ٿيون ۽ ڌارين قومن کي وڃ ۾ ٽيڻ جا موقعا مليا. ايتري قدر جو هڪ دور اهڙو به آيو جو يمن جي آزادي ختم ٿي وئي. ان ئي دور ۾ رومين، عدن تي فوجي قبضو ڪري ورتو. انهن جي مدد سان حبشيين، حمير ۽ همدان جي چنڊاپٽ مان فائدو وٺندي 340ع ۾ پهريون ڀيرو يمن تي قبضو ڪيو، جيڪو 378ع تائين برقرار رهيو. ان کانپوءِ يمن کي آزادي ته ملي پر "مآرب" جي مشهور بند ۾ هٿ چراند ٿيڻ لڳي. ايسٽائين جو آخرڪار 450ع يا 451ع ۾ بند ٿي پيو ۽ اها عظيم ٻوڏ آئي جنهن جو ذڪر قرآن مجيد (سوره سبا) ۾ سيل عرم جي نالي سان ڪيو ويو آهي. هي هڪ وڏو حادثو هو، جنهن جي نتيجي ۾ ڳوٺن جا ڳوٺ اُڇڙي ويا ۽ ڪافي قبيلن هيڏي هوڏي ٽڙي پڪڙي ويا.

523ع ۾ هڪ ٻيو وڏو حادثو پيش آيو جو يمن جي يهودي بادشاهه ذونواس، نجران جي عيسائين تي هڪ ڏهڪائيندڙ حملو ڪري انهن کي عيسائي مذهب ڇڏڻ تي مجبور ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي پر جڏهن اهي راضي نه ٿيا ته کڏون کوٽائي انهن کي پٽڪندڙ باهه ۾ اڇلائي ڇڏيو. قرآن مجيد جي سوره بروج جي آيت {قُتِلَ أَصْحَابُ الْأُخْدُودِ} ۾ ان ڪنبائيندڙ واقعي ڏانهن اشارو ڪيل آهي. هن واقعي جي نتيجي ۾ عيسائيت، جيڪا رومي بادشاهن جي اڳواڻيءَ ۾ عربستان جي شهرن کي فتح ڪرڻ ۽ انهن ۾ قهلهجڻ لاءِ اڳ ۾ ئي تيار ويني هئي سا انتقام وٺڻ لاءِ سنڀري وئي ۽ حبشيين کي يمن تي ڪاهڻ لاءِ اڪسائيندي کين سامونڊي پيڙو مهيا ڪيو ويو. حبشيين، رومين جي هُشيءَ تي 525ع ۾ ارباط جي اڳواڻيءَ ۾ ستر هزار فوج وٺي يمن تي ٻيهر قبضو ڪيو. ان بعد پهرين ته ارباط، حبشيين جي بادشاهه جي گورنر طور يمن تي حڪمراني ڪئي پر پوءِ سندس فوج جي هڪ ماتحت ڪمانڊر ابرهه 549ع ۾ کيس ماري اقتدار تي قبضو ڪري ورتو ۽ حبشيين

جي بادشاهه کي به راضي ڪري ورتو. هي اهو ئي ابرهه آهي جنهن جنوري 571ھ ۾ ڪعبي کي ڊاهڻ جي ڪوشش ڪئي ۽ هڪ وڏي لشڪر کان سواءِ ڪجهه هاڻي به حملي لاءِ وٺي آيو. جنهن ڪري هي لشڪر ”اصحاب فيل“ جي نالي سان مشهور ٿيو.

هوڏانهن هاڻين واري واقعي ۾ حبشيين جي جيڪا تباهي ٿي ان جو فائدو وٺي يمن وارن فارس (ايران) جي حڪومت جي مدد سان حبشيين جي خلاف بغاوت ڪئي ۽ سيف ذي يزن حميري جي پٽ معديڪرب جي اڳواڻيءَ ۾ حبشيين کي ملڪ مان تڙي ڪڍيو ۽ هڪ آزاد ۽ خودمختيار قوم جي حيثيت سان معديڪرب کي پنهنجو بادشاهه چونڊيو. هي 575ع جو واقعو آهي.

آزاديءَ بعد معديڪرب ڪجهه حبشيين کي پنهنجي خدمت ۽ شاهي ڏيڪاءَ لاءِ روڪي ڇڏيو، پر کيس اهو شوق مهانگو پيو. انهن حبشيين هڪ ڏينهن معديڪرب کي ٺڳيءَ سان ماري ڏي يزن خاندان جي حڪمرانيءَ جو ڏيڻو سدائين لاءِ وسائي ڇڏيو. هوڏانهن ڪسري ان صورتحال جو فائدو وٺندي صنعاءَ تي هڪ فارسي النسل گورنر مقرر ڪري يمن کي فارس جو صوبو بنائي ڇڏيو. ان کان پوءِ يمن تي لڳاتار فارسي گورنر مقرر ٿيندا رهيا. ايسٽائين جو آخري گورنر باذان 628ع ۾ اسلام قبوليو ۽ ان سان گڏ يمن، فارسي راڄ کان آزاد ٿي اسلام جي عملداريءَ ۾ اچي ويو. (1)

حيره وارن جي بادشاهيءَ: - عراق ۽ ان جي ڀرپاسي وارن علائقن تي ڪوروش ڪبير (خورس يا سائرس ذوالقرنين 557 ق.م کان 529 ق.م) جي زماني کان ئي فارسين جي حڪومت هلي رهي هئي. ڪو به انهن سان مقابلي جي جرئت نٿي ڪري سگهيو. تان جو 326 ق.م سڪندر مقدونيءَ دارا اول کي شڪست ڏئي فارسين جي سگهه ٽوڙي وڌي. جنهن جي نتيجي ۾ سندن ملڪ ٽڪر ٽڪر ٿي ويو ۽ طوائف الملوكي شروع ٿي وئي. هي ڏقير 230ع تائين جاري رهيو ۽ ان دوران قحطاني قبيلن لڏ پلاڻ ڪري اچي عراق جي هڪ وڏي سرسبز ۽ شاداب سرحدي علائقي ۾ سڪونت اختيار ڪئي. ان کان پوءِ عدناني پناهگيرن جو وڏو جٿو آيو جن مارا ماري ڪري فراتيه نالي ٻيٽ جي هڪ حصي کي پنهنجو مسڪن بنائي ورتو. انهن مان پهريون شخص جيڪو حڪمران ٿيو اهو آل قحطان جو مالڪ بن فهم تنوخي هو. ان جي پناهه جي جاءِ انبار ۾ يا ان جي ڀرپاسي ڪٿي هئي. هڪ روايت مطابق ان جو جائنشين سندس پيءُ عمر بن فهم ٿيو ۽ هڪ ٻي روايت مطابق سندس پٽ

<sup>1</sup> مولانا سيد سليمان ندوي رحمته الله عليه تاريخ ارض القرآن (1/133) کان آخر تائين مختلف تاريخي شاهدين جي روشنيءَ ۾ ”سبا“ وارن جون حالتون وڏي تفصيل سان لکيون آهن. مولانا مودوديءَ تفهيم القرآن (4/195-198) تي ڪجهه وڌيڪ معلومات ڏني آهي پر تاريخي ماخذ ۾ سالن بابت وڏو اختلاف آهي. ڪن محققن ته انهن تفصيلن کي ”اڳين جا گهڙيل قصا“ چئي ڇڏيو آهي.

جذيم بن مالک بن فهم ٿيو جنهن جو لقب ابرش ۽ وضاح هو. تاريخ ابن خلدون 2/540، ۾ به ساڳي روايت ڏنل آهي. 238/2، ۽ جذيم، عمر و بن فهم کان پوءِ گادي نشين ٿيو. جيڪو سندس پيءُ مالک بن فهم جو پٽ هو.

هو ڏانهن 226ھ ۾ جڏهن اردشير ساساني حڪومت جو پايو وڌو ته آهستي آهستي فارسين جي طاقت هڪ ڀيرو وري وڌي ويئي. اردشير، فارسين کي گڏ ڪيو ۽ پنهنجي ملڪ جي سرحد تي آباد عرب قبيلن کي آڻ مڃرائي. انهيءَ جي نتيجي ۾ ”قضاء“ وارا شام ڏانهن هليا ويا ۽ حيره ۽ انبار جي عربن ڏن پرو ٿيڻ قبوليو.

اردشير جي ڏينهن ۾ حيره، بادية العراق ۽ جزيره جي ربيعي ۽ مضري قبيلن تي جذيمة الوضاح جي حڪمراني هئي. ائين ٿو لڳي ته اردشير محسوس ڪري ورتو هو ته عربن تي سڌي حڪمراني ڪرڻ ۽ سرحد تي ڦر ڪرڻ کان کين روڪڻ ممڪن ناهي. ان جي رڳو هڪ صورت آهي ته ڪنهن اهڙي عرب کي ٿي سندن حڪمران ڪيو وڃي، جنهن کي پنهنجي ڪٽر قبيلي جي پٺڀرائي حاصل هجي. ان جو هڪ فائدو اهو به ٿيندو جو ضرورت جي وقت رومين خلاف مدد وٺڻ ۽ شام جي روم نواز عرب حڪمرانن جي مقابلي ۾ عراق جي انهن عربن کي سامهون آڻي سگهجي.

”حيره“ جي بادشاهن وٽ فارسي فوج جو هڪ دستو هميشه رهندو هو، جن کان صحرائي عرب باغين کي ڪچلڻ جو ڪم ورتو ويندو هو.

268ع ڌاري جذيمة گذاري ويو ۽ عمرو بن عدي بن نصر لخمى (268 کان 288ع تائين) ان جو جانشين ٿيو. اهو لخم قبيلي جو پهريون حڪمران هو ۽ شاپور اردشير جو همعصر هو. ان کانپوءِ قباذ بن فيروز (448، کان 531ع تائين) جي دور تائين حيره تي لخمين لڳاتار حڪمراني ڪئي. قباذ جي ڏينهن ۾ مزدڪ ظاهر ٿيو، جيڪو اباحيت جو علمبردار هو. قباذ ۽ سندس راڄ جي اڪثريت ان جي پوئلڳي ڪئي. پوءِ قباذ، حيره جي بادشاهه منذر بن ماء السماء (512-554ع) کي نيپو موڪليو ته تون به هي مذهب اختيار ڪر. جيئن ته منذر وڏو غيرت وارو هو ان ڪري هن مذهب اختيار ڪرڻ کان انڪار ڪيو. نتيجي ۾ قباذ ان کي لاهي سندس جڳهه تي هڪ مزدڪي پوئلڳ حارث بن عمرو بن حجر ڪندي کي حيره جي حڪمراني ڏني.

قباذ کانپوءِ فارس جي واڳ ڪسري نوشيروان (531-578ع) جي هٿ آئي. ان کي هن مذهب کان ڏاڍي نفرت هئي. ان مزدڪ ۽ سندس پوئلڳن جي وڏي تعداد کي مارائي ڇڏيو ۽ منذر کي ٻيهر حيره جو حاڪم مقرر ڪيو ۽ حارث بن عمرو کي پاڻ وٽ گهرايو پر هو بنو ڪلب جي علائقي ۾ پڇي ويو ۽ اتي ئي باقي عمر گذاريائين.

منذر بن ماء السماء کانپوءِ نعمان بن منذر (583-605ع) جي دور تائين حيره وارن جي حڪمراني سندس ئي نسل ۾ هلندي رهي. پوءِ زيد بن عددي عباديءَ ڪسريٰ کي نعمان بن منذر جي ڪوڙي دانهن ڏني. ڪسريٰ ڪاوڙجي نعمان کي پاڻ وٽ گهرايو. نعمان ماڻ ميث ۾ بنو شيبان جي سردار هاني بن مسعود وٽ پنهنجا ٻار ٻچا ۽ مال ملڪيت امانت طور ڇڏي ڪسريٰ وٽ ويو. ڪسريٰ هن کي جيل ۾ قيد ڪيو ۽ اتي ئي هو گذاري ويو.

هوڏانهن ڪسريٰ، نعمان کي قيد ڪرڻ کان پوءِ ان جي جڳهه تي اياس بن قبيصه طائيءَ کي حيره جو حاڪم مقرر ڪيو ۽ کيس حڪم ڏنو ته هاني بن مسعود کان نعمان جون امانتون گهر. هاني غيرتمند هو، هن نه رڳو انڪار ڪيو بلڪ جنگ جوڻ جو اعلان به ڪيو. اياس پاڻ سان هڪ وڏو لشڪر ۽ ديني رهنما پادريين جي جماعت کي ساڻ وٺي روانو ٿيو ۽ ڏي قار جي ميدان ۾ ٻنهي ڌرين جي وچ ۾ چٽي ويڙهه ٿي، جنهن ۾ بنو شيبان کي فتح نصيب ٿي ۽ فارسين کي شرمناڪ شڪست ملي. هي پهريون واقعو هو جو عربن، عجمين تي فتح حاصل ڪئي. (1) هي واقعو پاڻ سڳورن ﷺ جي ڄم مبارڪ کان ڪجهه ڏينهن پهرين يا پوءِ جو آهي. پاڻ سڳورن جي ولادت حيره تي اياس جي حاڪميءَ جي اٺين مهيني ۾ ٿي هئي.

اياس کانپوءِ ڪسريٰ، حيره تي هڪ فارسي حڪمران مقرر ڪيو جنهن جو نالو آزاد به بن ماه بيان بن مهرباننداد هو. ان 614ع کان 631 تائين سترنهن سال حڪومت ڪئي. ان کان پوءِ 632ع ۾ لخمين جو وري اقتدار بحال ٿي ويو ۽ منذر بن معرور نالي هن قبيلي جي هڪ فرد حڪومت جون واڳون سنڀالي ورتيون. اڃا ان کي راڄ ڪندي اٺ مهينا مس ٿيا ته حضرت خالد بن وليد ﷺ اسلام جي وهندڙ درياءَ سان حيره ۾ گهڙي آيو. (2)

شام جي بادشاهي: - جنهن زماني ۾ عربن جي وڏي پيماني تي لڏپلاڻ ٿي رهي هئي. تن ڏينهن ۾ قضاة قبيلي جون ڪجهه شاخون شام جي حدن ۾ وڃي آباد ٿيون. انهن جو تعلق بني سليم بن حلوان سان هو ۽ انهن جي ئي هڪ شاخ بنو ضجعم بن سليم هئي، جنهن کي ضجاعه جي نالي سان شهرت ملي. قضاة جي هن شاخ کي رومين صحراءِ عرب جي رولاڪ بدوئن جي ڦرلٽ کي روڪڻ ۽ فارسين جي خلاف استعمال ڪرڻ لاءِ پنهنجو ڪيو ۽ انهن مان ئي هڪ فرد جي سر تي حڪمرانيءَ جو تاج رکي

1 - هيءَ ڳالهه خليفه بن خياط پنهنجي مسند (ص:24)، ۾ ۽ ابن سعد طبقات (77/7)، ۾ رسول الله ﷺ جن کان مرفوعا بيان ڪئي آهي.

2 - محاضرات تاريخ الأمم الإسلامية للحضري (1/29, 30, 31, 32)، وڌيڪ تفصيل لاءِ ڏسو تاريخ طبري، مسعودي، ابن قتيبي، ابن خلدون، بلاذري، ۽ ابن الاثير وغيره ڏسڻ گهرجي.

ڇڏيو. ان کان پوءِ سالن تائين سندن حڪمراني رهي. انهن مان نالي وارو بادشاهه زياد بن هبوله ٿي گذريو آهي.

اهو اندازو لڳايو ويو آهي ته ضجاعمه جو دورحڪومت پوري صديءَ تي مشتمل آهي. انهن کانپوءِ هن ڌرتيءَ تي آل غسان آيا ۽ ضجاعمه جي حڪومت ختم ٿي. آل غسان بنو ضجعمر کي هارائي سندن سڄي علائقي تي قابض ٿيا. هي صورتحال ڏسي رومين به آل غسان کي شام جي ڌرتيءَ تي عربن جو بادشاهه مڃي ورتو. آل غسان جي گاديءَ جو هنڌ دومته الجندل هو. رومين جي ڇاڙتن جي حيثيت سان شام ۾ سندن حڪومت فاروقي خلافت ۾ ٿيل 13 هه ۾ ڀرڻوڪ جي لڙائي تائين لڳاتار رهي. ۽ آل غسان جو آخري حڪمران ”جبلد بن ايهر“ اسلام جي دائري ۾ داخل ٿيو. (1) (جيڪو پنهنجي غرور ڪري اسلامي پائڻيچاري کي گهڻي دير برداشت نه ڪري سگهيو ۽ مرتد ٿي ويو).

حجاز جي امارت:- هيءَ ڳالهه ته مشهور آهي ته مڪي ۾ آباديءَ جي شروعات حضرت اسماعيل عليه السلام کان ٿي. سندن عمر 137 ورهيه هئي. (2) ۽ سڄي عمر مڪي جا سربراهه ۽ بيت الله جا متولي رهيا. (3) کائڻ پوءِ سندن به پٽ نابت ۽ پوءِ قيدار، يا قيدار ۽ پوءِ نابت، هڪ ٻئي کانپوءِ مڪي جا والي ٿيا. انهن کانپوءِ سندس ناني مضاض بن عمرو جرهميءَ انتظام پنهنجي هٿ ورتو. ان طرح مڪي جي سربراهي بنو جرهم ڏانهن منتقل ٿي ۽ ڪافي عرصي تائين سندن هٿ ۾ رهي. جيئن ته حضرت اسماعيل عليه السلام پنهنجي والد سان گڏ بيت الله جي تعمير ڪئي هئي ان ڪري سندن اولاد کي باوقار مقام ته حاصل هو پر راج پاڳ ۾ سندن حصو پتي نه هئي. (4) پوءِ ورهين تائين حضرت اسماعيل عليه السلام جو اولاد گمناميءَ مان نه نڪتو. تان جو بخت نصر کان ڪجهه عرصو اڳ بنو جرهم جي طاقت ڪمزور ٿي ۽ مڪي جي آسمان تي عدنان جو سياسي ستارو چمڪڻ لڳو. ان جو ثبوت اهو آهي ته بخت نصر ذات عرق ۾ عربن سان جيڪا لڙائي ڪئي هئي ان جو سڀهه سالار ڪو جرهمي نه هو بلڪه عدنان خود هو. (5)

بخت نصر جڏهن 587 ق.م ۾ ڀيو حملو ڪيو ته بنو عدنان ڀڄي يمن هليا ويا. ان وقت بني اسرائيل جو نبي حضرت يرمياهم هو، جنهن جو شاگرد برخيا، عدنان جي پٽ معد کي پاڻ سان

<sup>1</sup> - محاضرات خضري (34/1)، تاريخ ارض القرآن (82-80/2).

<sup>2</sup> پيدائش (مجموعه بائيبل (52: 17)، تاريخ الطبري (314/1)، هڪ ٻئي قول جي مطابق (130) سال جي عمر ۾ وفات ڪيائون يعقوبي (222/1).

<sup>3</sup> - قلب جزيرة العرب (ص: 230-237).

<sup>4</sup> - ساڳيو ڪتاب ۽ ابن هشام (111/1 - 113) ابن هشام اسماعيل جي اولاد ۾ رڳو نابت جي توليت جو ذڪر ڪيو آهي.

<sup>5</sup> - قلب جزيرة العرب (ص: 230) تاريخ الطبري (284/2).

شام وٺي ويو. جڏهن بخت نصر جو زور ٿٽو ۽ معد مڪي موٽيو ته کيس جرهم قبيلي جو فقط هڪ فرد جرهم بن جهم مليو. معد ان جي نياڻي معانه سان شادي ڪئي، جنهن مان نزار پيدا ٿيو. (1)

ان بعد مڪي ۾ جرهم جي حالت خراب ٿيندي وئي. هو تنگ دست ٿي ويا. نتيجي ۾ انهن ڪعبي جي زيارتيون سان زيادتيون ڪرڻ شروع ڪيون ۽ ڪعبة الله جو مال کائڻ کان به نه هٻڪيا. (2)

هوڏانهن بنو عدنان اندر ئي اندر سندن حرڪتن تي ڪڙهندا رهيا. ان ڪري جڏهن بنو خزاعه مرالظهران ۾ ديرو ڄمايو ۽ بنو عدنان کي بنو جرهم سان نفرت ڪندي ڏٺو ته ان جو فائدو وٺندي هڪ عدنائي قبيلي (بنو بڪر بن عبد مناف بن ڪنانه) کي ساڻ ڪري بنو جرهم سان لڙائي شروع ڪئي ۽ انهن کي مڪي مان ڪڍي حڪومت تي قبضو ڪري ورتو. هي واقعو ٻي صدي عيسويءَ جي وچ ڌاري جو آهي.

بنو جرهم مڪو ڇڏڻ وقت زمزم جو ڪوهه ڍڪي ان ۾ ڪيتريون ئي تاريخي شيون پوري ان جا نشان مٽائي ڇڏيا. محمد بن اسحاق جو چوڻ آهي ته عمرو بن حارث بن مضا (3) جرهميءَ ڪعبته الله جا ٻئي هرڻ (4) ۽ ان جي پٽ ۾ لڳل پٿر حجر اسود ڪڍي زمزم جي ڪوهه ۾ پوري ڇڏيا ۽ پنهنجي قبيلي سان يمن هليو ويو.

بنو جرهم کي مڪي مان بيدخل ٿيڻ ۽ حڪومت کان محروم ٿيڻ جو ڏاڍو ڏک هو. جيئن مذڪوره عمرو بن حارث ان سلسلي ۾ هي شعر چيا .

كَأَنَّ لَمْ يَكُنْ بَيْنَ الْحَجُونَ إِلَى الصَّمَا ... أَنَيْسٌ وَلَمْ يَسْمُرْ بِمَكَّةَ سَامِرُ  
بَلَى نَحْنُ كُنَّا أَهْلَهَا، فَأَبَادَنَا ... صُرُوفُ اللَّيَالِي وَالْجُلُودِ الْعَوَائِرِ (5)

”لڳي ٿو ته حجرون کان صفا تائين ڪو سڃاڻو هوئي ڪو نه ۽ نه ئي ڪنهن قصا چونڊڻ مڪي جي راتين واري محفلن جا قصا ٻڌايا هجن. ڇو نه! يقينن اسان ئي اتي جا رهواسي هئاسين. پر زماني جي ڦير گهير ۽ قتل قسمت اسان کي اتان تڙي ڪڍيو.“

حضرت اسماعيل عليه السلام جو زمانو اٽڪل 2000 سال ق.م آهي. ان حساب سان مڪي ۾ بنو جرهم قبيلي جو وجود اٽڪل ٻه هزار هڪ سو ورهيه رهيو ۽ ان جي حڪمراني لڳ ڀڳ ٻه هزار ورهيه رهي.

<sup>1</sup>- تاريخ الطبري (559/1، 271 /2)، فتح الباري (622 /6)، رحمة للعالمين (48/2).

<sup>2</sup>- تاريخ الطبري (284 /2)، قلب جزيره العرب (ص:231).

<sup>3</sup>- هي اهو مضا نه آهي جنهن جو ذڪر حضرت اسماعيل عليه السلام جي واقعي ۾ آيو آهي.

<sup>4</sup>- المسعودي لکي ٿو ته فارس وارا اڳي ڪعبي لاءِ مال ۽ جواهر موڪليندا هئا. ساسان بن بابڪ سون مان ٺهيل ٻه هرڻ، جواهر، تلوارون ۽

تمار گهڻو سون موڪليو. عمرو اهو سڀ ڪجهه زمزم جي ڪوهه ۾ وجهي ڇڏيو. (مروج الذهب 1/205)

نوٽ:- ڪن ماخذن ۾ هرڻ موڪليندڙ جو نالو اسفنديار فارسي لکيل آهي. (مترجم)

<sup>5</sup> ابن هشام (1/114-115). تاريخ الطبري (258/2).

بنو خزاعه مڪي تي قبضي کان پوءِ بنوبڪر کي شامل ڪرڻ کانسواءِ اڪيلي ئي حڪومت قائم ڪئي. البتہ تي اھر ۽ وڏا عھدا مضرِي قبيلن جي حصي ۾ آيا.

1. حاجين کي عرفات کان مزدلفه وٺي وڃڻ ۽ يوم النفر - 13 ذوالحج تي جيڪو حج جو آخري ڏينهن هو. مني کان موٽڻ جي اجازت ڏيڻ. اهو اعزاز الياس بن مضر جي خاندان بنو غوث بن مره کي حاصل هو. جيڪي ”صوفه“ سڏائيندا هئا. ان اعزاز جي وضاحت اها آهي ته 13 ذوالحج تي ايستائين حاجي پٿري نه هڻي سگهندا هئا، جيستائين صوفه جو هڪ ماڻهو پهرين پٿري نه هڻي. پوءِ حاجي پٿريون هڻي واندا ٿيندا هئا ۽ مني ڏانهن وڃڻ جو ارادو ڪندا هئا ته صوفه جا ماڻهو مني جي اڪيلي لنگهه عقبه جي ٻنهي پاسن کان ڪٽڙو ڇاڙهي بيهندا هئا جيسين پاڻ نه لنگهي ويندا هئا. تيستائين بين کي لنگهڻ نه ڏيندا هئا. انهن جي لنگهڻ کان پوءِ عام ماڻهن جي لنگهڻ لاءِ رستو خالي ٿي ويندو هو. جڏهن صوفه ختم ٿي ويا ته اهو اعزاز بنو تميم جي هڪ گهراڻي بنو سعد بن زيد مناة کي مليو.

2. 10 ذوالحج تي صبح جو مزدلفه کان مني ڏانهن افاضه (روانگي). هي اعزاز بنو عدوان کي مليو هو.

3. حرام مهينن کي اڳتي پوئتي ڪرڻ: هي اعزاز بنو ڪنانه جي هڪ شاخ بنو تميم بن عدي کي حاصل هو.<sup>(1)</sup> مڪي تي بنو خزاعه جو راڄ اٽڪل ٿي سڻو ورهيه رهيو.<sup>(2)</sup> هي اهو زمانو هو جڏهن عدناني قبيلن مڪي ۽ حجاز مان نڪري نجد، عراق جي آسپاس ۽ بحرين وغيره ۾ ڦهليا ۽ مڪي جي آسپاس رڳو قريش جون ڪجهه شاخون وڃي بچيون. جيڪي خانہ بدوش هئا. انهن جون الڳ الڳ ٽوليون هيون ۽ بنو ڪنانه ۾ سندن ڪجهه مختلف گهراڻا هئا پر مڪي جي حڪومت ۽ بيت الله جي ٽوليت (سارسنپال) ۾ انهن جو ڪو به حصو نه هو. ايستائين جو قصي بن ڪلاب جو ظهور ٿيو.<sup>(3)</sup>

قصيءَ بابت چيو وڃي ٿو ته هو اڃا هنج ۾ هو ته سندس والد گذاري ويو. ان کانپوءِ سندن والده بنو عذره جي هڪ ماڻهو ربيع بن حرام سان شادي ڪئي. جيئن ته هي قبيلو شام ملڪ جي آسپاس رهندو هو. ان ڪري سندس والده اوڏانهن هلي وئي ۽ قصيءَ کي به ساڻ وٺي وئي. قصي جوان ٿي مڪي واپس آيو. ان وقت مڪي جو حاڪم حليل بن حبشيه خزاعي هو. قصيءَ کيس، سندس ڌيءَ حبي سان شاديءَ جو نياپو موڪليو، حليل ان کي منظور ڪيو ۽ شادي ٿي وئي.<sup>(4)</sup>

<sup>1</sup> ابن هشام (44/1، 119-122).

<sup>2</sup> يا قوت: - ماده مڪ، فتح الباري (33/6)، مروج الذهب للمسعودي (58/2).

<sup>3</sup> - محاضرات خضري (35/1)، ابن هشام (117/1).

<sup>4</sup> - ابن هشام (118-117/1). حليل ح کي پيش، ل کي زير، حبشه ح کي زير، ب ساڪن، هي سکولي بن عمرو بن لحي بن حارثه بن عمرو بن عامر بن ماء السماء جو پٽ هو. حُبي ۾ ح کي پيش آهي. ب مشدد آهي امال سان پڙهيو وڃي ٿو (ان کان علاوه ٻيا به ڪجهه ماڻهو اهو چون ٿا ته حبشه جي ح کي پيش آهي ب ساڪن ش کي زير ۽ ي کي تشديد آهي).

ان کانپوءِ جڏهن حليل گذاري ويو ته مڪي ۽ بيت الله جي توليت (سارسنپال) لاءِ خزاع ۽ قريش جي وچ ۾ لڙائي ٿي پئي. ان جي نتيجي ۾ مڪي ۽ بيت الله تي قصيءَ جو راڄ قائم ٿي ويو. جنگ جو سبب ڇا هو؟ ان بابت ٽي بيان ملن ٿا. هڪ اهو ته قصي جو اولاد ڪافي وڌيو ويجهيو ۽ ان وٽ دولت به جام هئي ۽ سندن عزت به وڌيل هئي ۽ هوڏانهن حليل جي وفات بعد قصي محسوس ڪيو ته هاڻي بنو خزاع ۽ بنو بڪر بدران آئون ڪعبي جي سارسنپال ۽ مڪي جي حڪومت جو وڌيڪ حقدار آهيان. ان کي اهو احساس به هو ته قريش خالص اسماعيلي عرب آهن ۽ حضرت اسماعيل عليه السلام جي پٽي اولاد جا سردار به آهن. (ان ڪري سربراهيءَ جا حقدار اهي آهن) تنهن ڪري هن قريش ۽ بنو خزاع جي ڪن ماڻهن سان صلاح ڪئي ته ڇو نه بنو خزاع ۽ بنو بڪر کي مڪي مان ئي ڪڍيو وڃي، انهن ماڻهن هن راءِ سان سهمت ڪئي.<sup>(1)</sup> ٻيو بيان اهو آهي ته خزاع جي چوڻ مطابق حليل پاڻ قصيءَ کي وصيت ڪئي هئي ته تون ئي ڪعبي جي سنپال ڪر ۽ مڪي جون واڳون سنپال.<sup>(2)</sup> ٽيون بيان اهو آهي ته حليل پنهنجي ڌيءَ حبي کي بيت الله جي توليت (سارسنپال) جو ڪم سونپيو ۽ ابو غبشان خزاعيءَ کي ان جو وڪيل مقرر ڪيو هو. ان ڪري حبي جي ٻانهن ٻيليءَ جي حيثيت ۾ اهو ئي ڪعبة الله جو سنپاليندڙ هو. جڏهن حليل گذاري ويو ته قصيءَ ابو غبشان کان شراب جي هڪ ڪليءَ جي بدلي ۾ ڪعبي جي توليت (سارسنپال) جو حق خريد ڪيو پر بنو خزاع اهو سودو منظور نه ڪيو ۽ قصيءَ کي بيت الله وڃڻ کان روڪڻ گهريو. ان تي قصي بنو خزاع کي مڪي مان ڪڍڻ لاءِ قريش ۽ بنو ڪنانه کي گڏ ڪيو ۽ اهي قصي جي سڏ تي لبيڪ چوندي گڏ ٿي ويا.<sup>(3)</sup>

بهرحال سبب ڪهڙو به هجي، واقعت جو سلسلو هن طرح آهي ته جڏهن حليل جو انتقال ٿي ويو ۽ صوفه اهو ئي ڪرڻ چاهيو جو هو اڳي به ڪندا آيا هئا ته قصي قريش ۽ ڪنانه جي ماڻهن کي ساڻ ڪري عقبه جي ويجهو جتي هو گڏ ٿيل هئا، انهن کي چيو ته توهان کان وڌيڪ اسين هن اعزاز جا حقدار آهيون. ان تي صوفه وارن لڙائي شروع ڪئي پر قصي انهن کي هارائي کائڻ اهو اعزاز چئي ورتو. اهو ئي موقعو هو جڏهن خزاع ۽ بنوبڪر وارن قصي سان ناتو چيني ڇڏيو. جنهن تي قصي کين به للڪاريو پوءِ ته بس ٻنهي ڌرين ۾ جنگ ڇڙي پئي ۽ ٻنهي ڌرين جا گهڻا ئي ماڻهو مارجي ويا. ان بعد صلح ڪرڻ لاءِ هوڪا ٿيڻ لڳا ۽ بنوبڪر جي هڪ شخص يعمر بن عوف کي حڪم (فيصلو ڪندڙ) بنايو ويو. يعمر فيصلو ڪيو ته خزاع بدران قصي ڪعبة الله جي سنپال ۽ مڪي تي راڄ ڪرڻ جو حقدار آهي. قصي جيترو خون وهايو آهي ان جو لهڻو ليڪو نه آهي. باقي خزاع ۽ بنوبڪر وارن جن ماڻهن کي ماريو آهي تنهن جو ڏنڊ (ديت) پري ڏين ۽ ڪعبه الله کي قصي جي حوالي ڪن.

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/117.118)، تاريخ طبري (255/2، 256)، ابو غبشان غ کي پيش، ب ساڪن، ان جو نالو محرش يا سليم بن

عمرو هو. (فتح الباري (633/6)، الروض الانف (1/142)، خزاعي کي ان جو وڪيل بنايو هو.

<sup>2</sup> - ابن هشام (1/118)، الروض الانف (1/142).

<sup>3</sup> - رحمة للعالمين (2/55)، بحواله تاريخ يعقوبي (1/239)، فتح الباري (634/6)، مسعودي (58/2).



ان فيصللي جي ڪري يعمر جو لقب شداخ پئجي ويو. (1) شداخ معنيٰ پيرن هيٺ لتاڙڻ وارو. هن فيصللي ڪري قصي ۽ قريش کي مڪي تي مڪمل اختيار حاصل ٿي ويو ۽ قصي بيت الله جو ديني سردار ٿي ويو، جنهن جي زيارت لاءِ عربستان جي ڪنڊ ڪڙڇ کان ماڻهن جون قطارون لڳيون پيون هونديون هيون. مڪي تي قصيءَ جي قبضي جو واقعو پنجين صدي عيسوي يعني 440ع جي وچ ڌاري جو آهي. (2)

قصيءَ مڪو هن طرح سنڀاليو جو قريش کي مڪي جي آسپاس کان گهراڻي سڄو شهر انهن ۾ ورهائي ڇڏيو ۽ هر خاندان جي رهائش لاءِ الڳ الڳ علائقو مقرر ڪري ڇڏيو. باقي مهينا اڳيان پويان ڪرڻ وارن کي ۽ آل صفوان، بنو عدوان ۽ بنو مره بن عوف کي ساڳئي عهدي تي برقرار رکيو. ڇو ته قصي سمجهندو هو ته هي به دين آهي، جنهن ۾ ڦير ڦار ڪرڻ صحيح نه آهي. (3)

قصي جو هڪ ڪارنامو هي به آهي ته هن حرم پاڪ جي اتر ۾ دارالندوه ٺهرايو (جنهن جو دروازو مسجد طرف هو) دارالندوه اصل ۾ قريش جي پارليامينٽ هئي. جتي وڏن ۽ اهم معاملن جو فيصلو ٿيندو هو. قريش تي دارالندوه جا وڏا احسان آهن ڇو ته اهو سندن اتحاد جو ضامن هو ۽ هتي ئي سندن منڊل مسئلا سهڻي نموني حل ٿيندا هئا. (4)

قصيءَ جي حيثيت جو اندازو هيٺين ڳالهين مان ٿئي ٿو.

1. دارالندوه جي صدارت: جتي وڏن وڏن معاملن بابت مشورا ٿيندا هئا ۽ جتي ماڻهو پنهنجن نياڻين جون شاديون به ڪندا هئا.

2. لواء: يعني جنگ جو جهنڊو قصي جي هٿن سان ڦڙڪايو ويندو هو.

3. حجابت: يعني ڪعبه الله جي حفاظت، هن جو مطلب هو ته ڪعبه الله جو دروازو قصي ئي کوليندو هو ۽ ڪعبه الله جي خدمت به پاڻ ڪندو هو ۽ ان جي چاٻي به سندس هٿ ۾ هئي.

4. سقايد (پاڻي پيارڻ): ڪن حوضن ۾ پاڻي پيري انهن ۾ ڪجهه ڪڇيون ۽ ڪشمش وجهي ان کي منو ڪيو ويندو هو. جڏهن حاجي مڪي ايندا هئا ته اهو پاڻي پيئندا هئا. (5)

5. رفاده (حاجين جي ميزباني): حاجين جي دعوت لاءِ کاڌو تيار ڪيو ويندو هو. ان مقصد لاءِ قصيءَ قريش تي هڪ خاص رقم مقرر ڪري ڇڏي هئي جيڪا حج جي ڏينهن ۾ قصيءَ وٽ جمع ڪرائبي هئي. جنهن مان هو حاجين لاءِ کاڌو تيار ڪرائيندو هو. جيڪو غريب ۽ انهن ماڻهن کي ڪارايو ويندو هو جن وٽ زادِ راه نه هوندو هو. (6)

1 - ابن هشام (123/1-124).

2 - قلب جزيره العرب (ص: 232). فتح الباري (6/633).

3 - ابن هشام (124/1-125).

4 - ايضاً (125/1) محاضرات خضري (36/1) اخبار الڪرام (ص: 152).

5 - محاضرات خضري (36/1).

6 - ابن هشام (130/1). تاريخ اليقوبي (240/1).

هي سڀ عهدا قصيءَ کي مليل هئا. قصي جو وڏو پٽ عبدالدار هو پر ان جي بدران سندس ٻيو پٽ عبدمناف، قصي جي حياتيءَ ۾ ئي عزت ۽ رتبي وارو ٿي ويو هو. ان ڪري قصي عبدالدار کي چيو ته هي ماڻهو جيتوڻيڪ شرف ۽ رتبي ۾ تو کان زور ٿي ويا آهن پر آئون به توکي انهن جهڙو ڪري رهندس. تنهن کانپوءِ قصيءَ پنهنجن سڀني عهدن ۽ اعزازن جي وصيت عبدالدار لاءِ ڪري ڇڏي. يعني دارالندوه جي رياست، خانہ کعبه جي حجابت، لواء، سقايت، ۽ رفاده وغيره. جيئن ته سندس ڪنهن به ڳالهه جي مخالفت ۽ رد نه ڪيو ويندو هو بلڪ سندس هر قدم کي سندس حياتيءَ ۾ توڙي موت کان پوءِ به بيروي لائق دين سمجهيو ويندو هو. ان ڪري سندس وفات بعد پٽن بنا ڪنهن جهيڙي جهڙي جي ان جي وصيت قائل رڪي پر جڏهن عبد مناف گذاري ويو ته سندس پٽن جو انهن عهدن لاءِ پنهنجن سوتن سان چڪتاڻ ٿي پئي. جنهن ڪري قريش ٻن گروهن ۾ ورهائجي ويا. جنگ بس چڙڻ واري هئي جو صلح جون ڪوششون ڪامياب ٿي ويون ۽ اهي عهدا پاڻ ۾ ورهائيا ويا. اهڙيءَ طرح حاجين لاءِ پاڻي جو ۽ کاڌي پيئي جو انتظام ڪرڻ بنو عبد مناف جي حصي ۾ آيو. دارالندوه جي اڳواڻي لواء ۽ ڪعبي جي سارسنپال بنو عبدالدار جي هٿ ۾ رهي. پوءِ بنو عبدمناف پنهنجن عهدن لاءِ ڪٿا وڌا ته هاشم بن عبدمناف جو نالو نڪتو. تنهن ڪري هاشم ئي سڄي زندگي حاجين کي پاڻي پيارڻ ۽ کاڌي پيئي جي انتظام جو ڪم پنهنجي هٿ ۾ رکيو. هاشم کانپوءِ ان جي ڀاءُ مطلب اهو ڪم ڪيو پر مطلب کانپوءِ سندس ڀائيئي عبدالمطلب بن هاشم، جيڪو رسول الله ﷺ جن جو ڏاڏو هو، هي عهدو سنڀاليو. کانئن پوءِ سندن اولاد سندن جانشين ٿيو. اسلام اچڻ وقت حضرت عباس بن عبدالمطلب کي اهو عهدو مليل هو.<sup>(1)</sup>

انهن کان سواءِ ڪجهه ٻيا عهدا به قريش ورهائي رکيا هئا جن جي ڪري اهي هڪ ننڍي حڪومت جو ڏيک ڏئي رهيا هئا. سندن قائل ڪيل ادارا اڄ ڪلهه جي پارليامينٽن ۽ مجلسن جهڙا هئا. انهن منصبن جو خاڪو هن طرح آهي.

1. ايسار: معنيٰ فال وجهڻ ۽ قسمت جو حال پڇڻ لاءِ بتن جي ڀرسان جيڪي تير رکيل هوندا هئا، تن جي توليت (سارسنپال) هي عهدو بنو جمح کي مليل هو.
2. پيسي ڏوڪڙ جو انتظام: يعني بتن لاءِ ڏنل نذرانن ۽ قربانين جو انتظام ڪرڻ جهيڙن ۽ مقدمن جو فيصلو ڪرڻ. هي ڪم بنو سهر کي سونپيل هو.
3. شوري: هي اعزاز بنو اسد کي حاصل هو.
4. اشناق: يعني ديت ۽ ڏنڊ جو نظام. هي منصب بنو تمير کي مليل هو.
5. عقاب: معنيٰ قومي جهنڊو سنڀالڻ. هي ڪم بنو اميه جو هو.
6. قبه: معنيٰ فوجي ڪيمپ جو انتظام شهبسوارن جي اڳواڻي هي ڪم بنو مخزوم جي حصي ۾ آيل هو.

<sup>1</sup>- ابن هشام (1/129-132، 137، 142، 178، 179).

7. سفارت: هي عهدو بنو عدي وارن جو هو. (1)

**عربستان جون ڀيون راجداريون:** اسين گذريل صفحن ۾ قحطاني ۽ عدناني قبيلن جي وطن ڇڏڻ جو ذڪر ڪري آيا آهيون ۽ ٻڌائي چڪا آهيون ته سڄو عربستان انهن قبيلن ۾ ورڇيل هو. سندن امارتن ۽ سردارين جو نقشو ڪجهه هن طرح هو ته جيڪي قبيلو حيره جي ڀرپاسي ۾ آباد هئا تن کي حيره جي هٿ هيٺ مڃيو ويو ۽ جن قبيلن شام ۾ رهائش اختيار ڪئي انهن کي غساني حڪمرانن جي هٿ هيٺ تسليم ڪيو ويو. پر اها ماتحتي نالي ماتر هئي، عملي طور تي نه هئي. انهن ٻن جڳهين کانسواءِ اندرئين عربستان ۾ رهيل قبيلو بهرحال آزاد هئا.

انهن قبيلن ۾ سرداري نظام هلندڙ هو. قبيلو پاڻ پنهنجو سردار چونڊيندا هئا، جن لاءِ سندن قبيلو راج ڀاڱ هوندو هو. سياسي وجود ۽ تحفظ جون پاڙون نسلي بنيادن تي قائم ڪرڻ لاءِ ڪي ڌرتيءَ جي حفاظت ۽ دفاع جي گڏيل مفادن ۾ ڪتل هيون.

قبيلائي سردارن جو درجو پنهنجي قوم ۾ بادشاهن جهڙو هو. قبيلو امن يا جنگ ۾ سردار جي فيصلي جي پوئواري ڪندو هو ۽ ڪنهن به حالت ۾ ان کان جدا نه ٿيندو هو. سردار کي اهو ئي آمرت ۽ ڏاڍائي جو حق حاصل هو جيڪو ڪنهن به آمر کي حاصل هوندو آهي. ايتريقدر جو ڪن سردارن جو ته اهو حال هو جو جيڪڏهن هو ڪاوڙيا هئا ته هزارين تلوارون اهو ڀڄڻ بنا مياڻ مان نڪري اينديون هيون ته سردار جي ڪاوڙ جا ڪارڻ ڪهڙا آهن؟ تنهن هوندي به جيئن ته هڪ ئي خاندانن جي سوتن ۾ سرداريءَ لاءِ ڪوششون ٿينديون رهنديون هيون ان ڪري وقت جي تقاضا اها هوندي هئي ته سردار قبيلائي عوام سان هڪجهڙو سلوڪ ڪري سخاوت ۽ مهمان نوازيءَ سان پيش اچي، مهرباني ۽ بردباري کان ڪم وٺي جيئن ماڻهن جي نظرن ۾ عام طور تي ۽ شاعرن جي نظر ۾ خاص طور تي گڻن ۽ صلاحيتن جو مجموعو بڻجي وڃي (چو ته شاعر ان دور جي زبان هوندا هئا) ۽ ان طرح سردار پنهنجن مخالفن کان مٿاهون مرتبو حاصل ڪري وٺي. سردارن جا ڪجهه خاص ۽ عليحده حق به هوندا هئا. جن کي هڪ شاعر هيئن بيان ڪيو آهي.

لَكَ الْمَرْبَاعَ فِينَا وَالصَّفَايَا \* وَحُكْمَكَ وَالنَّشِيطَةَ وَالْفُضُولَ

"اسان ۾ تنهنجي لاءِ مال غنيمت جي چوٽائي آهي جيڪو چونڊ مال آهي ۽ اهو مال آهي جنهن جو تون فيصلو ڪري وٺين ۽ جيڪو راه ويندي هٿ اچي ۽ جيڪو وڃڻ کان بچي وڃي".

مرباع: غنيمت جي مال جو چوٽون حصو.

صفايا: اهو مال جيڪو وڃڻ کان اڳ سردار پاڻ لاءِ چونڊي ڪڍي.

نشيطه: اهو مال جو اصل قوم تائين پهچڻ کان اڳ رستي ۾ سردار جي هٿ چڙهي وڃي.

فضول: اهو مال جو وڃڻ کان بچي وڃي ۽ غازين ۾ برابر ورهائجي نه سگهي مثال طور وڃڻ کان بچي

<sup>1</sup>- تاريخ ارض القرآن (104/2-105-106)، ليکن صحيح ڳالهه هيءُ آهي ته جهنڊي سنڀالڻ جو حق بنو عبدالدار کي حاصل هو. بنو اميه کي قيادت عامه يعني سپهه سالاريءَ جو حق حاصل هو.

ويل ان، گهوڙا وغيره. اهڙو سمورو مال سردار جو حق هوندو هو.

سياسي حالتون: - عربستان جي راڄن ۽ حڪمرانن جو ذڪر تي گذريو. مناسب ٿيندو ته هاڻي سندن ڪجهه سياسي حالتن جو به ذڪر ڪجي.

عربستان جا اهي ٽي سرحدي علائقا جيڪي ڌارين ملڪن جا پاڙيسري هئا تن جي سياسي حالت ڏاڍي بيچيني ۽ ڏڦير واري ۽ ڏاڍي پنٿي پيل هئي. ماڻهو، مالڪ ۽ غلام يا حاڪم ۽ محڪوم جي ٻن طبقتن ۾ ورهايل هئا. سڀ فائدا حڪمرانن، خاص طور تي ڌارين حڪمرانن کي ملندا هئا ۽ سڄو بار غلامن مٿان هو. چئن لفظن ۾ ايئن چئي سگهجي ٿو ته رعيت حقيقت ۾ هڪ ڪيتي هئي جيڪا حڪومت لاءِ محصول ۽ ڪمائيءَ جو ذريعو هئي ۽ حڪومتون ان کي لذتن، عياشين ۽ ظلم ۽ جبر لاءِ استعمال ڪنديون هيون. عوام انڌيري ۾ پنهنجا هٿ پير هڻي رهيو هو ۽ ان تي هر طرح سان ظلم جي حد تي رهي هئي پر اهي دانهن نٿي ڪري سگهيا. بلڪ ضروري هو ته اهي هر قسم جي ذلت ۽ خواري، ظلم ۽ زيادتيون سهندا رهن ۽ زبان بند رکن. ڇو ته ڏاڍ ۽ ڏهڪاءُ جو راڄ هو ۽ "انساني حق" نالي ڪنهن به شيءِ جو وجود نه هو. انهن علائقن جي پاڙي ۾ رهندڙ قبيلن مونجهاري جو شڪار هئا. انهن کي مفاد پرستيءَ ڪڏهن هيڏانهن ته ڪڏهن هوڏانهن ڏڪيندي رهندي هئي. اهي ڪڏهن عراقين سان گڏبا هئا ته ڪڏهن شامين سان ڏسبا هئا. جيڪي قبيلن عربستان جي وچ ۾ آباد هئا، اهي به چڙوچڙ هئا. هر پاسي قبيلائي جهيڙن، نسلي فسادن ۽ مذهبي اختلافن جو زور هو. جنهن ۾ هر قبيلي جا فرد هر حالت ۾ پنهنجي قبيلي جو سات ڏيندا هئا، ڀلي اهو حق تي هجي يا نا حق تي. جيئن هڪ عربي شعر آهي ته:

وما أنا الا من غزوة ان غوت، غويت، وان ترشد غزوة ارشد

"مان به ته غزبه قبيلي جو هڪ فرد آهيان. جي اهو غلط رستي تي هلندو ته مان به غلط رستي تي هلندس. جيڪڏهن اهو صحيح رستي تي هلندو ته مان به صحيح رستي تي هلندس".

عربستان ۾ ڪو به بادشاهه اهڙو نه هو جو سندن طاقت کي متحد ڪري نه ٿي ڪو اهڙو هڏ ڏوڪي هو جنهن ڏانهن مشڪلن ۽ مصيبتن ۾ واجهائي سگهجي ۽ جنهن تي ضرورت وقت ڀروسو ڪري سگهجي. البتہ حجاز جي حڪومت کي عزت ۽ احترام سان ڏسبو هو ۽ ان کي مذهبي اڳواڻ ۽ نگهبان تصور ڪيو هو. اها حڪومت حقيقت ۾ دنياڻي قيادت ۽ ديني اڳواڻيءَ جو مجموعو هئي. جنهن کي عربستان جي رهواسين تي ديني اڳواڻيءَ جي نالي سان سڃاتي حاصل هئي. حرم ۽ ان جي پرياسي ۾ ان جي باقاعدي حڪومت هئي. اها ئي ڪعبي جي زيارت ڪندڙن جي ضرورتن جو خيال رکندي هئي ۽ ابراهيم عليه السلام جي شريعت کي لاڳو ڪندي هئي ۽ ان وٽ ئي پارلياماني ادارن جهڙا ادارا به هئا پر هيءَ حڪومت ايڏي ڪمزور هئي جو عربستان جي اندر به پنهنجون ذميواريون پوريون ڪرڻ جي طاقت نه رکندي هئي، جيئن حبشين جي حملي وقت ظاهر ٿيو.

\* \* \*

## عربستان جا مذهب

عربستان جا عام رهواسي حضرت اسماعيل عليه السلام جي دعوت ۽ تبليغ جي نتيجي ۾ حضرت ابراهيم عليه السلام جي دين تي هلندا هئا، ان ڪري رڳو الله جي عبادت ڪندا هئا ۽ الله جي هيڪڙائيءَ کي مڃيندا هئا. پر وقت گذرڻ سان گڏ انهن خدائي نصيحتن ۽ سبقن جو هڪ حصو وساري ڇڏيو. پوءِ به انهن جي اندر توحيد ۽ ڪجهه حضرت ابراهيم عليه السلام جي دين جا شعائر بچيل هئا. تان ته بنو خزاعه جو سردار عمرو بن لُحي منظر عام تي آيو. سندس پالنا نيڪي، صدقن، خيراتن ۽ ديني ڪمن سان دلچسپيءَ واري ماحول ۾ ٿي هئي، ان ڪري ماڻهو ساڻس محبت ڪندا هئا ۽ کيس وڏن عالمن ۽ اوليائن مان سمجهي سندس پيروي ڪندا هئا. ان شام جو سفر ڪيو ۽ ڏٺو ته اتي بتن جي پوڄا ٿئي ٿي. کيس ان ۾ به چڱائي ۽ سچ نظر آيو، ڇو ته شام جي سرزمين پيغمبرن جي ڌرتي ۽ آسماني ڪتاب لهڻ جي جڳهه هئي. تنهن ڪري هو پاڻ سان گڏ "هبل" نالي بت کڻي آيو ۽ ان کي ڪعبي ۾ لڳائي مڪي وارن کي الله سان بيائي ڪرڻ جي دعوت ڏنائين. مڪي وارن سندس ڳالهه مڃي، ان کانپوءِ جلد ئي حجاز جا رهواسي به مڪي وارن جي پيرويءَ ۾ لڳي ويا. ڇو ته اهي بيت الله جا سنڀاليندڙ ۽ پاڪ سرزمين جا رهواسي هئا. (1) اهڙي طرح عربستان ۾ بت پرستيءَ جي شروعات ٿي.

هبل کان علاوه عربن جي پراڻن بتن مان منات به آهي. هي هُذيل ۽ خزاعه جو بت هو. ڳاڙهي سمنڊ جي ڪناري تي قُديد جي ويجهو مشلل ۾ نصب هو. (2) مشلل هڪ جابلو گهاٽي آهي جنهن مان لنگهي قُديد ڏانهن وڃبو آهي. ان کانپوءِ طائف ۾ لات نالي بت وجود ۾ آيو. پوءِ نخله جي ماڻريءَ ۾ ذات عرق کان مٿان عزى کي نصب ڪيو ويو. هي قريش، بنو ڪنانه ۽ ٻين به ڪيترن ئي قبيلن جو بت هو. اهي ٽئي عربستان جا سڀ کان وڏا بت هئا. ان کانپوءِ سڄي حجاز ۾ شرڪ جي واڌ ۽ بتن جي گهڻائي ٿي وئي. چيو وڃي ٿو ته هڪ جن عمرو بن لُحي جي چئي ۾ هو. ان ٻڌايو ته نوح عليه السلام جي قوم جا بت يعني ود، سواع، يغوث، يعوق ۽ نسر، جدي ۾ پوريل آهن. جنهن تي عمرو بن لُحي جدي وڃي اهي بت کوٽي ڪڍيا ۽ تهامه کڻي آيو ۽ حج جي ڏينهن ۾ انهن کي مختلف قبيلن جي حوالي ڪيو. اهي قبيلن انهن بتن کي پنهنجن پنهنجن علائقن ۾ کڻي ويا. [جهڙوڪ ”ود“ بنو ڪلب وارا کڻي ويا ۽ ان کي عراق جي ويجهو شام جي سر زمين تي دومة الجندل جي علائقي ۾ جرش جي هنڌ تي نصب ڪيو ويو. ”سواع“ کي هذيل بن مدرڪه وارا کڻي ويا. ۽ ان کي سمنڊ جي ڪناري تي

<sup>1</sup> - مختصر سيرت الرسول - محمد بن عبدالوهاب (ص: 12).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري 1/222.

رباط جي جاء تي نصب ڪيو ”يعوث“ کي بنو مراد جو قبيلو بنو غطيف ڪڍي ويو ۽ سبا جي علائقي ۾ جرف جي مقام تي نصب ڪيو. ”يعوق“ کي بنو همدان وارا ڪڍي ويا ۽ ان کي يمن جي هڪ ڳوٺ خيوان ۾ نصب ڪيو. خيوان اصل ۾ قبيلي همدان جي هڪ شاخ آهي. ”نسر“ کي حمير قبيلي جي هڪ شاخ آل ذي الكلاع وارا ڪڍي ويا ۽ ان کي حمير جي علائقي ۾ نصب ڪيائون. (1) ان کان پوءِ عربن انهن بتن جا آستانا ٺاهيا جن کي ڪعبة الله جهڙي عزت ڏني ويندي هئي ۽ انهن آستانن تي مجاور ۽ خدمت گذار به مقرر ڪيا ۽ ڪعبي وانگر انهن آستانن لاءِ سوکڙيون ۽ نذرانه پيش ڪندا هئا، جيتوڻيڪ ڪعبة الله کي انهن کان افضل سمجهندا هئا (2) ان کان پوءِ ٻين قبيلن به انهن جي پيروي ڪئي ۽ پنهنجي لاءِ بت ۽ آستانا ٺاهيا. جهڙوڪ دوس، خشعر، ۽ بجيله قبيلن مڪي ۽ يمن جي وچ ۾ يمن جي سر زمين ۾ تباله جي مقام تي ذوالخلفه نالي بت ۽ بتخانو تعمير ڪيو. بنوطي ۽ ان جي آسپاس وارن آجا ۽ سلمى نالي بنوطي جي ٻن ٽڪرين جي وچ ۾ فلس نالي بت کي نصب ڪيو. يمن ۽ حمير وارن صنعاءَ ۾ ريام نالي بت ۽ آستانو تعمير ڪيو. بنو تميم جي شاخ بنو ربيع بن ڪعب، رضاءَ نالي بت خانو بنايو ۽ بڪر، تغلب ۽ اباد وارن وري سنداد ۾ عبادتگاهون تعمير ڪرايون. (3) دوس قبيلي جي بت کي ذوالڪفين سڏبو هو. بڪر و مالڪ ۽ مالڪان ابنا ڪنانه جي قبيلن جو هڪ بت ”سعد“ سڏبو هو. بنو عذره جي هڪ بت کي شمس چيو ويندو هو. (4) خولان جي هڪ بت جو نالو عميانس هو (5) مطلب ته اهڙيءَ طرح پوري عربستان ۾ چؤطرف بت ۽ بت خانا کلي ويا. ايتري قدر جو پوءِ هر هڪ قبيلي ۽ هر هڪ گهر ۾ هڪ هڪ بت اچي ويو.

مشرڪن مسجد الحرام کي به بتن سان ڀري ڇڏيو. جڏهن رسول الله ﷺ مڪو فتح ڪيو ته ڪعبة الله جي چوڌاري تي سوئ سن بت هئا. جيڪي رسول الله ﷺ جن پنهنجن مبارڪ هٿن سان توڙيا. پاڻ سڳورا ﷺ هر هڪ بت کي لٽ هڻندا ويا ۽ بت ڪرندا ويا. پوءِ پاڻ سڳورن حڪم ڏنو ته انهن سڀني بتن کي مسجد الحرام مان ٻاهر ڪڍي ساڙيو وڃي. (6)

[ان کان علاوه ڪعبة الله ۾ به بت ۽ تصويرون رکيل هيون هڪ بت حضرت ابراهيم عليه السلام ۽ هڪ بت حضرت اسماعيل عليه السلام جو همشڪل ٺاهيل هو ۽ ٻنهي جي هٿن ۾ فال گيري جا تير هئا، مڪي جي فتح واري ڏينهن اهي بت به ڀڳا ويا ۽ اهي تصويرون به مڃيون ويون.

1 - صحيح البخاري 4920، المنق لمحمد بن حبيب (ص: 327، 328)، كتاب الاصلان (ص: 9، 11، 56، 58).

2 - سيرة ابن هشام 1 / 83.

3 - سيرة ابن هشام 1 / 78، 89، تفسير ابن كثير، سورة نوح جي تفسير ۾.

4 - تاريخ يعقوبي 1 / 255.

5 - سيرة ابن هشام 1 / 80.

6 - مختصر سيرت الرسول عبدالوهاب ص 13، 50-51-52 / صحيح بخاري حديث نمبر 1610

ماڻهن جي گمراهي ان تي ختم نه ٿي هئي بلڪ ابورجاءِ عطاردي رحمۃ اللہ علیہ جو بيان آهي ته اسين پٿرن جا پوڄاري هئاسين جڏهن پهرين کان ڪو سٺو پٿر ملي ويندو هو ته پهرئين پٿر کي اڇلائي ان کي پوڄڻ شروع ڪندا هئاسين پٿر نه ملڻ جي صورت ۾ مٽيءَ جو هڪ ننڍو ڍڪ ٺاهي ان تي بڪري ڏوهندا هئاسين ۽ ان کان پوءِ ان جو طواف ڪندا هئاسين.]

مطلب ته شرڪ ۽ بت پرستي انهن جاهلن جي دين جي سڃاڻپ بنجي چڪي هئي. جن کي وڏائي هئي ته هو حضرت ابراهيم عليه السلام جي دين تي آهن.

[باقي رهي اها ڳالهه ته انهن ۾ شرڪ ۽ بت پرستي جو خيال ڪيئن پيدا ٿيو؟ ان جو بنياد اهو هو ته جڏهن انهن ڏٺو ته ملائڪه، پيغمبر، انبياء، اولياء، متقي، ۽ نيڪ ڪم ڪرڻ وارا الله تعاليٰ جا انتهائي ويجهڙا ٺاهيا آهن الله تعاليٰ وٽ انهن جو وڏو مرتبو آهي انهن جي هٿن تي معجزا ۽ ڪرامتون ظاهر ٿين ٿيون. تڏهن انهن سمجهيو ته الله تعاليٰ پنهنجن انهن نيڪ ٺاهڻن کي ڪجهه اهڙن ڪمن تي قدرت ۽ تصرف جو اختيار ڏنو آهي جيڪي الله تعاليٰ لاءِ خاص آهن اهي ماڻهو پنهنجي ان تصرف ۽ الله تعاليٰ وٽ سندن قدر ۽ منزلت جي ڪري انهيءَ ڳالهه جي قابل آهن ته الله تعاليٰ ۽ سندن عام ٺاهڻن جي وچ ۾ وسيلو ۽ واسطو بنجن. ان ڪري مناسب نه آهي ته ڪو به ماڻهو الله تعاليٰ کي پنهنجي حاجت انهن جي وسيلي کان سواءِ پيش ڪري ڇو ته هي ماڻهو الله تعاليٰ وٽ سفارش ڪندا ۽ الله تعاليٰ سندن مان ۽ مرتبي جي ڪري سندن سفارش رد نه ڪندو. ان طرح اهو به مناسب نه آهي ته ڪو به ماڻهو ان جي وسيلي کان سواءِ الله تعاليٰ جي عبادت ڪري، ڇو ته اهي ماڻهو پنهنجي مرتبي جي ڪري ان کي الله تعاليٰ جي ويجهو ڪري ڇڏيندا. جڏهن ان خيال پاڙون پڪڙيون ۽ ماڻهن ۾ اهو عقيدو راسخ ٿي ويو ته انهن فرشتن، پيغمبرن ۽ اوليائن وغيره کي پنهنجو ولي بنائي ورتو ۽ انهن کي پنهنجي ۽ الله تعاليٰ جي وچ ۾ وسيلو بنائي ورتو ۽ سندن خيال مطابق جن ذريعن سان انهن جو تقرب حاصل ٿي سگهيو ٿي انهن کي حاصل ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي ۽ انهن جي حقيقي يا خيالي صورت مطابق مورتيون ۽ مجسما گهڙيا ويا ۽ انهن ئي مجسن کي بت چيو ويو. انهن مان ڪيترائي بت اهڙا به هئا جن جا مجسما ئي نه ٺاهيا ويا. بلڪ انهن جي قبرن، مزارن، قيام گاهن، (ويهڻ جي جاين) ترسڻ ۽ آرام گاهه کي مقدس مقام قرار ڏنو ويو ۽ انهن تي نذر و نياز ڏيڻ شروع ٿيڻ لڳو. ۽ انهن جي سامهون جهڪڻ، عاجزي ۽ اطاعت جا ڪم ٿيڻ لڳا انهن مزارن، قبرن، آرامگاهن، ۽ قيام گاهه کي عربيءَ ۾ ”اوثان“ چيو وڃي ٿو، جيڪي تقريباً بت جي هر معنيٰ آهن ۽ اسان جي زبان ۾ ان لاءِ درگاهه، زيارت، دربار، سرڪار وغيره جا لفظ استعمال ڪيا وڃن ٿا.]

انهن جاهلن ۾ بت پرستي جا ڪجهه خاص طريقا ۽ رسمون به رائج هيون جيڪي گهڻو ڪري عمرو بن لحي جون ٺاهيل هيون. اهي جاهل عمرو بن لحي جي ٺاهيل رسمن کي ابراهيم عليه السلام جي دين ۾ تبديلي نه پر بدعت حسنه سمجهندا هئا. هيٺ انهن رسمن مان ڪن جو ذڪر ڪجي ٿو.

1. جاهليت واري دور ۾ مشرڪ. بتن وٽ مجاور بڻجي ويهندا هئا ۽ انهن جي پناهه ڳولهيوندا هئا. انهن کي زور سان سڏيندا هئا ۽ پنهنجون ضرورتون پوريون ڪرڻ، مشڪلون آسان ڪرڻ لاءِ انهن کي فرياد ۽ التجائون ڪندا هئا ۽ سمجهندا هئا ته اهي الله کان سفارش ڪري سندن مرادون پوريون ڪرائيندا.

2. بتن جو حج ۽ طواف ڪندا هئا. انهن جي سامهون نوڙت ۽ انڪساري سان پيش ايندا هئا ۽ انهن کي سجدو ڪندا هئا.

3. بتن لاءِ نذرانا ۽ قربانيون پيش ڪندا هئا. قرباني جي انهن جانورن کي ڪڏهن بتن جي آستانن تي وڃي ڪهندا هئا ۽ ڪڏهن ڪٿي به ذبح ڪندا هئا پر بتن جي نالي تي ذبح ڪندا هئا. قربانيءَ جي انهن ٻنهي طريقن جو ذڪر قرآن مجيد ۾ هن طرح ڪيل آهي.

﴿وَمَا ذَبَحْ عَلَى النَّصَبِ (3)﴾ (المائدة) يعني ”اهي جانور به حرام آهن جيڪي آستانن تي ڪنا وڃن ٿا“.

بي جاءِ تي چيل آهي ته ﴿وَلَا تَأْكُلُوا مِمَّا نَمَّ يَذْكُرَ اسْمَ اللَّهِ عَلَيْهِ (121)﴾ (الانعام) يعني ”ان جانور جو گوشت نه کائو جنهن تي الله جو نالو نه ورتل هجي“

4. بتن سان ويجهڙائي جو هڪ طريقو هي به هو ته مشرڪ پنهنجي مرضيءَ سان کائڻ پيئڻ جون شيون ۽ پني ۽ چوپائي مال جي پيداوار جو هڪ حصو بتن لاءِ مخصوص ڪري ڇڏيندا هئا. ان سلسلي ۾ دلچسپ رواج هي هو ته هو الله لاءِ به پنهنجي ڪيتي ۽ جانورن جي پيداوار جو هڪ حصو مقرر ڪندا هئا پر پوءِ مختلف سببن ڪري الله جو حصو ته بتن ڏانهن منتقل ڪري سگهندا هئا باقي بتن جو حصو ڪنهن به حال ۾ الله ڏانهن منتقل نه ڪندا هئا. الله تعاليٰ فرمايو آهي ته ﴿وَجَعَلُوا لِلَّهِ مِمَّا ذَرَأَ مِنَ الْحَرْثِ وَالْأَنْعَامِ نَصِيبًا فَقَالُوا هَذَا لِلَّهِ بِرِعْمِهِمْ وَهَذَا لِشُرَكَائِنَا فَمَا كَانَ لِشُرَكَائِهِمْ فَلَا يَصِلُ إِلَى اللَّهِ وَمَا كَانَ لِلَّهِ فَهُوَ يَصِلُ إِلَى شُرَكَائِهِمْ سَاءَ مَا يَحْكُمُونَ (136)﴾ (الانعام)

”الله جيڪي ڪيتي ۽ چوپايا پيدا ڪيا آهن تن جو هڪ حصو انهن الله لاءِ مقرر ڪيو ۽ چيو ته هي الله لاءِ آهي. - انهن جي خيال ۾- ۽ هي اسان جي شريڪن لاءِ آهي. سو جيڪو سندن شريڪن لاءِ هوندو آهي اهو الله تائين نٿو پهچي (پر) جيڪو الله لاءِ هوندو آهي اهو سندن شريڪن کي پهچي ويندو آهي. ڪيڏو نه برو فيصلو آهي (اهو فيصلو) جيڪو هي ماڻهو ڪن ٿا“.

5. بتن سان ويجهڙائي جو هڪ طريقو اهو به هو ته اهي مشرڪ. پنهنجي فصل ۽ چوپائي مال ۾



مختلف قسمن جون منتون مڃيندا هئا. الله تعاليٰ فرمائي ٿو ته ﴿وَقَالُوا هَذِهِ أَنْعَامٌ وَّحَرَّتْ حَجْرٌ لَّا يَطْعُمُهَا إِلَّا مَنْ نَشَاءَ بَرَعْمِهِمْ وَأَنْعَامٌ حُرِّمَتْ ظُهُورُهَا وَأَنْعَامٌ لَّا يَذْكُرُونَ اسْمَ اللَّهِ عَلَيْهَا افْتِرَاءٌ عَلَيْهِ (138)﴾ (الانعام)

"انهن مشرڪن چيو ته هي چوپايا ۽ بنيون منع ٿيل آهن. انهن کي اهو ئي ڪاٿي سگهندو جنهن کي اسين چاهينداسين. - سندن خيال ۾- ۽ هي اهي چوپايا آهن جن جي پٺ حرام ڪئي وئي آهي. نه تن تي سواري ڪري سگهجي ٿي ۽ نه سامان ڍوئي سگهجي ٿو ۽ ڪي چوپايا اهڙا آهن جن تي هي ماڻهو الله تي افتراءِ ڪندي الله جو نالو نٿا وٺن."

6. انهن جانورن ۾ بحيره، سائب، وصيل ۽ حامي هئا. حضرت سعيد بن مسيب جو بيان آهي ته بحيره: اهو جانور آهي جنهن جو کير بتن لاءِ مخصوص ڪيو ويندو هو ۽ ان کي ڪو به ڏوهندو نه هو.

سائب: اهو جانور آهي جنهن کي پنهنجي معبودن جي نالي تي چوڙيو ويندو هو جنهن تي ڪو به بار وغيره نه ڍوئيندو هو.

وصيل: انهيءَ جوان ڏاچي کي چيو ويندو هو جيڪا پهرين پيٽ تي مادي کي جنم ڏيندي هئي ۽ ٻي پيٽ تي به مادي ئي ڄڻدي هئي انهي ڪري ان کي بتن جي نالي تي ان ڪري ڇڏيو ويندو هو جو ان هڪ مادي کان پوءِ لڳاتار مادي کي ڄڻيو پنهي جي وچ ۾ ڪو به نر بچو نه ڄڻائين.

حامي: ان نر اٺ کي چوندا هئا، جيڪو ڳٽيل ڏاچين (ڏهن ڏاچين) سان جماع ڪندو هو ۽ جڏهن سڀني کي مادي بچو پيدا ٿيندو هو ته ان کي بتن جي نالي تي چوڙي ڇڏيندا هئا ان تان بار برداري معاف ٿي ويندي هئي ان تي ڪوبه سامان نه رکيو ويندو هو. ان کي حامي چوندا هئا. ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته بحيره، سائب جي ٻچيءَ کي چيو ويندو هو ۽ سائب ان ڏاچيءَ کي چيو ويندو آهي جنهن مان لڳاتار ڏهه ڀيرا مادي ڦر پيدا ٿين. وچ ۾ ڪو به نر نه پيدا ٿئي. اهڙي ڏاچيءَ کي آزاد ڇڏي ڏيندا هئا. ان تي سواري نه ٿيندي هئي. ان جا وار نه ڪتبا هئا ۽ مهمانن کانسواءِ کير به انهيءَ جو کير نه پيئندو هو. ان بعد اهڙي ڏاچي جيڪي مادي ڦر ڄڻندي هئي تن جا ڪن چيريا ويندا هئا ۽ ان کي به ماءُ سان گڏ آزاد ڇڏي ڏنو هو. ان تي سواري نه ڪبي هئي. ان جا وار نه ڪتبا هئا ۽ مهمانن کانسواءِ کير به سندس کير نه پيئندو هو. ان کي بحيره ۽ سندس ماءُ کي سائب سڏبو هو.

وصيل ان ٻڪريءَ کي چئبو هو جيڪا پنجن پيرن ۾ لڳاتار ٻه ٻه چيلون ڄڻي (يعني پنجن پيرن ۾ ڏهه چيلون) وچ ۾ ڪو به چيلو نه هجي. ان ٻڪريءَ کي وصيل ان ڪري چئبو هو جو اها سڀني چيلين کي هڪ ٻئي سان ڳنڍي ڇڏيندي هئي. ان بعد ان ٻڪريءَ مان جيڪي ٻچا پيدا ٿيندا هئا. اهي صرف مرد ڪاٿي سگهندا هئا عورتون نه. البته جيڪڏهن ڪو مئل ٻار ڄمي ته ان کي عورتون ۽ مرد سڀ ڪاٿي سگهندا هئا.

حامي ان نراڻ کي چوندا هئا جنهن جي لڳ سان لڳاتار ڏهه ماديون پيدا ٿين وڃن ۽ ڪو به نر نه ڄمي. اهڙي ڀڻ جي حفاظت ڪبي هئي، نه ان تي چڙهيو هو ۽ نه ان جا وار ڪٽيا هئا. باقي ان کي انن جي ڌڻ ۾ لڳ لاءِ آزاد ڇڏي ڏنو هو ۽ ان کان پيو ڪو به ڪم نه وٺيو هو. جاهليت جي دور جي بت پرستيءَ جي انهن طريقن جي ترديد ڪندي الله تعاليٰ فرمايو:

﴿مَا جَعَلَ اللَّهُ مِنْ بَحِيرَةٍ وَلَا سَائِبَةٍ وَلَا وَصِيلَةٍ وَلَا حَامٍ وَلَكِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا يَفْتَرُونَ عَلَى اللَّهِ الْكَذِبَ وَأَكْثَرُهُمْ لَا يَعْقِلُونَ﴾ (103) (المائدة)

"الله نه ڪا ئي بحيره، نه ڪا ئي سائبه، نه ڪا ئي وصيله نه ڪو ئي حامي ٺاهيو آهي، پر جن ماڻهن ڪفر ڪيو آهي الله تي ڪوڙ گهڙين ٿا ۽ انهن مان اڪثر عقل نٿا رکن."

بي جڳهه تي چيو:

﴿وَقَالُوا مَا فِي بُطُونِ هَذِهِ الْأَنْعَامِ خَالِصَةٌ لِلذُّكُورِ نَا وَمُحَرَّمٌ عَلَىٰ أَرْوَاجِنَا وَإِنْ يَكُنْ مِيتَةً فَهُمْ فِيهِ شُرَكَاءَ﴾ (139) (الانعام)

"انهن (مشرڪن) چيو ته انهن چوپاين جي پيٽ ۾ جيڪي ڪجهه آهي، رڳو اسان جي مردن لاءِ آهي ۽ اسان جن عورتن تي حرام آهي. باقي جي اهو مثل هجي ته ان ۾ مرد ۽ عورتون سڀ شريڪ آهن."

چوپاين جي ذڪر ڪيل قسمن يعني بحيره، سائبه وغيره جا ٻيا مطلب به ٻڌايا ويا آهن (1)

جيڪي ابن اسحاق جي تفسير کان ڪافي مختلف آهن.

حضرت سعيد بن مسيب رضي الله عنه جو بيان آهي ته اهي جانور انهن جي طاغوتن لاءِ هئا. (2)

صحيح بخاريءَ ۾ مرفوعا روايت آهي ته عمرو بن لحي پهريون ماڻهو هو جنهن بتن جي نالي تي جانور ڇڏيا. (3)

عرب پنهنجن بتن سان اهو سڀ ان عقيدتي تحت ڪندا هئا ته اهي بت کين الله جي ويجهو ڪندا ۽ الله آڏو سندن سفارش ڪندا. جيئن قرآن مجيد ۾ ٻڌايل آهي ته مشرڪ چوندا هئا.

﴿مَا نَعْبُدُهُمْ إِلَّا لِيُقَرِّبُونَا إِلَى اللَّهِ زُلْفَىٰ﴾ (3) (الزمر)

"اسين انهن جي عبادت رڳو ان لاءِ ڪندا آهيون جيئن اهي اسان کي خدا جي ويجهو ڪن."

﴿وَيَعْبُدُونَ مِنْ دُونِ اللَّهِ مَا لَا يَنْفَعُهُمْ وَلَا يَنْصُرُهُمْ وَيَقُولُونَ هَؤُلَاءِ شُفَعَاؤُنَا عِنْدَ اللَّهِ﴾ (18) (يونس)

"اهي مشرڪ الله کان سواءِ انهن جي عبادت ڪن ٿا جيڪي کين نه فائدو ڏئي سگهن ٿا نه نقصان ۽ چون ٿا ته اهي الله وٽ اسان جا سفارشي آهن."

عربستان جا مشرڪ ازلام يعني فال جا تير به استعمال ڪندا هئا. (ازللام، زلم جو جمع

1 - سيرت ابن هشام (1/89-90).

2 - صحيح بخاري (1/499).

3 - صحيح بخاري (1/499).

آهي ۽ زلم ان تير کي چئجي ٿو جنهن ۾ پَر لڳل نه هجن). فال لاءِ ڪتب ايندڙ اهي تير تن قسمن جا هوندا هئا. هڪڙا اهي جن تي رڳو "ها" يا "نه" لکيل هوندو هو. هن طرح جا تير سفر يا نڪاح وغيره ۾ استعمال ٿيندا هئا. جيڪڏهن فال ۾ "ها" نڪرندو هو ته گهريل ڪم ڪندا هئا ۽ جيڪڏهن "نه" نڪرندو هو ته سال لاءِ ان ڪم جي پڇاڙ ڇڏي ڏيندا هئا ۽ ٻيهر پوءِ فال ڪڍي ويندي هئي.

فال گيري جي تيرن جو ٻيو قسم اهو هو جن تي پاڻي يا ديت وغيره لکيل هوندو هو ۽ ٽئين قسم جا تير اهي هئا جن تي لکيل هوندو هو ته "توهان مان آهي" يا "توهان کان ڌار آهي" يا "ملحق" آهي. انهن تيرن جو ڪم اهو هوندو هو جو جنهن جي نسب ۾ شڪ هوندو هو ته ان کي هڪ سئو اٺن سان هٻل وٺ وٺي ايندا هئا. انن کي تير سنڀاليندڙ جي حوالي ڪندا هئا. اهو سڀني تيرن کي گڏ وڃڻ ڪري هڪ تير ڪڍندو هو. هاڻي جي نڪرندو هو ته "توهان مان آهي" ته اهو سندن قبيلي جو معزز ماڻهو ليکبو هو ۽ جي "توهان کان ڌار آهي" نڪرندو هو ته حليف سمجهيو ويندو هو ۽ جي "ملحق" نڪرندو هو ته ان جي پنهنجي حيثيت برقرار رهندي هئي. کيس نه قبيلي جو فرد سمجهيو هو نه حليف.<sup>(1)</sup>

ان سان ملندڙ جلندڙ هڪ رواج مشرڪن ۾ جوا ڪيڏڻ ۽ جوا جا تير استعمال ڪرڻ جو به هو. ان تير جي ڏسڻ تي اهي اٺ ڪهي ان جو گوشت ورهائيندا هئا.<sup>(2)</sup>

عربستان جا مشرڪ ڪاهنن، عرفان ۽ نجومين جي خبرن تي به ايمان رکندا هئا. ڪاهن ان کي چوندا آهن جيڪو ايندڙ واقعن جي اڳڪٿي ڪري ۽ رازن جي ڄاڻ هجڻ جو دعويٰ ڏئي ٿو. ڪاهن جي دعويٰ هئي ته هڪ جن سندن تابع آهي جو انهن کي خبر پهچائيندو آهي ۽ ڪي ڪاهن چوندا هئا ته کين اهڙي سمجهه عطا ٿيل آهي، جنهن جي ذريعي اهي ڳجهه ڄاڻي وٺن ٿا. ڪي هن ڳالهه جا دعويٰ ڏيندا هئا ته جيڪو ماڻهو کانئن ڪجهه پڇڻ اچي ٿو، تنهن جي ڳالهه ۽ عمل مان يا سندس ڏيک مان، ڪن نشانين ۽ سببن وسيلي اهي جاءِ واردات جي ڄاڻ حاصل ڪري وٺن ٿا. اهڙن ماڻهن کي عرفان چئبو هو. معنيٰ اهو ماڻهو جيڪو چوريءَ جي مال، چوريءَ جي جاءِ ۽ وڃايل جانور جو ڏس ٻڌائي سگهي. نجومی اهو آهي جيڪو تارن تي ڌيان ڏئي انهن جي رفتار ۽ وقت جو ڪاٿو لڳائي سمجهي وڃي ته دنيا ۾ آئنده ڇا ڇا ٿيندو.<sup>(3)</sup> انهن نجومين جي خبرن کي مڃڻ دراصل تارن تي ايمان آڻڻ آهي ۽ تارن تي ايمان آڻڻ جي هڪ صورت هي به هئي ته عربستان جا مشرڪ نڪتن تي ايمان رکندا هئا ۽ چوندا هئا ته اسان تي فلاڻي فلاڻي نڪت کان مينهن وٺو آهي.<sup>(4)</sup>

<sup>1</sup> - محاضرات خضري (56/1)، ابن هشام (102-103)، فتح الباري (277/8).

<sup>2</sup> - ان جو طريقو اهو هوندو هو ته جوا ڪيڏندڙ هڪ اٺ ڪهي ان جا ڏهه يا اٺاويهه حصا ڪندا هئا. پوءِ تيرن سان قرع اندازي ڪندا هئا، ڪنهن تي ڪٿڻ جو نشان هوندو هو ۽ ڪو تير بي نشان هوندو هو. جنهن جي نالي تي ڪٿڻ واري نشان وارو تير نڪرندو هو سو ته ڪٿيندڙ ليکبو هو ۽ پنهنجو حصو وٺندو هو ۽ جنهن جي نالي خالي تير نڪرندو هو سو ان جي قيمت ڀريندو هو.

<sup>3</sup> - مرعاة المفاتيح شرح مشڪوة المصابيح (3-2/2).

<sup>4</sup> - صحيح بخاري حديث نمبر (846، 1038، 1447، 7503) ڏسو صحيح مسلم مع شرح نووي: (95/1).

مشرڪن ۾ بدسوٽيءَ جو به رواج هو، جنهن کي عربي ۾ طيره چون ٿا. ان جو طريقو هيئن هو جو مشرڪ ڪنهن جهرڪي يا هرڙ جي ويجهو وڃي ان کي پڇائيندا هئا. پوءِ جي اها ساڃي پاسي پڇي ته چڱائي ۽ ڪاميابيءَ جي علامت سمجهي پنهنجو ڪم ڪندا هئا ۽ جي ڪا به پاسي پڇي ته ان کي نپاڳ جي نشاني سمجهي پنهنجي ڪم کان پاسو ڪندا هئا. ان طرح جيڪڏهن ڪا جهرڪي يا جانور رستو ڪٽيندو هو ته ان کي به نپاڳو سمجهندا هئا.

ان سان ملندڙ جلندڙ هڪ حرڪت هي به هئي ته مشرڪ، سهي جي گوڏي جي هڏي لٽڪائيندا هئا ۽ ڪن ڏينهن، مهينن، جانورن، گهرن ۽ عورتن کي به منحوس سمجهندا هئا. بيمارين جي وچڙڙ جا قائل هئا ۽ روح بابت چيو ٿي وڃڻ جو عقيدو رکندا هئا. يعني سندن عقيدو هو ته جيسين مقتول جو بدلو نه وڃي تيس تائين کيس سڪ نه ملندو ۽ ان جو روح چيو بڻجي رڻ پٽ ۾ ڦرندو رهندو ۽ ”اُج اُج يا مون کي پياريو مون کي پياريو“ جي صدا هڻندو رهندو. جڏهن سندس بدلو وڃي ٿو ته کيس سڪون مليو وڃي.<sup>(1)</sup>

\* \* \*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (2/851-857) مع شروح.

## حضرت ابراهيم جي دين ۾ قريشن جون بدعتون

اهي هئا جاهلن جا عقيدا ۽ عمل. ان سان گڏ انهن ۾ حضرت ابراهيم عليه السلام جي دين جون ڪجهه ڳالهيون بچيل هيون. مطلب ته انهن، ان دين کي پوريءَ طرح ڇڏيو ڪونه هو. جيئن اهي ڪعبي جي عزت ۽ ان جو طواف ڪندا هئا، حج ۽ عمرو ڪندا هئا، عرفات ۽ مزدلفه ۾ رهندا هئا ۽ هديي جي جانورن جي قرباني ڪندا هئا. باقي انهن هن دين ۾ ڪجهه بدعتون ضرور شامل ڪري ڇڏيون هيون. جهڙوڪ:

1. قريشن جي هڪ بدعت اها هئي جو اهي چوندا هئا ته اسين حضرت ابراهيم عليه السلام جو اولاد آهيون، حرم جا سنڀاليندڙ، بيت الله جا مالڪ ۽ مڪي جا رهواسي آهيون. ڪير به اسان جهڙو نه آهي ۽ نه ڪنهن جا حق اسانجي حقن جهڙا آهن. انڪري ئي پنهنجا نالا حمس (بهادر ۽ گرم جوش) رکندا هئا. تنهن ڪري اسان کي نٿو جڳائي ته حرم کان ٻاهر وڃون. تنهن ڪري حج دوران اهي عرفات به ڪونه ويندا هئا نه ئي اتي افاضو ڪندا هئا. بلڪ مزدلفه ۾ رهي اتي ئي افاضو ڪري ڇڏيندا هئا. الله تعاليٰ سندن بدعت جي اصلاح ڪندي فرمايو ته: ﴿ثُمَّ أَفِضُوا مِنْ حَيْثُ أَفَاضَ النَّاسُ﴾ (البقرة) يعني ”توهان به اتان کان افاضو ڪريو، جتان ٻيا ماڻهو ڪن ٿا“ (1)

2. سندن هڪ بدعت اها هئي جو چوندا هئا ته حمس (قريش) لاءِ احرام جي حالت ۾ پٺير ۽ گيهه ٺاهڻ صحيح نه آهي، نه ئي ڪمبل واري خيمي ۾ رهڻ صحيح آهي ۽ نه اهو نيك آهي ته چمڙي جي خيمي کانسواءِ ٻيءَ ڪنهن شيءِ جي ساڻي هيٺ رهجي. (2)

3. سندن هڪ بدعت اها به هئي جو اهي چوندا هئا ته حرم کان ٻاهر جا رهاڪو حج ۽ عمره تي اچن ته پاڻ سان ڪاڻڻ جي ڪا شيءِ کڻي اچن ته اها سندن لاءِ ڪاڻڻ حرام آهي. (3)

هڪ بدعت اها به هئي ته انهن حرم کان ٻاهر جي رهواسين کي حڪم ڏنو هو ته اهي پهريون طواف حمس (قريشن) کان ورتل ڪپڙن ۾ ڪن. جيڪڏهن انهن جو ڪپڙو نه ملندو هو ته مرد اڳهاڙا طواف ڪندا هئا ۽ مايون پنهنجا سڀ ڪپڙا لاهي رڳو هڪ ننڍڙو کليل ڇولو پائينديون

1 - ابن هشام (199/1)، صحيح بخاري (226/1).

2 - ابن هشام (202/1).

3 - ابن هشام (202/1).

هيون ۽ ان ۾ ئي طواف ڪنديون هيون ۽ طواف جي دوران هي شعر پڙهنديون رهنديون هيون.

أَلْيَوْمَ يَدُوْهُ بَعْضُهُ أَوْ كَلُّهُ  
وَمَا بَدَأَ مِنْهُ فَلَا اِحْتُلُهُ

"اڄ توري يا سڄي شرمگاهه ڪلي ويندي پر جيڪا ڪلي وڃي مان ان کي (ڏسڻ) حلال نٿي

چاڻان."

الله تعاليٰ انهن فضول رسمن جي خاتمي لاءِ فرمايو ته: ﴿يَا بَنِي آدَمَ خُذُوا زِينَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ﴾ "اي آدم پوتا! هر مسجد وٽ پنهنجي سينگار کي اختيار ڪريو."

تنهن هوندي به جيڪڏهن ڪا عورت يا مرد پاڻ کي مٿاهان ۽ عزت وارا سمجهي حرم کان ٻاهران آندل ڪپڙا پائي طواف ڪندا هئا ته طواف بعد انهن ڪپڙن کي اڇلي ڇڏيندا هئا. انهن مان نه پاڻ فائدو وٺندا هئا نه ٻين کي وٺڻ ڏيندا هئا. (1)

4. قريشن جي هڪ بدعت اها به هئي ته اهي احرام جي حالت ۾ گهر ۾ در کان داخل نه ٿيندا هئا، بلڪ گهر جي پٺيان پٽ ۾ سوراخ ڪري ان مان ايندا ويندا هئا. ۽ پنهنجي جهالت ڪري ان کي نيڪي سمجهندا هئا. قرآن ڪريم ان کان به منع ڪئي. (189:2)

اهو ئي دين، يعني شرڪ، بتن جي پوڄا ۽ وهمن ۽ اجاين رسمن تي ٻڌل عقيدن ۽ عمل وارو دين، عربستان جي عام رهاڪن جو دين هو.

ان کانسواءِ عربستان جي مختلف پاسن ۾ يهوديت، مسيحت ۽ صابئييت به وڏي ويجهي رهي هئي. تنهنڪري انهن جو به تاريخي خاڪو هتي پيش ڪجي ٿو.

عربستان ۾ يهودين جا گهٽ ۾ گهٽ ٻه دور ملن ٿا. پهريون دور ان وقت سان تعلق رکي ٿو، جڏهن فلسطين ۾ بابل ۽ آشور جي حڪومت جي فتحن سبب يهودين کي وطن ڇڏڻو پيو. ان حڪومت جي سختگيري ۽ بخت نصر هٿان يهودي وسندين جي تباهي، انهن جي هيڪل جي ڀڃ ڊاهه ۽ ان جي اڪثريت جي بابل ڏانهن جلاوطنيءَ جو نتيجو اهو نڪتو ته يهودين جي هڪ جماعت فلسطين ڇڏي حجاز جي اترئين علائقي ۾ اچي رهي. (2)

ٻيو دور تڏهن شروع ٿيو، جڏهن ٽائيسس روميءَ جي اڳواڻيءَ ۾ 70ع ۾ رومين، فلسطين تي قبضو ڪيو. هن موقعي تي رومين هٿان يهودين جي "روڻ واري پٽ" ۽ هيڪل ڀڄڻ جي ڪري ڪيترائي يهودي قبيلن حجاز ڀڄي آيا ۽ يثرب، خيبر ۽ تيماءَ ۾ اچي پنهنجون باقائده وسنديون ٺاهيائون ۽ قلعن ۽ ڪوٽ اڏيائون. انهن پناهگير يهودين جي ڪري عربن ۾ ڪجهه يهودي مذهب به

<sup>1</sup> - ابن هشام (202/1، 203) ۽ صحيح بخاري (226/1).

<sup>2</sup> - قلب جزيره العرب (ص:251).

رواج ورتو ۽ ان کي به اسلام کان اڳ ۽ اسلام جي شروعاتي ڏينهن ۾ سياسي حادثن ۾ هڪ ذڪر لائق حيثيت حاصل ٿي وئي. اسلام اچڻ وقت يهودي قبيلا هي هئا. بنوخيبر، بنونضير، بنو مصطلق، بنو قريظ ۽ بنو قينقاع. سمهوديءَ "وفاءُ الوفا" ۾ لکيو آهي ته يهودي قبيلن جو تعداد ويهن کان مٿي هو. (1) يهوديت جي يمن ۾ واڌ ويجهه ٿي. هتي ان جي ڦهلاءَ جو سبب تبان اسعد ابو ڪرب هو. اهو ماڻهو جنگ ڪندو يرث پهتو. اتي يهوديت قبوليائين ۽ بنو قريظ جي ٻن يهودي عالمن کي پاڻ سان يمن وٺي ويو. ابو ڪرب کانپوءِ سندس پٽ يوسف زونواس يمن جو حاڪم ٿيو ته اهو يهوديت جي جوش ۾ نجران جي عيسائين تي ڪاهي پيو ۽ انهن کي يهوديت قبولڻ لاءِ مجبور ڪرڻ لڳو. پر انهن انڪار ڪيو. تنهن تي زونواس ڪاهي ڪوٽائي ان ۾ باهه ٻارائي پوڙهن، ٻارن ۽ عورتن کي ان ۾ وجهي ساڙائي ڇڏيو. چيو وڃي ٿو ته ان حادثي جو شڪار ٿيڻ وارن جو تعداد ويهن کان چاليهن هزارن جي وچ ۾ هو. هي واقعو آڪٽوبر 523ع جو آهي. قرآن مجيد ۾ سوره بروج ۾ هن واقعي جو ذڪر ڪيل آهي. (2)

جيسٽائين عيسائي مذهب جو تعلق اهي ته عربستان جي شهرن ۾ ان جو اچڻ حبشي ۽ رومي قابضن ۽ فاتحن جي ذريعي ٿيو. اسين ٻڌائي چڪا آهيون ته يمن تي حبشين جو قبضو پهريون ڀيرو 340ع ۾ ٿيو هو، اهو قبضو گهڻي دير تائين برقرار نه رهي سگهيو بلڪه 378ع تائين رهيو. ان دوران يمن ۾ مسيحي مشن جو ڪم جاري رهيو انهن ڏينهن ۾ ئي هڪ مستجاب الدعوات ۽ ڪرامتن جو صاحب پرهيزگار شخص فيميون نالي سان نجران ۾ پهتو ۽ اتي جي رهاڪن ۾ عيسائي مذهب جي تبليغ ڪيائين. نجران وارن ان ۾ ۽ سندس دين ۾ سچائيءَ جون ڪجهه علامتون ڏسي سندس دين قبوليو ۽ عيسائي ٿي ويا. (3)

پوءِ زونواس جي ڪارروائيءَ جي ردعمل ۾ حبشين وري 525ع ۾ يمن تي قبضو ڪيو ۽ ابرهه يمن جي حڪومت جي واڳ سنڀالي ته ان ڏاڍي جوش ۽ خروش سان وڏي پيماني تي عيسائيت جي واڌ ويجهه لاءِ ڪوششون ڪيون. سندس ڪوششن جي نتيجي ۾ ئي يمن ۾ هڪ ڪعبو ٺاهيو ويو ۽ ڪوشش ڪئي وئي ته عربستان جي رهاڪن کي (مڪي ۽ بيت الله کان) روڪي ان ۾ حج ڪرايو وڃي ۽ مڪي جي ڪعبه الله کي ڏانو وڃي، پر سندس ان جرئت تي الله تعاليٰ کيس اهڙي سيڪٽ ڏني جو اڳين ۽ پوين لاءِ عبرت جي نشاني بڻجي ويو.

1 - قلب جزيرة العرب (ص: 251) ۽ وفاءُ الوفا (165/1).

2 - ابن هشام (20/1)، 21، 22، 27، 31، 35، 36 ۽ ڏسو تفسير جي ڪتابن ۾ سوره بروج جو تفسير.

3 - ابن هشام (31/1)، 32، 33، 34.

بئي پاسي رومي علائقن جي پاڙي ۾ هئڻ سبب آلِ غسان، بنو تغلب ۽ بنو طي وغيره جهڙن عربي قبيلن ۾ به عيسائيت ڦهلجي وئي هئي. بلڪ حيره جي ڪن عرب بادشاهن به عيسائي مذهب قبولي ورتو هو.

جيسٽائين مجوسين جي مذهب جو تعلق آهي ته ان کي گهڻو ڪري فارسين جي پاڙيسري عربن ۾ فروغ مليو هو. مثال طور عراق العرب، بحرين (الاحساء) حجر ۽ عربي نار جي ڪناري وارا علائقا. انهن کانسواءِ يمن تي فارسين جي قبضي جي دوران اتي به ڪن ماڻهن مجوسيت قبولي هئي.

باقي رهيو صابي مذهب جنهن جي سڃاڻپ ستاره پرستي، نڪتن تي اعتقاد، تارن جي تاثير ۽ انهن کي ڪائنات جو مدبر سمجهڻ تي هو ته، عراق وغيره جي پراڻن آثارن جي کوٽائيءَ دوران جيڪي ڪتبا مليا آهن، انهن مان پتو پوي ٿو ته حضرت ابراهيم عليه السلام جي ڪلداني قوم جو مذهب به اهو هو. پراڻي دور ۾ شام ۽ يمن جا ڪافي رهاڪو به هن مذهب جا پوئلڳ هئا. پر جڏهن يهوديت ۽ عيسائيت جو دور آيو ته هن مذهب جا بنياد لڏي ويا ۽ جهڙوڪر ختم ٿي ويو. تنهن هوندي به مجوسين سان مليل سليل پاڙيسري عراق العرب ۽ عربي نار جي ڪناري تي ان مذهب جا ڪجهه نه ڪجهه پوئلڳ بچيل رهيا. (1)

ديني حالت: - جنهن وقت اسلام جو چمڪندڙ سج اڀريو، ان وقت عرب ۾ اهي ئي مذهب جاري هئا. پر اهي سڀ مذهب ڪافي حد تائين منجني چڪا هئا. مشرڪ جن جي دعوا هئي ته اسين حضرت ابراهيم عليه السلام جي دين تي آهيون سي ان دين جي قانون ۽ حڪمن کان ڪوهين ڏور هئا. ان شريعت جيڪا اخلاقي قدرن جي تعليم ڏني هئي، تنهن سان انهن جو ڌرو به واسطو نه هو. انهن ۾ گناهن جي پرمار هئي. ڊگهي زماني گذرڻ ڪري انهن ۾ به بت پرستي جون ساڳيون عادتون ۽ رسمون پيدا ٿي چڪيون هيون، جن کي ديني خرافات جو درجو حاصل هو. انهن عادتن ۽ رسمن سندن اجتماعي، سياسي ۽ ديني زندگيءَ تي نهايت گهرو اثر وڌو هو.

يهودي مذهب جو حال هي هو ته اهو رڳو ڏيڪاءَ ۽ ڏهڪاءَ وارو مذهب بڻجي ويو هو. يهودي پيشوا، الله بدران پاڻ رب بنجي وينل هئا، ماڻهن تي پنهنجي مرضي ٿاڀيندا هئا ۽ سندن دلين ۾ ايندڙ خيالن ۽ چين جي حرڪتن تي به پڪڙ ڪندا هئا. سندن سڄو ڌيان ان ڳالهه تي هوندو هو ته ڪنهن طرح ملڪيت ۽ رياست ملي. ڀلي دين برباد ٿي ڇو نه ٿي وڃي ۽ ڪفر ۽ الحاد ۾ واڌارو ٿي ڇو نه

<sup>1</sup> - تاريخ ارض القرآن (2/193-208).



اچي ۽ ان تعليم ۾ سستي ئي چونه ٿئي. جنهن جي تقدس جو الله حڪم ڏنو آهي ۽ جنهن تي عمل ڪرڻ جي ترغيب ڏني آهي.

عيسائيت هڪ سمجهه ۾ نه ايندڙ بت پرستي بڻجي وئي هئي. ان الله ۽ انسان جي وچ ۾ عجيب طرح جو ناتو جوڙي ڇڏيو. جن عربن اهو دين قبوليو تن تي ان دين جو ڪو حقيقي اثر نه هو. ڇو ته ان جي تعليم سندن زندگي گذارڻ جي ڍنگ سان ميل نه ٿي ڪاڏو ۽ اهي پنهنجي زندگيءَ جو ڍنگ بدلائي نٿي سگهيا.

باقي عربستان جي دين کي مڃڻ وارن جو حال مشرڪن جهڙوئي هو. ڇو ته انهن جون دليون هڪ جهڙيون هيون، عقائد ساڳيا هئا ۽ رسمن ۽ رواجن ۾ به فرق نه هو.

\* \*\_\*

## ان سڌريل سماج جا ڪجهه ڏيک

عربستان جي سياسي ۽ مذهبي حالتن جو بيان ڪرڻ کانپوءِ هاڻي اتي جي سماجي، اقتصادي ۽ اخلاقي حالتن جو مختصر خاڪو پيش ڪجي ٿو.

اجتماعي حالتون :- عربن جي آبادي مختلف طبقن ۾ ورهايل هئي ۽ هر طبقي جون حالتون هڪ ٻئي کان گهڻيون مختلف هيون. جيئن اشراف طبقي جي عورتن ۽ مردن جو تعلق ڪافي ترقي يافتہ هو. عورتن کي ڪافي آزاديون حاصل هيون. انهن جي ڳالهه مڃي ويندي هئي ۽ انهن جو احترام ۽ تحفظ ڪيو ويندو هو ايتري قدر جو سندن معاملن ۾ تلوارون به نڪري اينديون هيون ۽ رتوڇاڻ ٿي پوندي هئي. ماڻهو جڏهن پنهنجي وقار ۽ بهادري، جنهن کي عربن ۾ وڏو مقام حاصل هو جا گڻ ڳائيندا هئا ته اهي عام طور تي عورت کي مخاطب ٿي ڳائيندا هئا. ڪڏهن ڪڏهن ڪا عورت چاهيندي هئي ته قبيلن کي ٺاه لاءِ گڏ ڪري وٺندي هئي ۽ جي چاهيندي هئي ته انهن ۾ جنگ ۽ رتوڇاڻ ڪرائي ڇڏيندي هئي. پر ان هوندي به مرد کي ئي خاندان جو وڏو مڃيو ويندو هو ۽ ان جي ڳالهه منڊيءَ تي تڪ هوندي هئي. ان طبقي ۾ مرد ۽ عورت ۾ تعلق نڪاح ذريعي ٿيندو هو ۽ نڪاح عورت جي وارثن جي نگرانيءَ ۾ ٿيندو هو. ڇوڪرين کي وارثن جي مرضيءَ کان سواءِ نڪاح ڪرڻ جو حق نه هو.

هڪ پاسي اشراف طبقي جو اهو حال هو ته ٻئي طرف ٻين طبقن ۾ عورتن ۽ مردن ۾ ميلاپ جا پيا به ڪي طريقا هئا، جن کي بچڙائيءَ ۽ بي حياتيءَ کان سواءِ ٻيو ڪو نالو نٿو ڏئي سگهجي. بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته جاهليت ۾ نڪاح جون چار صورتون هيون. هڪ صورت اها ئي جيڪا اڄڪلهه هلي رهي آهي ته هڪ ماڻهو ٻئي ماڻهوءَ کي سندس سنڀال هيٺ رهندڙ ڇوڪريءَ لاءِ نياپو موڪليندو آهي ۽ منظوريءَ کانپوءِ مهر ڏئي ان سان نڪاح ڪندو آهي. ٻي صورت اها ته جڏهن عورت جي ماهواري ختم ٿيندي هئي ته مڙس کيس غير مرد وٽ زنا ڪرائڻ لاءِ موڪليندو هو. ان کانپوءِ ٻيءَ ماهواريءَ تائين يا پيٽ ٽيڻ جي پڪ ٿيڻ تائين زال جي ويجهو نه ويندو هو. اهو ان لاءِ ڪندا هئا ته جيئن ڇوڪرو شريف ۽ باڪمال پيدا ٿئي. ان نڪاح کي "استبضاع" چوندا هئا. (هندستان ۾ ان کي نيوڳ چئجي ٿو). ٽي صورت اها هئي ته ڏهن کان ڪجهه گهٽ ماڻهو گڏجي هڪ ئي عورت وٽ وڃي بچڙاڻ ڪندا هئا. جڏهن مائي پيٽ سان ٿيندي هئي ته ٻار ڄڻ کان ڪجهه ڏينهن پوءِ اها مائي سڀني کي سڏائيندي هئي ۽ سڀني کي لازمي طور اتي اچڻو پوندو هو. ان بعد مائي چوندي هئي ته توهان جو جيڪو معاملو هو توهين ڄاڻو ٿا هاڻي هي جيڪو

ٻار منهنجي پيٽ مان پيدا ٿيو آهي اي فلاڻا اهو تنهنجو پٽ آهي يعني جنهن کي چاهيندي هئي، ان کي ٻار جو پيءُ قرار ڏيندي هئي ۽ ان ڳالهه کي قبول ڪيو ويندو هو. چوٿون قسم نڪاح جو اهو هوندو هو ته گهڻا ماڻهو گڏجي ڪنهن مائيءَ وٽ ويندا هئا، جيڪا ڪنهن کي به انڪار نه ڪندي هئي. اهي رنڊيون هونديون هيون، جيڪي پنهنجن گهرن تي جهنڊيون لڳائي ويهنديون هيون. جيئن ان نشانيءَ کي ڏسي اچڻ وارا بي ڪٽڪي هليا اچن. اهڙي مائي جڏهن پيٽ سان ٿي ڪو ٻار ڄڻندي هئي ته سڀ ان وٽ اچي گڏ ٿيندا هئا ۽ پوءِ قيافه شناس سڏايا ويندا هئا، جيڪي پنهنجي راءِ مطابق چوڪري کي ڪنهن سان به ڳنڍي ڇڏيندا هئا. پوءِ اهو چوڪرو ان جو ئي پٽ سڏبو هو ۽ هو ان کان انڪار نه ڪري سگهندو هو. جڏهن الله تعاليٰ محمد ﷺ کي نبي ڪري موڪليو ته پاڻ سڳورن ﷺ اٿسٽريل دور جا سڀ نڪاح جا سرشتا ختم ڪري رڳو هڪ اسلامي نڪاح جو طريقو رائج ڪيو. جيڪو اڃا تائين هلي رهيو آهي. (1)

عربستان ۾ عورتن ۽ مردن جي تعلق جون ڪي صورتون اهڙيون به هيون، جيڪي جنگين کانپوءِ قائم ٿينديون هيون. يعني قبيلائي جهيڙن ۾ کٽيندڙ قبيلن هارائيندڙ قبيلي جي عورتن کي ٻانهيون بڻائي پنهنجي حرم ۾ داخل ڪندا هئا. پر اهڙن عورتن مان پيدا ٿيندڙ ٻار سڄي زندگي گهٽ نظر سان ڏنا ويندا هئا.

اٿسٽريل دور ۾ حد کان وڌيڪ زالون رکڻ به هڪ عام ڳالهه هئي. ماڻهو اهڙيون به عورتون به هڪ ئي وقت ۾ نڪاح ۾ رکندا هئا، جيڪي پاڻ ۾ سڳيون پيرون هونديون هيون. پيءُ جي طلاق ڏنل يا پيءُ جي فوت ٿيڻ کانپوءِ پٽ سندس ويڳي ماءُ سان به نڪاح ڪري سگهندو هو. طلاق جو حق رڳو مرد وٽ هو ۽ ان جي ڪابه حد مقرر نه هئي ايتري تائين جو اسلام اچي ان جي حد مقرر ڪئي. (2)

سڀني طبقن ۾ زنا عام هئي. باقي ڪي ٿورا ماڻهو هئا، جيڪي پنهنجي وڏائيءَ جو احساس ڪري ان بيچارو کان پري رهندا هئا. آزاد عورتون، ٻانهين کان وري به چڱي حال ۾ هيون. اصل مصيبت ۾ ته ٻانهيون هونديون هيون. اٿسٽريل دور جي وڏي اڪثريت ان بيچارو کي خراب نه سمجهندي هئي. جيئن سنن ابي دائود وغيره ۾ روايت آهي ته هڪ پيري هڪ ماڻهو اتي چيو ته يا رسول الله ﷺ فلاڻو ماڻهو منهنجو پٽ آهي. مون جاهليت واري دور ۾ سندس ماءُ سان زنا ڪئي هئي. رسول الله ﷺ فرمايو ته اسلام ۾ اهڙين دعوائن جي ڪابه گنجائش نه آهي. جاهليت واري

<sup>1</sup> - صحيح بخاري حديث نمبر (5127) (769/2) ابوداؤد، النڪاح، باب وجوه النڪاح.

<sup>2</sup> - ابو دائود ڪتاب النڪاح، نسخ المراجع بعد التظليقات الثلاث ۽ تفسير جي ڪتابن ۾ الطلاق مرتان جو تفسير ڏسڻ گهرجي.

ڳالهه وئي، هاڻي ته ٻار ان جو ٿيندو. جنهن جي زال يا ٻانهي هوندي، زانيءَ لاءِ پتر آهن. (1) حضرت سعد بن ابى وقاص ۽ عبد بن زمعه جي وچ ۾ ٻانهيءَ جي پٽ عبدالرحمان بن زمعه بابت جيڪو جهيڙو ٿيو، اهو به مشهور آهي. (2)

جاهليت ۾ پيءُ پٽ جو تعلق به مختلف نوعيت جو هوندو هو. ڪي ته چوندا هئا ته:

انما اولادنا بينا اڪبادنا تمشى على الارض

اسان جو اولاد اسانجا جگر آهن. جيڪي سڄي زمين تي گهمن ڦرن ٿا.

پر ڪي اهڙا به هئا، جيڪي نياڻين کي خواري ۽ خرچ جي ڊپ کان جيئرو پوري ڇڏيندا هئا ۽ ٻارن کي بڪ بيماريءَ جي ڊپ کان ماري ڇڏيندا هئا. (3) پر اهو چوڻ ڏکيو آهي ته اها سنگدلي وڏي پيماني تي هلندڙ هئي. ڇو ته عرب پنهنجي دشمن کان بچڻ لاءِ ٻين جي بنسبت پنهنجي اولاد جا وڌيڪ محتاج هئا ۽ ڪين ان ڳالهه جو احساس به هو.

جيسٽائين سڳن ڀائرن، سوٽن ۽ گهراڻي جي ٻين ماڻهن جي هڪٻئي سان لاڳاپن جو معاملو آهي ته اهي ڪافي پڪا پختا هئا. ڇو ته عرب، قبائلي عصبيت جي ٽيڪ تي جيئندا ۽ مرندا هئا. قبيلي جي اندر گڏيل مفادن جو فڪر پوريءَ طرح ڪم ڪري رهيو هو. جنهن کي عصبيت جو جذبو وڌيڪ تڪو ڪري رهيو هو. اصل ۾ قومي عصبيت ۽ ويجهو لاڳاپو ئي انهن جي گڏيل نظام جو بنياد هو. اهي هن مثال تي جيئن جو ٿيڻ عمل ڪندا هئا ته:

انصُرُ أَخَاكَ ظَالِمًا أَوْ مَظْلُومًا

(پنهنجي ڀاءُ جي مدد ڪريو ڀلي اهو ظالم هجي يا مظلوم)

هن مثال جي معنيٰ ۾ اڃا اهو سڌارو نه ٿيو هو، جيڪو اسلام ذريعي ڪيو ويو هو. يعني ظالم جي مدد اها آهي ته ان کي ظلم کان روڪيو وڃي. البتہ عزت ۽ سرداريءَ ۾ هڪٻئي کان گوءُ کڻڻ جو جذبو ڪافي پيرا هڪ ئي ماڻهوءَ مان وجود ۾ آيل قبيلن ۾ به جنگ ڪرائي ڇڏيندو هو. جيئن اوس، خزرج، عبس، ذبيان، بڪر ۽ تغلب وغيره جي واقعن ۾ مطالعي سان معلوم ٿئي ٿو.

جيسٽائين مختلف قبيلن جو هڪٻئي سان لاڳاپن جو معاملو آهي ته اهي پوريءَ طرح ٽٽي ڦٽي چڪا هئا. قبيلن جي سڄي طاقت هڪٻئي جي خلاف جنگين ۾ ختم ٿي رهي هئي. باقي دين ۽ اڃاين رسمن جي ميلاپ سان تيار ٿيل ڪن عادتن ۽ رسمن جي ڪارڻ ڪڏهن ڪڏهن جنگين جو زور

1- ابو داؤد باب الولد للفراش، صحيح بخاري (2/999، 1065).

2- ابوداؤد باب الولد كتاب النكاح للفراش ۽ مسند احمد (207/2).

3- قرآن مجيد سورة 6 آيت 101-سورة 6 (آيت 58، 59)، سورة 17 (آيت 31) سورة 81 (آيت 8).

گهٽجي ويندو هو ۽ ڪن حالتن ۾ مولاة، حلف ۽ تابعديءَ جي اصولن تي مختلف قبيلن گڏ ٿي ويندا هئا. حرام مهينا سندن زندگيءَ ۽ روزگار لاءِ سٺو سوڻ ثابت ٿيندا هئا. [چوتو عرب انهن جي حرمت جو وڏو احترام ڪندا هئا. رجاءِ عطاري ٻڌائي ٿو ته جڏهن رجب جو مهينو ايندو هو ته اسين چوندا هئاسين ته هي مهينو نيزن جون چهنبون لاهڻ وارو آهي. تنهنڪري اسين تيز چهنب ڪيڻ کان سواءِ ڪو به نيزو نه ڇڏيندا هئاسين ۽ ڪنهن به تير کي تڪي چهنب ڪيڻ کان سواءِ نه ڇڏيندا هئاسين ۽ ان کي ڪنهن شي ۾ رکي ڇڏيندا هئاسين (1) اهڙي طرح باقي حرام مهينن ۾ به ڪندا هئاسين.] (2)

مطلب ته اجتماعي حالت ڏاڍي بري هئي، جهالت ۽ خرافات جو عروج هو. ماڻهو جانورن جهڙي حياتي گذاريندا هئا. عورت وڪي ۽ خريد ڪئي ويندي هئي. ڪڏهن ڪڏهن ساڻس مٽيءَ ۽ پٿرن جهڙو ورتاءُ ڪيو ويندو هو. قوم جا گڏيل لاڳاپا نه صرف ڪمزور بلڪ تٽل هئا. حڪومتن جا سڀ منصوبا عوام مان پيسو ڪڍي خزانن ۾ يا مخالفن تي چڙهائي ڪرڻ تائين محدود هئا.

**اقتصادي حالت:-** اقتصادي حالت، اجتماعي حالت جي تابع هئي. ان جو اندازو عربن جي معاشي ذريعن تي نظر وجهڻ سان ڪري سگهجي ٿو ته واپار ئي سندن ويجهو زندگيءَ جون ضرورتون حاصل ڪرڻ جو اهم ذريعو هو. جيڪو امن امان کانسواءِ آسان نه آهي ۽ عربستان جو حال اهو هو ته سواءِ حرمت وارن مهينن جي، ڪٿي به امن ۽ سلامتي نه هوندي هئي. اهو ئي سبب آهي جو رڳو حرام مهينن ۾ ئي عربستان جون مشهور بازارون عڪاظ، ذي المجاز ۽ مَجَنَه لڳنديون هيون.

صنعتن جي ميدان ۾ به عرب سڄي دنيا کان پٺيان هئا. ڪپڙو اڻڻ ۽ چمڙي جي دباغت وغيره جي شڪل ۾ جيڪي ڪجهه صنعتون هيون ته اهي به گهڻو ڪري يمن، حيره ۽ شام سان ڳنڍيل علائقن ۾ هيون. باقي عربستان جي اندر ٻني ٻاري ۽ جانور پالڻ جو رواج هو. سڀ عرب عورتون ست ڪٽينديون هيون پر مشڪل اها هئي ته سڄو مال متاع جهيڙن جهتن جي نظر ٿي ويندو هو. غربت ۽ بڪ جي وبا عام هئي ۽ ماڻهو ضروري ڪپڙن کان به گهڻي قدر محروم هوندا هئا.

**اخلاق:-** اهو ته سڀ ڄاڻن ٿا ته جاهليت وارن ۾ خسيس ۽ ڪريل عادتون ۽ شعور، عقل ۽ سمجهه جي خلاف ڪافي ڳالهين ملنديون هيون پر انهن ۾ اهڙا وڌندڙ اخلاقي قدر به هئا جن کي ڏسي انسانن کي ڏندين آڱريون اچي وينديون. جهڙوڪ:

1 - صحيح بخاري حديث نمبر (4376).

2 - فتح الباري 8 / 91.

1. ڪرم ۽ سخاوت: - اها ان دور جي ماڻهن جي هڪ اهڙي خاصيت هئي جنهن ۾ هو هڪ ٻئي کان گوءِ کڻڻ جي ڪوشش ڪندا هئا ۽ ان تي ايترو فخر ڪندا هئا جو پراڻي عربي ادب جا اڌ شعر ان بابت ئي ملن ٿا. جن مان ڪن ۾ ڪنهن پنهنجي تعريف ڪئي آهي ته ڪنهن ٻئي جي حالت اها هئي جو سخت سياري ۽ ڏڪر جي زماني ۾ به ڪنهن جي گهر ڪو مهمان ايندو هو ته پيو ڪجهه نه هڻڻ ڪري سخاوت جي جوش ۾ اچي اها ڏاڍي به ڪهي ڇڏيندا هئا جنهن تي سڄي ڪتنب جو گذارو هوندو هو. سندن سخاوت جو نتيجو هوندو هو جو وڏي وڏي خون بها ۽ مالي ذميداريون پنهنجي سر ڪڍي وٺندا هئا ۽ ان طرح انسانن کي تباهي ۽ رتوڇاڻ کان بچائي پين رئيسن ۽ سردارن جي مقابلي ۾ پنهنجي وڏائي ظاهر ڪندا هئا.

هو شراب نوشيءَ تي به ان ڪري فخر ڪندا هئا جو اها مهربانيون ۽ سخاوتون ڪرڻ کي آسان ڪري ٿي. ڇو ته نشي جي حالت ۾ مال لٽائڻ ماڻهن کي خراب نٿو لڳي. ان ڪري ئي هي ماڻهو انگورن جي وڻ کي ڪرم ۽ انگوري شراب کي بنت الڪرم چوندا هئا. ان دور جي شاعريءَ تي نظر وجهجي ته اهڙي ساراهه ۽ وڏائيءَ تي هڪ اهم باب ملندو. جيئن عنتره بن شداد عيسيٰ چئي ٿو ته:

|  |  |
|--|--|
| وَلَقَدْ شَرِبْتُ مِنَ الْمُدَامَةِ بَعْدَ مَا | رَكَدَ الْهَوَاجِرُ بِالْمَشُوفِ الْمُغْلَمِ |
| بُرْجَاةَ صَفْرَاءَ ذَاتِ أُسْرَةٍ             | فُرْنَتْ بِأَزْهَرِ بِالشَّمَالِ مُفْلَمِ    |
| فَإِذَا شَرِبْتُ فَإِنِّي مُسْتَهْلِكٌ         | مَالِي وَعِرْضِي وَإِفْرٌ لَمْ يُكَلِّمِ     |
| وَإِذَا صَحَوْتُ فَمَا أَقْصَرُ عَنْ نَدَى     | وَكَمَا عَلِمْتَ شَمَائِلِي وَتَكْرُمِي      |

"مون پنهنجن جي تڪاڻ گهٽجڻ کانپوءِ زردي رنگ جي ڌارن واري شيشي جي جام سان جيڪو ڪاٻي پاسي رکيل چمڪندڙ ۽ ٻوڇ لڳل شراب سان رکيل هو، نشان لڳل صاف شفاف شراب پيتو ۽ جڏهن مان پي وٺندو آهيان ته پنهنجو مال لٽائي ڇڏيندو آهيان پر منهنجو شان ڀرپور هوندو آهي، ان کي چيهو نه رسندو آهي ۽ جڏهن مان هوش ۾ ايندو آهيان تڏهن به سخاوت ۾ ڪوتاهي نه ڪندو آهيان ۽ منهنجو اخلاق ۽ ڪرم جهڙو آهي تنهنجي توکي خبر آهي".

اهي پنهنجي ڪرم جي ڪري ئي جو ڪيڏندا هئا. سندن خيال هو ته اهو به سخاوت جو هڪ رستو آهي ڇو ته انهن کي جيڪو فائدو ملندو هو يا فائدو وٺندڙ جي حصي مان جيڪي بچندو هو سو مسڪينن کي ڏيندا هئا. ان ڪري ئي قرآن پاڪ شراب ۽ جوا جي فائدي کان انڪار نٿو ڪري بلڪ چوي ٿو ته:

﴿وَإِنَّهُمَا أَكْبَرُ مِنْ نَفْعِهِمَا﴾ (219) ﴿البقرة﴾ "انهن ٻنهي جو گناهه انهن جي فائدي کان وڌيڪ آهي".

2. واعدو پاڙڻ: - هي به ائسٽريل معاشرتي جو هڪ چڱو اخلاقي قدر هو. وعدي کي سندن نظر ۾ دين جي حيثيت حاصل هئي. جنهن سان هو هر حال ۾ جهتل هئا ۽ هن راهه ۾ پنهنجي اولاد جو خون ۽ پنهنجي گهر ٻار جي تباهي به گهٽ سمجهندا هئا. ان کي سمجهڻ لاءِ هاني بن مسعود شيباني، سموا بن عادي ۽ حاجب بن زراره جا واقعا ڪافي آهن.

هاني بن مسعود جو واقعو حيره جي بادشاهي جي تذڪري ۾ گذري چڪو آهي. سموا بن عادي جو واقعو هن ريت آهي ته امرؤالقيس ان وٽ ڪجهه زرهون امانت طور رکيون هيون حارث بن ابي ثمر غساني ان کان اهي زرهون وٺڻ تي چاهيون ليڪن ان نه ڏنيون ۽ تيماءَ ۾ پنهنجي محل ۾ لڪي ويهي رهيو. سموا بن عادي جو هڪ پٽ قلعي کان ٻاهر رهجي ويو حارث ان کي گرفتار ڪري ورتو ۽ زرهون نه ڏيڻ جي صورت ۾ ان کي قتل ڪرڻ جي ڌمڪي ڏني ان جي باوجود پنهنجي ڳالهه تي قائم رهيو نيٺ حارث سموا بن عادي جي اکين اڳيان سندس پٽ کي قتل ڪري ڇڏيو.

حاجب بن عادي جو واقعو هي آهي ته ان جي علائقي ۾ ڏڪار پئجي ويو ان ڪسري کان پنهنجي نگرانيءَ ۾ پنهنجي قوم کي آباد ڪرڻ جي اجازت گهري ڪسري انهن جي فساد جي خطري جي سبب ضمانت کان سواءِ ان جي ڳالهه قبول نه ڪئي حاجب پنهنجي زره گروي ۾ رکرائي ۽ واعدو مطابق ڏڪار ختم ٿيندي ئي پنهنجي قوم کي واپس وٺي ويو ۽ سندس پٽ عطارد بن حاجب رضي الله عنه ڪسري کان وڃي پنهنجي پيءَ جي امانت واپس گهري جيڪا ڪسري ان جي واعدو پاڙڻ جي ڪري کيس واپس ڪري ڇڏي.

3. خودداري ۽ آنا: - ان تي قائم رهڻ ۽ ظلم ۽ ڏاڍ نه سهڻ به ان دور جو معروف اخلاقي قدر هو. نتيجي ۾ سندن بهادري ۽ غيرت حد کان وڌيل هئي. اهي هڪدم پٽڪي پوندا هئا ۽ هر ننڍي ڳالهه تي جنهن مان ذلت ۽ بيعزتي محسوس ٿيندي هئي، تلوارون ڪڍي ويهندا هئا ۽ خونريز جنگيون شروع ڪري ڏيندا هئا ۽ جان جي هرگز پرواهه نه ڪندا هئا.

4. ثابت قدمي: - سندن هڪ خاصيت اها به هئي ته جڏهن ڪو ڪم ڪرڻ جو رٿيندا هئا ته پوءِ ڪا به رڪاوٽ کين روڪي نه سگهندي هئي. هو پنهنجو سر تريءَ تي رکي به ان ڪم کي پورو ڪندا هئا.

5. نرم دلي، سهپ ۽ سنجيدگي: - هيءَ به سندن نظر ۾ ساراه لائق خوبي هئي، پر سندن حد کان وڌيڪ بهادري ۽ جنگ لاءِ هر وقت جي تياريءَ جي ڪري انهن ۾ اٽلپ هئي.

6. ڳوناڻڪي سادگي: - يعني تهذيب جي اوڻاين ۽ هٽڪنڊن کان ناواقفيت ان جي نتيجي ۾ منجهن سچائي ۽ امانت ملندي هئي ۽ هو نڳين ۽ دولابن کان پري هئا.

اسان سمجهون ٿا ته عربستان سڄي دنيا سان جاگرافيائي طرح گڏيل هو. ان کانسواءِ اهي ئي قيمتي اخلاق هئا جن جي ڪري عربن کي انساني نسل جي اڳواڻي ۽ رسالت جو بار کڻڻ لاءِ چونڊيو ويو. ڇو ته اهي اخلاق جيتوڻيڪ ڪڏهن ڪڏهن فسادن جو سبب بڻبا هئا ۽ ان ڪري وڏا حادثا ٿي پوندا هئا ته به اهي قيمتي اخلاق هئا جيڪي توري گهڻي سڌاري کانپوءِ انساني معاشري لاءِ نهايت لاڀائتا ٿي سگهيا ٿي ۽ اسلام اهو ئي ڪم ڪري ڏيکاريو.

شايد انهن اخلاقن ۾ وعدو پاڙڻ کانپوءِ انا ۽ ثابت قدمي سڀ کان املهه ۽ ڪارائتا جوهر هئا، ڇو ته انهن کانسواءِ شر ۽ فساد جو خاتمو ۽ انصاف جي نظام جو قائم ٿيڻ ممڪن ڪونهي. سندن ڪجهه ٻيا به اخلاقي قدر هئا پر هتي سڀني جو ذڪر ڪرڻ مناسب نه ٿيندو.

\*\_\*\_\*



## خاندان نبوت، ولادت باسعادت

**نسب:-** نبي اڪرم ﷺ جن جو شجرو مبارڪ تن حصن ۾ ورهائي سگهجي ٿو. هڪ حصي جي صحيح هجڻ تي سيرت نگار ۽ شجرن جا ماهر متفق آهن جيڪو عدنان تائين پهچي ٿو. ٻيو حصو جنهن تي سيرت نگارن ۾ اختلاف آهي، اهو عدنان کان وٺي حضرت ابراهيم عليه السلام تائين آهي. ٽيون حصو، جنهن ۾ يقيناً ڪجهه غلطيون آهن. اهو حضرت ابراهيم عليه السلام کان مٿي حضرت آدم عليه السلام تائين آهي. ان بابت اشارو ڪيو ويو آهي. هيٺ انهن جو تفصيل ڏجي ٿو.

**پهريون حصو:-** محمد (ﷺ) بن عبدالله بن عبدالمطلب (شيبه) بن هاشم (عمرو) بن عبدمناف (مغيره) بن قصي (زيد) بن ڪلاب بن مره بن ڪعب بن لوي بن غالب بن فهر (هن جو لقب قريش هو. قريش قبيلو ان ڏانهن ئي منسوب آهي) بن مالڪ بن نضر (قيس) بن ڪنانه بن خزيمه بن مدرڪه (عامر) بن الياس بن مضر بن نزار بن معد بن عدنان (1)

**ٻيو حصو:-** عدنان کان مٿي يعني عدنان بن ادين هميسع بن سلامان بن عوص بن بوز بن قموال بن ابي بن عوام بن ناشد بن حزابن بلداس بن يدلاف بن طابخ بن جاحر بن ناحش بن ماخي بن عيضم بن عبقر بن عبيد بن الدعا بن حمدان بن سنبر بن يثربي بن يحزن بن يلحن بن ارعوي بن عيضم بن ديشان بن عيصر بن افتاد بن ايهار بن مقصر بن ناحث بن زارح بن سمي بن مزي بن عوضه بن عرام بن قيदार بن اسماعيل عليه السلام بن ابراهيم عليه السلام (2)

**ٽيون حصو:-** حضرت ابراهيم عليه السلام کان مٿي، ابراهيم بن تارح (آزر) بن ناحور بن ساروع (يا ساروع) بن راعو بن فالخ بن عابر بن شالخ بن ارفخشد بن سام بن نوح عليه السلام بن لامڪ بن متو شلخ بن اخنوخ (چيو وڃي ٿو ته هي حضرت ادريس عليه السلام جو نالو آهي) بن يرد بن مهلائيل بن قينان بن انوشه بن شيث بن آدم عليه السلام (3)

<sup>1</sup> - تاريخ الطبري 2/ 271، 239، ابن هشام 1/ 1-2 تلقيح فهوم اهل الاثر ص 5-6 رحمة للعالمين 11/ 2 تا 14-52.

<sup>2</sup> - ان ڪي ابن سعد، طبقات 1/ 56، 57، ۾ ابن ڪلبي جي روايت سان بيان ڪيو آهي ۽ ان طريقي سان طبري به پنهنجي تاريخ 2/ 272، ۾ بيان ڪيو آهي ان جي اختلاف کي وضاحت سان ڏسڻ لاءِ تاريخ الطبري 2/ 271، 276، فتح الباري 6/ 621، 622، 623، ڏسڻ گهرجي.

<sup>3</sup> - ابن هشام 2/ 1 تا 4، تلقيح فهوم (ص: 6) خلاصة السير (ص: 6)، رحمة للعالمين 18/ 2، تاريخ الطبري 2/ 276، ڪن نالن بابت هن ماخذ ۾ اختلاف به آهي ۽ ڪي نالا ٻين ماخذن ۾ آيل آهن هن ۾ نه آهن.

**خاندان نبوت** نبي ڪريم ﷺ جو خاندان سندن ڏاڏي هاشم بن عبدمناف جي نسبت سان هاشمي خاندان جي نالي سان مشهور آهي ان ڪري مناسب آهي ته هاشم ۽ ان کان پوءِ ايندڙ فردن جا مختصر حالات پيش ڪيا وڃن.

(1) **هاشم**: اسين ٻڌائي چڪا آهيون ته جڏهن عبد مناف ۽ بنو عبدالدار جو وچ ۾ ورهاست ٿي تاهه ٽي ويو ته عبد مناف جي اولاد مان هاشم کي ئي سڀاڻي ۽ رفاده يعني حاجين کي پاڻي پيارڻ ۽ سندن ميزباني ڪرڻ جو عهدو مليو. هاشم وڏو معزز ۽ مالدار هو. هي پهريون ماڻهو هو جنهن مڪي ۾ حاجين کي ٿريد ڪارائڻ جو بندوبست ڪيو. سندس اصل نالو عمرو هو پر ماني پور پور ڪري رس ۾ ٻوڙڻ جي ڪري کيس هاشم چيو وڃڻ لڳو. ڇو ته هاشم جي معنيٰ آهي ٽڪرا ڪرڻ وارو. هيءُ ئي پهريون ماڻهو هو جنهن قريش لاءِ واپار لاءِ اونهارو ۽ سياري ۾ به واپاري سفر ڪرڻ جو بنياد رکيو. جنهن بابت شاعر چوي ٿو ته:

عَمْرُو الَّذِي هَشَمَ الثَّرِيدَ لِقَوْمِهِ ... قَوْمٌ بِمَكَّةَ مُسْتَتِينَ عَجَافِ  
سُنْتُ إِلَيْهِ الرَّحْلَتَانِ كِلَاهُمَا ... سَفَرُ الشِّتَاءِ وَرِحْلَةُ الْأَصْيَافِ

”هي عمرو هو ئي آهي جنهن پنهنجي ڏڪاريل ۽ ڪمزور قوم کي مانيون پور پور ڪري رس ۾ ٻوڙي ٻوڙي ڪارايون ۽ اونهارو ۽ سياري جي بن سفرن جو بنياد رکيو.“

سندن هڪ اهم واقعو اهو آهي ته پاڻ واپار سانگي شام ڏانهن ويو. رستي ۾ مديني پهتا ته اتي بني نجار قبيلي جي هڪ عورت سلمي بنت عمرو سان شادي ڪري ورتائون ۽ ڪجهه ڏينهن اتي ترسي گهر واريءَ کي مائٽن ۾ ڇڏي شام روانو ٿي ويو ۽ پوءِ فلسطين جي شهر غزه ۾ سندن انتقال ٿي ويو. هوڏانهن سلمي کي پٽ ڄائو. اهو 497 جي ڳالهه آهي. جيئن ته ٻار جي وارن ۾ اڃاڻ هئي ان ڪري سلمي سندس نالو شيبه رکيو. (1) ۽ يثرب ۾ پنهنجن مائٽن ۾ ئي کيس پالڻ لڳي. اڳتي هلي اهو ٻار عبدالمطلب جي نالي سان مشهور ٿيو. ڪافي وقت تائين هاشم جي خاندان کي ان بابت ڪا به ڄاڻ نه هئي. هاشم جا ڪل چار پٽ ۽ پنج ڌيئرون هيون. جن جا نالا هي آهن. اسد، ابو صيفي، نضل، عبدالمطلب، شفاء، خالد، ضعيف، رقيه، جنته (2)

(2) **عبدالمطلب**: گذريل صفحن ۾ اچي چڪو آهي ته سڀاڻي ۽ رفاده جو عهدو هاشم کانپوءِ سندس ڀاءُ مطلب کي مليو، جيڪو پڻ قوم ۾ خوبين ۽ اعزازن جو مالڪ هو. سندس ڳالهه تاري نه سگهبي هئي. سندس سخاوت جي ڪري قريش سندس لقب ”فياض“ رکي ڇڏيو هو. جڏهن شيبه يعني

<sup>1</sup> - ابن هشام 137/1 رحمة للعالمين 26/1 ، 24/2.

<sup>2</sup> - ابن هشام 107/1.

عبدالطلب ڏهن ٻارهن ورهين جو ٿيو ته مطلب کي سندس خبر پئي ۽ هو کيس وٺڻ ويو. جڏهن يثرب پهتو ته شيبه کي ڏسي روئڻ هارڪوڻي ويو، کيس ڇاڻي سان لڳائي پنهنجي سواريءَ تي ويهاري مڪي ڏانهن روانو ٿيو تي پر شيبه، ماءُ جي موڪل کانسواءِ گڏ هلڻ کان انڪار ڪيو. ان ڪري مطلب سندن ماءُ کان اجازت وٺڻ هليو پر ان اجازت نه ڏني. آخر مطلب چيو ته هي پنهنجي پيءُ جي راڄ ۽ الله جي حرم ڏانهن وڃي رهيو آهي. ان تي ماءُ اجازت ڏني ۽ مطلب کيس پنهنجي اٺ تي ويهاري مڪي وٺي آيو. مڪي وارن کيس ڏسي چيو ته هيءُ عبدالطلب آهي يعني مطلب جو غلام آهي. مطلب چيو ته نه هي منهنجو ڀائٽيو يعني منهنجي ڀاءُ هاشم جو پٽ آهي. پوءِ شيبه، مطلب وٽ نپنو ۽ جوان ٿيو. ان بعد رومان (يمن) ۾ مطلب وفات ڪئي ۽ سندس ڇڏيل عهدا عبدالطلب کي مليا. کيس پنهنجي قوم ۾ ايتري عزت ملي، جيتري سندس وڏن کي به نه ملي هئي. قوم کيس دل سان چاهيو ۽ سندس ڏاڍو قدر ڪيو. <sup>(1)</sup>

مطلب جي وفات کانپوءِ نوفل، عبدالطلب جي اڳڻ تي زوريءَ قبضو ڪري ورتو. عبدالطلب قريش جي ڪن ماڻهن کان مدد گهري پر انهن اهو چئي معذرت ڪئي ته اسين چاچي ڀائٽي جي وچ ۾ نٿا اچي سگهون. آخر عبدالطلب بني نجار ۾ پنهنجي مامي کي ڪجهه شعر لکي موڪليا جنهن ۾ ان کي مدد لاءِ سڏيو ويو هو. جواب ۾ سندس مامو ابو سعد بن عدي اسي سوار وٺي روانو ٿيو ۽ مڪي ويجهو ابطح ۾ لٿو. عبدالطلب اتي ساڻس ملاقات ڪئي ۽ کيس گهر هلڻ لاءِ چيو. ابو سعد چيو ته خدا جو قسم! نوفل سان ملڻ کان اڳ نه هلندس. ان بعد ابو سعد اڳتي وڌيو ۽ وڃي نوفل جي سر تي بيٺو جيڪو حطيم ۾ قريش سردارن سان ويٺو هو ۽ تلوار مياڻ مان ڪڍي چيائين ته "هن گهر جي رب جو قسم! جي تو منهنجي ڀائٽي جي زمين واپس نه ڪئي ته تلوار تنهنجي پيٽ ۾ گهٽي ڇڏيندس". نوفل چيو ته چڱو! آئون واپس ٿو ڪريان. ان تي ابو سعد قريش سردارن کي شاهد ڪيو ۽ پوءِ عبدالطلب جي گهر ويو ۽ تي ڏينهن اتي رهي عمرو ڪري مديني واپس ويو.

هن واقعي کانپوءِ نوفل، بني هاشم خلاف بني عبدشمس سان باهمي تعاون جو معاهدو ڪيو. هوڏانهن بنو خزاعه ڏٺو ته بنو نجار عبدالطلب جي هن طرح مدد ڪئي آهي ته چوڻ لڳا ته عبدالطلب جيئن اوهان جو اولاد آهي، تيئن اسان جو به آهي. تنهن ڪري اسان تي سندس مدد جو حق وڌيڪ آهي. اهو ان ڪري جو عبد مناف جي ماءُ خزاعه قبيلي مان هئي. تڏهن بنو خزاعه، دار

<sup>1</sup> - ابن هشام (137-138)، عمر جو تعين تاريخ طبري (247/2)، ۾ ڪيل آهي.

الندوه وجي بنو عبد شمس ۽ بنو نوفل جي خلاف بنو هاشم سان ساٿ جو واعدو ڪيو. اهو ئي معاهدو هو جيڪي اڳتي هلي اسلامي دور ۾ مڪي جي فتح جو سبب بڻيو. (1)

بيت الله جي تعلق سان عبدالمطلب سان به اهم واقعا پيش آيا. هڪ زمزم جو ڪوهه ڪوٽڻ وارو واقعو ۽ ٻيو هاٿين وارو واقعو.

زمزم جي ڪوهه جي ڪوٽائي: - پهرئين واقعي جو نت (نص) هي آهي ته عبدالمطلب کي خواب ۾ زمزم جو ڪوهه ڪوٽڻ جو حڪم ڏنو ويو ۽ خواب ۾ ئي ان جي جڳهه به ڏيکاري وئي. پاڻ ڇاڻڻ بعد ڪوٽائي شروع ڪرائي ڇڏيائين. آهستي آهستي اهي شيون ظاهر ٿيڻ لڳيون جيڪي بنو جرهم مڪو ڇڏڻ وقت زمزم جي ڪوهه ۾ پوري ڇڏيون هيون. يعني تلوارون، زرهون ۽ سون جا به هرڻ. عبدالمطلب تلوارون ڳاري ڪعبي جو دروازو ٺهرايو ۽ سون جا ٻئي هرڻ به دروازي ۾ لڳايا ۽ حاجين کي زمزم جو پاڻي پيارڻ جو بندوبست ڪيو.

ڪوٽائي دوران جڏهن ڪوهه ظاهر ٿيو ته قريش، عبدالمطلب کان مطالبو ڪيو ته اسان کي به ڪوٽائيءَ ۾ شامل ڪر. عبدالمطلب چيو ته مان ايئن نٿو ڪري سگهان. ڇو ته مان ئي ان ڪم لاءِ چونڊيل آهيان. پر قريش ڪونه مڙيا ايستائين جو فيصلو لاءِ بنو سعد جي هڪ ڪاهن عورت وٽ وڃڻ لاءِ مڪي مان نڪتا رستي ۾ کين قدرت جون ڪي اهڙيون نشانيون ڏسڻ ۾ آيون جو هو سمجهي ويا ته زمزم جو ڪم قدرت پاران عبدالمطلب لاءِ مخصوص آهي. ان ڪري رستي تان ئي موٽي آيا. ان موقعي تي ئي عبدالمطلب باس باسي ته جيڪڏهن الله تعاليٰ کيس ڏهه پت عطا ڪيا ۽ اهي سڀ پاڻ ٿيندا ته هو هڪ ڪي ڪعبي جي پرسان قربان ڪندو. (2)

هاٿين وارو واقعو: - ٻئي واقعي جو نت (نص) هي آهي ته ابرهه بن صباح حبشيءَ (جيڪو نجاشيءَ پاران يمن جو گورنر جنرل هو) جڏهن ڏٺو ته عربستان وارا ڪعبه الله جو حج ڪن ٿا ته هن صنعاءَ ۾ هڪ وڏي ديول ٺهرايائين ۽ چاهيائين ته عرب هتي اچي حج ڪن پر جڏهن ان جي خبر بنو ڪنانه جي هڪ ماڻهوءَ کي پئي ته ان رات جو ديول ۾ گهڙي ان جي قبلي تي ڪاڪوس لٽي ڇڏيو. ابرهه کي ڄاڻ ملي ته هو ڏاڍو ڪاوڙيو ۽ سٺ هزار بهادرن جو لشڪر وٺي ڪعبي کي ڪيرائڻ نڪتو. هن پاڻ لاءِ هڪ زبردست هاٿي چونڊيو. لشڪر ۾ ڪل نو يا تيرنهن هاٿي هئا. ابرهه، يمن مان ڪاهيندو مغمس پهتو ۽ اتي پنهنجي لشڪر کي ترتيب ڏئي ۽ هاٿي تيار ڪري مڪي ۾ داخل ٿيڻ

<sup>1</sup> - مختصر سيرة الرسول محمد بن عبد الوهاب (ص: 41-42)، ان کان علاوه طبريءَ پنهنجي تاريخ (248/2، 251)، ۽ ٻين مصنفن پنهنجن ڪتابن ۾ ان جو تفصيلي ذڪر ڪيو آهي.

<sup>2</sup> - ابن هشام (142/1\_147).

لاء وڌيو. جڏهن مزدلفه ۽ مني جي وچ ۾ محسر نالي ماتريءَ ۾ پهتو ته هاڻي ويهي رهيو ۽ ڪنهن به صورت ۾ ڪعبي ڏانهن وڌڻ لاءِ نه اٿيو. سندس رخ اتر، ڏکڻ يا اوڀر طرف ڪيو ٿي ويو ته هڪدم اٿي ڊوڙڙ ٿي لڳو پر ڪعبي ڏانهن رخ ڪرڻ سان ويهي ٿي رهيو. ان دوران الله پڪين جو هڪ ٽولو موڪليو جنهن لشڪرن تي نڪرن جهڙا پٿر ڪيرايا ۽ الله تعاليٰ ان سان ئي کين کاڌل به جهڙو ڪري ڇڏيو. اهي پڪي ابا بيل ۽ ڪبر جهڙا هئا. هر پڪيءَ وٽ ٽي ٽي پٿريون هيون، هڪ جهنب ۾ ۽ ٻه ٻنبن ۾. اهي پٿريون ته چڻي جيتريون هيون پر جن کي لڳيون ٿي تن جا عضوا ڪٽجڻ شروع ٿي ٿي ويا ۽ اهو مري ٿي ويو. اهي پٿريون هر ماڻهوءَ کي ڪو نه ٿي لڳيون پر لشڪر ۾ اهڙي وٺ پڪڙ متي جو هر ماڻهو ٻئي کي لٽائيندي ڀڳو پئي ۽ رستي تي ئي ڪري مٿو ٿي. هوڏانهن ابرهه تي اهڙي آفت آيل هئي جو سندس آڱرين جا پور چڻي ويا ۽ صنعاءَ پهچندي پهچندي چوڙي جهڙو ٿي ويو ۽ پوءِ سندس ڇاتي ڦاٽي پئي ۽ دل ٻاهر نڪري آئي ۽ هو مري ويو.

ابرهه جي هن حملي جي موقعي تي مڪي جا رهاڪو جان جي ڊپ کان جبلن ۾ وڃي لڪيا هئا. جڏهن لشڪر تي الله جو عذاب نازل ٿي چڪو ته پوءِ سڪون سان گهر موٽي آيا. (1)

هي واقعو اڪثر سيرت نگارن مطابق نبي ﷺ جي ولادت کان رڳو پنججاه يا پنجونجاه ڏينهن اڳ محرم جي مهيني ۾ ٿيو. تنهن ڪري هي 571ع جي فيبروريءَ جي آخر يا مارچ جي شروع جو واقعو آهي. اها اصل ۾ تمهيدي نشاني هئي جا الله پنهنجي نبيءَ ۽ پنهنجي گهر جي سلسلي ۾ ظاهر ڪئي. ڇو ته بيت المقدس جيڪو پڻ مسلمانن جو قبلو هو ته به ان تي الله جي دشمنن يعني مشرڪن جو قبضو ٿي ويو. جيئن بخت نصر جي حملي (587 ق.م) ۽ روم وارن جي قبضي (670ع) ۾ ظاهر ٿيو پر ان جي ابتڙ ڪعبي تي عيسائين کي تسلط حاصل نه ٿي سگهيو. جڏهن ته ان وقت اهي ئي مسلمان هئا ۽ ڪعبي جا رهاڪو مشرڪ هئا.

اهو واقعو اهڙين حالتن ۾ ٿيو جو ان جي خبر ان وقت جي ترقي يافته ۽ سڌريل دنيا جي ڪافي علائقن يعني روم ۽ ايران ۾ هڪدم پهچي وئي. ڇو ته حبشه جو رومين سان گهرو تعلق هو ۽ ٻئي طرف فارسي، رومين ۽ سندن حليفن جي هر حرڪت تي نظر رکيو وينا هئا. اهو ئي سبب هو جو هن واقعي کانپوءِ فارسين ڏاڍي تڪڙ ۾ يمن تي قبضو ڪري ورتو. جيئن ته ان وقت اهي ئي ٻه حڪومتون ترقي يافته دنيا جون نمائنده هيون. ان ڪري هن واقعي سبب دنيا جون نظرون ڪعبته الله طرف لڳي ويون. کين بيت الله جي پاڪائي ۽ وڏائيءَ جي هڪ کليل نشاني نظر آئي هئي. هيءَ ڳالهه سندن دلين ۾ چڱي طرح گهر ڪري ويئي ته هن گهر کي الله تعاليٰ پاڪائيءَ لاءِ چونڊيو آهي. تنهن

<sup>1</sup> - ابن هشام (56\_43/1)، ڏسو سورة الفيل جي تفسير.

ڪري مستقبل ۾ هتي جي آبادي مان ڪنهن انسان پاران نبوت جي دعوا ڪرڻ هن واقعي جي گهرج جي مطابق ٿيندو ۽ خدا جي ان حڪمت جو تفسير هوندو جيڪا عالم اسباب کان انتهائي اوچي طريقي سان ايمان وارن جي خلاف مشرڪن جي مدد ۾ لڪل هئي.

عبدالمطلب جا ڪل ڏهه پٽ هئا جن جا نالا هن ريت آهن. حارث، زبير، ابو طالب، عبدالله، حمزة رضي الله عنه، ابولهب، غيداق، مقوم، صفار ۽ عباس رضي الله عنه ڪن جو چوڻ آهي ته يارنهن پٽ هئا هڪ جو نالو قشمر هو ۽ ڪي وري تيرنهن پڌائين ٿا، هڪ جو نالو عبدالڪعبه ۽ ٻئي جو حجل هو. پر ڏهن جا ڦاٽل چون ٿا ته مقوم جو نالو ئي عبدالڪعبه ۽ غيداق جو نالو حجل هو ۽ قشمر نالي ڪو به ماڻهو عبدالطلب جو پٽ نه هو. عبدالطلب جون ڇهه نياڻيون هيون. جن جا نالا امر الحڪيم جنهن جو نالو بيضاء آهي، بَرّه، عاتِڪه، صفيه، اروى، اُميمه هئا. <sup>(1)</sup>

(3) عبدالله: رسول الله صلى الله عليه وسلم جو والد محترم :- سندن والده جو نالو فاطمه هو ۽ اها عمرو بن عائذ بن عمران بن مخزوم بن يقظ بن مره جي نياڻي هئي. عبدالطلب جي اولاد مان عبدالله سڀ کان وڌيڪ سهڻا، نيڪ ۽ پيارا هئا ۽ ذبيح سڏبا هئا. ذبيح سڏجڻ جو سبب هي هو ته جڏهن عبدالطلب جي پٽن جو تعداد پورو ڏهه ٿي ويو ۽ اهي پنهنجي حفاظت ڪرڻ لائق ٿيا ته عبدالطلب کين پنهنجي باس کان واقف ڪيو. سڀني سندن ڳالهه مڃي جنهن کانپوءِ عبدالطلب قسمت جي تيرن تي سندن نالا لکيا ۽ هبل جي مجاور جي حوالي ڪيا. ان تيرن کي ڦيرائي ڪڍيو ته عبدالله جو نالو نڪتو. عبدالطلب، عبدالله جو هٿ جهليو ۽ چري ڪڍي کين ڪعبته الله وٽ وٺي آيو. پر قريش ۽ خاص طور تي عبدالله جا ناناڻا يعني بنو مخزوم ۽ عبدالله جو ڀاءُ ابو طالب وچ ۾ ٽپي پيا. عبدالطلب چيو ته پوءِ آئون پنهنجي باس جو ڇا ڪريان؟ انهن صلاح ڏني ته ڪنهن عرافه کان ان جو ٿوڙو پڇو، عبدالطلب هڪ عرافه وٽ ويو. ان چيو ته عبدالله ۽ ڏهن اٺن جا ڪڻا وجهو جيڪڏهن عبدالله جو نالو نڪري ته وڌيڪ ڏهه اٺ وڌائي ڇڏيو. ايسٽائين جو الله راضي ٿي وڃي. پوءِ جيترن اٺن جو ڪڻو نڪري تن کي ڪهجي. عبدالطلب واپس اچي عبدالله ۽ ڏهن اٺن جا ڪڻا وڌا. پر عبدالله جو نالو نڪتو. ان بعد هو ڏهه اٺ وڌائيندو ويو ۽ ڪڻا نڪرندا ويا ۽ هر ڀيري عبدالله جو نالو ٿي نڪتو. جڏهن سو اٺ پورا ٿيا ته ڪڻو اٺن جي نالي وارو نڪتو. هاڻي عبدالطلب انهن کي عبدالله جي بدران ڪنو ۽ اتي ئي ڇڏي ويو ته جيئن انسان يا جانور بنا روڪ توڪ جي اچي ڪڍي وڃن. ان واقعي کان اڳ قريش ۽ عربن ۾ خون بها (ديت) جو تعداد ڏهه اٺ هو پر هن واقعي کانپوءِ سو اٺ ٿي ويو.

<sup>1</sup> - تلقیح الفهوم (ص:8-9) رحمة للعالمين (2/56-66)، سيرة ابن هشام (1/108، 109).

اسلام به ان تعداد کي برقرار رکيو. نبي ﷺ جن فرمايو ته مان بن ذبيحن جو اولاد آهيان هڪ حضرت اسماعيل عليه السلام ۽ پيو سندن والد عبدالله. (1)

عبدال مطلب پنهنجي پٽ عبدالله جي شادي لاءِ بيبي آمنه کي چونڊيو. جيڪا وهب بن زهره بن ڪلاب جي نياڻي هئي ۽ نسب ۽ رتبي جي لحاظ کان قرين جي افضل ترين عورت ليکبي هئي. سندن والد نسب توڙي شرف، پنهني حيثيتن سان بنو زهره جو سردار هو. پاڻ مڪي مان ئي رخصتي ڪري حضرت عبدالله وٽ آيون پر ٿوري ئي عرصي کانپوءِ عبدال مطلب، عبدالله کي ڪجھون آڻڻ لاءِ مديني موڪليو جتي سندن انتقال ٿيو.

ڪي سيرت نگار چون ٿا ته پاڻ واپار سانگي شام ڏانهن ويا هئا. قرين جي هڪ قافلي سان واپس ايندي بيمار ٿي مديني ۾ لٿا ۽ اتي ئي گذاري ويا. سندن تدفين نابغه جعدي جي گهر ۾ ٿي. ان وقت سندن عمر 25 ورهيه هئي. اڪثر سيرت نگارن جو چوڻ آهي ته اجا رسول الله ﷺ پيدا ٿي نه ٿيا هئا. البته ڪن تاريخدانن جو چوڻ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ جي ولادت سندن وفات کان ٻه مهينا اڳ ٿي چڪي هئي. (2) سندن وفات جي خبر پهچڻ تي بيبي آمنه هڪ درد انگيز مرثيو چيو جو هتي ڏجي ٿو:

عفا جانب البطحاء من ابن هاشم وجاور لحدا خارجا في الغمغ  
دعته المنايا دعوت فاجاهما وما تركت في الناس مثل ابن هاشم  
عشية راحوا يحملون سريره تعاورة اصحابه في التراحم  
فان تك غالته المنايا وريها فقد كان معطاء كثير التراحم (3)

”بطحاء (وادي) جي هنج هاشم جي پٽ کان خالي ٿي وئي، هو بانگ و خروش جي وچ ۾ هڪ قبر ۾ سڪ جي نند وڃي ستو. کيس موت هڪ ڀيرو سڏيو ۽ هن لبيڪ چيو. هاڻي موت ابن هاشم جهڙو ڪو به ماڻهو نه ڇڏيو آهي. (ڪيڏي نه حسرتناڪ) اها شام جڏهن ماڻهو کين تخت تي کڻي وڃي رهيا هئا. جيڪڏهن موت ۽ موت جي حادثي سندن وجود ختم ڪري ڇڏيو آهي (ته به سندن ڪردار جا نقش نٿا مٽائي سگهجن) هو وڏو ڏاهو ۽ رحمدل هو.“

1 - ابن هشام (151/1 \_ 155) رحمة للعالمين (2/89-90)، مختصر سيرة الرسول ﷺ شيخ عبدالله (ص: 12-22-23)، تاريخ طبري (240/2، 243).

2 - ابن هشام (156/1-158)، فق السيره از محمد غزالي (ص: 45)، رحمة للعالمين (2/91)، تاريخ طبري (246/2)، الروض الانف (184/1).

3 - طبقات ابن سعد (1/100).

عبداللہ جي ڪل ميراث هيءَ هئي. پنج اٺ، ٻڪرين جو هڪ ڌڻ، هڪ حبشي ٻانهي جنهنجو نالو برڪت ۽ ڪنيت ام ايمن رضي الله عنها هئي. هيءَ اها ئي ام ايمن رضي الله عنها آهي جنهن پاڻ سڳورن کي ننڍي هوندي پاليو هو. (1)

\*\_\*\_\*

---

<sup>1</sup> - مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص:12)، تليق الفهوم (ص:4)، صحيح مسلم (2/96).



## ولادت باسعادت ۽ حياتيءَ جا چاليهه ورهيه

**ولادت باسعادت:-** رسول الله ﷺ جن مڪي ۾ شَعْبِ بني هاشم ۾ 9 ربيع الاول سنه 1 عام الفيل سومر جي ڏينهن صبح جي ويلي پيدا ٿيا. ان وقت نو شيروان کي تخت تي ويٺي چاليهه ورهه ٿي چڪا هئا. علامه محمد سليمان صاحب سلمان منصور پوري رحمته الله عليه ۽ محمود پاشا جي تحقيق مطابق 20 يا 22 اپريل جي تاريخ هئي. (1)

ابن سعد کان روايت آهي ته رسول الله ﷺ جي والده فرمايو ته "جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي ولادت ٿي ته منهنجي جسم مان هڪ نور نڪتو جنهن سان شام ملڪ جا محل روشن ٿي ويا". امام احمد رحمته الله عليه ۽ امام دارمي به ان سان ملندڙ جلندڙ هڪ روايت نقل فرمائي آهي. (2) ڪن روايتن ۾ ٻڌايل آهي ته ولادت وقت ڪي واقعا نبوت جي اڳڪٿين طور ظاهر ٿيا. يعني ڪسري جي محل جا چوڏنهن ڪنگرا ڪري پيا. مجوسين جو آتشڪدو وسامي ويو. بحيره ساوه سڪي ويو ۽ ان جا ديول ڪري پيا. اها طبري ۽ بيهقيءَ جي روايت آهي. (3) پر ان جي سند پايه ثبوت کي نٿي پهچي ۽ اهو ئي سبب آهي جو محمد غزالي به ان کي صحيح نه مڃيو آهي (4) ۽ انهن قومن جي تاريخ مان به ان جي گواهي نٿي ملي. حالانڪه ڳالهه کي قلمبند ڪرڻ لاءِ وڏو سبب موجود هو.

ولادت کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي والده، عبدالمطلب ڏانهن پوئي ڄمڻ جي خوشخبري موڪلي. اهو ٿڙندو ۽ خوش ٿيندو آيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪعبة الله ۾ کڻي وڃي الله تعاليٰ کان دعا گهريائين. سندس ٿورا مڃيائين ۽ پاڻ سڳورن جو نالو "محمد ﷺ" رکيائين. اهو نالو عربن ۾ عام نه هو. پوءِ عربن جي روايت مطابق ستين ڏينهن طهر ڪيائين. (5)

<sup>1</sup> - نتائج الافهام في تقويم العرب قبل الاسلام (28، 35) محمود پاشا تاريخ خضري (62/1)، رحمة للعالمين (38-39/1) اپريل جي تاريخ جو اختلاف عيسوي تقويم جي اختلاف ڪري آهي (20) اپريل قديم عيسوي ڪئلينڊر ۽ (22) اپريل جديد عيسوي ڪئلينڊر جي مطابق.

<sup>2</sup> - مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص:12)، ابن سعد (63/1)، مسند احمد (127/4، 128، 185) دارمي (9/1).

<sup>3</sup> - مختصر السيرة (ص:12)، دلائل النبوة للبيهقي (126/1)، تاريخ طبري (166/2، 167)، البداية والنهاية (268/2، 269).

<sup>4</sup> - دسوفه السيرة محمد غزالي (ص:46).

<sup>5</sup> - ابن هشام (159-160/1) تاريخ خضري (62/1)، هڪ قول هي به آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ مختون (طهر وينل) ٿي پيدا ٿيا هئا. دسو تلقيح النهوم (ص:4) پر ابن قير چوي ٿو ته ان بابت ڪا به صحيح حديث نه آهي. دسو زاد المعاد (18/1).

پاڻ سڳورن ﷺ کي سندن والده کانپوءِ سڀ کان پهرين ابولهب جي ٻانهي ٿويهه کير پياريو هو. ان وقت سندن کير پياڪ ٻار مسروح رضه هو. ٿويهه رضي الله عنها، پاڻ سڳورن ﷺ کان اڳ حضرت حمزه رضه بن عبدالمطلب کي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کان پوءِ ابو سلمه رضه بن عبدالاسد مخزومي کي کير پياريو هو. (1)

**بني سعد ۾:** - عربستان جي شهرن جي رهاڪن جو دستور هو ته اهي پنهنجن ٻارن کي شهر جي مرضن کان پري رکڻ لاءِ تڄ پياريندڙ بدوي عورتن جي حوالي ڪري ڇڏيندا هئا، جيستائين سندن جسم سگهارو ۽ توانو نه ٿي وڃي ۽ اهي اتان نج عربي به سڪي وٺن. ان دستور مطابق عبدالمطلب هڪ تڄ پياريندڙ دائيءَ کي ڳوليو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي بيبي حليمه رضي الله عنها بنت ابي ذؤيب جي حوالي ڪيو. هي عورت بني سعد بن بڪر قبيلي جي هئي. سندس مڙس جو نالو حارث بن عبدالعزيز ۽ ڪنيت ابو ڪبشه هئي ۽ اهو به بني سعد قبيلي منجهان هو. سندس اولاد جا نالا هي آهن جيڪي نبي اڪرم ﷺ جن جا تڄ شريڪ ڀائر ۽ پيٽيون هئا. عبدالله، انيس، حذاف يا جذام، ان جو ئي لقب شيماءِ هو ۽ ان نالي سان هوءَ گهڻو مشهور ٿي. اها ئي پاڻ سڳوري ﷺ کي ڪڇ ۾ کڻندي هئي. ان کانسواءِ ابو سفيان بن حارث بن عبدالمطلب جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ جا سوٽ هئا سي به بيبي حليمه رضي الله عنها جي واسطي سان پاڻ سڳورن ﷺ جا تڄ شريڪ ڀاءُ هئا. پاڻ سڳورن ﷺ جي چاچي حضرت حمزه رضه کي به تڄ پيارڻ لاءِ بني سعد جي هڪ عورت جي حوالي ڪيو ويو هو. ان عورت به هڪ ڏينهن، جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ بيبي حليمه رضي الله عنها وٽ هئا ته کين تڄ پياري هئي. ان طرح پاڻ سڳورا ﷺ ۽ حضرت حمزه رضه ٻٽا تڄ شريڪ ڀائر ٿي ويا. هڪ ٿويهه رضي الله عنها جي واسطي سان ۽ ٻيو بنو سعد جي ان عورت جي واسطي سان. (2)

تڄ پيارڻ وارن ڏينهن ۾ بيبي حليمه رضي الله عنها پاڻ سڳورن ﷺ جي برڪتن جا اهڙا اهڙا ڏيک ڏنا جو دنگ رهجي ويئي. تفصيل سندن واتان ٻڌو. ابن اسحاق ٻڌائي ٿو ته بيبي حليمه رضي الله عنها ٻڌائيندي هئي ته آئون پنهنجي گهر واري سان گڏ پنهنجو تڄ پياڪ ٻار کڻي بني سعد جي ڪن عورتن سان پنهنجي شهر کان ٻاهر تڄ پياڪ ٻارن جي ڳولا ۾ نڪتيس. اهي ڏڪار جا ڏينهن هئا ۽ ڏڪار ڪجهه به نه ڇڏيو هو. آئون پنهنجي اچي گڏهه تي سوار هيس. اسان سان هڪ ڏاچي به هئي پر خدا جو قسم! ان مان هڪ ڦڙو کير جو به نه نڪرندو هو. هوڏانهن ٻار بڪ

<sup>1</sup> - تلقيح الفهور (ص: 4) مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص: 13)، صحيح بخاري (حديث نمبر: 5100، 5101، 5106، 5107، 5372).

<sup>2</sup> - زاد المعاد (1/19).

کان روئي رهيو هو. اسين سڄي رات سمهي نٿي سگهياسين. نه منهنجي ڇاتيءَ ۾ ٻار لاءِ ڪجهه هو نه ئي ڏاڇي ان کي کاڌو ڏئي سگهي ٿي. بس اسين مينهن ۽ سڪار لاءِ آس لڳايو ويٺا هئاسين. آئون جڏهن پنهنجي گڏهه تي چڙهي هليس ته هوءَ ڪمزوري ۽ سنهڙي هجڻ ڪري ڏاڍي ڍلي پئي هلي. جنهن ڪري سڄو قافلو تنگ ٿي پيو پوءِ اسين ڪنهن نه ڪنهن طرح مڪي پهچي وياسين. اسان جي ٽولي ۾ شامل هر عورت آڏو پاڻ سڳورن ﷺ کي آندو ويو پر جڏهن کين ٻڌايو ويو ته پاڻ سڳورا يتيم آهن ته اهي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪڍڻ کان نهڪر ڪنديون ويون. ڇو ته اسين ٻار جي پيءَ کان وڌن انعامن جون اميدون رکنديون هيونسين. اسان چيو ته هي ته يتيم آهي، ڀلا سندن بيوهه ماءُ ۽ سندن ڏاڏو اسان کي ڇا ٿا ڏئي سگهن. ان ڪارڻ ئي اسان کين ڪڍڻ نٿي چاهيو.

هوڏانهن جيڪي عورتون آيون هيون، تن کي ته ڪو نه ڪو ٻار ملي ويو پر رڳو مون کي ٻار نه مليو. موٽڻ مهل پنهنجي مڙس کي چير ته الله جو قسم! مون کي اها ڳالهه صفا نٿي وڻي ته منهنجون سڀ ساهيڙيون ٻار وٺي هلن. رڳو آئون رهجي وڃان. تنهن ڪري آئون اهو يتيم ٻار ئي کڻي ٿي هلاڻ. مڙس چيو ته ڀلي! ٿي سگهي ٿو ته الله ان جي ڪري ئي اسان کي برڪت ڏي. ان کانپوءِ مون وڃي ٻار ورتو پر رڳو ان ڪري جو مون کي ٻيو ڪو ٻار نه مليو هو.

بيبي حليمه رضي الله عنها ٻڌائي ٿي ته جڏهن آئون ٻار کڻي پنهنجي ديري تي پهتيس ۽ ان کي پنهنجي ڪچ ۾ رکي تڃ پيارڻ لڳيس ته ٻئي ڇاتيون کير سان ڀرجي ويون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ پيٽ پري کير پيتو. ساڻن گڏ سندن ڀاءُ به پيٽ پري کير پيتو ۽ پوءِ ٻئي سمهي پيا. جڏهن ته ان کان اڳ اسين پنهنجي ٻار سان گڏ نند نٿي ڪري سگهياسين. هوڏانهن منهنجو مڙس ڏاڇيءَ کي ڏهڻ ويو ته سندس ٿڌ کير سان ڀريل ڏنائين. هن ايترو کير ڏنو جو اسان ٻنهي پيٽ پري کير پيتو ۽ ڏاڍي سڪ سان رات گذاري. صبح جو منهنجي مڙس چيو ته حليمه! الله جو قسم! تو هڪ ڀلارو روح حاصل ڪيو آهي. مون چيو ته آئون به ائين ٿي سمجهان.

حليمه رضي الله عنها ٻڌائي ٿي ته ان کانپوءِ اسان جو قافلو روانو ٿيو. آئون پنهنجي ڪمزور گڏهه تي چڙهيس ۽ ان ٻار کي به ساڻ ڪنير پر هاڻي اها ئي گڏهه الله جو قسم! سڄي قافلي کي پٺيان ڇڏي ايئن اڳيان وڻي جو ڪو گڏهه به کيس نه پڄي سگهيو. ايستائين جو منهنجون ساهيڙيون مون کي چوڻ لڳيون ته "او! ابو ذؤيب جي ڏيءَ! اڙي هي ڇا آهي؟ ٿورو اسان تي به مهرباني ڪر. آخر هيءَ تنهنجي اها ئي ته گڏهه آهي جنهن تي چڙهي تون آئي هئيسن؟" مون چيو ته: "ها ها! الله جو قسم هي اها ئي آهي" انهن چيو ته "هن ۾ پڪ ڪو چڪر آهي".

پوءِ اسين بنو سعد ۾ پنهنجي پنهنجي گهرن ۾ پهتاسين. آئون نٿي سمجهان ته هن ڌرتيءَ تي اسان جي علائقي کان وڌيڪ ڪو ٻيو ڏڪاريل هنڌ به هو. پر موٽڻ کانپوءِ منهنجون پڪريون چرڻ وينديون هيون ته اهي پيت پريل ۽ ڪير سان ٿم (پريل) موٽنديون هيون ۽ اسين اهو ڏهي پيئندا هئاسين. جڏهن ته ڪنهن ٻئي انسان جي پاڳ ۾ ڪير جو هڪ ڦڙو به نه هوندو هو. سندن جانورن جا ٿڻ صفا سڪل رهندا هئا. اسان جي قوم وارا پنهنجن ڌنارن کي ائين چوندا هئا ته نياڳا! جانور اتي چرڻ وٺي وڃو جتي ابو ذؤيب جي ڏيءَ جا ڌنار وٺي ويندا آهن. پر پوءِ به سندن پڪريون بڪيون موٽنديون هيون. انهن ۾ هڪ ڦڙو به ڪير جو نه هوندو هو ۽ منهنجون پڪريون ڪير سان ٿم تي تڙنديون ورنديون هيون. ان طرف اسان الله پاران لاڳيتو واڏي ۽ چڱائيءَ جو مشاهدو ڪندا رهياسين. تانجو به ورهيه گذري ويا ۽ مون ٻار کي ٿڃ ڇڏائي ڇڏي. هي ٻار ٻين جي مقابلي ۾ ائين وڏي رهيو هو جو ٻن ورهين جو ٿيندي سگهو ۽ جانئو ٿي ويو. ان کانپوءِ اسين کيس ماءُ جي حوالي ڪري آياسين پر جيئن ته اسان سندس برڪت ڏني هئي ان ڪري اسان جي خواهش هئي ته هو اڃان اسان وٽ رهي. تنهن ڪري اسان سندس والده سان ڳالهايو. مون چيو ته اوهان پنهنجو ٻار مون وٽ ئي رهڻ ڏيو پلي ڪجهه سگهارو ٿي وڃي. ڇو ته مون کي هن لاءِ مڪي جي وبا لڳڻ جو ڊپ آهي. مطلب ته ان اسان جي لڳاتار زور ڀرڻ تي ٻار اسان کي واپس ڏئي ڇڏيو. (1)

سينو چيرڻ وارو واقعو (واقعہ شق صدر): - ان طرح پاڻ سڳورا ﷺ ٿڃ ڇڏائڻ کانپوءِ به بني سعد ۾ رهيا. تانجو سندن ولادت جي چوٿين يا پنجين سال (2) شق صدر (سيني مبارڪ چيرڻ) جو واقعو پيش آيو. صحيح مسلم ۾ حضرت انس رضی اللہ عنہ کان ان واقعي جي باري ۾ روايت آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ وٽ حضرت جبرئيل عليه السلام آيو. پاڻ سڳورا ﷺ ٻارن سان ڪيڏي رهيا هئا. حضرت جبرئيل عليه السلام کين پڪڙي لڻايو ۽ سندن سينو چيري دل ڪڍي پوءِ دل مان گوشت جو هڪ ٽڪر ڪڍي فرمايو ته هيءُ توهان ۾ شيطان جو حصو آهي. پوءِ دل کي هڪ ٿال ۾ رکي زمزم جي پاڻيءَ سان ڌوئو ۽ پوءِ ان کي جوڙي ساڳي جڳهه تي لڳائي ڇڏيو. هوڏانهن ٻار ڊوڙي پنهنجي ماءُ يعني دائي حليمه وٽ پهتا ۽ چوڻ لڳا ته محمد ﷺ قتل ڪيو ويو آهي. گهر جا ماڻهو تڪڙا تڪڙا پهتا، ڏنائون ته سندن منهن لٿو پيوهو. (3)

1 - ابن هشام (162/1-163-164).

2 - عام سيرت نگارن جو اهو ئي چوڻ آهي پر ابن اسحاق جي روايت مان خبر پوي ٿي ته هي واقعو ٽي سال جو آهي. ڏسو ابن هشام (1/165-164).

3 - صحيح مسلم باب الاسرا (92/1).

ماءَ جي پيار پري هنج:- ان واقعي کانپوءِ بيبي حليمه رضي الله عنها کي ڊپ محسوس ٿيو ۽ انهن پاڻ سڳورن ﷺ کي پنهنجي ماءَ وٽ موڪلي ڇڏيو. اهڙي طرح پاڻ ﷺ ڇهن ورهين جي ڄمار تائين سڳوريءَ ماءَ جي قرب جي ڄانو هيٺ رهيا. (1)

هوڏانهن بيبي آمنه پنهنجي گهر واري جي ثربت ڏسڻ لاءِ يثرب وڃڻ جو ارادو ڪيو ۽ پنهنجي يتيم ٻار محمد ﷺ پنهنجي ٻانهي ام ايمن رضي الله عنها ۽ پنهنجي سنڀاليندڙ عبدالمطلب سان گڏ پنج سو ڪلوميٽرن جو رستو طئه ڪري مديني پهتي ۽ اتي هڪ مهينو گذاري واپس ٿي پر سفر شروع ٿيندي ئي بيمار ٿي پئي ۽ بيماري وڌندي وئي تانجو مڪي ۽ مديني جي وچ ۾ ”ابواء“ وٽ پهچي وفات ڪيائين. (2)

ڏاڏي جي مهربانين جي ڄانو ۾:- پيرسن عبدالمطلب پنهنجي پوٽي کي مڪي وٺي آيو. سندس دل پوٽي جي محبت ۽ شفقت سان تمتار هئي، ڇو ته سندس جيءَ کي وري جوکو رسيو هو، جنهن پراڻا ڦٽ اڪوڙي ڇڏيا هئا. عبدالمطلب جي دل ۾ پوٽي لاءِ ايڏي محبت هئي جيڏي ڪنهن پنهنجي پٽ سان به نه هئي. تنهن ڪري پاڻ سڳورن ﷺ کي اڪيلائيءَ جي رڻ پٽ ۾ ڇڏڻ لاءِ تيار نه هو ۽ کين پنهنجي اولاد کان وڌيڪ چاهيائين ۽ وڏن وانگر سندن احترام ڪيائين. ابن هشام جو چوڻ آهي ته عبدالمطلب لاءِ ڪعبه الله جي سائي ۾ غلر وڃائبو هو. سندس سمورا فرزند ان غلر جي چوڌاري ويهندا هئا، عبدالمطلب اچي ان غلر تي ويهندو هو. سندس ادب ۽ وڏائيءَ ڪارڻ ڪو به پٽ غلر تي نه ويهندو هو پر پاڻ سڳورا ﷺ ايندا هئا ته ان غلر تي ئي ويهندا هئا. پاڻ ﷺ اڃا ننڍا هئا. سندن چاچا کين جهلي هيٺ لاهيندا هئا پر عبدالمطلب کين منع ڪندي فرمائيندو هو ته منهنجي هن پٽ کي ڇڏي ڏيو. الله جو قسم! هن جو شان ئي نرالو آهي. پوءِ ان کي پاڻ سان گڏ غلر تي ويهاري بندو هو. سندن پٺي ٺپري بندو هو ۽ سندن حرڪتون ڏسي خوش ٿيندو هو. (3)

پاڻ سڳورن ﷺ جي عمر اڃا اٺ سال به مهينا ۽ ڏهه ڏينهن ٿي ته ڏاڏي عبدالمطلب جو شفقت ڀريو سايو هتي ويو. سندن مڪي ۾ انتقال ٿيو. پاڻ وفات کان اڳ پاڻ سڳورن ﷺ کي عبدالله جي سڳي ڀاءُ ابو طالب جي نگرانيءَ ۾ ڏيڻ جي وصيت ڪري ويا. (4)

1 - تلقيح الفهوم (ص:7) ابن هشام (168/1).

2 - ابن هشام (168/1) - تلقيح الفهوم (ص:7)، تاريخ خضري (63/1)، فق السيرة غزالي (ص:50).

3 - ابن هشام (168/1).

4 - تلقيح الفهوم (ص:7)، ابن هشام (149/1).

**مهربان چاچي جي سنڀال ۾** - ابو طالب پنهنجي پائيتي کي ڏاڍي سٺي نموني پاليو. کين ﷺ پنهنجو اولاد ليکيو. بلڪ انهن کان به وڌيڪ سمجهيو ۽ وڌيڪ عزت ۽ احترام ڏنو. چاليهه ورهين کان وڌيڪ عرصو پاڻ سڳورن ﷺ جون ضرورتون پوريون ڪيون. هميشه سندن ﷺ حمايت ڪئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي ڪري دوستيون ۽ دشمنيون ڪيون، جن جي وضاحت اڳتي ايندي.

**پاڻ سڳورن ﷺ جي مينهن لاءِ دعا گهرڻ:** - ابن عساکر، جلهم بن عرفط کان روايت

ڪئي آهي ته آئون مڪي آيس، جتي ڏڪار هو. قريش ابو طالب کي چيو ته سڄي ماڻهي ڏڪاريل آهي، ٻار ٻچا پريشان آهن، اوهان مينهن لاءِ دعا گهرو. ابو طالب هڪ ٻار کي ساڻ وٺي آيو. ٻار جو منهن ايئن لڳي رهيو هو جڻ اجا هاڻ ڪڪرن مان نڪتو هجي. انجي چوڌاري ٻيا ٻار به هئا. ابو طالب سندس هٿ جهلي سندس پٺي ڪعبي جي پٽ سان لڳائي ڇڏي. ٻار سندس آڱر جهلي بيٺو هو. ان وقت آسمان تي ڪڪر جو ڪو ننڍڙو ٽڪر به ڪو نه هو. پر (ڏسندي ڏسندي) هتان هتان کان ڪڪر اچڻ شروع ٿي ويا ۽ اهڙو ته تيز مينهن پيو جو سڄي ماڻهي ٻر ٻوڏ اچي وئي ۽ شهر ۽ ويرانا شاداب ٿي پيا. بعد ۾ ابو طالب ان واقعي ڏانهن اشارو ڪندي محمد ﷺ جي ساراهه ڪندي چيو ته:

وَأَيُّضُ يُسْتَسْفَى الْعَمَامُ بِوَجْهِهِ ... ثَمَالُ الْيَتَامَى عَصْمَةً لِلْأَرَامِلِ (1)

"هو سهڻو آهي، سندس منهن مان مينهن جي نعمت گهري سگهجي ٿي. يتيمن جو پرجهلو ۽ بيواهن جو سنڀاليندڙ آهي".

**بحيرا نالي راهب:** - ڪن روايتن مطابق، جيڪي سند جي اعتبار کان مجموعي طور تي ثابت ۽ مستند آهي ته جڏهن پاڻ سڳورا ٻارنهن ورهين جا يا هڪ قول مطابق ٻارنهن سال ٻه مهينا ۽ ڏهن ڏينهن جا ٿيا. (2) ته ابو طالب پاڻ سڳورن ﷺ کي واپاري سفر تي وٺي شام لاءِ نڪتا ۽ بصرى پهتا. بصرى شام جو هڪ علائقو ۽ حوران جو مرڪزي شهر آهي. ان وقت اهو عربستان جي روم پاران قبضي ڪيل علائقن جي گاديءَ جو هنڌ هو. ان شهر ۾ جرجيس نالي هڪ راهب رهندو هو، جيڪو بحيرا جي لقب سان مشهور هو. جڏهن قافلي وارن اتي ديرو ڄمايو ته اهو راهب پنهنجي ديول مان نڪري قافلي ۾ آيو ۽ ان جي ميزباني ڪئي، جڏهن ته ان کان اڳ هو ڪڏهن به ديول مان نه نڪرندو هو. ان رسول الله ﷺ کي سندن نشانين ذريعي سڃاڻي ورتو ۽ سندن هٿ جهلي چيو ته: ”هيءُ ته جهانن جو سردار آهي. الله هن کي جهانن لاءِ رحمت ڪري موڪليو آهي“ ابو طالب پڇيو ته: توهان ڪيئن ڄاتو؟ هن ورائيو ته توهان جڏهن ماڻهي جي هن پار کان ظاهر ٿيا ته اهڙو

<sup>1</sup> - مختصر السيره شيخ عبدالله (ص: 15-16).

<sup>2</sup> - هيءُ ڳالھ ابن جوزيءَ تليح الفهوم جي (ص: 7) ۾ لکي آهي.

ڪو به وڻ يا پٿر نه هو جيڪو سجدي لاءِ نه جهڪيو هجي. اهي شيون نئين ڪانسواءِ ڪنهن کي به سجدو نٿيون ڪن. مون کين نبوت جي مهر مان به سڃاتو آهي جا ڪلهي هيٺان پٺي (نرم هڏي) وٽ صوف جهڙو آهي. جنهن جو ذڪر اسان جي ڪتابن ۾ به ڪيل آهي.

ان بعد بحيرا راهب، ابو طالب کي چيو ته هن کي واپس موڪلي ڇڏ. شام ملڪ ڏي نه وٺي وڃ ڇو ته اتي يهودين کان هن کي خطرو آهي. تنهن تي ابو طالب ڪن ٻانهن سان پاڻ سڳورن ﷺ کي واپس مڪي موڪلي ڇڏيو. (1)

**فجار واري جنگ:-** پاڻ سڳورا جڏهن ويهه ورهين جا ٿيا ته عڪاظ جي بازار ۾ قريش ۽ ڪنانه، قيس ۽ عيلان جي وچ ۾ ذوالقعدة جي مهيني ۾ هڪ لڙائي لڳي جيڪا جنگ فجار جي نالي سان مشهور ٿي.

ان جو سبب اهو هو جو بنو ڪنانه قبيلي جي هڪ شخص براض قيس بن عيلان جي ٽن شخصن کي ماري وڌو جنهن جي خبر جڏهن عڪاظ پهتي ته ٻئي ڌرين وڙهڻ لاءِ اڀيون ٿي ويون ۽ جنگ شروع ٿي ويئي.

قريش ۽ ڪنانه وارن جو سپهه سالار حرب بن اميه هو. جيڪو پنهنجي عمر ۽ عزت ۾ قريش ۽ بنو ڪنانه وارن ۾ وڏي مرتبي وارو هو. پهرين ڀيري ته ڪنانه وارن کان قيس وارا زور هئا. پنهنجي ٿيندي ئي قيس وارن تي ڪنانه وارن جي سوڀ ٿيڻ واري هئي ته ايتري ۾ ٺاه لاءِ آواز بلند ٿيڻ لڳا، ۽ اها تجويز آئي ته ٻنهي گروهن جا مقتول ڳڻيا وڃن، جنهن جا وڌيڪ ٿين انهن کي وڌيڪ ديت ڏني وڃي. نيٺ ان ڳالهه تي ٺاه ٿيو ۽ جنگ ختم ڪئي ويئي ۽ جيڪا بچڙائي ۽ دشمني پيدا ٿي هئي ان جون پاڙون پٽيون ويون. ان جنگ کي فجار واري جنگ ان ڪري چون ٿا جو ان ۾ حرام مهينن جي تقدس کي پامال ڪيو ويو هو. هن لڙائيءَ ۾ رسول الله ﷺ به شامل ٿيا ۽ پنهنجن چاچن کي تير ڏيندا ٿي ويا. (2)

**حلف الفضول:-** هن جنگ کانپوءِ هڪ حرمت واري مهيني ذوالقعدة ۾ ”حلف الفضول“ جو واقعو ٿيو. ڪن قريش قبيلن يعني بني هاشم، بني مطلب، بني اسد بن عبدالعزيز، بني زهره بن ڪلاب ۽ بني تيمر بن مره هن جو اهتمام ڪيو. اهي عبدالله بن جدعان تيمي جي جڳهه تي گڏ ٿيا. ڇو ته اهو به

1 - جامع ترمذي (5/ 550، 551، 3620)، تاريخ طبري (2/ 278، 279)، مصنف ابن ابي شيبه (11/ 489)، دلائل النبوة بيهقي (2/ 24، 25)، هن روايت جي سند قوي آهي البتہ ان جي آخر ۾ هي لفظ آهن ته: پاڻ ﷺ کي بلال رضی اللہ عنہ سان گڏ واپس موڪليو ويو. پر اها صريح غلطي آهي. ته بلال ان وقت شايد جاول به نه هو. جي ڄاڻو به هو ته ابوطالب يا ابوبڪر سان گڏ نه هو. (زاد المعاد 1/ 17) ابن هشام (180/ 183).

2 - ابن هشام (1/ 184، 186)، قلب جزيره العرب (ص: 360) تاريخ خضري (1/ 63)، المنق في اخبار قريش (164- 185)، ڪامل ابن اثير (1/ 468، 472).

معزز سردار هو. هنن پاڻ ۾ واعدا وعيد ڪيا ته مڪي ۾ ڪنهن سان به ظلم نه ٿيندو. ڀلي اهو مڪي جو هجي يا ٻاهر جو. اهي سڀ گڏجي سندس مدد ڪندا ۽ کيس حق ڏياري رهندا. ان ميڙ ۾ رسول الله ﷺ به شامل ٿيا هئا ۽ رسالت ملڻ کانپوءِ فرمائيندا هئا ته "آئون عبدالله بن جدعان جي جڳهه تي هڪ اهڙي ٺاه ۾ شامل ٿيس، جنهن جي بدلي ۾ مون کي ڳاڙهو اٺ به پسند ڪونهي ۽ جي اسلام (جي دور) ۾ مون کي اهڙي ٺاه لاءِ سڏيو وڃي ته آئون هڪدم هليو وڃان." (1)

هن ٺاه ۾ عصبيت جي بنيادن تي قائم ٿيل جاهلائي نقصانڪار پائيجاري کان انڪار ٿيل هو. هن ٺاه جو سبب هي ٻڌايو وڃي ٿو ته زبيد جو هڪ ماڻهو مڪي ۾ سامان کڻي آيو ۽ عاص بن وائل ان کان سامان ورتو پر کيس حق نه ڏنائين. هن (زبيدي) حليف قبيلن عبدالدار، مخزوم، جمع، سهر ۽ عدي کي مدد لاءِ پڪاريو پر ڪنهن به ڌيان نه ڏنو. پوءِ هو ابو قبيس جبل تي چڙهي وڏي واڪي شعر پڙهڻ لڳو، جنهن ۾ سندس مظلوميت جو داستان ٻڌايل هو. ان تي زبير بن عبدالمطلب ڊوڙ ڊڪ ڪئي ۽ چيو ته هي ماڻهو بي سهارو ڇو آهي ان جي ڪوشش سان مٿيان ذڪرڪيل قبيلن گڏ ٿيا. پهرين ٺاه ٿيو ۽ پوءِ زبيديءَ کي عاص بن وائل کان حق وٺرائي ڏنو ويو. (2)

**سخت محنت واري حياتي:-** پاڻ سڳورن ﷺ جو نوجوانيءَ ۾ ڪو به مقرر ڏندو نه هوندو هو. باقي اها ته پڪي خبر آهي ته پاڻ بڪريون چاريندا هئا. پاڻ سڳورن بني سعد جون بڪريون چاريون. (3) ۽ مڪي ۾ به مڪي وارن جون بڪريون ٿورن قيراطن ۾ چاريندا هئا. (4) ۽ غالباً جوان ٿيا ته واپار ڏانهن لاڙو ڪيائون چوته هي روايت اچي ٿي ته پاڻ سائب بن يزيد مخزومي سان گڏجي واپار ڪندا هئا، ۽ تمام سٺا پائيوار هئا نه ڪنهن قسم جي هيرا ڦيري ۽ نه ئي وري ڪا اڻوڻت ٿين نيٺ جڏهن سائب فتح مڪي واري ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ جن وٽ آيو ته پاڻ انتهائي سهڻي انداز سان سندن آڏرياءُ ڪيائون ۽ فرمايائون ته منهنجا پاءُ ۽ منهنجا پائيوار ڀلي ڪري آئين. پنجويهن ورهين جا ٿيا ته بيبي خديجة الكبرى رضي الله عنها جو مال کڻي واپار لاءِ شام ويا. ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته خديجه بنت خويلد رضي الله عنها هڪ معزز مالدار ۽ واپاري عورت هئي. ماڻهن کي پنهنجو مال واپار لاءِ ڏيندي هئي ۽ واپاري اصول مطابق هڪ حصو مقرر ڪندي هئي. سڄو قريش

1 - ابن هشام (133-135)، مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص: 30-31).

2 - طبقات ابن سعد (1/126، 128)، نسب قريش للزبيدي (291).

3 - ابن هشام (1/166).

4 - صحيح بخاري (301/1) (حديث نمبر 2262).



قبيلو ئي واپاري هو. جڏهن کين پاڻ سڳوري ﷺ جي سڃاڻيءَ امانت ۽ سهڻن گڻن جو پتو پيو ته ان هڪ نياپو موڪلي کين پنهنجي ٻانهي ميسره سان شام ڏانهن واپاري مال کڻي وڃڻ جي آڇ ڪئي. پاڻ جيڪي ڪجهه ٻين واپارين کي ڏيندي هئي، ان کان وڌيڪ پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏيڻو ڪيائون. پاڻ سڳورن ﷺ اها آڇ قبولي ۽ سندن مال کڻي سندن غلام ميسره سان شام ڏانهن روانا ٿيا. (1)

**پاڻ سڳورن ﷺ جي بيبي خديجه رضي الله عنها سان شادي:-** جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ مڪي موٽيا ۽ بيبي صاحبہ رضي الله عنها پنهنجي مال ۾ اهڙي برڪت ۽ امانت ڏني جيڪا کين پهرين نظر نه آئي هئي ۽ هوڏانهن سندن ٻانهي ميسره سندن سهڻن گڻن ۽ سني ڪردار، صحيح سوچ، سڃاڻي ۽ امانتداري جي طور طريقي بابت پنهنجن مشاهدن جو بيان ڪيو ته بيبي صاحبہ رضي الله عنها جن کي ڄڻ ته وڃايل خزانو ملي ويو. ان کان اڳ وڏا وڏا سردار ساڻن شادي ڪرڻ جا خواهشمند هئا پر پاڻ ڪنهن جو به پيغام منظور نه ڪيائون. هاڻي پاڻ پنهنجي دل جي ڳالهه پنهنجي ساهيڙي نفيسه بنت منبه سان ڪيائون. جنهن پاڻ سڳورن ﷺ سان ڳالهه ٻولهه ڪئي. پاڻ سڳورا ﷺ راضي ٿي ويا ۽ پنهنجن ڇاڇن سان ان سلسلي ۾ ڳالهائون جن بيبي صاحبہ رضي الله عنها جي ڇاڇي کي شاديءَ جو پيغام موڪليو. ان کانپوءِ شادي ٿي وئي. نڪاح ۾ بني هاشم ۽ مضر قبيلي جا رئيس شامل ٿيا.

اها شام کان موٽڻ جي ٻن مهينن کانپوءِ جي ڳالهه آهي. مسعودي يقين سان ذڪر ڪيو آهي ته پاڻ جنگ فجار کان چار سال نو مهينا ڇهه ڏينهن پوءِ شام ملڪ جو سفر ڪيائون سيده خديجه رضي الله عنها سان سندن شادي شام ملڪ ڏانهن روانگي کان ٻه مهينا چوويهن ڏينهن کان پوءِ ٿي.

پاڻ سڳورن ﷺ مهر ۾ ويهه اٺ ڏنا. ان وقت بيبي خديجه رضي الله عنها جي عمر چاليهه سال هئي. بي قول مطابق اٺاويهه سال هئي. ۽ پاڻ خاندان، دولت ۽ ڏاهپ ڪري پنهنجي قوم ۾ سڀ کان معزز ۽ مان واري ليکبي هئي. پاڻ پهرين عورت هئي جن سان پاڻ سڳورن ﷺ شادي ڪئي ۽ سندن وفات تائين بي شادي نه ڪيائون. (2)

ابراهيم کانسواءِ پاڻ سڳورن ﷺ جا ٻيا سڀ ٻار سندن ئي بطن مبارڪ مان هئا. سڀ کان پهرين قاسم جي ولادت ٿي ۽ ان جي ئي نالي تي پاڻ سڳورن ﷺ جي ڪنيت ابو القاسم پئي. پوءِ زينب، رقيه، ام ڪلثوم، فاطمه ۽ عبدالله رضي الله عنهم پيدا ٿيا. عبدالله جو لقب طيب ۽ ظاهر

<sup>1</sup> - ابن هشام (187/1-188).

<sup>2</sup> - ابن هشام (189-190)، فقه السيرة (ص: 59) تلقيح الفهوم (ص: 7).

هو. پاڻ سڳورن ﷺ جا سڀ پٽ ننڍي هوندي ئي گذاري ويا. باقي نياڻين مان سڀني اسلام جو زمانو ڏٺو، مسلمان ٿيون ۽ هجرت جو شرف به حاصل ڪيائون پر سواءِ بيبي فاطمه رضي الله عنها جي ٻيون سڀئي پاڻ سڳورن ﷺ جي حياتيءَ ۾ ئي گذاري ويون. بيبي فاطمه رضي الله عنها جي وفات پاڻ سڳورن ﷺ جي لاڏاڻي کان ڇهه مهينا پوءِ ٿي. (1)

### ڪعبي جي اڏاوت ۽ حجر اسود جي تڪرار جو فيصلو:- جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ

پنجتپهه ورهين جا ٿيا ته قريش نئين سر ڪعبي جي اڏاوت شروع ڪئي. سبب اهو هو ته ڪعبو قد کان ٿورو ئي مٿي چوڌيواريءَ جي شڪل ۾ هو. حضرت اسماعيل عليه السلام جي دور کان ئي ان جي اوچائي 9 هٿ هئي ۽ ان تي ڇت نه هئي. ان حالت جو فائدو وٺي ڪي چور ڪعبي ۾ رکيل ڏن چورائي ويا. ان کانسواءِ اڏاوت کي ڊگهو عرصو گذري چڪو هو ۽ عمارت پُري رهي هئي ۽ پٽيون ڦاٽي پيون هيون. هوڏانهن ان ئي سال سخت ٻوڏ آئي، جنهن جو رخ ڪعبي ڏانهن هو. جنهن جي ڪري ڪعبة الله ڪڏهن به ڊهي سگهيو ٿي. ان ڪري قريش ان جو مرتبو ۽ مقام برقرار رکڻ لاءِ مجبور ٿي پيا. ان موقعي تي قريش گڏيل فيصلو ڪيو ته ڪعبي جي اڏاوت رڳو حلال پيسن سان ڪئي ويندي. ان ۾ رنڊيءَ جي ڪمائي، وياج جا ڏوڪڙ ۽ ڪنهن کان قريل مال استعمال نه ڪبو. (نئين تعمير لاءِ پراڻي عمارت ڊاهڻ ضروري هئي، پر ڪنهن کي به ان جي همت نه هئي. آخرڪار وليد بن مغيرة مخزوميءَ ان جي شروعات ڪئي ۽ بيلچو کڻي اهو چيائين ته: اي الله! اسين پلائي جو ارادو ڪيون ٿا ان کان پوءِ ٻن ڪنڊن جي پاسن کي ڍانڍو ويو. ماڻهن جڏهن ڏٺو ته کيس ڪو جوڪو نه رسيو ته ٻين به ڊاهڻ شروع ڪيو ۽ جڏهن حضرت ابراهيم عليه السلام وارين حدن تائين ڊاهي ڇڏيائون ته نئين اڏاوت شروع ڪيائون. اڏاوت لاءِ هر قبيلي کي جدا جدا ڪم ڏنو ويو. هر قبيلو الڳ الڳ پٿر گڏ ڪري رهيو هو. اڏاوت شروع ٿي جنهن جو نگران باقوم نالي هڪ رومي رازو هو. جڏهن عمارت حجر اسود تائين نهي وئي ته اهو جهڳڙو شروع ٿي پيو ته حجر اسود کي لڳائڻ جو اعزاز ڪنهن کي ڏجي. اهو جهڳڙو چئن پنجن ڏينهن تائين هليو ۽ آهستي آهستي وڌندو ويو. ايئن پئي لڳو ته اجها ٿي حرم جي زمين تي رتوچاڻ ٿئي، پر ابو اميه مخزوميءَ اهو چئي ناهه جي گنجائش ڪيي ورتي ته مسجد الحرام جي دروازي کان ٻئي ڏينهن جيڪو سڀ کان اڳ اندر ايندو ان کي جهڳڙي جو منصف ڪيو ويندو. ماڻهن اها راءِ قبولي. الله جي مرضيءَ سان سڀ کان اڳ پاڻ سڳورا ﷺ اندر داخل ٿيا. ماڻهو کين ڏسي واکا ڪرڻ لڳا ته: هذا الامين رضينا هذا محمد ﷺ "هي امين آهي، اسين ان تي رضامند آهيون، هي محمد ﷺ آهي". جڏهن پاڻ سڳورا

1 - ابن هشام (190/1\_191)، فقه السيرة (ص:60)، فتح الباري (7/105).

ﷺ ويجهڙا پهتا ۽ انهن کين معاملي کان آگاه ڪيو ته پاڻ سڳورن ﷺ هڪ چادر گهراڻي ان جي وچ ۾ حجرا سود رکيو ۽ تڪراري قبيلن جي سردارن کي فرمايائون ته توهان سڀ چادر جون ڪنڊون جهلي مٿي کڻو. انهن ايئن ئي ڪيو. جڏهن چادر حجرا سود واري جاءِ تي پهتي ته پاڻ سڳورن پنهنجن هٿن سان حجرا سود کي سندس جاءِ تي لڳايو. اهو هڪ اهڙو فيصلو هو، جنهن سان سڄي قوم راضي ٿي وئي.

هوڏانهن قريشن وٽ حلال مال کڻي پيو ان ڪري انهن اتر طرف کان ڪعبة الله جي ڊگهائي تقريباً ڇهه هٿ گهٽ ڪري ڇڏي. ان حصي کي ئي حجر ۽ حطيم چئجي ٿو. هن پيري قريشن ڪعبي جو در پٽ کان ڪافي مٿي لڳايو. جيئن ڪو به ماڻهو موڪل وٺي اندر وڃي. جڏهن پٽيون 15 هٿ مٿي ڪڇي ويون تڏهن اندر ڇهه ٽنڀا بيهاري پٽ لڳائي وئي. اهڙيءَ طرح اڏاوت پوري ٿيڻ وقت ڪعبو جهڙوڪ چوڪور (چوڪنڊو) وڃي بيٺو. هاڻي ڪعبة الله جي اوچائي 15 ميٽر آهي. حجرا سود واري پٽ ۽ ان جي سامهون واري پٽ يعني اترائين ۽ ڏاکڻي پٽ ڏهه ڏهه ميٽر آهي. حجرا سود مطاف جي زمين کان ڏيڍ ميٽر مٿاهون آهي. در واري پٽ ۽ ان جي سامهون واري پٽ جي اوچائي 12-12 ميٽر آهي. در زمين کان ٻه ميٽر اوچو آهي. پٽين جي چوڌاري هڪ ڪرسيءَ جهڙو گهيرو آهي. جنهن جي اوچائي 25 سينٽي ميٽر ۽ ويڪر 30 ميٽر آهي. ان کي ”شاڌ روان“ چوندا آهن. اهو به اصل ۾ بيت الله جو حصو آهي پر قريشن ان کي به ڇڏي ڏنو هو.<sup>(1)</sup>

**نبوت کان اڳ پاڻ سڳورن ﷺ جي ڪردار جو جائزو:-** سندن وجود انهن سڀني گڻن ۽ ڪمالن جو مجموعو هو جيڪي مختلف ماڻهن ۾ ٿورا ٿورا ملن ٿا. پاڻ سڳورا ﷺ صحيح سوچ، وسيع نظري ۽ حق پسنديءَ جا بلند مينار هئا. کين صحيح سمجهه، فڪر جي پختگي ۽ عمل لاءِ صحيح رستو وٺڻ جي صلاحيت حاصل هئي. پاڻ سڳورا ﷺ حق کي ڄاڻڻ لاءِ خاموشيءَ سان لڳاتار غور ۽ فڪر ڪندا رهندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي سلجهيل عقل ۽ روشن فطرت سان زندگيءَ جي ڪتاب، ماڻهن جي معاملن ۽ جماعتن جي احوال جو مطالعو ڪيو ۽ جن اجاين ڳالهين ۾ اهي قاتل هئا تن کان بيزاري محسوس ڪئي. تنهن ڪري پاڻ سڳورن ﷺ انهن سڀني کان پاسو ڪندي پوري سوچ ۽ سمجهه سان سماجي زندگي گذاري. يعني جيڪو چڱو ڪم هوندو هو ته شريڪ ٿيندا هئا نه ته اڪيلائي اختيار ڪندا هئا. جيئن قريش جاهليت ۾ عاشوري جو روزو رکندا هئا. رسول الله ﷺ به جاهليت جي زماني ۾ اهو روزو رکندا هئا. اهو ئي سبب هو جو پاڻ

<sup>1</sup> - تفصيل لاءِ ڏسو ابن هشام (192/1 \_ 197)، فقه السيرة (ص: 62-63)، صحيح بخاري باب فضل مڪر وبنيانها (215/1)، تاريخ خضري (64-65/2)، تاريخ طبري (289/2)

سڳورن ﷺ شراب ڪڏهن چڪيو به ڪو نه. آستانن تي ڪنل جانورن جو گوشت به نه کاڌو ۽ نه ئي وري بتن جي ڏهاڙن ۽ ميلن وغيره ۾ شرڪت ڪئي.

پاڻ سڳورن ﷺ کي شروع کان ئي انهن ڪوڙن خدائن کان ايڏي نفرت هئي جو انهن کان وڌيڪ ڪنهن به شيءِ کي برو نه سمجهندا هئا. ويندي لات ۽ عزلي جو قسم ٻڌڻ به کين نه وڻندو هو. (1)

ان ۾ ڪو شڪ ڪونهي ته قدرت پاڻ سڳورن جي حفاظت پئي ڪئي. تڏهن جيڪڏهن ڪن دنياڻي فائدين ڏانهن سندن دل چڪ کاڌي به يا ڪن اڻوڻندڙ رسمن رواجن جي پيروي ڪرڻ چاهيائون ته به الله جي مهربانيءَ سان ان کان پري ڪيا ويا. ابن اثير هڪ هنڌ لکي ٿو ته رسول الله ﷺ فرمايو ته "جاهليت وارا جيڪي ڪم ڪندا هئا تن جي ڪرڻ جو خيال مون کي فقط به پيرا ٿيو پر ٻئي پيرا الله تعاليٰ منهنجي ۽ ان ڪم جي وچ ۾ رنڊڪ وجهي ڇڏي. ان کان پوءِ وري ڪڏهن به مون کي انهن جو خيال نه ٿيو. ايسٽائين جو الله تعاليٰ مون کي پيغمبري عطا ڪري ڇڏي. ٿيو هيئن ته جيڪو چوڪرو مڪي جي مٿئين علائقي ۾ پڪريون چاريندو هو ان کي هڪ رات مون چيو ته: تون منهنجون پڪريون ڏس ته آئون مڪي وڃي ٻين نوجوانن وانگر رات جي راڳن جي محفل ۾ شريڪ ٿيان! هن ها ڪئي. ان کانپوءِ آئون نڪتس پر اڃا مڪي جي پهرئين گهر وٽ پهتس ته واڃن جا آواز ڪنن ۾ پيا. مون پڇا ڪئي ته هي ڇا آهي؟ ماڻهن چيو ته فلاڻي جي فلاڻي سان شادي آهي. آئون ٻڌڻ وينس ته الله منهنجا ڪن بند ڪري ڇڏيا ۽ آئون سمهي پيس. پوءِ سج جي تپش سان ئي منهنجي اک کلي ۽ آئون پنهنجي ساٿي وٽ هليو ويس ۽ سندس پچڻ تي سڄو احوال ٻڌايم. ان کانپوءِ هڪ رات وري اها ڳالهه چئي مڪي پهتس ته وري اڳين رات وانگر ٿيو. ان کانپوءِ وري اهڙو خيال نه ڪيم. (2)

صحيح بخاريءَ ۾ حضرت جابر بن عبدالله کان روايت آهي ته جڏهن ڪعبه الله جي اڏاوت ٿي ته پاڻ سڳورا ﷺ ۽ حضرت عباس رضيه الله عنه پتر کڻي رهيا هئا. حضرت عباس رضيه الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ته پنهنجي گوڏ لاهي پنهنجي ڪلهي تي رکو. پتر کڻڻ جي تڪليف کان محفوظ رهندا. پاڻ سڳورن ﷺ جيئن ئي ايئن ڪيو ته يڪدم پت تي ڪري پيا ۽ نگاهون مٿي ڪڇي ويون. تڪليف گهٽ ٿيندي ئي دانهن ڪيائون ته منهنجي گوڏ، منهنجي گوڏ، پوءِ کين گوڏ ٻڏي وئي. (3) هڪ روايت جا لفظ آهن ته ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي شرمگاهه وري ڪڏهن ڪنهن نه ڏني. (4)

1 - ابن هشام (128/1)، طبري. (161/2)، تهذيب تاريخ دمشق (373/1، 376).

2 - هن حديث کي حاڪم ۽ ذهبيءَ صحيح چيو آهي پر ابن ڪثير البدايه والنهابه (287/2) ۾ ان کي ضعيف ڪوٺيو آهي.

3 - صحيح بخاري (540/1).

4 - صحيح بخاري (540/1).

پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجي قوم ۾ سنن گڻن، بهترين اخلاقي قدرن ۽ سلڇڻين عادتن جي ڪري ٻين کان مختلف هئا. تنهنڪري پاڻ سڳورا کان وڌيڪ مروت وارا، سڳورا کان وڌيڪ خوش اخلاق، سڳورا کان بهترين پاڙيسري، سڳورا کان وڌيڪ دوراندیش، سڳورا کان وڌيڪ سچا، سڳورا کان وڌيڪ نرم دل، سڳورا کان وڌيڪ اجري من وارا، سڳورا کان وڌيڪ ڪرم ڪرڻ وارا، سڳورا کان وڌيڪ نيڪ، واعدو پاڙڻ ۾ سڳورا کان اڳرا ۽ سڳورا کان وڏا امانتدار، سندن قوم ته سندن نالو ئي "امين" رکي ڇڏيو هو. سنن لڇڻن ۽ سهڻن گڻن جا مالڪ هئا ۽ جيئن بيبي خديجه رضي الله عنها جي شاهدي ڏنل آهي ته "پاڻ سڳورا بي پهچن جا بار کڻندا هئا، خالي هٿ وارن جي سنڀال ڪندا هئا، مهمانن جي ميزباني ڪندا هئا ۽ متاثر جي مدد ڪندا هئا".<sup>(1)</sup>

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (3/1).

## نبوت ۽ رسالت جي زندگيءَ جو مڪي دور. نبوت ۽ دعوت جو مڪي دور

نبوت ۽ رسالت جي منصب تي فائز ٿيڻ کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي زندگي جا ٻه نمايان دور آهن جيڪي ٻئي هڪٻئي کان بالڪل جدا آهن.

(1) مڪي دور، اٽڪل تيرنهن سال (2) مدني دور، پورا ڏهه سال.

انهن مان هر هڪ دور جا ڪيترائي مرحلا آهن، هر مرحلي جون پنهنجون پنهنجون خاصيتون آهن، جن جي ڪري ٻين مرحلن کان ممتاز آهن. پنهنجي دورن ۾ رسول الله ﷺ جي دعوت جن حالتن مان گذري آهي ان تي گهري نظر وجهڻ سان هيءَ ڳالهه واضح ٿئي ٿي.

(1) ماڻ ميث ۾ ۽ اڪيلي سر ڪيل تبليغ جو مرحلو ٿي سال.

(2) مڪي وارن کي ڪليو ڪلايو دعوت ڏيڻ جو مرحلو، نبوت جي چوٿين سال جي شروع کان مديني ڏانهن هجرت تائين مشتمل آهي.

(3) مڪي کان ٻاهر دعوت کي عام ڪرڻ (پڪيڙڻ) جو مرحلو. نبوت جي ڏهين سال جي شروع کان، هن مرحلي ۾ مدني دور شامل آهي ۽ نبي ﷺ جي آخري زندگي تائين.....

مدني دور جي مرحلن جي وضاحت پنهنجي جاءِ تي ايندي.

\*\_\*\_\*

## نبوت ۽ رسالت جي چانو ۾

غار حرا ۾ :- پاڻ سڳورا ﷺ هاڻي چاليهه ورهين جي ويجهو پهچي چڪا هئا. ان دوران قوم کان سندن ذهني ۽ فكري ويڇا ڪافي وڌي چڪا هئا. جنهن ڪري پاڻ گهڻو ڪري اڪيلائي پسند ڪرڻ لڳا. تنهن ڪري پاڻ سڳورا کاڌي پيئي جو سامان کڻي مڪي کان اٽڪل ٻه ميل پري حرا جبل جي هڪ غار ۾ وڃي رهندا هئا. اهو هڪ ننڍڙو غار هو جيڪو چارگڙ ڊگهو ۽ ٻه گز ويڪرو آهي. پاڻ سڳورا ﷺ جڏهن اتي ويندا هئا ته بيبي خديجه رضي الله عنها جن به ساڻن گڏ وينديون هيون ۽ ڪنهن ويجهي جاءِ تي رهنديون هيون. پاڻ سڳورا ﷺ سڄو رمضان ان غار ۾ رهندا هئا. اتان ننگهندڙ مسڪينن کي کاڌو کارائيندا هئا ۽ باقي وقت الله تعاليٰ جي عبادت ۾ گذاريندا هئا ۽ ڪائنات جو مشاهدو ۽ ان جي پويان ڪم ڪندڙ قدرت تي غور ڪندا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ قوم جي شرڪيه عقيدن ۽ اجاين تصورن کي صحيح نه سمجهندا هئا. پر سندن سامهون ڪو کليل رستو ۽ صحيح طريقو نه هو جنهن تي سندن دل مبارڪ اطمينان سان هلي سگهي. (1)

پاڻ سڳورن جي اها اڪيلائي پسندي به اصل ۾ الله تعاليٰ جي تدبير جو هڪ حصو هئي. ان طرح الله تعاليٰ کين مستقبل جي عظيم ڪم لاءِ تيار ڪري رهيو هو. اصل ۾ جنهن روح جو به اهو مقدر هوندو آهي ته هو انساني زندگي جي حقيقتن تي اثر انداز ٿي انهن جو رخ مٽائي وجهي ان لاءِ ضروري آهي ته ڪجهه وقت زمين جي مشغلتن زندگيءَ جي گوڙ گهمسان ۽ ماڻهن جي غم ۽ خوشيءَ جي ماحول کان ڪجهه وقت ڪتجي الڳ ٿلڳ گوشه نشينيءَ واري زندگي گذاري.

نيڪ ان سنت مطابق الله تعاليٰ محمد ﷺ کي وڏي امانت جو بار کڻڻ، سڄي زمين جي ماحول کي بدلڻ ۽ تاريخ جو رخ موڙڻ لاءِ تيار ڪرڻ چاهيو ته رسالت جي ذميداري ڏيڻ کان ٿي ورهيه پهرين پاڻ سڳورن ﷺ کي گوشه نشيني اختيار ڪرڻ تي مجبور ڪيائين. پاڻ سڳورا ﷺ ان اڪيلاپ ۾ هڪ مهيني تائين ڪائنات جي روح کي سمجهندا رهيا ۽ ان جي وجود پويان لڪل سببن جي ڄاڻ حاصل ڪندا رهيا ته جيئن جڏهن الله تعاليٰ جو سڏ اچي ته پاڻ ﷺ ان ڪم لاءِ اڳيئي تيار هجن. (2) چيو وڃي ٿو ته عبدالمطلب ٿي پهريون شخص آهي جنهن غار حرا ۾ عبادت ڪئي. جيئن ٿي رمضان المبارڪ جو مهينو ايندو هو ته هو اتي هليو ويندو هو ۽ پورو مهينو مسڪينن کي کاڌو کارائيندو هو.

<sup>1</sup> - رحمت للعالمين 1/47، ابن هشام 1/235-236، في ظلال القرآن (166/29).

<sup>2</sup> - اصل واقعي لاءِ ڏسو صحيح بخاري (حديث نمبر 3) سيرت ابن هشام (235/1، 236).

**جبرئيل وحي آئي تو:-** جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي عمر چاليهه ورهيه ٿي وئي جنهن کي ڪمال حاصل ڪرڻ جي عمر چئجي ٿو. چيو وڃي ٿو ته ان عمر ۾ ئي پيغمبرن کي پيغمبري ملندي رهي آهي ته زندگيءَ جي آسمان جي بئي پار نبوت جا آثار چمڪڻ ۽ تمتائڻ شروع ٿيا. ان حالت ۾ ڇهن مهينن جو عرصو گذري ويو. جيڪو نبوت جي عرصي جو (46) چائيتاليهون حصو آهي ۽ نبوت واري زندگي ڪُل ٽيويهه ورهيه آهي. ان بعد جڏهن حرا ۾ اڪيلائيءَ جو ٽيون شروع سال ٿيو ته الله تعاليٰ چاهيو ته سڄي ڌرتيءَ جي رهاڪن تي سندس رحمت جي پالوت ٿئي. ان ڪري الله تعاليٰ پاڻ سڳورن ﷺ کي نبوت جو شرف بخشيو ۽ جبرئيل عليه السلام قرآن مجيد جون ڪجهه آيتون ڪڍي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيا. (1)

دليلن ۽ نشانين تي گهري نظر وجهڻ کانپوءِ حضرت جبرئيل عليه السلام جي اچڻ واري واقعي جي تاريخ ڄاڻي سگهجي ٿي. اسان جي تحقيق مطابق اهو واقعو رمضان المبارڪ جي 21 تاريخ سومر جي رات جو ٿيو. ان ڏينهن آگسٽ جي 10 تاريخ هئي ۽ سن 610ع هو. چنڊ جي حساب سان پاڻ سڳورن جي عمر چاليهه ورهيه ڇهه مهينا ٻارنهن ڏينهن ۽ سج جي حساب سان 39 سال تي مهينا 22 ڏينهن هئي. (2)

<sup>1</sup> - حافظ ابن حجر جو چوڻ آهي ته بيهقي اها حڪايت آندي آهي ته خوابن جو عرصو ڇهه مهينا هو. تنهن ڪري خوابن ذريعي نبوت جو آغاز چاليهه سال عمر پوري ٿيڻ تي ربيع الاول جي مهيني ۾ ٿيو، جيڪو پاڻ سڳورن جي ڄمڻ جو مهينو آهي پر سڃاڳيءَ جي حالت ۾ وحي رمضان شريف ۾ نازل ٿي. (فتح الباري 1/27).

<sup>2</sup> - وحي اچڻ جو مهينو، ڏينهن ۽ تاريخ:- مورخن ۾ وڏو اختلاف آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ تي ڪهڙي مهيني ۾ وحي نازل ٿي. گهڻن سيرت نگارن جو چوڻ آهي ته اهو ربيع الاول جو مهينو هو. پر هڪ ڌڙي جو چوڻ آهي ته اهو رمضان جو مهينو هو. ڪي اهو به چون ٿا ته رجب جو مهينو هو. (ڏسو مختصر السيره از شيخ عبدالله ص/75) اسان جي ويجهو ٻيو قول وڌيڪ صحيح آهي ته اهو رمضان جو مهينو هو. ڇو ته الله تعاليٰ فرمايو آهي ته «شَهْرُ رَمَضَانَ الَّذِي أُنزِلَ فِيهِ الْقُرْآنُ» (البقرة، 185) ”رمضان جو مهينو ئي اهو (برڪتن وارو مهينو آهي) جنهن ۾ قرآن ڪريم نازل ڪيو ويو“ ۽ فرمايو آهي ته: «إِنَّا أَنْزَلْنَاهُ فِي لَيْلَةِ الْقَدْرِ» (القدر، 1) ”اسان قرآن کي ليله القدر ۾ نازل ڪيو“ ۽ سڀ ڄاڻن ٿا ته ليله القدر رمضان ۾ آهي. اها ئي رات الله تعاليٰ جي هن ارشاد ۾ به آهي ته: «إِنَّا أَنْزَلْنَاهُ فِي لَيْلَةِ مَبْرَكَةٍ إِنَّا كُنَّا مُنذِرِينَ» (الدخان، 3) اسان قرآن کي هڪ ڀلائي رات ۾ لاٿو. اسين ماڻهن کي عذاب جي خطري کان آگاهه ڪرڻ وارا آهيون. بئي قول جي ترجيح جو هڪ سبب اهو به آهي ته حرا ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي بيٺڪ رمضان ۾ ٿيندي هئي ۽ معلوم آهي ته جبرئيل عليه السلام حرا ۾ ئي تشريف فرمائيندو هو. جيڪي ماڻهو رمضان ۾ وحي لهڻ جا قائل آهن، انهن ۾ به اختلاف آهي ته ان ڏينهن ڪهڙي تاريخ هئي. ڪي ستنن چون ٿا ته ڪي سترهين ۽ ڪي وري ارڙهين (ڏسو مختصر السيره ص/75، رحمة للعالمين 49/1) علامه خضري زور ٿو ڀري ته اها سترهين تاريخ هئي. (ڏسو تاريخ خضري 69/1، ۽ تاريخ التشریح الاسلامي (ص 5-6-7) مون ايڪيهين تاريخ ان لاءِ لکي آهي، حالانڪ مون کي ان جو ڪو قائل نٿو ملي، جو اڪثر سيرتنگارن جو اتفاق آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ تي سومر جي ڏينهن وحي ٿي ۽ ان جي تائيد ابو قتاده رضی اللہ عنہ جي هن روايت مان به ٿئي ٿي ته رسول الله ﷺ کان سومر جي ڏينهن جي روزي بابت پڇيو ويو ته پاڻ فرمايائون ته هي اهو ڏينهن آهي. جنهن تي مان پيدا ٿيس ۽ جنهن ڏينهن مون کي پيغمبر ڪيو ويو ۽ جنهن ڏينهن مون تي وحي ٿي. (صحيح مسلم 368/1، مسند احمد 297/5-299، بيهقي 286/4، 300، حاڪم 2/2-6) ۽ ان سان رمضان ۾ سومر جو ڏينهن 7-14-21 ۽ 28 تاريخ تي ٿيو هو. هوڏانهن صحيح روايتن مان اها ڳالهه چٽي ٿيل آهي ته ليله القدر رمضان جي آخري ڏهي جي اڪي (طاق) راتين ۾ ٿيندي آهي ۽ انهن ئي اڪي راتين ۾ منتقل ٿيندي رهندي آهي. هاڻي هڪ طرف اسين



اهي واقعا، جيڪي نبوت جي شروعات آهن، جن سان كفر ۽ ضلالت جو انڌيرو چُٽي ويو ۽ زندگيءَ جو ڍنگ بدلجي ويو ۽ تاريخ جو رخ متجي ويو، انهن جي باري ۾ ام المؤمنين عائشه رضي الله عنها فرمائي ٿي ته پاڻ سڳورن ﷺ تي وحيءَ جي ابتدا نند جي حالت ۾ سنا خواب ڏسڻ سان ٿي. پاڻ سڳورن ﷺ جيڪو خواب ڏسندا هئا، بلڪل ايئن ٿيندو هو. پوءِ پاڻ اڪيلائي پسند ٿي ويا. تنهن ڪري غار حرا ۾ اڪيلا وڃي رهندا هئا. ۽ ڪيترن ڏينهن تائين گهر نه ايندا هئا بلڪ عبادت ۾ مشغول رهندا هئا ان ڪري ثمر ساڻ ڪڍي ويندا هئا. پوءِ (ڪاڏو پيٽو ختم ٿيڻ تي) بيبي خديجه رضي الله عنها وٽ واپس ويندا هئا ۽ وري تقريبن اوترو ئي ثمر ساڻ وري ڪڍي ويندا هئا جيڪي ڏينهن ڪين رهڻو هوندو هو. تان جو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ حق آيو ۽ پاڻ غار حرا ۾ هئا يعني پاڻ سڳورن وٽ فرشتو آيو ۽ ان چيو ته پڙه! پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته آئون پڙهيل نه آهيان. پاڻ سڳورا ﷺ فرمائين ٿا ته ان تي هن مون کي جهلي ايترو زور سان دٻايو جو منهنجو ست نڪري ويو. پوءِ چڏي چيائين ته پڙه! مون چيو ته آئون پڙهيل نه آهيان. ان تي ٻيهر جهليائين ۽ وري چيائين ته پڙه! مون وري چيو ته آئون پڙهيل نه آهيان. ان تي تيون پيرو جهلي زور ڏنائين ۽ وري چڏي چيائين ته:

﴿أَفِرُّ بِاسْمِ رَبِّكَ الَّذِي خَلَقَ (1) خَلَقَ الْإِنْسَانَ مِنْ عَلَقٍ (2) اقْرَأْ وَرَبُّكَ الْأَكْرَمُ (3)﴾<sup>(1)</sup>

”پڙه پنهنجي رب جي نالي سان جنهن پيدا ڪيو. انسان کي لوڙڙي مان پيدا ڪيو. پڙه ۽ تنهنجو رب ڏاڍو ڪرم وارو آهي.“

انهن آيتن سان پاڻ سڳورا ﷺ موتيا. سندس دل ڏاڍي ڌڙڪي رهي هئي. بيبي خديجه رضي الله عنها بنت خويلد وٽ آيا ۽ فرمايائون ته مون کي چادر ڍڪاءِ. انهن کين چادر ڍڪائي آهستي آهستي سندن ڊپ لٿو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ بيبي خديجه رضي الله عنها کي سڄو واقعو ٻڌائي فرمايو ته: هي مون کي ڇا ٿي ويو آهي؟ مون کي ته پنهنجي ساهه سان اچي لڳي آهي. بيبي صاحب فرمايو ته هرگز نه: الله جو قسم! اوهان کي الله تعاليٰ رسوا نه ڪندو جو توهان رحمدل آهيو، بي آسرن جا پر جهلا ٿيو ٿا. مسڪنين کي سنڀاليو ٿا. مهمانن جي ميزباني ڪريو ٿا ۽ حق لاءِ سختيون سهندڙن جي مدد به ڪريو ٿا.

الله تعاليٰ جو فرمان ڏسون ٿا ته اسان قرآن مجيد کي ليلته القدر ۾ لائو، ٻئي پاسي ابو قتاده رضه جي اها روايت آهي ته رسول الله ﷺ کي سومر ڏينهن بيغمبري ملي. ٽي پاسي ڪيليندر مان ڄاڻ ملي ٿي ته ان سال سومر ڪهڙين ڪهڙين تاريخن تي ٿيو هو ته اهو طئي ٿيو وڃي ته نبي ﷺ کي ايڪيهين رمضان جي رات بيغمبري ملي. ان ڪري اها ئي وحي لهڻ جي پهرين تاريخ آهي.

<sup>1</sup> - آيتون (عَلَّمَ الْإِنْسَانَ مَا لَمْ يَعْلَم) تائين لٿيون هيون. (العلق: 1-5).

ان کانپوءِ بيبي خديجه رضي الله عنها جن پاڻ سڳورن کي پنهنجي سوٽ ورقه بن نوفل بن اسد بن عبدالعزى وٽ وٺي ويون. ورقه جاهليت واري دور ۾ عيسائي ٿي ويو هو ۽ عبراني لکڻ ڄاڻندو هو. ان ڪري عبراني ٻوليءَ ۾ الله جي توفيق سان انجيل جي شرح ڪندو هو. ان وقت پاڻ پوڙهو ۽ اکين کان جڏو ٿي چڪو هو. ان کي بيبي صاحبہ رضي الله عنها چيو ته ادا سائين! اوهان پنهنجي پائتي جي ڳالهه ٻڌو. ورقه چيو ته پائتيا توڃا ڏنو آهي. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ جيڪي ڏنو هو سو بيان ڪري ڏنو. ان تي ورقه پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ته: اهو ته ساڳيو ناموس آهي جنهن کي الله تعاليٰ موسيٰ عليه السلام تي لائو هو. ڪاش! مان ان وقت سگهو هجان ڪاش! مان ان وقت جيئرو هجان، جڏهن توهان کي توهان جي قوم ڪڍي ڇڏيندي. پاڻ سڳورن فرمايو ته اڃا! ته ڇا اهي ماڻهو مون کي ڪڍي ڇڏيندا؟ ورقه چيو ته ها! جڏهن به ڪو ماڻهو اهڙو نياپو ڪڍي آيو، جهڙو تو آندو آهي ته ان سان وير ضرور وڌو ويو آهي. جيڪڏهن مون تنهنجو دور ڏنو ته تنهنجي وڏي مدد ڪندس. ان کانپوءِ جلد ئي ورقه گذاري ويو ۽ وحي (به في الحال) رکجي وئي. (1)

طبري ۽ ابن هشام جي روايتن مان ڄاڻ ملي ٿي ته پاڻ اوجھي وحي اچڻ کانپوءِ غار حرا مان نڪتا هئا، سو واپس وڃي باقي عرصو به اتي رهيا، ان کانپوءِ مڪي ۾ آيا. طبري جي روايت ۾ پاڻ سڳورن جي نڪرڻ جي سببن تي به روشني وڌل آهي.

پاڻ سڳورن ﷺ وحي لهڻ جو ذڪر ڪندي فرمايو: "الله جي مخلوق ۾ شاعر ۽ چرئي کان وڌيڪ منهنجي ويجهو ڪو به ٻيو ڌڪارڻ جهڙو نه هو (آئون سخت ڌڪار ڪري) انهن ڏانهن ڏسندو به ڪو نه هئس (هاڻي وحي لٿي ته) مون (دل ۾) چيو ته هي ناڪاره يعني مان پاڻ شاعر يا چريو آهيان! مون بابت قريش اهڙي ڳالهه ڪڏهن به نه چئي سگهندا. آئون جبل جي چوٽيءَ تي وڃان ٿو، اتان کان پاڻ کي هيٺ ڪيرائيندس ۽ پاڻ کي پورو ڪندس ۽ هميشه لاءِ ڇڏي ويندس". پاڻ سڳورا ﷺ فرمائيندا هئا ته آئون اهو سوچي نڪتس. جڏهن جبل جي وچ تي پهتس ته آسمان مان هڪ آواز آيو ته: اي محمد ﷺ تون الله جو رسول آهين ۽ آئون جبرئيل عليه السلام آهيان. پاڻ سڳورا ﷺ فرمائين ٿا ته مون آسمان ڏي سر ڪڍي نهاريو. ڏنر ته جبرئيل عليه السلام هڪ ماڻهوءَ جي شڪل ۾ افق تي پير ڄمائي بيٺو آهي ۽ چوي پيو ته: اي محمد ﷺ تون الله جو رسول آهين ۽ آئون جبرئيل عليه السلام. پاڻ سڳورا ﷺ فرمائين ٿا ته آئون اتي بيهي جبرئيل عليه السلام کي ڏسڻ لڳس. ان مشغلي جي ڪارڻ پنهنجي ارادي کان غافل ٿي ويس. هاڻي آئون نه اڳيان پئي ويس نه ئي پٺيان پئي ٿيس. البتہ پنهنجي چهري کي اڀ تي هيڏانهن هوڏانهن ۾ گهمائي رهيو هوس ۽ ان

<sup>1</sup> - صحيح بخاري باب كيف كان بدء الوحي (3-2/1) لفظن جي ٿوري فرق سان اها روايت صحيح بخاريءَ جي ڪتاب التفسير ۽ تفسير الرويا ۾ به آهي.

جي جنهن پاسي به نظر پئي ٿي اتي جبرئيل عليه السلام نظر اچي رهيو هو. آئون لڳاتار بيهي رهيس. نه اڳيان پئي ويس نه پٺيان. تانجو خديج رضي الله عنها منهنجي ڳولا ۾ ماڻهو موڪليا ۽ اهي مڪي تائين وڃي موٽي آيا پر آئون پنهنجي جڳهه تي بيٺو رهيس. پوءِ جبرئيل عليه السلام ويو هليو ۽ آئون به پنهنجي گهر وارن ڏانهن موٽي آيس ۽ خديج وٽ پهچي ان کي ٿيڪ ڏئي ويهي رهيس. ان چيو ته ابوالقاسم! اوهان ڪيڏانهن ويا هئا. الله جو قسم! مون اوهان جي ڳولا ۾ ماڻهو موڪليا ۽ اهي مڪي تائين وڃي موٽي آيا آهن (ان جي جواب ۾) مون جيڪو ڏٺو هو اهو ڪين ٻڌايو. انهن چيو ته اي سوٽ! اوهان خوش ٿي وڃو ۽ ثابت قدم رهو. ان ذات جو قسم. جنهن جي قبضي ۾ منهنجي جان آهي، مون کي اميد آهي ته اوهان هن امت جا نبي ٿيندا. ان کان پوءِ پاڻ ورقه بن نوفل وٽ ويو ۽ ڪين وهيو واپريو ٻڌايائون. ان چيو ته قدوس قدوس! ان ذات جو قسم جنهن جي هٿ ۾ ورقه جي جان آهي، هن وٽ اهو ئي ناموس اڪبر آيو آهي جو موسىٰ عليه السلام وٽ ايندو هو. هو هن امت جو نبي آهي. ڪين چئو ته ثابت قدم رهن. ان کانپوءِ بيبي خديج رضي الله عنها واپس اچي پاڻ سڳورن ﷺ کي ورقه جي ڳالهه ٻڌائي. پوءِ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ حرا ۾ پنهنجو مقرر وقت پورو ڪيو ۽ مڪي موٽيا ته پاڻ سڳورن ﷺ سان ورقه مليو ۽ پاڻ سڳورن جي زباني تفصيل ٻڌي چيائين ته: ان ذات جو قسم جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي. توهان هن قوم جا نبي آهيو. اوهان وٽ اهو ئي ناموس اڪبر آيو آهي، جيڪو موسىٰ عليه السلام وٽ آيو هو. (1)

وحيءَ جي روڪ:- وحيءَ جي روڪ بابت ابن سعد، ابن عباس رضي الله عنهما کان روايت نقل ڪئي آهي، جنهن جو مفهوم اهو آهي ته اها روڪ ٿورن ڏينهن لاءِ هئي (2) ۽ سڀني پاسن کي جانچڻ کانپوءِ اها ئي ڳالهه راجح بلڪ يقيني معلوم ٿئي ٿي. ۽ جيڪو مشهور آهي ته وحيءَ جي روڪ تي ورهيه يا اڍائي ورهيه هئي، اهو هرگز صحيح نه آهي.

روايتن ۽ اهل علم جي اقوال جو مطالعو ڪرڻ کان پوءِ آئون هڪ عجيب و غريب نتيجي تي پهتو آهيان جنهن جو ذڪر مون کي ڪنهن به صاحب علم وٽ نه مليو آهي. ان جي توضيح اها آهي ته روايتن ۽ اهل علم جي قولن مان معلوم ٿئي ٿو ته پاڻ ﷺ جن هر سال غار حرا ۾ هڪ مهينو قيام فرمائيندا هئا جيڪو رمضان جو مهينو هوندو هو. پاڻ اهو ڪم نبوت ملڻ کان ٽي سال پهرئين شروع ڪيو هيائون. ۽

1 - طبري 2/207 ابن هشام 1/237-238 آخري ٿورو حصو ڪٽيو ويو آهي. اسان کي هن روايت جي بيان ڪيل تفصيل بابت ڪجهه شڪ آهي. صحيح بخاريءَ جي روايت ۽ ٻين ڳچ روايتن ۾ ڀيٽ ڪرڻ کانپوءِ اسين ان نتيجي تي پهتا آهيون ته مڪي ڏانهن سندن موٽ ۽ ورقه سان ملاقات وحي لهڻ بعد ان ڏينهن ئي ٿي وئي پوءِ حرا ۾ مقرر وقت تائين رهي مڪي موٽيا.

2 - فتح الباري (27/1)، (360/12)

نبوت وارو سال ان ڪم جو آخري سال هو. رمضان جي پوري ٿيڻ سان ئي سندن قيام به ختم ٿي ويندو هو. ۽ پاڻ پهرئين شوال تي صبح ساڻ گهر واپس اچي ويندا هئا. هوڏانهن صحيحين جي روايتن ۾ اها ڳالهه وضاحت سان بيان ڪئي ويئي آهي ته وحيءَ جي بندش کان پوءِ جڏهن ٻيهر وحي جو نزول ٿيو ته ان وقت پاڻ ﷺ غار حرا ۾ پنهنجي سڪونت جو مهينو پورو ڪري واپس اچي رهيا هئا. ان ڪري اهو نتيجو نڪري ٿو ته جنهن رمضان ۾ پاڻ وحي ۽ نبوت سان سرشار ٿيا انهيءَ ئي رمضان جي پوري ٿيڻ کان پوءِ پهرئين شوال تي ٻيهر وحي نازل ٿي. ڇو ته غار حرا ۾ سندن ترسڻ جو آخري موقعو هو ۽ جڏهن اها ڳالهه ثابت آهي ته پاڻ ﷺ تي پهرئين وحي 21 رمضان سومر جي رات نازل ٿي ته ان جو مطلب اهو آهي ته وحيءَ جي بندش صرف ڏهن ڏينهن ٿي ۽ خميس جي ڏينهن نبوت جي پهرئين سال پهرئين شوال تي وحيءَ جو ٻيهر نزول ٿيو. شايد ان جو اهو ئي سبب آهي جو رمضان جي آخري ڏهي کي اعتڪاف لاءِ ۽ پهرئين شوال کي عيد لاءِ خاص ڪيو ويو. واللہ اعلم.

وحيءَ جي روڪ وارن ڏينهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ نهايت غمگين رهندا هئا ۽ سندن مٿان حيرت ۽ استعجاب جي ڪيفيت طاري رهندي هئي. جيئن صحيح بخاري ڪتاب التعبير ۾ آيل آهي ته: "وحي بند ٿي وئي، جنهن ڪري رسول الله ﷺ ايترا ملول ٿيا جو گچ پيرا مٿانهن جبلن تي هليا ويندا هئا ته جيئن اتان پاڻ کي ڪيرائي ڇڏين پر جڏهن ڪنهن جبل جي چوٽيءَ تي پاڻ ڪيرائڻ لاءِ پهچندا هئا ته حضرت جبرئيل عليه السلام ظاهر ٿي چوندو هو ته "اي محمد! ﷺ توهان الله جا سچا رسول آهيو". جنهن جي ڪري پاڻ سڳورن جي پريشانن جهڪي ٿي ويندي هئي، نفس کي سڪون ملندو هو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ موتي ايندا هئا. وري جڏهن وحيءَ جي روڪ وڌي ويندي هئي ته وري اهڙي ئي ارادي سان نڪري پوندا هئا پوءِ جڏهن جبل جي چوٽيءَ تي پهچندا هئا ته حضرت جبرئيل عليه السلام ظاهر ٿي ساڳي ڳالهه ورجائيندو هو. (1)

**جبرئيل عليه السلام جو ٻيهر وحي کڻي اچڻ:** - حافظ ابن حجر رحمته الله عليه فرمائي ٿو ته اها (يعني وحيءَ جي ٿورن ڏينهن لاءِ روڪ) ان لاءِ هئي ته جيئن پاڻ سڳورن ﷺ جي دل مان ڊپ نڪري وڃي ۽ ٻيهر وحي اچڻ جو شوق ۽ انتظار پيدا ٿئي. (2) تنهن ڪري جڏهن حيرت جي ڌنڌ ڇڏي ۽ حقيقت جا نقش پڪا ٿي ويا ۽ نبي ﷺ کي پڪي ڄاڻ پئجي وئي ته پاڻ ﷺ الله جا نبي ٿي چڪا آهن ۽ وٽن جيڪو ماڻهو آيو هو اهو وحيءَ جو سفير ۽ آسمان جون خبرون ٻڌائڻ وارو آهي. ان طرح

<sup>1</sup> - صحيح بخاري ڪتاب التعبير باب اول مابدي به رسول الله ﷺ الرؤيا الصالحة 2/1034.

<sup>2</sup> - فتح الباري 1/27.

وحيء لاء سندن شوق ۽ انتظار ان ڳالهه جي ضمانت تي ويو ته هاڻي وحي لهڻ تي پاڻ سڳورا ﷺ ثابت قدم رهندا ۽ ان بار کي کڻي ويندا ته جبرئيل عليه السلام ٻيهر آيو. صحيح بخاريءَ ۾ جابر بن عبدالله رضى الله عنه کان روايت آهي ته پاڻ رسول الله ﷺ جي زباني وحي روڪجڻ وارو واقعو ٻڌائون پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته " آئون وڃي رهيو هوس ته اوجتو اپ منجهان هڪ آواز آيو، مون مٿي ڏٺو ته ڇا ٿو ڏسان ته اهو ئي فرشتو جيڪو مون وٽ حرا ۾ آيو هو، اپ ۽ ڌرتي جي وچ ۾ هڪ ڪرسيءَ تي ويٺو آهي. آئون ان کان ڊڄي ڌرتيءَ طرف جهڪيس. پوءِ مون پنهنجن گهر وارن وٽ وڃي چيو ته مون کي چادر اوڍايو، مون کي چادر اوڍايو. انهن چادر اوڍائي. ان کانپوءِ الله تعاليٰ (يَا أَيُّهَا الْمُدَّثِّرُ) کان (وَالرُّجْزَ فَاهْجُرْ) تائين نازل ڪئي. اها نماز فرض ٿيڻ کان پهرين جي ڳالهه آهي. پوءِ وحي لهڻ ۾ تيزي اچي وئي ۽ هڪ ٻئي پويان نازل ٿيڻ لڳي. (1) هي آيتون پاڻ سڳورن ﷺ جي وحيءَ جي شروعات آهن اها رسالت سندن نبوت کان ايترو ئي متاخر آهي جيترو عرصو وحي بند رهي. ان ۾ ڪين ٻن قسمن جي ڳالهين جو مڪلف بنايو ويو ۽ ان جا نتيجا ڪين ٻڌايا ويا.

**قسم پھريون :-** پھريون قسم تبليغ ۽ ڊيچارڻ وارو آھي جنھن جو حڪم (قُمْ فَأَنْذِرْ) جي ذريعي ڏنو ويو آھي ڇو ته ان جو مطلب ھي آھي ته تون ات ۽ ماڻھن کي آگاھ ڪر ته جيڪي ماڻھو اللھ تعالیٰ جي برتر ذات کي ڇڏي جن ٻين معبودن جي پوڄا ڪري ان جي ذات ۽ صفات افعال و حقوق ۾ ٻين کي شريڪ بنائي جنھن غلطي ۽ گمراھيءَ ۾ ڦاسل آهن جيڪڏهن ان کان پاسو نه ڪيائون ته انھن تي اللھ تعالیٰ جو عذاب اچي ڪڙڪندو.

**ٻيو قسم:** پاڻ سڳورن ﷺ کي جنھن بي ڳالھه جو مڪلف بنايو اھا ھي آھي ته پاڻ سڳورا ﷺ پنھنجي ذات تي اللھ تعالیٰ جو حڪم لاڳو ڪن ۽ پنھنجي پاڻ تائين ان جو اھتمام ڪن تان ته ھڪ طرف پاڻ (ﷺ) اللھ تعالیٰ جي رضامندي حاصل ڪري سگھن

<sup>1</sup> - صحيح بخاري كتاب التفسير تفسير سورة مدثر، باب والرجز فاهجر ۽ ان کان پوءِ وارو باب، فتح الباري (445/8) کان (447) تائين، ۽ ساڳي روايت صحيح مسلم كتاب الايمان (257، 144) ۾ آهي. هن روايت جي بعض طرفن جي منڍ ۾ اهو اضافو ڪيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "مون حرا ۾ اعتكاف ڪيو ۽ جڏهن اعتكاف پورو ٿيو ته هيٺ لٿس. پوءِ جڏهن بطن جي واديءَ مان لنگهي رهيو هوس ته مون کي سڏ ٿيو. مون کاهي ساڄي اڳيان پٺيان ڏٺو، ڪجهه نظر نه آيو. مٿي نهارير ته ڇا ڏسان ته اهو ئي فرشتو... الخ تاريخدانن جو چوڻ آهي ته سڀني روايتن جي مجموعي مان ان ڳالهه جو پتو پوي ٿو ته پاڻ سڳورن ﷺ تي سال رمضان جا مهينا حرا ۾ اعتكاف ڪيو ۽ وحي لهڻ وارو رمضان آخري هو. پاڻ سڳورن ﷺ جو دستور هو ته پاڻ ﷺ رمضان ۾ اعتكاف پورو ڪري پهرين شوال تي سوڀرو ٿي مڪي موٽي ايندا هئا. مٿين روايت سان ان ڳالهه کي ڳنڍڻ سان اهو نتيجو نڪري ٿو ته (يَا أَيُّهَا الْمُدَّثِّرُ) واري وحي، پهرين وحي کان ڏهه ڏينهن پوءِ لقي هئي. معنيٰ ته وحي رڪجڻ جو ڪل مدو ڏهه ڏينهن هو. واللہ اعلم.

۽ ٻي طرف ايمان آڻڻ وارن لاءِ بهترين نمونو به بنجي وڃن جنهن جو حڪم بين آيتن ۾ آهي جيئن (وَرَبِّكَ فَكْبِرْ) جو مطلب آهي ته ”۽ پنهنجي رب جي وڏائي بيان ڪر“ ۽ ان ۾ ڪنهن کي به پائيوار نه بنا. (وَتَبَايَكَ فَطَهَّرْ) ۽ پنهنجا ڪپڙا پاڪ رک. جنهن جو مقصد آهي ته ڪپڙا ۽ جسم پاڪ رکو چو ته جيڪو الله تعاليٰ جي حضور ۾ بيهي ۽ ان جي وڏائي بيان ڪري ته ان لاءِ اهو ڪنهن به صورت ۾ صحيح نه آهي ته اهو گندو ۽ پليت هجي ۽ جڏهن جسم ۽ لباس جي پاڪائي مطلوب هجي ته شرڪ ۽ اخلاق جي گندگي کان پاڪ هئڻ ته بدرجه اتم مطلوب ٿيندو. (وَالرُّجْزَ فَاهْجُرْ) جو مطلب اهو آهي ته الله تعاليٰ جي ناراضگي ۽ ان جي عذاب جي اسبابن کان پري رهجي ۽ ان جي صورت اها ئي آهي ته ان جي اطاعت کي مضبوط وڃي ۽ معصيت کان پاسو ڪجي. (وَلَا تَمُنُّنَّ نَسْتَكْبِرُ) جو مطلب آهي ته ماڻهن ۾ ڪنهن به احسان جي صلي جي اميد نه رک يا جهڙو احسان ڪيو اٿو دنيا ۾ ان کان بهتر بدلي جي اميد نه رکو. آخري آيت ۾ تنبيهه ڪئي ويئي آهي ته پنهنجي قوم کان الڳ دين اختيار ڪرڻ پنهنجي قوم کي الله وحده لاشريڪ له ڏانهن سڏڻ ۽ ان جي عذاب ۽ پڪڙ کان ڊيچارڻ جي نتيجي ۾ قوم جي طرفان تڪليفون ڏسڻيون پونديون. ان لاءِ فرمايو ويو ته: ”وَلِرَبِّكَ فَاصْبِرْ“ پنهنجي پروردگار ڪارڻ صبر ڪجان. انهن آيتن جو مطلع الله بزرگ و برتر جي آواز ۾ هڪ آسماني ندا تي مشتمل آهي جنهن ۾ نبي ڪريم ﷺ کي انهيءَ عظمت و جلال واري ڪم لاءِ اُٿي کڙو ٿيڻ، نڊ جي غفلت ۽ آرام و سکون کي ڇڏي جهاد، محنت ۽ مشقت جو سندرو ٻڌي ميدان ۾ لهڻ جو حڪم ڏنو ويو آهي. (يَا أَيُّهَا الْمُدَّثِّرُ قُمْ فَأَنْذِرْ) ”اي چادر ويڙهيندڙ اُٿ ۽ ڊيچار“

ڄڻ ته اهو چيو پيو وڃي ته جنهن کي پنهنجي لاءِ چيڻو آهي اهو ته سکون جي زندگي گذاري سگهي ٿو پر تون جنهن وڏي بار کي کڻي رهيو آهين ته تنهنجو انهيءَ نڊ سان ڪهڙو واسطو؟ اها راحت تنهنجي ڪهڙي ڪم جي؟ گرم بستري سان تنهنجو ڪهڙو تعلق؟ هن زندگي جي سکون سان تنهنجي ڪهڙي نسبت؟ هن عيش و عشرت جي سامان سان تنهنجو ڪهڙو تعلق؟ انهيءَ عظيم ڪم لاءِ تيار ٿي جيڪو تنهنجي انتظار ۾ آهي انهيءَ ڳري بار کي کڻڻ لاءِ جيڪو تنهنجي لاءِ تيار پيو آهي جدوجهد ۽ مشقت ٽڪائيندڙ سفر ۽ محنت لاءِ تيار ٿي اُٿ نڊ ۽ آرام جو وقت گذري ويو اڄ کان مسلسل اوجاڳو ۽ تمام ڊگهو ۽ پر مشقت جهاد شروع ٿي چڪو آهي. اُٿ! ۽ هن ڪم لاءِ چُست ۽ تيار ٿي وڃ.

هي وڏو عظيم ۽ پُرهيتت جملو آهي. ان نبي ڪريم ﷺ جن کي پر سکون گهر ۽ نرم بستري مان چڪي ڪڍي خطرناڪ طوفان ۽ تيز هوائن جي وچ ۾ هڪ گهري سمنڊ ۾ اچي اڇلايو ۽ ماڻهن جي ضمير ۽ زندگي جي حقيقتن جي چڪتاڻ جي ڌاري ۾ آڻي بيهاريو. ۽ پوءِ رسول الله ﷺ جن اٿيا ۽ ويهن سالن جي عرصي تائين اٿيا ئي رهيا راحت ۽ سکون ختم ٿي ويو زندگي پنهنجي پنهنجي گهر وارن لاءِ نه رهي سندن ڪم صرف الله تعاليٰ ڏانهن سڏڻ ئي هو. پاڻ اهو ڪم توڙ وزنن بار بنا ڪنهن دٻاءُ جي پنهنجي ڪلهن تي ڪنڀائون. اهو وزن زمين تي امانت ڪبرى جو بار هو اهو بار پوري انسانيت جو تمام عقيدن ۽ مختلف ميدانن ۾ جهاد ۽ دفاع جو بار هو. پاڻ ٽيهن سالن جي عرصي تائين مسلسل ۽ پوري تياريءَ سان جنگي حالتن ۾ زندگي گذاريائون ۽ ان پوري عرصي ۾ يعني جڏهن کان پاڻ سڳورن ﷺ آسمان کان الله تعاليٰ جو اهو آواز ٻڌو ۽ اها ايڏي وڏي ذم ڌاري سنڀالي ڪين ڪا به هڪ حالت ٻي حالت کان غافل ڪري نه سگهي. الله تعاليٰ ڪين اسان جي ۽ پوري انسانيت جي طرفان بهترين صلوا عطا فرمائي. (1) ايندڙ صفحن ۾ رسول الله ﷺ جن جي انهي ڊگهي ۽ پرمشقت جهاد جو هڪ مختصر خاڪو بيان ٿيل آهي.

وحيءَ جا قسم:- هاڻي اسين موضوع کان تورو هٽي، يعني رسالت ۽ نبوت جي حيات مبارڪ جو تفصيل شروع ڪرڻ کان اڳ وحيءَ جي قسمن جو ذڪر ڪرڻ گهرون ٿا ڇو ته اها رسالت جو بنياد ۽ ان جي معاون آهي. علامه ابن قيّم وحيءَ جا هيٺ ڄاڻايل قسم ٻڌايا آهن.

(1) سچو خواب: ان سان پاڻ سڳورن ﷺ تي وحيءَ جي شروعات ٿي.

(2) فرشتو نظر اچڻ کان سواءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي دل ۾ ڳالهه وجهي ڇڏيندو هو. مثال طور پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "إِنَّ رُوحَ الْقُدُسِ نَفَثَ فِي رَوْعِي أَنَّهُ لَنْ تَمُوتَ نَفْسٌ حَتَّى تَسْتَكْمِلَ رِزْقَهَا ، فَاتَّقُوا اللَّهَ ، وَأَحْمِلُوا فِي الطَّلَبِ ، وَلَا يَحْمِلَنَّكُمْ اسْتِبْطَاءُ الرِّزْقِ عَلَيَّ أَنْ تَطْلُبُوهُ بِمَعْصِيَةِ اللَّهِ ، فَإِنَّ مَا عِنْدَ اللَّهِ لَا يُنَالُ إِلَّا بِطَاعَتِهِ"

(روح القدس منهنجي دل ۾ اها ڳالهه ڦوڪي ته ڪو به نفس مري نٿو سگهي. ايستائين جو پنهنجو رزق پورو حاصل ڪري وٺي. بس الله کان ڊڄو ۽ طلب ۾ چڱائي اختيار ڪريو ۽ رزق جي تاخير توهان کي ان ڳالهه تي آماده نه ڪري ته توهان ان کي الله جي نافرمانيءَ جي وسيلي ڳوليو، ڇو ته الله وٽ جيڪي ڪجهه آهي اهو سندس اطاعت کانسواءِ حاصل نٿو ڪري سگهجي). (2)

<sup>1</sup> - في ظلال القرآن تفسير سورة المزمل ۽ المدثر (172-168/29)

<sup>2</sup> - السلسلة الصحيحة - (6 / 365) (حديث نمبر 2866)

(3) فرشتو، پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ماڻهوءَ جو روپ وٺي کين مخاطب ڪندو هو ۽ پوءِ جيڪي چونڊو هو اهو پاڻ سڳورا ﷺ ياد ڪري ڇڏيندا هئا. ان صورت ۾ ڪڏهن ڪڏهن اصحابي رضي الله عنهم به فرشتي کي ڏسندا هئا.

(4) پاڻ سڳورن وٽ وحي گهٽي جي ٽن ٽن وانگر ايندي هئي. اها وحيءَ جي سڀ کان سخت صورت هئي. ان صورت ۾ فرشتو پاڻ سڳورن ﷺ سان ملندو هو ۽ وحي ايندي هئي ته سخت سياري ۾ به پاڻ سڳورن ﷺ جو نراڙ پگهر سان پرچي ويندو هو ۽ پاڻ ﷺ ڏاچيءَ تي سوار هوندا هئا ته اها زمين تي ويهي رهندي هئي. هڪ ڀيري ان طرح وحي آئي. پاڻ سڳورن ﷺ جي ران حضرت زيد بن ثابت رضه جي ران تي هئي ته ان کي ائين محسوس ٿيو ڄڻ ران ڪچلجي ويندي.

(5) پاڻ سڳورا ﷺ فرشتي کي سندس اصلي ۽ پيدائشي شڪل ۾ ڏسندا هئا ۽ ان حالت ۾ الله تعاليٰ جي وحي پهچائيندو هو. اها حالت پاڻ سڳورن سان به پيرا ٿي، جنهن جو ذڪر الله تعاليٰ سوره النجم ۾ ڪيو آهي.

(6) اها وحي جيڪا پاڻ سڳورن تي معراج واري رات نماز فرض ٿيڻ وغيره جي سلسلي ۾ الله تعاليٰ ان وقت نازل ڪئي جڏهن پاڻ ﷺ مٿي آسمانن تي هئا.

(7) فرشتي جي واسطي کانسواءِ الله تعاليٰ جي پاڻ سڳورن ﷺ سان پردي ۾ رهي سڏي ڳالهه بولڻ ڪرڻ جيئن الله تعاليٰ موسيٰ عليه السلام سان ڳالهايو. وحيءَ جي اها صورت قرآن ۾ قطعي طور تي ثابت ٿيل آهي پر پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ان جو ثبوت (قرآن بدران) معراج جي حديث ۾ آهي.

ڪن ماڻهن ائين قسم جو به واڌارو ڪيو آهي. يعني الله تعاليٰ آمهون سامهون بنا حجاب جي ڳالهائي پر اها اهڙي صورت آهي جنهن بابت سلف کان خلف تائين اختلاف هلندو اچي. (1)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - زاد المعاد 18/1 پهريون ۽ ائين صورت جي بيان ۾ اصل عبارت ۾ ٿوري تلخيص ڪئي وئي آهي.



## تبليغ جو حڪم ۽ ان جا مضمرات

سورة المدثر جون شروعاتي آيتون: (يَا أَيُّهَا الْمُدَّثِّرُ) کان (وَلِرَبِّكَ فَاصْبِرْ) تائين ۾ پاڻ سڳورن کي ڳچ حڪم ڏنا ويا آهن. جيڪي ڏسڻ ۾ نه ننديڙا ۽ سادا آهن پر حقيقت ۾ دور رس مقصدن تي ٻڌل آهن ۽ حقيقتن تي انهن جا گهرا اثر مرتب ٿين ٿا. جيئن:

1. انذار جي آخري منزل اها آهي ته عالم وجود ۾ الله جي مرضيءَ کانسواءِ جيڪو هلي پيو ان کي ان جي بچڙي پڇاڻي کان آگاهه ڪيو وڃي ۽ اهو به ان طرح جو الله جي عذاب جو ڊپ سندس دل ۽ دماغ ۾ هلچل ۽ اٿل پٿل مچائي ڇڏي.

2. رب جي وڏائي مڃڻ جي آخري منزل اها آهي ته سڄي ڌرتيءَ تي ڪنهن به ٻئي جي وڏائي نه هلڻ ڏجي. بلڪ ان جي شان و شوڪت کي تباها ۽ برباد ڪري ڇڏجي.

3. ڪپڙي جي پاڪائي ۽ گندگيءَ کان دوريءَ جي آخري منزل اها آهي ته اندر ۽ ٻاهر جي پاڪائي ۽ سڀني وهمن ۽ وسوسن کان نفس جي صفائيءَ جي سلسلي ۾ ان انتهائي حد تي پهچي وڃي جيڪا الله جي رحمت جي گهاتي چانو ۾ سندس سار ۽ سنڀال ۽ هدايت ۽ نور تحت ممڪن آهي. ايسٽائين جو انساني سماج جو اهڙو اعليٰ ترين نمونو بڻجي وڃي جو پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن سڀ چڱيون دليون ڇڪجي وڃن ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي هيبت ۽ وڏائي جو احساس ڪمزور دليين کي به ٿي وڃي ۽ ان طرح سڄي دنيا موافقت يا مخالفت ۾ پاڻ سڳورن ڏانهن متوجهه ٿي وڃي.

4. احسان ڪري ان جو صلو نه گهرڻ جي آخري منزل اها آهي ته پنهنجي ڪوشش ۽ ڪارنامن کي اهميت نه ڏجي. بلڪ هڪ کانپوءِ ٻئي عمل لاءِ جدوجهد ڪبي رهجي ۽ وڏي پيماني تي قرباني، محنت ۽ ڪوشش ڪري ان لحاظ کان وساري ڇڏجي ته اهو ڪو اسان جو ڪارنامو آهي. يعني الله جي ياد ۽ ان آڏو جوابده هجڻ جو احساس پنهنجي ڪوشش ۽ محنت جي احساس تي حاوي هجي.

5. آخري آيت ۾ اشارو آهي ته الله ڏانهن دعوت ڏيڻ جو ڪم شروع ڪرڻ بعد مخالفن پاران مخالفت، ٺٺولي، ڪل ۽ توڪ جي شڪل ۾ ايذاءَ رسانيءَ کان وٺي پاڻ سڳورن ﷺ کي ۽ سندن ساٿين کي مارڻ ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي چوڌاري گڏ ٿيل ايمان وارن کي مٽائي ڇڏڻ جهڙيون ڀرپور ڪوششون ٿينديون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جو انهن سڀني سان واسطو پوندو. ان صورت ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي پير ڄمائي بيھڻو پوندو ۽ پختگيءَ سان صبر ڪرڻو پوندو. اهو به ان لاءِ نه ته ان صبر جي بدلي ۾ ڪنهن نفساني مزي جي اميد هجي، بلڪ رڳو پنهنجي رب جي رضا ۽ ان جي دين جي سريلنديءَ لاءِ (ولر بك فاصبر)

الله اڪبر! اهي حڪم ڏسڻ ۾ ڪيڏا نه سادا ۽ ننڍڙا آهن ۽ انهن جي لفظن جي جوڙجڪ ڪيڏي نه سڪون پري ۽ دل چڪڻ واري ميناج سان پريل آهي پر عمل ۽ مقصد جي لحاظ کان اهي حڪم ڪيڏا نه ڳرا ۽ ڪيڏا نه وڏا ۽ ڪيڏا نه سخت آهن ۽ ان جي ڪارڻ ڪيڏو نه سخت طوفان ايندو جو سڄي دنيا جي ڪنڊ ڪنڊ کي لوڏي ۽ هڪ ٻئي سان سٽي ڇڏيندو.

انهن ئي ٻڌايل آيتن ۾ دعوت ۽ تبليغ جو مواد به موجود آهي. انذار جو مطلب اهو آهي ته بني آدم جا ڪجهه عمل اهڙا آهن جن جو انجام برو آهي ۽ اهو سڀ ڄاڻن ٿا ته هن دنيا ۾ ماڻهن کي نه ڪو سندن سڀني عملن جو بدلو ملي ٿو ۽ نه ئي ملي سگهي ٿو. ان ڪري انذار جي هڪ گهرج اها به آهي ته دنيا جي ڏينهن کانسواءِ هڪ ڏينهن اهڙو به هجڻ کپي، جڏهن هر عمل جو پورو پورو ۽ نيڪ نيڪ بدلو ڏنو وڃي. اهو ئي قيامت جو ڏينهن، جزا جو ڏينهن ۽ بدلي جو ڏينهن آهي. ان ڏينهن بدلو ملڻ جي لازمي گهرج اها به ٿيندي ته اسين دنيا ۾ جيڪا زندگي گذاري رهيا آهيون ان کانسواءِ به هڪ زندگي هجي.

بين آيتن ۾ بانهن کان مطالبو ڪيو ويو آهي ته اهي الله جي نج هيڪڙائي کي مڃين، پنهنجا سڀ معاملن الله جي حوالي ڪن ۽ الله جي رضا تي نفس جي خواهش ۽ ماڻهن جي راين کي نظر انداز ڪري ڇڏين. ان طرح دعوت ۽ تبليغ جي مواد جو نت هي ٿيندو.

(الف) خدا جي هيڪڙائي

(ب) قيامت جي ڏينهن تي ايمان

(ج) نفس جي پاڪائيءَ جو بندوبست، يعني بري انجام تائين وٺي وڃڻ وارن گندن ۽ فحش ڪمن کان پاسو ڪرڻ ۽ فضيلتن، ڪمالن ۽ چڱن ڪمن تي هلڻ لاءِ ڪوششون وٺڻ.

(د) پنهنجا سڀ معاملن الله جي حوالي ڪرڻ

(ه) ان جي آخري ڪڙي اها آهي ته اهو سڀ ڪجهه پاڻ سڳورن ﷺ جي رسالت تي پاڻ سڳورن ﷺ جي عظمتن سان پريل اڳواڻي ۽ رشد و هدايت سان پريل قولن جي روشني ۾ پورو ڪيو وڃي.

انهن آيتن جي مطلع الله بزرگ ۽ برتر جي آواز ۾ هڪ آسماني سڏ تي ٻڌل آهي. جنهن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي هيڏي وڏي ڪم لاءِ اٿڻ، نند جي چادر پوشي ۽ ڪوسي هنڌ مان نڪري جهاد و ڪفاح ۽ ڪوشش ۽ محنت جي ميدان ۾ ٽپي پوڻ لاءِ چيو ويو آهي. يا يها المدثر قمر فانذر (74): 2/1 "اي چادر پهريل! اتي ۽ ڊيچار"، ڇڻ چيو وڃي پيو ته جنهن کي پاڻ لاءِ جيئو آهي، اهو ڀلي مزي جي زندگي گذاري پر توهان ﷺ جيڪي هن زبردست بار کي کڻي رهيا آهيو ته توهان ﷺ جو نند سان ڪهڙو ڪم؟ توهان ﷺ جو راحت سان ڪهڙو واسطو؟ توهان ﷺ کي ڪوسي هنڌ سان ڪهڙو مطلب؟ سڪون واري حياتيءَ سان ڪهڙي نسبت؟ راحت جي ٽڪسات سان ڪهڙو واسطو؟

توهان ﷺ ان وڏي ڪم لاءِ اتي ڪڙا ٿيو. جيڪو اوهان لاءِ منتظر آهي، ان ڳري بار لاءِ جيڪو اوهان لاءِ تيار آهي، اوهان ڪوشش ۽ سخت محنت ڪرڻ لاءِ اٿو جو هاڻي ننڊ ۽ راحت جو وقت نه رهيو آهي. هاڻي لڳاتار اوجاڳا آهن ۽ ڊگهو سخت محنت وارو جهاد آهي. اٿو ۽ ان ڪم لاءِ چستيءَ سان تيار ٿي وڃو.

اهي تمام وڏا ۽ ڊيڄاريندڙ جملا آهن، جن پاڻ سڳورن کي پرسڪون گهر، بستري جي نرمي ۽ گرميءَ مان چڪي تيز طوفانن جي گهري سمنڊ ۾ اچي ڇڏيو ۽ ماڻهن جي ضمير ۽ زندگيءَ جي حقيقتن جي ڪشمڪش جي وچ ۾ اچي بيهاريو. پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ اتي ڪڙا ٿيا ۽ ويهن سالن کان وڌيڪ عرصي تائين اٿيا رهيا. دنيا جا مزا تياڳي ڇڏيائون. سندن زندگي پنهنجي لاءِ ۽ پنهنجن ٻارن بچڻ لاءِ نه رهي. سندن ڪم الله ڏانهن ماڻهن کي سڏڻ هو. پاڻ سڳورن ﷺ چيلهه چڀي ڪرڻ وارو ڳرو بار، پنهنجن ڪلهن تي ڏاڍي آسانيءَ سان کڻي ورتو هو. هن سڄي ڌرتيءَ تي امانت ڪبرى جو بار، سڄي انسانيت جو بار، سڀني عقيدن جو بار ۽ مختلف ميدانن ۾ جهاد ۽ دفاع جو بار. پاڻ سڳورن ﷺ ويهه ورهين کان وڌيڪ عرصو لاڳيتو هلندڙ ٽڪراءَ ۽ مقابلي واري ماحول ۾ حياتي گذاري ۽ ان سڄي دور ۾ يعني جڏهن کان پاڻ سڳورن اهو آسماني سڏ ٻڌو هو ۽ ڳرو بار کنيو هو، کين ڪا هڪ حالت، ٻئي حالت کان غافل نه ڪري سگهي. الله، پاڻ سڳورن ﷺ کي اسان ۽ سڄي انسانيت پاران بهترين جزا ڏي. (1)

ايندڙ صفحن ۾ رسول الله ﷺ جي ان ئي ڊگهي ۽ اڻٽڪ جهاد جو هڪ مختصر خاڪو ڏنل آهي.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - في ظلال القرآن سورة مزمل و مدثر سيبأرو 29: 168 کان 171-182

## دعوت جا دور ۽ مرحلا

اسين پاڻ سڳورن ﷺ جي پيغمبري واري حياتيءَ کي بن حصن ۾ ورهائي سگهون ٿا، جيڪي هڪ ٻئي کان بلڪل مختلف آهن. اهي هي آهن.

1. مڪي واري حياتي - اٽڪل تيرنهن ورهيه.

2. مديني واري حياتي - اٽڪل ڏهه ورهيه.

انهن مان هر ڪو حصو ڳچ مرحلن تي مشتمل آهي ۽ اهي مرحلا به پنهنجي خاصيتن جي لحاظ کان هڪ ٻئي کان ڏاڍا مختلف آهن. ان جو اندازو پاڻ سڳورن ﷺ جي پيغمبرائي حياتيءَ جي ٻنهي حصن ۾ پيش آيل مختلف حالتن جو گهرائيءَ سان جائزو وٺڻ کانپوءِ لڳائي سگهجي ٿو.

\*\_\*\_\*

## مڪي واري زندگي تن مرحلن تي مشتمل هئي

1. لڪ ۾ دعوت ڏيڻ جو مرحلو - تي ورهيه
  2. مڪي وارن کي ڪليل دعوت ڏيڻ ۽ تبليغ جو مرحلو - نبوت جي چوٿين سال جي منڍ کان ڏهين سال جي توڙ تائين.
  3. مڪي کان ٻاهر اسلام جي دعوت جي مقبوليت ۽ ڦهلاءَ جو مرحلو - ڏهين نبوي سال کان مديني هجرت ڪرڻ تائين
- مدني زندگي جي مرحلن جو تفصيل پنهنجي جڳهه تي ايندو.

پهريون مرحلو :

## تبليغي ڪوششون

**لڪل دعوت جا ٽي ورهيه:-** اسان کي خبر آهي ته مڪو عربستان جو ديني مرڪز هو. هتي ڪعبي جا نگران به هئا ته ان ۾ رکيل بتن جا نگهبان پڻ، جن کي سڄو عربستان ڀلايو سمجهندو هو. ان ڪري ڪنهن پراڻهين هنڌ جي ڀيٽ ۾ مڪي ۾ تبديلي آڻڻ جو ڪم ڏکيو هو. هتي اٽل ارادن جي گهرج هئي. جيئن مصيبتن ۽ تڪليفن جا لوڏا لوڏي نه سگهن. ان ڪري ان ڳالهه جي گهرج هئي ته پهرين دعوت ۽ تبليغ جو ڪم لڪيڻ ۾ ڪجي، جيئن مڪي وارن کي اوچتو ڪو جهٽڪو نه لڳي.

**پهريان مسلمان:-** اها هڪ فطري ڳالهه هئي جو پاڻ سڳورن ﷺ سڀ کان پهرين انهن ماڻهن آڏو اسلام پيش ڪيو جن سان سندن گهرا واسطا هئا. يعني پنهنجي گهر وارن ۽ دوستن تي. ان طرح پاڻ سڳورن ﷺ پهرين پنهنجي انهن ڄاڻ سڄاڻ وارن کي حق ڏانهن سڏيو جن جي پيشانيءَ تي کين نيڪيءَ جا آثار نظر آيا ٿي ۽ پاڻ ﷺ ڄاڻائون ٿي ته اهي حق ۽ خير کي پسند ڪن ٿا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي سچائي ۽ ڀلائيءَ کان به واقف آهن ۽ پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جن کي دعوت ڏني، انهن مان هڪ گروهه جنهن کي پاڻ سڳورن ﷺ جي وڏائي، نفس جي پاڪائي ۽ سچائيءَ جي پڪ هئي، انهن پاڻ سڳورن ﷺ جي دعوت قبول ڪري ورتي. اهي اسلامي تاريخ ۾ ”سابقين اولين“ جي نالي سان مشهور آهن. انهن ۾ سڀ کان مٿي پاڻ سڳورن ﷺ جي گهر واري ام المؤمنين بيبي خديجه رضي الله عنها بنت خويلد، پاڻ سڳورن ﷺ جو آزاد ڪيل ٻانهو حضرت زيد بن حارثه رضی اللہ عنہ بن شربيل ڪلبي<sup>(1)</sup> پاڻ سڳورن ﷺ جو سوت حضرت علي بن ابي طالب رضی اللہ عنہ، جيڪو اڃا پاڻ سڳورن ﷺ جي سنڀال هيٺ هو ۽ اڃا ٻار هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جو يارگار حضرت ابوبڪر صديق رضی اللہ عنہ، اهي سڀ پهرئين ڏينهن ئي مسلمان ٿي ويا.<sup>(2)</sup> ان کانپوءِ حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ اسلام جي تبليغ ۾ سرگرم ٿي ويو. پاڻ هر ڪنهن کي وڻندڙ، نرم دل ۽ وڻندڙ گڻن جو مالڪ، اخلاق وارو

<sup>1</sup> - پاڻ هڪ جنگ ۾ قيد ٿي غلام بڻجي ويو هو. بعد ۾ بيبي خديجه رضي الله عنها سندن مالڪ ٿي ۽ کين پاڻ سڳورن ﷺ کي هب ڪيو. ان ڏينهن کانپوءِ سندن والد ۽ ڇاڇو کين گهر وٺي وڃڻ لاءِ آيا پر انهن بنهي کي ڇڏي پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ رهڻ کي پسند ڪيائين. ان بعد پاڻ سڳورن ﷺ عربن جي دستور مطابق کين متبني (پٽيلو) ڪيو ۽ کين زيد بن محمد رضی اللہ عنہ چيو وڃڻ لڳو. تان ته اسلام ان رسر جي پڄاڻي ڪئي. حضرت زيد سن 8 ه ۾ جنگ موته ۾ سڀه سالار جي حيثيت سان وڙهندي شهيد ٿيو.

<sup>2</sup> - رحمة للعالمين (50/1).

۽ دريا دل هو. سندن مروت، دور انديشي، واپار ۽ سني صحبت ڏيڻ ڪري ماڻهن جي وڻن اڃ وڃ رهندي هئي. ان ڪري انهن پاڻ وٽ ايندڙن مان جن کي به قابل اعتماد ڄاتو، ان کي اسلام جي دعوت ڏيڻ شروع ڪئي. سندن ڪوشش سان حضرت عثمان رضي الله عنه، حضرت زبير رضي الله عنه، حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه، حضرت سعد بن ابى وقاص رضي الله عنه ۽ حضرت طلحه بن عبيد الله رضي الله عنه جن مسلمان ٿيا، اهي بزرگ اسلام لاءِ هر اول دستو ثابت ٿيا. جن ماڻهن شروع ۾ اسلام قبول ڪيو، انهن مان حضرت بلال رضي الله عنه به هڪ آهي. تن کانپوءِ امين امت<sup>(۱)</sup> حضرت ابو عبیده رضي الله عنه، عامر بن جراح رضي الله عنه، ابو سلمه بن عبدالاسد رضي الله عنه، ارقم بن ابى ارقم رضي الله عنه، عثمان بن مظعون رضي الله عنه ۽ سندن ٻه ڀائر قدامه رضي الله عنه ۽ عبدالله رضي الله عنه ۽ عبیده بن حارث رضي الله عنه بن مطلب بن عبدالمناف، سعيد بن زيد عدوي رضي الله عنه ۽ ان جي گهر واري يعني حضرت عمر رضي الله عنه جي ڀيڻ فاطمه بنت خطاب ۽ خباب بن ارت رضي الله عنه، جعفر بن ابى طالب ۽ ان جي زال اسماء بنت عميس، خالد بن سعيد بن عاص اموي ۽ ان جي زال اميه بنت خلف ۽ ان جو ڀاءُ عمرو بن سعيد بن عاص حاطب بن حارث جحفي ۽ ان جي زال فاطمه بنت مجلل ۽ ان جو ڀاءُ خطاب بن حارث ۽ ان جي زال فڪيهه بنت يسار ۽ ان جو هڪ ڀيو ڀاءُ معمر بن حارث، مطلب بن ازهر زهري ۽ ان جي زال رمله بنت ابى عوف ۽ نعيم بن عبدالله بن نحام عدوي مسلمان ٿيا. اهي ماڻهو مجموعي طور تي قریش جي سڀني شاخن سان تعلق رکندا هئا. قریش کان ٻاهر جن جن ماڻهن سڀني کان پهرئين اسلام قبول ڪيو انهن مان سڀ کان نمايان ماڻهو هي آهن. عبدالله بن مسعود هذلي، مسعود بن ربيع قاري، عبدالله بن جحش اسدي، بلال بن رباح حبشي، صهيب بن سنان رومي، عمار بن ياسر عنسي، سندس ڀيءُ ياسر، سندس ماءُ سميه ۽ عامر بن فهيره رضوان الله عليهم اجمعين. مٿي ذڪر ڪيل عورتن کان علاوه عورتن ۾ سڀ کان پهرين جن اسلام قبول ڪيو انهن جا نالا هي آهن: ام ايمن بركة حبشيه، حضرت عباس بن عبدالمطلب جي زال ام الفضل لبابه الكبرى بنت حارث هلاليه، حضرت ابوبڪر بن صديق جي ڌيءُ اسماء رضي الله عنهم. ابن هشام سندن انگ چاليهن کان مٿي ٻڌايو آهي. ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته ان کانپوءِ مرد ۽ عورتون اسلام ۾ گروهن جا گروهه ٿي داخل ٿيا. ايسٽائين جو مڪي ۾ اسلام جو ذڪر پڪڙجي ويو ۽ ماڻهن ۾ چوڻ پڻو (2)

<sup>1</sup> - هن لقب سان ملقب ڪرڻ جي سبب لاءِ صحيح بخاري. مناقب ابو عبیده بن الجراح (1/ 530) ڏسڻ گهرجي.

<sup>2</sup> - سيرت ابن هشام 1/ 245، کان 262، ابن هشام جا بيان ڪيل ڪجهه نالا محل نظر آهن جيڪي مون هتي نه لکيا آهن. (اهي سڀ سابقين اولين جي لقب سان مشهور آهن. جانچ پڙتال کان پوءِ اهو معلوم ٿيو آهي ته جيڪي ماڻهو سابقين اولين جي صفت سان موصوف ٿي ويا آهن، مرد ۽ عورتن کي ملائي انهن جو تعداد هڪ سئو ٽيهه (130) ٿاين پهچي

اهي سڀ لڪ ڇپ ۾ مسلمان ٿيا هئا ۽ رسول الله ﷺ جن به لڪ ڇپ ۾ ئي سندن رهنمائي ڪندا هئا ۽ کين ديني تعليم ڏيندا هئا. ڇو ته تبليغ جو ڪم اڃا تائين لڪ ڇپ ۾ ئي هلي رهيو هو. هوڏانهن سوره مدثر جي پهرين آيتن کانپوءِ وحي لڳاتار ۽ تيزيءَ سان اچي رهي هئي. انهن ڏينهن ۾ ننڍڙيون ننڍڙيون آيتون نازل ٿي رهيون هيون. انهن آيتن جي پڄاڻي هڪ ئي قسم جي ڏاڍن روح کي ڇڪ ڪندڙ لفظن سان ٿيندي هئي، جن ۾ ڏاڍو سڪون ۽ راحت هوندي هئي، جيڪا ان ماحول مطابق هئي. انهن آيتن ۾ نفس جي پاڪائي ۽ دنيا جي گندگي ۾ لت پت ٿيڻ جون خرابيون به ٻڌايون وينديون هيون ۽ جنت ۽ جهنم جو نقشو ان طرح پيش ڪيو ويندو هو ڇڏا اهي اکين اڳيان هجن. اهي آيتون ايمان وارن کي ان وقت جي انساني معاشري کان بلڪل الڳ ٿلڳ ڪنهن بيءَ فضا جو سير ڪرائينديون هيون.

نماز: شروع وارين آيتن ۾ ئي نماز جو حڪم به هو. مقاتل بن سليمان ٻڌائي ٿو ته الله تعاليٰ شروع ۾ ٻه رڪعتون صبح ۽ ٻه رڪعتون شام جي نماز فرض ڪئي، جيئن الله تعاليٰ جو ارشاد آهي ته: ”وَسَبِّحْ بِالْعَشِيِّ وَالْإِبْكَارِ“ (40: 55) ”صبح ۽ شام پنهنجي رب جي حمد سان ان جي تسبيح بيان ڪريو“.

ابن حجر چوي ٿو ته پاڻ سڳورا ﷺ ۽ سندن ساٿي معراج واري واقعي کان اڳ ان طرح ئي نماز پڙهندا هئا. باقي ان ڳالهه ۾ اختلاف آهي ته پنج نمازون فرض ٿيڻ کان اڳ به نمازون فرض هيون يا نه؟ ڪن جو چوڻ آهي ته سج اڀرڻ ۽ لهڻ کان پهرين هڪ هڪ نماز فرض هئي.

حارث بن اسامه رضي الله عنه، ابن لهيعة جي طريق سان موصولاً حضرت زيد بن حارثه رضي الله عنه کان اها حديث روايت ڪئي آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ تي جڏهن شروع ۾ وحي آئي ته پاڻ سڳورا ﷺ وٽ حضرت جبرئيل عليه السلام آيو ۽ وضوءَ جو طريقو سيکاريو. جڏهن وضوءَ کان فارغ ٿيا ته هڪ ٻڪ پاڻي جو ڀري شرمگاهه تي ڇنڊا هيائون. ابن ماجه به اهڙي هڪ حديث روايت ڪئي آهي. براء بن عازب رضي الله عنه ۽ ابن عباس رضي الله عنه کان ان طرح جون حديثون آيل آهن، ابن عباس رضي الله عنه جي حديث ۾ اهو به ٻڌايو ويو آهي ته اها (نماز) اولين فرضن مان هئي. (1)

ابن هشام جو چوڻ آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ ۽ سندن ساٿي نماز مهل وادين ڏانهن هليا ويندا هئا ۽ پنهنجي قوم کان لڪي نماز پڙهندا هئا. هڪ ڏينهن ابو طالب، پاڻ سڳورا ﷺ ۽

وڃي ٿو، ليڪن اها ڳالهه پوري وضاحت سان معلوم نه ٿي سگهي ته انهن سڀني سرعام دعوت تبليغ کان پهرئين اسلام قبول ڪيو يا ڪجهه ماڻهو ان کان پوءِ به اسلام جي دائري ۾ داخل ٿيا هئا.

1 - مختصر السيره شيخ عبدالله (ص: 88)



حضرت علي رضي الله عنه کي نماز پڙهندي ڏسي ورتو ۽ ان بابت پڇا ڪئي، حقيقت معلوم ٿي ته چيائون ته ائين ڀلي ڪريو. <sup>(1)</sup>

قريشن کي سٽس پوڻ:- مختلف واقعن مان پتو پوي ٿو ته ان مرحلي ۾ تبليغ جو ڪم جيتوڻيڪ ڳجهيءَ طرح ڪيو پئي ويو پر قريشن کي ان جي سٽس پئجي چڪي هئي پر انهن ان تي ڌيان ڪو نه ڏنو.

محمد غزالي رحمه الله فرمائي ٿو ته قریش کي اها خبر پهچي چڪي هئي ته پر قریشين ان خبر کي ڪا اهميت نه ڏني غالباً انهن محمد صلي الله عليه وسلم کي عام ديني ماڻهو سمجهيو جيڪو صرف الوهيت ۽ حقوق الوهيت جي موضوع تي ڳالهه ٻولهه ڪندو جيئن اميه بن الصلت، قس بن ساعده ۽ زيد بن عمرو بن نفيل وغيره جن چيو هو. جيتوڻيڪ قریشين پاڻ نبي ڪريم صلي الله عليه وسلم جي خبر کي پهلجندي ۽ اثر انداز ٿيندي ڪجهه انديشو ضرور محسوس ڪيو ته هن شخص جون نگاهون تمام دور انديش آهن. تن ورهين تائين تبليغ جو ڪم ڳجهو ۽ انفرادي هليو ۽ ان دوران ايمان وارن جي هڪ جماعت تيار ٿي ويئي، جنهن جون پاڙون پائيجاري ۽ تعاون جي جذبن ۾ ڪتل هيون. اهو ٿولو الله جو نياپو پڄائي رهيو هو ۽ ان نياپي کي مڃتا ڏيارڻ لاءِ جتن ڪري رهيو هو. ان کانپوءِ وحي لهڻ شروع ٿي ۽ پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم تي بار وڌو ويو ته پنهنجي قوم کي ڪليو ڪلايو دين جي دعوت ڏين، انهن جي باطل (معبودن) سان تڪر ڪائين ۽ انهن جي بتن جي حقيقت پڌري ڪن.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (247/1).

## بيو مرحلو

## کلیل تبليغ

**کلی عام دعوت ڏيڻ جو پهريون حڪم:** - ان بابت سڀ کان پهرين الله تعاليٰ جو اهو قول نازل ٿيو ته: ﴿وَأَنْذِرْ عَشِيرَتَكَ الْأَقْرَبِينَ﴾ (الشعراء) (214) "توهان ﷺ پنهنجي ويجهن مائتن کي (الاهي عذاب) کان ڊيڄاريو".

اها سوره شعرا جي آيت آهي ۽ سورة ۾ سڀ کان پهرين حضرت موسىٰ عليه السلام جو واقعو بيان ڪيو ويو آهي يعني اهو ٻڌايو ويو آهي ته ڪيئن سندن نبوت جو آغاز ٿيو، پوءِ آخر ۾ انهن بني اسرائيل سميت هجرت ڪري فرعون ۽ ان جي قوم مان جان چڏائي ۽ فرعون ۽ آل فرعون کي ٻوڏيو ويو. بين لفظن ۾ اهو تذڪرو انهن تمام مرحلن تي ٻڌل آهي جن ذريعي حضرت موسىٰ عليه السلام، فرعون ۽ ان جي قوم کي الله جي دين جي دعوت ڏني هئي.

منهنجو خيال آهي ته جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي پنهنجي قوم ۾ کليل تبليغ جو حڪم ڏنو ويو ته ان موقعي تي حضرت موسىٰ عليه السلام جي واقعي جو اهو تفصيل ان ڪري ٻڌايو ويو ته جيئن کليو ڪلايو دعوت ڏيڻ کانپوءِ به جنهن طرح جي مخالفت ۽ ظلم زيادتيءَ سان واسطو پوڻ وارو هو، ان جو هڪ نمونو پاڻ سڳورن ﷺ ۽ سندن پلارن سائين رضوان الله عليهم اجمعين جي سامهون موجود هجي.

ٻئي پاسي ان سوره ۾ بيغمبرن کي ڪوڙو چوڻ وارين قومن، جهڙوڪ فرعون ۽ ان جي قوم کان سواءِ نوح عليه السلام جي قوم، عاد، ثمود، ابراهيم عليه السلام جي قوم، لوط عليه السلام جي قوم ۽ اصحاب الاءيڪه جي خاتمي جو ذڪر به ڪيل آهي، ان جو مقصد شايد اهو آهي ته جيڪي ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪوڙو چون، تن کي خبر پوي ته انڪار جي صورت ۾ سندن پڄاڻي ڪهڙي ٿيندي ۽ الله تعاليٰ پاران ڪهڙي پڪڙ کي منهن ڏيڻو پوندو. اهو به ته ايمان وارن کي خبر پوي ته سني پڄاڻي سندن ٿيندي، انڪار ڪندڙن جي نه.

**متن مائتن ۾ تبليغ:** - بهرحال اها آيت لهڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پهريون ڪم اهو ڪيو ته بني هاشم کي جمع ڪيو. انهن سان گڏ بني مطلب بن عبدالمناف جو به هڪ ٿولو هو. ڪل پنجيتاليهه ماڻهو هئا. جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ ڳالهائڻ چاهيو ته ابو لهب ڳالهه ڪئي ڇڏي ۽ چيو ته "ڏس هي تنهنجا چاچا ۽ سوت آهن. ڳالهائڻ پلي ڀري ناداني ڇڏ ۽ اهو سمجهي وٺ ته تنهنجو ڪٿم سڄي عربستان سان اٽڪڻ جو ست نٿو رکي ۽ آئون سڀ کان وڌيڪ حقدار آهيان جو

توڪي جهليان. بس تنهنجي لاءِ تنهنجي پيءُ جو گهراڻو ئي ڪوڙ آهي ۽ جي تون پنهنجي ڳالهه تي قائم رهين ته ڏاڍو سولو ٿيندو ته قريشن جا سڀ قبيلا توتي تتي پون ۽ ٻيا عرب به انهن جي مدد ڪن. پوءِ آئون نٿو سمجهان ڪو شخص تو کان وڌيڪ پنهنجي پيءُ جي گهراڻي لاءِ شر (۽ تباهيءَ) جو باعث ٿيندو. ان تي نبي اڪرم ﷺ جن چپ رهيا ۽ ان مجلس ۾ ڪجهه به نه ڳالهايو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ انهن کي ٻيهر گڏ ڪيو ۽ فرمايو ته "سڀ ساراه الله لاءِ آهي. آئون ان کي ئي ساراهيان ٿو ۽ ان کان ئي مدد گهران ٿو. ان تي ايمان رکان ٿو. ان تي ئي ڀروسو ڪريان ٿو ۽ اها ساڪ ڏيان ٿو ته الله کانسواءِ ڪو به عبادت جي لائق نه آهي. هو اڪيلو آهي، ان جو ڪوئي شريڪ نه آهي." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "رهنما پنهنجي گهر ڀاتين سان ڪوڙ نٿو ڳالهائي سگهي. ان الله جو قسم! جنهن کانسواءِ ڪير به عبادت جي لائق نه آهي. آئون توهان لاءِ خاص طور تي ۽ ٻين ماڻهن ڏانهن عام طور تي الله جو رسول آهيان. واللہ! توهان ان طرح ئي مرندا ڄڻ ستا پيا هجو ۽ ائين وري اٿاريا ويندو جيئن سمهي اٿيا هجو. توهان جيڪي ڪجهه ڪريو ٿا، ان جو توهان کان حساب ورتو ويندو. ان کانپوءِ يا ته سدائين لاءِ جنت آهي يا سدائين لاءِ دوزخ".

ان تي ابو طالب چيو ته: (نه پڇ) اسان کي تنهنجي مدد ڪرڻ ڪيتري پسند آهي! تنهنجي نصيحت ڪيتري قدر قبول ڪرڻ جوڳي آهي! ۽ اسين تنهنجي ڳالهه کي ڪيترو سچ سمجهون ٿا ۽ اهو ته تنهنجي والد جو گهراڻو گڏ ٿيو آهي ۽ آئون به ان جو هڪ فرد آهيان. فرق رڳو اهو آهي ته آئون تنهنجي پسند جي پورائيءَ لاءِ انهن سڀني کان اڳرو آهيان. تنهن ڪري توڪي جنهن ڳالهه جو حڪم ٿيو آهي ان کي پورو ڪر. واللہ! آئون تنهنجي پوري سهائتا ڪندو رهندس. باقي منهنجي طبيعت عبدالمطلب جو دين ڇڏڻ تي راضي نه آهي.

ابولهب چيو ته: الله جو قسم! اها بوائي آهي. هن جا هٿ ٻين کان اڳ اوھين جهلي وٺو. ان تي ابو طالب چيو ته: الله جو قسم! جيسين آئون جيئرو آهيان، هن جي حفاظت ڪندو رهندس. (1)

صفا جي چوٽيءَ تي:- جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي پڪ ٿي ته الله جي دين جي تبليغ دوران ابو طالب سندن سهائتا ڪندو ته هڪ ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ صفا نالي جبل جي چوٽيءَ تي چڙهي هيءَ صدا هنئين ته: يا صَبَاحَاهُ (2) (هائِ صبح)! اها سين ٻڌي قريشن جا قبيلا اچي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ گڏ ٿيا ۽ پاڻ سڳورن انهن کي الله جي هيڪڙائي، پنهنجي رسالت ۽ آخرت جي ڏينهن تي ايمان آڻڻ جي دعوت ڏني. ان واقعي جو هڪ ٽڪرو صحيح بخاريءَ ۾ ابن عباس رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کان هن طرح

<sup>1</sup> - فقد السيره (ص: 77، 88) ابن الاثير (1/584، 585).

<sup>2</sup> - عربن جو دستور هو ته دشمن جي حملي کان اڳ ڄاڻ ڏيڻ لاءِ ڪنهن مٿاهين جڳهه تي چڙهي مٿين لفظن سان سڏيندا هئا.

آيل آهي ته جڏهن ﴿وَأَنْذِرْ عَشِيرَتَكَ الْأَقْرَبِينَ﴾ نازل ٿي ته پاڻ سڳورن ﷺ صفا نالي جبل تي چڙهي قريش جي سڀني پيٽن (قبيلن) کي پڪاريو. اي بني فهر! اي بني عدي! ايستائين جو سڀ اچي ڪنا ٿيا. ايتريقدر جو ڪو پاڻ نه ٿي اچي سگهيو ته پنهنجو قاصد موڪليائين ته ڏسي اچي ته معاملو ڇا آهي؟ مطلب ته قريش اچي ويا، ابو لهب به آيو. ان کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "توهان اهو ٻڌايو ته جيڪڏهن آئون اها خبر ڏيان ته جبل جي هُن ڀر شهبسوارن جو هڪ ٽولو آهي جيڪو اوهان تي هلاڻ ڪرڻ گهري ٿو ته ڇا توهان مون کي سڄو مڃيندا؟" ماڻهن چيو ته: ها! ها! اسان اوهان کي هميشه سچ ڳالهائيندي ڏٺو آهي ڪڏهن به ڪوڙ ڳالهائيندي نه ڏٺو آهي. پاڻ سڳورن فرمايو ته چڱو آئون اوهان کي هڪ سخت عذاب اچڻ کان اڳ خبردار ڪرڻ لاءِ موڪليو ويو آهيان. منهنجو ۽ توهان جو مثال ائين آهي جيئن ڪنهن ماڻهوءَ دشمن کي ڏٺو پوءِ ڪنهن مٿانهين جاءِ تي چڙهي پنهنجي خاندان وارن تي نظر وڌائين ته ان کي اهو پوءِ ٿيو ته دشمن ان کان پهرين پهچي ويندو. ان ڪري ان اتان ئي ياصَبَاحَا! هاءِ صبح! پڪارڻ شروع ڪري ڏنو.

ان کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ماڻهن کي حق جي طرف سڏيو ۽ الله تعاليٰ جي عذاب کان ڊيڄاريو ۽ خاص ۽ عام کي خطاب ڪندي فرمايو: اي قريشيو! پنهنجو پاڻ کي الله تعاليٰ کان خريد ڪري وٺو، جهنم جي باه کان پاڻ کي بچايو، آئون توهان جي نفعي ۽ نقصان ۾ ڪو به اختيار نٿو رکان. الله تعاليٰ کان بچائڻ لاءِ توهان جي ڪنهن به ڪم نه ايندس. بنو ڪعب بن لوي! پنهنجو پاڻ کي دوزخ کان بچايو ڇو ته مون کي توهان جي نفعي ۽ نقصان جو ڪو به اختيار نه آهي اي بنو مره بن ڪعب! پنهنجو پاڻ کي باه کان بچايو. اي بنو قصي! پنهنجو پاڻ کي دوزخ کان بچايو، ڇو ته توهان جو نفعو ۽ نقصان منهنجي وس ۾ نه آهي. اي بنو عبد مناف! پنهنجو پاڻ کي دوزخ کان بچايو، ڇو ته توهان جو نفعو ۽ نقصان منهنجي وس کان ٻاهر آهي. الله تعاليٰ کان بچائڻ لاءِ آئون توهان جي ڪنهن به ڪم نٿو اچي سگهان. اي بنو عبد شمس! پنهنجو پاڻ کي جهنم کان بچايو، اي بنو هاشم! پنهنجي پاڻ کي دوزخ کان بچايو، اي بنو عبدالمطلب! پنهنجو پاڻ کي دوزخ کان بچايو، ڇو ته آئون توهان جي نفعي ۽ نقصان جو مالڪ نه آهيان ۽ نه ئي وري الله تعاليٰ کان بچائڻ ۾ توهان جي ڪا مدد ڪري سگهندس. منهنجي مال مان جيڪي وڻي سو کڻي وٺو، مگر توهان کي الله تعاليٰ جي پڪڙ کان بچائڻ منهنجي وس ۾ نه آهي. اي بنو عبدالمطلب! آئون توکي به الله تعاليٰ کان بچائڻ ۾ ڪا به مدد نٿو ڪري سگهان. اي رسول الله ﷺ جي پٽي صفيه بنت

عبدال مطلب! آئون توکي الله کان بچائي نٿو سگهان. اي فاطمه بنت محمد رسول الله ﷺ! منهنجي مال مان جيڪي وڻي گهري وڻ، پر پنهنجو پاڻ کي جهنم کان بچاءِ چو ته آئون تنهنجي به نفعي نقصان جو اختيار نٿو رکان ۽ نه ئي وري الله تعاليٰ کان بچائڻ ۾ تنهنجي ڪا مدد ڪري سگهان ٿو. باقي توهان سان نسب ۽ مائتي جا رشتا آهن، جن کي آئون برقرار رکڻ جي ڪوشش ڪندس. جڏهن اهو (الله کان) ڊيچارڻ جو سلسلو ختم ٿيو ته ماڻهو تڙي پڪڙي ويا، انهن جي ڪنهن به قسم جي رد عمل جو ڪو به ذڪر نه ٿو ملي. باقي ابولهب بدتميزي ڪئي ۽ چوڻ لڳو ته تون سڄو ڏينهن برباد ٿين تواسان کي هن لاءِ گڏ ڪيو هو! ان تي سوره ﴿تَبَّتْ يَدَا أَبِي لَهَبٍ﴾ نازل ٿي يعني ابولهب جا ٻئي هٿ غارت ٿين ۽ هو پاڻ به غارت ٿئي. (1)

ان واقعي جو هڪ حصو امام مسلم رحمہ الله پنهنجي صحيح ۾ ابو هريره رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کان روايت ڪئي آهي ته جڏهن هي آيت نازل ٿي (وَأَنْذِرْ عَشِيرَتَكَ الْأَقْرَبِينَ) ته نبي ڪريم ﷺ جن ماڻهن کي پڪار لڳائي ۽ اها پڪار عام ۽ خاص به هئي پاڻ ﷺ فرمايائون ته: اي قريشيو! پنهنجو پاڻ کي جهنم کان بچايو. اي بني ڪعب! پنهنجو پاڻ کي جهنم کان بچايو. اي محمد ﷺ جي ڌيءُ فاطمه پنهنجو پاڻ کي جهنم کان بچاءِ چو جو آءُ توهان کي الله جي پڪڙ کان بچائڻ جو اختيار نٿو رکان پر منهنجي توهان سان رشتيداري ۽ قرابت جا تعلقات آهن انهن کي آءُ برقرار رکڻ جي ڪوشش ڪندس. (2)

اها صدا تبليغ جي ڪڙي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجن ويجهن ماڻهن اڳيان کولي ٻڌايو هو ته هاڻي هن رسالت کي مڃڻ تي ئي ايندڙ وقت واسطن جو بنياد رهندو ۽ جنهن نسلي ۽ قبائلي عصبيت تي عرب بيٺل هئا اها هن خدائي انذار جي تپش سان پگهري ختم ٿي وئي آهي.

**حق جو چئن لفظن ۾ اعلان ۽ مشرڪن جو رد عمل:** - اڃا هن سڌ جو پڙاڏو مڪي جي پرياسي ۾ ٻڌڻ پراچي ئي رهيو هو ته الله تعاليٰ جو هڪ ٻيو حڪم نازل ٿيو: ﴿فَاصْدَعْ بِمَا تُؤْمَرُ وَأَعْرِضْ عَنِ الْمُشْرِكِينَ﴾ (94) (الحجر)

"توهان کي جيڪو حڪم مليو آهي اهو کولي ٻڌايو ۽ مشرڪن کان منهن موڙي ڇڏيو" ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ شرڪ جي بيهودگين جي اصليت تي کلي تنقيد ڪرڻ ۽ بتن جي حقيقت ۽ قدر و قيمت کليل لفظن ۾ ٻڌائڻ شروع ڪئي. پاڻ سڳورا ﷺ مثال ڏئي سمجهايندا هئا

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (702/2، 743)، صحيح مسلم (1/114).

<sup>2</sup> - صحيح مسلم (1/114).

ته اهي ڪيترا نه بي پهچ ۽ ناڪاره آهن ۽ دليلن سان واضح ڪندا هئا ته جيڪو ماڻهو انهن کي پوڄي ٿو ۽ انهن کي الله ۽ پنهنجي وڃ ۾ وسيلو بنائي ٿو اهو ڪيتري ڪليل گمراهي ۾ آهي.

مڪي وارا هڪ اهڙي صدا ٻڌي ڏمڙجي پيا جنهن ۾ مشرڪن ۽ بت پرستن کي راه تان تڙيل چيو ويو هو ۽ ڪروڙ ۾ وڃڻ سٽجڻ لڳا. ڇڻ ته ڪنوڻ جا ڪڙڪا هئا، جن ماڻهين ماحول کي لوڏي ڇڏيو. ان ڪري قريش اوجھو ڦاٽي نڪتل "انقلاب" کي جڙ کان ڪٽڻ لاءِ اتي ڪڙا ٿيا ته جيئن ابن ڏاڏن کان هلندڙ رسمن کي ختم ٿيڻ کان بچائي سگهن.

قريش اتي ڪڙا ٿيا ڇو ته انهن ڄاتو ٿي ته غير الله جي پوڄا کان انڪار، رسالت ۽ آخرت تي ايمان آڻڻ جو مطلب اهو ٿيندو ته پنهنجو پاڻ کي مڪمل طور تي ان رسالت جي حوالي ڪيو وڃي ۽ ان جي مڪمل اطاعت ڪئي وڃي. يعني ان طرح جو ٻين بابت ته ٺهيو مورڱو پاڻ بابت به ڪو اختيار نه هجي. ان جي معنيٰ اها هئي ته مڪي وارن کي ٻين عربن تي جيڪا ديني برتري حاصل هئي. اها ختم ٿي وڃي ۽ الله ۽ ان جي رسول جي رضا جي مقابلي ۾ سندن مرضيءَ جو ڪو عمل دخل نه رهي. يعني هيٺين طبقي تي اهي جيڪي ظلم ڪندا هئا ۽ جن بابت ۾ صبح ۽ شام لپٽڙيا هئا انهن تان هٿ ڪڍي وڃن. قريش ان مطلب کي چڱي نموني سمجهي رهيا هئا. ان ڪري سندن ذهن اها خواريءَ واري صورتحال قبول ٿيڻ لاءِ تيار نه هئا. پر ڪنهن شرف ۽ خير جي پيش نظر نه بلڪه: ﴿لَا يُرِيدُ الْإِنْسَانُ لِيَفْجُرَ أَمَامَهُ﴾ (5) (القيامه) "ان لاءِ ته انسان چاهي ٿو ته ٻيهر به برائي ڪندو رهان".

قريش اهو سڀ ڪجهه سمجهي رهيا هئا پر مشڪل اها هئي ته سندن سامهون اهڙو ماڻهو هو جيڪو صادق ۽ امين هو. انساني قدرن ۽ اخلاقي صفتن جو اعليٰ نمونو هو ۽ هڪ ڊگهي عرصي کان انهن پنهنجن ابن ڏاڏن جي تاريخ ۾ سندس مثال نه ڏٺو هو. نه ٻڌو هو. آخر هو ڪن به ته ڇا ڪن! قريش اچرج ۾ هئا ۽ انهن کي اچرج ۾ پوڻ به گهريو هو. گهڻي سوچ وڃڻ کانپوءِ هڪ رستو سمجه ۾ آين ته پاڻ سڳورن ﷺ جي چاچي ابو طالب وٽ وڃن ۽ ڪانئس مطالبو ڪن ته هو پاڻ سڳورن ﷺ کي ان ڪم کان روڪي. انهن پنهنجي مطالبن کي حقيقت جو روپ ڏيکائڻ لاءِ اهو دليل تيار ڪيو ته سندن معبودن کي ڇڏڻ ۽ اهو چوڻ ته اهي معبود نفعو نقصان پهچائڻ ۽ ڪجهه ڪرڻ جي سگهه نٿا رکن، اها انهن معبودن جي لاءِ سخت توهين ۽ وڏي گار آهي ۽ اسانجن ابن ڏاڏن کي بيوقوف ۽ راه تان تڙيل هجڻ جو الزام آهي، جيڪي هن دين تي هلي چڪا آهن. قريش کي اها ئي واٽ سمجه ۾ آئي ۽ انهن تيزيءَ سان ان راه تي هلڻ شروع ڪيو.

**قريش ابو طالب وٽ:-** ابن اسحاق لکي ٿو ته قريش جا ڪجهه سردار ابو طالب وٽ ويا ۽ چيائون ته "اي ابو طالب! اوهان جي پائيتي اسان جي معبودن کي گهٽ وڌ ڳالهائڻ آهي ۽ اسان جي

دين جا عيب ڪڍيا آهن. اسان جي ڏاهپ کي بيوقوفِي چوي ٿو ۽ اسانجن ابن ڏاڏن کي راه تان تڙيل ليکي ٿو. تنهن ڪري يا ته توهان ان کي روڪيو يا اسان جي ۽ سندن وچ مان هٽي وڃو، ڇو ته توهان به اسان وانگر ان کان مختلف دين تي آهيو.

ان جي جواب ۾ ابو طالب ساڻن ٿڌي نموني ڳالهايو ۽ پنهنجو لهجو رازداريءَ وارو رکيو، تنهن ڪري اهي موتي ويا ۽ پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجي پراڻي طريقي تي هلندي الله جو دين پڪيڙڻ ۽ ان جي تبليغ ڪرڻ ۾ مصروف رهيا.<sup>(1)</sup>

حاجين کي روڪڻ لاءِ مجلس شورا: - انهن ئي ڏينهن ۾ قرينشن آڏو هڪ ٻي مشڪل اچي ڪڙي ٿي. يعني اڃا کليل تبليغ ڪندي ڪجهه مهينا مس ٿيا هئا جو حج جي موسم اچي وئي. قرينشن کي خبر هئي ته هاڻي عربن جا ٽولا اچڻ شروع ٿي ويندا. ان لاءِ انهن ضروري ڄاتو ته پاڻ سڳورن ﷺ بابت اهڙا افواه اٿارين جن سان عربن جي دلين تي پاڻ سڳورن ﷺ جي تبليغ جو اثر نه ٿئي. ان بابت رت رتڻ لاءِ اهي وليد بن مغيره وٽ گڏ ٿيا. وليد چيو، ان بابت توهان سڀ هڪ راءِ اختيار ڪريو. توهان جو پنهنجو پاڻ ۾ اختلاف نه هجڻ کپي جو هو توهان مان آهي متان ڪو سندس پاسو وٺي ۽ توهان کي ڪوڙو ڪري وجهي. ماڻهن چيو، پوءِ توهان ئي ڪا صلاح ڏيو. هن چيو، نه توهان ٻڌايو، آئون ٻڌندس. ان تي ڪن ماڻهن چيو، اسين چوندا سين ته هو ڪاهن آهي. وليد چيو، نه الله جو قسم! هو ڪاهن نه آهي. اسان ڪاهن کي ڏٺو آهي. هن ۾ ڪاهن جهڙي نه جهونگار آهي نه قافيه بندي ۽ نه ئي تڪبندي.

ان تي ماڻهن چيو، تڏهن اسين چوندا سين ته هو چريو آهي. وليد چيو، نه هو چريو به نه آهي. پاڻ چريا به ڏنا آهن ۽ انهن جي حالت به، سندس ڪيفيت چرين جهڙي ناهي، نه ئي هو ايتيون سبتيون حرڪتون ڪندو آهي ۽ نه ئي انهن وانگر تڙيل ڳالهيون ڪري ٿو.

ماڻهن چيو، تڏهن اسين چوندا سين ته هو شاعر آهي، وليد چيو، هو شاعر به ڪونهي. اسان کي رجز، هجز، قريض، مقبوض، مبسوط ۽ سڀئي شعري صنفون معلوم آهن. هن جون ڳالهيون بهرحال شاعري ناهن. ماڻهن چيو، تڏهن اسين چوندا سين ته جادوگر آهي. وليد چيو، هو جادوگر به ڪونهي. اسان جادوگر ۽ سندن جادو به ڏنا آهن. هو نه ڪو توڻا ڦيڻا ڪري ٿو ۽ نه ئي ڏاڳا وٺي ٿو ڏي.

ماڻهن چيو تڏهن اسين ڇا ته چئون؟ وليد چيو، الله جو قسم! هن جون ڳالهيون ڏاڍيون منيون آهن. جن جون جڙون پختيون آهن ۽ شاخون ميوبدار. توهان جيڪي ڪجهه چوندا، ماڻهو ان کي ڪوڙ

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/265).

سمجهندا. باقي ان بابت مناسب افواه اها قهلائي سگهجي ٿي ته هو جادوگر آهي. هن وٽ اهڙو ڪلام آهي جيڪو جادو آهي. جنهن سان پيءُ پٽ، پيءُ ڀاءُ، زال مڙس ۽ ڪٿم قبيلي ۾ ڌار پڻجيو وڃن. آخرڪار ماڻهو اها رت رتي اٿيا. (1)

ڪن روايتن ۾ اهو تفصيل به ڏنل آهي ته جڏهن وليد، ماڻهن جون سڀ رتون رد ڪري ڇڏيون ته ماڻهن چيو ته پوءِ توهان ئي پنهنجي راءِ ٻڌايو ان تي وليد چيو ته تورو سوچڻ ڏيو. ان کانپوءِ هن سوچي مٿين راءِ ڏني. (2)

هن معاملي ۾ وليد بابت سوره مدثر ۾ سورنهن آيتون (11 کان 26 تائين) لٿيون. جن مان ڪن ۾ سندس سوچڻ جي ڪيفيت جو نقشو چٽيل آهي. جيئن ارشاد ٿيل آهي ته: ﴿إِنَّهُ فَكَّرَ وَقَدَّرَ (18) فَقَتَلَ كَيْفَ فَدَرَّ (19) ثُمَّ قَتَلَ كَيْفَ فَدَرَّ (20) ثُمَّ نَظَرَ (21) ثُمَّ عَبَسَ وَبَسَرَ (22) ثُمَّ أَدْبَرَ وَاسْتَكْبَرَ (23) فَقَالَ إِنْ هَذَا إِلَّا سِحْرٌ يُؤْتَرُ (24) إِنْ هَذَا إِلَّا قَوْلُ الْبَشَرِ (25)﴾ (المدثر) "هن سوچيو ۽ اندازو لڳايو، هو غارت ٿئي، هن ڪهڙو اندازو لڳايو، وري غارت ٿئي، هن ڪهڙو اندازو لڳايو پوءِ نظر ڊوڙائي، پوءِ نراڙ تي گهنڊ وڌائين منهن کي موڙا ڏنا پوءِ مڙيو ۽ تڪبر ڪيائين. آخرڪار چيائين ته اهو ته سڌو سنئون جادو آهي جيڪو اڳي کان هلندو اچي، اهو رڳو انسان جو ڪلام آهي."

بهرحال اها رت منظور ٿي وئي ته ان کي عملي طور تي لاڳو ڪرائڻ لاءِ ڪارروائي شروع ٿي. مڪي جا ڪي ڪافر حج جي پانڊيٽن جي مختلف رستن تي ويهي رهيا ۽ اتان هر لنگهڻ واري کي پاڻ سڳورن ﷺ جي "خطري" کان آگاهه ڪري ان جو تفصيل ٻڌائڻ لڳا. (3)

هن ڪم ۾ سڀ کان اڳرو ابولهب هو. هو حج جي ڏينهن ۾ ماڻهن جي ديرن ۽ عڪاظ، مڃن ۽ ذوالمجاز جي بازارن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي پٺيان پٺيان پيو هلندو هو. پاڻ سڳورا ﷺ الله جي دين جي تبليغ ڪري ويندا هئا ته هو پٺيان اچي چونڊو هو ته هن جي ڳالهه نه مڃجو. اهو ڪوڙو ۽ دين کان قريل آهي. (4)

ان پيچ ڊڪ جو نتيجو اهو نڪتو جو جڏهن حاجي گهرن ڏي موٽيا ته سڀني کي پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جي دعوا بابت ڄاڻ ملي چڪي هئي ۽ ائين سڄي عربستان ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو چرچو ٿيڻ لڳو.

1 - ابن هشام (271/1).

2 - في ظلال القرآن (188/29).

3 - ابن هشام (271/1).

4 - مسند احمد (3/492 - 4/341) ۾ ان جي اها حڪمت مروي ٿيل آهي، البداية والنهاية (5/75)، ۽ ڪنز العمال (12/449)،

(450) پڻ ڏسڻ گهرجن.



محاذا آرائيء جا مختلف انداز:- جڏهن قريشن ڏٺو ته محمد ﷺ کي دين جي تبليغ کان روڪڻ جي اها حڪمت عملي ناڪام وئي ته انهن هڪ ڀيرو وري سوچ ويچار ڪئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي دعوت کي پنڄو ڏيڻ لاءِ مختلف طريقا اختيار ڪيا جن جو نت هن ريت آهي.

1. ڪل، نثولي، تحقير، توڪ، تڪذيب:- ان جو مقصد اهو هو ته مسلمانن جي دل کڻي ڪري سندن حوصلو توڙيو وڃي. ان لاءِ مشرڪن. پاڻ سڳورن ﷺ تي اجايون تهمتون لڳائڻ ۽ بيهوديون گاريون ڏيڻ شروع ڪيون. جيئن اهي ڪڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي چريو چوندا هئا، جيئن ارشاد پاڪ آهي ته: ﴿وَقَالُوا يَا أَيُّهَا الَّذِي نُزِّلَ عَلَيْهِ الذِّكْرُ إِنَّكَ لَمَجْنُونٌ﴾ (6) (الحجر)

"انهن ڪافرن چيو ته اهو ماڻهو جنهن تي قرآن لٿو آهي سو پڪ چريو آهي" ۽ ڪڏهن پاڻ سڳورن ﷺ تي جادوگر ۽ ڪوڙو هجڻ جو الزام لڳائيندا هئا. جيئن فرمايل آهي ته: ﴿وَعَجِبُوا أَنْ جَاءَهُمْ مُنْذِرٌ مِنْهُمْ وَقَالَ الْكَافِرُونَ هَذَا سَاحِرٌ كَذَّابٌ﴾ (4) (ص) "انهن کي اچرج آهي ته انهن مان ئي هڪ ڊيچارڻ وارو آيو ۽ ڪافر چون ٿا ته اهو جادوگر آهي، ڪوڙو آهي".

اهي ڪافر پاڻ سڳورن ﷺ جي اڳيان پويان ڪروٽ سان ۽ پلانڊ وٺڻ جهڙن جڏهن سان هلندا هئا. ارشاد آهي ته: ﴿وَإِنْ يَكَادُ الَّذِينَ كَفَرُوا لَيُزْلِقُونَكَ بِأَبْصَارِهِمْ لَمَّا سَمِعُوا الذِّكْرَ وَيَقُولُونَ إِنَّهُ لَمَجْنُونٌ﴾ (51) (القلم) "۽ جڏهن ڪافران قرآن کي ٻڌن ٿا ته پاڻ سڳورن ﷺ کي اهڙين نظرن سان ڏسن ٿا جڏهن سندن قدم اڪوڙي ڇڏيندا ۽ چوندا آهن ته هي پڪ چريو آهي". ۽ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ ڪنهن جاءِ تي ويندا هئا ۽ ساڻن گڏ بي پهچ ۽ مظلوم اصحابي سڳورا هوندا هئا ته انهن کي ڏسي مشرڪ توڪ ڪندي چوندا هئا ته: ﴿أَهُؤْلَاءِ مَنْ اللَّهُ عَلَيْهِمْ مِنْ نَبِينَا﴾ (53) (الانعام) "اڃا! هي اهي ئي آهن، جن تي الله اسان مان احسان ڪيو آهي!" جواب ۾ الله تعاليٰ فرمايو ته: ﴿أَلَيْسَ اللَّهُ بِأَعْلَمَ بِالشَّاكِرِينَ﴾ "اڃا الله شڪر ڪندڙن کي سڀ کان گهڻو نٿو ڄاڻي!"

عام طور تي ڪافرن جي حالت اها ئي هئي جنهن جو نقشو هيٺ ڏنل آيتن ۾ چٽيل آهي:

﴿إِنَّ الَّذِينَ أُحْرِمُوا كَانُوا مِنَ الَّذِينَ آمَنُوا يَضْحَكُونَ﴾ (29) وَإِذَا مَرُّوا بِهِمْ يَتَغَامَزُونَ﴾ (30) وَإِذَا انْقَلَبُوا إِلَىٰ أَهْلِهِمْ انْقَلَبُوا فَكِهِينَ﴾ (31) وَإِذَا رَأَوْهُمْ قَالُوا إِنَّ هَؤُلَاءِ لَضَالُّونَ﴾ (32) وَمَا أَرْسَلْنَا عَلَيْهِمْ حَافِظِينَ﴾ (33) (المطففين) "جيڪي ڏوهاري هئا اهي ايمان وارن جو مذاق اڏائيندا هئا ۽ جڏهن انهن جي ويجهو لنگهندا هئا ته اڪيون پڇندا هئا ۽ جڏهن پنهنجن گهر وارن ڏي موٽندا هئا ته مزو وٺي موٽندا هئا ۽ جڏهن انهن کي ڏسندا هئا ته چوندا هئا ته اهي ئي راه تان ٿڙيل آهن. جڏهن ته اهي انهن مٿان نگران بڻائي نه موڪليا ويا هئا.

2. محاذ آرائيء جي بي صورت:- پاڻ سڳورن ﷺ جي تعليم کي بگاڙڻ، شڪ ۽ شهبها پيدا ڪرڻ، ڪوڙا افواهه پکيڙڻ، تعليم کان وٺي شخصيت تائين نامناسب اعتراضن جو نشانو بنائڻ ۽ اهو سڀ ايترو گهڻو ڪرڻ جو عوام کي دعوت ۽ تبليغ تي غور ڪرڻ جو موقعو ئي نه ملي سگهي. جيئن اهي مشرڪ قرآن بابت چوندا هئا ته: ﴿وَقَالُوا أَسَاطِيرُ الْأَوَّلِينَ اكْتَتَبَهَا فَهِيَ تُمْلَىٰ عَلَيْهِ بُكْرَةً وَأَصِيلًا﴾ (5) (الفرقان)

"اهي گذريلن جا قصا آهن، جن کي پاڻ سڳورن ﷺ لکائي ورتو آهي. هاڻي پاڻ سڳورن ﷺ تي صبح شام تلاوت ڪيا وڃن ٿا: ﴿إِنَّ هَذَا إِلَّا إِفْكُ افْتَرَاهُ وَأَعَانَهُ عَلَيْهِ قَوْمٌ آخَرُونَ﴾ (4) (الفرقان) "اهو رڳو ڪوڙ آهي جنهن کي ان گهڙيو آهي ۽ ڪن ٻين ماڻهن کان ان جي مدد ورتي آهي.

مشرڪ اهو به چوندا هئا ته: ﴿إِنَّمَا يُعَلِّمُهُ بَشَرٌ لِّسَانٌ﴾ (103) (النحل) "اهو قرآن اوهان کي هڪ انسان سيکاري ٿو". رسول الله ﷺ تي انهن جو هي اعتراض به هو ته: ﴿مَالِ هَذَا الرَّسُولِ يَأْكُلُ الطَّعَامَ وَيَمْسُجِي فِي الْأَسْوَاقِ﴾ (7) (الفرقان)

"اهو ڪهڙو رسول آهي جو کاڌو کائي ٿو ۽ بازارن ۾ گهمي ڦري ٿو!" قرآن شريف ۾ گهڻن جڳهين تي مشرڪن جو رد به ڪيو ويو آهي. ڪٿي اعتراض سميت، ڪٿي بنا اعتراض جي.

3. محاذ آرائيء جي ٽي صورت:- گذريلن جي واقعن ۽ قصن سان قرآن جي ڀيٽ ڪرڻ ۽ ماڻهن کي انهن ۾ منجهائي ۽ قاسائي رکڻ، جيئن نصر بن حارث جو واقعو آهي ته ان هڪ ڀيري قرينشن کي چيو ته "قريشيو! الله جو قسم! توهان تي اهڙي مصيبت اچي پئي آهي جو توهان اڃا تائين ان جو ٽوڙ نه ڪري سگهيا آهيو. محمد ﷺ توهان ۾ جوان هو ۽ توهان سڀني کان چڱو هو. سڀ کان وڌيڪ سڄار ۽ امانتدار هو. هاڻي جڏهن ان جي لؤنڻن تي اڇاڻ اچڻ واري آهي (يعني اڏڙوٽ ٿيڻ وارو آهي) ۽ اهو توهان وٽ ڪي ڳالهين ڪئي آيو آهي ته توهان چئو ٿا ته هو جادوگر آهي! نه الله جو قسم! هو جادوگر نه آهي. اسان جادوگر ڏنا آهن، انهن جا ٿوڻا ڦيٽا ۽ ڏاڳا وٽن به ڏنا آهن ۽ توهان چئو ٿا ته هو ڪاهن آهي. نه الله جو قسم! هو ڪاهن به ڪونهي، اسان ڪاهن به ڏنا آهن، انهن جون اڀيون سبتيون حرڪتون به ڏنيون آهن. توهان چئو ٿا ته هو شاعر آهي. نه، الله جو قسم! هو شاعر به نه آهي. اسان شاعر به ڏنا آهن ۽ ان جون صنفون، هجڙ، رجز وغيره به ٻڌيون آهن. توهان چئو ٿا ته هو چريو آهي. نه الله جو قسم! هو چريو به نه آهي. اسان چريائپ به ڏني آهي. هو نه اهڙيون ٿڙيل ڳالهين ڪري ٿو ۽ نه اهڙيون فريب ڪاريءَ واريون ڳالهين ٿو ڪري. قريشيو! سوچيو! الله جو قسم! توهان تي وڏي مصيبت اچي ڪڙڪي آهي. ان کانپوءِ نصر بن حارث، حيره ويو. اتان بادشاهن جا واقعا ۽ رستم ۽ اسفنديار جا قصا سڪيو پوءِ واپس آيو. جڏهن پاڻ سڳورا

ﷺ ڪٿي بيهي الله جون ڳالهيون ڪندا هئا ۽ ماڻهن کي الله جي پڪڙ کان ڊيڄاريندا هئا ته ان کانپوءِ اهو ماڻهو اتي اچي چوندو هو ته الله جو قسم! محمد ﷺ جون ڳالهيون مون کان پليون نه آهن. ان کانپوءِ هو فارس جي بادشاهن ۽ رستم ۽ اسفنديار جا قصا ٻڌائيندو هو ۽ پوءِ چوندو هو ته آخر ڪهڙيءَ ڳالهه ۾ محمد ﷺ جون ڳالهيون مون کان پليون آهن. (1)

ابن عباس رضيه الله عنه جي روايت مان اها به خبر پوي ٿي ته نضر ڪجهه ٻانهيون خريد ڪيون هيون ۽ جڏهن هو ڪنهن بابت ٻڌندو هو ته اهو پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن مائل آهي ته ان پويان پنهنجي ٻانهي لڳائي ڇڏيندو هو، جيڪا ان کي ڪارائيندي پياريندي ۽ گانا ٻڌائيندي هئي ۽ سندس دل اسلام کان موڙي وجهندي هئي. ان سلسلي ۾ آيت لثي ته (2)

﴿وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَشْتَرِي لَهْوَ الْحَدِيثِ لِيُضِلَّ عَنْ سَبِيلِ اللَّهِ﴾ (6) ﴿لَقَمَان﴾ "ڪي ماڻهو اهڙا آهن جيڪي راند روند جي ڳالهه کي خريد ڪندا آهن تانته الله جي راه کان گمراه ڪيا وڃن.

**4. محاذ آرائيءَ جي چوٿين شڪل:-** سودي بازبون، جن جي وسيلي مشرڪن اها ڪوشش ڪئي ته اسلام ۽ جهالت کي ملائجي مطلب ته ڏي وٺ جي اصول تحت ڪي ڳالهيون مشرڪ ڇڏين ۽ ڪي ڳالهيون پاڻ سڳورا ﷺ ڇڏين. قرآن ۾ ان بابت آيل آهي ته:

﴿وَدُّوا لَوْ تُدْهِنُ فَيُدْهِنُونَ﴾ (9) ﴿الْقَلَم﴾

"اهي چاهين ٿا ته توهان ڍلا ٿيو ته هو به ڍلا ٿين."

جيئن امام ابن جرير رحمه الله ۽ امام طبراني رحمه الله هڪ روايت آندي آهي ته مشرڪن پاڻ سڳورن ﷺ کي اها رٿ پيش ڪئي ته هڪ سال توهان اسان جن بتن جي پوڄا ڪريو ۽ هڪ سال اسين توهان جي رب جي عبادت ڪنداسين. امام عبد بن حميد رحمه الله کان هڪ روايت هن طرح آيل آهي ته مشرڪن چيو ته جي اوهان اسان جي معبودن کي قبول ڪريو ته اسان به توهان جي الله جي عبادت ڪنداسين. (3)

ابن اسحاق رحمه الله جو بيان آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ ڪعبه الله جو طواف ڪري رهيا هئا ته اسود بن مطلب بن اسد بن عبدالعزيز، وليد بن مغيره، اميه بن خلف ۽ عاص بن وائل سهمي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيا، اهي سڀ پنهنجي قبيلي جا سردار هئا. چيائون ته: اي محمد ﷺ! جنهن کي تون ٿو پوڄين. ان کي اسين به پوڄيون ۽ جنهن کي اسان ٿا پوڄيون. ان کي تون به پوڄ. ان طرح پاڻ

1 - ابن هشام (1-299-300-358) مختصر السيرة شيخ عبدالله (117-118).

2 - فتح القدير للشوڪاني (4/236)، ۽ ٻيا تفسيرن جا ڪتاب.

3 - فتح القدير للشوڪاني (5/508).

اهو ڪم گڏجي ڪنداسين. هاڻ جي تنهنجو معبود ڀلو آهي ته اسان کي فائدو ڏيندو ۽ جي اسان جا ڀلا آهن ته توکي لاپ حاصل ٿيندو. ان تي الله تعاليٰ سڄي سورہ ﴿قُلْ يَا أَيُّهَا الْكَافِرُونَ﴾ آخر تائين نازل ڪئي. جنهن ۾ اعلان ڪيو ويو ته جنهن کي توهين پوڄيو ٿا، ان کي آئون نٿو پوڄي سگهان.<sup>(1)</sup> ۽ ان حتمي جواب ذريعي سندن ڪل جوڳي ڳالهه جون پاڙون ڪپيون ويون. روايتن ۾ فرق شايد ان ڪري آهي جو اهڙي سوڊياڙيءَ جي ڪوشش هر هر ڪئي وئي هئي.

**ظلم ۽ ستم**:- نبوت جي چوٿين سال جڏهن پهريون ڀيرو اسلامي دعوت منظر عام تي آئي ته مشرڪن ان کي دٻائڻ لاءِ اهي ڪم ڪيا جيڪي مٿي ٻڌايا اٿئون. اهي ڪارروايون ننڍي پيماني تي درجي بدرجي ڪيون ويون هيون ۽ هفتن جا هفتا بلڪ مهينن جا مهينا ان کان اڳتي نه وڌيا ۽ ظلم ۽ زيادتي نه ڪئي پر جڏهن ڏنائون ته سندن اهي ڪارروايون اسلام جو رستو روڪڻ ۾ ناڪام ويون آهن تڏهن هڪ ڀيرو وري گڏ ٿيا ۽ 25 قريش سردارن جو هڪ ڪميٽي جوڙيائون، جنهن جو اڳواڻ پاڻ سڳورن ﷺ جو چاچو ابولهب هو. ان اجلاس گڏيل صلاح مشوري ۽ سوچ ويچار کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن جي خلاف هڪ حتمي ٺهراءُ منظور ڪيو. يعني اهو طئي ڪيو ته اسلام جي مخالفت، پاڻ سڳورن ﷺ کي تڪليف ڏيڻ، مسلمان ٿيندڙن تي هر قسم جو ظلم ۽ ستم ڪرڻ ۾ ڪا به ڪسر نه ڇڏي وڃي.<sup>(2)</sup>

مشرڪن اهو ٺهراءُ پاس ڪري ان تي عمل ڪرڻ جو پڪو پھ ڪري ورتو. مسلمانن، خاص طور تي ڪمزور مسلمانن جي باري ۾ اهو ڪم ڪرڻ ڏاڍو سولو هو پر پاڻ سڳورن ﷺ جي سلسلي ۾ ڪافي ڏکيائون هيون. پاڻ سڳورا ﷺ ذاتي طور تي شاندار، باوقار ۽ منفرد شخصيت جا مالڪ هئا. دوست ۽ دشمن سڀئي کين عزت جي نظر سان ڏسندا هئا. سندن خلاف ڪنهن گهٽيا ۽ ذليل حرڪت جي جرئت ڪو گهٽ ذهنيت وارو ماڻهو ئي ڪري سگهيو ٿي. ان کان علاوه پاڻ سڳورن ﷺ کي ابو طالب جي سهائتا حاصل هئي ۽ ابو طالب ذاتي ۽ اجتماعي طرح سان مڪي جي چند ماڻهن جيان ايڏو معزز هو جو ڪير به سندن عهد توڙو ۽ سندن گهراڻي تي هٿ وجهڻ جي جسارت نٿي ڪري سگهيو. ان ڪري قريش ڏاڍي پريشانيءَ ۾ ورتل هئا، پر سوال اهو هو ته جيڪا دعوت انهن جي مذهبي اڳواڻي ۽ دنياوي سربراهيءَ کي ختم ڪرڻ جو باعث هئي، آخر هو ان تي ڪيستائين صبر ڪن ها؟ آخرڪار مشرڪن، ابولهب جي اڳواڻيءَ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ ۽ مسلمانن تي ظلم ڪرڻ جي شروعات ڪئي. حقيقت ۾ پاڻ سڳورن ﷺ بابت ابولهب جو موقف پهرئين ڏينهن

<sup>1</sup> - ابن هشام (362/1).

<sup>2</sup> - ڏسو رحمة للعالمين (1/59-60).

کان، جڏهن اڃا قريشن اها ڳالهه سوچي به ڪا نه هئي، اهو ئي هو. هن بني هاشم جي گڏجاڻيءَ ۾ جيڪي چيو يا پوءِ صفا جبل تي جيڪا حرڪت ڪئي، ان جو ذڪر اڳيئي اچي چڪو آهي. ڪن روايتن ۾ اهو به آيل آهي ته هن صفا جبل تي پاڻ سڳورن ﷺ کي هڻڻ لاءِ پٿر به کنيو هو. (1)

نبوت جي اعلان ٿيڻ کان اڳ ابولهب پنهنجن ٻن پٽن عتبه ۽ عتيبه جون شاديون پاڻ سڳورن ﷺ جي ٻن نياڻين بيبي رقيه رضي الله عنها، بيبي ام ڪلثوم رضي الله عنها سان ڪرايون هيون پر نبوت جي اعلان ٿيڻ کانپوءِ ڏاڍي سختيءَ ۽ بيحيائيءَ سان انهن ٻنهي کي طلاق ڏيارياڻين. (2)

ان طرح جڏهن پاڻ سڳوري ﷺ جي ٻئي فرزند عبدالله جو انتقال ٿيو ته ابولهب کي ايڏي خوشي ٿي جو هو ڊوڙندو پنهنجن سنگتين وٽ ويو ۽ کين اها "خوشخبري" ٻڌايائين ته محمد ﷺ ابتر (نسل ختم ٿيل) ٿي ويا آهن. (3)

اسين اهو به ٻڌائي آيا آهيون ته حج جي ڏينهن ۾ ابو لهب، پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪوڙو ثابت ڪرڻ لاءِ بازارن ۽ ميڙن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي پٺيان پيو هلندو هو. طارق بن عبدالله محاربيءَ جي روايت مان پتو پوي ٿو ته هو رڳو پاڻ سڳورن ﷺ جي مخالفت نه ڪندو هو بلڪ پاڻ سڳورن ﷺ کي پٿر به هڻندو هو. جنهن سان پاڻ سڳورن ﷺ جي پيرن جون کڙيون به رت سان پرڃي وينديون هيون. (4)

ابو لهب جي زال ام جميل، جنهن جو نالو اروى هو ۽ جيڪا حرب بن اميه جي ڌيءُ ۽ ابو سفيان جي پيڻ هئي. اها به پاڻ سڳورن ﷺ جي عداوت ڪرڻ ۾ مڙس کان گهٽ نه هئي. اها به پاڻ سڳورن ﷺ جي رستن تي ۽ دروازي تي ڪنڊا وجهي ڇڏيندي هئي. ڏاڍي بد زبان ۽ فسادي قسم جي مائي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ خلاف گهٽ وڌ ڳالهائڻ، ڳالهين کي وڌائي چڙهائي غلط نموني سان پڪيڙڻ ۽ جهيڙا ڪرائڻ سندس شيوو هو. ان ڪري قرآن ۾ ان کي حمالة الحطب (ڪاٺين جي لڏ ڪٽندڙ) جو لقب ڏنل آهي.

جڏهن ان کي خبر پئي ته کيس ۽ سندس مڙس کي قرآن ۾ ننڍو ويو آهي ته اها پاڻ سڳورن ﷺ کي ڳولهيڻدي ڪعبي ويجهو مسجد الحرام ۾ آئي. حضرت ابوبڪر رضه به پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ هو. هوءَ مٿ ۾ پٿر کڻي آئي هئي. سامهون آئي ته الله سندس اکيون جهلي ورتيون ۽ هوءَ پاڻ

1 - ترمذي.

2 - في ظلال القرآن (282/30)، تفهيم القرآن (522/6) اسد الغابة جلد 6 احوال رقيه ۽ ام ڪلثوم.

3 - تفهيم القرآن (490/6)، تفسير ابن ڪثير تفسير سورة الكوثر (4/595).

4 - ڪنز العمال (12/449).

سڳورن ﷺ کي نه ڏسي سگهي، رڳو حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ کي پئي ڏنائين. ان کان پڇيائين ته اي ابوبڪر! تنهنجو ساٿي ڪٿي آهي؟ مون کي خبر پئي آهي ته هو منهنجي هجڻو (ڪوار) ڪندو آهي<sup>(1)</sup>

الله جو قسم! مون کيس ڏٺو ته سندس منهن تي پٿر هڻي ڪيندس. ڏس! هاڻي منهنجي شاعري به ٻڌ، پوءِ هن هي شعر ٻڌايو:

مُذَمَّمًا (2) عَصِينَا وَأَمْرُهُ آيِنَا وَدِينَهُ قَلِينَا

"اسان مذمر جي نافرمان ڪئي. ان جو حڪم نه مڃيو ۽ سندس دين کي ڪروڙ ۽ نفرت سان ڇڏي ڏنو". پوءِ هوءَ هلي وئي. حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ چيو ته يا رسول الله ﷺ ڇا هن توهان کي نه ڏٺو؟ پاڻ ﷺ فرمايائون ته نه، هن مون کي نه ڏٺو. الله سندس اکيون جهلي ورتيون. (3)

ابوبڪر بزار رحمة الله به اهو واقعو لکيو آهي ۽ ان ۾ اهو واڌارو آهي ته جڏهن ابوبڪر رضی اللہ عنہ وٽ هوءَ بيٺي هئي ته هن اهو به چيو ته ابوبڪر رضی اللہ عنہ! تنهنجي ساٿيءَ منهنجي هجڻو (ڪوار) ڪئي آهي. ابوبڪر رضی اللہ عنہ چيو ته نه هن عمارت جي رب جو قسم، نه هو شعر چوندو آهي ۽ نه ئي انهن کي زبان تي آڻيندو آهي. هن چيو ته تون سڄو آهين.

ابولهب پاڻ سڳورن ﷺ جو چاچو ۽ پاڙيسري هوندي به اهي سڀ حڪتون ڪري رهيو هو. جنهن کي ڏسي ٻيا پاڙيسري به پاڻ سڳورن ﷺ کي سندن ئي گهر ۾ به ستائيندا هئا. ابن اسحاق رحمة الله جو چوڻ آهي ته جيڪو ٽولو گهر ۾ به پاڻ سڳورن ﷺ کي تنگ ڪندو هو اهي هي آهن. ابولهب، حڪم بن ابى العاص بن اميه، عقبه بن ابى معيط، عدي بن حمرا ثقفى، ابن الاصداءِ هذلي، اهي سڀئي پاڻ سڳورن ﷺ جا پاڙيسري هئا ۽ انهن مان حڪم بن ابى العاص (4) کانسواءِ ڪير به مسلمان نه ٿيو. سندس ستائڻ جو طريقو اهو هو ته جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ نماز پڙهندا هئا ته ڪو شخص بڪريءَ جي اوجھري سندن مٿان اڇلائيندو هو. چلهه تي ديڳڙي چڙهيل هوندي هئي ته اوجھري ان طرح اڇلائي هئي جو ديڳڙي وڃي پري ڪرندي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ مجبورن تي هڪ ڪونڙي ٺهرائي، جيئن نماز پڙهندي کانئن بچيل رهن.

<sup>1</sup> - (هجو شاعريءَ جو قسم آهي. جنهن ۾ ڪنهن کي گهٽ وڌ ڳالهائبو آهي ۽ ان تي تنقيد ڪبي آهي. سنڌيڪار).

<sup>2</sup> - مشرڪ ساڙ مان پاڻ سڳورن ﷺ کي محمد ﷺ بدران مذمر چوندا هئا. جنهن جي معنيٰ محمد ﷺ جي ابتڙ آهي. محمد معنيٰ جنهن جي ساراھ ڪئي وڃي. مذمر معنيٰ جنهن جا عيب ڪڍيا وڃن. اهي جيئن ته مذمر جي برائي ڪندا هئا ان ڪري سندن اها برائي نبي ڪريم ﷺ تي لاڳو نه ٿي ٿئي. البدايه والنهايه (1/ 11)، صحيح بخاري مع فتح الباري (7/ 162)، مسند احمد (2/ 244، 340، 369).

<sup>3</sup> - ابن هشام (1/ 335-336).

<sup>4</sup> - اهو اموي خليفي مروان بن حڪم جو پيءُ هو.

بهرحال جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ تي گندگي اڇلائي هئي ته ان کي ڪاٺيءَ تي کڻي ٻاهر ايندا هئا ۽ دروازي تي بيهي فرمائيندا هئا ته اي عبد مناف پوتو! اها ڪهڙي پاڙيسري آهي؟ پوءِ ان کي اچي ڇڏيندا هئا. (1)

عقبه بن ابي معيط پنهنجي نياڳ ۽ خباثن ۾ وڌيل هو. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ حضرت عبدالله بن مسعود رضه کان روايت آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ بيت الله وٽ نماز پڙهي رهيا هئا ۽ ابوجهل ۽ ان جا ڪي سنگتي وينا هئا ته ايتري ۾ ڪن چيو ته ڪير آهي جو وڃي فلائن وٽان اوجھري کڻي اچي سجدو ڪرڻ مهل محمد ﷺ جي پٺ تي وجهي ڇڏي؟ ان تي قوم جو سڀ کان نياڳو ماڻهو عقبه بن ابي معيط (2) اٿيو ۽ اوجھري کڻي آيو. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ سجدو ۾ ويا ته اوجھري سندن ٻنهي ڪلھن جي وچ تي وجهي ڇڏيائين. آئون سڀ ڪجهه ڏسي رهيو هوس پر ڪجهه ڪري نٿي سگھيس. ڪاش مون ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي بچائڻ جي سگھ هجي ها.

حضرت ابن مسعود رضه چوندو هو ته ان کانپوءِ هو ٿرڙپاڻي ڪندي ايترو ڪليا جو هڪ ٻئي تي ڪرڻ لڳا. پاڻ سڳورا ﷺ سجدو ۾ ئي پيا رهيا ۽ سر مٿي نه کنيائون. تانجو بيبي فاطمه رضي الله عنها اچي ۽ پٺ تان اوجھري هٽائي تڏهن پاڻ سڳورن ﷺ ڪنڌ مٿي کنيو ۽ تي پيرا فرمايو اللهم عليڪ بقریش "اي الله! تون قریش تي پڪڙ ڪر". جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ اها پٺ ڏني ته انهن کي خراب لڳو. ڇو ته انهن جو عقيدو هو ته هن شهر ۾ دعائون قبول ڪيون وينديون آهن. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ نالا وٺي پٽيو، اي الله! ابوجهل تي پڪڙ ڪر ۽ عتبه بن ربيعه، شيبه بن ربيعه، وليد بن عتبه، اميه بن خلف ۽ عقبه بن ابي معيط تي پڪڙ ڪر.

پاڻ سڳورن ستون نالو به ورتو پر راويءَ کان وسري ويو. ابن مسعود رضه فرمائيندو هو ته ان ذات جو قسم! جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي مون ڏنو ته جن جن ماڻهن جا نالا نبي ڪريم ﷺ ورتا، اهي سڀئي بدر جي ڪوھ ۾ مقتول ٿيا پيا هئا. (3)

اميه بن خلف جو معمول هو ته هو جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏسندو هو ته لعن طعن ڪندو هو. ان بابت ئي اها آيت نازل ٿي ته: ﴿وَيْلٌ لِّكُلِّ هُمَزَةٍ لُّمَزَةٍ﴾ (1) (المهمزه) "هن لعن طعن ۽ برايون ڪرڻ واري لاءِ تباھي آهي". ابن هشام جو چوڻ آهي ته همزه اهو ماڻهو آهي جيڪو ڪلي عام گاريون ڏي ۽

1 - ابن هشام (416/1).

2 - صحيح بخاريءَ جي ٽي هڪ ٻيءَ روايت ۾ ان بابت صراحت آيل آهي ڏسو (543/1).

3 - صحيح بخاري ڪتاب الوضوء باب اذا القي علي المصلي قدر او جيئنته (37/1).

اڪيون ٿيڏيون ڪري اشارا ڪري ۽ لمزه اهو ماڻهو آهي جيڪي پريٽ ماڻهن جون ڳالھون ڪري ۽ انهن کي تڪليف ڏي. (1)

اميه جو پيءُ اُبي بن خلف، عقبه بن ابي معيط جو گهاتو يار هو. هڪ ڀيري عقبه پاڻ سڳورن وٽ ويهي ڪجهه ٻڌو. اُبي کي خبر پئي ته ان عقبه کي ڏاڍا دڙڪا ڏنا ۽ کيس چيو ته وڃي پاڻ سڳورن جي منهن (مبارڪ) تي ٽڪي اچي (نعوذبالله). آخر عقبه ايئن ڪيو. اُبي بن خلف پاڻ به هڪ ڀيري هڪ پراڻي هڏي پڇي ان ۾ هوا ڦوڪي پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن اچائي ڇڏي. (2)

اخنس بن شريق ثقفي به پاڻ سڳورن ﷺ کي ستائيندو هو. قرآن ۾ ان جا نوا اوکڻ ٻڌايا ويا آهن. جنهن سان ان جي ڪردار جو انداز ٿئي ٿو. ارشاد آهي ته:

﴿وَلَا تُطِعْ كُلَّ حَلَّافٍ مَّهِينٍ (10) هَمَّازٍ مَشَاءٍ بَنِيمٍ (11) مَنَاعٍ لِّلْخَيْرِ مُعْتَدٍ أَنِيمٍ (12) عٰثِلٌ بَعْدَ ذٰلِكَ زَنِيمٌ (13)﴾ (القلم)

"تون ڳالھ نه مڃ ڪنهن قسم ڪٿڻ واري ذليل جي جيڪو لعن طعن ڪري ٿو. ڀڃليون ڪائي ٿو. ڀلائيءَ کان جهلي ٿو. بيحد ظالم، بيچئن عملن وارو ۽ جفاڪار آهي ۽ ان کانسواءِ بداصل به آهي."

ابوجهل ڪڏهن ڪڏهن پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي قرآن ٻڌندو هو، پر رڳو ٻڌندو ئي هو. ايمان، فرمانبرداري، ادب ۽ خشيت اختيار نه ڪندو. هو پاڻ سڳورن کي پنهنجي ڳالھين سان تڪليف رسائيندو هو ۽ الله جي راه کان روڪيندو هو، پوءِ پنهنجي ان حرڪت ۽ برائي تي ناز ۽ تڪبر ڪندو ويندو هو، ڇڻ هن ڪو وڏو ڪارنامو ڪيو هجي. قرآن جون هي آيتون ان جي باري ۾ لٿيون: ﴿فَلَا صَدَقَ وَلَا صَلَّى (31)﴾ (القيامة) آخر تائين (3) "نه هن صدقو ڏنو نه نماز پڙهي، بلڪ ڪوڙو چيائين ۽ پٺ موڙيائين. پوءِ اهو آڪڙ ڪندو پنهنجن گهر وارن ڏي ويو، تنهنجي خوب لائق آهي، خوب لائق آهي". هن جڏهن پهريون ڀيرو پاڻ سڳورن ﷺ کي نماز پڙهندي ڏٺو ته ان ڏينهن کان کين نماز کان روڪڻ شروع ڪيائين. هڪ ڀيري پاڻ سڳورا ﷺ مقام ابراهيم وٽ نماز پڙهي رهيا هئا ته هو لنگهيو ۽ ڏسي چيائين ته محمد ﷺ! ڇا مون توکي روڪيو ڪو نه هو؟ گڏوگڏ ڏمڪي به ڏنائين. پاڻ سڳورن ﷺ به ساڻس ڏاڍيان ڳالهايو. تنهن تي هن چيو ته اي محمد ﷺ! مون کي ڇو پيو داٻا ڏين، ڏس! الله جو قسم! هن مڪي جي ماٿريءَ ۾ منهنجي سنگت سڀ کان وڏي آهي. ان تي الله تعاليٰ هيءَ آيت نازل فرمائي:

1 - ابن هشام (1/356-357).

2 - ابن هشام (1/361-362).

3 - في ظلال القرآن (29-212).



﴿فَلْيَدْعُ نَادِيَهُ﴾<sup>(1)</sup>

"چڱو! هو پنهنجي سنگت کي سڏائي (اسان به سزا جي فرشتن کي سڏائينداسين)". هڪ روايت ۾ آيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ان جي گلي ۾ هٿ وجهي جهنجهوڙيندي فرمايو ﴿أُولَىٰ لَكَ فَأُولَىٰ (34) ثُمَّ أُولَىٰ لَكَ فَأُولَىٰ (35)﴾ (القيامه) "تنهنجي لاءِ ڏاڍو مناسب، تنهنجي لاءِ ڏاڍو مناسب آهي". ان تي الله جو هي دشمن چوڻ لڳو "اي محمد ﷺ! مون کي ڌمڪي تو ڏين؟ الله جو قسم! تون ۽ تنهنجو پروردگار مون کي ڪجهه نٿا ڪري سگهو. آئون مڪي جي ٻنهي جبلن جي وچ ۾ هلندڙ ڦرندڙن مان وڌيڪ عزت وارو آهيان".<sup>(2)</sup>

بهرحال ان دڙڪي کانپوءِ به ابوجهل سڌڙ وارو نه هو، بلڪ ان جي نياڳائيءَ ۾ اڃا واڌارو اچي ويو. جيئن صحيح مسلم ۾ ابو هريره رضي الله عنه کان مروِي آهي ته (هڪ ڀيري قرين جي سردارن کي) ابوجهل چيو ته محمد ﷺ توهان سڀني جي آڏو پنهنجو چهرو خاڪ آلود (سجدو) ڪري ٿو؟ جواب ڏنو ويو ته ها! هن چيو ته لات ۽ عزيٰ جو قسم! جيڪڏهن مان کيس ان حالت ۾ ڏسي وٺان ته ان جي سسي چيپاتي ڇڏيان ۽ ان جو منهن مٽيءَ ۾ رڳڙي ڇڏيان. ان کانپوءِ هن پاڻ سڳورن ﷺ کي نماز پڙهندي ڏسي ورتو ۽ ان زعر ۾ وڌيو ته وڃي ٿو پاڻ سڳورن ﷺ جي سسي چيپاتيان ڀر اوجتو ماڻهن ڏنو ته هو ڪڙين تي پئتي موٽڻ لڳو ۽ ٻئي هٿ بچاءُ لاءِ اڳيان پيو ڪري. ماڻهن پڇيس اي ابوالحڪم! توکي ڇا ٿيو؟ چيائين ته: منهنجي ۽ هن جي وچ ۾ باهه جي هڪ ڪاهي آهي، هولناڪيون آهن ۽ فرشتن جا ڀر آهن. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته جي هو منهنجي ويجهو اچي ها ته فرشتا هن جو هڪ هڪ عضوو کڻي وٺن ها.<sup>(3)</sup>

ظلم ۽ ستم جون اهي ڪارروايون پاڻ سڳورن ﷺ سان ٿي رهيون هيون عوام ۽ خواص ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي منفرد شخصيت جو وقار ۽ احترام هوندي ۽ مڪي جي سڀ کان محترم ۽ عظيم شخصيت ابو طالب جي حمايت ۽ پناه حاصل هوندي به ٿي رهيون هيون. باقي عام ۽ ڪمزور مسلمانن کي اهڃ پھچائڻ جون ڪارروايون اڃا به وڌيڪ سخت ۽ ڪڙيون هيون. هر قبيلو پنهنجن مسلمان ٿيندڙ فردن کي قسمن قسمن جون سڙائون ڏئي رهيو هو ۽ جنهن ماڻهوءَ جو ڪو قبيلو نه هو، تنهن تي لوفرن ۽ سردارن اهڙا اهڙا ستم ڪيا، جن کي ٻڌي وار ڪانڊارجيو

<sup>1</sup> - في ظلال القرآن (208/30).

<sup>2</sup> - في ظلال القرآن (312/29).

<sup>3</sup> - صحيح مسلم صفات المنافقين (حديث نمبر 38).

وڃن ، مضبوط انسان جي دل به بيچينيءَ کان تڙپڻ لڳندي آهي. هيٺ انهن جي هڪ جهلڪ ڏجي ٿي.

**مسلمانن تي ظلم جي هڪ جهلڪ:** - ابوجهل جڏهن ڪنهن عزت واري ۽ سگهاري ماڻهو جي مسلمان ٿيڻ جو ٻڌندو هو ته ان کي گاريون ڏيندو هو ۽ کيس خوار ڪندو هو ۽ کيس مالي نقصان پهچائڻ جون ڌمڪيون ڏيندو هو. جيڪڏهن ڪو ڪمزور ماڻهو مسلمان ٿيندو هو ته ان کي ماريندو ۽ پين کي ڏيهاريندو هو. (1)

حضرت عثمان بن عفان رضي الله عنه جو ڇاڇو کين ڪجيءَ جي تڏي ۾ ويڙهي هيٺان دونهون ڊڪائي ڇڏيندو هو. (2) حضرت مصعب بن عمير رضي الله عنه جي ماءُ کي سندن اسلام قبولڻ جو پتو پيو ته سندن داڻو پاڻي بند ڪري ڇڏيو ۽ کين گهران ڪڍي ڇڏيو. پاڻ ڏاڍي لاڏ ڪوڏ سان پليل هئا. حالتن جي سختيءَ جي ڪري سندن ڪل ايئن لهي وئي جيئن نانگ جي ڪل لهندي آهي. (3)

حضرت بلال رضي الله عنه اميه بن خلف جمحي جو غلام هو. اميه سندن ڳچيءَ ۾ رسو وجهي چوڪرن کي ڏيندو هو ۽ اهي کين مڪي جي جبلن تي گهمائيندا ڦيرائيندا هئا. ايسٽائين جو ڳچيءَ تي رسيءَ جا وڍ پئجي ويندا هئا. اميه پاڻ به کين ٻڏي ڏنڊن سان ڪٽيندو هو ۽ ساڙيندڙ اس ۾ کين وهاري ڇڏيندو هو. کاڌو به نه ڏيندو هو پر کين بکيو رکندو هو ۽ ان کان وڌيڪ اهو ظلم ڪندو هو جو جڏهن ٻنپهرن جو گرمي چوٽ تي هوندي هئي ته مڪي جي پٿريون پيل زمين تي لپتائي سندن مٿان ڳرو پٿر رکي ڇڏيندو هو. پوءِ چونڊو هو ته الله جو قسم! تون جيستائين مري نه وڃين، تيستائين ائين ئي پيو هوندين، يا وري محمد صلي الله عليه وسلم کان ڦري وڃ. حضرت بلال رضي الله عنه ان حالت بابت فرمائيندو ته احد - احد - هڪ ڏينهن اها ڪارروائي ٿي رهي هئي جو ابوبڪر رضي الله عنه اتان گذريو، جنهن حضرت بلال رضي الله عنه کي هڪ ڪاري غلام جي عيوض يا ڪن جو چوڻ آهي ته ٻه سو درهمن (735 گرام چاندي) يا ٻه سؤ اسي درهم (هڪ ڪلو کان وڌيڪ چاندي) جي بدلي ۾ خريدي آزاد ڪيو. (4)

حضرت عمار بن ياسر رضي الله عنه بنو مخزوم جو غلام هو. پاڻ ۽ سندن والدين جڏهن اسلام قبوليو ته مٿن چڻ قيامت ٿي پئي. مشرڪ جن ۾ ابوجهل اڳرو هو. سخت اس ۾ کين پٿريلو زمين تي ويهاري سڙڻ جي سزا ڏيندا هئا. هڪ ڀيرو کين ان طرح جي سزا ملي رهي هئي ته پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم اتان لنگهيا، جن فرمايو ته "آل ياسر صبر ڪجو، توهان جو ٿاڪ جنت ۾ آهي". آخرڪار ياسر

1 - ابن هشام (320/1).

2 - رحمة للعالمين (57/1).

3 - رحمة للعالمين (58/1) تليق الفهرم اهل الاثر: (60)، اسد الغابه (4/460).

4 - رحمة للعالمين (57/1) تليق الفهرم (ص: 61) ابن هشام (318-317/1).

ﷺ ظلم نه سهڻ ڪري گذاري ويو ۽ بيبي سميہ رضي الله عنها، جيڪا حضرت عمار ﷺ جي والده هئي، تنهن کي ابوجهل شرمگاهه ۾ نيزو هنيو، جنهن سان پاڻ دم ڏنائين. پاڻ اسلام جي پهرين شهيد عورت هئي. حضرت عمار ﷺ تي ڏاڍو سلسلو جاري رهيو. کين ڪڏهن اس ۾ ويهاربو هو ته ڪڏهن سندن ڇاڻيءَ تي تتل پتر رکيو ويندو هو ۽ ڪڏهن پاڻيءَ ۾ ٻوڙيو ويندو هو. کين مشرڪ چوندا هئا ته جيستائين تون محمد ﷺ کي گار نه ڏيندين يا لات ۽ عزي جي ساراهه نه ڪندين، تيسين توکي نه ڇڏينداسين. حضرت عمار ﷺ مجبورن انهن جي ڳالهه مڃي. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ روئيندي ۽ معافي وٺندي آيو، جنهن تي هيءَ آيت نازل ٿي ته: ﴿مَنْ كَفَرَ بِاللَّهِ مِنْ بَعْدِ إِيمَانِهِ إِلَّا مَنْ أُكْرِهَ وَقَلْبُهُ مُطْمَئِنٌّ بِالْإِيمَانِ﴾ (106) ﴿النحل﴾

"جنهن الله تي ايمان آڻڻ کانپوءِ ڪفر ڪيو (ان تي الله جو غضب ۽ وڏو عذاب آهي) پر جنهن کي مجبور ڪيو وڃي ۽ ان جي دل ايمان تي مطمئن هجي (ان تي ڪا پڪڙ نه آهي) (1)  
حضرت فڪيهه ﷺ جو نالو افلق هو، بني عبدالدار جو غلام هو. سندن مالڪ سندن پيرن ۾ رسي ٻڏي کين زمين تي گهليندو هو. (2)

حضرت خباب ﷺ بن ارت خزاعه قبيلي جي هڪ عورت ام انمار جو غلام هو. مشرڪ کين طرح طرح جون سزائون ڏيندا هئا. سندن مٿي جا وار پٽيندا هئا ۽ سختيءَ سان ڳچي مروڙيندا هئا. کين ڪئي پيرا تهڪندڙ تانڊن تي لٽائي مٿان پٿر رکي ڇڏيندا هئا ته جيئن اتي نه سگهن. (3)  
زبيره (4) ۽ نهديه رضي الله عنهما ۽ ان جي نياڻي ۽ ام عبيس رضي الله عنها، اهي سڀ ٻانهيون هيون. جن اسلام قبوليو ۽ مشرڪن کان کين اهڙيون سخت سزائون مليون. جن جو تورو نمونو مٿي ٻڌائي آيا آهيون. قبيلي بني عديءَ جي هڪ گهراڻي بني مؤمل جي هڪ ٻانهي مسلمان ٿي ته کين حضرت عمر بن خطاب ﷺ، جيڪو اڃا مسلمان نه ٿيو هو. ايترو ماريندو هو جو پاڻ به ٽڪجي پوندو هو ۽ پوءِ چوندو هو ته آئون ڪنهن لحاظ ڪري نه پر ٽڪجي پوڻ ڪري توکي ڇڏيان ٿو. (5)

<sup>1</sup> - ابن هشام (319-320) فقه السيره محمد غزالي (ص: 82)، عوفيءَ ابن عباس کان ان جو هڪ ٽڪر روايت ڪيو آهي ڏسو تفسير ابن ڪثير ۾ ڄاڻايل آيتن جي بيان ۾.

<sup>2</sup> - رحمة للعالمين (57/1) بحواله اعجاز التنزيل (ص: 53).

<sup>3</sup> - رحمة للعالمين (57/1) تلقيع الفهوم (ص: 60).

<sup>4</sup> - زبيره برون مسڪينه، يعني زا کي زير ۽ نون کي زير ۽ تشديد.

<sup>5</sup> - رحمة للعالمين (57/1)، ابن هشام (319/1).

آخرڪار حضرت ابوبڪر رضي الله عنه، حضرت بلال رضي الله عنه ۽ عامر بن فهيره جيان انهن ٻانهين کي به خريد ڪري آزاد ڪري ڇڏيو. (1)

مشرڪ ان طرح به سزا ڏيندا هئا جو ڪن اصحابن کي اٺ يا ڊگهيءَ جي ڪچي کل ۾ ويڙهي، اس ۾ ڇڏي ڏيندا هئا ۽ ڪن کي لوهي زره پهراڻي گرم پٿرن تي لپتائيندا هئا. (2) حقيقت ۾ الله جي راه ۾ ڏاڍ ۽ ڌم جو نشانو ٿيڻ وارن جي فهرست ڊگهي آهي ۽ ڏکائيندڙ به حالت اها هئي جنهن جي مسلمان ٿيڻ جو پتو پوندو هو مشرڪ ان کي تڪليف رسائڻ لاءِ هڪدم تيار ٿي ويندا هئا.

**دار ارقم:** - انهن اره زورين کي منهن ڏيڻ لاءِ ضروري هو ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم مسلمانن کي پنهنجو اسلام ظاهر ڪرڻ کان روڪي ڇڏين ۽ انهن سان ڳجهي نموني ملن. ڇو ته جيڪڏهن پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ساڻن کلي عام ملن ها ته مشرڪ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي تبليغي ڪم ۾ رنڊڪون وجهن ها ۽ ان ڪارڻ پنهي ڌرين ۾ تڪراءَ ٿي سگهيو ٿي. عملي طور تي نبوت جي چوٿين سال ائين ٿي به چڪو هو. جنهن جو تفصيل هن ريت آهي ته اصحابي سڳورا وادين ۾ وڃي گڏجي نماز پڙهندا هئا. هڪ پيري قريش جي ڪن ماڻهن کين ڏسي ورتو ته گاريون ڏيڻ ۽ وڙهڻ لڳا. جواب ۾ حضرت سعد بن ابي وقاص رضي الله عنه هڪ ماڻهوءَ کي اهڙو ڌڪ هنيو جو کيس رت وهي پيو. اهو پهريون رت هو، جيڪو اسلام ڪارڻ وهايو ويو هو. (3)

اسان کي اها پليءَ پت ڄاڻ آهي ته جيڪڏهن اهڙو تڪراءَ هر هر ٿئي ها ته مسلمان ختم ٿي وڃن ها. تنهنڪري ضرورت ان ڳالهه جي هئي ته اهو ڪم لڪ چپ ۾ ڪيو وڃي. تنهنڪري عام اصحابي سڳورا پنهنجو اسلام، پنهنجي عبادت ۽ پنهنجي تبليغ ۽ گڏجاڻيون لڪ چپ ۾ ڪندا هئا. باقي پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم تبليغ جو ڪم به مشرڪن آڏو کلي عام ڪندا هئا ۽ عبادتون به. ڪابه شيءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي ان ڪم کان روڪي نٿي سگهي. تنهن هوندي به پاڻ مسلمان ٿيلن سان مصلحت تحت ڳجهي نموني ملندا هئا. ارقم بن ابي الارقم مخزوميءَ جو گهر ڪوه صفا تي، سرڪشن جي نظرن ۽ انهن جي مجلسن کان الڳ ٿلڳ هو. انڪري پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم نبوت جي پنجين سال ان گهر کي تبليغ ۽ گڏجاڻين جو مرڪز بڻايو. (4)

**حبشه ڏانهن پهرين هجرت:** - ڏاڍ ۽ ڌم جو اهو سلسلو نبوت جي چوٿين سال جي وچ يا آخر کان شروع ٿيو، جيڪو پهرين معمولي درجي جو هو، پر ڏينهان ڏينهن وڌندو ويو. تان ته نبوت جي پنجين

1 - ابن هشام (1/318-319).

2 - رحمة للعالمين (1/58).

3 - ابن هشام (1/263)، مختصر السيره، محمد بن عبدالوهاب (ص:60).

4 - مختصر السيره محمد بن عبدالوهاب (ص:61).

سال جي وچ ڌاري حد ٿي ويو ۽ مسلمانن جو مڪي ۾ رهڻ ڏکيو ٿي پيو ۽ انهن ان لڳيتي ڏاڍ کان بچڻ لاءِ گس ڳولهڻ شروع ڪري ڏنا. انهن ئي ڏکين حالتن ۾ سورة كهف نازل ٿي. جيڪا اصل ۾ مڪي جي قريشن جي سوالن جي جواب طور لٿي هئي. پر ان ۾ جيڪي ٿي واقعا ٻڌايل آهن، انهن ۾ الله تعاليٰ پاران مؤمنن لاءِ ڏاڍا چٽا اشارا موجود هئا، جيئن اصحاب كهف جي واقعي ۾ اهو سبق ڏنل آهي ته جڏهن دين ۽ ايمان خطري ۾ هجي ته الله تي ڀروسو رکي ڪفر ۽ ظلم جي مرڪزن مان لڏ پلاڻ ڪجي. ارشاد آهي ته:

﴿وَإِذْ اعْتَزَلْتُمُوهُمْ وَمَا يُعْبُدُونَ إِلَّا اللَّهَ فَأَوْوَا إِلَى الْكَهْفِ يَنْشُرْ لَكُمْ رَبُّكُمْ مِنْ رَحْمَتِهِ وَيُهَيِّئْ لَكُمْ مِنْ أَمْرِكُمْ مِرفَقًا﴾ (16) (الكهف)

موسىٰ عليه السلام ۽ خضر عليه السلام جي واقعي سان اها ڳالهه ثابت ٿئي ٿي ته نتيجا سدائين ظاهري حالتن مطابق نه هوندا آهن. پر ڪڏهن ڪڏهن ان جي بلڪل ابتڙ هوندا آهن. جيئن هن واقعي ۾ ان ڳالهه ڏانهن هلڪو اشارو ڪيل آهي ته مسلمانن سان جيڪو ڏاڍ ۽ ڌم ڪيو پيو وڃي، ان جا نتيجا صفا ابتڙ نڪرندا ۽ اهي سرڪش مشرڪ ايمان نه قبوليندا ته ترت ئي مسلمانن اڳيان هٿيار ڦٽا ڪرڻ تي مجبور ٿي پوندا.

ذوالقرنين جي واقعي ۾ چند ڳالهين ڏانهن اشارو ڪيل آهي ته:

1. زمين الله جي آهي، هو پنهنجن ٻانهن مان جنهن کي چاهي، ان جو وارث ڪري ٿو.
2. فلاح ۽ ڪامراني ايمان جي ئي راهه ۾ آهي، ڪفر جي راهه ۾ نه.
3. الله تعاليٰ ترسي ترسي پنهنجن ٻانهن مان اهڙو ماڻهو پيدا ڪندو آهي، جيڪي مظلوم ماڻهن کي ان دور جي ياجوج ماجوج کان نجات ڏياري ٿو.
4. الله جا صالح بندا ئي زمين جي وراثت جا سڀ کان وڌيڪ حقدار آهن.

سورة كهف کانپوءِ سورة زمر لٿي، جنهن ۾ هجرت جو اشارو ڪيو ويو ۽ ٻڌايو ويو ته الله

جي زمين سوڙهي ڪانهي.

﴿لَلَّذِينَ أَحْسَنُوا فِي هَذِهِ الدُّنْيَا حَسَنَةٌ وَأَرْضُ اللَّهِ وَاسِعَةٌ إِنَّمَا يُوَفَّى الصَّابِرُونَ أَجْرَهُمْ بِغَيْرِ حِسَابٍ﴾ (10) (الزمر)

هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ کي خبر پئي ته اصحمه نجاشي، شاه حبشه، هڪ انصاف پرور بادشاهه آهي. اتي ڪنهن تي ظلم نٿو ٿئي. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ مسلمانن کي حڪم ڏنو ته اهي دين کي فتنن کان بچائڻ لاءِ حبشه ڏانهن هجرت ڪن. ان کانپوءِ هڪ طسٽ تيل پروگرام مطابق رجب سن 5 نبويءَ ۾ اصحابي سڳورن جو پهريون جتو حبشه ڏانهن روانو ٿيو. ان جتي ۾ 12 مرد ۽ 4 عورتون شامل هيون. حضرت عثمان بن عفان رضه سندن امير هو. ساڻن گڏ پاڻ سڳورن ﷺ جي

نباڻي بيبي رقيه رضي الله عنها به هئي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته حضرت ابراهيم عليه السلام ۽ حضرت لوط عليه السلام کانپوءِ هي پهريون ڪٽنب آهي، جنهن الله جي راهه ۾ هجرت ڪئي. (1) اهي سڀ رات جي اونداهه ۾ لڪي پنهنجي نئين منزل ڏانهن روانا ٿيا. لڪائڻ جو مقصد اهو هو ته قريشن کي ان جو پتو نه پئجي سگهي. سندن رخ بحر احمر جي بندرگاهه شعيبه ڏانهن هو. خوش قسمتيءَ سان اتي به واپاري بيٺا بيٺا هئا، جن ۾ ويهي هو حبشه ڏانهن روانا ٿيا. قريشن کي سندن روانگيءَ جو پتو ڪجهه دير سان پيو. تنهن هوندي به انهن سندن پٺ ورتي ۽ ڪناري تائين پهتا پر اصحابي سڳورا اڳيان نڪري چڪا هئا، انڪري هو ناڪام ٿي موٽيا. هوڏانهن مسلمانن حبشه پهچي ساهي پتي. (2) ان ئي سال رمضان ۾ اهو واقعو ٿيو جو پاڻ سڳورا ﷺ هڪ پيري حرم شريف ۾ ويا. اتي قريشن جو وڏو ميڙ ويٺو هو. انهن ۾ سردار ۽ وڏا وڏا ماڻهو شامل هئا. پاڻ سڳورن ﷺ اوچتو اتي سوره نجر پڙهڻ شروع ڪئي. انهن ڪافرن ان کان اڳ عام طور تي قرآن ڪونه ٻڌو هو. ڇو ته قرآن مطابق سندن هلت چلت هيئن هئي ”

﴿لَا تَسْمَعُوا لِهَذَا الْقُرْآنِ وَالْغَوْا فِيهِ لَعَلَّكُمْ تَعْلَمُونَ﴾ (26) ﴿فصلت﴾

پر جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ اوچتو قرآن پڙهڻ شروع ڪيو ۽ سندن ڪنن ۾ عجيب خوشگوار، تروتازه ۽ وڏائي بيان ڪندڙ الله جي ڪلام جو آواز پهتو ته انهن کي هوش نه رهيو. سڀ جا سڀ ڪن ڏئي ٻڌڻ لڳا ۽ سندن ڌيان بيءَ ڪنهن شيءِ ڏانهن نه ويو. جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ سورة جي آخر ۾ دل کي ڪنڀائيندڙ آيتون پڙهي الله جو هي حڪم ٻڌايو ته:

﴿فَاسْجُدُوا لِلَّهِ وَاعْبُدُوا﴾ (62) ﴿النجم﴾

۽ ان سان گڏ ئي پاڻ سجدي ۾ هليا ويا ته ڪير به پاڻ کي جهلي نه سگهيو ۽ سڀ جا سڀ سجدي ۾ ڪري پيا. حقيقت اها آهي ته ان موقعي تي حق جي تازگي ۽ رعب، متڪبرين ۽ مستهزئين جي هٿ ڌرميءَ کي وائڪو ڪري ڇڏيو. ان ڪري هو پاڻ تي قابو نه رکي سگهيا ۽ بي اختيار سجدي ۾ ڪري پيا هئا. (3)

پوءِ جڏهن کين احساس ٿيو ته الله جي ڪلام جي رعب سندن لغام موڙي ڇڏيو ۽ هو اهو ڪم ڪري وينا جنهن کي مٿائڻ ۽ ختم ڪرڻ لاءِ انهن نهنن چوٽيءَ جو زور لڳائي ڇڏيو هو. ان سان گڏ ئي ان واقعي ۾ غير موجود مشرڪن مٿن لعنتاڻو وجهڻ شروع ڪيو ته هو پريشان ٿي ويا ۽

1 - مختصر السيره شيخ عبدالله (ص: 92، 93) - زاد المعاد (24/1) - رحمة للعالمين (61/1).

2 - رحمة للعالمين (61/1) - زاد المعاد (24/1).

3 - صحيح بخاريءَ ۾ ان سجدي بابت ابن مسعود رضي الله عنه ۽ ابن عباس رضي الله عنهما کان ٿورو احوال بيان ڪيل آهي. (146/1) ۽ (543/1).

پنهنجي جان ڇڏائڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ تي ڪوڙ هڻڻ لڳا ته انهن سندن بتن جو ذڪر عزت ۽ احترام سان ڪندي چيو هو ته:

تِلْكَ الْعَرَائِقُ الْعُلَى ، وَأَنَّ شَفَاعَتَهُنَّ لَتُرْتَجَى

هي بلند درجي جون ڏيويون آهن ۽ انهن جي شفاعت جي اميد ڪئي وڃي ٿي. جڏهن ته اهو نسورو ڪوڙ هو جو رڳو ان لاءِ گهڙيو ويو هو ته جيئن پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ سجدو ڪرڻ جي ڪيل "غلطي" جو معقول جواز پيش ڪيو وڃي ۽ ظاهر آهي ته جن ماڻهن سدائين پاڻ سڳورن ﷺ تي بهتان هنيا ۽ اهي پنهنجو دامن بچائڻ لاءِ چون ٿي ڪوڙ ڳالهائي سگهيا. (1)

بهرحال مشرڪن جي سجدي ڪرڻ واري واقعي جي خبر حبش جي مهاجرن کي به پئي پر ڪافي بدليل صورت ۾. يعني کين پتو پيو ته قريش مسلمان ٿي چڪا آهن. تنهنڪري اهي سوال ۾ مڪي ڏانهن روانا ٿيا. پر جڏهن مڪي کان هڪ ڏينهن کان به گهٽ مسافت تي پهتا کين حقيقت جو پتو پيو. ان کان پوءِ ڪي موتي حبشه ويا ته ڪي لڪ چپ ۾ يا مڪي جي ڪنهن ماڻهوءَ کان پناهه وٺي مڪي ۾ داخل ٿيا. (2)

**حبشه ڏانهن بي هجرت:-** ان کانپوءِ موٽيل مهاجرن تي خاص طور تي بين مسلمانن تي عام طور. قريش ڏاڍيون وڏائي ڇڏيون ۽ سندن خاندان وارن به کين ڏاڍو ستايو. ڇو ته قريش کي ساڻن نجاشيءَ جي سني سلوڪ جي جيڪا خبر پئي هئي. تنهن تي اهي ڏاڍا ڏمريا هئا. مجبور ٿي پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن کي بيهي حبشه ڏي هجرت جو مشورو ڏنو. پر هن بي هجرت ۾ سخت مشڪلاتون پيش آيون. ڇو ته هن پيري قريش اڳي کان هوشيار هئا ۽ اهڙيءَ ڪوشش کي ناڪام ڪرڻ جو قسم کنيو ويٺا هئا. پر مسلمان کانئن گهڻو وڌيڪ ڦڙتيل ثابت ٿيا ۽ الله انهن جي سفر کي آسان ڪري ڇڏيو. تنهنڪري هو قريش جي هٿ ڇڙهڻ کان اڳ حبشه جي شاهه وٽ پهچي ويا. هن پيري ڪل 82 يا 83 مردن هجرت ڪئي. (حضرت عمار رضي الله عنه جي هجرت بابت مختلف رايا آهن.) ۽ ارڙنهن يا اوڻيهه عورتن هجرت ڪئي. (3) علامه منصور پوري رحمته الله عليه يقين سان عورتن جو انگ 18 لکيو آهي. (4)

**حبشه ڏانهن لڏيندڙن خلاف قريش جي سازش:-** مشرڪن کي مسلمانن جي جان ۽ ايمان بچائي حبشه جي وڳوڙ کان پاڪ علائقي ۾ پهچي وڃڻ تي دلي صدمو رسيو. تنهنڪري انهن

1 - محققن هن سلسلي جي سڀني روايتن کي گڏي اهو نتيجو ڪڍيو آهي.

2 - زاد المعاد (24/1، 44/2) - ابن هشام (364/1).

3 - زاد المعاد (24/1) - رحمة للعالمين (61/1).

4 - رحمة للعالمين (61/1).

عمرو بن عاص رضي الله عنه ۽ عبدالله بن ربيعہ کي، جيڪي سمجھو ماڻهو هئا ۽ اڃا مسلمان نه ٿيا هئا، هڪ اهم سفارتي مهم لاءِ چونڊيو ۽ انهن ٻنهي کي نجاشي ۽ بطريقن جي خدمت ۾ پيش ڪرڻ لاءِ سنا تحفا ڏئي حبشة موڪليو. انهن ٻنهي حبشة پهچي بطريقن کي سوکڙيون ڏئي پوءِ کين پنهنجن دليلن کان آگاهه ڪيو، جن جي بنياد تي اهي حبشة مان مسلمانن کي نيڪالي ڏيارڻ آيا هئا. جڏهن بطريقن سندن اها ڳالهه مڃي ورتي ته نجاشيءَ تي مسلمانن کي ڪيڏن لاءِ زور ڀريندا ته اهي ٻئي نجاشيءَ وٽ حاضر ٿيا ۽ سوکڙيون پاڪڙيون ڏئي کيس هنن لفظن ۾ پنهنجو مقصد ٻڌايائون ته "اي بادشاهه! اوهانجي ملڪ ۾ اسانجا ڪجهه بي سمجهه ڇوڪرا پڇي آيا آهن، جن پنهنجي قوم جو دين ڇڏي ڏنو آهي، پر توهان جي دين ۾ به داخل نه ٿيا آهن، پر هڪ نئون دين ايجاد ڪيو اٿن، جنهن کي نه اسين ٿا ڄاڻون، نه ئي اوهان. اسانکي اوهانجي خدمت ۾ سندن ئي والدين، ڇاچن ۽ ڪٽم قبيلي جي ٻين چڱن ماڻهن موڪليو آهي. مقصد اهو آهي ته اوهان انهن کي موٽائي ڇڏيو. ڇو ته اهي هنن تي ڪڙيون نظرون رکن ٿا." جڏهن انهن ٻنهي پنهنجو مقصد بيان ڪري ورتو ته بطريقن چيو ته "بادشاهه سلامت! هي ٻئي نيڪ پيا چون. توهان انهن ڇوڪرن کي هنن جي حوالي ڪري ڇڏيو. هي ٻئي کين سندن قوم ۽ ملڪ ۾ پڇائي ڇڏيندا."

پر نجاشيءَ سوچيو ته ان معاملي کي گهڙائيءَ سان جانچڻ ضروري آهي، تنهنڪري هن مسلمانن کي گهرايو. مسلمانن اهو پڪو پهه ڪيو هو ته درٻار ۾ سچ ئي ڳالهائيندا، ڀلي ته ان جو نتيجو ڪهڙو به نڪري. جڏهن مسلمان پڇي ويا ته نجاشيءَ پڇيو ته "اهو ڪهڙو دين آهي، جنهن جي ڪارڻ توهان پنهنجي قوم کان نه ڌار ٿيا آهيو پر منهنجي دين ۾ به داخل نه ٿيا آهيو ۽ نه ئي ڪنهن ٻئي ٻڌل سئل دين ۾ شامل ٿيا آهيو؟" مسلمانن جي ترجمان حضرت جعفر بن ابي طالب رضي الله عنه چيو ته "اي بادشاهه! اسين اهڙي قوم مان هئاسين، جيڪا جهالت ۾ ٻڌل هئي. اسين بتن کي پوڄيندا هئاسين، مردار کائيندا هئاسين، بچڙايون ڪندا هئاسين. ماڻهن سان قتائيندا هئاسين، پاڙيسرين سان صحيح نه هلندا هئاسين. اسان جا پهلو، ڪمزورن کي کائي ڇڏيندا هئا. اهڙيءَ حالت ۾ ئي الله تعاليٰ اسان مان ئي هڪ رسول موڪليو، جنهن جي عالي نسبي، سچائي، امانت ۽ پاڪدامني اسان اڳيئي ڏسي وينا هئاسين. ان اسان کي الله تعاليٰ ڏانهن سڏيو ۽ سمجهايو ته رڳو هڪ الله کي مڃيو ۽ ان جي عبادت ڪريو ۽ ان کانسواءِ جن پٿرن ۽ بتن کي اسانجا ابا ڏاڏا پوڄيندا هئا، تن کي ڇڏي ڏيون. هن اسانکي سچ ڳالهائڻ، امانتدار ٿيڻ، رشتا نپاڻڻ، پاڙيسريءَ سان سنو ونهنوار رکڻ ۽ حرامڪاري توڙي خونريزيءَ کان بچڻ جو حڪم ڏنو ۽ فحاشين ۾ هٿ وجهڻ، ڪوڙ ڳالهائڻ، يتيمن جو مال کائڻ، نيڪ عورتن تي ڪوڙا بهتان هڻڻ کان منع ڪئي. ان اسانکي اهو به حڪم ڏنو ته رڳو



الله تعاليٰ جي عبادت ڪريو ۽ ان سان شريڪ نه ڪريو. هن اسان کي نماز، روزي ۽ زڪوات جو حڪم ڏنو. "اهڙيءَ طرح حضرت جعفر رضي الله عنه اسلام جو اجمالي تعارف ڪرائي پوءِ چيو ته "اسان ان پيغمبر کي سڄو سمجهي ان تي ايمان آندو ۽ ان جي آندل الله جي دين جي پيروي ڪئي. تنهنڪري رڳو الله تعاليٰ جي عبادت ڪئي ۽ شرڪ کان پري رهياسين ۽ جن ڳالهين کي پيغمبر صلى الله عليه وسلم حرام ڄاڻايو، تن کي حرام مڃيوسين ۽ جن کي حلال ٻڌايائون، تن کي حلال ڄاتوسين. ان تي اسانجي قوم اسان تي ڏمري ۽ اسان سان ڏاڍ ۽ ڏم جو سلوڪ ڪيو ويو ۽ اسان کي فتنن ۽ سزائن سان پنهنجي دين تان هٽائڻ جي ڪوشش ڪئي وئي، جيئن اسين الله تعاليٰ جي عبادت ڇڏي بت پرستيءَ ڏي موٽي وڃون ۽ جن گندين شين کي اڳي حلال سمجهندا هئاسين، تن کي ٻيهر حلال سمجهون. جڏهن انهن اسان تي ظلم جي حد ڪري ڇڏي، اسان ۽ اسانجي دين جي وچ ۾ ڀت بڻجي ويا ته اسان اوهانجي ملڪ ڏانهن لڏپلاڻ ڪري ۽ ٻين کان اوهان کي ترجيح ڏئي اوهانجي پناهه ۾ رهڻ پسند ڪيوسين، ان اميد سان ته هتي اسان تي ظلم نه ڪيو ويندو."

نجاشيءَ چيو ته "ان پيغمبر جيڪي آندو آهي، ان مان ڪجهه اوهان وٽ آهي؟"

حضرت جعفر رضي الله عنه چيو ته "ها!"

نجاشيءَ چيو ته "تورو مون کي به پڙهي ٻڌايو."

حضرت جعفر رضي الله عنه سورة مريم جون منيد واريون آيتون پڙهيون. تنهن تي نجاشي ايترو ته رنو جو سندس ڏاڙهي آلي ٿي وئي. نجاشيءَ جا سڀ اسقف به حضرت جعفر رضي الله عنه جي تلاوت ٻڌي ايڏو رنا جو سندن صحيفا آلا ٿي ويا. پوءِ نجاشيءَ چيو ته اهو ڪلام ۽ حضرت عيسى عليه السلام تي لٿل ڪلام، ٻئي هڪ ئي شمعدان مان نڪتل آهن. ان بعد نجاشيءَ عمرو بن عاص ۽ عبدالله بن ربيع کي چيو ته توهان ٻئي هليا وڃو. آئون هنن کي نڪو توهانجي حوالي ڪندس ۽ نه ئي هتي انهن جي خلاف ڪا ست سٽ ڏيندس.

اهو حڪم ٻڌي اهي ٻئي ٻاهر نڪري آيا پر عمرو بن عاص، عبدالله بن ربيع کي چيو ته "الله جو قسم! سڀاڻي انهن تي اهڙو بهتان هڻندس جو سندن پاڙ ئي پٽجي ويندي." عبدالله بن ربيع چيو ته "نه! ائين نه ڪجان. اهي ماڻهو جيتوڻيڪ اسانجي خلاف آهن، پر بهرحال آهن ته اسانجي ئي ڪڙم قبيلي مان." پر عمرو بن عاص پنهنجي هوڏ تان نه هٽيو.

ٻئي ڏينهن عمرو بن عاص، نجاشيءَ کي چيو ته "اي بادشاهه! هي ماڻهو عيسى بن مريم عليه السلام بابت هڪ وڏي ڳالهه چون ٿا." ان تي نجاشيءَ وري مسلمانن کي سڏايو. هن کانئن پڇڻ گهريو ٿي ته حضرت عيسى عليه السلام بابت مسلمان ڇا ٿا چون؟ هن پيري مسلمان گهٻرائجي ويا، پر انهن طئه ڪيو ته سچ ڳالهائبو. ڀلي ته ان جو نتيجو ڪهڙو به نڪري. تنهنڪري

جڏهن مسلمان نجاشيءَ جي دربار ۾ پهتا ۽ ان سوال ڪيو ته حضرت جعفر رضي الله عنه فرمايو ته "اسان عيسى عليه السلام بابت اها ئي ڳالهه چئون ٿا، جيڪا اسانجو نبي صلى الله عليه وسلم ڪئي آيو آهي. يعني حضرت عيسى عليه السلام الله جو ٻانهو، ان جو رسول، ان جو روح ۽ ان جو اهو ڪلمو آهي، جيڪو الله تعاليٰ ڪناري ۽ پاڪدامن بيبي مريم عليها السلام ڏانهن القا ڪيو هو."

ان تي نجاشيءَ زمين تان ڪڪ ڪنيو ۽ چيو ته "الله جو قسم! جيڪي ڪجهه اوهان چيو، حضرت عيسى عليه السلام هن ڪڪ جيترو به ان کان وڌيڪ نه هو." ان تي بطريقن "اون هون" ڪيو. نجاشيءَ چيو ته ڀلي پيا توهان "اون هون" چئو.

ان کانپوءِ نجاشيءَ مسلمانن کي چيو ته "وڃو! توهان منهنجي رياست ۾ امن امان سان رهو. جيڪو توهان کي گهٽ وڌ ڳالهائيندو، ان تي ڏنڊ وجهبو. مونکي قبول ڪونهي ته آئون سونو جبل وٺي به اوهان مان ڪنهن کي ڪو اهڃ پھچايان."

ان کانپوءِ هن پنهنجن حاشيه بردارن کي چيو ته "هنن ٻنهي کي سندن سوکڙيون موٽائي ڏيو، مونکي انهن جي ضرورت ڪانهي. الله جو قسم! الله تعاليٰ جڏهن مونکي منهنجو ملڪ واپس ڪيو هو ته مونکان ڪا رشوت نه ورتي هئي، جو مان ان جي راه ۾ رشوت وٺان. جڏهن الله تعاليٰ مون بابت ماڻهن جي راءِ نه قبولي ته آئون چو الله تعاليٰ بابت ماڻهن جي راءِ قبوليان."

بيبي ام سلمه رضي الله عنها، جنهن اهو واقعو ٻڌايو آهي، فرمايو ته ان کانپوءِ اهي ٻئي پنهنجون سوکڙيون پاڪڙيون ڪڍي بيعزت ٿي موٽي ويا ۽ اسان نجاشيءَ وٽ هڪ سني ملڪ ۾، هڪ سني پاڙيسريءَ جي پناهه ۾ رهي پياسين.<sup>(1)</sup>

اها ابن اسحاق جي روايت آهي. ٻين سيرت نگارن جو بيان آهي ته نجاشيءَ جي دربار ۾ عمرو بن عاص جو وڃڻ بدر جي جنگ کانپوءِ ٿيو. ڪن وري ائين به چيو آهي ته عمرو بن عاص، نجاشيءَ جي دربار ۾ مسلمانن کي موٽائڻ لاءِ به پيرا ويو هو، پر بدر جي جنگ کانپوءِ حاضريءَ جي سلسلي ۾ حضرت جعفر رضي الله عنه ۽ نجاشيءَ جي وچ ۾ سوالن جوابن جو جيڪو تفصيل ٻڌايو اهو لڳ ڀڳ اهڙو آهي، جهڙو ابن اسحاق حبشة ڏانهن هجرت کانپوءِ حاضريءَ جي سلسلي ۾ بيان ڪيو آهي. انهن سوالن جي موضوع مان پڌرو ٿئي ٿو ته نجاشيءَ وٽ اڃا اهو معاملو پهريون ڀيرو پيش ٿيو هو. انڪري ترجيح ان ڳالهه کي آهي ته مسلمانن کي واپس موٽائڻ جي ڪوشش رڳو هڪ ڀيرو ٿي ۽ اها به حبشة ڏانهن هجرت کان ٿورو پوءِ.

<sup>1</sup> - ابن هشام ملخصا (1/334\_338).

بهرحال مشرڪن جي چال ناڪام ٿي وئي ۽ انهن سمجهي ورتو ته اهي دشمنيءَ جي جذبي کي پنهنجي اختيار جي حدن ۾ ئي پالي سگهن ٿا، پر ان جي نتيجي ۾ انهن هڪ خوفناڪ ڳالهه سوچڻ شروع ڪئي. حقيقت ۾ انهن کي چڱيءَ طرح احساس ٿي ويو هو ته هن "مصيبت" سان منهن ڏيڻ لاءِ هاڻي انهن آڏو ٻه ئي رستا بچيا هئا. يا ته هو پاڻ سڳورن ﷺ کي طاقت جي زور تي روڪين يا وري پاڻ سڳورن ﷺ کي ئي ختم ڪري ڇڏين. پر ٻي صورت ڏاڍي ڏکي هئي، ڇو ته ابو طالب، پاڻ سڳورن ﷺ جو محافظ هو ۽ مشرڪن جي ارادن جي آڏو لوهه جي پٽ بڻيل هو. ان لاءِ اهو ئي مناسب سمجهيو ويو ته ابو طالب سان کلي ڳالهايو وڃي.

ابو طالب کي قريش جي ڌمڪي:- ان رٿا کانپوءِ قريش سردار، ابوطالب وٽ پهتا ۽ چيائونس ته "ابو طالب! اوهان اسان کان عمر، رتبي ۽ مرتبي ۾ وڏا آهيو. اسان اوهان کي عرض ڪيو هو ته پنهنجي پائيتي کي روڪيو پر اوهان نه روڪيو. اوهان ياد رکو ته اسان پنهنجن ابن ڏاڏن کي گهٽ وڌ ڳالهائڻ پسند نٿا ڪريون ۽ نه اهو ته اسانجي عقل ۽ سمجهه کي بيوقوفِي سمجهيو وڃي ۽ اسان جي خدائن جا عيب ڪڍيا وڃن. اوهان کيس جهليو نه ته يا هو رهندو يا اسين."

ابو طالب تي ان ڌمڪيءَ جو گهرو اثر پيو ۽ ان پاڻ سڳورن ﷺ کي گهرائي چيو ته "پائيتيا! تنهنجي قوم وارا مون وٽ آيا هئا ۽ اهڙيون ڳالهيون ڪري ويا آهن. هاڻي مون تي ۽ پنهنجو پاڻ تي رحم ڪر ۽ هن معاملي ۾ مون تي ايڏو بار نه وجه، جنهن جي مون ۾ سهپ نه هجي." اهو ٻڌي پاڻ سڳورن ﷺ سمجهيو ته هاڻي سندن چاچو به سندن ساٿ ڇڏي ڏيندو ۽ سندن مدد ڪرڻ ۾ ڪمزور پئجي ويو آهي. تڏهن پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "چاچا سائين! الله جو قسم! جيڪڏهن هو منهنجي ساڄي هٿ تي سج ۽ کاٻي هٿ تي چنڊ رکڻ ته جيئن آئون هن ڪم کي اڏ ۾ ڇڏي ڏيان، پر يا ته الله تعاليٰ انهن تي غالب ڪري يا آئون هن راهه ۾ فنا ٿي وڃان، آئون اهو نٿو ڇڏي سگهان.

ان کانپوءِ سندن اکيون پرچي آيون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ روئي وڌو ۽ اٿي ويا. جڏهن مونڱ لڳا ته ابوطالب کين سڏيو. سامهون آيا ته چيائين: پائيتيا! جيڪو وڻي سو ڪر، الله جو قسم! آئون توکي ڪنهن به سبب جي ڪري ڪڏهن به نٿو ڇڏي سگهان. (1) ۽ پوءِ هي شعر پڙهيا.

وَاللّٰهُ لَنْ يَّصْلُبُوا إِلَيْكَ بِجَمْعِهِمْ  
حَتَّىٰ أَوْ سَدَّ فِي التُّرَابِ دَفِينَا  
فَأَصْدَعِ بِأَمْرِكَ مَاعَلَيْكَ غَضَاظَةً  
وَأَبْشِرْ وَقَرَّ بِذَلِكَ مِنْكَ عُيُونَا

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/265, 266).

الله جو قسم! اهي ماڻهو تو وٽ پنهنجي جماعت سان به نٿا پهچي سگهن ايستائين جو آئون مٽي ۾ دفن ڪيو وڃان، تون پنهنجي ڳالهه وڌي واکي چئو تو کي ڪا به روڪ نه آهي جيستائين تون راضي ٿي وڃين ۽ تنهنجون اکيون انهيءَ سان ٽڏيون ٿي وڃن.

قريش جو وري ابو طالب وٽ اچڻ:- ڌمڪي ڏيڻ کانپوءِ به جڏهن قريش پاڻ سڳورن کي ساڳيو ڪم ڪندي ڏٺو ته سمجهي ويا ته ابو طالب پاڻ سڳورن ﷺ جو سات ٿي چڏي سگهي. بلڪ ان بابت قريش کان ڌار ٿيڻ ۽ ساڻن ڦٽائڻ لاءِ به تيار آهي. تڏهن اهي وليد بن مغيره جي پٽ عماره کي ساڻ وٺي ابو طالب وٽ پهچيا ۽ ان کي هيئن چيائون ته "اي ابو طالب! هي قريش جو سڀ کان گهرو جوان آهي. اوهان هن کي وٺو ۽ هن جي ديت ۽ نصرت جا حقدار ٿيو ۽ هن کي پنهنجو پٽ ڪري ڇڏيو. هي اوهان جو ٿيندو ۽ اوهان پنهنجي پائيتي کي اسانجي حوالي ڪريو. جنهن توهانجي ابن ڏاڏن جي دين جي مخالفت ڪئي، اوهانجي قوم کي وڪيري ڇڏيو آهي ۽ انهن جي ڏاهپ کي بيوقوفي ڪوٺي رهيو آهي، اسين کيس ماري ڇڏيون. بس اهو هڪ ماڻهوءَ بدران ماڻهوءَ وارو حساب آهي."

ابو طالب چيو ته "الله جو قسم! ڪيڏو نه خراب سوڍو آهي، جيڪو توهان مون سان ڪريو پيا! توهان پنهنجو پٽ ڏيو ٿا ته ان کي ڪاراڻا پيارين ۽ منهنجو پٽ مارڻ لاءِ ٿا گهرو! الله جو قسم! اهو نٿو ٿي سگهي.

ان تي نوفل بن عبدمناف جي پوٽي مطعم بن عديءَ چيو ته "الله جو قسم! اي ابو طالب! توهان تنهنجي قوم انصاف جي ڳالهه ڪئي آهي ۽ جيڪا صورت توکي نٿي وڻي ان کان بچڻ جي ڪوشش ڪئي آهي، پر مان ڏسان ٿو ته توهان انهن جي ڳالهه قبول نه پيا چاهيو." جواب ۾ ابو طالب چيو ته "والله! توهان انصاف جي ڳالهه نه ڪئي آهي. بلڪ توهان منهنجو سات ڇڏي مخالفن سان ملي ويا آهيو ته پوءِ نيڪ آهي، جيڪي وڻيو سو ڪريو."<sup>(1)</sup>

سيرت جي ڪتابن ۾ انهن ٻنهي ڳالهين ٻولين جي دور جي خبر نٿي پوي، پر اندازو ٿئي ٿو ته اهي ڳالهيون ٻوليون نبوت جي ڇهين سال جي وچ ڌاري ٿيون ۽ جلدي جلدي ٿيون.

پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ جي رٿا:- ڳالهين ۾ ناڪاميءَ کانپوءِ قريش جو ڏاڍ ۽ ڏمر وٽر وڌي ويو ۽ تڪليف رسائڻ جو سلسلو تيز ٿي ويو. انهن ئي ڏينهن ۾ قريش جي مٿي ڦريلن جي دماغ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي ختم ڪرڻ جي رٿا جنم ورتو، پر اها رٿا ۽ اهي سختيون ئي مڪي جي جانبازن مان

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/266، 267).

بن غير معمولي سرفروشن، يعني حضرت حمزه بن عبدالمطلب رضي الله عنه ۽ حضرت عمر بن خطاب رضي الله عنه جي اسلام قبول ٿيڻ جو ڪارڻ بڻيون. جنهن جي ڪري اسلام کي ڏاڍي سگهه ملي.

ڏاڍ ۽ ڏمر جا ٻه واقعا هي به آهن ته هڪ ڏينهن ابو لهب جو پٽ عتيبه، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ آيو ۽ چيائين ته ”آئون والنجم اذا هوى ۽ ثم دنا فتدلى کان انڪار ٿو ڪريان.“ ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي تنگ ڪرڻ لڳو. سندن قميص ڦاڙي ڇڏيائين ۽ منهن ڏانهن تڪيائين (الله لعنت ڪريس) پر ٿڪ گسي وئي. ان موقعي تي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کيس پتئيندي چيو ته يا الله هن تي پنهنجن ڪتن مان ڪو ڪتو مسلط ڪر. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي اها پٽ قبول پئي ۽ جڏهن عتيبه هڪ ڀيرو ڪجهه قريشن سان سفر تي ويو ۽ انهن شام جي هڪ هنڌ ”زرقاء“ وٽ ديرو وڌو ته رات جي وقت شينهن ان پاسي جو چڪر لڳايو. عتيبه ان کي ڏسي چيو ته ”هائ منهنجي تباهي! الله جو قسم! هيءُ مون کي کائي ويندو، ڇو ته محمد صلى الله عليه وسلم مون کي پٽيو هو. ڏسو آئون شام ۾ آهيان پر هن مڪي ۾ ويٺي ويٺي مون کي ماري وڌو.“ ماڻهن احتياط طور کيس پنهنجي ۽ جانورن جي وچ ۾ سمهاريو پر رات جو شينهن سڀني کي اورانگي عتيبه تائين وڃي پڳو ۽ کيس ماري ڇڏيائين. (1)

هڪ ڀيري عقبه بن ابي معيط پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي گچي سجدي جي حالت ۾ ان طرح لتاڙي جو معلوم ٿيو پئي ته جڻ بئي اڪيون نڪري اينديون. (2)

ابن اسحاق جي هڪ ڊگهي روايت مان به مٿي ڦريل قريشن جي ان ارادي تي روشني پوي ٿي ته هو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي ختم ڪرڻ لاءِ آتا هئا. جيئن ان روايت ۾ ٻڌايل آهي ته هڪ ڀيرو ابوجهل چيو ته ”قريش ڀائرو! اوهان ڏسو پيا ته محمد صلى الله عليه وسلم اسانجي دين تي تنقيد ڪرڻ، ابن ڏاڏن جي برائي ڪرڻ، اسانجي ڏاهپ کان انڪار ڪرڻ ۽ اسانجي معبودن کي ذليل ڪرڻ کان نتو مڙي. ان ڪري آئون الله سان واعدو ڪريان ٿو ته هڪ ڳرو ۽ ڏکيو ڪڇڻ وارو پٿر رکي ويهندس ۽ جڏهن هو سجدو ڪندو ته ان پٿر سان سندس مٿو چيپائي ڇڏيندس. ڀلي ان کانپوءِ توهان مون کي اڪيلو ڇڏي ڏيو يا منهنجو سات ڏيو ۽ بنو عبد مناف به ان کانپوءِ جيڪي وڻين سو ڪن.“ ماڻهن چيو ته ”نه، الله جو قسم! اسين توکي ڪنهن به معاملي ۾ اڪيلو نه ڇڏينداسين. تون جيڪو ڪرڻ چاهين، اهو بي ڪتڪو ڪر.“

صبح ٿيندي ئي ابوجهل اهڙو هڪ پٿر کڻي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي انتظار ۾ ويهي رهيو. پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم دستور مطابق آيا ۽ بيهي نماز پڙهڻ لڳا. قريش به پنهنجن پنهنجن ٽولن سان اچي ويٺا

1 - مختصر السيرة شيخ عبدالله (135).

2 - مختصر السيرة (ص: 113).

۽ ابوجهل جي ڪارروائي ڏسڻ لاءِ انتظار ڪرڻ لڳا. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ سجدي ۾ ويا ته ابوجهل پٿر کنيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن وڌيو، پر ويجهو پهچي تڪڙو واپس ٿيو. سندس منهن لٿل هو ۽ هو ايڏو ته هيسيو پيو هو جو سندس ٻنهي هٿن ۾ پٿر چٽ چٽي پيو هو. هن ڏکيائيءَ سان پٿر اڇلايو. هوڏانهن ڪي ماڻهو اٿي هن وٽ پهتا ۽ چوڻ لڳا، "ابو الحڪم! توکي ڇا ٿيو آهي؟" هن وراڻيو ته "مون رات جيڪي چيو هو، سو ڪرڻ پئي ويس، پر جڏهن ويجهو پهتس ته هڪ اٺ اڳيان اچي ويو. الله جو قسم مون ڪڏهن به ڪنهن اٺ جو اهڙو مٿو، اهڙي ڳچي ۽ اهڙا ڏند نه ڏنا آهن. هن مونکي ڪاڻڻ تي گهريو."

ابن اسحاق لکي ٿو ته "مونکي ٻڌايو ويو ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو: "اهو جبرئيل عليه السلام هو. جيڪڏهن ابوجهل ويجهو اچي ها ته ان کي جهلي وٺي ها." (1)  
ان کانپوءِ ابو جهل پاڻ سڳورن ﷺ خلاف هڪ اهڙي حرڪت ڪئي، جنهن جي ڪارڻ حضرت حمزة رضی اللہ عنہ اسلام قبول ڪري ورتو. ان جو تفصيل اڳتي ايندو.

جيسٽائين قريش جي ٻين بدمعاشن جو تعلق آهي ته انهن جي دلين ۾ به پاڻ سڳورن ﷺ کي ختم ڪرڻ جا خيال ايندا هئا. جيئن حضرت عبدالله بن عمرو بن عاص رضی اللہ عنہ کان ابن اسحاق هي بيان آندو آهي ته هڪ ڀيري مشرڪ حطيم ۾ گڏ ٿيا. اٿون به اتي موجود هوس. مشرڪن، پاڻ سڳورن ﷺ جي ڳالهه ڪئي ۽ چيو ته: "هن ماڻهوءَ جي معاملي ۾ اسان جيڏو صبر ڪيو آهي، ان جو ڪو مثال ڪونهي. حقيقت ۾ اسان هن معاملي ۾ وڏي سهپ کان ڪم ورتو آهي." اها ڳالهه ٻول هلي رهي هئي جو پاڻ سڳورا ﷺ نمودار ٿيا. پهرين حجر اسود کي چمياڻون ۽ پوءِ طواف ڪندي قريش وٽان لنگهيا. انهن مٿن لعن طعن ڪئي، جنهن جو اثر مون پاڻ ﷺ جي چاهي تي ڏٺو، ان کان پوءِ ٻيهر پاڻ ﷺ جو گذرڻ ٿيو ته مشرڪن وري انهيءَ طرح لعن طعن ڪئي ان جو به اثر مون پاڻ ﷺ جي چاهي مبارڪ تي ڏٺو. ٽئين ڀيري لنگهيا ته مشرڪن وري لعن طعن ڪيو. هن ڀيري پاڻ بيهي رهيا ۽ فرمايائون ته "قريشيو! ٻڌو پيا؟ ان ذات جو قسم! جنهن جي هٿن ۾ منهنجي جان آهي! اٿون توهان وٽ (توهانجي) قتل ۽ ذبح (جو حڪم) ڪٿي آيو آهيان."

ٻڌڻ وارا هيسجي ويا. پوءِ ته انهن مان سڀ کان وڏي مخالف به سنا سنا لفظ ڳولهي کائڻ معافي ورتي ۽ چوڻ لڳو "ابوالقاسم! اوهان واپس وڃو. الله جو قسم! اوهان ڪڏهن به نادان نه هئا."

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/298, 299).

بئي ڏينهن قريش وري ساڳيءَ طرح گڏ ٿيا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ بابت ڳالهيون ڪري رهيا هئا جو پاڻ سڳورا ﷺ ظاهر ٿيا. کين ڏسندي ئي سڀ مٿن هلان ڪري آيا ۽ پوءِ کين گهيري ۾ آڻي ورتائون. پوءِ هڪ ماڻهوءَ ڳچيءَ وٽان چادر جهلي. (ان کي مروتن لڳو) ابوبڪر رضه، پاڻ سڳورن ﷺ کي بچائڻ لڳو. هو روئي به رهيو هو ۽ اهو به چئي رهيو هو ته "اتقتلون رجلا ان يقول ربي الله؟" ڇا توهان هڪ ماڻهوءَ کي ان ڪري ماريو ٿا جو هو الله تعاليٰ کي پنهنجو رب تو چوي؟" ان کانپوءِ اهي، پاڻ سڳورن ﷺ کي ڇڏي موتي ويا. عبدالله بن عمرو بن عاص رضه جو بيان آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ کي قريشن پاران ڏکوئڻ جي اها سڀ کان وڏي ڪوشش هئي، جيڪا مون کين ڪندي ڏني. (1)

صحيح بخاريءَ ۾ حضرت عروة بن زبير رضه کان آيل آهي ته مون عبدالله بن عمرو بن عاص رضه کان پڇيو ته مشرڪن، پاڻ سڳورن ﷺ سان جيڪا وڏي ۽ وڏي بدسلوڪي ڪئي، ان بابت تفصيل ٻڌايو؟ پاڻ وراثيائين ته پاڻ سڳورا ﷺ ڪعبه الله وٽ حطيم ۾ نماز پڙهي رهيا هئا ته عقبه بن ابي معيط آيو، ان ايندي ئي پنهنجو پوتو پاڻ سڳورن ﷺ جي ڳچيءَ ۾ وجهي ڏاڍي زور سان پاڻ سڳورن ﷺ کي گهٽو ڏنو. ايتري ۾ ابوبڪر رضه اچي ويو ۽ ان کيس ٻنهي ڪلهن کان جهلي ڌڪيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کان پري ڪندي چيو ته "اتقتلون رجلا ان يقول ربي الله! توهان هڪ ماڻهوءَ کي ان ڪري ماريو ٿا جو هو الله تعاليٰ کي پنهنجو رب تو چوي؟" (2)

بيبي اسماء جي روايت ۾ اهو واڌارو آهي ته حضرت ابوبڪر رضه اها هڪل ٻڌي ته پنهنجي ساٿيءَ کي بچاءَ. پاڻ هڪدم اسان وٽان نڪتو. سندن وارن ۾ چار چوٿيون ٿيل هيون. پاڻ اهو چوندو ويو ته "اتقتلون رجلا ان يقول ربي الله؟ توهان هڪ ماڻهوءَ کي رڳو ان ڪري ماريو ٿا جو هو الله تعاليٰ کي پنهنجو رب تو چوي؟" (3)

**حضرت حمزة رضه جو اسلام قبولڻ:-** مڪي جي فضا تي ڏاڍ ۽ ڌم ڄا ڪارا ڪڪر ڇانيل هئا ته اوچتو ڪنوڻ ڪڙڪي ۽ مظلومن لاءِ رستو روشن ٿي ويو. يعني حضرت حمزة رضه مسلمان ٿي ويو. سندن اسلام قبولڻ جو واقعو نبوت جي ڇهين سال پيش آيو. خيال آهي ته پاڻ ذوالحج مهيني ۾ مسلمان ٿيو. سندن اسلام قبولڻ جو ڪارڻ اهو هو ته هڪ ڏينهن ابوجهل صفا جبل ويجهو پاڻ سڳورن ﷺ وٽان لنگهندي پاڻ سڳورن ﷺ کي تنگ ڪيو ۽ کين گهٽ وڌ ڳالهيائين.

1 - ابن هشام (289/1). 290.

2 - صحيح بخاري (544/1).

3 - مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص: 113).

پاڻ سڳورا ﷺ ماڻ ۾ رهيا ۽ ڪجهه نه چيائون پر ان کانپوءِ هن پاڻ سڳورن ﷺ جي سر مبارڪ تي پٿر واهي ڪڍيو، جنهن سان رت وهي پيو. پوءِ هو وڃي ڪعبة الله ۾ قريشن جي مجلس ۾ ويٺو. عبدالله بن جدعان جي هڪ ٻانهي، جنهن جو گهر صفا جبل تي هو، تنهن اهو نظارو ڏٺو هو. حضرت حمزة رضی اللہ عنہ اوڏي مهل شڪار تان موٽي رهيو هو ته هن کين ابوجهل جي سڄي ڪارستاني بيان ڪري ٻڌائي. تنهن تي حضرت حمزة رضی اللہ عنہ ڏاڍو ڏمريو. پاڻ قريش جو سڀ کان پهلو ان ۽ سگهارو جوان هو. حقيقت ٻڌي ڪٿي به بيهڻ کانسواءِ دل ۾ پڪو ارادو ڪري ڊوڙيو ته جتي به ابوجهل ملندو اتي کيس ڪٽيندس. تنهنڪري مسجد الحرام ۾ داخل ٿي سڌو ان جي مٿان اچي بيٺو ۽ چيائين ته "او سرين تي خوشبوءِ لڳائڻ وارا پاڙيا! تون منهنجي پائيتي کي گاريون ٿو ڏين، جڏهن ته آئون به ان دين جو پوئلڳ آهيان." ان کانپوءِ پنهنجي ڪمان ايڏي زور سان سندس مٿي ۾ هنيائين جو هو سخت گهائجي پيو. ان تي ابوجهل جي قبيلي بنو مخزوم ۽ حضرت حمزة رضی اللہ عنہ جي قبيلي جا ماڻهو هڪٻئي جي سامهون اٿي بيٺا، پر ابوجهل اهو چئي کين ماڻ ڪرائي ته ابو عماره کي وڃڻ ڏيو. مون واقعي هن جي پائيتي کي گار ڏني هئي. (1)

پهرين ته حضرت حمزة رضی اللہ عنہ جو اسلام رڳو ان حميت ڪارڻ هو ته سندن مائٽ جي بيعزتي جو ڪئي وئي، پر پوءِ الله تعاليٰ سندن سينو کوليو ۽ ان اسلام جي سنگهر کي مضبوطيءَ سان جهلي ورتو. (2) ۽ مسلمانن کي سندن ڪارڻ وڏي عزت ۽ طاقت محسوس ٿي.

**حضرت عمر رضی اللہ عنہ جو اسلام قبول ٿيڻ:-** ڏاڍ ۽ ڏمري جي ان انڌيري ماحول ۾ هڪ ٻي ڪنوڻ چمڪات ڪيو، جنهن جي سهائي سڀني محسوس ڪئي. يعني حضرت عمر رضی اللہ عنہ مسلمان ٿيو. اهو واقعو سن ٻه نبويءَ جو آهي. (3)

پاڻ حضرت حمزة رضی اللہ عنہ کان ٽي ڏينهن پوءِ مسلمان ٿيو. پاڻ سڳورن ﷺ سندس اسلام قبول ٿيڻ جي دعا گهري هئي. جيئن امام ترمذي رضی اللہ عنہ، ابن عمر رضی اللہ عنہ کان روايت ڪئي آهي ۽ ان کي صحيح به سڏيو آهي. ساڳيءَ طرح طبرانيءَ، حضرت ابن مسعود رضی اللہ عنہ ۽ حضرت انس رضی اللہ عنہ کان روايت ڪئي آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "اللهم اعز الاسلام باحب الرجلين اليك بعمر بن الخطاب او بابي جهل بن هشام." يعني "يا الله! عمر بن خطاب ۽ ابوجهل بن هشام جيڪو شخص توکي وڌيڪ پيارو هجي، ان جي ذريعي اسلام کي قوت بخش."

1 - مختصر السيرة شيخ محمد بن عبد الوهاب ص 66 - رحمة للعالمين (68/1) - ابن هشام (291/1، 292).

2 - ان جو اندازو مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص: 101) ۾ ٻڌايل هڪ روايت مان ٿئي ٿو.

3 - تاريخ عمر بن الخطاب رضی اللہ عنہ لابن الجوزي (ص: 11).



الله تعالي اها دعا قبولي ۽ حضرت عمر رضي الله عنه مسلمان ٿي ويو. الله تعالي جي ويجهو انهن  
پنهني مان وڌيڪ پيارو حضرت عمر رضي الله عنه هو. (1)

سندن اسلام قبول ٿي وارين سڀني روايتن تي نظر وجهڻ سان پتو پوي ٿو ته سندن دل ۾ اسلام  
آهستي آهستي جڳهه ٺاهي. مناسب ٿيندو ته انهن روايتن جو نت ڏيڻ کان اڳ حضرت عمر رضي الله عنه جي  
مزاج ۽ جذبن ۽ احساسن ڏانهن ٿورو اشارو ڪيو وڃي.

حضرت عمر رضي الله عنه پنهنجي سخت گيريءَ جي ڪري مشهور هو. مسلمانن هڪ ڊگهي عرصي  
تائين سندن هٿان تڪليفون سنيون. ائين لڳندو هو ته پاڻ متضاد قسم جي جذبن جو مالڪ هو. جيئن  
هڪ پاسي ته پاڻ ابن ڏاڏن جي ايجاد ڪيل رسمن جو احترام ڪندو هو ۽ شراب پيئڻ جو شوقين هو،  
پر ٻئي طرف مسلمانن پاران مصيبتون سهندي به ايمان ۽ عقيدتي تي مضبوطيءَ سان ڄميل رهڻ کي  
پسند به ڪندو هو. منجهن ڪنهن ڏاهي ماڻهوءَ وانگر شڪ شبها به پيدا ٿيندا هئا ته اسلام جنهن  
ڳالهه جي دعوت ڏئي رهيو آهي، اها ئي صحيح آهي. ان ڪري سندن ڪيفيت پل ۾ تولو، پل ۾  
ماشو پئي ٿيندي هئي، جو ڪڏهن پاڻ پڙڪندو هو ۽ ڪڏهن ٿڌو ٿي ويندو هو. (2)

حضرت عمر رضي الله عنه جي اسلام قبول ٿي بابت روايتن جو نت اهو آهي ته هڪ ڀيري پاڻ گهر کان  
ٻاهر رات گذاريائين. پاڻ حرم شريف ۾ آيو ۽ ڪعبه الله جي پردي پٺيان لڪي ويو. ان وقت پاڻ  
سڳورا صلوات الله عليه نماز ۾ سورة الحاقه پڙهي رهيا هئا. حضرت عمر رضي الله عنه قرآن ٻڌڻ لڳو ۽ ان جي  
جوڙجڪ تي اچرچ ۾ پئجي ويو. سندن چوڻ آهي ته مون دل ۾ سوچيو ته ”الله جو قسم! هي ته شاعر  
آهي، جيئن قريش چون ٿا.“ پر ايتري ۾ پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم هيءَ آيت پڙهي:  
﴿إِنَّهُ لَقَوْلُ رَسُولٍ كَرِيمٍ (40) وَمَا هُوَ بِقَوْلِ شَاعِرٍ قَلِيلًا مَا تُؤْمِنُونَ (41)﴾ (الحاقه)  
حضرت عمر رضي الله عنه جو بيان آهي ته مون دل ۾ سوچيو ته (هون) ”هي ته ڪاهن آهي.“ پر ايتري ۾ پاڻ  
سڳورن صلوات الله عليهم هيءَ آيت پڙهي:

﴿وَلَا يَقُولُ كَاهِنٌ قَلِيلًا مَا تُذَكَّرُونَ (42) تُنزِيلٌ مِّن رَّبِّ الْعَالَمِينَ (43)﴾ (الحاقه) سورة جي آخر تائين.  
حضرت عمر رضي الله عنه جو بيان آهي ته ان گهڙيءَ منهنجي دل ۾ اسلام جڳهه ڪري ويو. (3)

<sup>1</sup> -جامع الترمذي (209/2).

<sup>2</sup> - حضرت عمر رضي الله عنه جي حالتن جو اهوتجزيو شيخ محمد غزالي رحمته الله عليه ڪيو آهي. فق السيرة (ص: 92، 93).

<sup>3</sup> - تاريخ عمر رضي الله عنه بن الخطاب لابن جوزي (ص: 6) - ابن اسحاق، عطاء ۽ مجاهد کان به تقريبن ساڳي روايت آيل آهي. باقي ان جو آخري  
تڪر ٿورو مختلف آهي. ڏسو سيرة ابن هشام (1/346، 348) ۽ خود ابن جوزيءَ به حضرت جابر رضي الله عنه کان ان جهڙي هڪ روايت نقل ڪئي  
آهي، پر ان جو آخري حصو به هن روايت کان بدليل آهي. ڏسو تاريخ عمر رضي الله عنه بن الخطاب (ص: 9، 10).

اهو پهريون ڀيرو هو جو حضرت عمر رضي الله عنه جي دل ۾ اسلام جو پيچ پيو پر اڃا سندن اندر جاهليت وارا جذبا، تقليدي عصبيت ۽ ابن ڏاڏن جي دين جي عظمت جو احساس ايڏو مضبوطيءَ سان وينل هو. ان ڪري پاڻ وري به اسلام دشمن عملن ۾ رڌل رهيو.

سندن طبيعت جي سختي ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام سان عداوت جو اهو حال هو جو هڪ ڏينهن پاڻ، پيغمبر صلى الله عليه وسلم کي مارڻ لاءِ تلوار کڻي نڪتو، پر رستي ۾ کين نعيم بن عبدالله النحام عدوي (1) سان يا بني زهرة (2) بني مخزوم (3) جو ڪو ماڻهو مليو. ان سندن تلوار ڏسي پڇيو ته ”عمر! ڪيڏانهن پيو وڃين؟“ پاڻ ورائيائين ته ”محمد صلى الله عليه وسلم کي مارڻ پيو وڃان.“ ان تي هن چيو ته ”محمد صلى الله عليه وسلم کي ماري بنو هاشم ۽ بنو زهرة کان ڪيئن بچيندي؟“ حضرت عمر چيو ته: لڳي ٿو ته تون به پنهنجو دين ڇڏي بي دين ٿي چڪو آهين. هن ورائيو ته: عمر رضي الله عنه هڪ اڇرج جوڳي ڳالهه ٻڌايان ته تنهنجي پيٽ ۽ پيٽويو به تنهنجو دين ڇڏي بي دين ٿي چڪا آهن.“ اهو ٻڌي عمر رضي الله عنه ڪاوڙ ۾ بي قابو ٿي ويو ۽ سڌو پنهنجي پيٽ جي گهر پهتو. اتي انهن کي حضرت خباب رضي الله عنه بن ارت سورة طه پڙهائي رهيو هو ۽ هو روز قرآن پڙهائڻ ايندو هو. جڏهن حضرت خباب رضي الله عنه حضرت عمر رضي الله عنه جي اچڻ جو کڙڪو ٻڌو ته گهر ۾ لڪي ويو. هوڏانهن حضرت عمر رضي الله عنه جي پيٽ فاطمه رضي الله عنها عنها صحيفو لڪائي ڇڏيو، پر حضرت عمر رضي الله عنه اچڻ مهل حضرت خباب رضي الله عنه جي قرأت ٻڌي چڪو هو، تنهنڪري پڇيائين ته اهو هلڪو آواز ڪنهن جو هو، جيڪو اوهان وٽان آيو پئي؟ ”هن ورائيو ته“ ڪجهه به نه بس اسان پاڻ ۾ پئي ڳالهايو.“ حضرت عمر رضي الله عنه چيو ته: ”شايد توهان ٻئي بي دين ٿي چڪا آهيو؟“ پيٽوئي چيو ته: ”جڳو عمر رضي الله عنه! اهو ٻڌاءِ ته جيڪڏهن تنهنجي دين بدران پيو ڪو دين سڄو هجي ته؟“ حضرت عمر رضي الله عنه اهو ٻڌڻ شرط پنهنجي پيٽوئي کي دسڙي مارڻ شروع ڪيو. سندن پيٽ کين پنهنجي مڙس کان ڌار ڪيو ته پيٽ کي به اهڙو ته ٽپڙ واهي ڪڍيائين جو سڄو منهن رتوڇاڻ ٿي ويس. ابن اسحاق کان روايت آهي ته سندن مٿي ۾ به ڌڪ لڳو. پيٽ جوش ۾ اچي چيو ته: ”عمر رضي الله عنه جيڪڏهن تنهنجي دين بدران پيو دين سڄو هجي ته؟“ اشهد ان لا اله الا الله و اشهد ان محمدا رسول الله. آئون شاهدي ڏيان ٿي ته الله کانسواءِ ڪير عبادت جي لائق نه آهي ۽ آئون شاهدي ڏيان ٿي ته محمد صلى الله عليه وسلم الله جو رسول آهي.“ اهو ٻڌي حضرت عمر رضي الله عنه جو منهن لهي ويو ۽ کين پنهنجي پيٽ جي چهري تان رت ڳڙندو ڏسي شرم محسوس ٿيو ۽ چوڻ لڳو ته: ”جڳو اهو ڪتاب جيڪو اوهان وٽ آهي، تورو مونکي به پڙهڻ ڏيو.“ پيٽ چيو ته: ”تون ناپاڪ آهين. هن ڪتاب کي

1 - اها ابن اسحاق جي روايت آهي. ڏسو ابن هشام (344/1).

2 - اهو حضرت انس رضي الله عنه کان مروِي آهي. تاريخ عمر رضي الله عنه بن الخطاب لابن جوزي، (ص: 10) ۽ مختصر السيرة (ص: 103).

3 - اها ابن عباس رضي الله عنه جي ٻڌايل روايت آهي. ساڳيو ڪتاب مختصر السيرة (ص: 102).

پاڪ ماڻهو ڇهي سگهن ٿا. اتي پهرين وهنج. ” حضرت عمر رضي الله عنه وهنتو. پوءِ ڪتاب ورتو ۽ بسم الله الرحمن الرحيم پڙهي چوڻ لڳو ته ”هي ته ڏاڍا پاڪ نالا آهن.“ ان کانپوءِ طه کان (اني) تائين پڙهيائين ۽ چوڻ لڳو ته: ”هي ته ڏاڍو عمدو ۽ محترم ڪلام آهي. مونکي محمد صلي الله عليه وسلم جو ڏس پتو ڏيو!“

حضرت خباب رضي الله عنه، سندن اهي جُملا ٻڌي ٻاهر نڪتو ۽ چوڻ لڳو ته: ”اي عمر! خوش ٿي وڃ. مونکي اميد آهي ته پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم خميس واري رات تو بابت جيڪا دعا گهري هئي، (ته يا الله! عمر بن خطاب يا ابوجهل بن هشام جي ذريعي اسلام کي سگهه ڏي) سا قبول پئي آهي ۽ هن وقت پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم صفا جبل جي ڀر واري گهر ۾ ويٺل آهن.“

اهو ٻڌي حضرت عمر رضي الله عنه پنهنجي تلوار چيلهه تي ٻڌي ۽ اچي ان گهر جي در تي نڪ نڪ ڪئي. هڪ ماڻهوءَ سوراخ مان ڏٺو ته عمر رضي الله عنه تلوار سان بيٺو آهي. تنهن ڊوڙي وڃي پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم کي اها ڳالهه ٻڌائي ۽ سڀني هڪ هنڌ گڏ ٿي ويا. حضرت حمزة رضي الله عنه پڇيو ته ”ڇا ڳالهه آهي؟“ ماڻهن پڇيو ته ”عمر رضي الله عنه آيو آهي.“ حضرت حمزة رضي الله عنه چيو ته: ”بس عمر رضي الله عنه آهي نه! دروازو کوليو، جي چڱي نيت سان آيو آهي ته نيڪ نه ته سندس ئي تلوار سان کيس پورو ڪيو.“ هوڏانهن پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم اندر ويٺا هئا ۽ وحي اچي رهي هئي. وحي لهي بس ٿي ته حضرت عمر رضي الله عنه هلي اچي ساڻن مليو. پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم سندن ڪپڙا ۽ تلوار جو ڳن جهلي سختيءَ سان جهٽڪو ڏئي فرمايو ته: ”اي عمر! ڇا تون ان وقت کان بچڻ نه چاهيندي، جڏهن الله تعاليٰ توتي به اهڙي ڏلت ۽ خواري ۽ عبرتناڪ پڇاڻيءَ جي سزا نازل ڪري، جهڙي وليد بن مغيره تي نازل ٿي چڪي آهي؟ يا الله! هي عمر بن الخطاب آهي. يا الله! اسلام کي عمر بن الخطاب جي ذريعي سگهه ۽ عزت بخش.“ پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم جي ان ارشاد کان پوءِ حضرت عمر رضي الله عنه مسلمان ٿيندي چيو ته اشهد ان لا اله الا الله و انك رسول الله. آءُ گواهي ٿو ڏيان ته بيشڪ الله کانسواءِ ڪو عبادت جي لائق نه آهي ۽ بيشڪ تون الله جو رسول آهين.

اهو ٻڌي گهر ۾ موجود اصحابين ايڏي زور سان تڪبير جو نعرو هنيو جو مسجد الحرام وارن تائين به ان جو آواز پهتو. <sup>(1)</sup> اسانکي خبر آهي ته حضرت عمر رضي الله عنه جي پهلوانيءَ جو اهو حال هو جو سندن مقابلي ۾ اچڻ جي ڪير به همت نه ڪري سگهندو هو. ان ڪري سندن مسلمان ٿيڻ سان مشرڪن ۾ روج راڙو پئجي ويو ۽ انهن ڏاڍي بي عزتي محسوس ڪئي. ٻئي طرف سندن اسلام آڻڻ ڪري مسلمانن کي ڏاڍي عزت، سگهه ۽ خوشي حاصل ٿي. جيئن ابن اسحاق پنهنجي سند سان

<sup>1</sup> - تاريخ عمر بن الخطاب (ص: 7، 10، 11) - مختصر السيرة شيخ عبدالله (102، 103) - سيرت ابن هشام (1/343 کان 346).

حضرت عمر رضي الله عنه جو بيان ٻڌايو آهي ته جڏهن آئون مسلمان ٿيس سو جيمر ته مڪي جو ڪهڙو ماڻهو پاڻ سڳورن عليه السلام جو سڀ کان وڏو دشمن آهي؟ پوءِ مون دل ۾ سوچيو ته اهو ابو جهل آهي، ان کانپوءِ مون ان جي در تي وڃي نڪ نڪ ڪئي. هو ٻاهر آيو ۽ ڏسي چيائين ته: اهلا و سهلا (پلي ڪري آئين) ڪيئن اچڻ ٿيو؟ مون چيو ته ”توڪي اهو ٻڌائڻ آيو آهيان ته آئون الله ۽ ان جي رسول محمد صلى الله عليه وسلم تي ايمان آڻي چڪو آهيان ۽ جيڪي ڪجهه پاڻ کڻي آيا آهن، ان جي تصديق ڪري چڪو آهيان.“ حضرت عمر رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته (اهو ٻڌي) هن دروازو بند ڪري ڇڏيو ۽ چيو ته: ”الله تنهنجو برو ڪري، جيڪي تو آندو آهي، ان جو به برو ڪري.“<sup>(1)</sup>

ابن جوزي، حضرت عمر رضي الله عنه کان اها روايت آندي آهي ته جڏهن ڪو ماڻهو مسلمان ٿيندو هو ته ماڻهو ان جي پٺيان پئجي ويندا هئا. ان کي ڪٽيندا هئا ۽ هو به ان سان وڙهندو هو. ان ڪري جڏهن آئون مسلمان ٿيس ته پنهنجي مامي عاصي بن هاشم وٽ وڃي ان کي ٻڌايم ته هو گهر ۾ گهڙي ويو. پوءِ قريش جي هڪ وڏي ماڻهوءَ وٽ ويس. (شايد ابو جهل ڏانهن اشارو آهي) ان کي به ٻڌايم ته اهو به گهر ۾ گهڙي ويو.<sup>(2)</sup>

ابن هشام ۽ ابن جوزيءَ جو چوڻ آهي ته جڏهن حضرت عمر رضي الله عنه مسلمان ٿيو ته جميل بن معمر جمحي وٽ ويو، جيڪو افواهون ڦهلائڻ ۾ ماهر هو. حضرت عمر رضي الله عنه کيس پنهنجي مسلمان ٿيڻ جو ٻڌايو. جنهن تي هن وڏي رڙ ڪئي ته خطاب جو پٽ بي دين ٿي ويو. حضرت عمر رضي الله عنه سندس پٺيان هو، ان چيو ته: ”هي ڪوڙ تو ڳالهائي، آئون مسلمان ٿي ويو آهيان.“ بهرحال ماڻهن کڻي حضرت عمر رضي الله عنه تي هلاڻ ڪئي ۽ کين مارڻ شروع ڪيو. ماڻهو کين ماري رهيا هئا ۽ پاڻ ماڻهن کي ڪٽي رهيو هو. ايستائين جو سج اچي مٿان بيٺو ۽ حضرت عمر رضي الله عنه ٽڪجي ويهي رهيو. ماڻهو سندن مٿان بيٺا هئا. حضرت عمر رضي الله عنه چيو ته جيڪو وٺيو سو ڪريو. الله جو قسم! جيڪڏهن اسين ٿي سو ڪن هجون ها ته پوءِ مڪي ۾ يا ته توهين رهو ها يا اسين.“<sup>(3)</sup>

ان کانپوءِ مشرڪن کين قتل ڪرڻ جي ارادي سان سندن گهر تي هلاڻ ڪئي. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ حضرت ابن عمر رضي الله عنه کان بيان ٿيل آهي ته پاڻ ڊپ جي حالت ۾ ويٺو هو ته ابو عمرو عاص بن وائل سهمي آيو. کيس پٺاڻي يماني چادر جو وڳو ۽ ريشمي ڀرت سان ڀريل پهراڻ پهريل هو. ان جو تعلق سهر قبيلي سان هو ۽ اهو قبيلو جاهليت ۾ اسانجو حليف هو. ان پڇيو ته ڇا ڳالهه آهي؟ حضرت عمر رضي الله عنه وراڻيو ته آئون مسلمان ٿي ويو آهيان، انڪري توهان جي قوم مونکي

<sup>1</sup> - ابن هشام (349/1، 350).

<sup>2</sup> - تاريخ عمر رضي الله عنه بن الخطاب (ص: 8)، ابن هشام (348/1، 349).

<sup>3</sup> - تاريخ عمر رضي الله عنه بن الخطاب ص: 8، ابن هشام (348/1، 349).

مارڻ پئي گهري. عاص چيو ته ”اهو ممڪن ناهي.“ عاص جي اها ڳالهه ٻڌي مونڪي اطمينان ٿيو. ان کانپوءِ عاص اتان نڪري وڃي ماڻهن سان مليو. ان وقت حالت اها هئي ته ماڻهن جي ميڙ سان سڄي وادي ڀريل هئي. عاص پڇيو ته ”ڇا ارادو آتو؟“ ماڻهن چيو ته: ”اهو ئي خطاب جو پٽ گهربل آهي، جيڪو بي دين ٿي ويو آهي.“ عاص چيو ته: ”ان ڏانهن ڪا راهه نٿي وڃي.“ اهو ٻڌي ماڻهو موٽي ويا. (1) ابن اسحاق جي هڪ روايت ۾ آهي ته واللہ ائين لڳي رهيو هو جڏهن اهي هڪ ڪپڙو هئا، جنهن کي جهٽڪو ڏئي حضرت عمر رضي الله عنه جي مٿان لائو ويو. (2)

حضرت عمر رضي الله عنه جي مسلمان ٿيڻ تي مشرڪن جا تاثر اهڙا هئا، باقي مسلمانن جي حالت جو اندازو مجاهد جي ابن عباس رضي الله عنه کان آندل روايت مان لڳائي سگهجي ٿو ته مون عمر بن الخطاب رضي الله عنه کان پڇيو ته توهان تي فاروق لقب ڪيئن پيو؟ ته ان ورائيو ته مون کان تي ڏينهن اڳ حضرت حمزة رضي الله عنه مسلمان ٿيو، پوءِ حضرت عمر رضي الله عنه سندن اسلام قبول ٿيڻ جو واقعو ٻڌائي آخر ۾ چيو ته پوءِ جڏهن آئون مسلمان ٿيس ته مون چيو ته يا رسول الله صلي الله عليه وسلم! ڇا اسين حق تي ناهيون، ڀلي زنده رهون يا مري وڃون؟ پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم فرمايو ته ان ذات جو قسم جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، توهان حق تي آهيو، ڀلي زنده رهو يا مري وڃو. حضرت عمر رضي الله عنه ٻڌايو ته تڏهن مون چيو ته پوءِ لڪڻ ڇاجو؟ ان ذات جو قسم جنهن اوهان کي حق سان موڪليو آهي، اسين ضرور ٻاهر نڪرنداسين. پوءِ اسان ٻن قطارن ۾ پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم سان ٻاهر آياسين. هڪ قطار ۾ حمزة رضي الله عنه هو ۽ هڪ ۾ مان هوس. اسانجي هلڻ سان چڪيءَ ۾ اتي پيسجڻ وانگر هلڪو هلڪو ڏونهن اٿي رهيو هو. تانجو اسان مسجد الحرام ۾ داخل ٿياسون. حضرت عمر رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته قريشن مون کي ۽ حمزة کي ڏٺو ته سندن دلين تي اهڙو ڌڪ لڳو، جيڪو اڳي نه لڳو هو. ان ڏينهن کان پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم منهنجو لقب فاروق رکي ڇڏيو. (3)

حضرت ابن مسعود رضي الله عنه جو بيان آهي ته اسين ڪعبه الله وٽ نماز پڙهي نه سگهندا هئاسين، تانجو حضرت عمر رضي الله عنه اسلام قبوليو. (4)

حضرت صهيب بن سنان رومي رضي الله عنه جو بيان آهي ته حضرت عمر رضي الله عنه مسلمان ٿيو ته اسلام پردي مان نڪري نروار ٿيو. ان جي کليل دعوت ڏني وئي. اسان ٽولا ناهي ڪعبه الله وٽ ويهي سگهياسين ۽ طواف ڪيوسين ۽ جنهن اسان سان ڏاڍاڻيون ڪيون، تنهن کان پلاند ورتوسين ۽

1 - صحيح بخاري (545/1).

2 - ابن هشام (349/1).

3 - تاريخ عمر رضي الله عنه بن الخطاب لابن الجوزي (ص: 6، 7).

4 - مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص: 103).

انهن جي ڪن ظلمن جو جواب ڏنوسين. (1) حضرت ابن مسعود رضي الله عنه جو بيان آهي ته جڏهن کان حضرت عمر رضي الله عنه اسلام قبوليو، تڏهن کان اسان طاقتور ۽ عزت وارا ٿي وياسين. (2)

**قريشن جي نمائندي جو پاڻ سڳورن وٽ اچڻ:-** حضرت حمزة رضي الله عنه ۽ حضرت عمر رضي الله عنه جي مسلمان ٿيڻ کانپوءِ ظلم ۽ بربريت جا ڪڪر هٿ لڳا ۽ مسلمانن کي ڏاڍ ۽ ڏمر جو نشانو بنايائون وارن مشرڪن بدمستيءَ بدران سوچ سمجهه کان ڪم وٺڻ شروع ڪيو. جيئن مشرڪن ڪوشش ڪئي ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ان دعوت ذريعي جيڪو فائدو حاصل ڪرڻ گهرن ٿا، کين اهو ڏئي دعوت ۽ تبليغ کان باز رکيو وڃي. پر انهن کي پتو نه هو ته سڄي ڪائنات، جنهن ۾ سڄي اڀري ٿو، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي دعوت جي صلي ۾ ڪڪ پڻ جيتري حيثيت به نٿي رکي. ان ڪري انهن کي پنهنجي ان رقا ۾ ناڪام ٿيڻو پيو.

ابن اسحاق، يزيد بن زياد جي واسطي سان محمد بن ڪعب قرظيءَ جو اهو بيان نقل ڪيو آهي ته مون کي ٻڌايو ويو ته عتبہ بن ربيع، جيڪو قوم جو سردار هو، هڪ ڏينهن قريشن جي ميڙ کي ان چيو ته ڇو نه مان محمد صلى الله عليه وسلم وٽ وڃي ان سان ڳالهايان (جيڪي ان وقت مسجد الحرام ۾ هڪ پاسي اڪيلا وينل هئا). ۽ ان جي اڳيان ڪي ڳالهيون رکان. ٿي سگهي ٿو ته هو ڪا شيءِ قبولي وجهي، جيڪا ڏئي اسان کيس پاڻ کي نقصان پهچائڻ کان روڪي وٺون. اها ان وقت جي ڳالهه آهي، جڏهن حضرت حمزة رضي الله عنه مسلمان ٿي چڪو هو ۽ ڪفرن کي مسلمانن جو وڏندڙ تعداد نظر اچي رهيو هو.

مشرڪن چيو ته ابو الوليد! اوهان ان سان پلي ڳالهايو. ان کان پوءِ عتبہ اٿيو ۽ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ وڃي ويٺو ۽ چيائين ته ”پائيتيا! اسان جي قوم ۾ تنهنجو جيڪو مقام ۽ مرتبو ۽ اعليٰ نسلي حيثيت آهي، اها توکي معلوم آهي. هاڻي تون پنهنجي قوم ۾ هڪ وڏو معاملو کڻي آيو آهين، جنهن جي ڪارڻ تو هن جماعت ۾ قوت وجهي ڇڏي آهي. سندن ڏاهپ کي بيوقوفي ٿو چوين، سندن معبودن ۽ دين تي تنقيد ٿو ڪرين ۽ سندن ابن ڏاڏن کي ڪافر ٿو چوين. تنهنڪري منهنجي ڳالهه ٻڌ! آئون ڪجهه ڳالهيون چوان ٿو، انهن تي غور ڪر. ٿي سگهي ٿو ته ڪا ڳالهه قبولي وجهين.“ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته ”ابو الوليد چئو! آئون ٻڌان پيو.“ ابوالوليد چيو ته ”پائيتيا! هي معاملو جيڪو تون کڻي آيو آهي، جيڪڏهن ان ذريعي مال حاصل ڪرڻ ٿو چاهين ته اسين توکي ايترو ڏن ڏينداسين جو تون اسان مان سڀ کان وڌيڪ مالدار ٿي ويندين ۽ جي تون اعزاز ۽ مرتبو حاصل ڪرڻ گهرين ته

<sup>1</sup> - تاريخ عمر بن الخطاب لابن الجوزي (ص: 13).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري: (545/1).

اسين توکي پنهنجو سردار ڪري ٿا وٺون ۽ تو کانسواءِ ڪنهن به معاملي جو فيصلو نه ڪنداسين ۽ جي تون بادشاهه ٿيڻ گهرين ته توکي پنهنجو بادشاهه ڪڍي ٿا ڪريون ۽ جيڪو جن پوت تو وٽ اچي ٿو، جنهن کي تون ڏسين ته پر پڇائي نٿو سگهين ته ان جو علاج به ڪڍي ڳولهنداسين ۽ ان لاءِ ايترو ڏن خرچ ڪنداسين جو تون صفا نيڪ ٿي ويندين، ته ڪڏهن ڪڏهن ائين به ٿيندو آهي ته جن پوت انسان ۾ واسو ڪري ويندا آهن ۽ ان جو علاج ڪرائڻو پوندو آهي.

عتبه اهي ڳالهيون ڪري رهيو هو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ ٻڌي رهيا هئا، جڏهن فارغ ٿيو ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”ابو الوليد! توکي جيڪو چوڻو هو، سو چئي ڇڏي؟“ هن ورائيو ته: ”ها“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”ڇڱو هاڻي منهنجي ڳالهه ٻڌ!“ هن چيو ته: ”نيڪ آهي، ٻڌان ٿو.“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ﴿بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ: حَم (1) نَزَّلْنَا مِنَ السَّمَاءِ مَاءً حَمِیْمًا فَاَنْزَلْنَا مِنْهُ لَحْمًا مَّیْمًا فَطَبَخُوهُ فَارْتَدَّ عَلٰی غُلُوْبِهِمْ (2) وَتَمَّتْ لَيْلَةُ الْقَدْرِ (3) فَارْتَدَّ عَلٰی غُلُوْبِهِمْ (4) وَقَالُوا قُلُوْبُنَا فِیْ اَكْتٰةٍ مِّمَّا تَدْعُوْنَ اِلَیْهِ...﴾ (فصلت)

”حمر. (هيءُ ڪتاب جيڪو الله) باجهاري مهربان وٽان نازل ٿيل آهي. (هيءُ اهڙو) ڪتاب آهي، جنهن جون آيتون کولي بيان ڪيون ويون آهن، قرآن عربيءَ ۾ سمجهه وارن ماڻهن لاءِ آهي. جو خوشخبري ڏيندڙ ۽ ڊيچاريندڙ آهي، پوءِ گهڻن ماڻهن منهن موڙيو تنهن ڪري آهي (ان کي) ٻڌندا ئي نه آهن. ۽ چوندا آهن ته جنهن ڏانهن اسان کي سڏيندو آهي تنهن کان اسان جون دليون پردي ۾ آهن...“ الخ

پاڻ سڳورا ﷺ اڳيان پڙهندا ويا ۽ عتبه پنهنجا ٻئي هٿ پٺيان زمين تي رکي ٻڌندو ويو. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ سجدي واري آيت تي پهتا ته سجدو ڪيائون ۽ پوءِ فرمايائون ته: ”ابو الوليد! توکي جيڪو ٻڌڻو هو اهو ٻڌي، هاڻي جيڪي وڻي، سو وڃي ڪر.“

عتبه اتي پنهنجن ساٿارين وٽ آيو کيس ايندو ڏسي مشرڪن هڪ ٻئي کي چيو ته: ”الله جو قسم! ابو الوليد توهان وٽ اهو منهن نه پيو ڪڍيو اچي، جيڪو هتان ڪڍي ويو هو.“ پوءِ جڏهن ابو الوليد اچي ويو ته ماڻهن پڇيو ته ”ابو الوليد! ڇا خبر آهي؟“ هن چيو ته: ”خبر اها آهي ته مون اهڙو ڪلام ٻڌو آهي جيڪو هن کان اڳ ۾ ڪڏهن به نه ٻڌو اٿم. الله جو قسم! اهو نه شعر آهي، نه جادو ۽ نه ڪهان. قريشيو! منهنجي ڳالهه مڃيو ۽ هن معاملي کي مون تي ڇڏيو. منهنجي راءِ اها آهي ته هن ماڻهوءَ کي سندس حال تي ڇڏي ڏيو. الله جو قسم! مون ان جو جيڪو قول ٻڌو آهي، اهو ڪنهن وڏي واقعي جي اڳڪٿي آهي. جي هن کي ماريو ويو ته ٻيا توهان کي ناس ڪري ڇڏيندا ۽ جي هن توهانجي ساٿ سان زور ورتو ته هن جي بادشاهت، توهانجي جي بادشاهت ثابت ٿيندي ۽ هن جي عزت نه بلڪ توهانجي عزت وڌندي ۽ هن جو وجود سڀ کان وڌيڪ توهانجي لاءِ فخر لائق ثابت

ٿيندو. ” ماڻهن چيو ته: ”ابوالوليد! الله جو قسم! توتي به هن جي زبان جو جادو هلي ويو آهي.“ عتبہ چيو ته: ”هن شخص بابت منهنجي راءِ اها ئي آهي، هاڻي جيڪي توهان کي وڻي اهو ڪريو.“<sup>(1)</sup> هڪ ٻيءَ روايت ۾ آيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ جڏهن تلاوت شروع ڪئي ته عتبہ ماڻ ڪري ويهي رهيو. جڏهن پاڻ سڳورا هن آيت تي پهتا: ﴿فَإِنْ أَعْرَضُوا فَقُلْ أَنْذَرْتُكُمْ صَاعِقَةً مِثْلَ صَاعِقَةِ عَادٍ وَثَمُودَ﴾ (13) (فصلت) ”پوءِ جيڪڏهن (اهي) منهن موڙين ته چؤ ته اوهان کي اهڙي عذاب کان ڊيڄاريم جهڙو عاد ۽ ثمود جو عذاب (هو).“

ته عتبہ ڪنپندي اٿي بيٺو ۽ اهو چئي پاڻ سڳورن ﷺ جي وات تي هٿ رکي ڇڏيائين ته آئون توهان کي الله جو ۽ ماڻيءَ جو واسطو ٿو ڏيان، (ته ائين نه ڪريو). هن کي ڊپ هو ته متان ان ڌمڪيءَ تي عمل نه ٿي پوي. ان کان پوءِ هو پنهنجن ماڻهن وٽ ويو ۽ مٿي ٻڌايل گفتمو ٿي.<sup>(2)</sup> ابو طالب جو بني هاشم ۽ بني مطلب کي گڏ ڪرڻ:- حالتون بدلجي ويون هيون، پرياسي جي ماحول ۾ ڦيرو اچي ويو هو، پر ابوطالب جو انديشو برقرار هو. کيس مشرڪن کان پنهنجي پائيتي لاءِ اڃا به خطرو محسوس ٿي رهيو هو. پاڻ گذريل واقعن تي برابر غور ڪري رهيو هو. مشرڪن، کيس ٽڪراءَ جي ڌمڪي ڏني هئي. پوءِ سندس پائيتي کي عمار بن وليد جي بدلي ۾ حاصل ڪري قتل ڪرڻ لاءِ سوڊيبازي ڪرڻ جي ڪوشش به ڪئي وئي. ابوجهل هڪ ڳري پٿر سان سندس پائيتي کي قتل ڪرڻ لاءِ اٿيو هو. عقبه بن ابي معيط ان کي چادر سان ڳلو گهٽي مارڻ جي ڪوشش ڪئي هئي. خطاب جو پٽ تلوار کڻي ان کي پورو ڪرڻ لاءِ سنڀري نڪتو هو. ابو طالب انهن واقعن تي سوچيو ته کيس هڪ وڏي خطري جي بوءِ محسوس ٿي، جنهن سان سندس دل ڪنبي وئي. کيس پڪ ٿي وئي ته مشرڪ پنهنجو عهد توڙڻ ۽ سندس پائيتي کي مارڻ جو پڪو فيصلو ڪري چڪا آهن. انهن حالتن ۾ الله نه ڪري، جيڪڏهن ڪو مشرڪ اوچتو ڪا ڪارروائي ڪري وجهي ته حمزة ﷺ، عمر ﷺ يا ڪو ٻيو ماڻهو ڇا ڪري سگهندو؟

سندس نظر ۾ اها پڪي ڳالهه هئي ۽ بهرحال صحيح به هئي، ڇو ته مشرڪن کلي عام پاڻ سڳورن ﷺ کي قتل ڪرڻ جو فيصلو ڪيو هو ۽ سندن ان فيصلي ڏانهن الله تعاليٰ جي هن قول ۾ اشارو آهي ته: ﴿أَمْ أَمْرًا أَمْرًا فَإِنَّا مُبْرِمُونَ﴾ (79) (الزخرف)

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/293، 294).

<sup>2</sup> - تفسير ابن ڪثير (6/159، 160، 161).



” (ڪافرن به) ڪنهن ڪم جي رٿ رٿي آهي ڇا؟ پوءِ بيشڪ اسين به پڪي رٿ رٿيندڙ آهيون.

هاڻي سوال اهو هو ته ابوطالب کي ڇا ڪرڻ گهرجي! ان جڏهن ڏٺو ته قريش هر طرح سان سندس پائيتي جي مخالفت تي سندرو ٻڌيو بيٺا آهن ته هن بني هاشم ۽ بني مطلب کي گڏ ڪيو ۽ کين دعوت ڏني ته هيستائين هو جيڪو پنهنجي پائيتي جي حفاظت ۽ حمايت جو ڪم اڪيلي سر ڪندو آيو آهي، ان کي هاڻي سڀئي گڏجي سرانجام ڏين. ابوطالب جي اها راءِ عربي حميت جي ڪري پنهي خاندان جي مسلمان توڙي غيرمسلم فردن قبولي. رڳو ابوطالب جي پاءِ ابولهب انڪار ڪيو ۽ سڄي آڪهه کان ڪٽجي وڃي مشرڪن سان مليو ۽ انهن جو ساٿ ڏنو.<sup>(1)</sup>

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (269/1) - مختصر السيرة الشيخ عبدالله (ص: 106).

## مڪمل بائيڪاٽ، مڪمل ناتو توڙڻ

رڳو چار هفتا يا ان کان به گهٽ عرصي ۾ مشرڪن کي چار وڏا ڏچڪا رسي چڪا هئا، يعني حضرت حمزة رضي الله عنه ۽ حضرت عمر رضي الله عنه مسلمان ٿي چڪا هئا، محمد صلي الله عليه وسلم سندن آڇ يا سوڊييازي مسترد ڪري ڇڏي هئي ۽ ان کانسواءِ بني هاشم ۽ بني مطلب جا سڀئي مسلم ۽ ڪافر هڪ ٿي پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم جي حفاظت لاءِ وڃيا. ان سان مشرڪ منجهي پيا، ڇو ته سندن سمجهه ۾ اچي ويو هو ته جي پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم کي قتل ڪرڻ جي ڪوشش ڪيائون ته مڪي جي وادي مشرڪن جي رت سان رنگجي ويندي. ٿي سگهي ٿو ته اهي بلڪل ناس ٿي وڃن. ان ڪري هنن قتل جو منصوبو ڇڏي ظلم ڪرڻ جي هڪ ٻي رت رٿي، جيڪا هيستائين ڪيل ظالماڻين ڪاررواين مان سڀ کان سخت هئي.

**ڏاڍ ۽ ڏمر جون حدون:-** هن تجويز مطابق مشرڪ، محصب نالي واديءَ ۾ خيف بني ڪنانه ۾ گڏ ٿيا ۽ پاڻ ۾ بني هاشم ۽ بني مطلب جي خلاف وڃيا ۽ عيذ ڪيائون ته انهن مان نه شادي ڪبي نه خريد ۽ فروخت، نه ساڻن گڏ اٿبو ويهيو ۽ نه انهن جي گهرن ۾ اچبو ويو. نه ڪوئي ساڻن ڳالهائبو ٻولهاڻبو، جيستائين اهي پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم کي مارڻ لاءِ سندن حوالي نه ڪن. مشرڪن ان فيصلو جو هڪ دستاويز لکيو، جنهن ۾ اهو عهد ڪيو ويو هو ته اهي بني هاشم پاران ڪڏهن به ڪنهن ناهه جي آڇ ڪي نه قبوليندا ۽ نه ئي انهن سان مروت ڪندا، جيستائين اهي پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم کي مارڻ لاءِ مشرڪن جي حوالي نٿا ڪن.

ابن قير لکي ٿو ته ٻڌڻ ۾ اچي ٿو ته اهو دستاويز منصور بن عڪرمه بن عامر بن هاشم لکيو هو ۽ ڪن نصر بن حارث جو نالو ڄاڻايو آهي، پر حقيقت ۾ اهو بغيض بن عامر بن هاشم هو. پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم ان کي پٽيو به هو ۽ سندس هٿ سڪي ويو هو.<sup>(1)</sup>

بهرحال اهي وڃيا ۽ عيذ طئه ٿي ويا ۽ دستاويز ڪعبة الله جي اندر ٽنگيو ويو. ان جي نتيجي ۾ ابولهب کانسواءِ بني هاشم ۽ بني مطلب جا سڀ فرد مسلمان ٿي ويا ڪافر سميتجي اچي شعب ابي طالب ۾ محصور ٿيا. اهو پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم کي نبوت ملڻ جي ستين سال جي محرم جي چنڊ رات جو واقعو آهي.

**تي سال شعب ابي طالب ۾:-** هن ناتي توڙڻ (سوشل بائيڪاٽ) جي ڪارڻ حالتون وڌيڪ ڏکيون ٿي ويون. کاڌي پيئي جو سامان ملڻ بند ٿي ويو، ڇو ته مڪي ۾ جيڪو اناج يا ٻيو سامان

<sup>1</sup> - زاد المعاد (46/2).

ايندو هو. اهو مشرڪ پهرين خريد ڪري وٺندا هئا. ان ڪري محصورين جي حالت ڏاڍي افسوسناڪ ٿي پئي. کين وٺڻ جا پن ۽ چمڙو به ڪاٽيو پيو. فاقن جو حال اهو هو ته بڪ ۾ روئندڙ ٻارن ۽ عورتن جا آواز واديءَ کان ٻاهر ٻڌڻ ۾ ايندا هئا. انهن وٽ مشڪل سان ئي ڪا شيءِ پهچي سگهندي هئي، اها به لڪچپ ۾. اهي حرمت وارن مهينن کانسواءِ ٻيا ڏينهن واديءَ کان ٻاهر نه نڪرندا هئا. اهي قافلن کان سامان خريدڻ لاءِ مڪي کان ٻاهر نه نڪرندا هئا، پر مڪي وارا هر شيءِ جو ايترو ملهه آڇيندا هئا جو محصورين لاءِ ڪجهه خريدڻ مشڪل ٿي پوندو هو.

حڪيم بن حزام، جيڪو بيبي خديجه رضي الله عنها جو ڀائيٽيو هو. ڪڏهن ڪڏهن پنهنجي پٽيءَ کي ڪڻڪ موڪلي ڇڏيندو هو. هڪ ڀيري ابو جهل ٽڪرائجي ويس ۽ ان، اناج ڪٽي وڃڻ نه ڏنس، پر پوءِ ابوالبحري وڃ ۾ پيو ۽ کيس پٽيءَ ڏانهن ڪڻڪ موڪلڻ ڏنائين.

هوڏانهن ابوطالب کي پاڻ سڳورن ﷺ بابت برابر ڊپ لڳو رهيو. ان ڪري جڏهن سڀ پنهنجن پنهنجن هنڌن تي وڃي سمهندا هئا ته پاڻ، حضور ڪريم ﷺ کي چونڊو هو ته تون پنهنجي هنڌ تي سمهي ره. مقصد اهو هوندو هو ته جيڪڏهن ڪو ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ گهرندو هجي ته اهو پاڻ سڳورن ﷺ کي پنهنجي هنڌ تي سمهيل ڏسي وٺي. پوءِ جڏهن سڀ سمهي پوندا هئا ته ابوطالب، پاڻ سڳورن ﷺ جي جڳهه مٿائي سندن جڳهه تي پنهنجن پٽن، ڀائرن يا ڀائيٽين مان ڪنهن کي سمهاري ڇڏيندو هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي پنهنجي هنڌ تي سمهاري ڇڏيندو هو.

ان هوندي به پاڻ سڳورا ﷺ ۽ ٻيا مسلمان حج جي ڏينهن ۾ ٻاهر نڪرندا هئا ۽ حاجين سان ملي کين اسلام جي دعوت ڏيندا هئا. ان موقعي تي ابولهب جيڪي حرڪتون ڪندو هو، انهن جي ذڪر اڳي ئي ڪري چڪا آهيون.

دستاويز جو ڦاٽڻ: - انهن حالتن ۾ پورا ٿي ورهيه گذري ويا. ان کانپوءِ نبوت جي ڏهين سال محرم جي (1) مهيني ۾ دستاويز ڦاٽڻ ۽ هن قهري عهدنامي جي ختم ٿيڻ جو واقعو پيش آيو. ان جو ڪارڻ هي هو ته شروع کان ئي قريشن جا ڪي ماڻهو هن عهدنامي تي راضي هئا ته ڪي ناراض. انهن ناراض ماڻهن هن عهدنامي کي ڦاٽڻ لاءِ ڪوششون ورتيون.

ان جو اصل محرڪ بنوعامر بن لوئي قبيلي جو هشام بن عمرو نالي همراھ هو. اهو رات جي اوندھ ۾ لڪي لڪي شعب ابي طالب ۾ اناج موڪلي بني هاشم جي مدد ڪندو هو. هو زهير بن ابي

<sup>1</sup> - ان جو دليل هي آهي ته ابو طالب جي وفات صحيفو ڦاٽڻ کان ڇهه مهينا پوءِ ٿي آهي ۽ صحيح ڳالهه هي آهي ته ان جي وفات رجب مهيني ۾ ٿي آهي ۽ جيڪي ماڻهو هي چون ٿا ته ابو طالب جي وفات رمضان جي مهيني ۾ ٿي آهي اهي هي به چون ٿا ته انهن جي وفات صحيفي ڦاٽڻ کان پوءِ تقريباً اٺ مهينا ۽ ڪجهه ڏينهن بعد ٿي هئي بنهي راين ۾ اهو مهينو جنهن ۾ صحيفو ڦاٽيو ويو اهو مهينو حرمت وارو ثابت ٿئي ٿو.

اميہ مخزوميء وٽ ويو (زهير جي ماءُ عاتڪ، عبدالمطلب جي نياڻي ۽ ابوطالب جي پيڻ هئي.) هن کيس چيو ته: ”زهير! ڇا توکي اها ڳالهه وڻي ٿي ته تون مزي سان وينو ڪائين پئين ۽ تنهنجي مامي جو حال برو هجي، جيئن تون ڄاڻين به تو؟“ زهير چيو ته: ”افسوس! آئون اڪيلو ڪري به ڇا ٿو سگهان؟ جي مون سان هڪڙو ڄڻو به گڏجي وڃي ته آئون اهو دستاويز ڦاڙي ڇڏيان ها.“ هن چيو ته: هڪڙو ڄڻو ٻيو به آهي. زهير پڇيو ته: ”ڪير؟“ هن چيو ته: ”آئون.“ ان تي زهير چيو ته: ڇڱو اڃا به هڪ ڄڻو ٻيو ڳولھ. ان تي هشام، مطعم بن عدي وٽ ويو ۽ بني هاشم ۽ بنو مطلب، جيڪي عبدمناف جو اولاد هئا، تن سان مطعم جي ويجهي مائٽيءَ جو ذڪر ڪندي کيس ملامت ڪيائين ته تون ظلم ۾ قريشن سان ڪيئن ساٿ ڏنو؟ ياد رهي ته مطعم به عبدمناف جي نسل مان هو. مطعم چيو ته: ”افسوس! آئون اڪيلو ڪري به ڇا ٿو سگهان.“ هشام چيو ته: ”هڪ ماڻهو ٻيو به آهي. مطعم پڇيو ته ”ڪير؟“ هشام ورائيو ته ”آئون.“ مطعم چيو ته: پوءِ اڃا تيون ڄڻو به ڳولھ. هشام چيو ته ”اهو به ڪري چڪو آهيان.“ هن پڇيو ته ”ڪير آهي؟“ جواب ڏنائين ته ”زهير بن اميه.“ مطعم چيو ته: ”ڇڱو هاڻي چوٿون ڄڻو به ڳولھ.“ ان تي هشام بن عمرو، ابوالبختري بن هشام وٽ آيو ۽ ان سان اهڙيءَ طرح ڳالهه ٻولھ ڪيائين. ان چيو ته: ”پلا ٻيو به ڪو ان جي تائيد ڪرڻ وارو آهي؟“ هشام چيو ته: ”ها، زهير بن ابي اميه، مطعم بن عدي ۽ آئون.“ هن چيو ته: ”پوءِ پلا هاڻي پنجنون ڄڻو به ڳولھ.“ ان تي هشام زمعه بن اسود بن مطلب بن اسد وٽ ويو ۽ ساڻس ڳالهه ٻولھ ڪري بنو هاشم جي مائٽي ۽ سندن حق ياد ڏياريا. ان چيو ته: ”پلا ان ڪم لاءِ ٻيو به ڪو راضي آهي؟“ هشام هائوڪار ڪئي ۽ سڀ نالا ٻڌايا. ان کانپوءِ انهن سڀني حجرون وٽ گڏ ٿي پاڻ ۾ وعدا واعد ڪيا ته ڪنهن به حالت ۾ دستاويز ڦاڙڻو آهي. زهير چيو ته: شروعات آئون ڪندس، يعني سڀ کان پهرين آئون ڳالهائيندس.

صبح ٿيو ته سڀ ماڻهو حسب معمول پنهنجن پنهنجن ٽولن ۾ پهتا. زهير به هڪ ڀلو وڳو پائي ڀڳو. پهرين بيت الله جا ست چڪر لڳايائين ۽ پوءِ ماڻهن کي مخاطب ٿي چيائين ته: ”مڪي وارو! ڇا اسين کاڌو کائون ۽ ڪپڙا پهريون ۽ بنو هاشم تباه ۽ برباد ٿين، نه انهن کي ڪجهه وڪڙي ڏنو وڃي، نه انهن کان ڪجهه خريديو وڃي، الله جو قسم! مونکي تيستائين سک نه ايندو، جيستائين ان ظالماڻي ۽ رشتن کي ٽوڙڻ واري دستاويز کي ڦاڙي ڦٽو نه ڪري ڇڏيان.“

ابوجهل، جيڪو مسجد الحرام جي هڪ پاسي ۾ موجود هو، ان چيو ته: ”تون غلط ٻيو چوين، الله جو قسم! ان کي ڦاڙي نٿو سگهجي.“

ان تي زمعه بن اسود چيو ته: ”الله جو قسم! تون ان کان به وڌيڪ غلط ٻيو چوين، جڏهن اهو دستاويز لکيو پئي ويو، تڏهن به اسين راضي نه هئاسين.“

ان تي ابوالبختری وادی ڏني ته: ”زعه نیک پيو جوي. هن ۾ جيڪي ڪجهه لکيل آهي، ان تي نه اسين راضي آهيون، نه ان کي مڃيون ٿا.“ ان کانپوءِ مطعم بن عديءَ چيو ته: ”توهان ٻئي صحيح پيا چئو ۽ جيڪو ان جي ابتڙ ٿو ڳالهائي اهو غلط آهي. اسين الله جي آڏو ان دستاويز ۽ ان ۾ جيڪي ڪجهه لکيل آهي، تنهن کان ڌار ٿيڻ جو اظهار ٿا ڪريون.“ پوءِ هشام بن عمرو به ساڳي ڳالهه ڪئي. اها ماجرا ڏسي ابوجهل چيو ته: ”هون! اها ڳالهه رات طءُ ڪئي وئي آهي ۽ ان جو مشورو ٻئي ڪنهن هنڌ ڪيو ويو آهي.“

اوڏي مهل ابوطالب به حرم پاڪ جي هڪ پاسي ۾ ويٺو هو. سندس اچڻ جو سبب اهو هو ته الله تعاليٰ، پاڻ سڳورن ﷺ کي هن دستاويز بابت ٻڌايو هو ته ان تي الله تعاليٰ اڏوهي موڪلي آهي، جنهن ڏاڍ ۽ ڏمر ۽ مائتي توڙڻ واريون سڀ ڳالهيون کائي ڇڏيون هيون، رڳو الله عزوجل جو نالو رهڻ ڏنو هو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ اها ڳالهه پنهنجي چاچي کي ٻڌائي ۽ پاڻ قريشن کي اها ڳالهه ٻڌائڻ لاءِ آيو هو ته جيڪڏهن اها ڳالهه ڪوڙ نڪري ته اسان توهانجي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي وچان نڪري وينداسين ۽ توهان کي جيڪي وڻي سو ڪجڙو، پر جي هو سچو نڪري ته توهان بائيڪاٽ ۽ ظلم کان پاسو ڪجڙو. جڏهن قريشن کي اهو ٻڌايو ويو ته انهن چيو ته ”توهان انصاف واري ڳالهه پيا ڪريو.“ هوڏانهن ابوجهل ۽ ٻين جي وات ٺڪاڻي ختم ٿي ته مطعم بن عدي دستاويز ڦاڙڻ لاءِ اٿيو. ڇا ڏسي ته سچ بچ اڏوهيءَ ان کي ڇت ڪري ڇڏيو آهي. رڳو بِاسْمِكَ اللَّهُمَّ وڃي پڇيو آهي ۽ جتي جتي الله جو نالو هو، اهو حصو بچي ويو آهي يا اڏوهيءَ ان کي نه کاڌو آهي.

ان کانپوءِ دستاويز ڦاڙيو ويو. پاڻ سڳورا ﷺ ۽ ٻيا سڀئي شعب ابي طالب مان نڪتا ۽ مشرڪن، نبوت جو پٿرو اهڃاڻ ڏنو، پر سندن روش ساڳي رهي، جنهن جو ذڪر هن آيت ۾ ڪيل آهي ته: ﴿وَإِنْ يَرَوْا آيَةً يُعْرِضُوا وَيَقُولُوا سِحْرٌ مُّسْتَمِرٌّ﴾ (2) (القمص)

”۽ جيڪڏهن (ڪافر) ڪا نشاني ڏسندا ته منهن موڙيندا ۽ چوندا ته هيءُ (اڳ کان) هلندڙ جادو آهي. اهڙيءَ طرح مشرڪن اهو اهڃاڻ ڏسي به منهن موڙي ڇڏيو ۽ پنهنجي ڪفر جي راه ۾ ڪجهه وڪون پيون به اڳتي وڌي ويا.“ (1)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - بائيڪاٽ جو تفصيل هيٺين ڪتابن تان ورتو ويو آهي. صحيح بخاري (1/216) (548/1) - زاد المعاد (2/46) - ابن هشام (1/350، 351، 374) کان (377) - رحمة للعالمين (1/69، 70) - مختصر السيرة للشيخ عبدالله (106\_110) ۽ مختصر السيرة للشيخ محمد بن عبدالوهاب (ص: 68-73) انهن ڪتابن ۾ تورا اختلاف به آهن. اسان روايتن ۽ اهڃاڻن جي روشنيءَ ۾ صحيح نظر ايندڙ پهلو لکيا آهن.

## ابوطالب وٽ قريشن جو آخري وفد اچڻ

پاڻ سڳورن ﷺ شعبِ ابي طالب مان نڪرڻ کانپوءِ وري تبليغ جو ڪم شروع ڪيو ۽ هاڻي مشرڪن جيتوڻيڪ بائيڪاٽ ختم ڪري ڇڏيو هو. پر اهي به ساڳيءَ طرح مسلمانن تي دٻاءُ وجهڻ ۽ الله جي راه تان هٽائڻ جي ڪوشش ڪري رهيا هئا. جيستائين جناب ابو طالب جو تعلق هو ته اهو به پنهنجين پراڻين روايتن مطابق تن من سان پنهنجي پائيتي جي سهائتا ڪري رهيو هو. پر هاڻي ان جي عمر اسي ورهين کان ٽپي چڪي هئي. ڳڀل عرصي کان لڳاتار پهتل تڪليفن ۽ حادثن ۽ خاص طور تي محصوريءَ کين ٽوڙي ڇڏيو هو. ان ڪري واديءَ مان نڪرڻ جي چند مهينن بعد سخت بيمار ٿي پيو. ان وقت مشرڪن سوچيو ته جي ابوطالب گذاري ويو ۽ ان کانپوءِ اسان سندس پائيتي سان زيادتي ڪئي ته خواري ٿيندي. ان ڪري ابوطالب جي اڳيان ئي پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪو معاملو طءُ ڪري وڃي. ان سلسلي ۾ اهي ڪجهه اهڙيون رعائتون ڏيڻ لاءِ به تيار ٿي ويا. جن تي اڃا تائين راضي نه هئا. ان سلسلي ۾ سندن هڪ وفد ابوطالب وٽ حاضر ٿيو. جيڪو سندن پاران موڪليل آخري وفد هو.

ابن اسحاق وغيره جو چوڻ آهي ته جڏهن ابوطالب بيمار ٿي پيو ۽ قريشن کي خبر پئي ته سندس حالت بگڙجندي پئي وڃي ته انهن هڪ ٻئي کي چيو ته ڏسو حمزة رضی اللہ عنہ ۽ عمر رضی اللہ عنہ مسلمان ٿي چڪا آهن ۽ محمد ﷺ جو دين هر قبيلي ۾ پکڙجي چڪو آهي. ان ڪري هلو ته ابوطالب وٽ هلي کيس پنهنجي پائيتي کي ڪنهن ڳالهه تي بيهارڻ لاءِ مجبور ڪريون ۽ ان بابت ڪو عهد وٺي وٺون. ڇو ته اسان کي ڊپ آهي ته سندس وفات بعد ماڻهو اسانجي وس ۾ نه رهندا. هڪ روايت اها به آهي ته اسان کي ڊپ آهي ته سندس گذاري وڃڻ کان پوءِ محمد ﷺ کي ڪجهه ٿيو ته عرب اسان کي طعنا هڻندا ۽ چوندا ته انهن محمد ﷺ کي ڇڏي ڏنو (۽ ان جي خلاف ڪجهه ڪرڻ جي همت نه ڪيائون). پر جڏهن سندس چاچو گذاري ويو ته ان تي هلان ڪري آيا.

بهرحال قريشن جو اهو وفد ابوطالب وٽ آيو ۽ ان سان ڳالهه ٻول ڪيائون. وفد جا رڪن قريش جا معزز ترين فرد هئا. يعني عتب بن ربيعه، شيبه بن ربيعه، ابو جهل بن هشام، اميه بن خلف، ابوسفیان بن حرب ۽ ٻيا قريشن جا چڱا مڙس. جن جو ڪل تعداد پنجويهه هو.

انهن چيو ته ”اي ابوطالب! اسان ۾ اوهانجو جيڪو مرتبو آهي، اوهان ان کان پليءَ پٽ واقف آهيو ۽ هاڻي اوهان جنهن حالت مان گذري رهيا آهيو. اها به اوهانجي سامهون آهي. اسان کي ڊپ آهي ته هي اوهان جي پڄاڻيءَ جا ڏينهڙا آهن ۽ هوڏانهن اسانجي ۽ اوهانجي پائيتي جي وچ ۾ جيڪو

معاملو هلي رهيو آهي، ان کان به اوهان واقف آهيو. اسين چاهيون ٿا ته اوهان ان کي گهراڻي سندس باري ۾ اسان کان ڪجهه واعدو وعيد وٺي وٺو ۽ اسانجي باري ۾ ڪانئس ڪو وعدو وٺي ڏيو. يعني هو اسان کان بچيل رهي ۽ اسين ڪانئس. هو اسانکي اسانجي دين تي ڇڏي ڏي ۽ اسين کيس سندس دين تي ڇڏي ڏيون.“

ان تي ابوطالب پاڻ سڳورن ﷺ کي سڏايو ۽ فرمايو ته ”پائيتيا! هي تنهنجي قوم جا عزت وارا ماڻهو آهن ۽ تولا آيا آهن. هي چاهين ٿا ته هڪٻئي کان ڪجهه وعدا وعيد ڪري وڃن.“ ان کانپوءِ ابوطالب سندن آڇ جو ذڪر ڪيو ته ڪا به ذر هڪٻئي تي اعتراض نه ڪندي.

جواب ۾ پاڻ سڳورن ﷺ وفد کي مخاطب ٿيندي فرمايو ته: ”اوهان اهو ٻڌايو ته جي مان هڪ اهڙي ڳالهه آڇيان جنهن کي مڃڻ سان اوهان عرب جا بادشاهه ٿي وڃو ۽ عجم اوهانجي هٿ هيٺ اچي وڃي ته ان سلسلي ۾ اوهانجي راءِ ڇا هوندي؟“ ڪن روايتن ۾ اهو چيو ويو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ابوطالب کي مخاطب ٿي فرمايو ته: ”مان انهن کان هڪ اهڙي ڳالهه گهران ٿو. جنهن کي هي مڃين ته عرب سندن فرمان هيٺ اچي وڃي ۽ عجم سندن ڏن ڀرو ٿي پوي.“ هڪ ٻي روايت ۾ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”چاچا سائين! توهان انهن کي هڪ اهڙي ڳالهه جي دعوت ڇو نٿا ڏيو، جيڪا سندن حق ۾ بهتر آهي؟“ ان پڇيو ته: ”تون کين ڪهڙي ڳالهه جي دعوت ڏيڻ چاهين ٿو؟“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”آئون هڪ اهڙي ڳالهه جي دعوت کين ڏيڻ چاهيان ٿو، جنهن جا قائل اڳ ۾ ئي وڃن ته عرب سندن تابع ٿي وڃن ۽ عجم تي سندن بادشاهت قائم ٿي وڃي.“ ابن اسحاق جي هڪ روايت آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”توهان رڳو هڪ ڳالهه مڃيو، جنهن جي ڪري عرب جا بادشاهه ٿي ويندا ۽ عجم اوهانجي هٿ هيٺ اچي ويندو.“

بهرحال جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ اها ڳالهه ڪئي ته هو توري دير لاءِ سوچ ۾ پئجي ويا ۽ منجهي پيا. اهي اچرج ۾ هئا ته ان آڇ کي ڪيئن رد ڪجي، جا لاپائتي به آهي؟ آخرڪار ابو جهل چيو ته: ”ڇڏو اها ڳالهه ٻڌاءِ. تنهنجي پيءُ جو قسم اهڙي هڪ ته ڇا پر ڏهه ڳالهيون ڪرين ته به اسين مڃڻ لاءِ تيار آهيون.“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”توهان لا اله الا الله چئو ۽ الله کان سواءِ جنهن کي به پوڄيو ٿا، ان کي ڇڏي ڏيو.“ ان تي انهن تاڙيون وڄائي چيو ته: ”محمد ﷺ! تون چاهين ٿو ته سڀني معبودن جي جڳهه تي هڪ الله کي ويهاري ڇڏين؟ واقعي تنهنجو معاملو اچرج جوڳو آهي.“ پوءِ پاڻ ۾ چيائون ته ”الله جو قسم! هي ماڻهو توهان جي ڪابه ڳالهه مڃڻ لاءِ تيار نه آهي، تنهنڪري هلو ۽ پنهنجي اباڻي دين تي ڄميا رهو. تانجو الله اسان ۽ هن جي وچ ۾ فيصلو ڪري وڃهي.“ ان کان پوءِ اهي موٽي ويا.

ان واقعي کانپوء انهن بابت هي آيتون لتيون:

﴿ص وَالْقُرْآنِ ذِي الذِّكْرِ (1) بَلِ الَّذِينَ كَفَرُوا فِي عِزَّةٍ وَشِقَاقٍ (2) كَمْ أَهْلَكْنَا مِنْ قَبْلِهِمْ مِنْ قَرْنٍ فَنَادُوا  
وَلَاتَ حِينَ مَنَاصٍ (3) وَعَجِبُوا أَنْ جَاءَهُمْ مُنْذِرٌ مِنْهُمْ وَقَالَ الْكَافِرُونَ هَذَا سَاحِرٌ كَذَّابٌ (4) أَجْعَلِ الْآلِهَةَ إِلَهًا  
وَاحِدًا إِنَّ هَذَا لَشَيْءٌ عُجَابٌ (5) وَانطَلَقَ الْمَلَأُ مِنْهُمْ أَنْ آمَسُوا وَاصْبِرُوا عَلَى آلِهَتِكُمْ إِنَّ هَذَا لَشَيْءٌ يُرَادُ (6) مَا  
سَمِعْنَا بِهَذَا فِي الْمِلَّةِ الْآخِرَةِ إِنْ هَذَا إِلَّا اخْتِلَافٌ (7)﴾ (ص)

”ص (هن) قرآن نصيحت (ڏيڻ) واري جو قسم آهي (ته جنهن دين ڏانهن سڏين ٿو، سو سچ آهي). بلڪ ڪافر وڏائيءَ ۽ مخالفت ۾ (پيل) آهن. ڪانئن اڳ گهڻائي جڳ هلاڪ ڪياسون، پوءِ دانھون ڪرڻ لڳا ۽ اهو چوٽڪاري جو وقت نه هو. ۽ منجهانئن هڪ ڊيجاريندڙ وتن آيو ته عجب ڪرڻ لڳا ۽ (اهي) ڪافر چوڻ لڳا ته، هيءُ (شخص) جادوگر ڪوڙو آهي. ڀلا (ڏسو ته) سڀني معبودن کي هڪ معبود ڪيائين؟ بيشڪ هي ڏاڍي عجيب ڳالهه آهي ۽ انهن جا وڏا اهو چوندي اٿيا ته هلو ۽ پنهنجن معبودن (جي پوڄا) تي پڪا رهو، بيشڪ هن (نئين دين ۾ ڪو) غرض رکيو ويو آهي. اها (ڳالهه) پوئين دين ۾ (ڪڏهن) نه ٻڌيسون، هيءُ ته رڳو ناهه آهي. (1)

\_\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (419\_417/1) مختصر السيره للشيخ عبدالله (ص: 91).



## ڏک جو سال (عام الحزن)

**ابو طالب جي وفات:-** ابو طالب جي بيماري وڌي وئي ۽ آخرڪار پاڻ گذاري ويو. سندن وفات شعب ابی طالب جي محصوری ختم ٿيڻ کان ڇهه مهينا پوءِ نبوت جي ڏهين سال رجب جي مهيني ۾ ٿي. (1) هڪ قول اهو به آهي ته پاڻ، بيبي خديجه رضي الله عنها جي وفات کان رڳو ٽي ڏينهن پهرين گذاري ويو.

صحيح بخاريءَ ۾ حضرت مسيب رضي الله عنه کان آيل آهي ته جڏهن ابو طالب جي وفات جو وقت ويجهو آيو ته پاڻ سڳورن عليه السلام چيو ته: "ڇاچا سائين! اوهان لا اله الا الله چئي ونو. رڳو هڪ ڪلمو، جنهن جي وسيلي آئون الله وٽ اوهان لاءِ حجت ڪري سگهان." ابو جهل ۽ عبدالله بن اميه چيو ته: "ابو طالب! ڇا عبدالطلب جي ملت کان منهن ڦيريندين؟" پوءِ اهي ٻئي لاڳيتو ساڻن ڳالهائيندا رهيا. تانجو آخري ڳالهه، جيڪا ابو طالب ماڻهن کي چئي، اها هيءَ هئي ته: "عبدالطلب جي ملت تي." پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "جيسٽائين مون کي جهليو نه وڃي، اوهان جي چوٽڪاري جي لاءِ دعا ڪندو رهندس." ان تي هيءَ آيت لٿي ته:

﴿مَا كَانَ لِلنَّبِيِّ وَالَّذِينَ آمَنُوا أَنْ يَسْتَغْفِرُوا لِلْمُشْرِكِينَ وَلَوْ كَانُوا أُولِي قُرْبَىٰ مِنْ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُمْ أَصْحَابُ الْجَحِيمِ (113)﴾ (التوبة)

”پيغمبر ۽ مؤمنن کي مشرڪن لاءِ ڪين (هن ڳالهه جي) پڌري ٿيڻ کان پوءِ ته اهي دوزخي آهن بخشش گهرڻ نه جڳائي جيتوڻيڪ مائٽي وارا هجن. ۽ هيءَ آيت لٿي ته:

﴿إِنَّكَ لَا تَهْدِي مَنْ أَحْبَبْتَ (56)﴾ (القصص)

”اي پيغمبر! بيشڪ تون جنهن کي گهرين تنهن کي هدايت نه ٿو ڪري سگهين.“ (2) هتي اها ڳالهه ورجائڻ جي ضرورت ڪانهي ته ابو طالب، پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڪيتري حمايت ۽ حفاظت ڪئي هئي. هو دراصل مڪي جي وڏن ۽ احمقن جي حملن کان بچاءُ لاءِ اسلام لاءِ هڪ قلعو هو، پر بذات خود پنهنجن ابن ڏاڏن جي دين تي قائم رهيو. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ حضرت عباس بن عبدالطلب کان روايت ڪيل آهي ته ان پاڻ سڳورن عليه السلام کان پڇيو ته: ”توهان

<sup>1</sup> - سيرت جي ڪتابن ۾ وڏو اختلاف آهي ته ابو طالب جي وفات ڪهڙي مهيني ۾ ٿي. اسان رجب انڪري لکيو آهي جو گهڻن ماخذن ۾ اتفاق آهي ته سندن وفات شعب ابی طالب مان نڪرڻ کان ڇهه مهينا پوءِ ٿي ۽ محصوريءَ جي شروعات نبوت جي ستين سال جي محرر جي چنڊ رات کان ٿي. ان حساب سان سندن وفات جو زمانو نبوت جي ڏهين سال رجب جي مهيني ۾ ئي بيهي ٿو.

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (548/1).

پنهنجي چاچي (ابو طالب) جي ڪهڙي ڪم آيا؟ جو هو توهانجي حفاظت ڪندو هو ۽ توهان جي ڪارڻ (پين تي) ڪاوڙيو هو (۽ انهن سان وڙهي پوندو هو) " پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هو دوزخ جي هڪ مٿاڇري (محفوظ) جڳهه تي آهي ۽ جي آئون نه هجان ها ته هو دوزخ جي سڀ کان اونهي ڪڏي ۾ هجي ها." (1)

ابو سعيد خدری رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته هڪ ڀيري پاڻ سڳورن ﷺ وٽ سندن چاچي جو ذڪر نڪتو ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ممڪن آهي ته قيامت جي ڏينهن کين منهنجي شفاعت فائوڊو پهچائي ۽ کين دوزخ جي هڪ گهٽ اونهي جڳهه تي رکيو وڃي. جيئن باهه رڳو سندن گوڏن تائين پهچي سگهي." (2)

**بيبي خديجه رضي الله عنها جوار رحمت ۾:** - جناب ابو طالب جي وفات کان ٻه مهينا پوءِ يا رڳو ٽي ڏينهن پوءِ (ان ۾ اختلاف آهي) ام المؤمنين بيبي خديجه رضي الله عنها رحلت ڪئي. سندن وفات، نبوت جي ڏهين سال رمضان جي مهيني ۾ ٿي. ان وقت سندن عمر 65 سال هئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي عمر پنجاهه ورهيه هئي. (3)

بيبي خديجه رضي الله عنها جو وجود باسعادت، پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ الله تعاليٰ جي نعمت جي برابر هو. بيبي سڳوري رضي الله عنها جو ساٿ پنجويهه ورهيه پاڻ سڳورن ﷺ سان رهيو ۽ ان دوران پاڻ سڳورن ﷺ جي ڏک سور تي پاڻ تڙپي اٿندي هئي. ڏکين حالتن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي حوصلو ڏيندي هئي. تبليغ جي ڪم ۾ مدد ڪندي هئي ۽ ڏکئي جهاد جي سختين ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏوگڏ رهي ۽ پنهنجي جان ۽ مال سان پاڻ سڳورن ﷺ جي مدد ڪيائين. پاڻ سڳورن ﷺ جو ارشاد آهي ته "جنهن وقت ماڻهن مونکان انڪار ڪيو، ان وقت هن مون تي ايمان آندو. جنهن وقت ماڻهن مونکي ڪوڙو چيو، ان وقت منهنجي تصديق ڪئي. جنهن وقت ماڻهن مونکي (مال کان) محروم ڪيو، ان وقت مونکي پنهنجي مال ۾ شريڪ ڪيو ۽ الله مونکي ان مان اولاد ڏنو ۽ ٻين گهروارين مان نه ڏنو." (4)

صحيح بخاريءَ ۾ ابو هريرة رضی اللہ عنہ کان روايت آهي ته حضرت جبرئيل عليه السلام، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيو ۽ فرمايائين ته: "يا رسول الله ﷺ خديجه رضي الله عنها تشریف ڪئي اچي رهي آهي، وٽن هڪ ٿانو آهي، جنهن ۾ ٻوڙ يا کاڌو يا ڪا پيئڻ جي شيءِ آهي. جڏهن بيبي

1 - صحيح بخاري (548/1).

2 - صحيح بخاري (548/1).

3 - رمضان ۾ وفات واري ڳالهه ابن جوزيءَ تليق الفهوم جي (ص: 7) تي ۽ علامه منصورپوريءَ رحمة للعالمين (164/2) تي لکي آهي.

4 - مسند احمد (118/6).

سڳوري رضي الله عنها، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتي ته پاڻ سڳورن ﷺ، کين رب پاڪ جا سلام ڏنا ۽ جنت ۾ موتين جي هڪ محل جي بشارت ڏني، جنهن ۾ نه گوڙ هوندو نه پریشاني نه ڪا تڪاوت." (1)

**ڏکن جو دور:** - اهي ٻئي ڏڪارا واقعا رڳو ڪجهه ڏينهن ۾ ٿيا، جنهن سان پاڻ سڳورن ﷺ جي دل ۾ غم ۽ الم جا احساس پيدا ٿي پيا ۽ انهن کانپوءِ قوم پاران به مصيبتن جو سلسلو هلي پيو. ڇو ته ابو طالب جي وفات کانپوءِ سندن همت وڌي وئي. پاڻ سڳورا ﷺ انهن کان مايوس ٿي طائف ڏانهن ويا ته متان اتي جا ماڻهو دعوت قبولين، پاڻ سڳورن ﷺ کي پناهه ڏين ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي قوم جي خلاف مدد ڪن. پر اتي نه ڪو پناهه ڏيندڙ مليو نه ئي ڪو مددگار. ماڳهين انهن پاڻ سڳورن ﷺ کي سخت اهڃ رسايو ۽ ساڻن اهڙي بدسلوڪي ڪئي، جهڙي پنهنجي قوم به نه ڪئي هئي. (تفصيل اڳيان ڏنل آهي)

هتي اها ڳالهه ٻڌائڻ مناسب ٿيندي ته مڪي وارن جنهن طرح پاڻ سڳورن ﷺ جي خلاف پاڻ سڳورن ﷺ سان ڏاڍايون ڪيون ٿي، ائين ئي پاڻ سڳورن ﷺ جي ساٿين سان به ڪري رهيا هئا. جيئن پاڻ سڳورن ﷺ جو همراز حضرت ابوبڪر صديق رضه مڪو ڇڏڻ تي مجبور ٿي ويو ۽ حبشه ڏانهن اڪيلو نڪري کڙو ٿيو، پر برڪ عماد پهتو ته ابن دغنه سان ملاقات ٿين ۽ اهو کين پنهنجي پناهه ۾ مڪي واپس وٺي آيو. (2)

ابن اسحاق جو بيان آهي ته جڏهن ابو طالب گذاري ويو ته قرين، پاڻ سڳورن ﷺ کي اهڙا اهڃ رسايا، جن بابت ابو طالب ڪڏهن سوچي به نه سگهي ها. ويندي قرين جي هڪ احمق سامهون اچي پاڻ سڳورن ﷺ جي سر مبارڪ تي مني وجهي ڇڏي. پاڻ سڳورا ﷺ ان حالت ۾ گهر آيا جو سندن سر مبارڪ ۾ مني پيل هئي. سندن هڪ نياڻيءَ اتي مني ڏوتي. پاڻ ڏوٿيندي روئندي به وئي ۽ پاڻ سڳورا ﷺ کين آت ڏيندا ويا ته ابو طالب جي وفات تائين قرين مون سان اهڙي ڪا بدسلوڪي نه ڪئي آهي، جيڪا مونکي ناگوار گذري هجي. (3)

اهڙين لاڳيتين مصيبتن جي ڪري پاڻ سڳورن ﷺ ان سال جو نالو ئي "عام الحزن" يعني ڏک جو سال رکي ڇڏيو ۽ اهو سال تاريخ ۾ ان ئي نالي سان مشهور ٿي ويو.

1 - صحيح بخاري - (539/1).

2 - اڪبر شاه نجيب آباديءَ لکيو آهي ته اهو واقعو ساڳئي سال ٿيو. ڏسو تاريخ اسلام (120/1) اصل واقعي جو سڄو تفصيل ابن هشام (372/1 کان 374) ۽ صحيح بخاري (552/1، 553) تي ڏنل آهي.

3 - ابن هشام (416/1).

**بيبي سودة رضي الله عنها سان شادي:-** ان ئي نبوت جي ڏهين سال جي شوال مهيني ۾ بيبي سودة بنت زمعه رضي الله عنها سان شادي ڪئي. جنهن شروعاتي دور ۾ اسلام قبوليو هو ۽ حبش ڏانهن ڪيل بي هجرت ۾ شامل هئي. سندن مڙس جو نالو سكران بن عمرو رضي الله عنه هو. ان به شروع ۾ ئي اسلام قبوليو هو ۽ بيبي سودة رضي الله عنها ساڻن گڏ ئي حبش ڏي هجرت ڪئي هئي. پر هو حبشه ۾ ئي يا ڪن جو چوڻ مطابق مڪي ۾ فوت ٿي ويو. ان کانپوءِ جڏهن بيبي سودة رضي الله عنها جي عدت پوري ٿيڻ تي پاڻ سڳورن عليه السلام کين شاديءَ جو پيغام موڪليو ۽ پوءِ شادي ٿي وئي. ڪجهه ورهين کانپوءِ ان پنهنجو وارو بيبي عائشه رضي الله عنها کي هب ڪري ڇڏيو هو. (1)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - رحمة للعالمين (165/2) تلقيح الفهوم (ص:6).

## اوائلي مسلمانن جو صبر ۽ ثابت قدمي

هن منزل تي پهچي سنئون سڌو ماڻهو به اچرج کان پڇي ويهي ٿو ته آخر اهي ڪهڙا ڪارڻ هئا، جن مسلمانن کي معجزاتي حد تائين ثابت قدم رکيو. آخر مسلمانن ڪهڙيءَ طرح انهن اڻ ڪٽ ظلمن تي صبر ڪيو، جن کي ٻڌي لڱ ڪانڊارجي ويندا آهن ۽ دل جي ڌڙڪن وڌي ويندي آهي! مناسب ٿيندو ته انهن ڪارڻن جو مٿاڇرو جائزو ورتو وڃي.

1. انهن ڪارڻن مان سڀ کان اهم الله جي هيڪڙائي تي ايمان ۽ ان جي نيڪ نيڪ معرفت آهي. ڇو ته جڏهن ايمان جي تازگي دل ۾ گهر ڪري وڃي ته انسان جبلن سان ٽڪرائجي پوي ٿو ۽ کانئن زور ٿي وڃي ٿو. جيڪو ماڻهو اهڙي پڪي ايمان ۽ ڪامل يقين وارو ٿي وڃي ته اهو دنيا جي مشڪلن کي، ڀلي اهي ڪيڏيون به گهڻيون هجن ۽ ڪهڙيون به گريون ۽ خطرناڪ ۽ سخت هجن، پنهنجي ايمان جي مقابلي ۾ ڪڪ جيتري به اهميت نٿو ڏي. ان ڪري مومن پنهنجي ايمان جي پڪائي ۽ يقين جي تازگي ۽ عقيدتي جي بشاشت سبب انهن مشڪلن جي ڪابه پرواهه نٿو ڪري، ڇو ته:

﴿فَأَمَّا الزُّبَدُ فَيَذْهَبُ حُفَاءً وَأَمَّا مَا يَنْفَعُ النَّاسَ فَيَمْكُثُ فِي الْأَرْضِ (13)﴾ (الرعد)

”پر گج ته سڪي (ختم ٿي) ويندي آهي، ۽ جا (شيءَ) ماڻهن کي نفعو ڏيندي آهي سا زمين ۾ رهندي آهي. اهڙي طرح الله مثال ڏيندو آهي.“

2. پرڪشش اڳواڻي: پاڻ سڳورا ﷺ جيڪي مسلمانن جا ٿي نه پر سڄي انسان ذات جا سڀ کان وڏا رهنما هئا، اهڙي جسماني سونهن، نفسياتي ڪمال، ڪريماڻن اخلاقن، عظيم ۽ شريفانن عادتن جا مالڪ هئا جو دل پاڻمرادو انهن ڏانهن ڇڪجي ويندي هئي، ڇو ته جن ڪمالن تي ماڻهو جان گهوريندا آهن، اهي پاڻ سڳورن ﷺ ۾ سڀ کان وڌيڪ موجود هئا. پاڻ سڳورا ﷺ شرف ۽ عظمت، فضل ۽ ڪمال جي سڀ کان مٿاهين چوٽيءَ تي بيٺل هئا. عفت ۽ امانت، صدق ۽ صفا ۽ بين مڙن ٿي چڱن ڪمن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي مٿاهون مقام حاصل هو. دوست ته دوست، پر دشمن به پاڻ سڳورن ﷺ جي انفراديت تي شڪ نه ڪندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ جي زبان مان جيڪا ڳالهه نڪرندي هئي، دشمن به ان کي سچ سمجهندا هئا. واقعا ان ڳالهه جي شاهدي ڏيندا هئا. هڪ ڀيري قريشن جا ٽي اهڙا ماڻهو اچي گڏ ٿيا، جن مان هر هڪ ٻين ٻن کان لڪي قرآن مجيد ٻڌندو هو. پر پوءِ تنهي جو راز کلي ويو. انهن ٽن مان هڪ ابوجهل هو. ٿئي گڏيا ته هڪ ابوجهل کان پڇيو ته ٻڌاءِ تو جيڪي ڪجهه محمد ﷺ کان ٻڌو، ان بابت تنهنجي ڪهڙي راءِ آهي؟ ابوجهل چيو ته: ”مون ڇا ٻڌو آهي. ڳالهه اصل ۾ اها آهي ته اسان ۽ بنو عبدمناف شرف ۽ عظمت ۾ هڪ ٻئي سان چٽا

پيٽي ڪئي. انهن، غريبن ۽ مسڪينن کي ڪارايو ته اسان به ڪارايو. انهن، انعام ۾ ڪنهن کي سواريون ڏنيون ته اسان به ڏنيون. انهن ماڻهن کي سوکڙيون ڏنيون ته اسان به ڏنيون. پر جڏهن اسان هڪ ٻئي جي صفا برابر ٿي وياسين ۽ اسانجي ۽ انهن جي حيثيت ريس جي مقابلي ۾ بينل بن گهوڙن جهڙي ٿي وئي ته هاڻي عبد مناف وارا چون ٿا ته اسان ۾ هڪ نبي آهي، جنهن وٽ آسمان کان وحي ايندي آهي. ڀلا ٻڌايو، اسان اهڙو ماڻهو ڪٿان آڻيون؟ الله جو قسم! اسان ان ماڻهوءَ تي ڪڏهن به ايمان نه آڻينداسين ۽ ان جي ڪڏهن به تصديق نه ڪنداسين. (1) ان ڪري ئي ابوجهل چوندو رهندو هو ته "اي محمد ﷺ! اسان توکي ڪوڙو نٿا چئون، پر تو جيڪي ڪجهه آندو آهي، ان کان انڪار ٿا ڪريون." ان بابت هيءَ آيت لٿي ته:

﴿فَإِنَّهُمْ لَا يُكَذِّبُونَكَ وَلَكِنَّ الظَّالِمِينَ بِآيَاتِ اللَّهِ يَجْحَدُونَ﴾ (33) (الانعام)

"پوءِ اهي نه (رڳو) توکي ڪوڙو چوندا آهن پر ظالم الله جي آيتن جو انڪار ڪندا آهن". (2)  
ان واقعي جو تفصيل اچي چڪو آهي ته هڪ ڏينهن ڪافرن، پاڻ سڳورن ﷺ تي پيرا لعن طعن ڪيو. ٽئين پيري پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: اي قريشيو! آئون توهان لاءِ ذبح (جو حڪم) ڪڍي آيو آهيان، ته اها ڳالهه انهن تي ايترو اثر ڪري وئي جو جيڪو ماڻهو وير ۾ سڀ کان وڌيل هو، اهو هيٺائين وٺي پاڻ سڳورن ﷺ کي راضي ڪرڻ لڳو. اهڙيءَ طرح اهو تفصيل به آيل آهي ته جڏهن سجدي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ تي اوجھري وڌي وئي ۽ پڻ سڳورن ﷺ سجدي مان اٿڻ کان پوءِ ان حرڪت ڪرڻ واري کي پٽيو ته انهن جا تهڪ بند ٿي ويا ۽ منجهن ڏهڪاءُ پئجي ويو. کين پڪ ٿي وئي ته هاڻي هو بچي نه سگهندا.

اهو واقعو به ٻڌائي چڪا آهيون ته پاڻ سڳورن ﷺ ابولهب جي پٽ عتبه کي پٽيو ته کيس پڪ ٿي وئي ته هو هاڻي بچي نه سگهندو، تڏهن ئي هن شام جي سفر دوران شينهن ڏسندي ئي چيو ته: "والله! محمد ﷺ مونکي مڪي ۾ رهندي به قتل ڪري ڇڏيو."

ابي بن خلف جو واقعو آهي ته هو هر هر پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ جون ڌمڪيون ڏيندو رهندو هو. هڪ پيري پاڻ سڳورن ﷺ کيس ورائيو ته (تون نه) پر مان توکي قتل ڪندس، انشاءَ الله. ان کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ احد واري لڙائيءَ واري ڏينهن اُٻي جي ڳچيءَ تي نيزو هنيو ته جيتوڻيڪ کيس ٿورڙي رهڙ آئي، پر اُٻي هر هر اهو چوندو ويو ته محمد ﷺ مونکي مڪي ۾ چيو

<sup>1</sup> - ابن هشام (316/1).

<sup>2</sup> - ترمذي: تفسير سورة الانعام (132/2).

هو ته آئون توکي قتل ڪندس، ان ڪري جي هو مون تي ٿڪي ها ته به آئون مري پوان ها. (1) (وڌيڪ تفصيل اڳتي ايندو)

ساڳيءَ طرح هڪ ڀيري حضرت سعد بن معاذ، مڪي ۾ اميه بن خلف کي چيو ته: مون، پاڻ سڳورن ﷺ کي چوندي ٻڌو آهي ته مسلمان توکي قتل ڪندا ته اهو ٻڌي اميه ڊڄي ويو ۽ هن قسم ڪنيو ته هو مڪي کان ٻاهر نه نڪرندو، پر جڏهن بدر واري جنگ جي موقعي تي ابوجهل جي زور ڀرڻ تي ويو ته هن مڪي جو سڀ کان تڪو اڻ خريد ڪيو، جيئن خطري جي حالت ڏسندي ئي ڀڄي وڃي. هوڏانهن کيس جنگ تي ويندو ڏسي سندس زال چيس ته "ابو صفوان! تنهنجي يثربي ڀاءُ جيڪي ڪجهه چيو هو، سو وساري ڇڏيئي ڇا؟ ابو صفوان وراڻيو ته "نه پر الله جو قسم! آئون رڳو ٿورو پري تائين ويندس." (2)

اهو ته پاڻ سڳورن ﷺ جي ويرين جو حال هو. باقي پنهنجن صحابن ۽ ساٿين جي لاءِ ته پاڻ سڳورا ﷺ دل ۽ جان جي حيثيت رکندا هئا. انهن جي دلين جي گهراڻيءَ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ سڄي محبت هوندي هئي.

فصورتہ هيولى كل جسم و مغناطيس افئدة الرجال

”پاڻ سڳورن ﷺ جي صورت هر جسم جي لاءِ پُرڪشس هئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جو وجود هر دل جي لاءِ مقناطيس.“

ان محبت ۽ جانثاريءَ ڪارڻ صحابه سڳورن کي اهو برداشت نه هو ته پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪا رهڙ به اچي يا سندن پير ۾ ڪو ڪنڊو به لڳي وڃي، ڀلي پوءِ سندن ڪنڌ تي ڇو نه ڪڍجي وڃن.

هڪ ڏينهن ابوبڪر صديق رضه کي ڏاڍو ماريو ويو. عتبہ بن ربيعه سندن ويجهو اچي کين چتليون لڳل جوتن سان مارڻ لڳو. منهن تي خاص طور تي ڌڪ هنياڻين، پوءِ پيٽ تي چڙهي وينو. حالت اها هئي جو (حضرت ابوبڪر رضه جو) چهرو رت سان ڀرجي ويو. پوءِ سندن قبيلي بنو تميم وارا کين ڪپڙي ۾ ويڙهي گهر کڻي ويا ۽ سندن حياتيءَ کان آسرو پلي وينا. پر ڏينهن جي ڀڄائيءَ تي هن ڳالهائين ۽ پهرين پڇيو ته: پاڻ سڳورن ﷺ جو ڇا ٿيو؟ ان تي بنو تميم وارن کين ڌڙڪا ڏنا. پوءِ سندن ماءُ ام الخير کي اهو چئي روانا ٿي ويا ته هن کي ڪجهه ڪارائي پياري ڇڏجان. جڏهن رڳو سندن امڙ اتي وڃي بچي ته حضرت ابوبڪر رضه تي ڪجهه ڪاڻڻ پيئڻ لاءِ زور پريائين، پر هو اهو ئي چوندو رهيو ته پاڻ سڳورن ﷺ جو ڇا ٿيو؟ آخرڪار ام الخير چيو ته "مونکي تنهنجي

<sup>1</sup> - ابن هشام (84/2).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (563/2).

ساتيءَ بابت ڄاڻ ڪانهي. "ابوبڪر رضي الله عنه چيو ته: "ام جميل بنت خطاب وٽ وڃ ۽ ان کان خبر ڄار وٺي اچ." پاڻ، ام جميل وٽ وئي ۽ چيائين ته "ابوبڪر رضي الله عنه توکان محمد بن عبدالله صلي الله عليه وسلم بابت پڇڻ لاءِ موڪليو آهي." ام جميل ورائيو ته "آئون نه ڪو ابوبڪر کي ڄاڻان، نه ئي محمد بن عبدالله صلي الله عليه وسلم کي سڃاڻان. باقي تون چاهين ته آئون توسان گڏ تنهنجي پٽ وٽ هلي سگهان ٿي." ام الخير چيو ته ائين به نڪي آهي. پوءِ ام جميل، ان کي پاڻ سان گڏ وٺي آئي. ڇا ڏنائين ته ابوبڪر رضي الله عنه ڏاڍي تڪليفده حالت ۾ پيل هو. پوءِ ويجهو ٿي ته سندن دانهن نڪري وئي ۽ چوڻ لڳي ته "جنهن قوم توهانجي اها حالت ڪئي آهي، اها پڪ بيقدري ۽ ڪافر قوم آهي. مونکي اميد آهي ته الله تعاليٰ اوهانجو پلاٽد انهن کان ضرور وٺندو." ابوبڪر رضي الله عنه پڇيو ته: "پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم جو ڇا ٿيو؟" ان ورائيو ته: "اوهانجي ماءُ پئي ٻڌي." حضرت ابوبڪر رضي الله عنه چيو ته: "ڪا ڳالهه نه آهي." تنهن تي پاڻ ٻڌايائين ته "پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم صحيح سلامت آهن." پڇيو ويو ته ڪٿي آهن؟ ورائيائين ته "ابن ارقم جي گهر ۾ آهن." حضرت ابوبڪر رضي الله عنه فرمايو ته: "جڳو ته پوءِ آئون الله جو قسم! ڪٿي ٿو چوان ته جيسين پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم جي خدمت ۾ نه پهچندس، تيسين نه ڪائيندس ۽ نه پيئندس." ان کانپوءِ ام الخير ۽ ام جميل اتي ئي رهيون. جڏهن هئو مئو ٿريو ۽ خاموشي ڄاڻجي وئي ته اهي ٻئي ڄڻيون، حضرت ابوبڪر رضي الله عنه کي وٺي اتان هليون. پاڻ انهن جي سهاري تي هليو ۽ اهڙيءَ طرح انهن، کين پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم جي خدمت ۾ پهچايو. (1)

محبت ۽ جان گهورڻ جا ڪجهه ٻيا به نادر واقعا اسين پنهنجي هن ڪتاب ۾ موقعي سر ڏينداسين. خاص طور تي جنگ احد جي واقعن ۽ حضرت خبيب رضي الله عنه جي حالتن ۾.

3. ذميداريءَ جو احساس:- صحابه سڳورا ڄاڻندا هئا ته مٽيءَ مان ٺهيل انسان تي ڪيڏيون نه ڳريون ذميداريون آيل آهن، جن کان پاسيرو ٿي نڪري وڃڻ ممڪن ڪونهي. ڇو ته انهن کي نظرانداز ڪرڻ جا نتيجا موجوده ڏکيائين کان به وڌيڪ اڳرا ۽ موتمار نڪرندا ۽ ان کانپوءِ کين ۽ سڄي انسان ذات کي جيڪو نقصان رسندو، اهو ايترو شديد هوندو جو هن ذميداريءَ جي قبولڻ وارو نقصان ان جي مقابلي ۾ ڪابه اهميت نه رکندو.

4. آخرت تي ايمان:- جيڪو ڄاڻايل احساس ذميداريءَ کي تقويت جو باعث هو. صحابه سڳورا ان ڳالهه تي پختو يقين رکندا هئا ته کين ٻنهي جهانن جي مالڪ آڏو پيش پوڻو آهي. پوءِ سندن ننڍن وڏن، معمولي ۽ غير معمولي، هر طرح جي عملن جو پڇاڻو ٿيندو. ان کانپوءِ يا ته نعمتن سان ڀريل جنت سدائين لاءِ ملندي يا عذاب سان پڙڪندڙ دوزخ. ان يقين جو نتيجو اهو هو جو صحابه سڳورا

1 - البدايه والنهايه (30/3).



پنهنجي حياتي اميد ۽ ڊپ جي حالت ۾ گذاريندا هئا، يعني پنهنجي پاڻهار جي رحمت ۾ اميد رکندا هئا ۽ ان جي عذاب جو ڊپ پڻ ۽ انهن جي حالت اها ئي هوندي هئي، جهڙي هن آيت ۾ ٻڌائي وئي آهي ته:

﴿وَالَّذِينَ يُؤْتُونَ مَا آتَوْا وَقُلُوبُهُمْ وَجَلَةٌ أَنَّهُمْ إِلَىٰ رَبِّهِمْ رَاجِعُونَ﴾ (60) ﴿المؤمنون﴾

”۽ اهي جيڪي (اهو) ڏيندا آهن جيڪي (سندس وات ۾) ڏنائون هن حال ۾ جو سندن دليون هن ڪري ڏڪنديون آهن ته اهي پنهنجي پاڻهار ڏانهن موٽڻ وارا آهن.“

کين ان ڳالهه جي به پڪ هئي ته دنيا پنهنجن سمورين نعمتن توڙي مصيبتن سميت به آخرت جي مقابلي ۾ مچر جي هڪ پر برابر به نه آهي. يقينن ايڏو پختو هو جو ان جي سامهون دنيا جون سڀ مشڪلون، مشقتون ۽ تلخيون ڪجهه نه هيون. ان ڪري انهن تڪليفن کي ڪابه حيثيت نه ڏيندا هئا. 5. انهن ئي ڏکين حالتن ۾ اهڙيون سورتون ۽ آيتون نازل ٿي رهيون هيون، جن ۾ نوس ۽ پرڪشش انداز ۾ اسلام جا بنيادي اصول ٻڌايا پئي ويا، جن تي ان وقت جي اسلامي دعوت جو بنياد هو. انهن آيتن ۾ مسلمانن کي اهڙا بنيادي نقطا ٻڌايا پئي ويا، جن تي الله تعاليٰ عالم انسانيت جي سڀ کان عظيم انساني معاشري جي تعمير ۽ تشڪيل لاءِ مقرر ڪرڻ جو فيصلو ڪيو هو. انهن ئي آيتن ۾ مسلمانن جي جذبن ۽ احسانن کي ثابت قدميءَ لاءِ اپاريو پئي ويو. ان لاءِ مثال به ڏنا پئي ويا ته فائدا به ٻڌايا پئي ويا.

﴿أَمْ حَسِبْتُمْ أَنْ تُدْخِلُوا الْجَنَّةَ وَلَمَّا يَأْتِكُمْ مَثَلُ الَّذِينَ خَلَوْا مِنْ قَبْلِكُمْ مَسْتَهْمِبِينَ وَالضَّرَّاءُ وَزُلُزْلُوا حَتَّىٰ يَقُولَ الرَّسُولُ وَالَّذِينَ آمَنُوا مَعَهُ مَتَىٰ نَصْرُ اللَّهِ أَلَا إِنَّ نَصْرَ اللَّهِ قَرِيبٌ﴾ (214) ﴿البقرة﴾

”اي مسلمانو! اوهين) هن هوندي به بهشت ۾ گهڙڻ جو گمان ڪندا آهيو ڇا؟ جو اڃا اوهان تي انهن واري حالت نه آئي آهي جيڪي اوهان کان اڳ گذريا. جن کي سڃاڻي ۽ ڏک پهتو ۽ ايستائين لوڏيا ويا جو جيستائين پيغمبر ۽ جي مؤمن ساڻس هئا (تن دعا گهري) چيو ته: الله جي مدد ڪڏهن پهچندي (چيو وين ته) هوشيار رهو! الله جي مدد ويجهي آهي.“

﴿الم﴾ (1) أَحْسِبَ النَّاسُ أَنْ يُتْرَكُوا أَنْ يَقُولُوا آمَنَّا وَهُمْ لَا يُفْتَنُونَ (2) وَلَقَدْ فَتَنَّا الَّذِينَ مِنْ قَبْلِهِمْ فَلَيَعْلَمَنَّ اللَّهُ الَّذِينَ صَدَقُوا وَلَيَعْلَمَنَّ الْكَاذِبِينَ (3) ﴿العنكبوت﴾

”الم. ماڻهن ڀانيو آهي ڇا ته سندن (رڳو ايتري) چوڻ تي ته ايمان آندوسون، اهي ڇڏي ڏبا ۽ اهي نه آزمائبا؟ ۽ جيڪي ڪانئن اڳ هئا تن کي بيشڪ پرڪيوسون پوءِ جيڪي سچا آهن، تن کي الله ضرور ڌار ڪندو ۽ ڪوڙن کي (به) ضرور ڌار ڪندو.“

انهن سان گڏوگڏ اهڙيون آيتون به نازل ٿي رهيون هيون، جن ۾ ڪافرن جي اعتراضن جا لاجواب جواب ڏنا ويا. انهن لاءِ ڪوبه حيلو بهانو نٿي ڇڏيو ويو ۽ انهن کي ڏاڍن کليل لفظن ۾ ٻڌايو ٿي ويو ته جي هو پنهنجي گمراهي ۽ وير تي ڳنڍي ٻڌي بيٺا رهيا ته ان جا نتيجا ڪيڏا نه سنگين نڪرندا. ان جي دليل لاءِ گذريل قومن جا اهڙا واقعا ۽ تاريخي شاهديون ڏنيون ٿي ويون، جن مان واضح ٿئي ٿو ته الله جي نسبت، پنهنجن دوستن ۽ دشمنن بابت ڪهڙي آهي. ان ڌمڪيءَ سان گڏوگڏ لطف ۽ ڪرم جون ڳالهيون به ڪيون پئي ويون ۽ پائيجارو پيدا ڪرڻ ۽ نصيحت ۽ رهنمائيءَ جو حق به ادا ڪيو پئي ويو، جيئن مڙي سگهڻ وارا ان کليءَ گمراهيءَ کان مڙي وڃڻ.

حقيقت ۾ قرآن، مسلمانن کي ڪنهن ٻيءَ ئي دنيا جو سير ڪرائيندو هو ۽ کين ڪائنات جي مشاهدي، ربوبيت جي جمال، الوهيت جي ڪمال، رحمت ۽ رافت جي آثارن ۽ لطف ۽ رضا جا اهڙا اهڙا جلوا پسنائيندو هو جو سندن جذبي ۽ شوق آڏو ڪا به رڪاوٽ نه بيهي سگهندي هئي.

انهن ئي آيتن ۾ مسلمانن کي اهڙا اهڙا خطاب به ڪيا ويندا هئا، جن ۾ پالڻهار پاران رحمت ۽ رضوان ۽ سدائين جي نعمتن سان ڀريل جنت جي بشارت به هوندي هئي ۽ ظالم ۽ سرڪش ويرين ۽ ڪافرن جي انهن حالتن جي تصويرڪشي به ڪئي ويندي هئي ته اهي جهانن جي پالڻهار جي عدالت ۾ بيهاريا ويندا. انهن جون پلايون ۽ نيڪيون ضبط ڪيون وينديون ۽ انهن کي منهن ڀر گهلي ڪري اهو چوندي دوزخ ۾ وڌو ويندو ته وڃو، دوزخ جو مزو ماڻيو.

6. ڪاميابيءَ جون خوشخبريون :- انهن سڀني ڳالهين کانسواءِ مسلمانن کي پنهنجي مظلوميت جي پهرئين ئي ڏينهن کان، پر ان کان به اڳ ۾ معلوم هو ته اسلام قبول ٿي معنيٰ اها نه آهي ته سدائين لاءِ مصيبتون ۽ مشڪلاتون ورتيون ويون، پر اسلامي دعوت منڍ کان ئي جاهلن جي جاهليت ۽ انهن جي ظالماڻي نظام جي بچائيءَ جو عزم رکي ٿي ۽ ان دعوت جو هڪ اهم نشانو اهو به آهي ته سڄي ڌرتيءَ تي پنهنجو اثر وجهي ۽ دنيا جي سياسي موقف تي ان طرح حاوي ٿي وڃي جو انسان ذات ۽ دنيا جي سڀني قومن کي الله جي رضا ڏانهن وٺي وڃي. انهن کي ٻانهن جي ٻانهپ مان ڪڍي الله جي ٻانهپ ۾ داخل ڪري سگهي.

قرآن مجيد ۾ اهي بشارتون ڪڏهن اشارن ۾ ته ڪڏهن کليءَ طرح سان نازل ٿينديون هيون. تنهنڪري هڪ پاسي حالتون اهي هيون جو مسلمانن تي سڄي ڌرتي پنهنجين مڙن ئي وسعتن جي باوجود سوڙهي ٿي پئي هئي ۽ ائين پئي لڳو، ڇڻ جلد ئي سندن صفايو ڪيو ويندو. پر ٻئي پاسي انهن ئي ڏکين حالتن ۾ اهڙيون آيتون لٿيون پئي، جن ۾ گذريل نبين جا واقعا ۽ انهن قوم جي رويي ۽ انڪار جو تفصيل ڄاڻايل هوندو هو. انهن آيتن ۾ جيڪو نقشو چٽيو ويندو هو، اهو اهڙو ئي هو

جيڪو مڪي جي مسلمانن ۽ ڪافرن جو هو. ان کانپوءِ اهو به ٻڌايو ويندو هو ته انهن حالتن جي ڪارڻ ڪيئن نه ڪافرن ۽ ظالمن کي هلاڪ ڪيو ويو ۽ الله جي نيڪ ٻانهن کي سڄي ڌرتيءَ جو وارث ڪيو ويو. انهن آيتن ۾ کليل اشارو هوندو هو ته اڳتي هلي مڪي وارن کي هار ملندي ۽ مسلمانن ۽ انهن جي دعوت کي ڪاميابي نصيب ٿيندي. انهن ئي حالتن ۽ ڏينهن ۾ ڪي اهڙيون آيتون به لٿيون، جن ۾ ڇٽيءَ طرح سان اهل ايمان جي حاوي ٿيڻ جون بشارتون موجود هونديون هيون. مثال طور الله تعاليٰ جو ارشاد آهي ته:

﴿وَلَقَدْ سَبَقَتْ كَلِمَتُنَا لِعِبَادِنَا الْمُرْسَلِينَ (171) إِنَّهُمْ لَهُمُ الْمَنْصُورُونَ (172) وَإِنَّ جُنَدَنَا لَهُمُ الْغَالِبُونَ (173) فَتَوَلَّ عَنْهُمْ حَتَّىٰ حِينٍ (174) وَأَبْصَرَهُمْ فَسَوْفَ يُصْرُونَ (175) أَفَبِعَدَابِنَا يُسْتَعْجِلُونَ (176) فَاذًا نَزَّلَ بِسَاحَتِهِمْ فَسَاءَ صَبَاحُ الْمُنْذَرِينَ (177)﴾ (الصفات)

”۽ بيشڪ پنهنجن موڪليل ٻانهن لاءِ اسان جو واعدو اڳيئي ٿي چڪو. ته بيشڪ اهي (اسان جا پيغمبر) ئي مدد ڏنل آهن. ۽ بيشڪ اسان جو لشڪر ئي غالب آهي. پوءِ کانئن هڪ وقت تائين منهن موڙ. ۽ کين ڏسندو ره پوءِ اهي به سگهوئي ڏسندا. (هي ڪافر) اسان جو عذاب جلد گهرندا آهن ڇا؟ پوءِ جڏهن سندن (گهرن جي) اڳڻن ۾ (عذاب) لهندو تڏهن ڊيڄاريلن جو صبح بچڙو ٿيندو.

وري فرمايل آهي ته:

﴿سَيَهْرَمُ الْجَمْعُ وَيُولُونَ الدُّبُرَ (45)﴾ (القمر)

”انهيءَ گروهه کي جلد شڪست ڏبي ۽ پني ڦيرائي ڀڄندا.“

وري فرمايل آهي ته:

﴿جُنْدٌ مَا هُنَالِكَ مَهْزُومٌ مِنَ الْأَحْزَابِ (11)﴾ (ص)

”شڪست کاڌل ٽولين مان هي (ڪافر) هتي (گڏ ٿيل) لشڪر آهي.“

حبشه ڏانهن هجرت ڪندڙن لاءِ ارشاد ٿيو ته:

﴿وَالَّذِينَ هَاجَرُوا فِي اللَّهِ مِنْ بَعْدِ مَا ظَلَمُوا لَنُبَوِّئَنَّهُمْ فِي الدُّنْيَا حَسَنَةً وَلَآئِجْرُ الْآخِرَةِ أَكْبَرُ لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ (41)﴾ (النحل)

”۽ جن پاڻ تي ظلم ٿيڻ کان پوءِ الله (جي واٽ) ۾ وطن ڇڏيو تنهن کي ضرور دنيا ۾ چڱي جاءِ ڏيندا آهيون. ۽ ضرور آخرت جو اجر تمام وڏو آهي. ڪاش جو ڄاڻن ها.“

ساڳيءَ طرح ڪافرن، پاڻ سڳورن ﷺ کان حضرت يوسف عليه السلام جو واقعو پڇيو ته

جواب ۾ هيءَ آيت لٿي:

﴿لَقَدْ كَانَ فِي يُوسُفَ وَإِخْوَتِهِ آيَاتٍ لِلِّسَّائِلِينَ (7)﴾ (يوسف)

”بيشڪ يوسف ۽ سندس ڀائرن (جي قصي) ۾ پڇندڙن لاءِ (گهڻيون) نشانين آهن.“  
يعني مڪي وارا جيڪي اڄ حضرت يوسف عليه السلام جو واقعو پڇن پيا، اهي پاڻ به اهڙيءَ طرح ناڪام ٿيندا، جهڙيءَ طرح حضرت يوسف عليه السلام جا ڀائر ناڪام ٿيا هئا ۽ کين حضرت يوسف عليه السلام ۽ سندن ڀائرن جي واقعي مان عبرت وٺڻ گهرجي ته ظالم جو حشر ڇا ٿو ٿئي. هڪ جڳهه تي پيغمبرن بابت ٻڌائيندي ارشاد ٿيو ته:

﴿وَقَالَ الَّذِينَ كَفَرُوا لِرُسُلِهِمْ لَنُخْرِجَنَّكُمْ مِنْ أَرْضِنَا أَوْ لَتَعُوذُنَّ فِي مِلَّتِنَا فَأَوْحَىٰ إِلَيْهِمْ رَبُّهُمْ لَنُهْلِكَنَّ الظَّالِمِينَ ﴿13﴾ وَلَنُسَكِّنَنَّكُمْ الْأَرْضَ مِنْ بَعْدِهِمْ ذَلِكَ لِمَنْ خَافَ مَقَامِي وَخَافَ وَعِيدِ ﴿14﴾﴾ (ابراهيم)

”۽ ڪافرن پنهنجن پيغمبرن کي چيو ته اوهان کي پنهنجي ملڪ مان لوڏينداسون يا اسان جي دين ڏانهن ضرور موٽو پوءِ سندن پاڻڻهار انهن ڏانهن وحي ڪيو ته ظالمن کي ضرور ناس ڪنداسون. ۽ انهن کان پوءِ ملڪ ۾ اوهان کي ضرور رهائينداسين اهو (انجام) انهيءَ لاءِ آهي جيڪو منهنجي اڳيان بيٺو کان ڊڄي ۽ منهنجي دڙڪي کان ڊڄي.“

ان طرح جنهن وقت فارس ۽ روم ۾ جنگ زور شور سان هلي رهي هئي ۽ ڪافرن چاهيو ٿي ته فارسي ڪٿين، ڇو ته اهي مشرڪ هئا ۽ مسلمانن گهريو ٿي ته رومي غالب اچن، ڇو ته رومي وري به الله ٿي، پيغمبرن ٿي، وحيءَ ٿي، آسماني ڪتابن تي ۽ آخرت تي ايمان رکڻ جا دعويٰ دار هئا، پر غلبو فارسين کي حاصل ٿي رهيو هو. اهڙي وقت الله تعاليٰ اها خوشخبري ڏني ته ڪجهه سالن کانپوءِ رومي غالب اچي ويندا، پر رڳو ان بشارت تي بس نه ٿي پر ان سلسلي اها به بشارت ٿي ته رومين جي غلبي وقت الله تعاليٰ مؤمنن جي به خاص مدد فرمائيندو، جنهن سان اهي خوش ٿيندا. جيئن ارشاد آهي ته:

﴿وَيَوْمَئِذٍ يُفْرِحُ الْمُؤْمِنُونَ ﴿4﴾ بِبَصَرِ اللَّهِ﴾ (الروم)

”۽ انهيءَ ڏينهن مؤمن خوش ٿيندا. الله جي مدد سان.“

(اڳتي هلي اها مدد بدر واري جنگ ۾ حاصل ٿيڻ واري عظيم ڪاميابيءَ جي شڪل اختيار

ڪري ورتي.)

قرآن کان سواءِ پاڻ سڳورن ﷺ به مسلمانن کي وقفي وقفي سان ان طرح جون خوشخبريون ڏنيون. جيئن حج جي ڏينهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ عڪاظ، مجنه ۽ ذوالمجاز جي بازارن ۾ ماڻهن وٽ تبليغ لاءِ ويندا هئا ته کين رڳو جنت جون بشارتون نه ڏيندا هئا، پر چئن لفظن ۾ اهو اعلان به ڪندا هئا ته:

"يا أيها الناس قولوا لا إله إلا الله تفلحوا وتملكوا بها العرب وتدين لكم بها العجم فإذا متم كنتم ملوكا في الجنة"<sup>(1)</sup>

"يعني اي ايمان وارو! لا اله الا الله چئو. كامياب ٽيندو ۽ ان ڪري عرب جا بادشاهه ٿي ويندو ۽ ان جي ڪارڻ عجم توهانجي هٿ هيٺ اچي ويندو. پوءِ جڏهن وفات ڪندو ته جنت ۾ بادشاهه ٿيندو.

اهو واقعو پٺئين صفحن ۾ آيل آهي ته جڏهن عتبه بن ربيعه، پاڻ سڳورن ﷺ کي دنيا جي دولت آڇي سوڊبازي ڪرڻ چاهي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جواب ۾ حمر تنزِيل السجدة جون آيتون پڙهي ٻڌايون ته عتبه کي پڪ ٿي وئي ته پاڻ سڳورا ﷺ نيٺ غالب ايندا.

ساڳيءَ طرح جناب ابوطالب وٽ آيل قريشن جي آخري وفد سان پاڻ سڳورن ﷺ جيڪا ڳالهه ٻولهي ڪئي، اها به بيان ڪري چڪا آهيون. ان موقعي تي به پاڻ سڳورن ﷺ تفصيل سان ٻڌايو ته پاڻ سڳورا ﷺ هڪ ئي ڳالهه گهرن ٿا، جنهن کي مڃڻ سان عربستان انهن جي تابع ٿي ويندو ۽ عجم تي انهن جي بادشاهي قائم ٿي ويندي.

حضرت خباب بن ارت رضي الله عنه جو بيان آهي ته هڪ ڀيري آئون پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ حاضر ٿيس. پاڻ سڳورا ﷺ ڪعبي جي چانو ۾ هڪ چادر تي لٽيا پيا هئا. ان وقت اسين مشرڪن هٿان سختيون سهي رهيا هئاسين. مون چيو ته: "جو نه اوهان الله کان دعا گهرو." اهو ٻڌي پاڻ اٿي ويٺا، سندن چهرو مبارڪ ڳاڙهو ٿي ويو ۽ فرمايائون ته: "جيڪي توهان کان اڳ ٿي گذريا آهن، انهن جي هڏين تائين گوشت ۽ اعصابن ۾ لوهه سان سوراخ ڪيا ويندا هئا، پر اها سختي به ڪين دين کان نه موڙي سگهندي هئي." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "الله تعاليٰ هن حڪم، يعني دين کي پورو ڪري رهندو. تان ته سوار صنعاءَ کان حرموت تائين ويندو ۽ کيس الله کانسواءِ ڪنهن جو به ڊپ نه هوندو. باقي پڪريءَ تي بگهڙ جو ڊپ رهندو." (2) هڪ روايت ۾ هيءُ وڌيڪ آهي ته "پر توهان جلدي پيا ڪريو." (3) ياد رهي ته اهي بشارتون اڻڄڻيون نه هيون، بلڪ معروف ۽ مشهور هيون ۽ مسلمانن وانگر ئي ڪافرن کي به انهن جي ڄاڻ هئي. جيئن اسود بن مطلب ۽ سندس سنگتي صحابه سڳورن کي ڏسندا هئا ته چٿر ڪندي چوندا هئا ته ڏسو هنن وٽ سڄي ڌرتيءَ جو بادشاهه اچي ويو آهي. اهي جلد ئي قبصر ۽ ڪسري کي مغلوب ڪندا. ان کانپوءِ هو سيٽيون ۽ تاڙيون وڃائيندا هئا. (4)

1 - ابن سعد في طبقاته (1 / 200 و 201)

2 - صحيح بخاري (543/1).

3 - صحيح بخاري (510/1).

4 - فتح السيرة (ص: 84).

بهرحال صحابه سڳورن خلاف ان وقت ڏاڍو ۽ ڏمر ۽ مصيبتن ۽ تڪليفن جو جيڪو طوفان اٿيل هو. ان جي حيثيت جنت حاصل ڪرڻ جيان هن يقيني اميدن ۽ سهائي مستقبل جي انهن بشارتن جي پيٽ ۾ ان ڪڪر کان وڌيڪ نه هو. جيڪو هوا جي هڪ جهٽڪي سان وڪري وڃي.

ان کانسواءِ پاڻ سڳورا ﷺ ايمان وارن جي مسلسل روحاني تربيت ڪري رهيا هئا. ڪتاب ۽ حڪمت جي تعليم ذريعي سندن نفس کي پاڪ ڪري رهيا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ انهن جي دلين جي وسامندڙ چڻنگ کي پڙڪندڙ آلائن ۾ بدلائي ڇڏيو ٿي ۽ انهن کي اونداهين مان ڪڍي هدايت جي نوراني جڳهه تي پهچائي رهيا هئا. کين اهنج رسڻ تي صبر جي تلقين ڪندا هئا ۽ درگدر ۽ نفس تي قابو رکڻ جي هدايت ڪندا هئا. نتيجي ۾ سندن ديني پختگي وڌي وئي ۽ اهي دنياوي لذتن کان ڪنارو ڪري الله جي رضا لاءِ جان ڏيڻ، جنت جي شوق، علم جي حرص، دين جي ڄاڻ، نفس جي محاسبِي، جذبن کي دٻائڻ، رجحانن کي موڙڻ، صبر ڪرڻ ۽ وقار سان جيئڻ جي سلسلي ۾ انسانيت لاءِ نادر نمونو بڻجي ويا.

\*\_\*\_\*

## ٽيون مرحلو

## مڪي کان ٻاهر اسلام جي دعوت

پاڻ سڳورا ﷺ طائف ۾:- نبوت جي ڏهين سال شوال ۾ (1) (619ع جي مئي جي آخر يا جون جي منڍ ۾) پاڻ سڳورا ﷺ طائف ويا. اهو مڪي کان اٽڪل سٺ ڪلوميٽر پري هو. پاڻ سڳورن ﷺ سان سندن آزاد ڪيل غلام حضرت زيد بن حارثه به گڏ هو. رستي ۾ جنهن به قبيلي وٽان لنگهيا ٿي، ان کي اسلام جي دعوت ڏنائون ٿي، پر ڪنهن به دعوت نه قبولي. جڏهن طائف پهتا ته بنو ثقيف قبيلي جي ٽن سردارن وٽ ويا، جيڪي پاڻ ۾ ڀائر هئا. جن جا نالا هن ريت آهن، عبدياليل، مسعود ۽ حبيب. انهن تنهي جي پيءُ جو نالو عمرو بن عمير ثقيفي هو. پاڻ سڳورن ﷺ انهن وٽ لهي ڪين الله جي اطاعت ۽ اسلام جي مدد ڪرڻ جي دعوت ڏني. انهن مان هڪ چيو ته: "جيڪڏهن الله توکي رسول بنايو هوندو ته آئون ڪعبي جو پردو ڦاڙي ڇڏيندس." (2)

ٻئي چيو ته: "ڇا الله کي تو کانسواءِ ڪو ٻيو نه مليو؟" ٽئين چيو ته: "آءُ تو سان هرگز نه ڳالهائيندس. جيڪڏهن تون سچو پڇو پيغمبر آهين ته تنهنجي ڳالهه کي رد ڪرڻ مون لاءِ ڏاڍو خطرناڪ ٿيندو ۽ جيڪڏهن تو الله تي بهتان هنيو آهي ته پوءِ مون کي توسان ڳالهائڻ به نه گهرجي." اهو ٻڌي پاڻ سڳورا ﷺ اتي بيٺا ۽ رڳو ايترو فرمائون: "توهان جيڪي ڪجهه چيو. بهرحال ان کي ظاهر نه ڪجو."

پاڻ سڳورا ﷺ طائف ۾ ڏهن ڏينهن رهيا. ان دوران پاڻ سڳورا ﷺ انهن جي هڪ هڪ سردار وٽ ويا ۽ هر هڪ سان ڳالهه ٻولهه ٿين. پر سڀني هڪ ئي جواب ڏنو ته تون اسانجي شهر مان هليو وڃ. پر انهن، لوفرن کي هُشي ڏني، تنهنڪري جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ موٽڻ جو ارادو ڪيو ته اهي لوفر گاريون ڏيندي، تاڙيون وڃائيندي ۽ گوڙ ڪندي پاڻ سڳورن ﷺ جي پٺيان لڳا ۽ ڏسندي ئي ڏسندي ايتري رش ٿي وئي جو رستي جي ٻنهي پاسن کان قطارون لڳي ويون. پوءِ ته پٿر به هڻڻ لڳا، جن سان پاڻ سڳورن ﷺ کي اهڙا ڌڪ رسيا جو ٻئي جتيون رت ۾ ڀرجي ويون. هوڏانهن حضرت زيد بن حارثه ﷺ ڍال بڻجي اڇلجندڙ پٿرن کي پاڻ تي جهلي رهيا هئا، جنهن سان سندن مٿي ۾ ڳچ ڌڪ لڳا. اهو سلسلو هلندو رهيو، تان ته پاڻ سڳورا ﷺ عتبہ ۽ شيبه جي هڪ باغ ۾ وڃي

1 - مولانا نجيب آباديءَ تاريخ اسلام (122/1) تي اهو وضاحت ڪئي آهي ۽ منهنجي نظر ۾ به اهو صحيح آهي.

2 - يعني جي تون پيغمبر آهين ته الله مون کي غارت ڪري. ان جملي جو مقصد اهو آهي ته تنهنجو پيغمبر ٿيڻ ائين ناممڪن آهي، جيئن ڪعبي جي غلاف کي ڦاڙڻ.

پناهه وٺڻ تي مجبور ٿيا. اهو باغ طائف کان ٿي ميل پري هو. جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ اتي پناهه ورتي ته ميٽ موٽي ويو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ هڪ ڀت سان ٽيڪ ڏئي انگور جي ول جي چانو ۾ ويهي رهيا. تورو ساھ پٽڻ کانپوءِ دعا گھربائون. جيڪا دعاءِ مستضعفين جي نالي سان مشهور آهي. هن دعا جي هڪ هڪ جملي مان اندازو ڪري سگهجي ٿو ته طائف ۾ اهڙي بدسلوڪي ٿيڻ بعد ۽ ڪنهن به ماڻهوءَ جي ايمان نه قبولڻ ڪري پاڻ سڳورا ﷺ ڪيترا نه ڏکيايل هئا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي احساسن تي ڏک ۽ الڙ جو ڪيترو غلبو هو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته:

”اللَّهُمَّ إِلَيْكَ أَشْكُو ضَعْفَ قُوَّتِي ، وَقِلَّةَ حِيلَتِي ، وَهَوَانِي عَلَى النَّاسِ يَا أَرْحَمَ الرَّاحِمِينَ أَنْتَ رَبُّ الْمُسْتَضْعَفِينَ وَأَنْتَ رَبِّي ، إِلَيَّ مَنْ تَكَلَّمِي ؟ إِلَيَّ يَبْعِدُ يَتَجَهَّمِي ؟ أَمْ إِلَى عَدُوِّ مَلِكْتَهُ أَمْرِي ؟ إِنْ لَمْ يَكُنْ بِكَ عَلَيَّ غَضَبٌ فَلَا أُبَالِي ، وَلَكِنَّ عَافِيَتَكَ هِيَ أَوْسَعُ لِي ، أَعُوذُ بِنُورِ وَجْهِكَ الَّذِي أَشْرَقَتْ لَهُ الظُّلُمَاتُ وَصَلَحَ عَلَيْهِ أَمْرُ الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ مِنْ أَنْ تُنْزِلَ بِي غَضَبَكَ ، أَوْ يَحِلَّ عَلَيَّ سَخَطُكَ لَكَ الْعُتْبَى حَتَّى تَرْضَى ، وَلَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ إِلَّا بِكَ“ (١).

ترجمو:- اي الله! آئون توهان ٿي پنهنجي ڪمزوري ۽ بيوسي ۽ ماڻهن ۾ منهنجي ناقدريءَ جي شڪايت ڪريان ٿو. اي ارحم الراحمين! تون ڪمزورن جو رب آهين ۽ تون ئي منهنجو به رب آهين. تون مونکي ڪنهن جي حوالي پيو ڪرين؟ ڇا ڪنهن ڌارئين جي، جيڪو مون سان سختيءَ سان پيش اچي؟ يا ڪنهن ويريءَ جي، جيڪو تو منهنجي معاملي ۾ مالڪ ڪري ڇڏيو آهي؟ جيڪڏهن تون مون تي ڏمربل ناهين ته پوءِ مونکي ڪا پرواهه نه آهي، پر تنهنجي عافيت مون لاءِ وڌيڪ کليل آهي. آئون تنهنجي چهري جي ان نور جي پناهه گهران ٿو، جنهن سان انڌيرو روشن ٿيو وڃي ۽ جنهن تي دنيا ۽ آخرت جا معاملات صحيح ٿيا ته تون مون تي پنهنجو ڏم نازل ڪرين يا تنهنجو عتاب مون تي ٿئي. تنهنجي ئي رضا مونکي گهرجي ٿي. تان ته تون خوش ٿي وڃين ۽ تو کان سواءِ ڪو به ڏاڍو ۽ ڪابه طاقت نه آهي.

هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ جي اها حالت ربيعه جي پٽن (بنهي پاڻرن) ڏني ته ماڻهيءَ جي جذبي تحت انهن پنهنجي هڪ عيسائي ٻانهي عداس کي چيو ته انهن انگورن مان هڪ ڳچو پٽي وڃي ان همراهه کي ڏي. جڏهن هن اهو ڳچو پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ پيش ڪيو ته پاڻ سڳورن ﷺ بسم الله چئي هٿ وڌايو ۽ کائڻ لڳا.

عداس چيو ته: ”اهو جملو ته هن علائقي جا ماڻهو نٿا ڳالهائين!“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”تون ڪٿي جو رهاڪو آهين؟ ۽ تنهنجو دين ڪهڙو آهي؟“ هن چيو ته آئون عيسائي آهيان ۽ نينوا

١ ضعيف - السلسلة الضعيفة ( 2933 ) . سيرة ابن هشام - ( 1 / 420 )



جو رهاڪو آهيان. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اڃا! ته تون نيڪ مرد يونس بن متي جي علائقي جو آهين؟" هن چيو ته: "اوهان يونس بن متي کي ڪيئن سڃاڻو؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هو منهنجو ڀاءُ هو، هو به نبي هو ۽ آئون به نبي آهيان." اهو ٻڌي عداس، پاڻ سڳورن ﷺ جي اڳيان جهڪي پيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي پيشاني مبارڪ ۽ هٿن ۽ پيرن کي چمي ڏنائين.

اهو ڏسي ربيعه جي ٻنهي پٽن پاڻ ۾ چيو ته: "جهو! هاڻي هن همراھ ته اسانجي ٻانهي کي ڦٽائي ڇڏيو. ان کانپوءِ عداس موٽيو ته ٻنهي ان کي چيو ته: "ڏي خبر، اهو ڇا پئي ٿيو؟" هن چيو ته: "منهنجا مالڪ! سڄي ڌرتيءَ تي هن کان ڀلو ٻيو ڪو ڪونهي. هن مونکي هڪ اهڙي ڳالهه ٻڌائي آهي، جنهن بابت نبيءَ کانسواءِ ڪوبه نٿو ڄاڻي سگهي." انهن ٻنهي چيس ته: "ڏس عداس، متان هي شخص توکي تنهنجي دين تان ٿيڙي ڇڏي، ڇو ته تنهنجو دين، هن جي دين کان ڀلو آهي."

ٿورو ترسي پاڻ سڳورا ﷺ باغ منجهان نڪري مڪي ڏانهن هليا. پاڻ غمر ۽ المر کان چور هئا ۽ دل ٿٽي پئي هئن. قرن منازل پهتا ته الله تعاليٰ جي حڪم سان جبرئيل عليه السلام هيٺ لٿو. ان سان گڏ ڪوهسارن جو فرشتو به هو. اهي پاڻ سڳورن ﷺ کان پڇڻ آيا هئا ته پاڻ سڳورا ﷺ حڪم ڪن ته اهي مڪي وارن کي بن جبلن جي وچ ۾ پيهي ڇڏين.

ان واقعي جو تفصيل صحيح بخاريءَ ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها کان آيل آهي. سندن بيان آهي ته پاڻ هڪ ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ کان پڇيو ته ڇا پاڻ سڳورن ﷺ تي اهڙو به ڪو ڏينهن آيو، جيڪو احد جي ڏينهن کان وڌيڪ سخت هجي؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ها! تنهنجي قوم مونکي جيڪي تڪليفون ڏنيون، انهن مان سڀ کان سخت مصيبت اها هئي، جيڪا مون واديءَ (طائف وچ) واري ڏينهن ڏني. جڏهن آئون عبدالليل بن عبد ڪلال وٽ پهتس پر هن منهنجي ڳالهه نه مڃي ۽ مونکي قرن تعالب پهچي ڪجهه آرام مليو. اتي ڪنڌ مٿي ڪنير ته ڏنر ته هڪ ڪڪر جو ٽڪرو مون تي سايو ڪيو بيٺو هو. مون ڌيان سان ڏٺو ته ان ۾ جبرئيل عليه السلام هو، جنهن مونکي سڏي چيو ته: توهانجي قوم توهان کي جيڪي ڪجهه چيو، الله تعاليٰ اهي ٻڌي ورتو آهي. هاڻي ان توهان وٽ ڪوهسارن جي فرشتي کي موڪليو آهي، جيئن توهان ان بابت کيس جيڪو وٺيو حڪم ڪريو. ان کانپوءِ ڪوهسارن جي فرشتي مونکي آواز ڏنو ۽ سلام ڪرڻ بعد چيو ته: "يا محمد ﷺ! اها ئي ڳالهه آهي. هاڻي توهان جيڪي چاهيو... جي چاهيو ته مان انهن کي (1) بن جبلن جي وچ ۾ ڪچلي ڇڏيان، ته ائين ئي ٿيندو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: (نه) پر مونکي اميد آهي ته الله

<sup>1</sup> - ان موقعي تي صحيح بخاريءَ ۾ لفظ اخشبين استعمال ڪيو ويو آهي، جو مڪي جي بن مشهور جبلن، ابو قبيس ۽ قعقعان لاءِ ڳالهائبو آهي. اهي ٻئي جبل حرم پاڪ جي اتر ۽ ڏکڻ ۾ هڪ ٻئي جي آمهون سامهون آهن. ان وقت مڪي جي عام آبادي انهن ئي جبلن جي وچ ۾ هئي.

عز وجل سندن پٽ مان اهڙو نسل پيدا ڪندو، جيڪو رڳو هڪ الله جي عبادت ڪندو ۽ ان سان ڪنهن به شيءِ کي شريڪ نه ڪندو. (1)

پاڻ سڳورن ﷺ جي ان جواب ۾ سندن بيمثال شخصيت ۽ نه سمجهه ۾ ايندڙ گهراڻي رکڻ وارن عظيم اخلاقن جو جلوو ڏسي سگهجي ٿو. بهرحال هاڻي ستن آسمانن جي به مٿان آيل ان غيبي مدد جي ڪارڻ پاڻ سڳورا ﷺ مطمئن ٿي ويا. تنهن کانپوءِ مڪي ڏانهن وڌيا ۽ نخله جي واديءَ ۾ اچي ترسيا. هتي ٻه جڳهيون رهڻ جوڳيون هيون. هڪ السيل الكبير ۽ ٻي زيمه. ڇو ته ٻنهي جاين تي پاڻي ۽ ساوڪ هئي، پر ڪنهن به ڪتاب مان اها خبر نٿي پئي ته پاڻ سڳورا ﷺ ٻنهي مان ڪٿي رهيا.

پاڻ نخله جي واديءَ ۾ ڪجهه ڏينهن رهيا. ان دوران الله تعاليٰ، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ جنن جي هڪ ٽولي موڪلي، جنهن جو ذڪر قرآن ۾ ٻن جاين تي آيل آهي. هڪ سورة احقاف ۾ ۽ ٻيو سورة جن ۾. سورة احقاف جون آيتون آهن ته:

﴿وَإِذْ صَرَفْنَا إِلَيْكَ نَفْرًا مِنَ الْجِنِّ يَسْتَمِعُونَ الْقُرْآنَ فَلَمَّا حَضَرُوهُ قَالُوا أَنْصِتُوا فَلَمَّا قُضِيَ وَلَّوْا إِلَىٰ قَوْمِهِمْ مُنْذِرِينَ ﴿29﴾ قَالُوا يَا قَوْمَنَا إِنَّا سَمِعْنَا كِتَابًا أُنزِلَ مِنْ بَعْدِ مُوسَىٰ مُصَدِّقًا لِمَا بَيْنَ يَدَيْهِ يَهْدِي إِلَى الْحَقِّ وَإِلَىٰ طَرِيقٍ مُسْتَقِيمٍ ﴿30﴾ يَا قَوْمَنَا أَجِيبُوا دَاعِيَ اللَّهِ وَآمِنُوا بِهِ يَعْفِرْ لَكُمْ مِنْ ذُنُوبِكُمْ وَيُجِرْكُمْ مِنْ عَذَابٍ أَلِيمٍ ﴿31﴾﴾ (الاحقاف)

”۽ (ياد ڪر) جڏهن جنن مان هڪ ٽوليءَ کي توڏانهن لاڙيوسون جو قرآن ٻڌائون ٿي، پوءِ جنهن مهل پيغمبر وٽ پهتا! (تنهن مهل) چيائون ته ماڻ ڪريو پوءِ جنهن مهل (قرآن پڙهي) پورو ڪيو ويو ته پنهنجي قوم ڏانهن ڊيچاريندڙ ٿي موٽيا. چيائون ته اي اسان جي قوم! بيشڪ اسان اهڙو ڪتاب ٻڌو جو موسيٰ کان پوءِ لائق ويو آهي، جو جيڪي ان کان اڳ (نازل ٿيل) هو، تنهن (سڀ) کي سچو ڪندڙ آهي، سچي دين ڏانهن ۽ سڌي واٽ ڏانهن رستو ڏيکاري ٿو. اي اسان جي قوم! الله جي (طرف) سڏيندڙ کي سڏ ڏيو ۽ ان تي ايمان آڻيو ته (الله) اوهان جا ڪي ڏوهه اوهان کي بخشي ۽ ڏکوئيندڙ عذاب کان اوهان کي ڇڏائي.“

سوره جن جون آيتون هي آهن ته:

﴿قُلْ أُوْحِيَ إِلَيَّ أَنَّهُ اسْتَمَعَ نَفَرٌ مِنَ الْجِنِّ فَقَالُوا إِنَّا سَمِعْنَا قُرْآنًا عَجَبًا ﴿1﴾ يَهْدِي إِلَى الرُّشْدِ فَآمَنَّا بِهِ وَلَنْ نُشْرِكَ بِرَبِّنَا أَحَدًا ﴿2﴾﴾ (الجن)

1 - بخاري، (1/458) مسلم (2/109).

”اي پيغمبر! چؤ ته: مون ڏانهن (هن ڳالهه جو) وحي موڪليو ويو ته جنن مان هڪ ٽوليءَ (قرآن) ٻڌو، پوءِ چيائون ته بيشڪ اسان هڪ عجيب قرآن ٻڌو. جو سڌي رستي ڏانهن ڏس ڏي ٿو، تنهن ڪري ان تي ايمان آندوسون ۽ پنهنجي پاڻهار سان ڪنهن هڪڙي کي شريڪ اصل نه ڪنداسون.“

اهي آيتون جيڪي هن واقعي جي بيان جي سلسلي ۾ لٿيون، تن مان پتو پوي ٿو ته پاڻ سڳورن ﷺ کي پهرين جنن جي ٽولي اچڻ جو پتو نه پيو هو، پر جڏهن انهن آيتن وسيلي الله تعاليٰ، پاڻ سڳورن ﷺ کي ڄاڻ ڏني، تڏهن پاڻ سڳورا ﷺ واقف ٿي سگهيا. اهو به پتو پوي ٿو ته اهو جنن جو اچڻ پهريون ڀيرو هو. حديثن مان پتو پوي ٿو ته جن پوءِ به ايندا رهيا.

جنن جي اچڻ ۽ اسلام قبول ٿيڻ جو واقعو حقيقت ۾ الله پاران ٻي مدد هئي، جيڪا الله تعاليٰ غيب مان موڪلي هئي. جنهن جي خبر الله ڪان سواءِ ڪنهن کي به نه هئي. پوءِ ان واقعي بابت جيڪي آيتون لٿيون، انهن جي وچ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي دعوت جي ڪاميابيءَ جون بشارتون به آهن ۽ ان ڳالهه جي چٽائي به ڪيل آهي ته ڪائنات جي ڪابه طاقت هن دعوت جي راهه نٿي روڪي سگهي. جيئن ارشاد آهي ته:

﴿وَمَنْ لَّا يُجِبْ دَاعِيَ اللَّهِ فَلَيْسَ بِمُعْجِزٍ فِي الْأَرْضِ وَلَيْسَ لَهُ مِنْ دُونِهِ أَوْلِيَاءُ أُولَٰئِكَ فِي ضَلَالٍ مُّبِينٍ﴾ (32) (الاحقاف)

”۽ جيڪو الله ڏانهن سڏيندڙ کي سڏ نه ڏيندو سو ملڪ ۾ (پڇي) ٽڪائڻ وارو نه آهي ۽ الله کان سواءِ ان جا ڪي سڃڻ نه آهن، اهي ٻڌري گمراهيءَ ۾ آهن.“

﴿وَأَنَّا ظَنَنَّا أَن لَّنْ نُعْجِزَ اللَّهَ فِي الْأَرْضِ وَلَكِنُّ نُعْجِزُهُ هَرَبًا﴾ (12) (الجن)

”۽ هيءُ ته اسان پڪ ڄاتو ته زمين ۾ الله کي ڪڏهن به ٽڪائي نه سگهنداسون ۽ نڪي پڇي ڪڏهن ٽڪائي سگهنداسونس.“

هن فتح ۽ هنن بشارتن اڳيان غم ۽ الر جا اهي سڀ ڪڪر هٽي ويا، جيڪي طائف مان نڪرڻ وقت گاريون ۽ تاڙيون ٻڏي ۽ پٿر کائي پاڻ سڳورن ﷺ تي طاري تيا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ پڪو پهه ڪيو ته هاڻي مڪي پهچي نئين سري سان اسلام جي دعوت ۽ تبليغ جو ڪم چستي ۽ گرمجوشيءَ سان ڪبو. اهو ئي موقعو هو، جڏهن حضرت زيد بن حارثه رضي الله عنه، پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ته: ”توهان مڪي ڪيئن ويندؤ، جڏهن ته مڪي وارن توهان کي ڪڍي ڇڏيو آهي؟ ان جي جواب ۾ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”اي زيد! تون جيڪا حالت ڏسين پيو، الله ان کان خلاصو ٿيڻ ۽ چوٽڪارو حاصل ڪرڻ جي راهه ضرور ڪڍي ڏيندو. الله تعاليٰ پڪ پنهنجي دين جي مدد ڪندو ۽ پنهنجي نبيءَ کي غالب ڪندو.“

نيٺ پاڻ سڳورا ﷺ اتان روانا ٿيا ۽ مڪي جي ويجهو حرا نالي جبل جي دامن ۾ اچي لٿا. پوءِ خزاع قبيلي جي هڪ ماڻهوءَ هٿان اخنس بن شريق وٽ نياپو موڪليائون ته پاڻ سڳورن ﷺ کي پناهه ڏي. پر اخنس اهو چئي معذرت ڪئي ته آئون حليف آهيان ۽ حليف کي پناهه ڏيڻ جو اختيار نه آهي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ سهيل بن عمرو کي نياپو اماڻيو، پر ان به اهو چئي معذرت ڪئي ته بني عامر جي پناهه بنو ڪعب تي لاڳو نٿي ٿئي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ مطعم بن عديءَ کي نياپو ڪيو. مطعم چيو ته: "حاضر" ۽ پوءِ هٿيار پنهور ڪئي. پنهنجن پٽن ۽ قوم جي ماڻهن کي سڏيائين ۽ چيائين ته توهان هٿيار ڪڍي ڪعبه الله جي ڪنڊن وٽ گڏ ٿي وڃو، ڇو ته مون محمد ﷺ کي پناهه ڏني آهي. ان بعد مطعم، پاڻ سڳورن ﷺ کي نياپو موڪليو ته مڪي ۾ هليا اچو. پاڻ سڳورا ﷺ کي نياپو ملڻ شرط حضرت زيد بن حارثه رضه سان گڏ مڪي ۾ داخل ٿيا ۽ مسجد الحرام ۾ داخل ٿي ويا. ان کان پوءِ مطعم بن عديءَ پنهنجي سواريءَ تي بيهي اعلان ڪيو ته قرشيون! مون، محمد ﷺ کي پناهه ڏني آهي. هاڻي کين ڪير نه چيڙي. هوڏانهن پاڻ سڳورا ﷺ سڌا حجر اسود وٽ پهتا ۽ ان کي چيائون. پوءِ ٻه رڪعتون نماز پڙهي پنهنجي گهر ويا، ان دوران مطعم بن عدي ۽ سندن فرزند هٿيار ٻڏي پاڻ سڳورن ﷺ جي چوڌاري گهيرو ڪري بيٺا رهيا. تان ته پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجي گهر ۾ داخل ٿي ويا.

چيو وڃي ٿو ته ان موقعي تي ابوجهل، مطعم کان پڇيو ته تو پناهه ڏني آهي يا ماڳهين مسلمان ٿي ويو آهين؟ مطعم ورائيو ته پناهه ڏني اٿم. اهو جواب ٻڌي ابوجهل چيو ته جنهن کي تو پناهه ڏني، ان کي اسان به پناهه ڏني. (1)

پاڻ سڳورن ﷺ، مطعم بن عديءَ جي ان چڱيءَ هلت کي ڪڏهن به نه وساريو. جڏهن بدر ۾ مڪي جي ڪافرن جو هڪ وڏو انگ جهلجي پيو ۽ ڪجهه قيدين جي آزاديءَ لاءِ حضرت جبير بن معمر رضه، پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ حاضر ٿيو ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته:

"لَوْ كَانَ الْمُطْعَمُ بْنُ عَدِيٍّ حَيًّا ثُمَّ كَلَّمَنِي فِي هَؤُلَاءِ النَّتَنِ لَتَرَكْتُهُمْ لَهُ" (2)

"جيڪڏهن مطعم بن عدي جيئرو هجي ها ۽ پوءِ مون سان انهن بدبودار ماڻهن بابت ڳالهه ٻوله ڪري ها ته مان ان جي ڪارڻ سڀني کي ڇڏي ڏيان ها."

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - طائف جي سفر جي واقعي جو اهو تفصيل ابن هشام (1/419 کان 422) - زاد المعاد (2/46، 47) - مختصر السيرة للشیخ عبدالله (141 \_ 143، رحمة للعالمين 1/71 \_ 74) تاريخ اسلام، نجيب آبادي (1/123، 124) ۽ بين تفسير جي مشهور ڪتابن مان گڏ ڪيو ويو آهي.

<sup>2</sup> - صحيح البخاري - (10/389) (حديث رقم 2906)

## قبيلن ۽ فردن کي اسلام جي دعوت

نبوت جي ڏهين سال ذی القعد مهيني ۾ (619ع جي جون جي آخر يا جولاءِ جي منڍ ۾) پاڻ سڳورا ﷺ طائف کان مڪي موٽيا ۽ هتي فردن ۽ قبيلن کي ٻيهر اسلام جي دعوت ڏيڻ شروع ڪيائون. جيئن ته حج جي موسم ويجهي هئي، ان لاءِ حاجين جو اچڻ شروع ٿي ويو هو. پاڻ سڳورن ﷺ ان موقعي کي غنيمت ڄاتو ۽ هڪ هڪ قبيلي وٽ وڃي اسلام جي دعوت ڏني. جيئن سندن نبوت جي چوٿين سال کان معمول بڻيل هو.

اهي قبيلن جن کي اسلام جي دعوت ڏني وئي:- امام زهري رحمۃ اللہ علیہ جو چوڻ آهي ته جن قبيلن وٽ پاڻ سڳورا ﷺ هلي ويا ۽ کين دعوت ڏنائون، اهي هي هئا:

بنو عامر بن صعصعہ، محارب بن خصفہ، فزاره، غسان، مره، حنيفہ، سليم، عبس، بنو نصر، بنو البڪاء، ڪلب، حارث بن ڪعب، عذرہ، حضارم، پر انهن مان ڪنهن به اسلام نه قبوليو. (1)  
واضح هجي ته امام زهريءَ جي ٻڌايل انهن مٿن ئي قبيلن کي هڪ ئي سال يا هڪ ئي حج جي موسم ۾ اسلام جي دعوت نه ڏني وئي، پر نبوت جي چوٿين سال کان هجرت کان اڳ آخري حج جي موسم تائين ڏهن سالن جي عرصي دوران کين دعوت ڏني وئي. (2)  
ابن اسحاق ڪن قبيلن کي اسلام آڻڻ ۽ سندن جواب ڏيڻ جو تفصيل به لکيو آهي. هيٺ مختصر طور تي انهن جو بيان نقل ڪجي ٿو.

1. بنو ڪلب:- پاڻ سڳورا ﷺ هن قبيلي جي هڪ شاخ بنو عبدالله وٽ هلي ويا ۽ کين الله ڏانهن سڏيائون. ڳالهين ڳالهين ۾ اهو به چيائون ته: اي بني عبدالله، الله اوهانجي وڏي ڏاڏي جو ڏاڏو سٺو نالو رکيو هو. پر ان قبيلي سندن دعوت نه قبولي.
2. بنو حنيفه:- پاڻ سڳورا ﷺ سندن ديري تي ويا. کين الله ڏانهن سڏيائون، پر انهن جهڙي خراب موت سڄي عرب مان ٻئي ڪنهن به نه ڏني.
3. عامرين صعصعہ:- انهن کي به پاڻ سڳورن ﷺ، الله جي پاران دعوت ڏني. جواب ۾ انهن جي هڪ همراھ بحيره بن فراس چيو ته: "الله جو قسم! جيڪڏهن قریش جي هن جوان کي ساڻ ڪٿان ته ان جي وسيلي سڄي عربستان کي کائي وڃان." پوءِ هن پڇيو ته "ڇڏو اهو ٻڌايو ته جيڪڏهن اسين توهانجي هن دين تي توهان جي بيعت ڪريون ۽ پوءِ الله تعاليٰ اوهانکي مخالفن تي فتح نصيب ڪري

<sup>1</sup> - ترمذي، مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 149).

<sup>2</sup> - رحمة للعالمين (74/1).

ته ڇا توهان کانپوءِ سڄو نظام اسانجي هٿن ۾ اچي ويندو؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "الله جي هٿ ۾ آهي، جنهن کي وڻيس ان کي ڏيندو." تنهن تي ان ماڻهوءَ چيو ته: "واهه واهه! توهان جي حفاظت لاءِ ته اسانجون ڇاتيون عربن جي نشاني تي رهن، پر جڏهن الله توهان کي ڪٽائي ته نظام وري پيا سنڀالين؟ اسانکي توهانجي دين جي گهرج کانهي." مطلب ته انهن انڪار ڪيو.

ان کانپوءِ جڏهن بني عامر قبيلو پنهنجي علائقي ۾ موٽي ويو ته پنهنجي هڪ جهوني کي، جيڪو وڏي عمر ڪري حج تي هلي نه سگهيو هو، سڄو وهيو واپريو ٻڌايائون ته اسان وٽ قريش قبيلي جي گهراڻي بنو عبدالمطلب جو هڪ جوان آيو هو، جنهن جو خيال هو ته هو نبي آهي. ان اسانکي دعوت ڏني ته اسين سندس حفاظت ڪريون، سندس ساٿ ڏيون ۽ کيس پنهنجي علائقي ۾ وٺي اچون. اهو ٻڌي ان ڪراڙي ٻئي هٿ ڪٿي مٿي تي رکيا ۽ چيو ته: "اي بنو عامر! ڇا هاڻي ان جي تلافيءَ جي ڪا راهه آهي؟ ۽ ڇا ان گذريل لمحي کي وري موٽائي سگهجي ٿو؟ ان ذات جو قسم، جنهن جي هٿ ۾ فلاڻي جي جان آهي، ڪنهن اسماعيليءَ ڪڏهن به ان (نبوت) جي ڪوڙي دعوا نه ڪئي آهي. پڪ هو سڄو آهي. آخر توهانجي مت ڇو ڪسجي وئي هئي! (1)

**مڪي کان ٻاهر ايمان جا ڪرڻا:** -- جهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ قبيلن ۽ وفدن کي اسلام آڻيو، ان طرح ئي عامر ۽ خاص ماڻهن کي به اسلام جي دعوت ڏني. هيٺ وهيو واپريو مختصر طور تي ڏجي ٿو.

**1. سويد رضی اللہ عنہ بن صامت:** -- پاڻ شاعر هو. يثرب جو رهاڪو ۽ ڏاهو هو. شعر چوڻ ۾ مهارت ۽ شرف ۽ نسب جي ڪارڻ قوم کين "ڪامل" جو خطاب ڏئي ڇڏيو هو. پاڻ حج يا عمري لاءِ مڪي آيو ته پاڻ سڳورن ﷺ، کين اسلام جي دعوت ڏني. چوڻ لڳو ته "شايد توهان وٽ به اهو ئي ڪجهه آهي، جو مون وٽ آهي." پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته "تو وٽ ڇا آهي؟" سويد چيو ته: "لقمان جي ڏاهپ." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ته پوءِ ٻڌاءِ." تنهن تي ان ٻڌايو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اهو ڪلام واقعي سنو آهي، پر مون وٽ جيڪي ڪجهه آهي، اهو ان کان به ڀلو آهي. اهو قرآن آهي جو الله تعاليٰ مون تي لائو آهي. اهو هدايت ۽ نور آهي." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ قرآن پڙهي ٻڌايو ۽ کين اسلام جي دعوت ڏني. ان اسلام قبوليو ۽ چيو ته: "هي ته ڏاڍو سنو ڪلام آهي." ان

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/424، 425).

ڪانپوءِ هو مديني موٽيو. جلد ئي بعثت واري جنگ ڇڙي پئي ۽ پاڻ ان ۾ مارجي ويو. (1) هن نبوت جي يارهين سال اسلام قبوليو هو. (2)

**2. اياس بن معاذ:** -- هي به يثرب جو رهاڪو هو ۽ نوجوان هو. نبوت جي يارهين سال جنگ بعثت کان ٿورو اڳي اوس جو هڪ وفد خزرج جي خلاف قريش کان حلف ۽ تعاون وٺڻ لاءِ مڪي آيو هو. پاڻ به ان سان گڏ آيو هو. ان وقت يثرب ۾ انهن ٻنهي قبيلن جي وچ ۾ دشمنيءَ جي باهه پٽڪي رهي هئي ۽ اوس وارن جو تعداد خزرج وارن کان گهٽ هو. پاڻ سڳورن عليه السلام کي وفد جي اچڻ جي خبر پئي ته پاڻ انهن وٽ آيا ۽ ساڻن هن طرح خطاب ڪيائون ته "توهان جنهن مقصد لاءِ آيا آهيو، ڇا ان کان پلي شيءِ قبوليندؤ؟" انهن سڀني چيو ته اها ڪهڙي شيءِ آهي؟ پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "آئون الله جو رسول آهيان. الله تعاليٰ مون کي پنهنجن ٻانهن وٽ ان ڳالهه جي دعوت ڏيڻ لاءِ موڪليو آهي ته اهي الله جي عبادت ڪن ۽ شرڪ نه ڪن. الله تعاليٰ مون تي ڪتاب به لائو آهي." پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام اسلام جو ذڪر ڪيو ۽ قرآن جي تلاوت ڪئي.

اياس بن معاذ چيو ته: "اي قوم وارو! الله جو قسم! هيءَ ان (ڳالهه) کان بهتر آهي، جنهن جي لاءِ اوهان هتي آيا آهيو." پر وفد جي هڪ رڪن ابو الحيسر انس بن رافع هڪ من ۾ مٽي کڻي اياس جي منهن تي هڻي ۽ چيو ته: "اها ڳالهه ڇڏ! منهنجي عمر جو قسم! هتي اسين ان بدران ڪنهن ٻئي مقصد لاءِ آيا آهيون." اياس کڻي ماڻ ڪئي ۽ پاڻ سڳورا عليه السلام به اتي ويا. وفد، قريش سان معاهدو ڪرڻ ۾ ناڪام ٿيو ۽ ائين ئي موٽي ويو.

مديني موٽڻ کان ڪجهه ڏينهن پوءِ اياس وفات ڪئي. پاڻ وفات کان اڳ الله جو ذڪر اذڪار ڪندو رهيو هو. ان ڪري ماڻهن کي پڪ آهي ته پاڻ مسلمان ٿي ويو هو. (3)

**3. ابو ذر غفاري:** -- پاڻ يثرب جي بهراڙيءَ جو رهاڪو هو. جڏهن سويد بن صامت ۽ اياس بن معاذ جي ذريعي يثرب ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام جي بعثت جي خبر پهتي ته اها خبر حضرت ابوذر رضي الله عنه به پڌي ۽ اها خبر ئي سندن اسلام قبولڻ جو ڪارڻ بڻي. (4)

اهو واقعو صحيح بخاريءَ ۾ تفصيل سان آيل آهي. ابن عباس رضي الله عنهما جو بيان آهي ته ابو ذر رضي الله عنه فرمايو ته: "آئون قبيلي غفار مان هوس. مون کي پتو پيو ته مڪي ۾ هڪ ماڻهو ظاهر ٿيو آهي

<sup>1</sup> - ابن هشام (425/1) رحمة للعالمين (74/1).

<sup>2</sup> - تاريخ اسلام، اڪبر شاهه نجيب آبادي (125/1).

<sup>3</sup> - ابن هشام (427/1، 428).

<sup>4</sup> - اها ڳالهه اڪبر شاهه نجيب آباديءَ لکي آهي. سندس تاريخ اسلام (128/1).

جو پنهنجو پاڻ کي نبي ڪوٺي ٿو. مون پنهنجي پيءُ کي چيو ته: تون ان وٽ وڃ، ان سان ڳالهه ٻوله ڪري اچي مونکي ٻڌاءِ. هو ويو ۽ ملاقات ڪري واپس آيو. مون پڇيو ته ڇا خبر آندي اٿي؟ چيائين ته: "الله جو قسم! مون هڪ اهڙو ماڻهو ڏٺو آهي، جو ڀلائيءَ جو حڪم ڏي ٿو ۽ برائيءَ کان روڪي ٿو. مون چيو ته: تو پوري خبر نه آندي آهي. آخر آئون پاڻ کڏو پيتو ۽ ڏنڊو کڻي مڪي ڏانهن هلي پيس. (اتي پهچي ته ويس) پر پاڻ سڳورن ﷺ کي سڃاڻندو نه هوس ۽ اهو به نٿي چاهيم ته ڪنهن کان پاڻ سڳورن ﷺ بابت پڇا ڪريان. تنهنڪري زمزم جو پاڻي پي مسجد الحرام ۾ ويٺو هوندو هوس. نيٺ مون وٽان علي رضه جو گذر ٿيو. چيائين ته: "پرديسي پيو لڳين!" مون چيو ته: "هاڻو هن چيو ته: "ڇڱو منهنجي گهر هل." آئون ان سان گڏ هلي پيس. نه ڪو هن ڪجهه پڇيو، نه ئي مون ڪجهه صبح ٿيو ته آئون ان ارادي سان مسجد الحرام ۾ ويس ته پاڻ سڳورن ﷺ بابت ڪنهن کان پڇا ڪريان. پر ڪير به ڪونه هو، جيڪو مونکي پاڻ سڳورن ﷺ بابت ٻڌائي. نيٺ وري مون وٽان علي رضه جو گذر ٿيو. (ڏسي) فرمايائين ته: "هن ماڻهو کي اجا پنهنجي نڪاڻي جي خبر نه پئي آهي؟ مون چيو ته: "نه" هن ورائيو ته: "ڇڱو تون مون سان هل." ان کانپوءِ ان چيو ته: "پلا تنهنجو مسئلو ڇا آهي؟ ۽ تون ڇو هن شهر ۾ آيو آهين؟ مون چيو ته مونکي پتو پيو آهي ته هتي هڪ ماڻهو ظاهر ٿيو آهي، جيڪو پنهنجو پاڻ کي الله جو نبي ٿو ڪوٺي. مون پنهنجي پيءُ کي موڪليو هو ته هو ڳالهائي اچي. پر هن موٽڻ تي ڪابه اطمینان جوڳي ڳالهه نه ٻڌائي. ان ڪري مون سوچيو ته پاڻ ئي ملي اچان." حضرت علي رضه چيو ته: "پيءُ تون صحيح جڳهه تي پهتو آهين. ڏس آئون انهن ڏانهن پيو وڃان. جتي آءُ گهڙي پوان، اتي تون به گهڙي پئجان ۽ ها جي آئون ڪنهن مشڪوڪ ماڻهوءَ کي ڏسان، جنهن مان تو لاءِ ڪو خطرو هجي ته پت سان ائين لڳي ويندس، ڇڻ پنهنجي جتي پيو نيڪ ڪريان، پر تون رستي تي هلندو وڃجان." ان کانپوءِ حضرت علي رضه روانو ٿيو ۽ آئون به ساڻن گڏ هلڻ لڳس. تان ته هو اندر داخل ٿيو ۽ آئون به ساڻن گڏ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ وڃي پهتس ۽ کين اسلام بابت ٻڌائڻ جو عرض ڪيم. پاڻ سڳورن ﷺ سمجهائي ڏني ۽ آئون اتي ئي مسلمان ٿي ويس. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ چيو ته: "اي ابوذرا! هن معاملي کي لڪائجان ۽ پنهنجي علائقي ۾ موتي وڃ." جڏهن اسانجي ظهور جي خبر ملئي ته هليو اچجان." مون چيو ته: "ان ذات جو قسم جنهن اوهان کي حق ڏئي موڪليو آهي. آئون انهن جي وڃ ۾ کلي عام ان جو اعلان ڪندس. ان کان پوءِ آئون مسجد الحرام ۾ آيس، جتي قریش ويٺا هئا. مون چيو ته: قریشيو! اشهد ان لا اله الا الله و اشهد ان محمدا عبده ورسوله



ماڻهن چيو ته: اٿو هن بي دين جي خبر وٺو. ماڻهو اٿي پيا ۽ مونڪي ايترو ڪٿائون جو ماڳهين مٿس ٿي. پر حضرت عباس رضي الله عنه مونڪي بچايو. ان جهڪي مونڪي ڏٺو، پوءِ قريشن ڏانهن مڙي چيائين ته "بيٽيءَ ٻڌو توهان غفار جي هڪ ماڻهوءَ کي اڌ مٿو ڪري ڇڏيو آهي! جڏهن ته توهانجو واپاري لنگهه غفار کان ئي گذري ٿو!" ان تي ماڻهو مونڪي ڇڏي هٿيا. ٻئي ڏينهن صبح ٿيو ته آئون وري اتي ويس ۽ ڪالھوڪي ڳالهه وري چيم. ماڻهن وري به هڪل ڪئي ته اٿو، هن بي دين کي سيڪت ڏيو. ان کانپوءِ مون سان وري ڪالھوڪو حشر ڪيو ويو ۽ اڄ به حضرت عباس رضي الله عنه مونڪي بچايو مون تي جهڪيو ۽ پوءِ اها ئي ڳالهه چيائين، جا ڪالھ چئي هٿائين. (1)

4. طفيل رضي الله عنه بن عمرو دوسي:- پاڻ شريف شاعر ماڻهو، سمجھ وارو ۽ دوس قبيلي جو سردار هو. سندن قبيلي کي يمن جي پرياسي ۾ جاگيرون مليل هيون. پاڻ نبوت جي يارهين سال مڪي آيو ته اتي اچڻ کان اڳ ئي مڪي وارن سندن استقبال ڪيو ۽ ڏاڍو مان ڏنائون. پوءِ کين عرض ڪيائون ته اي طفيل! توهان اسان جي شهر ۾ آيا آهيو ۽ هي جيڪو ماڻهو اسان ۾ آهي، ان اسانکي ڏاڍن مونجهارن ۾ ڦاسائي ڇڏيو آهي ۽ اسان کي توڙي ڇڏيو اٿس. سندس ڳالهيون جادوءَ جهڙو اثر رکن ٿيون، جيڪي پيءُ پٽ، پيءُ پيءُ ۽ زال مڙس جي وچ ۾ جدائي ڪرايو ڇڏين. اسانکي ڊپ آهي ته جيڪا مصيبت اسان تي آيل آهي، ڪٿي اها اوهان ۽ اوهانجي قوم تي به نه ڪڙڪي پوي. تنهنڪري اوهان هن سان صفا نه ڳالهائڻجو ۽ سندس ڪا ڳالهه نه ٻڌجو.

حضرت طفيل رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته اهي لڳاتار اهڙيون ڳالهيون ڪري سمجهائيندا رهيا، تنهنڪري مون پڪو پھ ڪيو ته نڪو پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڪا ڳالهه ٻڌندس نه ٿي ساڻن ڳالهه ٻولھ ڪندس. تان ته جڏهن مسجد الحرام ويس ته ڪنن ۾ ڪپھ وجهي ويس ته متان سندن ڪا ڳالهه منهنجن ڪنن تائين نه پهچي وڃي. پر الله کي اهو منظور هو ته آئون سندن ڪجهه ڳالهيون ٻڌي وٺان. تنهنڪري مون ڏاڍو عمدو ڪلام ٻڌو. پوءِ دل ۾ چيم ته "منهنجا ماءُ پيءُ مون تي روئن، آئون ته الله جو قسم سوچ سمجھ وارو شاعر ماڻهو آهيان، مون کان چڱو منو لڪي نٿو سگهي. پوءِ ڇو نه هن ماڻهوءَ جي ڳالهه ٻڌان؟ جيڪڏهن سني ڳالهه هوندي ته قبوليندس نه ته ڇڏي ڏيندس. اهو سوچي بيھي رهيس ۽ جڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام گھر ڏي موٽيا ته آئون به پٺيان لڳس. پاڻ سڳورا عليه السلام اندر داخل ٿيا ته آئون به اندر داخل ٿي ويس ۽ کين پنهنجي اچڻ جو واقعو ۽ ماڻهن جي ڊيچارڻ واري ڳالهه ۽ ڪنن ۾ ڪپھ وجهڻ ۽ پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام جون ڳالهيون ٻڌڻ جو تفصيل ٻڌايم. پوءِ عرض ڪيم ته توهان پنهنجي ڳالهه ٻڌايو. پاڻ سڳورن عليه السلام مونڪي اسلام جي دعوت ڏني ۽ قرآن پڙهي ٻڌايو.

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/499، 500) (1/544، 545).

الله شاهد آهي. مون ان کان عمدو قول ۽ ان کان وڌيڪ انصاف واري ڳالهه ڪڏهن نه ٻڌي هئي. تنهن کانپوءِ مون اتي ئي اسلام قبوليو ۽ حق جي شهادت ڏني. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي عرض ڪيو ته منهنجي قوم ۾ منهنجي ڳالهه مڃي وڃي ٿي. آئون موتي ويندس ۽ انهن کي اسلام جي دعوت ڏيندس. ان ڪري پاڻ سڳورا ﷺ الله کان دعا گهرن ته هو مون کي ڪا نشاني ڏي. پاڻ سڳورن ﷺ دعا ڪئي.

حضرت طفيل رضي الله عنه کي اها نشاني عطا ڪئي وئي ته جڏهن پاڻ پنهنجي قوم جي ويجهو پهتا ته الله تعاليٰ سندن چهري تي ڏيئي جهڙي روشني پيدا ڪري ڇڏي. ان چيو ته: "يا الله! چهري بدران ڪنهن بيءَ جڳهه تي. مون کي ڊپ آهي ته ماڻهو ان کي مثلو چوندا." تنهن کانپوءِ اها روشني سندن ڏنڊي ۾ اچي وئي. پوءِ ان پنهنجي والد ۽ گهر واريءَ کي اسلام جي دعوت ڏني ۽ اهي ٻئي مسلمان ٿي ويا، پر قوم اسلام قبول ٿي ڊير ڪئي. پر حضرت طفيل رضي الله عنه به مسلسل ڪوشش ڪندو رهيو. تان ته غزوه خندق <sup>(1)</sup> کانپوءِ جڏهن پاڻ هجرت ڪيائين ته ساڻن قوم جا ستر يا اسي خاندان به هئا. حضرت طفيل رضي الله عنه اسلام لاءِ وڏا ڪارناما سرانجام ڏنا ۽ يمامه واري جنگ ۾ شهادت جو رتبو ماڻيو. <sup>(2)</sup>

**5. ضمام ازدي رضي الله عنه :-** پاڻ يمن جو رهاڪو ۽ ازد شتوءه قبيلي مان هو. توڻا ڦيڻا ڪرڻ ۽ جن ڪيڏن سندن ڪم هو. مڪي آيو ته اتي احمقن کان محمد صلي الله عليه وسلم جي چريائپ جو ٻڌائين. سوچيائين ته ڇو ته ان ماڻهوءَ وٽ ويجهي. تي سگهي ٿو ته الله منهنجي هٿان کيس نيڪ ڪري وجهي. تنهنڪري پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم سان ملاقات ڪيائين ۽ چيائين ته: اي محمد صلي الله عليه وسلم! آئون جن ڪيڏن لاءِ توڻا ڦيڻا ڪندو آهيان. ڇا توکي به ان جي گهرج آهي؟ پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم ورائيو ته: ان الحمد لله نحمده ونستعينه من يهده الله فلا مضل له و من يضلل الله فلا هادي له، واشهد ان لا اله الا الله وحده لا شريك له و اشهد ان محمدا عبده و رسوله، اما بعد!

يقينن سڀ ساراهه الله لاءِ آهي. اسين ان جي ئي ساراهه ڪريون ٿا ۽ ان کان ئي مدد چاهيون ٿا. جنهن کي الله هدايت ڏي ان کي ڪير به گمراهه نه ڪري سگهندو ۽ جنهن کي الله ڀٽڪائي ڇڏي، ان کي ڪير به هدايت نه ڏئي سگهندو ۽ آئون شهادت ٿو ڏيان ته محمد صلي الله عليه وسلم ان جو ٻانهو ۽ رسول آهي. اما بعد:

<sup>1</sup> - پر صلح حديبية کانپوءِ ڇو ته جڏهن پاڻ مديني آيو ته پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم خير ۾ هئا. ڏسو ابن هشام (385/1).

<sup>2</sup> - ابن هشام (182/1، 185)، رحمة للعالمين (81/1، 82)، مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 144).

ضماد چيو ته: ٿورو پنهنجا اهي ڪلما وري ٻڌايو. پاڻ سڳورن ﷺ تي پيرا ورجايا. ان کان پوءِ ضماد چيو ته: مون ڪاهنن، جادوگرن ۽ شاعرن جون ڳالهيون ٻڌيون آهن، پر مون توهان جهڙيون ڳالهيون ڪٿي نه ٻڌيون! اهي ته سمند جي صفا ته تائين پهتل آهن. اچو پنهنجو هٿ وڌايو! توهان سان اسلام جي بيعت ڪري وٺان ۽ ان کانپوءِ بيعت ڪيائين. (1)

يُثْرِبُ جَا چَه پِلَارَا رُوح:- نبوت جي يارهين سال حج جي ڏينهن ۾ (جولاءِ 620ع) اسلامي دعوت کي ڪجهه ڪارائتا پيچ ملي ويا، جيڪي ڏسندي ئي ڏسندي ڊگها وڻ ٿي ويا ۽ سندن نرم ۽ گهاتي چانو ۾ ويهي مسلمانن ورهين جي ڏاڍ ۽ ڌم جي تپش کان چوٽڪارو حاصل ڪيو. مڪي وارن پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪوڙو ڪرڻ ۽ ماڻهن کي الله جي راه کان روڪڻ جو جيڪو بار ڪلهن تي کنيو هو، پاڻ سڳورن ﷺ ان کي منهن ڏيڻ لاءِ اها حڪمت عملي اختيار ڪئي ته رات جي اوندھ ۾ قبيلن وٽ ويندا هئا ته جيئن مڪي جو ڪو مشرڪ رنڊڪ نه وجهي سگهي. ان حڪمت عمليءَ تحت پاڻ سڳورا ﷺ هڪ رات حضرت ابوبڪر رضه ۽ حضرت علي رضه کي ساڻ ڪري نڪتا. بنو ذهل ۽ بنو شيبان بن ثعلبه جي ديرن وٽان لنگهيا ته انهن سان اسلام بابت ڳالهه ٻولهه ڪيائون. انهن جواب ته ڏاڍو آتت وارو ڏنو پر اسلام قبول ٿيڻ بابت پڪو فيصلو نه ڪيو. ان موقعي تي حضرت ابوبڪر رضه ۽ بنو ذهل جي هڪ ماڻهوءَ جي وچ ۾ نسبي سلسلي بابت ڏاڍي دلچسپ سوال جواب ٿيا. ٻئي شجرن جا ماهر هئا. (2)

ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ مني جي واديءَ مان لنگهيا ته ڪجهه ماڻهن کي پاڻ ۾ ڳالهيون ڪندي ٻڌائون. (3) پاڻ سڌو انهن وٽ پهتا. اهي يثرب جا ڇهه جوان هئا ۽ سڀئي خزرج قبيلي مان هئا. سندن نالا هن ريت هئا.

1. اسعد بن زرارہ رضه (قبيلو بني نجار)
2. عوف بن حارث بن رفاع ابن عفراء رضه (قبيلو بني نجار)
3. رافع بن مالڪ بن عجلان رضه (قبيلو بني زريق)
4. قطبہ بن عامر بن حديده رضه (قبيلو بني سلمه)
5. عقبه بن عامر بن نابي رضه (قبيلو بني حرام بن ڪعب)
6. حارث بن عبدالله بن رثاب رضه (قبيلو بني عبید بن غنم)

1 - صحيح مسلم، مشکوة المصابيح (2/525).

2 - ڏسو مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 150\_152).

3 - رحمة للعالمين (84/1).

اها يثرب وارن جي خوش قسمتي هئي جو اهي پنهنجن حليف مديني وارن يهودين کان ٻڌندا آيا هئا ته هن زماني ۾ هڪ نبي اچڻ وارو آهي ۽ اهو ڄاڻڻ ته ظاهر ٿيڻ وارو آهي. اسين سندس پيروي ڪري ان جي اڳواڻيءَ ۾ توهان کي عاد، ارم وانگر قتل ڪنداسين.<sup>(1)</sup>

پاڻ سڳورن ﷺ انهن وٽ وڃي پڇيو ته توهان ڪير آهيو. انهن چيو ته اسين خزرج قبيلي جا آهيون. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”يعني يهودين جا حليف؟“ چيائون ته: ”ها“. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”پوءِ ڇو نه هتي ڪجهه دير ويهي پاڻ ۾ ڪا رهاڻ ڪري وٺون.“ اهي ويهي رهيا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ انهن اڳيان اسلام جي حقيقت بيان فرمائي ۽ کين الله پاڪ ڏي سڏيو ۽ قرآن پڙهي ٻڌايو. انهن پاڻ ۾ چيو ته: ”پاڻو ڏسو! هي ته اهو ئي نبي پيو لڳي، جنهن جو حوالو ڏئي يهودي ڌمڪيون ڏيندا هئا. تنهنڪري يهودين کي اڳرو ٿيڻ نه ڏيو.“ ان کانپوءِ انهن هڪدم پاڻ سڳورن ﷺ جي دعوت قبولي ۽ مسلمان ٿي ويا.

اهي مڪي جا ڏاها هئا. تازو ئي جيڪا جنگ ٿي هئي ۽ جنهن جا اثر اڃا تائين محسوس ٿي رهيا هئا، ان جنگ کين ٽڪائي ڇڏيو هو. ان ڪري انهن کي اها توقع ٿي پئي ته پاڻ سڳورن ﷺ جي دعوت، جنگ جي پڄاڻيءَ جو سبب ٿي سگهي ٿي. تنهنڪري انهن چيو ته: ”اسين قوم کي اهڙي حالت ۾ ڇڏي آيا آهيون جو ڪنهن بي قوم ۾ ايڏي عداوت ۽ دشمني نٿي ملي سگهي. اميد ته الله تعاليٰ اوهانجي وسيلي انهن کي ٻيهر گڏ ڪندو. اسان واپس وڃي ماڻهن کي اوهان جي مقصد جي دعوت ڏينداسين ۽ جيڪو دين پاڻ قبوليو اٿئون، کين به پيش ڪنداسين. جيڪڏهن الله تعاليٰ پاڻ سڳورن ﷺ جي وسيلي کين گڏ ڪيو ته پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کان وڌيڪ ڪوبه معزز نه رهندو.“ ان کانپوءِ جڏهن اهي مديني واپس پهتا ته پاڻ سان اسلام جو نياپو به کڻي ويا. تنهن کانپوءِ اتي گهر گهر ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو چرچو ٿي ويو.<sup>(2)</sup>

**بيبي عائشه رضي الله عنها سان نڪاح:** - نبوت جي يارهين سال جي شوال مهيني ۾ پاڻ سڳورن ﷺ، بيبي عائشه رضي الله عنها سان نڪاح ڪيو. ان وقت بيبي صاحبه جي عمر ڇهه ورهيه هئي. پوءِ هجرت جي پهرئين سال شوال جي ئي مهيني ۾ مديني ۾ رخصتي ٿي. ان وقت سندن عمر نو ورهيه هئي.<sup>(3)</sup>

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - زادالمعاد (50/2) ابن هشام (1/429, 541).

<sup>2</sup> - ابن هشام (1/428, 430).

<sup>3</sup> - تليق الفهوم (ص: 10) صحيح بخاري (1/550).

## اسراء ۽ معراج

پاڻ سڳورن ﷺ جي دعوت ۽ تبليغ اڃا ڪاميابي ۽ ظلم ستر جي وچ وارن مرحلن مان گذري رهي هئي ۽ ڪاميابيءَ جا ڪرڻا نظر اچڻ شروع ٿي ويا هئا ته اهڙي وقت اسراءِ ۽ معراج جو واقعو ٿيو. معراج جي دور جي تعين ۾ سيرت نگارن ۾ ڪجهه اختلاف آهن. جيڪي هتي بيان ڪجن ٿا.

1. جنهن سال پاڻ سڳورن ﷺ کي نبوت عطا ٿي، ان سال ئي معراج جو واقعو پيش آيو. (اهو طبريءَ جو قول آهي)
2. نبوت کان پنج سال پوءِ معراج ٿيو. (اهو امام نووي ۽ امام قرطبيءَ جو قول آهي)
3. نبوت جي ڏهين سال 27 رجب تي ٿيو. (اهو علامه منصورپوريءَ جو بيان آهي)
4. هجرت کان سورنهن مهينا اڳ يعني نبوت جي ٻارهين سال رمضان ۾ ٿيو.
5. هجرت کان هڪ سال ٻه مهينا اڳ يعني نبوت جي تيرهين سال ربيع الاول ۾ ٿيو.

انهن مان پهريان ٽي قول ان ڪري صحيح نٿا مڃي سگهجن جو بيبي خديجه رضي الله عنها جي وفات پنج وقت نماز فرض ٿيڻ کان اڳ ٿي هئي ۽ ان تي سڀني جو اتفاق آهي ته پنج وقت نماز معراج جي رات فرض ٿي. ان جو مطلب اهو آهي ته بيبي خديجه رضي الله عنها جي وفات نبوت جي ڏهين سال رمضان ۾ ٿي، تنهنڪري معراج ان کانپوءِ ئي ٿيو هوندو. باقي رهيا آخري ٽي قول ته انهن مان ڪنهن کي ٻين تي ترجيح ڏيڻ لاءِ ڪوبه دليل نٿو ملي. باقي سورة اسراءِ جي بيان مان اندازو ٿئي ٿو ته اهو واقعو مڪي واري زندگيءَ جي آخري دور جو آهي. (1)

ائم حديث ان واقعي جو جيڪو تفصيل بيان ڪيو آهي، اسين اڳتي ان جو نت پيش ڪنداسين.

ابن قيم لکي ٿو ته صحيح قول مطابق پاڻ سڳورن ﷺ کي سندن جسر مبارڪ سميت براق تي سوار ڪري جبرئيل عليه السلام جي اڳواڻيءَ ۾ مسجد الحرام کان بيت المقدس تائين سير ڪرايو ويو. پوءِ پاڻ اتي لٿا ۽ براق کي مسجد جي دروازي جي ڪڙي ۾ ٻڌي، نبين کي نماز پڙهائون. تنهن کانپوءِ ان ئي رات پاڻ سڳورن ﷺ کي بيت المقدس مان پهريئن آسمان تي وٺي ويا. جبرئيل عليه السلام دروازو کولايو. پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ دروازو کوليو ويو. اتي پاڻ سڳورن ﷺ انسانن جي پيءُ حضرت آدم عليه السلام کي ڏٺو ۽ کين سلام ڪيائون. انهن، کين

<sup>1</sup> - قولن جي تفصيل لاءِ زادالمعاد (2/49) مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 148, 149) رحمة للعالمين (1/76).

پليڪار ڪئي، سلام جو جواب ڏنو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جو اقرار ڪيو. الله تعاليٰ، پاڻ سڳورن ﷺ کي انهن جي ساڄي طرف نڪرڻ ۽ ڪا به پاسي بدبختن جا روح ڏيکاريا. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي ٻئي آسمان تي آندو ويو ۽ دروازو کولايو ويو. پاڻ سڳورن ﷺ اتي حضرت يحييٰ بن زكريا عليه السلام ۽ حضرت عيسيٰ عليه السلام کي ڏٺو. ٻنهي سان ملاقات ڪئي ۽ سلام ڪيو. ٻنهي سلام جو جواب ڏنو، مبارڪون ڏنيون ۽ نبوت جو اقرار ڪيو. پوءِ ٽئين آسمان تي ويا، جتي پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت يوسف عليه السلام کي ڏٺو ۽ سلام ڪيو. انهن به جواب ڏنو ۽ مبارڪون ڏنيون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جو اقرار ڪيو. پوءِ چوٿين آسمان تي آندو ويو. اتي پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت ادريس عليه السلام کي ڏٺو ۽ کين سلام ڪيو. انهن جواب ڏنو ۽ پليڪار ڪئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جو اقرار ڪيو.

پوءِ کين پنجين آسمان تي آندو ويو. اتي حضرت هارون عليه السلام کي ڏٺائون ۽ سلام ڪيائون. انهن به موت ۾ سلام ڪري پليڪار ڪئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جو اقرار ڪيو. پوءِ پاڻ ڇهين آسمان تي آندا ويا. اتي سندن ملاقات حضرت موسيٰ عليه السلام سان ٿي. پاڻ سڳورن ﷺ کين سلام ڪيو. انهن جواب ۾ پليڪار ڪئي ۽ نبوت جو اقرار ڪيو. البتہ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ اتان اڳتي وڌيان ته اهي روئڻ لڳا. ڪانئن پڇيو ويو ته توهان ڇو پيا روئو؟ انهن ورائيو ته آئون ان ڪري پيو روئان جو هڪ نوجوان، جيڪو مون کانپوءِ مبعوث ڪيو ويو، ان جي امت جا ماڻهو منهنجي امت کان وڌيڪ انگ ۾ جنت ۾ ويندا.

ان کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي ستين آسمان تي پهچايو ويو. اتي پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت ابراهيم عليه السلام سان ملاقات ڪئي. پاڻ سڳورن ﷺ سلام ڪيو. انهن جواب ڏنو ۽ مبارڪون به ڏنيون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جو به اقرار ڪيو.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي سدرۃ المنتهيٰ تائين آندو ويو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ بيت المعمور کي ڀٽرو ڪيو ويو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي الله جبار جل جلاله جي درٻار ۾ آندو ويو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ، الله تعاليٰ جي ايترو ويجهو پهتا جو ٻن ڪمانن جي برابر يا ان کان به گهٽ فاصلو وڃي پڄيو. ان وقت الله تعاليٰ وحي نازل ڪئي ۽ پنجاه وقت نماز فرض ڪئي. ان کان پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ واپس ٿيا. جڏهن حضرت موسيٰ عليه السلام جي ويجهو لنگهيا ته انهن پڇيو ته الله تعاليٰ اوهان کي ڪهڙو حڪم ڏنو آهي؟ پاڻ سڳورن ﷺ ورائيو ته پنجاه نمازن جو. انهن پڇيو ته "توهان جي امت ان جو ست نه ساري سگهندي. پنهنجي پاڻهار وٽ وري وڃو ۽ پنهنجي امت لاءِ

گهٽتائيءَ جو سوال ڪريو. " پاڻ سڳورن ﷺ حضرت جبرئيل عليه السلام ڏانهن ڏنو، ڇڻ ڪانئن صلاح وٺي رهيا هجن. انهن اشارو ڪيو ته ها جي اوهان چاهيو ته. ان کانپوءِ جبرئيل عليه السلام، پاڻ سڳورن ﷺ کي وري الله تعاليٰ جي حضور ۾ وٺي آيا ۽ اهي پنهنجي جڳهه تي هئا. صحيح بخاريءَ جا لفظ اهي آهن. ان ڏهه نمازون گهٽائي ڇڏيون ۽ پاڻ سڳورا ﷺ هيٺ لٿا. جڏهن وري حضرت موسيٰ عليه السلام وٽان لنگهيا ته انهن کي خبر ڏنائون. انهن چيو ته: "توهان پنهنجي رب وٽ وري وڃو ۽ اڃا به گهٽتائيءَ جو سوال ڪريو." اهڙيءَ طرح حضرت موسيٰ عليه السلام ۽ الله عز و جل جي وچ ۾ اڇ وچ لڳاتار هلندي رهي. تان ته الله پاڪ رڳو پنج نمازون باقي رکيون. ان کانپوءِ به موسيٰ عليه السلام، پاڻ سڳورن ﷺ کي واپس وڃي نمازون گهٽائڻ جو مشورو ڏنو. پر پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هاڻي مون کي پنهنجي رب کان شرم پيو محسوس ٿئي. آئون ان تي راضي آهيان ۽ پنهنجو سر جهڪايان ٿو. پوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ ٿورو پري ويا ته آواز آيو ته مون پنهنجو فريضو مقرر ڪري ڇڏيو ۽ پنهنجن ٻانهن تان (فرض جو بار) گهٽائي ڇڏيو." (1)

ان بعد ابن قير ان بابت اختلاف جو ذڪر ڪيو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي رب کي ڏنو هو يا نه؟ پوءِ امام ابن تيميه جي هڪ تحقيق جو ذڪر ڪيو آهي، جنهن جو نت اهو آهي ته اک سان ڏسڻ جو مورڳوئي ڪو ثبوت نه آهي ۽ نه ڪو صحابه ان جي قائل آهن ۽ ابن عباس کان سڌو سنئون ڏسڻ ۽ دل سان ڏسڻ جا به قول نقل ڪيل آهن. انهن مان ڪوبه هڪڙي جي ابتڙ نه آهي. ان کان پوءِ امام ابن قير لکي ٿو ته سورة نجر ۾ الله تعاليٰ جو اهو ارشاد آهي ته:

﴿ثُمَّ دَنَا فَتَدَلَّى﴾ (8) (النجم)

”وري ويجهو ٿيو پوءِ هيٺ لٿو.“

ته اهو ان ويجهڙائپ کان ڌار آهي، جيڪا معراج جي واقعي ۾ ٿي هئي. ڇو ته سورة نجر ۾ جنهن ويجهڙائپ جو ذڪر آهي، ان مان مراد حضرت جبرئيل عليه السلام جي قربت ۽ ويجهڙائپ آهي. جيئن بيبي عائشه رضي الله عنها ۽ ابن مسعود رضي الله عنه فرمايو آهي: ۽ ان جي برخلاف معراج واري حديث ۾ جنهن قربت ۽ ويجهڙائپ جو ذڪر آهي، ان بابت واضح ٿيل آهي ته اها رب پاڪ سان قربت ۽ ويجهڙائپ هئي ۽ سورة نجر ۾ ان تي مورڳو ڳالهائيو ٿي نه ويو آهي. پر ان ۾ اهو چيو ويو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ بيو پيرو ڪين سڌرة المنتهي وٽ ڏنو ۽ اهو حضرت

1 - زاد المعاد (2/47، 48).

جبرئيل عليه السلام هو. کين محمد ﷺ اصلي شکل ۾ بہ پيرا ڏنو هو. هڪ ڀيرو زمين تي ۽ هڪ ڀيرو سدره المنتهي وٽ. (والله اعلم). (۱)

هن ڀيري بہ پاڻ سڳورن ﷺ جي سڀنيو چيرڻ جو واقعو پيش آيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي هن سفر دوران گهڻيون ئي شيون ڏيکاريون ويون.

پاڻ سڳورن ﷺ کي کير ۽ شراب پيش ڪيو ويو. پاڻ سڳورن ﷺ کير قبوليو. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ويو ته اوهان کي فطرت جي راه ڏسي وئي يا توهان فطرت جي راه ڏسي ورتي ۽ ياد رکو ته جيڪڏهن پاڻ سڳورا ﷺ شراب وٺن ها ته سندن امت گهمراه ٿي وڃي ها.

پاڻ سڳورن ﷺ جنت ۾ چار نهرون ڏٺيون، بہ ظاهري ۽ بہ باطني. ظاهري نيل ۽ فرات هيون. (ان جو مطلب شايد اهو هو ته پاڻ سڳورن ﷺ جي رسالت نيل ۽ فرات جي سرسبز وادين کي پنهنجو وطن بنايندي. يعني هتي جا رهاڪو نسل در نسل مسلمان ٿيندا. اهو نہ ته انهن ٻنهي نهرن جي نڪرڻ جو هنڌ جنت ۾ آهي). (والله اعلم)

پاڻ سڳورن ﷺ مالڪ نالي جنت جو داروغو بہ ڏٺو، جيڪو کلندو ڪونه هو ۽ نہ ئي سندس منهن تي خوشي ۽ تازگي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ جنت ۽ جهنم بہ ڏٺا.

پاڻ سڳورن ﷺ اهي ماڻهو بہ ڏٺا، جيڪي ظلم ڪري يتيمن جو مال کائي ويندا هئا. انهن جا چپ انن جي چپن جيئن هئا ۽ اهي پنهنجي وات ۾ پٿرن جهڙا ٿانڊا وجهي رهيا هئا، جيڪي ٻئي طرف انهن جي ڪاڪوس واري جاء تان نڪري رهيا هئا.

پاڻ سڳورن ﷺ وياچ خورن کي بہ ڏٺو. انهن جا پيٽ ايڏا وڏا هئا جو اهي پنهنجي جاء تان هيڏانهن هوڏانهن چري بہ نٿي سگهيا ۽ جڏهن فرعون جي لشڪر کي باه ۾ وجهڻ لاء وٺي وڃڻ لڳا ته اهي وتائين گذرڻ مهل کين لتاڙي ٿي ويا.

پاڻ سڳورن ﷺ زانين کي بہ ڏٺو. انهن اڳيان تازو ۽ چرٻيءَ وارو گوشت هو ۽ ان سان گڏوگڏ سڙيل چيچڙا بہ هئا. اهي ماڻهو تازو گوشت چڙي سڙيل چيچڙا کائي رهيا هئا.

پاڻ سڳورن ﷺ انهن عورتن کي بہ ڏٺو، جيڪي پنهنجن مڙسن جي نالن تي ٻين جا ٻار داخل ڪنديون هيون. (يعني ٻين کان زنا ڪرائي پيٽ سان ٿينديون هيون، پر بي خبريءَ ڪري ٻار سندن مڙسن جا ليکيا ويندا هئا.) پاڻ سڳورن ﷺ ڏٺو ته سندن ڇاتين ۾ وڏا وڏا مڙيل ڪانٽا چپي کين آسمان ۽ زمين جي وچ ۾ لتڪايو ويو آهي.

<sup>1</sup> - زاد المعاد (47/2، 48) ۽ صحيح بخاري (50/1، 455، 456، 470، 471، 481، 548، 549، 550 - 684/2)، صحيح مسلم (91/1، 92، 93، 94، 95، 96).



پاڻ سڳورن ﷺ اچڻ وڃڻ مهل مڪي وارن جو هڪ قافلو به ڏٺو ۽ انهن جو هڪ اٺ به ڏٺو، جيڪو پڙڪو کائي پيڇي ويو هو. پاڻ سڳورن ﷺ انهن جو پاڻي به پيتو جو هڪ ڍڪيل تانوَ ۾ رکيل هو. ان وقت قافلي وارا ستل هئا. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ تانو جيئن جو تيسن ڍڪي ڇڏيو. اها ڳالهه معراج جي صبح پاڻ سڳورن ﷺ جي دعويٰ جي سچائيءَ لاءِ دليل ثابت ٿي. (1)

علامه ابن قير جو چوڻ آهي ته جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ صبح جو پنهنجي قوم کي انهن وڏين وڏين نشانين جي خبر ڏني، جيڪي الله عزوجل پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏڪاريون هيون ته قوم جي انڪار ۽ تڪليف پهچائڻ ۾ واڌ اچي وئي. انهن پاڻ سڳورن ﷺ کان سوال ڪيو ته بيت المقدس جي ڪيفيت ٻڌايو. ان تي الله تعاليٰ پاڻ سڳورن ﷺ آڏو بيت المقدس ظاهر ڪيو. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ قوم کي ان جون نشانينون ٻڌائڻ شروع ڪيون ۽ اهي ڪنهن به ڳالهه کي رد نه ڪري سگهيا. پاڻ سڳورن ﷺ ايندي ويندي سندن هڪ قافلي کي ڏسڻ جو به ذڪر ڪيو ۽ ٻڌايو ته اهو ڪهڙي وقت پهچندو. پاڻ سڳورن ﷺ ان اٺ جا پار پتا به ٻڌايا، جيڪو قافلي کان اڳيان اچي رهيو هو. پوءِ جيئن پاڻ سڳورن ﷺ ٻڌايو هو، تيئن ئي ٿيو. پر پوءِ به سندن نفرت نه گهٽ ٿي ۽ ڪفر ڪندي ڪجهه به مڃڻ کان انڪار ڪري ڇڏيائون. (2)

جيو وڃي ٿو ته ابوبڪر رضه کي صديق جو خطاب ان ئي موقعي تي ڏنو ويو. ڇو ته ان، هن واقعي جي اهڙي وقت تصديق ڪئي، جڏهن ٻيا سڀ تڪذيب ڪري رهيا هئا. (3)

معراج جو فائدو ٻڌائيندي جيڪا سڀ کان ننڍي پر عظيم ڳالهه ڪئي وئي، اها هيءَ آهي ته:

﴿لُئْرِیْهُ مِنْ آیَاتِنَا (1)﴾ (الإسراء)

”ته کيس پنهنجون نشانينون ڏيکاريون.“

ٻين نبين جي باري ۾ به الله تعاليٰ جي اها ئي سنت آهي. ارشاد آهي ته:

﴿وَكَذَلِكَ نُرِيْ اِبْرَاهِيْمَ مَلَكُوتَ السَّمَاوَاتِ وَالْاَرْضِ وَكَانَ مِنَ الْمُوقِنِيْنَ (75)﴾ (الانعام)

”۽ اهڙي طرح ابراهيم عيله السلام کي آسمانن ۽ زمين جي بادشاهي ڏيکاريون ٿي (هن لاءِ) ته (اهو) يقين ڪندڙن مان ٿئي.“

۽ موسيٰ عليه السلام کي فرمايو ته:

﴿لُئْرِیْكَ مِنْ آیَاتِنَا الْكُبْرٰی (23)﴾ (طه)

”ته توکي پنهنجين وڏين نشانين مان ڏيکاريون.“

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (50/1)، ابن هشام (397/1، 402، 406) ۽ تفسير جا ڪتاب، تفسير سورة اسراء.

<sup>2</sup> - زادالمعاد (48/1) ۽ صحيح بخاري (684/2)، صحيح مسلم (96/1)، ابن هشام (403، 402/1).

<sup>3</sup> - ابن هشام (399/1).

پوءِ انهن آيتن ڏيکارڻ جو مقصد الله تعاليٰ پنهنجي ارشاد ﴿وَلِيَكُونَ مِنَ الْمُؤْمِنِينَ﴾ ذريعي واضح ڪيو. تنهنڪري جڏهن نبي سڳورن جي علميت کي ان طرح جي مشاهدن جي سند حاصل ٿي وڃي ٿي ته کين عين اليقين جو مقام ملي وڃي ٿو، جنهن جو تصور ڪرڻ ممڪن ناهي. اهو ئي سبب آهي جو نبي سڳورا، الله جي راه ۾ اهڙيون اهڙيون سختيون سهي ويندا هئا، جن کي ڪو ٻيو سهي نٿي سگهيو. اصل ۾ سندن نگاهن ۾ دنيا جون سڀ قوتون ملي به مچر جي ڀر جيتري به حيثيت نٿي اختيار ڪري سگهيون. ان ڪري ئي اهي انهن قوتن پاران مليل سختين ۽ تڪليفن جي ڪابه پرواهه نه ڪندا هئا.

معراج جي واقعي ۾ لڪل جيڪي ٻيون حڪمتون ۽ اسرار ڪم ڪري رهيا هئا، انهن تي شريعت جي ڪتابن ۾ بحث ٿيڻ گهرجي. باقي ڪجهه خاص خاص حقيقتون اهڙيون آهن، جيڪي هن ڀلاري سفر جي سرچشمن مان ڦٽي سيرت نبوي جي گلشن ڏانهن روان دوان آهن. ان ڪري هتي مختصر لکڻ ضروري آهن.

اوهان ڏسندا ته الله تعاليٰ سورة اسراءِ ۾ اسراءِ جو واقعو رڳو هڪ آيت ۾ ٻڌائي ڪلام جو رخ يهودين جي سياهه ڪارين ۽ ڏوهن ڏانهن موڙي ڇڏيو آهي. پوءِ انهن کي ٻڌايو ويو آهي ته هي قرآن ان راه جي هدايت ڏئي ٿو، جيڪا سڀ کان سڌي ۽ صحيح راه آهي. قرآن پڙهڻ واري کي ڪڏهن ڪڏهن شڪ پوي ٿو ته ٻئي ڳالهين بي جوڙ آهن، پر حقيقت ائين نه آهي. پر الله تعاليٰ هن طريقي سان اهو اشارو ڪري رهيو آهي ته هاڻي يهودي، انسانن جي اڳواڻيءَ کان معزول ٿيڻ وارا آهن. ڇو ته انهن اهڙا اهڙا ڏوهه ڪيا آهن، جن جي ڪري هو ان منصب جي لائق نه رهيا آهن. ان ڪري هاڻي اهو منصب پاڻ سڳورن ﷺ کي سونپيو ويندو ۽ حضرت ابراهيم عليه السلام جي دين جي دعوت جا ٻئي مرڪز سندن هٿ هيٺ ڏنا ويندا. ٻين لفظن ۾ ائين ڪڻي چئجي ته روحاني قيادت هڪ امت کان ٻيءَ امت ۾ منتقل ڪئي ويندي.

پر اها قيادت ڪيئن ٿي منتقل ٿي سگهي، جڏهن ته هن امت جو رسول مڪي جي جبلن تي ماڻهن جي وچ پئي ڦريو؟ ان وقت اهو هڪ سوال هو، جيڪو هڪ ٻي حقيقت تان پردو کڻي رهيو هو ته اسلامي دعوت جي هڪ دور جي پڄاڻي ٿيڻ واري آهي ۽ ٻيو دور شروع ٿيڻ وارو آهي، جنهن جو طريقو (رستو) پهرئين کان مختلف هوندو. ان ڪري اسين ڏسون ٿا ته ڪن آيتن ۾ مشرڪن کي ڪليل ڏمڪيون ڏنيون ويون آهن. ارشاد آهي ته: ﴿وَإِذَا أَرَدْنَا أَنْ نُهْلِكَ قَرْيَةً أَمَرْنَا مُتْرَفِيهَا فَفَسَقُوا فِيهَا فَحَقَّ عَلَيْهَا الْقَوْلُ فَدَمَّرْنَاَهَا تَدْمِيرًا﴾ (16) (الاسراء)

”۽ جڏهن اسين ڪنهن وسنديءَ کي ناس ڪرڻ گهرندا آهيون (تڏهن) انهن مان آسودن کي (پيغمبرن جي معرفت پنهنجي عبادت جو) حڪم ڪندا آهيون پوءِ منجهس

نافرماني ڪندا آهن تنهن ڪري مٿس عذاب لازم ٿيندو آهي پوءِ چڱي طرح ان جي پاڙ پٽيندا آهيون.“

﴿وَكَمْ أَهْلَكْنَا مِنَ الْقُرُونِ مِنْ بَعْدِ نُوحٍ وَكَفَىٰ بِرَبِّكَ بِذُنُوبِ عِبَادِهِ خَبِيرًا بَصِيرًا﴾ (17) (الإسراء)

”۽ ڪيترائي جهانن مان نوح کان پوءِ ناس ڪياسون ۽ تنهنجو پالڻهار پنهنجن ٻانهن جي گناهن جي خبر رکندڙ ڏسندڙ ڪافي آهي.“

انهن آيتن سان گڏوگڏ ڪجهه اهڙيون آيتون به آهن، جن ۾ مسلمانن کي اهڙا تمدني طور ۽ طريقا ٻڌايا ويا آهن، جن تي اسلامي معاشري جي تعمير ٿيڻي هئي. جڻ اهي ڪنهن اهڙي وطن ۾ نڪاڻو ڪري چڪا هجن، جتي هر لحاظ سان سندن معاملن سندن هٿ ۾ هجن. ان ڪري ئي انهن آيتن ۾ اشارو آهي ته: پاڻ سڳورا ﷺ تمام جلد اهڙي امن واري جاءِ ۽ پناهه وارو هنڌ حاصل ڪندا، جتي پاڻ سڳورن ﷺ جي دين کي سگهه ملندي.

اها اسراءِ ۽ معراج جي ڀلائي واقعي جي ته ۾ لڪل حڪمتن ۽ رازن مان هڪ راز ۽ هڪ اهڙي حڪمت آهي، جنهن جو اسان جي موضوع سان سڌو سنئون واسطو آهي. ان ڪري ان جو بيان ڪرڻ مناسب سمجهيم. ان طرح ئي ٻن وڏين حڪمتن تي نظر وجهڻ کانپوءِ اسان اها راءِ قائم ڪئي آهي ته اسراءِ جو هي واقعو يا ته بيعت عقبه اوليٰ کان ڪجهه اڳ جو آهي يا عقبه جي ٻنهي بيعتن جي وچ جو آهي. (والله اعلم)

## پهرين بيعت عقبه (1)

اسان ٻڌائي آيا آهيون ته نبوت جي يارهين سال حج جي ڏينهن ۾ يثرب جي ڇهن ماڻهن اسلام قبوليو هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان وعدو ڪيو هيائون ته پنهنجي قوم ۾ وڃي پاڻ سڳورن ﷺ جي رسالت جي تبليغ ڪندا. ان جو نتيجو اهو نڪتو ته ٻئي سال جڏهن حج جا ڏينهن آيا (يعني ذوالحج ٻارنهن نبوي سال، بمطابق جولاءِ 621ع) ته ٻارنهن ڄڻا پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيا. انهن ۾ حضرت جابر بن عبدالله بن رثاب کي ڇڏي باقي پنج ساڳيا گڏريل سال وارا هئا. انهن کانسواءِ ست ڄڻا نوان هئا، جن جا نالا هن ريت آهن:

1. معاذ ﷺ بن الحارث ابن عفرآءِ قبيلو بني النجار (خزرج)
2. ذڪوان ﷺ بن عبدالقيس قبيلو بني زريق (خزرج)
3. عبادۃ ﷺ بن صامت قبيلو بني غنم (خزرج)
4. يزيد ﷺ بن ثعلبه بني غمير جو حليف (خزرج)
5. عباس ﷺ بن عبادۃ بن نضلہ قبيلو بني سالم (خزرج)
6. ابو الهيشر ﷺ بن التهيان قبيلو بني عبدالاشهل (اوس)
7. عويمر ﷺ بن ساعده قبيلو بني عمرو بن عوف (اوس)

انهن مان رڳو آخري ٻه ڄڻا اوس قبيلي جا هئا، باقي سڀ خزرج قبيلي جا هئا. (2) انهن، پاڻ سڳورن ﷺ سان مني ۾ عقبه وٽ ملاقات ڪئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪن ڳالهين تي بيعت ڪئي. اهي اهي ئي ڳالهيون هيون، جن کي صلح حديبيه ۽ مڪي جي فتح وقت عورتن کان بيعت ورتي وئي.

عقبه جيان بيعت جو تفصيل صحيح بخاريءَ ۾ حضرت عبادۃ بن صامت ﷺ کان آيل آهي، جنهن فرمايو ته: "اچو! مون سان ان ڳالهه جي بيعت ڪريو ته الله سان ڪنهن به شيءِ کي شريڪ نه ڪندو، چوري نه ڪندو، زنا نه ڪندو، پنهنجي اولاد کي قتل نه ڪندو، پنهنجن هٿن پيرن منجهان

<sup>1</sup> - عقبه، (ع - ق - ب تنهي تي زير) گهاتي، سوڙهي پهاري لنگهه کي چئبو آهي. مڪي کان مني ايندي ويندي مني جي الهندي ڪناري تي هڪ سوڙهي جابلو لنگهه تان لنگهڻو پوي ٿو. ان جو نالو عقبه مشهور آهي. ذوالحج جي ڏهين تاريخ تي جنهن جمره العقبه کي پٿريون هڻيون آهن، اهو به ان ئي لنگهه جي منڍ تي آهي. ان ڪري ان کي جمره العقبه پڻ چئجي ٿو. ان جمره جو نالو جمره الكبرى به آهي. باقي ٻه جمره ان جي اوڀر ۾ ٿورو پري آهن. جيئن ته مني جو سڄو ميدان، جتي حاجي رهن ٿا، انهن ٽنهي جمرات جي اوڀر ۾ آهي. ان ڪري سڄي اڄ وڃ ان پاسي ئي ٿئي ٿي ۽ پٿريون هڻڻ کان پوءِ ان طرف ماڻهن جي اڄ وڃ ختم ٿيو وڃي. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ بيعت وٺڻ لاءِ ان جڳهه جي چونڊ ڪئي. ان مناسبت ڪري ان کي بيعت عقبه چئجي ٿو. هاڻي جبل کتي اتان وڪرا رستا ٺاهيا ويا آهن.

<sup>2</sup> - رحمة للعالمين (85/1) ابن هشام (433\_431/1).

گهڙي ڪنهن تي بهتان نه آڻيندو ۽ ڪنهن چڱي ڳالهه ۾ منهنجي نافرمانِي نه ڪندو. جيڪو ماڻهو اهي سڀ شرط پورا ڪندو، الله ان کي اجر ڏيندو ۽ جيڪو ماڻهو انهن مان ڪو ڪم ڪري ويهندو ته ان کي دنيا ۾ ئي ان جي سزا ڏني ويندي ته اها ان جو ڪفارو هوندي ۽ جيڪو ماڻهو ان مان ڪو ڪم ڪري ويندو ۽ الله ان تي ڊڪ رکندو ته ان جو معاملو الله جي حوالي آهي. وڻيس ته سزا ڏيس ۽ وڻيس ته معاف ڪري ڇڏيس. " حضرت عبادۃ الله فرمائي ٿو ته: اسان ان تي پاڻ سڳورن ﷺ سان بيعت ڪئي. (۱)

مديني ۾ اسلام جو سفير:- بيعت پوري ٿي ۽ حج به ختم ٿيو ته پاڻ سڳورن ﷺ انهن همراهن سان گڏ يثرب ڏانهن پهريون سفير موڪليو، جيئن اهو مسلمانن کي اسلامي حڪم جي تعليم ڏي ۽ انهن کي دين سيکاري ۽ جيڪي ماڻهو اڃا تائين مشرڪ آهن، انهن ۾ اسلام جي اشاعت ڪري. پاڻ سڳورن ﷺ ان ڪم لاءِ حضرت مصعب بن عمير عبدري ﷺ کي چونڊيو جيڪو اوائل مسلمانن مان هو.

وڏي ڪاميابي:- حضرت مصعب بن عمير ﷺ مديني پهتو ته حضرت اسعد بن زرارۃ ﷺ جي گهر ۾ رهيو. پوءِ ٻنهي ملي يثرب وارن آڏو جوش ۽ جذبي سان اسلام جي تبليغ ڪئي. حضرت مصعب ﷺ "مقري" جي لقب سان مشهور ٿيو. (مقريءَ جي معنيٰ آهي پڙهائڻ وارو. تڏهن استاد کي مقريءَ چئبو هو.)

تبليغ جي سلسلي ۾ سندن ڪاميابيءَ جو هڪ شاندار واقعو اهو آهي ته هڪ ڏينهن پاڻ حضرت اسعد بن زرارۃ ﷺ سان گڏ بني الاشهل ۽ بني ظفر جي پاڙي ۾ ويا ۽ اتي بني ظفر جي هڪ باغ ۾ مرق نالي ڪوه وٽ ويهي رهيا. وٽن ڪجهه مسلمان اچي گڏ ٿيا. ان مهل تائين بني عبدالاشهل جا ٻئي سردار يعني حضرت سعد بن معاذ ﷺ ۽ حضرت اسيد بن حضير ﷺ مسلمان نه ٿيا هئا ۽ اڃا مشرڪ هئا. جڏهن کين خبر پئي ته حضرت سعد ﷺ، حضرت اسيد ﷺ کي چيو ته ٿورو وڃي انهن ٻنهي کي دابا ڏئي اچ، جيڪي اسانجي اڀوجه ماڻهن کي ورغلائڻ آيا آهن. کين پاڙي ۾ اچڻ کان به روڪي ڇڏ. جيئن ته اسعد بن زرارۃ ﷺ منهنجو ماسات آهي، (ان ڪري توکي پيو موڪليان) نه ته اهو ڪم آئون پاڻ ڪريان ها.

اسيد ﷺ پنهنجو حربو کنيو ۽ انهن ٻنهي وٽ پهتو. حضرت اسعد ﷺ، کين ايندو ڏسي حضرت مصعب ﷺ کي چيو ته: "اهو پنهنجي قوم جو سردار تو وٽ پيو اچي. ان بابت الله تعاليٰ سان سچائي اختيار ڪجان." حضرت مصعب ﷺ چيو ته: "جي هيءُ ويٺو ته ساڻس ڳالهائيندس."

<sup>1</sup> - صحيح بخاري، (7/1)، (550/1)، (551)، (727/2)، (1003/2).

اسيد ﷺ ويجهو پهتو کين ډڙکا ډيڻ لڳو. چيائين ته: "توهان ٻئي اسان وټ چو آيا آهيو؟ اسانجي ابوجه ماڻهن کي بيوقوف پيا کريو؟ ياد رکو! جيڪڏهن جان پياري اتو هتان هليا ويو." حضرت مصعب ﷺ چيو ته: "چو نه اوهان ويهو ۽ ڪجهه ٻڌي وٺو. جيڪڏهن ڪا ڳالهه وڻي ته قبولجو نه وڻي ته ڇڏي ڏجو." حضرت اسيد ﷺ چيو ته: "ڳالهه ته انصاف واري آهي. ان کانپوءِ حرو زمين ۾ هڻي ويهي رهيو." هاڻي حضرت مصعب ﷺ اسلام تي ڳالهائڻ شروع ڪيو ۽ قرآن پڙهي ٻڌايو. سندن چوڻ آهي ته الله جو قسم! اسان حضرت اسيد ﷺ جي ڳالهائڻ کان اڳ ئي سندن منهن جي رونق مان اسلام آڻڻ جو پتو لڳائي ڇڏيو هو. ان کانپوءِ ان زبان کولي ته فرمايائين ته: "اهو ته ڏاڍو عمدو ۽ خوبتر آهي. توهان ڪنهن کي ان دين ۾ ڪيئن داخل ڪندا آهيو؟" انهن چيو ته: "اوهان اتي تڙ ڪريو ۽ پاڪ ڪپڙا پائي پوءِ حق جي شهادت ڏيو. پوءِ ٻه رڪعتون نماز پڙهو." هن اتي تڙ ڪيو ۽ ڪپڙا پاڪ ڪيا. شهادت جو ڪلمو پڙهيو ۽ ٻه رڪعتون نماز پڙهي. پوءِ چيائين! منهنجي پٺيان هڪ ٻيو ماڻهو به آهي، جيڪڏهن اهو تنهنجو پوئلڳ ٿي وڃي ته هن جي قوم جو ڪوبه ماڻهو پٺيان نه رهندو ۽ آئون ان کي اجهو تو توهان وٽ موڪليان. (اشارو حضرت سعد بن معاذ ﷺ ڏانهن هو)

ان کان پوءِ حضرت اسيد ﷺ پنهنجو حريو کنيو ۽ موٽي حضرت سعد ﷺ وٽ آيو، جيڪو پنهنجي قوم سان گڏ ڪچهريءَ ۾ ويٺو هو. (حضرت اسيد ﷺ کي ڏسي) چيائين "آئون الله جو قسم ڪڍي چوان ٿو ته هيءُ همراهه جهڙو منهن ڪڍي اوهان وٽ اچي پيو. اهو اهو منهن نه آهي، جيڪو ڪڍي ويو هو." پوءِ جڏهن حضرت اسيد ﷺ ميڙ وٽ پهتو ته حضرت سعد ﷺ کانئن پڇيو ته ڇا ڪري آئين؟ هن ورائيو ته: "مون انهن کي روڪي ڇڏيو آهي ۽ انهن به چيو آهي ته اهو ئي ڪندا، جيڪو اوهان چاهيندا ۽ مونکي پتو پيو آهي ته بني حارثه جا ڪي ماڻهو اسعد بن زراره ﷺ کي قتل ڪرڻ ويا آهن ۽ ان جو ڪارڻ اهو آهي ته اهي ڄاڻن ٿا ته اسعد اوهانجو ماسات آهي، ان ڪري هو چاهين ٿا ته توهان جو عهد ٽوڙي وجهن." اهو ٻڌي سعد ﷺ ڪاوڙ ۾ ٽپ ڏئي اٿيو ۽ نيزو ڪڍي سڌو وٽن پهتو. ڏنائين ته ٻئي ڇڻا مزي سان ويٺا آهن. پاڻ سمجهي ويو ته اسيد ﷺ جي مرضي اها هئي ته پاڻ به انهن جون ڳالهيون ٻڌي پر انهن وٽ پهچي ډڙکا ډيڻ شروع ڪيائين. پوءِ اسعد بن زراره ﷺ کي مخاطب ٿي چيائين ته: "اي ابو امامه! الله جو قسم! جيڪڏهن تنهنجي ۽ منهنجي وچ ۾ مائٽي نه هجي ها ته تون مون مان اها اميد به نه رکين ها جو اسانجي پاڙي ۾ اچي اهڙيون حرڪتون ڪرين ها، جيڪي اسان کي نٿيون وڻن."

هوڏانهن حضرت اسعد رضي الله عنه، حضرت مصعب رضي الله عنه کي پهرين ٻڌائي ڇڏيو هو ته: الله جو قسم! اسان وٽ هڪ اهڙو سردار اچي پيو، جنهن جي پٺيان سندس سڄي قوم آهي. جيڪڏهن هن تنهنجي ڳالهه مڃي ورتي ته پوءِ انهن مان ڪير به پوئتي نه رهندو. ان ڪري حضرت مصعب رضي الله عنه، حضرت سعد رضي الله عنه کي چيو ته: "چون ته اوهان هتي ويهيو ۽ منهنجون ڪي ڳالهيون ٻڌي وٺو. جيڪڏهن ڪا ڳالهه وٺي ته قبول ڇو نه وٺي ته اسان اها ڳالهه نه ڪنداسين." حضرت سعد رضي الله عنه چيو ته: "ڳالهه ته صحيح ٿو چوڻ." ان کانپوءِ پنهنجو نيزو زمين ۾ هڻي ويٺو. حضرت مصعب رضي الله عنه کين اسلام جو پيغام پهچايو ۽ کين پڙهي ٻڌايو. سندن چوڻ آهي ته اسان کي حضرت سعد رضي الله عنه جي ڳالهائون کان اڳ ئي سندن چهره جي رونق مان اسلام قبول ٿي جي پروڙ پئجي وئي هئي. ان کانپوءِ هن زبان کولي ۽ فرمايو ته: "توهان اسلام قبول ٿي مهل ڇا ڪندا آهيو؟" انهن چيو ته توهان تڙ ڪريو، ڪپڙا پاڪ ڪريو، پوءِ حق جي شاهدي ڏيو، پوءِ ٻه رڪعتون نماز پڙهو." حضرت سعد رضي الله عنه ائين ڪيو. ان کانپوءِ پنهنجو نيزو کڻي پنهنجي قوم ۾ آيو. ماڻهن ڏسي چيو ته: "الله جو قسم! سعد رضي الله عنه جيڪو چهره کڻي ويو هو، ان بدران پيو کڻي موٽيو آهي." پوءِ جڏهن حضرت سعد رضي الله عنه ميڙ وٽ پهتو ته چيائين ته: "اي بني الاشهل! توهان جي مون بابت ڪهڙي راءِ آهي؟" انهن چيو ته "توهان اسانجا سردار آهيو، سڀ کان وڌيڪ سمجهه وارا آهيو ۽ اسان ۾ سڀ کان پلارا آهيو." هن چيو ته "چڱو ته پوءِ ٻڌو! هاڻي توهان جي مردن ۽ عورتن سان ڳالهائڻ مون لاءِ تيسڻائين حرام آهي، جيستائين توهان الله ۽ ان جي رسول تي ايمان نٿا آڻيو." سندن ان ڳالهه جو اثر اهو نڪتو جو شام ٿيندي ٿيندي ان قبيلي جو ڪوبه مرد ۽ ڪابه عورت اهڙي نه بچي، جا مسلمان نه ٿي هجي. رڳو هڪ ماڻهو اصيرم هو، جيڪو جنگ احد تائين مسلمان نه ٿيو. پوءِ احد واري ڏينهن هن اسلام قبوليو ۽ جنگ ۾ وڙهندي شهيد ٿيو. ان اڃا الله تعاليٰ جي حضور ۾ هڪ به سجدو نه ڪيو هو. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: هن عمل ٿورو ڪيو، پر اجر وڏو پاتو.

حضرت مصعب رضي الله عنه، حضرت اسعد رضي الله عنه بن زرارہ جي گهر ۾ ئي رهي اسلام جي تبليغ ڪندو رهيو. تان ته انصارن جو ڪوبه اهڙو گهراڻو نه بچيو، جنهن ۾ ڪجهه مرد ۽ عورتون مسلمان نه ٿيا هجن. رڳو بني اميه بن زيد ۽ خطمه ۽ وائل جا ڪي گهراڻا وڃي رهيا. مشهور شاعر قيس بن اسلم انهن جو ئي ماڻهو هو ۽ هي ماڻهو سندن ڳالهه مڃيندا هئا. ان شاعر کين خندق جي جنگ (سن 5 هجري) تائين اسلام کان پري رکيو. بهرحال ٻئي سال حج جي موسم يعني نبوت جي تيرهين سال جي صبح ٿيڻ کان اڳ حضرت مصعب بن عمير رضي الله عنه ڪاميابيءَ جون خبرون کڻي پاڻ

سڳورن ﷺ وٽ مڪي پهتو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي يثرب جي قبيلن جي حالتن، انهن جي جنگي ۽ بچاءَ جي صلاحيتن ۽ خير جي صلاحيتن جو تفصيل ٻڌايائين.<sup>(1)</sup>

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/435، 2/438، 90/2) - زاد المعاد (2/51).



## بي بيعت عقبه

نبوت جي تيرهين سال حج جي ڏينهن (جون 622ع) ۾ يثرب جا ستر کان وڌيڪ ماڻهو حج ڪرڻ لاءِ مڪي آيا. اهي پنهنجي قوم جي مشرڪ حاجين سان گڏجي آيا هئا. اهي يثرب مان ئي يا رستي ۾ ئي هڪ ٻئي کان پڇڻ لڳا ته اسين ڪيستائين پاڻ سڳورن ﷺ کي ائين ئي مڪي ۾ جبلن جا چڪر لڳائيندي ۽ پريشان ٿيندي ڏسي ماڻ رهنداسين. پوءِ جڏهن اهي مسلمان مڪي پهتا ته لڪ چپ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان ملڻ شروع ڪيائون ۽ نيٺ ان ڳالهه تي متفق ٿيا ته ٻئي ڌريون تشریح جي ڏهاڙن (1) جي وڃڻين ڏينهن يعني 12 ذی الحج تي منيٰ ۾ حمره اوليٰ يعني حمره عقبه واري لنگهه وٽ جمع ٿيندا ۽ اها گڏجاڻي رات جي ڳجهيءَ طرح ٿيندي.

اچو ته ان تاريخي ميڙاڪي جو احوال، انصارن جي هڪ اڳواڻ جي زباني ٻڌون جو اهو ئي ميڙ هو، جنهن اسلام ۽ بت پرستيءَ جي جنگ ۾ زماني جو رخ موڙي ڇڏيو هو.

حضرت ڪعب بن مالڪ رضي الله عنه جو بيان آهي ته "اسين حج لاءِ هلياسين. پاڻ سڳورن ﷺ سان تشریح جي ڏهاڙن جي وچين رات جو ملڻ جو فيصلو ٿيو ۽ نيٺ اها رات آئي، جنهن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان ملاقات طئه هئي. اسان سان، اسانجو هڪ معزز سردار عبدالله بن حرام به هو، جيڪو ان وقت تائين مسلمان نه ٿيو هو. اسان ان کي ساڻ ڪنيو. اسانجي قوم جا جيڪي مشرڪ هئا، اسان انهن کان سڄو معاملو لڪايو. پر اسان عبدالله بن حرام سان ڳالهه ٻولهه ڪئي ۽ کيس چيو ته اي ابو جابر! اوهان، اسانجا هڪ معزز ۽ شريف اڳواڻ آهيو ۽ اوهانکي اوهانجي موجوده حالت مان ڪڍڻ پيا چاهيون، جيئن اوهان سڀاڻي باهه جو ڪاڄ نه ٿي وڃو. ان کانپوءِ اسان کيس اسلام جي دعوت ڏني ۽ ٻڌايو ته اڄ عقبه ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان اسانجي ملاقات ٿيندي. هن اسلام قبوليو ۽ اسان سان گڏ عقبه هليو ۽ نقيب پڻ چونڊجي ويو."

حضرت ڪعب رضي الله عنه واقعي جو تفصيل هن طرح بيان ڪري ٿو ته "اسان معمول مطابق ان رات پنهنجي قوم جي ماڻهن سان ديرن ۾ ستاسين، پر جڏهن رات جو ٿيون پهر گذريو ته پنهنجن ديرن مان نڪري طئه ٿيل جڳهه تي پهتاسين. اسين ان طرح لڪي لڪي نڪتاسين، جيئن جهرڪيون، آڪيري مان نڪرنديون آهن. تان ته سڀ اچي عقبه ۾ گڏ ٿياسين. اسان ڪل پنجهتر ڇڻا هئاسين. ٽيهتر مرد ۽ ٻه عورتون. هڪ ام عماره رضي الله عنها نسيه بنت ڪعب، جيڪا بنو مازن بن نجار قبيلي مان هئي ۽ ٻي ام منيع رضي الله عنها اسماء بنت عمرو، جنهن جو تعلق بنو سلمه قبيلي سان هو.

<sup>1</sup> - ذوالحج مهيني جي يارهين، ٻارهين ۽ تيرهين تاريخن کي تشریح وارا ڏينهن چئبو آهي.

اسين گهاتي ۽ وٽ گڏ ٿي پاڻ سڳورن ﷺ جو انتظار ڪرڻ لڳاسين. نيٺ اهو وقت اچي ويو، جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ تشریف کڻي آيا. ساڻن گڏ سندن چاچو حضرت عباس بن عبدالمطلب ﷺ به هو. جيتوڻيڪ هو اڃا پنهنجي قوم جي دين تي هو، پر چاهيائين ٿي ته پنهنجي پائيتي جي معاملي ۾ موجود رهي ۽ ان لاءِ پڪو اطمینان حاصل ڪري وٺي. سڀ کان پهرين ان ئي ڳالهائڻ شروع ڪيو. (1)

### ڳالهه ٻولھ جي شروعات ۽ حضرت عباس رضی اللہ عنہ پاران معاملي جي نزاکت جي تشریح:

سڀ گڏجي ويٺا ته ديني ۽ فوجي تعاون جي وعدن وعيدن کي آخري شڪل ڏيڻ لاءِ ڳالهه ٻولھ جو آغاز ٿيو. پاڻ سڳورن ﷺ جي چاچي حضرت عباس رضی اللہ عنہ سڀ کان اڳ ڳالھايو. سندن مقصد اهو هو ته تفصيل سان هن ذميداريءَ جي نزاکت جي وضاحت ڪئي وڃي، جيڪا انهن وعدن جي نتيجي ۾ يثرب وارن جي مٿان پوڻ واري آهي. تنهنڪري هن چيو ته "خزرج وارو! (عربستان جا عام رهاڪو انصارن جي ٻنهي قبيلن يعني خزرج ۽ اوس کي خزرج ئي چوندا هئا.) اسان وٽ محمد ﷺ جي جيڪا حيثيت آهي، اها توهان پليءَ پٽ ڄاڻو ٿا. اسانجي قوم جا جيڪي ماڻهو ديني طرح اسان جهڙي راءِ رکڻ ٿا، اسان محمد ﷺ کي انهن کان محفوظ رکيو آهي. اهي پنهنجي قوم ۽ پنهنجي شهر ۾ قوت ۽ عزت ۽ طاقت ۽ حفاظت ۾ آهن، پر هاڻي اهي توهان وٽ وڃڻ ۽ توهان سان گڏجڻ تي زور پيا پرين. تنهنڪري جي توهان سمجهو ٿا ته توهان کين جنهن شيءِ لاءِ سڏي رهيا آهيو، ان کي نپائي ويندا ۽ کين، سندن ويرين کان بچائي سگهندا تڏهن ته نيڪ آهي، توهان جيڪا ذميواري کڻي آهي، پلي ڪڍو، پر جي توهان جو اندازو آهي ته توهان کين پاڻ سان وٺي وڃڻ بعد اڪيلو ڇڏي ڏيندا ته پوءِ هيٺ ڪان ٿي کين ڇڏي ڏيو. ڇو ته اهي پنهنجي قوم ۽ پنهنجي شهر ۾ وري به عزت ۽ حفاظت سان آهن.

حضرت ڪعب رضی اللہ عنہ جو چوڻ آهي ته اسان عباس رضی اللہ عنہ کي چيو ته: اوهانجي ڳالهه اسان ٻڌي ورتي. هاڻي رسول الله ﷺ! توهان ڳالھايو ۽ پنهنجي لاءِ ۽ پنهنجي رب لاءِ جيڪي وعدا وعيد وٺڻ چاهيو ٿا سي وٺي وٺو. (2)

هن جواب مان معلوم ٿئي ٿو ته هن وڏي بار کي کڻڻ ۽ ان جي خطرناڪ نتيجن کي سهڻ جي سلسلي ۾ انصارن جي پڪي ارادي، شجاعت ۽ ايمان ۽ جوش ۽ اخلاص جو ڇا حال هو. ان کانپوءِ

1 - ابن هشام (1/440, 441).

2 - ابن هشام (1/441, 442).

پاڻ سڳورن ﷺ ڳالهايو. پهرين قرآن جي تلاوت ڪئي، الله جي رستي تي هلڻ جي دعوت ۽ اسلام جي ترغيب ڏني ۽ پوءِ بيعت ورتي.

**بيعت جا شرط:** - بيعت جو واقعو امام احمد، حضرت جابر رضي الله عنه جي روايت سان تفصيل سان بيان ڪيو آهي. حضرت جابر رضي الله عنه ٻڌايو ته اسان عرض ڪيو ته يا رسول الله صلي الله عليه وسلم! اسان اوهان سان ڪهڙي ڳالهه جي بيعت ڪريون؟

پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم فرمايو ته: هنن ڳالهين تي:

1. چستي ۽ سستي هر حال ۾ ڳالهه ٻڌندڙ ۽ مڃيندڙ.
2. تنگي ۽ خوشحالي، هر حال ۾ مال خرچيندڙ.
3. ڀلائيءَ جو حڪم ڏيندڙ، برائيءَ کان روڪيندڙ.
4. الله جي راهه ۾ اتي ڪڙا ٿيندڙ ۽ الله جي راهه ۾ ڪنهن ملامت ڪندڙ جي ملامت جي پرواهه نه ڪندڙ.
5. ۽ جڏهن آئون اوهان وٽ پهچندس ته منهنجي مدد ڪندڙ ۽ جنهن شيءِ سان پنهنجي جان پنهنجن ٻارن بچڻ جي حفاظت ڪندا آهيو، ان سان منهنجي حفاظت ڪندڙ.

۽ پوءِ اوهان لاءِ جنت آهي. <sup>(1)</sup>

حضرت ڪعب رضي الله عنه جي روايت، جيڪا ابن اسحاق آندي آهي، ان ۾ رڳو آخري شرط جو ذڪر ڪيل آهي. ان ۾ چيو ويو آهي ته رسول الله صلي الله عليه وسلم قرآن جي تلاوت، الله جي دعوت ۽ اسلام جي ترغيب ڏيڻ بعد فرمايو ته: "آئون اوهان کان هن ڳالهه جي بيعت وٺان ٿو ته توهان ان شيءِ سان منهنجي حفاظت ڪندڙ، جنهن سان پنهنجن ٻارن بچڻ جي حفاظت ڪندا آهيو." تنهن تي حضرت براء بن معرور رضي الله عنه، پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم جو هٿ جهلي چيو ته ها ان ذات جو قسم، جنهن اوهان کي سچو نبي ڪري موڪليو آهي. اسين پڪ ان شيءِ سان اوهان جي حفاظت ڪنداسين، جنهن سان پنهنجن ٻارن بچڻ جي ڪندا آهيون. تنهنڪري يا رسول الله صلي الله عليه وسلم! توهان اسان کان بيعت وٺو. الله جو قسم! ته اسين جنگ جا ڪوڏيا آهيون ۽ هٿيار اسان لاءِ رانديڪا آهن. اها ريت اسان ۾ ابن ڏاڏن کان هلندي اچي.

<sup>1</sup> - ان کي امام احمد، "حسن" چيو آهي. امام حاکر رضي الله عنه ۽ ابن حبان رضي الله عنه صحيح چيو آهي. ڏسو مختصر السيرة، شيخ عبدالله نجدي (ص: 155). ابن اسحاق لڳ ڀڳ ساڳي ڳالهه حضرت عباد بن صامت رضي الله عنه کان روايت ڪئي آهي. جڏهن ته ان ۾ هڪ شرط وڌيڪ آهي ته اسان حڪمرانن سان حڪومت لاءِ نه وڙهنداسين. ڏسو ابن هشام (1/454).

حضرت كعب رضي الله عنه جو بيان آهي ته حضرت براء رضي الله عنه، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سان ڳالهائي رهيو هو ته ابو الهيثم رضي الله عنه بن تيهان ڳالهه ڪئيندي چيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! اسان ۽ ڪن بين ماڻهن يعني يهودين جي وچ ۾ وعدن وعيدن جا لاڳاپا آهن، جن کي اسان هاڻي ڪٽڻ وارا آهيون. ڪٿي ائين نه ٿئي ته اسين ائين ڪري وجهون ۽ پوءِ الله توهان کي غلبو عطا فرمائي ته توهان اسان کي ڇڏي پنهنجي قوم ۾ موٽي وڃو؟"

اهو ٻڌي پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم مرڪيا، پوءِ فرمايائون ته: "(نه) پر اوهان جو خون ۽ اوهانجي بربادي منهنجي بربادي آهي. آئون اوهان مان آهيان ۽ اوهان مون مان آهيو. جنهن سان اوهان وڙهندؤ، ان سان مان به وڙهندس ۽ جنهن سان اوهان صلح ڪندؤ، ان سان آئون به صلح ڪندس." (1)

**بيعت جي نزاکت جي يادگيري ڪرائڻ:** - بيعت جا شرط طه ٿيڻ کانپوءِ ماڻهن بيعت شروع ڪرڻ جو ارادو ڪيو ته اڳين قطار مان ٻه ڄڻا، جيڪي نبوت جي يارهين يا ٻارهين سال مسلمان ٿيا هئا، هڪ ٻئي پويان اٿيا ته جيئن ماڻهن اڳيان سندن ذميداريءَ جي نزاکت ۽ خطرناڪي چڱيءَ طرح واضح ڪري سگهن ته جيئن ماڻهو برو پلو چڱيءَ طرح ڄاڻي پوءِ بيعت ڪن. ان جو مقصد اهو معلوم ڪرڻو هو ته قوم قرباني ڏيڻ لاءِ ڪيتري حد تائين تيار آهي.

ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته جڏهن ماڻهو بيعت لاءِ گڏ ٿيا ته حضرت عباس رضي الله عنه بن عباد بن نضل چيو ته: "توهان ڄاڻو ٿا ته انهن سان (اشارو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ڏانهن هو) ڪهڙي ڳالهه ۾ بيعت پيا ڪريو؟" ها ها! جي آوازن تي حضرت عباس رضي الله عنه بن عباد چيو ته: "توهان، انهن سان سرخ ۽ ڪارن ماڻهن سان جنگ ڪرڻ جي بيعت پيا ڪريو. جي اوهان جو خيال آهي ته جڏهن توهان جو مال لٽيو ويندو ۽ اوهان جي اشرافن کي قتل ڪيو ويندو ته توهان، سندن ساٿ ڇڏي ويندا ته پوءِ هيئن ئي ڇڏي ڏيو. ڇو ته جيڪڏهن توهان کين وٺي وڃڻ کانپوءِ ڇڏي ڏنو ته دنيا ۽ آخرت ۾ خواري ٿيندي ۽ جي توهان جو اهو خيال آهي ته مال جي تباهي ۽ اشرافن جي قتل جي باوجود اهو عهد نپائيندو، جيڪو اوهان ڪيو آهي ته پوءِ بيشڪ توهان کين وٺي وڃو، ڇو ته الله جو قسم اها ئي دنيا ۽ آخرت جي پلاهي آهي. تنهن تي سڀني هڪ آواز ٿي چيو ته اسان مال جي تباهي ۽ اشرافن جي قتل جو خطرو سر تي کڻي انهن کي قبوليون ٿا. ها! يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! اسان اهو عهد پورو ڪيو ته اسان کي ان جو ڪهڙو بدلو ملندو؟ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "جنت" ماڻهن چيو ته "پنهنجو هٿ اڳتي وڌايو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم هٿ اڳتي وڌايو ۽ ماڻهن بيعت شروع ڪري ڏني." (2)

حضرت جابر رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته ان وقت اسان بيعت ڪرڻ اتياسين ته حضرت اسعد رضي الله عنه بن زرارہ، جيڪو سڀني آيلن مان ننڍي عمر جو هو، پاڻ سڳورن عليه السلام جو هٿ جهليو ۽ چيو ته: "يُشرب وارو! تورو ترسو! اسان پاڻ سڳورن عليه السلام جي خدمت ۾ ڊگهو سفر ڪري ان يقين سان آيا آهيون ته پاڻ سڳورا عليه السلام، الله جا رسول آهن. اڄ پاڻ سڳورن عليه السلام کي هٿان وٺي وڃڻ جي معنيٰ آهي سڄي عربستان سان دشمني، توهان جي چونڊ سردارن جو قتل ۽ تلوارن جي مار. ان ڪري جيڪڏهن اهو سڀ ڪجهه سهي سگهو ته پوءِ انهن کي وٺي هلو ۽ توهان جو اجر الله تي آهي ۽ جي توهان کي پنهنجي جان پياري آهي ته کين هينئر ئي ڇڏي ڏيو. اهو الله وٽ وري به قابل قبول عذر هوندو. (1)

**بيعت جي تڪميل:-** بيعت جا شرط پهرين طئه ٿي چڪا هئا. هڪ ڀيرو نزاکت جي وضاحت به ٿي چڪي هئي. هاڻي اها وڌيڪ پارت ٿي ته ماڻهن هڪ آواز تي چيو ته: "اسعد بن زرارہ! پنهنجو هٿ پري ڪر. الله جو قسم! اسان نڪو بيعت ڇڏي ٿا سگهون نه ئي توڙي ٿا سگهون. (2) ان جواب مان حضرت اسعد رضي الله عنه کي چڱيءَ طرح پروڙ پئجي وئي ته سندن قوم ڪيتري قدر هن راهه ۾ جان ڏيڻ لاءِ تيار آهي. حقيقت ۾ حضرت اسعد بن زرارہ رضي الله عنه، حضرت مصعب بن عمير رضي الله عنه سان گڏ مديني ۾ اسلام جو سڀ کان وڏو مبلغ هو. ان ڪري اصولي طور تي پاڻ انهن بيعت ڪندڙن جو ديني سردار به هو ۽ ان ڪري ئي سڀ کان پهرين ان ئي بيعت ڪئي، جيئن ابن اسحاق جي روايت آهي ته بنو النجار وارا چوندا آهن ته ابو امامه اسعد رضي الله عنه بن زرارہ سڀ کان پهرين فرد هو، جنهن پاڻ سڳورن عليه السلام سان هٿ ملايو (3) ۽ ان کانپوءِ عام بيعت ٿي ۽ ان جي بدلي ۾ جنت جي بشارت ڏني وئي. (4) باقي رهيون به عورتون، جيڪي ان مهل موجود هيون، انهن جي بيعت زباني ٿي. پاڻ سڳورن عليه السلام ڪڏهن به ڪنهن اڻ ڄاڻ عورت کي هٿ نه ڏنو. (5)

**ٻارنهن نقيب:-** بيعت جو سلسلو پورو ٿيو ته پاڻ سڳورن عليه السلام رت پيش ڪئي ته ٻارنهن اڳواڻ چونڊيا وڃن، جيڪي پنهنجي پنهنجي قبيلي پاران نمائندا هجن. پاڻ سڳورن عليه السلام جو ارشاد هو ته: توهان پاڻ مان ٻارنهن نقيب پيش ڪريو، جيئن اهي ئي پنهنجي قوم جي معاملن جا ذميدار ٿين.

1 - مسند احمد.

2 - مسند احمد.

3 - ابن اسحاق جو هي بيان آهي ته عبدالاشهل وارا چوندا هئا ته سڀ کان اڳ ابو الهيثم بن تيهان بيعت ڪئي ۽ حضرت ڪعب رضي الله عنه بن مالڪ چونڊو هو ته براء بن معرور رضي الله عنه ڪئي. (ابن هشام 447/1) منهنجو خيال آهي ته ٽي سگهي ٿو ته بيعت کان اڳ پاڻ سڳورن عليه السلام سان حضرت ابو الهيثم ۽ براء رضي الله عنه سان ٿيل ڳالهه بولڻ کي ئي ماڻهن بيعت سمجهي ڇڏيو هجي. نه ته ان وقت اڳتي ٿيڻ جو سڀ کان وڌيڪ حقدار اسعد بن زرارہ رضي الله عنه هو. (والله اعلم).

4 - مسند احمد.

5 - صحيح مسلم، (131/2).

پاڻ سڳورن ﷺ جي ارشاد تي هڪدم نقيب چونڊيا ويا، جن مان نوَ خُزرج مان هئا ۽ ٽي اوس مان، جن جا نالا هن ريت هئا:

**خُزرج جا نقيب:-** (1) اسعد بن زرارۃ بن عدس رضي الله عنه (2) سعد بن ربيع بن عمرو رضي الله عنه (3) عبدالله بن رواح بن ثعلبه رضي الله عنه (4) رافع بن مالك بن عجلان رضي الله عنه (5) براء بن معرور بن صخر رضي الله عنه (6) عبدالله بن عمرو بن حرام رضي الله عنه (7) عبادة بن صامت بن قيس رضي الله عنه (8) سعد بن عبادة بن دلير رضي الله عنه (9) منذر بن عمرو بن خنيس رضي الله عنه.

**اوس جا نقيب:-** (1) اسيد رضي الله عنه بن حضير بن سماك (2) سعد رضي الله عنه بن خيشم بن حارث (3) رفاع رضي الله عنه بن عبدالمنذر بن زبير<sup>(1)</sup>

جڏهن اهي نقيب چونڊجي ويا ته انهن کان سردار ۽ ذميدار هئڻ جي حيثيت ۾ پاڻ سڳورن ﷺ قسمر ورتو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "توهان پنهنجي قوم جي مڙن ٿي معاملن جا ذميدار آهيو." انهن سڀني چيو ته "هاڻو."<sup>(2)</sup>

**شيطان جو معاهدي کي ظاهر ڪرڻ:-** معاهدو پورو ٿي ويو ۽ هاڻي ماڻهو چڙوچڙ ٿيڻ لڳا. جيئن ته (انڪشاف) آخري لمحن ۾ ٿيو هو ۽ ايترو موقعو نه هو جو اها ڇاڻ ماڻ مين ۾ قريشن کي ڏني وڃي ۽ اهي اوچتو هن ميڙ تي ڪاهي پون ۽ کين اتي ئي وڃي جهلين. ان ڪري شيطان جهٽ پٽ هڪڙي مٿاهين جڳهه تي چڙهي ڏاڍيان پڙهو ڏنو ته "خيمي وارو! محمد کي ڏسو، هيئنر بدين ساڻس گڏ آهن ۽ توهان سان وڙهڻ لاءِ گڏ ٿيا آهن."

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اهو هن جڳهه جو شيطان آهي. او الله جا دشمن! ٻڌ. هاڻي تنهنجي لاءِ جلدي واندو ٿي رهيو آهيان." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، ماڻهن کي چيو ته اهي پنهنجن ديرن تي هليا وڃن.<sup>(3)</sup>

**قريشن کي ڏک هڻڻ لاءِ انصارن جي تياري:-** ان شيطان جو آواز ٻڌي حضرت عباس رضي الله عنه بن عبادة بن نضل چيو ته: "ان ذات جو قسمر! جنهن اوهان کي حق سان نوازي موڪليو آهي، اوهان چاهيو ته اسان سڀاڻي مني وارن تي تلوارن سان ڪاهي پئون." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته:

<sup>1</sup> - زبير ۾ "ب" ٿيندي. ڪن وري "ن" ڄاڻائي زبير لکيو آهي. ڪن سيرت نگارن رفاع بدران ابوالهيشم بن تيهان جو نالو لکيو آهي.

<sup>2</sup> - ابن هشام (1/443, 444, 446).

<sup>3</sup> - زاد المعاد (2/51).

"اسان کي ان جو حڪم ناهي ڏنو ويو. بس توهان پنهنجن ديرن تي موٽي وڃو. ان کانپوءِ ماڻهو موٽي وڃي سٺا، تان ته صبح ٿي ويو." (1)

**يُثْرِبُ جِي وَذِيرِن سَان قَرِيشِن جُو اِحْتِجَاجُ:**— اها خبر قريش جي ڪنن تائين پهتي ته انهن ۾ ڪهرام مڃي ويو، ڇو ته اهڙي بيعت مان جيڪو کين جاني ۽ مالي نقصان رسي ٿي سگهيو، ان جو اندازو کين ڀليءَ ڀٽ هو. تنهنڪري صبح ساڻ سندن وڏيرن ۽ دانشورن جي هڪ وڏي انگ هن معاهدي خلاف احتجاج ڪرڻ لاءِ يثرب وارن جي خيمن جو رخ ڪيو ۽ هيئن ڳالهه شروع ڪيائون:

"خزرج وارو! اسانکي پتو پيو آهي ته اوهان اسانجي هن صاحب کي اسان مان ڪڍي وڃڻ وارا آهيو ۽ اسان سان جنگ ڪرڻ لاءِ سندس هٿ تي بيعت ڪئي اٿو. جڏهن ته پيو ڪو عرب قبيلو اهڙو ڪونهي، جنهن سان جنگ ڪرڻ اسانکي ايتري ناگوار لڳي، جيتري اوهان سان." (2)

پر جيئن ته خزرج جي مشرڪن کي بيعت جي ماڳهين ڪا خبر نه هئي، ڇو ته اها صفا لڪ چپ ۾ رات جو ٿي هئي. ان ڪري انهن مشرڪن الله جا قسم کڻي کين پڪ ڏياري ته ائين ڪونه ٿيو آهي. اسانکي اهڙي ڪنهن ڳالهه جو پتو به ڪونهي. نيٺ اهو وفد عبدالله بن ابي سلول وٽ پهتو. ان به چيو ته "اهو ڪوڙ آهي. ائين ڪونه ٿيو آهي ۽ نه ئي ٿي سگهي ٿو ته منهنجي قوم، مون کانسواءِ اهڙو ڪم ڪري. جيڪڏهن آئون يثرب ۾ هجان ها ته به مون سان صلاح ڪرڻ کانسواءِ منهنجي قوم ائين نه ڪري ها."

باقي بچيا مسلمان ته انهن اکين ئي اکين ۾ هڪ ٻئي کي ڏٺو ۽ مات ۾ رهيا. انهن مان ڪنهن به هاڻوڪار يا نه ڪر نه ڪئي. نيٺ قريش جي وڏيرن سمجهيو ته مشرڪن جي اها ڳالهه سچي آهي. ان ڪري اهي نامراد ٿي موٽي ويا.

**پڪي خبر پوڻ ۽ بيعت ڪرڻ وارن جي پٺيان لڳڻ:**— مڪي جا مهندار پڪ ڪري موٽيا هئا ته اها خبر ڪوڙي آهي، پر تڏهن به ڪوت ڪوتان ۾ لڳا رهيا. نيٺ کين پڪي خبر پئي ته اها ڳالهه سچي آهي ۽ بيعت ٿي چڪي آهي، پر اها خبر ان وقت پئي، جڏهن حاجي پنهنجي پنهنجي وطن ڏي موٽي ويا هئا. ان ڪري سندن سوار تيز رفتاريءَ سان يثرب وارن جي پويان لڳا، پر موقعو هٿن مان نڪري چڪو هو. باقي انهن سعد رضي الله عنه بن عبادة ۽ منذر رضي الله عنه بن عمرو کي ڏسي ورتو ۽ انهن تائين وڃي پهتا. پر منذر رضي الله عنه ته تڪو نڪري ويو. باقي سعد رضي الله عنه بن عبادة جهلجي پيو ۽ سندس هٿ ڳچيءَ جي پويان ڪري سندس ئي اٺ جي ڪجاوي جي رسيءَ سان ٻڏي ڇڏيائون. پوءِ کين ماريندا

<sup>1</sup> - ابن هشام (448/1).

<sup>2</sup> - ابن هشام (448/1).

ڪٽيندا ۽ سندن وار پٽيندا مڪي وٺي آيا، پر اتي مطعم بن عدي ۽ حارث بن حرب بن اميه اچي کين ڇڏايو. ڇو ته انهن ٻنهي جا قافلا يثرب وٽان حضرت سعد رضي الله عنه جي پناهه ۾ لنگهندا هئا. هوڏانهن انصارن. سندن گرفتاريءَ کانپوءِ هالن ڪرڻ جو فيصلو ڪيو، پر ايتري ۾ پاڻ ايندو نظر آيو. ان کانپوءِ سڀ ماڻهو خيريت سان يثرب پهچي ويا. <sup>(1)</sup>

اها ئي عقبه واري بي بيعت هئي، جنهن کي بيعت عقبه ڪبري چئجي ٿو. اها اهڙين حالتن ۾ ٿي، جنهن تي محبت ۽ وفاداري، ڇٽوڇٽو مؤمنن جي وچ ۾ تعاون، اعتماد ۽ جانثاري ۽ شجاعت جا جذبا ڇانئيل هئا. تنهنڪري يثرب جي مؤمنن جون دليون پڻ پنهنجن مڪي وارن ڪمزور پائرن لاءِ پيار سان تمتار هيون. انهن ۾ پنهنجن انهن پائرن جي واهر ڪرڻ جو جوش هو ۽ انهن تي ظلم ڪرڻ وارن خلاف دليون ۾ ڪاوڙ ۽ ڪروڙ هو. سندن سينا پنهنجن انهن پائرن جي محبت سان ڀريل هئا. اهي جذبا ۽ احساس رڳو ڪنهن عارضي چڪ جو ڪارڻ نه هئا، جيڪي ڏينهن گذرڻ سان ختم ٿي وڃن، پر انهن جو بنياد الله، رسول ۽ قرآن تي هو. يعني اهو ايمان جيڪو ظلم جي وڏي ۾ وڏي طاقت جي سامهون به نه جهڪي. ان ايمان جي ڪري ئي مسلمان تاريخ جي ورقن تي اهڙا اهڙا ڪارناما لکيا ۽ اهڙا اهڙا اهڃاڻ ڇڏي ويا، جن جو مثال ماضي توڙي حال ۾ ملڻ مشڪل آهي ۽ گهڻو ڪري مستقبل به خالي رهندو.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - زاد المعاد (2/51,52)، ابن هشام (1/448,450).



## هجرت جا هر اول دستا

جڏهن بي بيعت عقبه پوري ٿي ۽ اسلام، كفر ۽ جهالت جي صحرا ۾ پنهنجي لاءِ هڪ وطن جو بنياد رکڻ ۾ ڪامياب ٿيو ۽ اها سڀ کان وڏي سوچ هئي جيڪا اسلام پنهنجي دعوت جي شروع کان تيستائين حاصل ڪئي هئي. ته پاڻ سڳورن ﷺ، مسلمانن کي پنهنجي نئين وطن ڏانهن لڏ پلاڻ ڪرڻ جي موڪل ڏني.

هجرت جو مطلب اهو هو ته سڀ مفاد ڇڏي ۽ مال جي قرباني ڏئي رڳو جان بچائي وڃي ۽ اهو به سمجهندي ته اها جان به خطري جي گهيري ۾ آهي. منيڊ کان توڙ تائين ڪٿي به مارجي تو سگهجي، پوءِ سفر به هڪ اڻڄڻي مستقبل ڏانهن هجي، معلوم نه آهي ته اڳتي هلي ڪهڙا ڪهڙا مصيبتن جا پهاڙ ٿيندا.

مسلمانن اهو سڀ ڪجهه ڄاڻندي هجرت جي شروعات ڪئي. هوڏانهن مشرڪن انهن جي روانگي ۾ رڪاوٽون وجهڻ شروع ڪري ڏنيون. ڇو ته اهي سمجهي رهيا هئا ته ان مان ڪين خطرو آهي. هجرت جا ڪجهه نمونا هتي ڄاڻائجن ٿا.

1. سڀ کان پهريون مهاجر حضرت ابو سلمة رضي الله عنه هو. ابن اسحاق رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته ان بيعت عقبه ڪبري کان هڪ سال اڳ هجرت ڪئي هئي. ساڻس گڏ سندن ٻار بچا به هئا. جڏهن اهي روانا ٿيڻ لڳا ته سندن ساهرن چيو ته توهان پنهنجي گهرواريءَ جي ڪري اسان تي حاوي ته ٿي ويندا هئا، پر هاڻي ٻڌايو ته اسانجي چوڪري ڇو اوهان سان گڏ وڃڻ ڏيون؟ تنهن تي ابو سلمة رضي الله عنه جي مائٽن کي ڪاوڙ اچي وئي ۽ انهن چيو ته جي توهان اسانجي همراه کان سندس عورت چنو ٿا ته پوءِ اسان به ان عورت جو پٽ، ماءُ وٽ نه رهڻ ڏينداسين. تنهن کانپوءِ ٻنهي ڌرين ان ٻار کي پاڻ ڏانهن ڇڪيو، جنهن سان ان جو هٿ نڪري پيو ۽ ابو سلمة رضي الله عنه جا گهر وارا ان کي پاڻ سان وٺي ويا. ان کان پوءِ ابو سلمة رضي الله عنه اڪيلي مديني ڏانهن سفر ڪيو. ان کانپوءِ بيبي ام سلمة رضي الله عنها جو حال اهو هو ته اها پنهنجي مڙس جي روانگي ۽ ٻار کان محروميءَ کانپوءِ صبح ساڻ ابطح جي مقام تي پهچندي هئي (جتي اهو لقاءُ ٿيو هو) ۽ شام تائين روئندي رهندي هئي. ان حالت ۾ هڪ سال گذري ويو. نيٺ سندن ڪٽم جي هڪ ماڻهوءَ کي مٿن ترس اچي ويو ۽ ان چيو ته هن ويڃاريءَ کي وڃڻ ڇو نٿا ڏيو؟ ڇو هن کي هروڀرو پنهنجي مڙس ۽ پٽ کان ڌار ڪري ڇڏي اٿو؟ ان تي ام سلمة رضي الله عنها جي گهر وارن چيو ته جي تون چاهين ته ڀلي پنهنجي مڙس وٽ هلي وڃ. ام سلمة رضي الله عنها، پٽ کي ڏاڏائڻ کان واپس ورتو ۽ مديني رواني ٿي وئي. الله اڪبر اٽڪل پنج سو ڪلوميٽرن جو سفر ۽ ساڻ الله کانسواءِ ٻيو ڪير نه هجي! جڏهن تنعيم وٽ پهتي ته

عثمان بن ابي طلحہ ملي وين. ان کي حالتن جي خبر پئي ته سندن رهنمائي ڪري مديني وٺي آيو ۽ جڏهن قباء جو ڳوٺ نظر آيو ته چيائين ته: "تنهنجو مڙس هن ئي ڳوٺ ۾ آهي، ايڏانهن هلي وڃ. الله برڪت ڏينئي." ان بعد هو مڪي موٽي ويو. (1)

2. حضرت صهيب رضي الله عنه هجرت جو ارادو ڪيو ته ان کي قريش ڪافرن چيو ته "تون اسان وٽ آيو هئين ته حقير فقير هئين، پر هتي اچي مال ڪمايو اٿئي ۽ ترقي ڪئي اٿئي. هاڻي پنهنجو مال ۽ جان ٻئي بجائي وڃڻ تو گهرين ته الله جو قسم اسين ائين ٿيڻ نه ڏينداسين." حضرت صهيب رضي الله عنه چيو ته: "جڳو اهو ٻڌايو ته جي آئون پنهنجو مال ملڪيت ڇڏي ڏيان ته توهان منهنجي راه ڇڏي ڏيندؤ؟" انهن چيو ته ها. حضرت صهيب رضي الله عنه چيو ته: "جڳو ته پوءِ نيڪ آهي، منهنجو مال توهان کڻو. پاڻ سڳورن عليه السلام کي خبر پئي ته فرمايائون ته "صهيب رضي الله عنه نفعو حاصل ڪيو. صهيب رضي الله عنه نفعو حاصل ڪيو." (2)

3. حضرت عمر رضي الله عنه، عياش رضي الله عنه بن ابي رييع ۽ هشام رضي الله عنه بن عاص بن وائل پاڻ ۾ طءُ ڪيو ته فلاڻي جڳهه تان صبح ساڻ گڏجي مديني هجرت ڪنداسين. حضرت عمر رضي الله عنه ۽ عياش رضي الله عنه ته وقت تي پهچي ويا، پر هشام رضي الله عنه کي قيد ڪيو ويو.

پوءِ جڏهن ٻئي جڳا مديني ۾ قبا وٽ پهتا ته عياش رضي الله عنه وٽ ابوجهل ۽ ان جو ڀاءُ حارث پهتا. تنهي جي ماءُ ساڳي هئي. انهن ٻنهي عياش رضي الله عنه کي چيو ته: "تنهنجي ماءُ باس باسي آهي ته جيستائين اها توکي نه ڏسندي، وارن کي ڦٽي نه ڏيندي ۽ اس مان اتي ڇانو ۾ نه ويهندي." اهو ٻڌي عياش رضي الله عنه کي ماءُ تي ترس اچي ويو. حضرت عمر رضي الله عنه اها حالت ڏسي عياش رضي الله عنه کي چيو ته: "عياش رضي الله عنه ڏس الله جو قسم هي ماڻهو تنهنجي دين ۾ فتنو وجهڻ ٿا گهرن، تنهنڪري هوشيار ٿي. الله جو قسم! جڏهن تنهنجي ماءُ کي جون تنگ ڪنديون ته اها ضرور ڦٽي ڏيندي ۽ کيس مڪي جي ٿوري به تڪي اس لڳي ته اها پاڻهي ڇانو ۾ وڃي ويهندي." پر عياش رضي الله عنه، سندن ڳالهه نه مڃي. ان پنهنجي ماءُ جو قسم پورو ڪرڻ لاءِ هنن ٻنهي سان وڃڻ جو فيصلو ڪيو. حضرت عمر رضي الله عنه چيو ته: "جڳو جڏهن تون اهو ڪرڻ تي آماده آهين ته پوءِ منهنجي هيءُ ڏاچي وٺ. اها ڏاڍي پلي ۽ تڪي آهي. هن جي پٺ نه ڇڏجان ۽ ماڻهن پاران ڪابه مشڪوڪ حرڪت ٿيندي ڏسين ته ڀڄي ڪڙو ٿجان." عياش رضي الله عنه ڏاچيءَ تي سوار ٿي انهن ٻنهي سان گڏ روانو ٿيو. رستي ۾ هڪ جڳهه تي ابو جهل چيو ته: "ادا منهنجو هي اٺ ته ڏاڍو ڏنگو نڪتو. ڇو نه آئون به تو سان ڏاچيءَ تي ويهي هلان."

<sup>1</sup> - ابن هشام (468/1, 469, 470).

<sup>2</sup> - ابن هشام (477/1).

عياش رضي الله عنه چيو ته نيك آهي ۽ ان لاءِ پنهنجي ڏاچي ويهاريائين. هنن ٻنهي به پنهنجون سواريون ويهاريون ته جيئن ابو جهل، عياش رضي الله عنه جي ڏاچيءَ تي پيلهه چڙهي، پر جڏهن ٽئي چٽا زمين تي لٿا ته اهي ٻئي عياش رضي الله عنه تي ٽٽي پيا ۽ کين رسي سان ٻڏي ڇڏيائون ۽ ان ئي حالت ۾ مڪي آندائون ۽ چيائون ته اي مڪي وارو! پنهنجن بي عقلن سان ائين ڪريو، جيئن اسان پنهنجي هن بي عقل سان ڪيو آهي. (1)

هجرت ڪندڙن جو پتو پوڻ تي انهن سان مشرڪ جيڪو سلوڪ ڪندا هئا، هي ان جا تي مثال آهن، پر ان هوندي به ماڻهو هڪ ٻئي پويان نڪرندا رهيا. تنهنڪري بيعت عقبه ڪبري کانپوءِ رڳو ٻن مهينن ۾ مڪي ۾ پاڻ سڳورن رضي الله عنه، حضرت ابوبڪر رضي الله عنه ۽ حضرت علي رضي الله عنه کانسواءِ ڪي ٿورا مسلمان ئي وڃي بچيا هئا، جن کي مشرڪن زبردستي روڪي ڇڏيو هو. انهن ٻنهي کي وري پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم روڪي رکيو هو. پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم به سامان ٻڏي روانا ٿيڻ لاءِ الله جي حڪم جو انتظار ڪري رهيا هئا. حضرت ابوبڪر رضي الله عنه به سامان ٻڏي ڇڏيو هو. (2)

صحيح بخاريءَ ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها کان روايت آهي ته پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم مسلمانن کي چيو ته: "مونکي توهان جي هجرت جو هنڌ ڏيکاريو ويو آهي. اهو لاهي وارن ٻن جبلن جي وچ ۾ هڪ نخلستاني علائقو آهي." ان کان پوءِ ماڻهن مديني ڏانهن هجرت ڪئي. حبشه جا عام مهاجر به مديني اچي ويا. حضرت ابوبڪر رضي الله عنه به مديني وڃڻ لاءِ سامان ٻڏي ڇڏيو هو، پر پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم فرمايو ته: "ٿورو ترس، ڇو ته آئون سمجهان ٿو ته مونکي به موڪل ملي ويندي." ابوبڪر رضي الله عنه چيو ته: "منهنجا ماءُ پيءُ اوهان تان گهور وڃن، ڇا توهان کي ان جي اميد آهي؟" پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم فرمايو ته: "ها." ان کانپوءِ ابوبڪر رضي الله عنه اتي ئي رهيو ته جيئن پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم سان گڏ سفر ڪري. وٽن ٻه ڏاڇيون هيون. انهن کي چئن مهينن تائين وٽن جا پن ڪرائي تيار ڪيو هئائين. (3)

<sup>1</sup> - هشام رضي الله عنه ۽ عياش رضي الله عنه، ڪافرن جي غصه ۾ رهيا. جڏهن پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم هجرت ڪري ويا ته هڪ ڏينهن فرمايائون ته ڪير آهي جو مون لاءِ هشام رضي الله عنه ۽ عياش رضي الله عنه کي ڇڏائي اچي. وليد رضي الله عنه بن وليد چيو ته: آئون توهان لاءِ انهن کي آڻڻ جي ذميداري قبوليان ٿو. پوءِ وليد رضي الله عنه لڪ چپ ۾ مڪي ويو ۽ هڪ عورت (جيڪا انهن ٻنهي لاءِ کاڌو کڻي وڃي رهي هئي) جي پٺيان وڃي انهن جو نڪاڻو معلوم ڪيو. اهي ٻئي بنا پٽ جي هڪ گهر ۾ بند هئا. رات تي ته حضرت وليد رضي الله عنه پٽ ٿي انهن وٽ پهتو ۽ پير ڪڙيون کڻي پنهنجي اٺ تي ويهاري مديني پڇي آيا. ابن هشام (474/1، 476) ۽ حضرت عمر رضي الله عنه ويهه اصحاب جي هڪ ٽولي سان هجرت ڪئي هئي. صحيح بخاري (558/1).

<sup>2</sup> - زاد المعاد (52/2).

<sup>3</sup> - صحيح بخاري. (553/1).

## دار الندوة ۾ قريشن جي گڏجاڻي

جڏهن مشرڪن ڏٺو ته اصحابي سڳورا، ٻارن ٻچن ۽ مال ملڪيت سميت اوس ۽ خزرج جي علائقن ۾ وڃي پهتا آهن ته انهن ۾ ڪهرام مڇي ويو ۽ کين اهڙو صدمو پهتو، جهڙو اڳي نه پهتو هو. هاڻي سندن آڏو هڪ وڏو ۽ سڄو پڇو خطرو اچي کڙو ٿيو هو، جيڪو سندن بت پرستائي ۽ اقتصادي اجتماعيت لاءِ للڪار هو.

مشرڪن کي ڄاڻ هئي ته محمد ﷺ ۾ اڳواڻي جي صلاحيت سان گڏ سندن زبان ۾ اثر به هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي صحابين ۾ ثابت قدمي ۽ وفاداريءَ جو جذبو حد کان وڌيڪ هو. کين اوس ۽ خزرج قبيلن جي سگهه ۽ جنگي صلاحيت جي به خبر هئي ۽ اها به ته انهن پنهنجي قبيلن جا ڏاها صلح ۽ صفائيءَ جا ڪهڙا جذبا رکن ٿا ۽ ورهين جي گهرو لڙائيءَ جون تلخيون چڪڙ بعد رنج ۽ عداوت کي ختم ڪرڻ لاءِ ڪيترا نه متوالا هئا.

کين اهو به احساس هو ته يمن کان شام تائين بحر احمر جي ڪناري کان انهن جو واپاري لنگهه هو. هن شاهراهه جي ڪري مدينو نهايت فوجي اهميت وارو ۽ حساس علائقو هو. رڳو شام ملڪ سان ئي مڪي وارن جي هر سال ڏيڍ لک سونن دينارن جو واپار ٿيندو هو. طائف وارن سان واپار ان کان علاوه هو ۽ ان سڄي واپار جو دارومدار ان ئي پر امن رستي تي هو.

ان تفصيل مان پليءَ پت اندازو ڪري سگهجي ٿو ته يثرب ۾ اسلامي دعوت جون پاڙون پختيون ٿيڻ ۽ مڪي وارن خلاف يثرب وارن جون صفون ٻڌڻ جي صورت ۾ مڪي وارن لاءِ ڪيڏا نه خطرا هئا. جيئن ته مشرڪن کي هن وڏي خطري جو پورو پورو احساس هو، جيڪو سندن وجود لاءِ للڪار بڻجي رهيو هو. ان لاءِ هنن ان خطري جو ڪامياب ترين علاج سوچڻ شروع ڪيو، جنهن جي اصل جڙ اسلامي دعوت جي علمبردار حضرت محمد ﷺ جي سڳوري هستي هئي.

مشرڪن ان مقصد لاءِ بيعت عقبه ڪبري کان اٽڪل اڳاڻي مهينا پوءِ 26 صفر سن 14 نبوت مطابق 12 سيپٽمبر 622ع خميس جي ڏينهن (1) مڪي جي پارليامينٽ دارالندوة ۾ تاريخ جو سڀ کان خطرناڪ ميٽر کولايو ۽ ان ۾ قريشن جي سڀني قبيلن جي نمائندن شرڪت ڪئي. جنهن جو مقصد اهڙي رٿ جوڙڻ هو، جنهن سان اسلام جي دعوت جي علمبردار جو قصو تمام ڪيو وڃي ۽ ان دعوت جي روشني پوريءَ طرح ختم ڪئي وڃي.

ان خطرناڪ ميٽر ۾ قريش قبيلن جا هي مک ماڻهو آيل هئا.

<sup>1</sup> - اها تاريخ علامه منصورپوريءَ جي تحقيق جي روشنيءَ ۾ لکي وئي آهي. رحمة للعالمين (1/95، 97، 102-471).

1. ابو جهل بن هشام، بنو مخزوم قبيلي مان
2. جبیر بن مطعم، طعيمه بن عدي ۽ حارث بن عامر، بني نوفل بن عبدمناف مان
3. شيبه بن ربيع، عتب بن ربيع، ابو سفیان بن حرب، بنو شمس بن عبدمناف مان
4. نضر بن حارث، بني عبدالدار قبيلي مان
5. ابو البختري بن هشام، زمعه بن اسود ۽ حڪيم بن حزام، بني اسد بن عبدالعزيز مان
6. نبيه بن حجاج ۽ منبه بن حجاج، بني سهر مان
7. اميه بن خلف، بني جمع مان

مقرر وقت تي نمائندا دارالندوة پهتا ته شيطان به هڪ وڏي بزرگ جي شڪل ۾، جبو پاتل، در تي رستو جهلي اچي بيٺو. ماڻهن چيو ته هي شيخ ڪير آهي؟ ابليس چيو ته "اهو نجد وارن جو هڪ شيخ آهي. اوهان جو پروگرام ٻڌي آيو آهي. ڳالهين ٻڌڻ تو چاهي ۽ ممڪن آهي ته اوهانڪي ڪو خير خواهيءَ وارو مشورو به ڏئي وجهي." ماڻهن چيو ته ڏاڍو چڱو، اوهان به هليا اچو. ان کانپوءِ ابليس به ساڻن گڏ اندر ويو.

**ميٽر ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ جي رت پاس ٿيڻ:-** ميٽر گڏ ٿي ويو ته راياءُ ۽ حل پيش ٿيڻ لڳا ۽ دير تائين بحث ٿيندو رهيو. پهرين ابو الاسود رت پيش ڪئي ته اسان هن ماڻهوءَ کي پاڻ مان ڪڍي ڇڏيون ۽ پنهنجي شهر مان جلاوطن ڪري ڇڏيون. پوءِ سندس مرضي ته ڪٿي ٿو وڃي ۽ ڪٿي ٿو رهي. بس اسان جو معاملو نيڪ ٿي ويندو ۽ اسان ۾ اڳ جيان پائيجارو قائم ٿي ويندو. پر نجد جي شيخ چيو ته: "نه، الله جو قسم! اها راءِ صحيح نه آهي. توهان ڏسو نٿا ته هن ماڻهوءَ جي ڳالهه ڪيڏي چڱي ۽ ٻول ڪيڏا منا آهن ۽ جيڪو پيش ڪري ٿو، ان ذريعي ڪيئن نه ماڻهن جون دليون کٽي وٺي ٿو. الله جو قسم! جي توهان ائين ڪيو ته پوءِ نٿو چئي سگهجي ته هو ڪهڙي قبيلي ۾ نازل ٿئي ۽ کين پنهنجو پوئلڳ ڪري توهان تي هلان ڪري اچي ۽ توهان جي شهر ۾ جهڙو وڻيس اهڙو توهان سان ورتاءُ ڪري. ان بدران بي ڪا رت سوچيو."

ابو البختريءَ چيو ته "کيس لوهه جي سنگهرن ۾ ٻڌي قيد ڪري رکو ۽ ٻاهر کان دروازو بند ڪري ڇڏيو. پوءِ سندس پڄاڻيءَ (موت) جو انتظار ڪريو، جيڪو ان کان اڳ ٻين شاعرن، جهڙوڪ زهير ۽ نابغه وغيره سان ٿي چڪو آهي.

نجد جي شيخ چيو ته: "نه، الله جو قسم! اهو مناسب ڪونهي. واللہ جيڪڏهن توهان ان کي قيد ڪيو ته ان جي خبر بند دروازن مان نڪري سندس ساٿين تائين ضرور پهچندي. پوءِ ممڪن آهي

ته اهي توهان تي ڪاهي پون ۽ کيس ڇڏائي وڃن. پوءِ سندس مدد سان پنهنجو تعداد وڌائي توهان کي مغلوب ڪن. تنهنڪري اها مناسب رت نه آهي. ڪا ٻي رت سوچيو."

اهي ٻئي رتون رد ٿيڻ کانپوءِ ٽين رت پيش ٿي. جنهن تي سڀ متفق ٿيا. اها رت پيش ڪرڻ وارو مڪي جو وڏي ۾ وڏو شريڪسند ابوجهل هو. هن چيو ته "هن ماڻهوءَ بابت منهنجي هڪ راءِ آهي. آئون ڏسان ٿو ته اڃا توهان ان تائين نه پهتا آهيو." ماڻهن چيو ته: ابو الحڪم اها ڪهڙي راءِ آهي؟ ابو جهل چيو ته: "منهنجي راءِ اها آهي ته اسان هر هڪ قبيلي مان هڪ سگهارو، اعليٰ نسل وارو ۽ سهڻو جوان چونڊيون. پوءِ هر هڪ کي هڪ تيز تلوار ڏيون. ان کان پوءِ سڀئي هن همراه ڏانهن وڃن ۽ ان کي تلوار سان ائين مارين، جڻ هڪ ئي ماڻهوءَ تلوار هنئي هجي. ائين هن مان جان به چٽندي ۽ ان طرح قتل ڪرڻ جو نتيجو اهو ٿيندو ته سندس رت سڀني قبيلن ۾ وڪري ويندو ۽ بنو عبدمناف، سڀني قبيلن سان جنگ نه ڪري سگهندا. ان ڪري ديت (خون بها) وٺڻ تي راضي ٿي ويندا ۽ ديت اسان پري وينداسين."<sup>1</sup> نجد جي شيخ چيو ته: " اها ٿي ڳالهه، جيڪا هن جوان ڪئي. جي ڪا تجويز يا راءِ ٿي سگهي ٿي ته اهائي، ٻيو سڀ هيچ آهي." ان کان پوءِ مڪي جي ان ميڙ اها مجرماڻي رت منظور ڪئي ۽ ميڙاڪي ۾ شريڪ ٿيل ان پڪي آزادي سان پنهنجن گهرن ڏي موٽيا ته هن رٿا تي تڪڙو عمل ٿيڻ گهرجي.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/480، 482).

## پاڻ سڳورن ﷺ جي هجرت

جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي قتل جي رتا پاس ٿي وئي ته حضرت جبرئيل عليه السلام پنهنجي رب پاران وحي ڪئي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيو ۽ ڪين قريشن جي سازش جي ڄاڻ ڏئي ٻڌايائين ته الله تعاليٰ توهان کي هتان نڪري وڃڻ جي اجازت ڏني آهي. ان سان گڏ هجرت جو وقت به ٻڌايائين ته پاڻ سڳورا ﷺ اها رات پنهنجي ان هنڌ تي نه گذاريندا، جنهن تي هيستائين سمهندا آيا آهن. (1)

اهڙي ڄاڻ ملڻ بعد پاڻ سڳورا ﷺ نيڪ پٺپهرن جو ابوبڪر رضيه جي گهر آيا ته جيئن ساڻن گڏ هجرت جو پروگرام طءُ ڪري سگهن. بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته نيڪ پٺپهرن جو اسان گهر ۾ ويٺا هئاسين ته ڪنهن چيو ته پاڻ سڳورا ﷺ مٿو ڍڪي اچن پيا. اهو اهڙو وقت هو جو جنهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ اتي نه ايندا هئا. ابوبڪر رضيه چيو ته منهنجا ماءُ پيءُ پاڻ سڳورن ﷺ تي گهور وڃن، پاڻ ضرور ڪنهن اهم معاملي لاءِ ئي آيا هوندا.

بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ آيا، اجازت گهريائون، اجازت ملڻ تي اندر آيا، پوءِ ابوبڪر رضيه کي چيائون ته: "چڱو هاڻي مون کي هلڻ جي موڪل ملي چڪي آهي." ابوبڪر رضيه چيو ته: "گڏ... يا رسول الله ﷺ! منهنجا ماءُ پيءُ اوهان تان گهور وڃن" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ها." (2)

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ هجرت جو پروگرام طءُ ڪيو ۽ پنهنجي گهر وڃي رات ٽيڻ جو انتظار ڪرڻ لڳا.

پاڻ سڳورن ﷺ جي گهر جو گهيرو: - هوڏانهن قريشن جي ڏاهن سڄو ڏينهن دارالندوة واري ميڙ ۾ پاس ٿيل رت تي عمل ڪرڻ جي تيارين ۾ گذاريو. ان مقصد لاءِ انهن پاڻ مان يارنهن سردار چونڊيا، جن جا نالا هن ريت آهن:

- (1) ابو جهل بن هشام (2) حڪم بن عاص (3) عقبه بن ابي معيط (4) نضر بن حارث (5) اميه بن خلف (6) زمعه بن الاسود (7) طعيمه بن عدي (8) ابو لهب (9) ابي بن خلف (10) نبيه بن الحجاج (11) منبه بن الحجاج (3)

<sup>1</sup> - ابن هشام (482/1) زاد المعاد (52/2).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري، (553/1).

<sup>3</sup> - زاد المعاد (52/2).

ابن اسحاق جو بيان آهي ته جڏهن رات جو اوندھ ٿي وئي ته اهي ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ جي گهر جي دروازي وٽ گهٽ هڻي ويٺا ته جيئن پاڻ سڳورا ﷺ سمهي پون ته اهي مٿن ٿئي پون. (1)

کين پوري پڪ هئي ته اهي پنهنجي پليت سازش ۾ ڪامياب ٿي ويندا. ايستائين جو ابو جهل ڏاڍي تڪبر ۽ غرور واري انداز ۾ مذاق ۽ نٺوليون ڪندي پنهنجن گهيو ڪندڙن ساٿين کي چيو ته: "محمد ﷺ چوي ٿو ته جي توهان سندس دين ۾ داخل ٿي سندس پيروي ڪريو ته عرب ۽ عجم جا بادشاهه ٿي ويندو. پوءِ مرڻ کان پوءِ اٿاريا ويندو ته توهان لاءِ اردن جي باغن جهڙيون جنتون هونديون ۽ جي توهان ائين نه ڪيو ته سندن پاران توهان ۾ ذبح جا واقعا پيش ايندا. پوءِ مرڻ کان پوءِ اٿاريا ويندو ته توهان لاءِ باهه هوندي، جنهن ۾ جلایا ويندو." (2)

بهرحال ان سازش تي عمل لاءِ اڌ رات جو وقت مقرر ڪيل هو. ان ڪري اهي جاڳي رات ڪاٿي رهيا هئا ۽ مقرر وقت جو انتظار ڪري رهيا هئا، پر الله تعاليٰ پنهنجي هر ڪم تي غالب آهي، ان جي هٿ ۾ آسمانن ۽ زمينن جي بادشاهت آهي. هو جيڪي چاهي اهو ڪري ٿو، جنهن کي بچائڻ چاهي، ان جو ڪير وار به ونگو نٿو ڪري سگهي ۽ جنهن کي پڪڙڻ چاهي، ان کي ڪوبه بچائي نٿو سگهي. ان ڪري الله تعاليٰ هن موقعي تي اهو ڪم ڪيو جيڪو هيٺين آيت ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي مخاطب ٿيندي چيو ويو آهي ته:

﴿وَإِذْ يَمْكُرُ بِكَ الَّذِينَ الَّذِينَ كَفَرُوا لِيُثْبِتُوكَ أَوْ يَقْتُلُوكَ أَوْ يُخْرِجُوكَ وَيَمْكُرُونَ وَيَمْكُرُ اللَّهُ وَاللَّهُ خَيْرٌ الْمَاكِرِينَ﴾ (30) (الانفال)

”۽ (اي پيغمبر! ياد ڪر) جنهن مهل ڪافرن تولاڙ رت ٿي ڪئي ته توکي سوگهو ڪن يا توکي ڪنهن يا توکي لوڏين ۽ (اها بچڙي) رت ڪيائون ٿي. ۽ الله (به) ڪئي ٿي ۽ الله بهتر رت ڪندڙ آهي.“

پاڻ سڳورن ﷺ جو گهر ڇڏڻ:- بهرحال قريش پنهنجي رتا تي عمل ڪرڻ جي مڪمل تياريءَ جي باوجود به ناڪام ٿيا جو ان نازڪ ترين موقعي تي پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت علي رضيه الله عنه کي فرمايو ته: ”تون منهنجي هنڌ تي لپتي پئو ۽ منهنجي ساٿي حضرمي (3) چادر مٿان پائي سمهي ره. توکي انهن کان ڪو نقصان نه رسندو.“ پاڻ سڳورا ﷺ اها ئي چادر پائي سمهندا هئا. (4)

1 - ابن هشام (482/1).

2 - ابن هشام (483/1).

3 - حضرمي (ڏکڻ يمن) جي ٺهيل چادر کي حضرمي چادر چئبو آهي.

4 - ابن هشام (482/1، 483).



ان کانپوء پاڻ سڳورا ﷺ ٻاهر نڪتا ۽ مشرڪن جون صفون چير يائون. سندن مٿن تي مٽيءَ مان مٺ پري وڌائون. ۽ الله سندن نظرون جهلي ورتيون ۽ اهي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏسي نه سگهيا. ان وقت پاڻ سڳورا ﷺ هيءَ آيت پڙهي رهيا هئا.

﴿وَجَعَلْنَا مِنْ بَيْنِ أَيْدِيهِمْ سَدًّا وَمِنْ خَلْفِهِمْ سَدًّا فَأَغْشَيْنَاهُمْ فَهُمْ لَا يُبْصِرُونَ﴾ (9) (يس)

”۽ سندن اڳيان اوت ۽ سندن پوئتان (ٻه) اوت ڪڍيسون، پوءِ کين ڍڪيسون، تنهن ڪري اهي (ڪجهه) نه ڏسندا.“

ان موقعي تي ڪو هڪ مشرڪ به نه رهيو. جنهن جي مٿي تي پاڻ سڳورن ﷺ ڌوڙ نه وڌي هجي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ، ابوبڪر رضه جي گهر پهتا ۽ پوءِ انهن جي گهر جي هڪ دريءَ مان نڪري ٻئي جڳا رات ئي رات ۾ يمن ڏانهن روانا ٿيا ۽ ڪجهه ميل پري ٿور نالي جبل جي هڪ غار ۾ پهچي ويا. (1)

هوڏانهن گهيرا ڪندڙ سفر جي وقت جو انتظار ڪندا رهيا، پر ان کان ٿورو اڳ کين پنهنجي ناکاميءَ جو پتو پيو. ٿيو هيئن جو انهن وٽ هڪ اجنبي ماڻهو آيو ۽ کين پاڻ سڳورن ﷺ جي دروازي تي بيٺل ڏسي پڇيائين ته توهان ڪنهن جو انتظار پيا ڪريو؟ انهن ورائيو ته: محمد ﷺ جو. هن چيو ته: توهان ناڪام ۽ نامراد ٿيا. الله جو قسم! محمد ﷺ توهان وٽان لنگهي، توهانجي مٿن ۾ مٽي وجهي پنهنجي ڪر سان هليو ويو. انهن چيو ته:

الله جو قسم! اسان ته کيس نه ڏٺو ۽ ان کان پوءِ پنهنجن مٿن تان مٽي ڇنڊيندي آڻيا. پر پوءِ به دروازي مان جهاتي پائي ڏنائون ته حضرت علي رضه کين ڏسڻ ۾ آيو. چوڻ لڳا ته: الله جو قسم! هي ته محمد ﷺ ستو پيو آهي. سندس مٿان سندس چادر به پيل آهي. پوءِ اهي صبح تائين اتي ئي ويٺا رهيا. صبح جو حضرت علي رضه هنڌ تان اٿيو ته مشرڪن جون وايون بتال ٿي ويون. انهن، حضرت علي رضه کان پڇيو ته: پاڻ سڳورا ﷺ ڪٿي آهن؟ حضرت علي رضه ورائيو ته: مونکي خبر ڪانه آهي؟ (2)

**گهر کان غار تائين:-** پاڻ سڳورن ﷺ نبوت جي چوڏهين سال 27 صفر تي (12-13 سيپٽمبر 622ع جي وچ واري رات) (3) پنهنجي گهر مان نڪري پنهنجي سڀ کان ويجھي ساٿيءَ ابوبڪر رضه

1 - ابن هشام (483/1) زاد المعاد (52/2).

2 ابن هشام ۽ زاد المعاد.

3 - رحمة للعالمين (95/1) صفر جو هيءُ مهينو نبوت جي چوڏهين سال جو اهو وقت هوندو. جڏهن سن جو آغاز محرم جي مهيني کان مڃيو وڃي ۽ جي سن جي ابتدا ان ئي مهيني سان ڪريون. جنهن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي نبوت ملي ته صفر جو اهو مهينو تيرهين سال ۾ ٿيندو. عام سيرت نگارن ڪٿي پهريون حساب ڪيو آهي ته ڪٿي پيو. جنهن جي ڪري هو واقعي سن جي ستاڻ کي هيٺ مٿي ڪري ويا آهن. اسان سن جو آغاز محرم کان مڃيو آهي.

جي گهر پهتا ۽ اتان پنئين پاسي جي هڪ دريءَ مان نڪري ٻئي چٽا هليا ته جيئن سج اڀرڻ کان اڳ مڪي کان ٻاهر نڪري وڃن.

جيئن ته پاڻ سڳورن ﷺ کي معلوم هو ته قریش پوري محنت سان پاڻ سڳورن ﷺ جي ڳولها ۾ لڳي ويندا ۽ جنهن رستي تي پهرين ويندا، اهو مديني وارو رستو هوندو، جيڪو اتر ڏانهن وڃي ٿو، ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ صفا ايتو گس ورتو. يعني يمن وارو رستو مڪي جي ڏکڻ ۾ آهي. پاڻ سڳورن ﷺ ان رستي تي اٽڪل پنجن ميلن جو فاصلو طءُ ڪيو ۽ ان جبل جي دامن ۾ پهتا، جيڪو ٿور جي نالي سان مشهور هو. اهو جبل ڏاڍو مٿي، وڙوڪڙن وارو ۽ ڏکي چڙهائي وارو هو. هتي پٿر به ڏاڍا هئا، جن سان پاڻ سڳورن ﷺ جا ٻئي پير زخمي ٿي ويا. ڪهڙو به سبب هجي، حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ، پاڻ سڳورن ﷺ کي کنيو ۽ ڊوڙندي جبل جي چوٽيءَ تي هڪ غار وٺ پهتا، جيڪو تاريخ ۾ غارِ ٿور جي نالي سان مشهور آهي.<sup>(1)</sup>

غار ۾:- غار وٺ پهچي حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ چيو ته: "الله جي واسطي اڃا توهان هن ۾ داخل نه ٿيو. پهرين آئون وڃي ٿو ڏسان، جيڪڏهن ان ۾ ڪا شيءِ هوندي ته توهان بدران مون سان ان جو پالو پوندو." پوءِ حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ اندر ويو ۽ غار کي صاف ڪيائين. هڪ پاسي ڪجهه سوراخ هئا، جن کي پنهنجو پوتڙو ڦاڙي بند ڪيائين، پر ٻه سوراخ باقي بچيا. حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ انهن ٻنهي تي پنهنجا پير رکي ڇڏيا. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي اندر اچڻ لاءِ سڏ ڪيائين. پاڻ سڳورا ﷺ اندر ويا ۽ حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ جي هنج ۾ مٿو رکي سمهي پيا. هوڏانهن حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ جي پيرن ۾ ڪنهن شيءِ چڪ پاتو، پر ان ڊپ کان نه چريا ته متان پاڻ سڳورا ﷺ جاڳي نه پون. پر سندن لڙڪ وڃي پاڻ سڳورن ﷺ جي چهري مبارڪ تي ڪريا (۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي اک کلي پئي) پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: "ابوبڪر توکي ڇا ٿيو؟" ورائيائين ته منهنجا ماءُ پيءُ توهان تان گهور وڃن! مونکي ڪنهن شيءِ چڪ پاتو آهي. پاڻ سڳورن ﷺ ان تي پنهنجي پڪ (لعاب) لڳائي ۽ سور لهي ويو.<sup>(2)</sup>

اتي ٻنهي تي راتيون، يعني جمع، ڇنڇر ۽ آچر جون راتيون لڪي گذاريون.<sup>(3)</sup>

<sup>1</sup> - رحمة للعالمين (95/1) مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 167).

<sup>2</sup> - اها ڳالهه رزين، حضرت عمر رضی اللہ عنہ کان روايت ڪئي آهي. هن روايت ۾ اهو به آهي ته پوءِ ان زهر اٿل کاڌي (يعني موت وقت زهر جي اثر اٿل کاڌي) ۽ اهو ئي موت جو سبب بڻيو. مشکوة (556/2).

<sup>3</sup> - فتح الباري (336/7)

ان دوران ابوبڪر رضي الله عنه جو پٽ عبدالله رضي الله عنه به اتي ئي راتيون گذاريندو هو. بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته هو نهايت هوشيار ۽ سمجھ وارو نوجوان هو. پرھ ڦٽيءَ مهل انهن کان موڪلائيندو هو ۽ مڪي جي قريشن سان ائين صبح جو ملندو هو، جڏهن اتي ئي رات گذاري هجي. پوءِ ٻنهي (پاڻ سڳورن ۽ ابوبڪر) جي خلاف جيڪا ست سٽي هئي، سا ٻڌي چڱيءَ طرح ياد ڪري رات جو ان جي خبر غار ۾ پهچائيندو هو.

هوڏانهن حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جو ٻانهو عامر رضي الله عنه بن فهيره ٻڪريون چاريندي رات جو هڪ ڀير گذرڻ بعد ٻڪريون ڪاهي انهن وٽ پهچي ويندو هو. اهڙيءَ طرح ٻئي جڙا رات جو پيٽ ڀري کير پيئندا هئا. پوءِ صبح ساڻ ئي هو واپس موٽي ويندو هو. ٽئي راتيون هن ائين ڪيو (1) (وڌيڪ اهو ته) عامر رضي الله عنه بن فهيره، حضرت عبدالله بن ابي بڪر رضي الله عنه جي مڪي وڃڻ بعد سندن ئي پيرن جي نشانن تي ٻڪريون ڪاهي نڪرندو هو ته جيئن نشان ڏهي وڃن. (2)

**قريشن جي پڇ ڏڪ:-** هوڏانهن قريشن جو حال اهو هو ته جڏهن قتل جي منصوبي واري رات گذرڻ کان پوءِ صبح جو کين پڪ ٿي ته پاڻ سڳورا عليه السلام سندن هٿن مان نڪري چڪا آهن ته انهن تي جڏهن طاري ٿي ويو. انهن سڀ کان پهرين پنهنجي ڪاوڙ حضرت علي رضي الله عنه تي ائين ڪري جو کين گهلي ڪعبه الله ۾ آندائون ۽ ڪجهه دير حراست ۾ رکي (پڇا ڳاڇا ڪيائون) ته متان انهن ٻنهي جو پتو پئجي وڃي. (3) پر جڏهن حضرت علي رضي الله عنه کان ڪا خبر نه پئجي سگهين ته ابوبڪر رضي الله عنه جي گهر آيا ۽ دروازو کٽڪيائون. بيبي اسماء رضي الله عنها بنت ابوبڪر رضي الله عنه ٻاهر نڪتي ته ڪانئن پڇيائون ته تنهنجو پيءُ ڪٿي آهي؟ هن ورائيو ته: مونکي خبر ڪانه آهي ته بابا ڪٿي آهي. ان تي ابوجهل کين ايڏو ته زور سان ٽٽڙ هنيو جو سندن ڪن جي والي ڪري پئي. (4)

ان کانپوءِ قريشن هڪ هنگامي اجلاس سڏائي اهو طءُ ڪيو ته انهن ٻنهي کي گرفتار ڪرڻ لاءِ سڀ وسيلا ڪتب آندا وڃن. ان کان پوءِ مڪي کان نڪرندڙ سڀني رستن تي، پلي اهو ڪيڏانهن به ويندڙ هجي، ڏاڍو سخت پهرو ويهاريو ويو. ان طرح اهو پڙهو به ڏياريو ويو ته جيڪو به پاڻ سڳورن عليه السلام ۽ ابوبڪر رضي الله عنه کي يا انهن مان ڪنهن هڪ کي جيئرو يا مٿل جهلي ايندو، ان کي هر هڪ جي بدلي ۾ سو اٺن جو انعام ڏنو ويندو. (5) ان پڙهي جي نتيجي ۾ سوار ۽ پيادا ۽ ماهر پيري سرگرميءَ

1 - صحيح بخاري (1/553، 554)

2 - ابن هشام (1/486)

3 - رحمة للعالمين (1/96)

4 - ابن هشام (1/487)

5 - صحيح بخاري (1/554)

سان ڳولها ۾ لڳي ويا ۽ جبلن، ماڻرين ۽ هيٺائين مٿاهين ۾ هر طرف ڦهلجي ويا، پر نتيجو ڪجهه نه نڪتو.

ڳولھڻ وارا غار جي منهن تي به پهتا، پر الله تعاليٰ پنهنجي ڪم تي غالب آهي. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ حضرت انس رضي الله عنه کان آيل آهي ته ابوبڪر رضي الله عنه فرمايو ته: "آئون پاڻ سڳورن عليه السلام سان غار ۾ هوس. مٿو ڪٿي ڏٺم ته ماڻهن جا پير نظر آيا. مون چيو ته يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! جيڪڏهن انهن مان ڪو ماڻهو رڳو توري نظر هيٺ ڪري ڏسي ته اسانڪي ڏسي وڻندو. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "ابوبڪر چپ ڪر، (اسان) به آهيون، جن سان تيون الله آهي." هڪ روايت جا لفظ آهن ته: مَا ظَنَّاكَ يَا أَبَا بَكْرٍ بِأَنَّ اللَّهَ تَالِثُهُمَا يَعْنِي ابُوبَكْرٍ! اهڙن ٻن ماڻهن بابت تنهنجو ڇا خيال آهي، جن سان تيون الله آهي. (1)

حقيقت ۾ اهو هڪ معجزو هو، جيڪو الله تعاليٰ پنهنجي نبيءَ کان ڪرايو. تنهنڪري ڳولها ڪرڻ وارا ان وقت موتي ويا، جڏهن سندن ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام جي وچ ۾ چند قدمن کان وڌيڪ فاصلو نه بچيو هو.

مديني جي راهه ۾:- جڏهن تن ڏينهن جي لڳاتار ۽ اجائي ڏڪ ڊوڙ ۽ ڳولها ختم ٿي ۽ قريشن جو جوش ۽ جذبو ٿڌو ٿيو ته پاڻ سڳورن عليه السلام ۽ حضرت ابوبڪر رضي الله عنه مديني ڏانهن هلڻ جو پهبه ڪيو. عبدالله بن اريقط سان، جيڪو ريگستاني رستن جو ماهر هو، پهرين ئي پئسن تي مديني پهچائڻ جو معاملو طئه ٿيل هو. اهو همراهه اڃا قريشن جي دين تي هو، پر ويساهه جوڳو هو. ان ڪري سواريون سندس حوالي ڪيون ويون هيون ۽ اهو طئه ٿيو هو ته ٽي راتيون گذرڻ بعد هو ٻئي سواريون وٺي غار ٿور وٽ پهچي ويندو. تنهنڪري جڏهن سومر جي رات ٿي، جيڪا ربيع الاول سن 1 هه جي چند رات هئي (مطابق 16 سيپٽمبر 622ع) ته عبدالله بن اريقط سواريون وٺي آيو ۽ ان موقعي تي ابوبڪر رضي الله عنه، پاڻ سڳورن عليه السلام کي سڀ کان پلي ڏاچي پيش ڪندي عرض ڪيو ته: توهان منهنجين انهن ٻنهي سوارين مان هڪ قبوليو. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "ملهه سان وڻندس." هوڏانهن اسماء رضي الله عنها بنت ابوبڪر رضي الله عنه به سفر جو سامان کڻي آئي، پر چڪو وسري ويس. جڏهن هلڻ جو وقت ٿيو ته ان سامان لتڪائڻ چاهيو ته ڏنائين ته چڪو ته آهي ئي ڪونه!

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/516، 556)، هتي اهو نقطو ياد رکڻ گهرجي ته ابوبڪر رضي الله عنه جو اضطراب پنهنجي جان جي خوف کان نه هو، بلڪ ان جو واحد سبب اهو هو جيڪو ان روايت ۾ ٻڌايل آهي ته ابوبڪر رضي الله عنه جڏهن قباfe شناسن کي ڏٺو ته پاڻ سڳورن عليه السلام لاءِ پاڻ غمگين ٿي ويو ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام کي چيائين ته جي آئون مارجي ويس ته رڳو هڪ ماڻهو مرنديو، پر جي توهان قتل ٿي ويا ته سڄي امت غارت ٿي ويندي ۽ ان موقعي تي پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: ڏک نه ڪر. الله پڪ سان اسان سان گڏ آهي. ڏسو مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 168).

پوءِ هن پنهنجو سندرو ڪوليو ۽ ان کي ڦاڙي به ٽڪرا ڪري هڪ ۾ سامان ٻڌي لٽڪايو ۽ ٻيو چيلهه ۾ ٻڌي ڇڏيو. ان ڪري سندن لقب "ذاتُ التَّطَائِفِ" پئجي ويو. (1)

ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ ۽ حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہما روانا ٿيا. عامر بن فهيره رضی اللہ عنہ به ساڻن گڏ هو. سندن سونهي عبدالله بن اريقط ڪناري وارو رستو ورتو.

غار مان نڪري هن سڀ کان پهرين يمن ڏي رخ ڪيو ۽ پوءِ ڏکڻ ڏانهن ڪافي پري تائين وٺي ويو. پوءِ اولهه طرف مڙي ويو. اهو رستو بحر احمر جي ڪناري جي ويجهو ئي هو ۽ ان تي ڪڏهن ڪڏهن ئي ڪو سفر ڪندو هو.

پاڻ سڳورا ﷺ هن رستي تان جن جن جڳهين وٽان لنگهيا، ابن اسحاق ان جو ذڪر ڪيو آهي. سندس چوڻ آهي ته جڏهن سونهون پنهي چئن کي گڏ وٺي مڪي جي هيٺائين علائقي کان نڪتو. پوءِ ڪناري سان گڏوگڏ هلندي عسفان جي هيٺئين علائقي مان لنگهي پوءِ امج جي هيٺئين علائقي مان گذري اڳتي وڌيو ۽ قديد پار ڪري وري مڙيو ۽ اتان ئي اڳتي وڌندو خرار مان گذريو. پوءِ ثنية المرة کانپوءِ لقف مان پوءِ لقف جي بيابان مان لنگهيو. پوءِ مجاح جي رڻ پٽ ۾ پهتو ۽ اتان وري مجاح جي موڙ کان گذري پوءِ ذوالغضوين کان مڙي هيٺاهين ڏانهن هليو. پوءِ ذي ڪشر جي واديءَ ۾ داخل ٿيو. پوءِ جداجد ڏانهن ويو. پوءِ اجرد پهتو ۽ ان کانپوءِ تعهن جي رڻ پٽ جي ڀرپاسي جي ماتري ذوسلمر مان لنگهيو. اتان کان عبايد ۽ ان کانپوءِ فاج جو رخ ڪيائين. پوءِ عرج ۾ لٿو. پوءِ رڪوبه جي ساڄي پاسي ثنية العائر ۾ آيو. تنهن کانپوءِ رئم جي واديءَ ۾ لٿو ۽ ان کان پوءِ قباء پهچي ويو. (2)

### اچو ته هاڻي رستي جا ڪجهه واقعا ٻڌندا هليون.

1. صحيح بخاريءَ ۾ حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ کان آيل آهي ته انهن فرمايو ته "اسان (غار مان نڪري) سڄي رات ۽ سارو ڏينهن هلندا رهياسين. جڏهن ٻيهر ٿيا ۽ رستو خالي ٿي ويو ۽ ڪوبه راهگير نه رهيو ته اسان کي هڪ ٽڪر ڏسڻ ۾ آيو، جنهن جي سائي ۾ اسان لٽاسين، مون هٿن سان پاڻ سڳورن ﷺ جي سمهڻ لاءِ جڳهه ٺاهي ۽ ان تي ڪپڙو وڇائي عرض ڪيو ته يا رسول الله ﷺ! توهان سمهي رهو ۽ آئون سنڀال ٿو ڪريان. پاڻ سڳورا ﷺ آرامي ٿيا ۽ آئون نگراني ڪرڻ لڳس. اوجتو ڇا ٿو ڏسان ته هڪ ڌنار پنهنجن ٻڪرين جي ڏڻ سان ٽڪر ڏانهن هلندي پئي آيو. هو به ان ٽڪر هيٺان ساھي پٽڻ لاءِ پئي آيو. مون کيس چيو ته: اي جوان تون ڪنهن جو ماڻهو آهين؟ هن مڪي يا

1 - صحيح بخاري (1/553، 555) ابن هشام (1/484).

2 - ابن هشام (1/491، 492).

مديني جي ڪنهن ماڻهوءَ جو ذڪر ڪيو. مون چيو ته تنهنجن پڪرين ۾ ڪجهه کير آهي؟ هن چيو ته ها. مون چيو ته ڏهي وٺان؟ هن چيو ته ها ۽ هڪ پڪري جهلي آيو. مون چيو ته تورو ٿڌو تان مٽي، وار ۽ ڪڪ صاف ڪر. پوءِ هن هڪ وٽي ۾ تورو کير ڏڌو. مون وٽ هڪ چمڙي جو لوتو هو. جيڪو مون پاڻ سڳورن ﷺ جي پاڻي پيئڻ ۽ وضو ڪرڻ لاءِ کنيو هو. اٺون پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيس، پر کين جاڳائڻ صحيح نه سمجهيم. جڏهن پاڻ جاڳيا ته مون وٽن اچي کير ۾ پاڻي وڌو تان ته ان جو هيٺيون حصو نري ويو. ان کانپوءِ مون چيو ته: يا رسول الله ﷺ! پي ونو. پاڻ سڳورن ﷺ پيئو ۽ خوش ٿيا. پوءِ فرمايائون ته ڇا اڃا هلڻ جو وقت نه ٿيو آهي. مون چيو ته ڇو نه؟ ان کانپوءِ اسان روانا ٿياسين. (1)

2. هن سفر ۾ حضرت ابوبڪر رضه، پاڻ سڳورن ﷺ سان پيلهه ٿي هليو، ڇو ته هن تي پوڙهائپ جا اهڃاڻ پڌرا هئا، ان ڪري ماڻهن جو ڌيان انهن ڏانهن ويندو هو. پاڻ سڳورن ﷺ تي اڃا جوانيءَ جا آثار غالب هئا، ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن گهٽ ڌيان ٿي ويو. ان جو ڪارڻ اهو هو ته ڪو ماڻهو ملندو هو ته ابوبڪر رضه کان پڇندو هو ته توهانجي اڳيان ڪير ويندو آهي؟ (حضرت ابوبڪر رضه ڏاڍو سهڻو جواب ڏيندي) چوندو هو ته "اهو مونکي رستو ٻڌائيندڙ آهي." ان سان سمجهڻ وارو سمجهندو هو ته عام رستي جو ذڪر پيو ڪجي، پر سندن مقصد خير جو رستو هوندو هو. (2)

3. هن ئي سفر ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو گذر ام معبد رضي الله عنها خزايعه جي خيمي وٽان ٿيو. اها پاڻ ڳري بت واري عورت هئي. کانپ هنيو خيمي جي ٻاهران ويني هوندي هئي ۽ اچڻ وڃڻ واري جي خدمت چاڪري ڪندي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ کائڻ پيئڻو ته: تون وٽ ڪجهه آهي؟ چيائين ته: "الله جو قسم! اسان وٽ ڪجهه هجي ها ته توهانجي ميزبانيءَ ۾ ڏکيائي نه ٿئي ها. پڪريون به پري ويل آهن." اهو ڏڪار جو دور هو.

پاڻ سڳورن ﷺ ڏٺو ته خيمي جي هڪ ڪنڊ ۾ هڪ پڪري بيٺل آهي. فرمايائون ته: "ام معبد هيءَ پڪري ڪيئن آهي؟ وراثيائين ته: "ڪمزوريءَ ڪري ڏڻ کان ڌار ٿيل آهي." پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: ان ۾ ڪجهه کير آهي وراثيائين ته: "ها، ان کان گهڻي ڪمزور آهي." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اجازت هجي ته ان مان ڏهي وٺان؟" چيائين ته: "منهنجا ماءُ پيءُ اوهان تان گهور وڃن، ڀلي جيڪڏهن هن ۾ اوهانکي کير ڏسڻ ۾ اچي ته ڏهي ونو." ان ڳالهه بولڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (510/1).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري عن انس (556/1).

ﷺ ان پڪريءَ جي ٿڻ تي هٿ ڦيريو ۽ الله جو نالو وٺي دعا گهري. پڪريءَ پير کوليا، ٿڻن ۾ کير ڀرجي ويو. پاڻ سڳورن ﷺ، ام معبد رضي الله عنها کان هڪ وڏو ٿانو ورتو، جيڪو هڪ ٽولي لاءِ ڪافي هو. ان ۾ ايترو ڏڏو جو گجي ٻاهر نڪري آئي. پوءِ ام معبد کي پياريو، ان پيٽ پري کير پيتو ته پنهنجن ساٿين کي پياريائون. انهن به پيٽ پري کير پيتو ته پاڻ پيٽائون. پوءِ ان ٿانو ۾ ٻيهر ايترو کير ڏڏائون جو ٿانو ڀرجي ويو ۽ اهو ام معبد کي ڏئي اڳتي وڌيا.

ٿوري دير کانپوءِ سندن مڙس ابو معبد ﷺ پنهنجين ڏيرين پڪرين کي، جيڪي ڪمزوريءَ ڪري ٿاڀڙجي رهيون هيون، هڪليندي پهتو. کير ڏسي حيرت ۾ پئجي ويو. پڇيائين ته: هي تو وٽ ڪٿان آيو؟ جڏهن ته پڪريون پري هيون ۽ گهر ۾ ڪابه کير واري پڪري نه هئي. هن چيو ته: "بخدا ان کانسواءِ ڪا ڳالهه نه آهي ته اسان وٽان هڪ ڀلاڙو ماڻهو لنگهيو. جنهن ۾ هي هي ڳالهيون هيون ۽ هي هي حال هئس." ابو معبد ﷺ چيو ته: اهو ته ساڳيو قريشن وارو صاحب ٿو لڳي، جنهن کي قريش ڳولهي رهيا آهن. چڱو ٿورو ان جا پار پتا ته ٻڌائي. ان تي ام معبد رضي الله عنها ڏاڍي وڻندڙ انداز ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جون صفتون بيان ڪيون، ڇڻ ته ٻڌڻ وارو پاڻ سڳورن ﷺ کي پنهنجي سامهون ڏسي رهيو هجي. هن ڪتاب جي آخر ۾ اهي وصفون لکيون وينديون. اهي وصفون ٻڌي ابو معبد ﷺ چيو ته "والله اهو ته ساڳيو قريشن وارو صاحب آهي، جنهن بابت ماڻهو طرحين طرحين ڳالهيون ڪن ٿا. منهنجو ارادو آهي ته ساڻن رفاقت اختيار ڪريان ۽ ڪو گس مليو ته ائين ضرور ڪندس."

هوڏانهن مڪي ۾ هڪ پٿر ڏوڏو گونجيو، جنهن کي ماڻهن ٻڌو ته سهي پر ڳالهائڻ وارو

نظر ڪونه آين. آواز هي هو:

حَزَى اللَّهُ رَبَّ الْعَرْشِ خَيْرَ حَزَائِهِ رَفِيقِينَ حَلًا خَيْمَتِي أُمِّ مَعْبِدٍ  
هُمَا نَزَلَا بِالْبُرِّ وَارْتَحَلَا بِهِ وَأَفْلَحَ مَنْ أَمْسَى رَفِيقَ مُحَمَّدٍ ﷺ  
فِي الْقُصِيِّ مَا زَوَى اللَّهُ عَنْكُمْ بِهِ مِنْ فَعَالٍ لَأُجَارِي وَسُودِدَ  
لِيَهْنَ بَنِي كَعْبٍ مَكَانَ فَتَاتِهِمْ وَمَقْعَدُهَا لِلْمُؤْمِنِينَ بِمِرْصَدٍ  
سَلُوا أُمَّتَكُمْ عَنْ شَاتِهَا وَإِنَائِهَا فَإِنَّكُمْ إِنْ تَسَأَلُوا الشَّاءَ تَشْهَدُ

"الله رب العرش انهن بن رفیقن کي بهترين جزا ڏي، جيڪي ام معبد جي خيمي ۾ لٿا. اهي ٻئي خير سان لٿا ۽ خير سان روانا ٿيا ۽ جيڪو محمد ﷺ جو رفیق ٿيو، اهو ڪامياب ٿيو. هاڻ قصي! الله ان لاءِ ڪيڏا نه بي مثال ڪارناما ۽ سرداريون توکان ڪسي ڇڏيون. بنو ڪعب کي سندن

عورت جي گهر ۽ مومنن جي سنڀال جو هنڌ مبارڪ هجي. توهان پنهنجي عورت کان سندس ٻڪري ۽ ٿانو بابت پڇو. توهان جيڪڏهن پاڻ ٻڪريءَ کان پڇندو ته اها به شاهدي ڏيندي." (1)

بيبي امساء رضي الله عنها جو چوڻ آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ ڪنهن پاسي ويا پئي جو هڪ جن مڪي جي هيٺاهين مان هي شعر پڙهندو آيو. ماڻهو ان جي پٺيان هلي رهيا هئا. ان جو آواز ٻڌي رهيا هئا، پر کيس ڏسي نه رهيا هئا. تان ته اهو مڪي جي مٿئين حصي کان نڪري ويو. سندن بيان آهي ته جڏهن اسان اها ڳالهه ٻڌي ته اسانکي پتو پيو ته پاڻ سڳورا ﷺ ڪهڙي پاسي پيا وڃن. يعني سندن رخ مديني ڏانهن هو. (2)

4. گس تي سراقه بن مالڪ پيڇو ڪيو ۽ اهو واقعو پاڻ سراقه ٻڌايو آهي ته "آئون پنهنجي قوم بني مدلج جي هڪ مجلس ۾ ويٺو هوس ته ايتري ۾ هڪ ماڻهوءَ اچي ٻڌايو ته: اي سراقه! مون اجهو هاڻي ڪناري وٽ ڪي ماڻهو ڏٺا آهن. منهنجي خيال ۾ اهو محمد ﷺ ۽ سندس ساٿي آهن. سراقه جو بيان آهي ته آئون سمجهي ويس ته هي اهي ئي آهن، پر ان ماڻهوءَ کي چير ته اهي ڪونه هوندا، پر تو فلائن فلائن ڪي ڏٺو هوندو، جيڪي اسان جي اڳيان لنگهي ويا آهن. پوءِ آءُ مجلس ۾ ٿوري دير وينس. ان کانپوءِ اتي اندر ويس ۽ پنهنجي ٻانهيءَ کي حڪم ڪيو ته گهوڙو ٻاهر ڪڍي ۽ ڌڙي جي پٺيان بيهي منهنجو انتظار ڪري. هوڏانهن مون پنهنجو نيزو کنيو ۽ گهر جي پٺئين پاسي ٻاهر نڪتس. لٺ جو هڪ چيڙو زمين تي گيهلندو پيو ويس ۽ ٻيو مٿيون چيڙو مٿي ڪري رکيو هئس. ان طرح پنهنجي گهوڙي وٽ پهتس ۽ ان تي سوار ٿي ويس. مون ڏٺو ته اهو معمول مطابق ڊوڙندي مونکي انهن جي ويجهو وٺي آيو. ان کان پوءِ گهوڙو مون سميت ترڪيو ۽ آئون ان تان ڪري پيس. مون اتي تيرن جي بني (ترڪش) ڏانهن هٿ وڌايو ۽ فال وارا تير ڪڍي اهو ڄاڻڻ جي ڪوشش ڪيو ته آئون انهن کي ڇيهو رسائي سگهندس يا نه! تير اهو نڪتو، جيڪو مونکي ناپسند هو، پر مون تير جي نافرمانِي ڪئي ۽ گهوڙي تي چڙهيس. اهو مونکي ڊوڙائڻ لڳو. تان ته جڏهن آئون پاڻ سڳورن ﷺ جي فرٽ جو آواز ٻڌڻ لڳس، پر انهن مون تي ڌيان نه ڏنو. تڏهن به ابوبڪر رضه هر هر مڙي ڏسي رهيو هو. منهنجي گهوڙي جا اڳيان پئي پير گوڏن تائين زمين ۾ گهڙي ويا ۽ آئون ڪري پيس. پوءِ مون ان کي هڪلون ڪيون ته هن اٿڻ جي ڪوشش ڪئي، پر سندس پير ڏاڍا ڏکيا ٻاهر نڪتا. بهرحال هو جڏهن سڌو ٿي بيٺو ته سندس پيرن وٽان آسمان جي طرف دز اڏامي رهي هئي. مون ٻيهر تير سان قسمت معلوم ڪئي ۽ وري به ساڳيو تير نڪتو. ان کان پوءِ مون

<sup>1</sup> - زاد المعاد (3 / 50)

<sup>2</sup> - زاد المعاد (2 / 53,54) بنو خزاعه جي رهائش جي جڳهه نظر ۾ رکندي اهو خيال اچي ٿو ته هي واقعو غار مان هلڻ جي ٻئي ڏينهن ٿيو.



أَمَانٌ جِي نیت سان کین سڏيو ته اهي بيهي رهيا ۽ آئون پنهنجي گهوڙي تي چڙهي انهن وٽ پهتس. جڏهن مونکي انهن ڏانهن وڌڻ کان جهليو ويو هو، ان مهل ئي منهنجي دل ۾ اها ڳالهه ويهي رهي هئي ته پاڻ سڳورا ﷺ نيٺ سوپارا ٿيندا. تنهن ڪري مون پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ته: توهان جي قوم توهان تي انعام رکيو آهي ۽ گڏوگڏ مون ماڻهن جي ارادن کان به کين واقف ڪيو ۽ ساز سامان جي پيشڪش ڪئي، پر انهن منهنجو ڪوبه سامان نه ورتو ۽ نه مون کان ڪو سوال ڪيو. رڳو ايترو چيو ته اسان بابت رازداري اختيار ڪجان. مون پاڻ سڳورن ﷺ کي عرض ڪيو ته مونکي امن جو پروانو لکي ڏيو. پاڻ سڳورن ﷺ، عامر بن فهيره رضي الله عنه کي حڪم ڪيو ۽ ان چمڙي جي هڪ ٽڪري تي لکي منهنجي حوالي ڪيو پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ اڳتي وڌي ويا. (1) ان واقعي بابت خود ابوبڪر رضي الله عنه به هڪ روايت بيان ڪئي آهي ته اسين هلياسين ته قوم اسانجي ڳولها ۾ نڪتي پر سراقه بن مالڪ بن جعشم رضي الله عنه کانسواءِ، جيڪو پنهنجي گهوڙي تي آيو هو، ٻيو ڪوبه اسان تائين نه پهچي سگهيو. مون چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! هي پيڇو ڪرڻ وارو اسان تائين پهچي ويو آهي!" پاڻ سڳورن فرمايو ته: "لَا تَحْزَنَنَّ إِنَّ اللَّهَ مَعَنَا" يعني "غير نه ڪر، الله اسان سان گڏ آهي." (2)

بهرحال سراقه رضي الله عنه موتيو ته ڏنائين ته ماڻهو ڳولها ۾ رڌل آهن. چوڻ لڳو ته آئون هيڏانهن ڏسي آيو آهيان، هيڏانهن اوهان جو جيڪو ڪم هو، اهو ڪري آيو آهيان. (اهڙيءَ طرح ماڻهن کي واپس وٺي ويو.) يعني ڏينهن جو ته هلاڻ ڪري پئي آيو ۽ رات جو رکوال بڻجي ويو. (3)

5. واٽ تي پاڻ سڳورن ﷺ کي بريدہ اسلمي رضي الله عنه مليو. هو پنهنجي قوم جو سردار هو ۽ قرين، جنهن وڏي انعام جو اعلان ڪيو هو، ان جي لالچ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ ۽ ابوبڪر رضي الله عنه کي ڳولھڻ نڪتو هو، پر جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي آڏو پهتو ۽ ڳالهه ٻولهه ڪيائين ته دل ڏٺي ويٺو ۽ قوم جي ستر ماڻهن سميت مسلمان ٿيو. پوءِ پنهنجو پتڪو لاهي نيزي سان ٻڌائين، جنهن جو اچو جهنڊو هوا ۾ لهرائيندو ۽ بشارت ڏيندو هليو ته امن جو بادشاهه، صلح جو حامي، دنيا کي عدل ۽ انصاف سان نوازڻ لاءِ اچي رهيو آهي. (4)

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (554/1) بني مدلج جو وطن رابع ويجهو هو ۽ سراقه ان وقت پاڻ سڳورن ﷺ جي پويان لڳو، جڏهن پاڻ قديد کان مٿي وڃي رهيا هئا (زاد المعاد 53/2) ان ڪري وڌيڪ صحيح اهو آهي ته اهو واقعو غار کان نڪرڻ جي ٿيڻ ڏينهن ٿيو.

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (516/1).

<sup>3</sup> - زاد المعاد (53/2).

<sup>4</sup> - رحمة للعالمين (101/1).

6. وات تي پاڻ سڳورن ﷺ کي حضرت زبير بن العوام رضى الله عنه مليو. هو مسلمانن جي هڪ واپاري ٿولي سان شام ملڪ کان واپس موٽي رهيو هو. حضرت زبير رضى الله عنه، پاڻ سڳورن ﷺ ۽ ابوبڪر رضى الله عنه کي اچي رنگ جا ڪپڙا سوکڙي، طور ڏنا. (1)

قبا ۾ پهچڻ:- سومر جي ڏينهن 8 ربيع الاول نبوت جي چوڏهين سال يعني سن هڪ هجري مطابق 23 سيپٽمبر 622ع تي پاڻ سڳورا ﷺ قبا ۾ پهتا. (2)

حضرت عروة بن زبير رضى الله عنه جو بيان آهي ته مديني جي مسلمانن، مڪي مان پاڻ سڳورن ﷺ جي روانگيءَ جي خبر ٻڌي هئي، ان ڪري ماڻهو روز صبح سان حره (جبل جي چوٽي) تي وڃي پاڻ سڳورن ﷺ جون راهون تڪيندا هئا، نيٺ پنهنجن جو اس تڪي ٿيڻ کانپوءِ موٽي ويندا هئا. هڪ ڏينهن ڊگهي انتظار بعد ماڻهو موٽي ويا ته هڪ يهودي، هڪ ڀٽ (ڌڙي) مٿان ڪجهه ڏسڻ لاءِ چڙهيو. جان کڻي ڏسي ته پاڻ سڳورا ﷺ ۽ سندن ساٿي، جن کي اڃا ڪپڙا پهريلا هئا، جيڪي چانديءَ وانگر چمڪي رهيا هئا، اچي رهيا آهن. ان بيخوديءَ ۾ تمام وڏي آواز سان چيو ته: "اي عربستان وارو! اهو آهي اوهانجو نصيب، جنهن جو توهان انتظار ڪري رهيا هئا." اهو ٻڌندي ئي مسلمان هٿيارن ڏانهن ڊوڙي پيا. (3) (۽ هٿيارن سان سينگارڻي استقبال لاءِ اٿلي پيا.)

ابن قبير ٻڌائي ٿو ته: ان سان گڏ ئي بني عمرو بن عوف (قبا جا رهواسي) ۾ هلڻ مڃي ويو ۽ تڪبير لڳي. مسلمان پاڻ سڳورن ﷺ جي اچڻ جي خوشيءَ ۾ تڪبير جو نعرو هڻندي استقبال لاءِ نڪري پيا. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ سان ملي نبوت تي ايمان جي تجديد ڪيائون ۽ چوڌاري پروانن وانگر جمع ٿي ويا. ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ تي ماڻ طاري هئي ۽ وحي نازل ٿي رهي هئي.

﴿فَإِنَّ اللَّهَ هُوَ مَوْلَاهُ وَجِبْرِيلُ وَصَالِحُ الْمُؤْمِنِينَ وَالْمَلَائِكَةُ بَعْدَ ذَلِكَ ظَهِيرٌ﴾ (4) (التحریم)

”بيشڪ الله سندس پرجهلو آهي ۽ جبرئيل ۽ ستريل مؤمنن (ب) ۽ هن کان پوءِ ملائڪ (ب) مددگار آهن.“

حضرت عروه بن زبير رضى الله عنه جو بيان آهي ته ماڻهن سان ملڻ کانپوءِ (4) پاڻ سڳورا ﷺ ساڄي پاسي مڙيا ۽ بني عمرو بن عوف وٽ پهتا. اهو سومر جو ڏينهن ۽ ربيع الاول جو مهينو هو.

1 - صحيح بخاري، (554/1).

2 - رحمة للعالمين (102/1). ان ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ جي عمر بنا ڪنهن گهاتي وڏيءَ جي نيڪ 53 سالن تي پهتي هئي ۽ جيڪي ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جو آغاز 9 ربيع الاول سن 41 عام الفيل کان مڃين ٿا، انهن مطابق پاڻ سڳورن ﷺ جي نبوت جا نيڪ 13 ورهيه پورا ٿيا هئا. البتہ جيڪي ماڻهو نبوت جو آغاز عام الفيل جي 41 سال جي رمضان کان مڃين ٿا، انهن جي قول مطابق ٻارنهن سال پنج مهينا ارڙهن يا ٻاويهه ڏينهن ٿيا هئا.

3 - صحيح بخاري (555/1).

4 - زادالمعاد (54/2).

ابوبڪر رضي الله عنه اچڻ وارن کي پليڪار چوڻ لاءِ ٻين هو ۽ پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ماڻ ڪري وينا هئا. انصار آيا تي ۽ جن پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي نه ڏٺو هو، انهن سڌو ابوبڪر رضي الله عنه کي سلام ڪيو ٿي. تان ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم مٿان اس اچي وئي ۽ ابوبڪر رضي الله عنه چادر تائي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم مٿان چانو ڪئي، تڏهن ماڻهن، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي سڃاتو. (1)

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي استقبال ۽ ديدار لاءِ سڄو مدينو اٿلي پيو هو. اهو هڪ تاريخي ڏينهن هو. جنهن جو مثال مديني ۾ اڳي ڪڏهن به نه ڏٺو ويو هو. ان ڏينهن يهودين به حيقوق نبيءَ جي اها خوشخبري اکين سان ڏسي ورتي ته "خدا وند ڏکڻ کان ۽ اهو جيڪو قدوس آهي، فاران جبل کان آيو." (2)

پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم قباء ۾ ڪلثوم بن هدم رضي الله عنه يا ڪن جي چوڻ مطابق سعد بن خيشمة رضي الله عنه جي گهر ۾ رهيا. پهريون قول وڌيڪ معتبر آهي.

هوڏانهن حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه مڪي ۾ ٿي ڏينهن رهي سڀني ماڻهن جون امانتون، جيڪي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ رکيل هيون، سي موتائي پنڌ مديني ڏانهن هليو ۽ قباء ۾ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سان اچي مليو ۽ ڪلثوم بن هدم وٽ رهيو. (3)

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم قباء ۾ ڪل چار ڏينهن (4) (سومر، اڱارو، اربع، خميس) يا ڏهن کان وڌيڪ ڏينهن يا آمد ۽ روانگيءَ کانسواءِ 24 ڏينهن رهيا ۽ ان وچ ۾ مسجد قباء جو بنياد رکيائون ۽ ان ۾ نماز پڙهيا ٿيون. اها پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي نبوت ملڻ کانپوءِ جوڙيل پهرين مسجد هئي، جنهن جو بنياد تقويٰ تي رکيو ويو هو. پنجين ڏينهن (يا ٻارهين يا چويهين ڏينهن) جمع تي الله جي حڪم سان سوار ٿيا. ابوبڪر رضي الله عنه ساڻن بيلهر چڙهيو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم بنو النجار کي، جيڪي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جا ناناڻا هئا، نياپو موڪليو هو، تنهن ڪري اهي به هٿيار پٺواري اچي حاضر ٿيا. پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم (انهن سان گڏ) مديني روانا ٿيا. بنو سالم بن عوف جي وسنديءَ ۾ پڳا ته جمع جو

1 - (صحيح بخاري (555/1))

2 - بائبل، حيقوق نبيءَ جو صحيفو. (3،3)

3 - زادالمعاد (54/2)، ابن هشام (493/1)، رحمة للعالمين (102/1).

4 - اها ابن اسحاق جي روايت آهي. ڏسو ابن هشام 494/1، علامه منصور پوريءَ به اها روايت ڏني آهي. ڏسو رحمة للعالمين (102/1)، پر صحيح بخاريءَ جي هڪ روايت آهي ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم قباء ۾ 24 ڏينهن رهيا. (61/1) پر هڪ ٻي روايت ۾ ڏهن راتين کان ڪجهه وڌيڪ ڏينهن ذڪر ٿيل آهن (555/1) ۽ ٽين روايت ۾ چوڏهن راتيون (560/1) ٻڌايل آهن. ابن قير آخري روايت صحيح مڃي آهي، پر هن پاڻ واڌارو ڪيو آهي ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم قباء ۾ سومر ڏينهن پڳا هئا ۽ جمع ڏينهن روانا ٿيا هئا. (زادالمعاد 54/2، 55) ۽ جي سومر ۽ جمع، بن الڳ الڳ هفتن جا سمجهجن ته آمد ۽ روانگيءَ جا ڏينهن ڇڏي ڪل ڏهن ڏينهن ٿين ٿا ۽ آمد ۽ روانگيءَ جي ڏينهن سميت 12 ڏينهن ٿين ٿا. ان ڪري ڪل عرصو 14 ڏينهن ڪيئن ٿو ٿي سگهي؟

وقت ٿي ويو. پاڻ سڳورن ﷺ بطن جي واديءَ ۾ ان جاءِ تي جمع نماز پڙهي، جتي هاڻي مسجد آهي. ڪل هڪ سو چٿا هئا. (1)

**مديني ۾ پهچڻ:** - جمع ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ مديني پهتا ۽ ان ڏينهن کان ان شهر جو نالو يثرب بدران مدينة الرسول (رسول جو شهر) پئجي ويو، جنهن کي مختصر طور تي مدينو چئجي ٿو. اهو ڏاڍو تاريخي ڏينهن هو. گهڻيءَ گهڻيءَ ۾ حمد ۽ ثنا گائجي رهي هئي ۽ انصارن جون نينگريون خوشيءَ ۾ اهڙا شعر گائي رهيون هيون:

أَشْرَقَ الْبَدْرُ عَلَيْنَا      مِنْ نِيَّاتِ الْوَدَاعِ  
وَجَبَّ الشُّكْرُ عَلَيْنَا      مَا دَعَا لَهَّ دَاعٍ  
أَيُّهَا الْمَبْعُوثُ فِينَا      حِفَّتَ بِالْأَمْرِ الْمَطَاعِ

”ظاهر ٿيو اسان تي چوڏهين جو چنڊ جبلن جي چوٽيءَ مان“  
”واجب آهي شڪر ڪرڻ اسان تي جنهن مان سڏيائين الله جي لاءِ“  
”اي موڪليل اسان تي آندو آهي تو حڪم فرمانبرداريءَ وارو“

انصار جيتوڻيڪ امير نه هئا ته به هر ڪنهن جي آس هئي ته پاڻ سڳورا ﷺ انهن وٽ رهن. تنهن ڪري پاڻ سڳورا ﷺ جنهن گهر ۽ پاڙي مان لنگهيا ٿي، اتي ماڻهو ڏاچيءَ جي رسيءَ کي جهلي ٿي بيٺا ۽ عرض ٿي ڪيائون ته هتي لهي پئو، پر پاڻ سڳورن ﷺ جو جواب اهو هو ته ڏاچيءَ جو گس ڇڏيو. هيءُ الله پاران مقرر ڪيل آهي. ان کانپوءِ ڏاچي لڳاتار هلندي رهي ۽ ان جڳهه تي پهچي بيٺي رهي، جتي اڄ مسجد نبوي آهي. پر پاڻ سڳورا ﷺ هيٺ نه لٿا. ڏاچي وري اٿي، ٿورو اڳتي وڌي ۽ وري مڙي ڏسڻ کان پوءِ موٽي ساڳي جڳهه تي اچي ويٺي. ان کان پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ هيٺ لٿا. اهو پاڻ سڳورن ﷺ جي نانائڻ، يعني بني نجار وارن جو پاڙو هو ۽ اها ڏاچي الله جي حڪم سان اتي ان لاءِ ويٺي جو پاڻ سڳورن ﷺ نانائڻ ۾ رهي انهن کي شرف بخشڻ چاهيو ٿي. هاڻي بنو نجار وارن پنهنجي پنهنجي گهر هلڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي منتون ڪرڻ شروع ڪيون، پر ابو ايوب انصاري رضي الله عنه تڪڙ ۾ کڻي پاڻ سڳورن ﷺ جو سامان کنيو ۽ پنهنجي گهر هليو ويو. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ماڻهو پنهنجي سامان سان ويندو. هوڏانهن حضرت اسعد بن زرارۃ رضي الله عنه اچي ڏاچيءَ جو رسو جهليو، تنهن ڪري اها ڏاچي وٽن ئي رهي. (2)

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/555، 560)، زادالمعاد (2/55)، ابن هشام (1/494)، رحمة للعالمين (1/102).

<sup>2</sup> - زادالمعاد (2/55)، رحمة للعالمين (1/106).

صحيح بخاريء ۾ حضرت انس رضي الله عنه کان روايت آهي ته پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "اسانجي ڪهڙي همراه جو گهر وڌيڪ ويجهو آهي؟" حضرت ابو ايوب انصاري رضي الله عنه چيو ته: "منهنجو، يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! هي آهي منهنجو گهر ۽ هي آهي دروازو." پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "وڃ ۽ مون لاءِ آرام جي جڳه تيار ڪر." هن ورائيو ته: "توهان ٻئي هلو، الله برڪت ڏيندو." (1)

ڪجهه ڏينهن کان پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام جي گهر واري ام المؤمنين بيبي سوڌه رضي الله عنها ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام جون ٻئي نياڻيون، بيبي فاطمه رضي الله عنها ۽ بيبي ام ڪلثوم رضي الله عنها ۽ حضرت اسامه رضي الله عنه ۽ ام ايمن رضي الله عنها جن به اچي ويون. انهن سڀني کي حضرت عبدالله بن ابي بڪر رضي الله عنه پنهنجي خاندان سان، جن ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها به شامل هئي، وٺي آيو هو. باقي پاڻ سڳورن عليه السلام جي هڪ نياڻي بيبي زينب رضي الله عنها، حضرت ابوالعاص رضي الله عنها وٽ رهيل هئي، جنهن کين اچڻ نه ڏنو ۽ اها بدر جي جنگ کانپوءِ اچي سگهي. (2)

بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته پاڻ سڳورا عليه السلام مديني آيا ته حضرت ابوبڪر رضي الله عنه ۽ حضرت بلال رضي الله عنه کي بخار ٿي پيو. مون سندن خدمت ۾ حاضر ٿي پڇيو ته: "بابا سائين! اوهانجو ڪهڙو حال آهي؟ ۽ اي بلال توهانجو ڇا حال آهي؟" سندن بيان آهي ته جڏهن حضرت ابوبڪر رضي الله عنه کي بخار ايندو هو ته هي شعر پڙهندو هو:

كُلَّ امْرِيٍّ مُصْبِحٌ فِي أَهْلِهِ ... وَالْمَوْتُ أَذْنِي مِنْ شِرَاكٍ نَعْلِهِ

"هر ماڻهو صبح ڪندڙ آهي خير سان پنهنجي اهل ۾، ۽ جڏهن جو موت ان جي جتيءَ جي ڏوريءَ کان به ويجهو آهي.

حضرت بلال رضي الله عنه جي حالت سترندي هئي ته پاڻ ڏکوئيندڙ آواز ۾ هي شعر پڙهندو هو:

أَلَا لَيْتَ شِعْرِي هَلْ أَبَيْتَن لَيْلَةً ... بَوَادٍ وَحَوْلِي إِذْخِرٌ وَجَلِيلٌ  
وَهَلْ أَرَدَنْ يَوْمًا مِيَاهَ مَجْنَةٍ ... وَهَلْ يَبْدُونَ لِي شَامَةً وَطَفِيلٌ

"ڪاش آءُ ڄاڻان ته ڪا رات (مڪي) جي واديءَ ۾ گذاري سگهندس ۽ منهنجي چوڌاري اذخر ۽ جليل (گاه) هوندو.

"۽ ڪنهن ڏينهن مجنته جي چشمي تي لهي سگهندس ۽ مون کي شامه ۽ طفيل (جبل) ڏسڻ پوندا."

1 - صحيح بخاري (1/556).

2 - زاد المعاد (2/55).

بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته مون پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ حاضر ٿي اها خبر ڏني ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "يا الله! اسان لاءِ مديني کي ان طرح محبوب ڪر، جيئن مڪو محبوب هو يا ان کان به وڌيڪ ۽ مديني جي فضا کي صحت بخش بڻاءِ ۽ ان جي صاح ۽ مد (توز جي پيمانن) ۾ برڪت ڏي ۽ ان جو بخار جحفه ڏانهن منتقل ڪري ڇڏ."<sup>(1)</sup> الله تعاليٰ پاڻ سڳورن ﷺ جي دعا ٻڌي ۽ حالتون تبديل ٿي ويون.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/588، 589).

## مديني جي زندگي

مديني واري حياتيءَ کي ٽن مرحلن ۾ تقسيم ڪري سگهجي ٿو.

1. پهريون مرحلو: - جنهن ۾ فتنا ۽ پريشانين هيون. اندروني طور تي رڪاوٽون کڙيون ڪيون ويون ۽ ٻاهران دشمنن مديني کي برباد ڪرڻ لاءِ چڙهايون ڪيون. اهو مرحلو ذي القعد سن 6 هـ ۾ صلح حديبيه تي ٿيڻ کان پوءِ ختم ٿيو.
2. ٻيو مرحلو: - جنهن ۾ بت پرست قيادت سان صلح ٿيو. اهو مرحلو مڪي جي فتح تائين، يعني رمضان 8 هـ تي ختم ٿيو. ان مرحلي ۾ ئي دنيا جي شهنشاھن کي دين جي دعوت ڏني وئي.
3. ٽيون مرحلو: - جنهن ۾ ماڻهو الله جي دين ۾ داخل ٿيڻ لاءِ ڪاهي پيا. ان مرحلي ۾ ئي مديني ۾ قومن ۽ قبيلن جا وفد آيا. اهو مرحلو پاڻ سڳورن ﷺ جي حياتيءَ جي آخر تائين، يعني ربيع الاول سن 11 هـ تائين هليو.

\*\_\*\_\*

## پهريون مرحلو:

## هجرت مهل مديني جون حالتون

هجرت جو مطلب رڳو اهو نه هو ته فتني ۽ نٺولين کان نجات حاصل ڪري وٺجي، پر ان ۾ اهو مفهوم به شامل هو ته هڪ پر امن علائقي ۾ هڪ نئين معاشري جي تشڪيل ڪئي وڃي. ان لاءِ هر طاقت رکندڙ مسلمان تي اهو فرض ڪيو ويو ته هن نئين وطن جي تعمير ۾ حصو وٺن ۽ ان جي مضبوطي، حفاظت ۽ شان شوڪت جون ڪوششون ڪن.

اها ڳالهه پڪي آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ ئي ان معاشري جي تشڪيل جا امام. قائد ۽ رهنما هئا ۽ بلاشڪ سڀ معاملن پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿن ۾ ئي هئا.

مديني ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو واسطو تن قسمن جي گروهن سان پيو. جن مان هر ڪنهن جون حالتون ٻين کان مختلف هيون ۽ سڀني سان ڪي خاص مسئلا هئا، جيڪي هڪٻئي کان مختلف هئا. اهي ٽي گروهه هي هئا:

1. پاڻ سڳورن ﷺ جي پرهيزگار اصحابين جي چونڊ جماعت.
2. مديني جي پراڻن ۽ اصلي قبيلن سان تعلق رکندڙ مشرڪ، جن اڃا تائين ايمان نه آندو هو.
3. يهودي.

(الف) پاڻ سڳورن ﷺ کي پنهنجن اصحابن جي سلسلي ۾ جيڪي مسئلا درپيش هئا، انهن جي وضاحت اها آهي ته مديني جون حالتون مڪي جي حالتن کان صفا بدليل هيون. مڪي ۾ جيتوڻيڪ سندن ڪلمو هڪ هو ۽ انهن جا مقصد به ساڳيا هئا، پر اهي پاڻ مختلف گهراڻن ۾ ورهايل هئا ۽ مجبور ۽ مقهور ۽ ڪمزور هئا. انهن وٽ ڪوبه اختيار نه هو. سڀ اختيار دين جي دشمنن وٽ هئا ۽ دنيا جو ڪوبه معاشرو جن بنيادن تي ٺهندو آهي، انهن مان ڪوبه مڪي جي مسلمانن وٽ نه هو. جن جي بنياد تي ڪنهن نئين اسلامي سماج جي تشڪيل ڪئي وڃي. ان ڪري ئي مڪي سورتن ۾ رڳو اسلامي مباديات جو تفصيل بيان ڪيو ويو آهي ۽ رڳو اهڙا حڪم نازل ڪيا ويا آهن، جن تي هر ماڻهو اڪيلي سر عمل ڪري سگهي. ان کانسواءِ نيڪي، پلاهي ۽ اخلاقي قدرن جي ترغيب ڏني وئي آهي ۽ ڪريل ۽ ڪنن ڪنن کان بچڻ جي تاڪيد ڪئي وئي آهي.

ان جي پيٽ ۾ مديني ۾ مسلمانن جا سڀ معاملن، مسلمانن جي ئي هٿن ۾ هئا. انهن تي ڪنهن جو تسلط نه هو. هاڻي مسلمانن کي تهذيب ۽ تاريخ، معاشيات ۽ اقتصاديات، سياست ۽



حڪومت، صلح ۽ جنگ جهڙا مسئلا درپيش هئا ۽ انهن لاءِ حلال ۽ حرام ۽ عبادتن ۽ اخلاق وغيره جهڙن زندگيءَ جي مسئلن تي ڀرپور انداز ۾ تلقين ڪئي وڃي.

وقت اچي ويو هو ته مسلمان هڪ نئون معاشرو يعني اسلامي سماج جوڙين، جيڪو زندگيءَ جي سڀني مرحلن ۾ اڻ سڌريل معاشري کان مختلف ۽ انسانن جي قائم ڪيل سڀني معاشرن کان اعلى هجي.

ظاهر آهي ته ان طرح جو معاشرو هڪ ڏينهن، هڪ مهيني يا هڪ سال ۾ نتو جڙي سگهي، پر ان لاءِ هڪ ڊگهو عرصو ڪپيو ٿي ته جيئن ان ۾ آهستي آهستي ۽ درجي بدرجي حڪم لاثا وڃن ۽ قانون جوڙڻ جو ڪم محنت ۽ تربيت ۽ عملي نفاذ سان مڪمل ڪيو وڃي. اهي حڪم ۽ قانون الله پاران ٻڌايا ويا ۽ انهن کي معاشري ۾ لاڳو ڪرڻ ۽ مسلمانن جي تربيت ۽ رهنمائيءَ جو معاملو پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿ ۾ هو. جيئن ارشاد آهي ته:

﴿هُوَ الَّذِي بَعَثَ فِي الْأُمِّيِّينَ رَسُولًا مِنْهُمْ يَتْلُو عَلَيْهِمْ آيَاتِهِ وَيُزَكِّيهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَإِنْ كَانُوا مِنْ قَبْلُ لَفِي ضَلَالٍ مُّبِينٍ (2)﴾ (الجمعة)

”الله) اهو آهي جنهن اڻ پڙهيلن ۾ انهن (جي قوم) مان هڪ پيغمبر پيدا ڪيو جو وتن سندس آيتون پڙهندو آهي ۽ کين پاڪ ڪندو آهي ۽ کين ڪتاب ۽ دانائي سيڪاريندو آهي ۽ بيشڪ اهي (هن کان) اڳ پڌري گمراهيءَ ۾ هئا.“

هوڏانهن صحابه سڳورن جو حال اهو هو ته اهي پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن هر وقت متوجه رهندا هئا ۽ جيڪو حڪم لهندو هو، ان تي عمل ڪري ڏاڍي خوشي محسوس ڪندا هئا. جيئن ارشاد آهي ته:

﴿وَإِذَا تَلَّيْتُمْ عَلَيْهِمْ آيَاتُهُ زَادَتْهُمْ إِيمَانًا وَعَلَىٰ رَبِّهِمْ يَتَوَكَّلُونَ (2)﴾ (الانفال)

”۽ جڏهن سندن آيتون انهن کي پڙهي ٻڌائبيون آهن تڏهن اهي سندن ايمان کي وڌائينديون آهن ۽ (اهي) پنهنجي پالڻهار تي ڀروسو ڪندا آهن.“

جيئن ته انهن سڀني مسئلن جو تفصيل اسان جي موضوع ۾ شامل نه آهي، ان ڪري ضرورت مطابق گفتگو ڪئي ويندي.

مطلب ته اهو ئي سڀ کان وڏو مسئلو هو جو پاڻ سڳورن ﷺ کي مسلمانن متعلق درپيش هو ۽ وڏي پيماني تي اهو ئي اسلامي دعوت ۽ محمد ﷺ جو مقصد به هو ۽ ڪو هنگامي مسئلو نه، پر مستقل مسئلو هو. باقي ڪي ٻيا به مسئلا هئا، جن لاءِ تڪڙي توجهه گهربل هئي، جن جي مختصر ڪيفيت هن ريت آهي:

مسلمانن جي جماعت ۾ ٻن قسمن جا ماڻهو شامل هئا. هڪڙا اهي، جيڪي پنهنجي زمين، پنهنجي گهر گهاٽ ۽ مال ملڪيت وارا هئا ۽ انهن بابت ايڏو فڪر نه هو، جيڏو ڪنهن ماڻهوءَ کي پنهنجي گهر ٻار ۾ امن سکون سان رهي ڪرڻو پوي ٿو. اهو انصارن جو گروهه هو ۽ انهن ۾ نسلن کان پڪيون دشمنيون ۽ نفرتون هلنديون پئي آيون. ٻيو گروهه مهاجرن جو هو، جيڪو انهن سڀني سهولتن کان محروم هو ۽ لتجي ڦٽجي توڪل جي آڌار تي اچي مديني پهتو هو. انهن وٽ نه ڪو رهڻ لاءِ نڪاڻو هو نه پيٽ پالڻ لاءِ ڪو ڪم ۽ نه ڪو ناڻو ئي هو. جنهن سان هو نئين معيشت جي آڏوت ڪري سگهن. اهي پناهگير گهٽ تعداد ۾ به ڪونه هئا ۽ انهن ۾ ڏينهان ڏينهن واڌارو به ٿي رهيو هو. ڇو ته اعلان ڪيل هو ته جيڪو ماڻهو الله ۽ ان جي رسول تي ايمان رکندو هجي، اهو هجرت ڪري مديني هليو اچي. مديني ۾ نه ڏن دولت هئي نه ئي ڪمائڻ جا بيا وسيلو. تنهنڪري مديني جو اقتصادي توازن بگڙي ويو ۽ ان ڏکيءَ حالت ۾ ئي اسلام جي ويري قوتن به مديني سان اقتصادي ناتو ٽوڙي ڇڏيو. جنهن سان مال جي درآمد بند ٿي وئي ۽ حالتون خراب ٿي ويون.

(ب) ٻي قوم، يعني مديني جا اصل مشرڪ رهاڪو، جن جو حال اهو هو ته هو مسلمانن کان ڪمزور هئا. ڪجهه مشرڪ ٻڌتر ۾ هئا ۽ پنهنجي اباڻي دين کي ڇڏڻ لاءِ من هڻي رهيا هئا، پر اسلام ۽ مسلمانن خلاف سندن دل ۾ ڪابه دشمني نه هئي. اهڙا ماڻهو ڪجهه عرصي ۾ مسلمان ٿي ويا ۽ سڃا مسلمان ٿي ويا.

ان جي پيٽ ۾ ڪي مشرڪ اهڙا به هئا، جن جي من ۾ مسلمانن ۽ پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ڪينو ۽ عداوت رکيل هئي، پر انهن ۾ ڪلي آڏو اچڻ جي همت نه هئي. اهي رڳو حالتن کي ڏسندي پاڻ سڳورن ﷺ سان محبت ۽ خلوص جو اظهار ڪرڻ تي مجبور هئا. انهن ۾ سڀ کان اڳرو عبدالله بن ابي ابن سلول هو. هن کي بعاث واري جنگ کانپوءِ اوس ۽ خزرج وارا پنهنجو سردار بناڻ تي متفق ٿي ويا هئا. ان کان اڳ ٻئي ڌريون ڪنهن کي به گڏيل اڳواڻ مڃڻ لاءِ تيار نه هيون، پر هاڻي سندن لاءِ ڪوڏين مان ٺهيل تاج پئي تيار ڪيو ويو ته جيئن هن کي شاهي تاج پهرائي باقائده بادشاهت جو اعلان ڪيو وڃي. مطلب ته همراھ مديني جو بادشاهه ٿيڻ ئي وارو هو جو اوچتو پاڻ سڳورن ﷺ جي اچڻ جو چرچو ٿي ويو ۽ ماڻهن جو رخ هن بدران پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن ٿي ويو. ان ڪري هن کي گمان هو ته پاڻ سڳورن ئي سندس بادشاهت ڦري آهي. تنهن ڪري هن دل ٿي دل ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان سخت عداوت ٿي رکي. ان هوندي به جڏهن هن بدر واري جنگ ۾ ڏٺو ته حالتون سندس حق ۾ ناهن ۽ هو مشرڪ هوندي دنيا جي فائدين کان محروم ٿي رهندو. تڏهن هن ظاهر ۾ اسلام قبولڻ جو اعلان ڪيو، پر هو اڃا دلي طرح ڪافر هو. ان ڪري جڏهن به کيس پاڻ سڳورن ﷺ ۽ مسلمانن خلاف ڪا شرارت ڪرڻ جو موقعو ملندو هو ته هو اهو موقعو هٿان نه وڃائيندو هو.

هن جا ساٿي عام طور تي اهي وڏيرا هئا، جن سندس بادشاهت جي چانو ۾ وڏا وڏا عهدا هت ڪرڻ جا خواب ڏنا پئي، پر هاڻي انهن کي به محروم ٿيڻو پيو هو. اهي ماڻهو سندس ساٿاري هئا ۽ ان جي منصوبن جي پورائيءَ لاءِ سندس هر قسم جي مدد لاءِ تيار هئا ۽ ان مقصد لاءِ ڪڏهن ڪڏهن نوجوانن ۽ سادن سندن مسلمانن کي به استعمال ڪري ويندا هئا.

(ج) ٽين يهودي قوم هئي، جيئن مٿي بيان گذري چڪو آهي ته اهي آشوري ۽ رومين جي ظلمن کان ڀڄي اچي حجاز ۾ رهيا هئا. اهي اصل ۾ عبراني هئا، پر حجاز ۾ پناهه وٺڻ کانپوءِ سندن اٿڻ ويهڻ، زبان ۽ تهذيب تي عربي رنگ چڙهي چڪو هو. ايسٽائين جو انهن جي قبيلن ۽ ماڻهن جا نالا به عربي ٿي ويا هئا ۽ انهن ۽ عربن ۾ مٿيون ماڻهون به ٿي ويون هيون، پر ان هوندي به سندن نسلي عصبيت برقرار هئي ۽ اهي عربن ۾ ضرر نه ٿيا هئا. بلڪ پنهنجي اسرائيلي ۽ يهودي قوميت تي فخر ڪندا هئا ۽ عربن کي صفا گهٽ سمجهندا هئا. انهن کي امي چوندا هئا، جنهن جو مطلب انهن جي نظر ۾ ڇٽ، وحشي، ڪريل، پنٿي پيل ۽ اڇوت ٿيل هو. سندن عقيدو هو ته عربن جو مال انهن لاءِ حلال آهي، جيئن وٿين، ڪائين. جيئن قرآن ۾ الله تعاليٰ جو ارشاد آهي ته:

﴿قَالُوا لَيْسَ عَلَيْنَا فِي الْأُمِّيِّينَ سَبِيلٌ﴾ (75) (آل عمران)

”چون ٿا ته اڻ پڙهيلن (جي مال ڪسڻ) ۾ اسان کي ڪا پڪڙ پڇاڙ نه آهي.“

يعني اڻ پڙهيل جو مال هڙپ ڪرڻ کان اسان کي ڪير نه جهليندو. اهي يهودي پنهنجي دين کي ڦهلائڻ لاءِ ڪوششون نه ڪندا هئا. انهن وٽ دين جي جيڪا پونج وڃي بچي هئي، اها هئي فال ڪيڏ، جادو ۽ توڻا ڦيڻا ڪرڻ وغيره. انهن شين جي ڪري هو پاڻ کي علم جا ابا ۽ روحاني پيشوا سمجهندا هئا.

يهودين کي دولت ڪمائڻ جي فن ۾ مهارت هئي. ان، ڪجين، شراب ۽ ڪپڙي جو واپار سندن هٿ ۾ هو. ان کانسواءِ به هو ڪافي ڪمن ۾ سرگرم هئا. هو پنهنجي واپاري مال مان عربن کان ٿيڻو فائدو حاصل ڪندا هئا ۽ ان تي بس نه ڪندا هئا، پر اهي وياج خور به هئا. ان ڪري اهي عرب شيخن ۽ وڏيرن کي وياج تي وڏيون وڏيون رقمون ڏيندا هئا، جن کي اهي سردار نالو ڪيائڻ ۽ پنهنجا راڳ ڳارائڻ وغيره لاءِ اجايو ۽ بي حساب استعمال ڪندا هئا. هوڏانهن يهودي انهن پئسن جي بدلي ۾ انهن وڏيرن کان سندن زمينون، پٺيون ۽ باغ وغيره گروي رکائيندا هئا ۽ ڪجهه سال گذرڻ کان پوءِ ان جا مالڪ ٿي ويندا هئا.

اهي سازشون ڪرڻ ۽ فسادن ڪرائڻ جا ماهر هئا. اهڙي نموني سان پاڙيسري قبيلن کي ويڙهائيندا هئا جو انهن قبيلن کي احساس به نه ٿيندو هو. پوءِ انهن قبيلن ۾ جنگيون شروع ٿي وينديون هيون ۽ جي اها باهه جهڪي ٿيڻ لڳندي هئي ته يهودين جا لڪل هٿ وري حرڪت ۾ اچي

ويندا هئا ۽ جنگ جا شعلا وري پڙڪي پوندا هئا. ڪمال اهو هو ته اهي قبيلن کي ويڙهائي ماڻ ڪري ويهي عربن جي تباهيءَ جو تماشو ڏسندا هئا. وڏا وڏا قرض، وياح تي ڏيندا رهندا هئا ته جيئن ڏوڪڙ نه هجڻ ڪري جنگ بند نه ٿي وڃي. ان طرح کين پتو فائدو ٿيندو هو. هڪ پاسي پنهنجي يهودي جمعيت کي محفوظ رکندا هئا ۽ ٻئي پاسي وياح جي بازار کي ٽڌو ٿيڻ نه ڏيندا هئا. يثرب ۾ يهودين جا ٽي قبيلا هئا.

(1) بنو قينقاع، اهي خزرج جا حليف هئا ۽ انهن جي وسندي مديني جي اندر هئي. (2) بنو نضير (3) بنو قريظ، اهي ٻئي قبيلا اوس جا حليف هئا ۽ انهن بنهي جي آبادي مديني کان ٻاهر هئي.

ڪافي عرصي کان اهي ٽي قبيلا اوس ۽ خزرج جي وچ ۾ جنگ جي باهه پڙڪائي رهيا هئا ۽ بعثت واري جنگ ۾ پنهنجن پنهنجن حليفن سان پاڻ به شريڪ ٿيا هئا.

انهن يهودين مان اسلام کي بغض ۽ عداوت جي نظر سان ڏسڻ کانسواءِ ٻي ڪا به توقع رکي نٿي سگهجي. ڇو ته پيغمبر انهن جي نسل مان نه هو جو انهن جي نسلي عصبيت کي، جيڪا انهن جي نفسيات ۽ ذهنيات جو اتوت جزو هئي، ان کي تسڪين ملي. اسلام جي دعوت هڪ صالح دعوت هئي، جيڪا تٽل دلين کي جوڙيندي هئي. بغض ۽ عداوت جي باهه وسائيندي هئي، سڀني معاملن ۾ ايمانداري ڪرڻ ۽ پاڪ ۽ حلال مال کائڻ جو پابند ڪندي هئي. ان جو مطلب اهو هو ته هاڻي يثرب جا قبيلا پاڻ ۾ ٺهي ويندا ۽ ان حالت ۾ لازمي طرح اهي يهودين جي چنبي مان آزاد ٿي ويندا. تنهنڪري واپاري سرگرميون مانيون ۽ ٿڌيون ٿي وينديون ۽ اهي ان وياح واري دولت کان محروم ٿي ويندا، جنهن تي سندن مالداريءَ جي چڪي ڦري رهي هئي. کين هو به ڊپ هو ته متان اهي قبيلا سجاڳ ٿي ان مال جي تقاضا نه ڪن، جيڪو يهودين بنا سبب جي کائڻ ڦڙيو آهي ۽ اهڙيءَ طرح اهي انهن زمينن ۽ باغن کي واپس نه وٺن، جيڪي وياح ۾ يهودين قبائلي ورتا هئا.

جڏهن کان يهودين کي خبر پئي هئي ته اسلامي دعوت يثرب ۾ گهر ڪري چڪي آهي، تڏهن کان ئي انهن، اهڙين سمورين ڳالهين تي سوچڻ شروع ڪري ڏنو هو. ان ڪري يثرب ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي اچڻ جي وقت کان ئي يهودين کي اسلام ۽ مسلمانن سان سخت وير ٿي پيو هو. جيتوڻيڪ اهي ان کي ظاهر ڪرڻ جي همت ڪافي عرصي کان پوءِ ڪري سگهيا. ان ڪيفيت جي چٽي خبر ابن اسحاق جي ٻڌايل هڪ واقعي مان پئي ٿي. ان لکيو آهي ته مون کي امر المؤمنين بيبي صفيه بنت حُبيي بن اخطب رضي الله عنها کان هيءَ روايت ملي آهي ته ان فرمايو ته: "آئون پنهنجي والد ۽ چاچي ابو ياسر جي نگاهه ۾ پنهنجي والد جي سڀ کان لاڏلي هيس. آئون چاچا ۽ بابا سان جڏهن به سندن ٻئي ڪنهن اولاد سان گڏ ملندي هيس ته اهي، ان بدران مون کي ئي کڻندا هئا. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ مديني ۾ آيا ۽ قباء ۾ بنو عمرو بن عوف وٽ رهيا ته منهنجو والد حُبيي بن اخطب ۽

چاچو ابو ياسر، پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ صبح ساڻ حاضر ٿيا ۽ سج لٿي مهل ڏاڍا ٽڪل ۽ تڙندي ٿا پڙندي موتيا. مون اڳي وانگر خوشيءَ ۾ انهن ڏانهن ڊوڙ پاتي، پر اهي ايترو ته غم به ٻڌل هئا جو الله جو قسم! ٻنهي مون ڏانهن اک کڻي به نه نهاريو. مون پنهنجي چاچي جي ڳالهه ٻڌي، جيڪو منهنجي والد حُبي بن اخطب کي چئي رهيو هو ته: "چا هي اهو ئي آهي؟" هن ورائيو ته: "ها."

چاچا چيو ته: "توهان کين چڱيءَ طرح سڃاتو آهي؟"

بابا چيو ته: "ها."

چاچا چيو ته: "هاڻي اوهان جي من ۾ ان بابت چا ارادا آهن؟"

بابا چيو ته: "عداوت، الله جو قسم! جيستائين جيئرو رهندس."<sup>(1)</sup>

ان جي شاهدي صحيح بخاريءَ جي ان روايت مان به ملي ٿي، جنهن ۾ حضرت عبدالله بن سلام رضي الله عنه جي مسلمان ٿيڻ جو واقعو بيان ڪيو ويو آهي. جيڪو پاڻ به نهايت وڏو يهودي عالم هو. ان کي بنو النجار ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي اچڻ جي خبر پئي ته تڪڙو تڪڙو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ حاضر ٿيو ۽ ڪجهه سوال پڇيائين، جن بابت رڳو نبيءَ کي ئي ڄاڻ ٿي سگهي ٿي ۽ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کان جواب ٻڌائين ته اتي ئي مسلمان ٿي ويو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي چيائين ته: يهودي ڏاڍا بهتان باز آهن. جيڪڏهن انهن جي ڪجهه ڀڃڻ کان اڳ انهن کي منهنجي اسلام قبول ٿي جو پتو پيو ته هو توهان وٽ اچي منهنجون ڳالھون ڪندا. تنهن ڪري پاڻ سڳورن ﷺ يهودين کي سڏايو ۽ اهي آيا. هوڏانهن عبدالله بن سلام رضي الله عنه گهر ۾ اندر لڪي ويو هو. پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: "عبدالله بن سلام توهان ۾ ڪهڙي حيثيت رکي ٿو؟" انهن چيو ته "اسانجو سڀ کان وڏو عالم آهي ۽ سڀ کان وڏي عالم جو پٽ آهي. اسان مان سڀ کان پلو ماڻهو آهي ۽ سڀ کان پلي ماڻهو جو پٽ آهي." هڪ روايت جا لفظ هن ريت آهن ته اسان جو سردار آهي ۽ اسان جي سردار جو پٽ آهي.

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "چڱو اهو ٻڌايو ته جيڪڏهن عبدالله مسلمان ٿي وڃي ته؟" يهودين به يا ٿي پيرا چيو ته: "الله ان کي اهڙي ڪم کان محفوظ رکي." ان کانپوءِ عبدالله بن سلام رضي الله عنه ٻاهر نڪتو ۽ فرمايائين ته: اشهد ان لا اله الا الله و اشهد ان محمدا رسول الله ﷺ (آئون گواهي ڏيان ته الله کان سواءِ ڪوبه عبادت جي لائق نه آهي ۽ آئون شاهدي ڏيان ته محمد ﷺ، الله جو رسول آهي.) ايترو ٻڌڻ شرط يهودي چوڻ لڳا ته "شَرُّنَا وَ ابْنُ شَرِّنَا" يعني "هي اسان مان سڀ کان برو ماڻهو آهي ۽ سڀ کان بري ماڻهو جو پٽ آهي" ۽ (ان ئي مهل) سندن ڳالھون ڪرڻ شروع ڪري

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/518, 519).

چڏيائون. هڪ روايت ۾ آهي ته: ان تي حضرت عبدالله بن سلام رضي الله عنه فرمايو ته: "اي يهوديو! الله کان ڊڄو. ان الله جو قسم جنهن کانسواءِ ڪو معبود نه آهي، توهان ڄاڻو به ٿا ته پاڻ سڳورا عليه السلام ئي الله جا رسول آهن ۽ حق کڻي آيا آهن." پر يهودين چيو ته "تون ڪوڙ پيو ڳالهائين." (1)

اهو پهريون تجربو يهودين بابت پاڻ سڳورن عليه السلام کي ٿيو ۽ مديني ۾ داخل ٿيڻ جي پهرئين ڏينهن ئي ٿيو.

هيسٽائين جيڪو ذڪر ڪيو ويو آهي، اهو مديني جي اندرين حالتن بابت هو. مديني کان ٻاهر مسلمانن جا سڀ کان سخت ويرن قريش هئا ۽ تيرنهن سالن تائين، جيسين مسلمان سندن هٿ هيٺ رهيا، دهشت مچائڻ، ڌمڪيون ڏيڻ ۽ تنگ ڪرڻ جا سڀ طريقا استعمال ڪري چڪا هئا. هر طرح جون ڏاڍايون ۽ ظلم ڪري چڪا هئا. منظر ۽ وسيع افواهي مهر هلائڻ کان علاوه ۽ نهايت صبر آزما نفسياتي حربا استعمال ڪري چڪا هئا. جڏهن مسلمان مديني ڏانهن هجرت ڪئي ته قريش، سندن زمينون، گهر گهاٽ ۽ مال ملڪيت سڀ ڪجهه ضبط ڪري ڇڏيو ۽ مسلمانن ۽ سندن خاندان وارن جي وچ ۾ ديوار بڻجي ويا. پر جنهن کي جهلي سگهيا، تنهن کي قيد ڪري هر طرح جي تڪليف رسايائون. ان تي بس نه ڪيائون، پر اسلامي دعوت جي اڳواڻ حضرت محمد رسول الله عليه السلام کي قتل ڪرڻ ۽ سندن دين خلاف خوفناڪ سازشون ڪيائون ۽ انهن تي عمل ڪرڻ لاءِ پنهنجون سڀ صلاحيتون صرف ڪيائون. تنهن کانپوءِ جڏهن مسلمان ڪنهن نه ڪنهن طرح پڇي وڃي پنج سو ڪلوميٽر پري مديني ۾ پهتا ته قريش پنهنجي ساڪ مان فائدو وٺندي ڪريل سياسي ڪردار ادا ڪيو. يعني جيئن ته اهي حرم جا رهاڪو ۽ بيت الله جا پاڙيسري هئا ۽ ان ڪري کين عربن ۾ ديني اڳواڻي ۽ دنياوي رياست جو منصب به حاصل هو، ان ڪري، انهن عربستان جي ٻين مشرڪن کي پٽڪائي ۽ ورغلائي مديني جو تقريبن مڪمل بائيڪاٽ ڪري ڇڏيو. جنهن ڪري مديني جي واپار کي ڏاڍو ڌڪ رسيو. جڏهن ته اتي هجرت ڪري ايندڙ پناهگيرن جو انگ ڏينهان ڏينهن وڌي رهيو هو. حقيقت ۾ مڪي جي انهن سرڪشن ۽ مسلمانن جي ان نئين وطن جي وچ ۾ جنگي حالتون قائم ٿي چڪيون هيون ۽ اها بيوقوفيءَ جهڙي ڳالهه ٿيندي ته ان جهڳڙي جو الزام مسلمانن جي سر تي مڙهيو وڃي.

مسلمانن کي حق پهتو ٿي ته جنهن طرح سندن مال ملڪيتون ضبط ڪيون ويون آهن، ان طرح اهي به انهن سرڪشن جو مال ضبط ڪن. جنهن طرح کين ستايو ويو هو، ان طرح اهي به سرڪشن کي ستائين ۽ جنهن طرح مسلمانن جي زندگين آڏو رکاوٽون وڌيون ويون آهن، اهڙيءَ طرح مسلمان به

1 - صحيح بخاري (1/459، 556، 561).

انهن سرڪشن جي زندگي ڏکي ڪن ۽ انهن سرڪشن کي "جهڙي ڪرڻي، تهڙي پرڻي" وارو بدلو ڏين ته جيئن کين مسلمانن کي تباهه ڪرڻ ۽ جڙ کان پٽي ڇڏڻ جو موقعو نه ملي.

اهي هئا اهي مسئلا، جيڪي مديني اچڻ کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ آڏو آيا. پاڻ سڳورن ﷺ انهن سڀني مسئلن جو حل پيغمبراني ڪردار ۽ اعليٰ پائي جي قيادت جي صلاحيت سان ڳولهي ڪڍيو ۽ جيڪا قوم نرمي، محبت يا سختي، مطلب ته جهڙي سلوڪ جي مستحق هئي، ان سان اهڙو ئي سلوڪ ڪيو. ان ۾ ڪو شڪ ڪونهي ته رحمت ۽ محبت جو پهلو سختيءَ واري پهلوءَ تي غالب هو. ايسٽائين جو سڄو نظام اسلام ۽ مسلمانن جي هٿ ۾ اچي ويو. ايندڙ صفحن ۾ انهن ڳالهين جو تفصيل پيش ڪبو.

\*\_\*\_\*

## نئين سماج جي جوڙجڪ

اسان ٻڌائي چڪا آهيون ته پاڻ سڳورا ﷺ مديني ۾ بنو النجار وٽ جمع 12 ربيع الاول سن 1 هـ مطابق 27 سيپٽمبر 622ع تي حضرت ابو ايوب انصاري رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جي گهر وٽ لٿا هئا ۽ ان وقت ئي چيو هئائون ته انشاء الله هتي ئي منزل ٿيندي. پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ، حضرت ابو ايوب انصاري ﷺ جي گهر رهي پيا.

**مسجد نبويءَ جي اڏاوت:-** ان کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پهريون ڪم اهو ڪيو ته مسجد نبويءَ جي اڏاوت شروع ڪري ڏني ۽ ان لاءِ اها جڳهه چونڊي، جتي پاڻ سڳورن ﷺ جي ڏاچي ويني هئي. ان زمين جا مالڪ ٻه يتيم ٻار هئا. پاڻ سڳورن ﷺ انهن کان اها زمين پئسا ڏئي ورتي ۽ بذات خود مسجد جي اڏاوت جي ڪم ۾ حصو ورتو. پاڻ سڳورا ﷺ سرون ۽ پٿر کڻندا هئا ۽ گڏوگڏ هي چوندا هئا ته:

اللَّهُمَّ لَا عَيْشَ إِلَّا عَيْشُ الْآحِرَةِ فَاغْفِرْ لِلْأَنْصَارِ وَالْمُهَاجِرَةِ

يعني: اي الله! حياتي ته رڳو آخرت جي آهي. بس انصارن ۽ مهاجرن کي بخشي ڇڏ. (1)

هَذَا الْحِمَالُ لَا حِمَالَ خَيْرٍ هَذَا أَبْرُ رَبَّنَا وَأَطْهَرُ

يعني: هي ٻار خيبر جو ٻار ڪونهي. اهو اسان جي پالڻهار جو قسم ته وڌيڪ پاڪ آهي. (2)

پاڻ سڳورن ﷺ جي ائين ڪرڻ سان صحابه ڪرامن ۾ جوش ۽ سرگرمي وڌي ويئي ۽ اهي هيئن چوڻ لڳا ته:

لَنْ نَقْعَدْنَا وَالتَّبِيَّ يَعْمَلُ لَذَاكَ مِمَّا الْعَمَلُ الْمُضَلَّلُ

يعني: جي اسان ويٺا رهياسين ۽ پاڻ سڳورا ﷺ ڪم ڪندا رهيا ته اسان جو اهو عمل گمراهيءَ وارو هوندو. (3)

ان زمين ۾ مشرڪن جون ڪجهه قبرون هيون، ڪجهه ويرانو به هو. ڪجي ۽ غرقد جا ڪجهه وڻ به بيٺل هئا. پاڻ سڳورن ﷺ مشرڪن جون قبرون کوٽائي ڇڏيون ۽ ويران کي برابر ڪرايو ۽ ڪجي ۽ ٻيا وڻ ڪٽائي قبلي جي طرف لڳايا. ان وقت قبلو بيت المقدس هو. دروازي جا ٻئي پايا پٿر جا ٺاهيا ويا. پتيون ڪچين سرن ۽ گاري جون ڪنيون ويون. ڇت تي ڪجيءَ جون شاخون ۽ پن وڌا

<sup>1</sup> صحيح البخاري ( حديث رقم 5935 )

<sup>2</sup> صحيح البخاري - ( حديث رقم 3616 )

<sup>3</sup> سيرة ابن هشام - ( 1 / 495 )



ويا ۽ ڪجھي جي ڪاٺ جا ٿنبا ٺاهيا ويا. زمين تي ريتي ۽ ننڍڙا پٿر وڃايا ويا. ٿي دروازا لڳايا ويا. قبلي جي ڀت کان پٺئين ڀت تائين هڪ سو هٿ ڊيگهه هئي. ويڪر به ايتري يا ان کان ڪجهه گهٽ هئي. بنياد اٽڪل ٽي هٿ هيٺ هو.

ڀاڻ سڳورن ﷺ مسجد جي پاسي کان ڪجهه گهر به ٺهرايا، جن جون ڀتيون ڪڇين سرن جون هيون. اهي ئي ڀاڻ سڳورن ﷺ جي بيبين سڳورين رضي الله عنهن جا گهر هئا. انهن جي اڏاوت پوري ٿيڻ کان پوءِ ڀاڻ سڳورا ﷺ حضرت ابو ايوب انصاري رضه جي گهر مان اتي لڏي آيا. (۱) مسجد رڳو نماز پڙهڻ لاءِ نه هئي، پر هڪ يونيورسٽي هئي، جنهن ۾ مسلمان اسلامي تعليم ۽ هدايت جو سبق وٺندا هئا ۽ هڪ محفل هئي، جنهن ۾ ورهين کان جهالت جي فتنن، نفرتن ۽ جهڳڙن ۾ گذاريندڙ قبيلن جا ماڻهو هاڻي ميٺ محبت سان ملي جلي رهيا هئا. اها هڪ مرڪز هئي، جتان هن ننڍڙي رياست جو نظام هلايو ٿي ويو ۽ مختلف قسمن جون مهمون موڪليون ٿي ويون. ان جي حيثيت هڪ پارليامينٽ طور به هئي، جنهن ۾ مجلس شوريٰ ۽ مجلس انتظاميه جون گڏجاڻيون ٿينديون هيون.

ان سان گڏوگڏ هيءَ مسجد انهن بي گهر غريب مهاجرن جي هڪ وڏي تعداد جو مسڪن پڻ هئي، جن جو اتي نه ڪو گهر گهات هو، نه ٻار ٻچا ۽ نه مال ملڪيت.

هجرت جي شروع وارن ڏهاڙن ۾ ئي بانگ اچڻ به شروع ٿي وئي. اهو هڪ لاهوتي گيت هو، جيڪو روز پنج پيرا گونجندو هو ۽ جنهن سان سڄو سنسار گونجڻ لڳندو هو. ان سلسلي ۾ عبدالله بن زيد بن عبدربه رضه جي خواب جو واقعو مشهور آهي. (تفصيل جامع ترمذي، سنن ابي دائود، مسند احمد ۽ صحيح ابن خزيمه ۾ ڏسي سگهجي ٿو).

مسلمانن ۾ پائيچارو:- جهڙيءَ ريت ڀاڻ سڳورن ﷺ مسجد نبويءَ جي اڏاوت ڪري ميڙ ميڙاڪي ۽ محبت جو هڪ مرڪز جوڙي وڌو هو. اهڙيءَ ريت ڀاڻ سڳورن ﷺ انساني تاريخ ۾ هڪ ٻيو به نهايت وڏو ڪارنامو ڪري ڏيکاريو، جنهن کي مهاجرن ۽ انصارن جي وچ ۾ پائيچاري جو نالو ڏنو وڃي ٿو. ابن قير لکي ٿو ته: "ڀاڻ سڳورن ﷺ، حضرت انس بن مالڪ رضه جي گهر ۾ مهاجرن ۽ انصارن ۾ پائيچارو ڪرايو. ڪل نوي ماڻهو هئا، اڌ مهاجر ۽ اڌ انصار. پائيچاري جو بنياد اهو هو ته اهي هڪ ٻئي جا هڏوڪي ٿي رهندا ۽ مرڻ کانپوءِ نسبي مائتن بدران اهي ئي هڪ ٻئي جا وارث ٿيندا. وراثت جو اهو حڪم بدر واري جنگ تائين قائم رهيو. پوءِ هيءَ آيت لٿي ته:

﴿وَأُولُو الْأَرْحَامِ بَعْضُهُمْ أَوْلَىٰ بِبَعْضٍ...﴾ (6) (الاحزاب)

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (71/1، 555\_560)، زاد المعاد (56/2).

”۽ مائتي وارا هڪ ٻئي جا پاڻ ۾ الله جي ڪتاب ۾ ٻين مؤمنن ۽ هجرت ڪندڙن کان وڌيڪ حقدار آهن.“

ان کانپوءِ انصارن ۽ مهاجرن ۾ گڏيل ورهاست جو حڪم ختم ڪيو ويو. پر پائيجاري جو قسم باقي رهيو. چيو وڃي ٿو ته پاڻ سڳورن ﷺ هڪ ٻيو به پائيجارو ڪرايو هو. جيڪو رڳو مهاجرن جي وچ ۾ هو. پر پهرين ڳالهه ئي ثابت ٿيل آهي. هونئن به مهاجرن کي پنهنجي اسلامي پائيجاري، قومي پائيجاري، مٿي مائتي ۽ قرابت جي پائيجاري کانپوءِ ٻئي ڪنهن پائيجاري جي ضرورت نه هئي. جڏهن ته انصارن ۽ مهاجرن جو معاملو ٻيو هو. (1)

امام غزالي رحمته الله عليه ان پائيجاري جو مقصد اهو لکيو آهي ته جاهلي عصبيتون ختم ٿي وڃن، غيرت ۽ حميت رڳو اسلام لاءِ هجي، نسل، رنگ ۽ وطن جا فرق متڄي وڃن، بلندي ۽ پستيءَ جو معيار انسانيت ۽ تقوىٰ کانسواءِ ٻيو ڪجهه نه هجي.

پاڻ سڳورن ﷺ ان پائيجاري کي رڳو ڪوڪلن لفظن جو جامو نه پهرايو هو. پر ان کي هڪ اهڙو باعمل عهد قرار ڏنو هو. جيڪو جان ۽ مال سان ڳانڍاپيل هو. اهو سڪڻي سلام دعا وارو تعلق نه هو. پر ان پائيجاري سان سڄا جذبا به شامل هئا. ان ڪري ئي ان پائيجاري، نئين سماج کي عظيم ڪارنامن سان ڀري ڇڏيو. (2)

صحيح بخاريءَ ۾ آيل آهي ته مهاجر جڏهن مديني پهتا ته پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه ۽ سعد بن ربيع رضي الله عنه ۾ پائيجارو قائم ڪرايو. ان کان پوءِ حضرت سعد رضي الله عنه، حضرت عبدالرحمان کي چيو ته: ”انصارن ۾ سڀ کان شاهوڪار آئون آهيان. توهان منهنجو مال وڃي (اڌ ڪٿو) ۽ منهنجون به زالون آهن. توهان ڏسو، جيڪا وڌيڪ وڻيو. آئون ان کي طلاق ڏيان ۽ عدت گذرڻ کان پوءِ توهان ان سان شادي ڪري وٺو.“ حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه چيو ته: ”الله توهان جي خاندان ۽ مال ۾ برڪت وجهي. توهانجي بازار ڪٿي آهي؟“ ماڻهن کين بنو قينقاع جي بازار جو ڏس ڏنو. پاڻ اتان ٿي واپس وريا ته وٽن ڪجهه پٺير ۽ گيهه واڌو هو. ان کانپوءِ روز وڃڻ لڳو. هڪ ڏينهن موتيو ته منهن هڻيو ٿيو پيو هئڻ. پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: ”هي ڇا آهي؟“ وراثيائين ته: ”مون شادي ڪئي آهي.“ پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: ”عورت کي مهر ۾ ڇا ڏنو اٿئي؟“ وراثيائين ته هڪ نوات جي برابر سون” (يعني اٽڪل سوا تولو) (3)

1 - زادالمعاد (2/56).

2 - فقد السيرة (ص: 140، 141).

3 - صحيح بخاري، (1/553).

ساڳيءَ طرح حضرت ابو هريرة رضي الله عنه کان هڪ روايت آيل آهي ته انصارن، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي عرض ڪيو ته: اسان ۽ اسان جي ڀائرن جي وچ ۾ ڪجهه جي باغن جي وچ ڪري ڏيو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "نه" تنهن تي انصارن چيو ته پوءِ توهان يعني مهاجر اسان جو ڪم ڪار ڪندا ڪريو ۽ اسين فصل ۾ اوهان کي شريڪ رکنداسين. انهن چيو ته "نڪ آهي، اسان ڳالهه ٻڌي ۽ مڃي." (1) ان مان اندازو ڪري سگهجي ٿو ته ڪيئن نه پنهنجن مهاجر ڀائرن جو انصارن وڏي چڙهي خيال رکيو ۽ ڪيتري نه محبت، خلوص، ايثار ۽ قربانيءَ کان ڪم ورتو. مهاجرن به ان مهربانيءَ جو ڪيترو نه قدر ڪيو ۽ ان جو ڪوبه غلط فائدو نه ورتو، پر انهن کان رڳو ايترو حاصل ڪيو، جنهن سان اهي پنهنجي معيشت جي ڇڏي ٿيل ڇيلهه سڌي ڪري سگهن.

سڄي ڳالهه ته اها آهي ته اهو پائيجارو هڪ نادر حڪمت، دانشورائي سياست ۽ مسلمانن کي پيش آيل سڀني مسئلن جو پلي ۾ پلو حل هو.

اسلامي تعاون جو واعدو:- ان پائيجاري وانگر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم هڪ ٻيو به ٺاهه ڪرايو، جنهن جي وسيلي جهالت جي سموري ڪشمڪش جا بنياد ختم ٿي ويا ۽ ٻيهر اهڙن رسمن رواجن لاءِ ڪا به جڳهه نه بچي. هيٺ اهو ٺهراءُ نقطن سميت مختصر طور تي ڏجي ٿو. هيءَ لکت محمد نبي صلى الله عليه وسلم پاران قريشن، يثريبن ۽ انهن جي هٿ هيٺ رهي ساڻن گڏ رهندڙن ۽ جهاد ڪرڻ وارن مؤمنن ۽ مسلمانن جي وچ ۾ آهي ته:

1. اهي سڀ ٻين انسانن کان ڌار هڪ امت آهن.
2. قريش مهاجر پنهنجي پراڻي رواج مطابق هڪ ٻئي کي ديت (خون بها) پري ڏيندا ۽ مؤمنن جي وچ ۾ مشهور ۽ انصاف واري طريقي سان پنهنجن قيدين لاءِ فديو ڏيندا ۽ انصارن جا سڀ قبيلن پنهنجي پراڻي رواج مطابق ديت (خون بها) ڏيندا ۽ سندن هر گروهه مشهور طريقي سان ۽ ايمان وارن جي وچ ۾ انصاف سان پنهنجن قيدين جو فديو ادا ڪندو.
3. ايمان وارا ڪنهن بيوس کي فديي يا ديت جي معاملي ۾ معروف طريقي مطابق عطا ۽ نوازش کان محروم نه رکندا.
4. ۽ سڌي راهه تي هلندڙ سڀ مؤمنن ان ماڻهوءَ جي خلاف ٿيندا، جيڪو ساڻن زيادتي ڪندو يا مؤمنن ۾ ظلم، گناهه ۽ زيادتي ۽ فساد ڪرائيندو.
5. ۽ اهو ته انهن سڀني جا هٿ ان ماڻهوءَ جي خلاف هوندا، ڀلي منجهانئن ڪنهن جو پٽ کڻي ڇو نه هجي.

<sup>1</sup> - صحيح بخاري، (312/1).

6. ڪو به مؤمن ڪنهن مؤمن کي ڪافر جي بدران قتل نه ڪندو ۽ نه ئي ڪنهن مؤمن خلاف ڪنهن ڪافر جي مدد ڪندو.
7. ۽ الله جو ذمو (عهد) هڪ هوندو. هڪ معمولي ماڻهوءَ جو ڏنل ذمو به سڀني مسلمانن سان لاڳو ٿيندو.
8. جيڪي يهودي اسان جي پيروي ڪندا، انهن جي مدد ڪبي ۽ اهي ٻين مسلمانن جهڙا رهندا. انهن تي نه ظلم ڪبو ۽ نه انهن خلاف (ٻين سان) ساٿ ڏبو.
9. مسلمانن جي صلح هڪ ٿيندي. ڪوبه مسلمان. ڪنهن مسلمان کي ڇڏي قتال في سبيل الله جي سلسلي ۾ مصالحت نه ڪندو. پر سڀئي برابري ۽ عدل جي بنياد تي ٺاه ڪندا.
10. مسلمان ان رت ۾ هڪٻئي جي برابر هوندا جيڪو في سبيل الله وهايو ويندو.
11. ڪير به ڪنهن مشرڪ قريش کي مال ۽ جان جي پناهه نه ڏئي سگهندو ۽ نه ڪنهن مؤمن جي آڏو اهڙي قسم جي رڪاوٽ بڻجندو.
12. جيڪو ماڻهو ڪنهن مؤمن کي قتل ڪندو ۽ ثبوت موجود هوندو ته ان کان قصاص ورتو ويندو. سواءِ ان حالت جي جو مقتول جو ولي راضي ٿي وڃي.
13. ۽ اهو ته سڀئي مؤمن ان جي خلاف ٿيندا، انهن لاءِ ان کانسواءِ ڪجهه به جائز نه هوندو ته ان جي خلاف اتي پون.
14. ڪنهن به مؤمن لاءِ اهو جائز نه هوندو ته ڪنهن هنگامي ڪرڻ واري (يا بدعتي) جي مدد ڪري ۽ ان کي پناهه ڏي ۽ جيڪو ان جي مدد ڪندو يا پناهه ڏيندو، ان تي قيامت جي ڏينهن الله جي لعنت ۽ غضب هوندو ۽ ان جو فرض ۽ نفل ڪجهه به قبول نه پوندا.
15. توهان ۾ جيڪو به ڦيٽاڙو پوندو، ان جو فيصلو الله ۽ محمد ﷺ ڪندا. (1)
- معاشرتي تي اثر:- ان حڪمت ۽ دورانديشيءَ سان پاڻ سڳورن ﷺ هڪ نئين سماج جي اڏاوت ڪئي، پر معاشرتي جي ظاهري تبديلي حقيقت ۾ انهن ڳالهين جي ڪري آئي هئي، جيڪي بزرگ هسٽين پاڻ سڳورن ﷺ جي صحبت مان پرايون هيون. پاڻ سڳورا ﷺ انهن جي تعليم ۽ تربيت، نفس جي پاڪائي ۽ اخلاق سڌارڻ جي ڪم ۾ لڳاتار رڌل رهندا هئا ۽ کين محبت ۽ پائڻچاري ۽ عبادت ۽ اطاعت جا ادب سيکاريندا رهندا هئا.
- هڪ صحابه سڳوري، پاڻ سڳورن ﷺ کان پڇيو ته: ڪهڙو اسلام پلو آهي؟ (يعني اسلام جو ڪهڙو عمل پلو آهي؟) پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "توهان کاڌو ڪارايو ۽ ڄاتل ۽ اڻ ڄاتل، سڀني کي سلام ڪريو." (1)

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/502، 503).

حضرت عبدالله بن سلام رضي الله عنه جو بيان آهي ته جڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام مديني آيا ته آئون سندن خدمت ۾ حاضر ٿيس. جڏهن مون پاڻ سڳورن عليه السلام جو منهن مبارڪ ڏٺو ته چڱيءَ طرح سمجهي ويس ته هي ڪنهن ڪوڙي ماڻهوءَ جو چهرو نٿو ٿي سگهي. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام جيڪا پهرين ڳالهه ٻڌائي، اها اها هئي ته "اي انسانو! سلام ڦهلايو. کاڌو ڪارايو. (بين تي) مهرباني ڪريو ۽ رات جو جڏهن ماڻهو ستا پيا هجن ته عبادت ڪريو. جنت ۾ سلامتيءَ سان داخل ٿي ويندؤ." (2)

پاڻ سڳورا عليه السلام فرمائيندا هئا ته "اهو ماڻهو جنت ۾ نه ويندو، جنهن جو پاڙيسري سندس شرارتن ۽ ايڏائڻ کان مامون ۽ محفوظ نه رهي." (3) ۽ فرمائيندا هئا ته "مسلمان اهو آهي، جنهن جي زبان ۽ هٿ کان مسلمان محفوظ رهن." (4) ۽ فرمائيندا هئا ته "توهان مان ڪوبه تيسٽائين مؤمن نٿو ٿي سگهي، جيستائين پنهنجي ڀاءُ لاءِ اها شيءِ پسند نه ڪري، جيڪا پاڻ لاءِ پسند ڪري ٿو." (5) ۽ فرمائيندا هئا ته "سڀ مؤمن هڪ ماڻهوءَ جيان آهن جو جيڪڏهن ان جي هڪ اک ۾ سور ٿئي ته سڄي جسم کي تڪليف محسوس ٿئي ۽ جي مٿي ۾ سور ٿئي ته سڄي جسم ۾ سور محسوس ٿئي." (6) ۽ فرمائيندا هئا ته "مؤمن، مؤمن لاءِ عمارت جيئن آهي، جنهن جو هڪ پاسو ٻئي کي جهلي ٿو بيهي." (7) ۽ فرمائيندا هئا ته "پاڻ ۾ ڪينو نه ڌاريو، هڪٻئي سان حسد نه ڪريو، هڪ ٻئي کان پٺ نه ڦيريو ۽ الله جا بانها ۽ پاڻ ۾ پائر ٿي رهو. ڪنهن مسلمان لاءِ جائز نه آهي ته ڀاءُ کان تن ڏينهن کان وڌيڪ پري رهي." (8) ۽ فرمائيندا هئا ته "مسلمان، مسلمان جو ڀاءُ آهي. نه ان تي ظلم ڪري ۽ نه کيس دشمنن جي حوالي ڪري، ۽ جيڪو ماڻهو پنهنجي ڀاءُ جي ڪم ايندو، الله ان جي ڪم ايندو ۽ جيڪو ماڻهو ڪنهن مسلمان جو ڏک درد دور ڪندو، الله قيامت جي ڏينهن سندس ڏک مان ڪو ڏک دور ڪندو ۽ جيڪو ماڻهو ڪنهن مسلمان جي ڏک رکندو، الله قيامت جي ڏينهن ان جو ڏک رکندو." (9) ۽ فرمائيندا هئا ته "توهان زمين وارن تي مهرباني ڪريو، توهان تي آسمان وارو

1 - صحيح بخاري (6/1، 9).

2 - ترمذي - ابن ماجه، دارمي، مشڪوٰة (168/1).

3 - صحيح مسلم، مشڪوٰة (2-422).

4 - صحيح بخاري (6/1).

5 - صحيح بخاري (6/1).

6 - صحيح مسلم، مشڪوٰة (2-422).

7 - متفق عليه مشڪوٰة (422/2) - صحيح بخاري (890/2).

8 - صحيح بخاري (896/2).

9 - متفق عليه مشڪوٰة (422/2).

مهرباني ڪندو." (1) ۽ فرمائيندا هئا ته "اهو ماڻهو مؤمن ڪونهي، جيڪو پاڻ بيت پري کائي ۽ سندس پير واري گهر ۾ پاڙيسري بکيو رهي." (2) ۽ فرمائيندا هئا ته "مسلمان سان گار گند ڪرڻ فسق آهي ۽ ان سان وڙهڻ ڪفر آهي." (3)

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ رستي تان تڪليف ڏيندڙ شيءِ هٽائڻ کي صدقو قرار ڏيندا هئا ۽ ان کي ايمان جي شاخن مان هڪ شاخ ڳڻائيندا هئا. (4)

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ صدقي ۽ خيرات جي ترغيب ڏيندا هئا ۽ ان جون اهڙيون اهڙيون فضيلتون ٻڌائيندا هئا جو پاڻ مرادو دلين ان پاسي ڇڪجي وينديون هيون. جيئن پاڻ سڳورا ﷺ فرمائيندا هئا ته صدقو گناهن کي ائين وسائي ٿو، جيئن پاڻي باهه کي وسائي ٿو. (5)

پاڻ سڳورا ﷺ فرمائيندا هئا ته: جيڪو مسلمان ڪنهن انگ اگهاڙي مسلمان کي ڪپڙو پرائيندو، الله ان کي جنت ۾ ساڻو لباس پهرائيندو ۽ جيڪو مسلمان ڪنهن بڪايل مسلمان کي کاڌو ڪارائيندو، الله ان کي جنت جا ميوا ڪارائيندو ۽ جيڪو مسلمان ڪنهن اجايل مسلمان کي پاڻي پياريندو، الله ان کي جنت ۾ مهر لڳل پاڪ شراب پياريندو. (6)

پاڻ سڳورا ﷺ فرمائيندا هئا ته "باهه کان بچو، ڀلي ڪجيءَ جو هڪ ٽڪر ٿي صدقو ڪري ۽ جي اهو به نه هجي ته ڪي چڱا ٻول ٿي ٻولي." (7)

ان سان گڏوگڏ پاڻ سڳورا ﷺ پنڻ کان پاسو ڪرڻ جي وڌ ۾ وڌ تاڪيد ڪندا هئا. صبر ۽ قناعت جون فضيلتون ٻڌائيندا هئا ۽ سوال ڪرڻ کي سائل جي منهن تي رهڙ ۽ زخم سان پيئيندا هئا. (8) باقي ان ۾ اهڙو ماڻهو نه ڳڻائيندا هئا، جيڪو صفا مجبور ٿي سوال ڪري.

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ اهو به ٻڌائيندا هئا ته ڪهڙين عبادتن جون ڪهڙيون فضيلتون آهن ۽ الله وٽ ان جو ڪهڙو اجر آهي؟ پاڻ سڳورا ﷺ تي آسمان تان وحي لهندي هئي، جنهن سان پاڻ سڳورا ﷺ مسلمانن کي هڪ ٻئي سان مضبوطيءَ سان ڳنڍي رکڻ جو ڪم وٺندا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ اها وحي مسلمانن کي ٻڌائيندا هئا ۽ مسلمان پاڻ سڳورا ﷺ کي پڙهي ٻڌائيندا هئا

1 - سنن ابى دائود (335/2) - جامع ترمذى (14/2).

2 - شعب اليمان البيهقي مشڪوة (424/2).

3 - صحيح بخارى (893/2).

4 - ان مضمون جي حديث صحيحين ۾ آيل آهي. مشڪوة (12/1، 167).

5 - احمد، ترمذى، ابن ماجه، مشڪوة (14/1).

6 - سنن ابى دائود، جامع ترمذى، مشڪوة (169/1).

7 - صحيح بخارى (190/1، 890/2).

8 - ڏسو ابو دائود، ترمذى، نسائي، ابن ماجه، دارمي، مشڪوة (163/1).

ته جيئن ان عمل سان انهن ۾ سمجهه ۽ ڏاهپ کانسواءِ دعوت جي حقن ۽ پيغمبرائين ذميدارين جو شعور به جاڳي پوي.

ان طرح پاڻ سڳورن ﷺ، مسلمانن جي اخلاقيات کي بلند ڪيو، انهن جي صلاحيتن کي عروج تي پهچايو ۽ کين اعلىٰ ڪردار جو مالڪ بڻايو. تان ته اهي انساني تاريخ ۾ نئين ڪانپوءِ فضل ۽ ڪمال جي سڀ کان بلند چوٽيءَ تائين رسي ويا. حضرت عبدالله بن مسعود رضى الله عنه جو بيان آهي ته جنهن شخص کي طريقو اختيار ڪرڻو آهي، اهو گذريلن جو طريقو اختيار ڪري. ڇو ته جيئن جي باري ۾ فتني جو انديشو آهي. اهي پاڻ سڳورن ﷺ جا ساٿي هئا، هن امت ۾ سڀ کان پلارا، سڀ کان نيڪدل، سڀ کان گهري علم جا مالڪ ۽ سڀ کان وڌيڪ بي تکلف. الله تعاليٰ کين پنهنجي نبيءَ جو سات ڏيڻ ۽ پنهنجي دين کي قائم ڪرڻ لاءِ چونڊيو هو. تنهنڪري انهن جو فضل ڄاڻو ۽ انهن جي پيروي ڪريو ۽ جيترو ممڪن ٿي سگهي، انهن جهڙو اخلاق ۽ سيرت ٺاهيو. ڇو ته اهي ئي سڌيءَ راهه تي هئا. (1)

رسول الله ﷺ پاڻ به اهڙن معنوي ۽ ظاهري خوبين، ڪمالن، خداداد صلاحيتن، فضيلتن، اخلاقي خوبين ۽ عمل جي خوبين جا مثال هئا، جنهن ڪري دليون پاڻمرادو انهن ڏانهن ڇڪجي وينديون هيون ۽ جانيون قربان ٿيڻ چاهينديون هيون. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ جي زبان مان جيئن ئي ڪا ڳالهه نڪرندي هئي، صحابه سڳورا هڪدم ان جي پوڻاريءَ لاءِ ڊوڙ لڳندا هئا ۽ هدايت ۽ رهنمائيءَ جي جيڪا ڳالهه پاڻ سڳورا ﷺ فرمائيندا هئا، ان تي عمل ڪرڻ ۾ هرڪو ٻين کان گوءِ ڪڍڻ چاهيندو هو.

اهڙين ڪوشش جي ڪري پاڻ سڳورا ﷺ مديني ۾ هڪ اهڙو سماج جوڙڻ ۾ ڪامياب ٿي ويا، جيڪو تاريخ جو سڀ کان وڌيڪ باڪمال ۽ شرف سان ڀرپور سماج هو ۽ ان سماج جي مسئلن جو اهڙو خوشگوار نتيجو نڪتو جو انسانيت هڪ ڊگهي عرصي تائين وقت جي چڪيءَ ۾ پيسجي ۽ گهرين تاريخين ۾ هت پير هڻي ٿڪجي پوڻ بعد پهريون ڀيرو سک جو ساهه کنيو. هن نئين سماج جا عنصر اهڙي عظيم تعليم جي وسيلي پورا ٿيا، جنهن پوريءَ مستقل مزاجيءَ سان زماني جي هر جهٽڪي سان مهاڏو اٽڪائي ان جو رخ موڙي ڇڏيو ۽ تاريخ جو رخ بدلائي ڇڏيو.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - مشڪوة (1/32).

## يهودين سان ٺاه

هجرت کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جڏهن مسلمانن ۾ عقيدتي، سياست ۽ نظام جي وحدت جي ذريعي هڪ نئين اسلامي سماج جا بنياد وجهي ڇڏيا ته پوءِ غير مسلم سان پنهنجن ناتن کي سڌارڻ ڏانهن ڌيان ڏنائون. پاڻ سڳورن ﷺ جو مقصد اهو هو ته سڄي انسان ذات امن ۽ سلامتيءَ جي سعادت ۽ برڪتن مان لاپ حاصل ڪري ۽ ان سان گڏ مديني ۽ ان جي پرياسي وارو علائقو هڪ وفاقي وحدت ۾ منظم ٿي وڃي. تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ رواداري ۽ وڏي دل سان اهڙا قانون جوڙيا، جن جو هن تعصب ۽ تڪبر سان ڀريل دنيا ۾ ڪوبه تصور نه هو.

جيئن ته اسين ٻڌائي آيا آهيون ته مديني جا سڀ کان ويجها پاڙيسري يهودي هئا. اهي جيتوڻيڪ دل ۾ مسلمانن سان وير رکندا هئا ته به انهن اڃا تائين جهيڙو جوتڻ جو اظهار نه ڪيو هو. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ انهن سان هڪ ٺاه ڪيو، جنهن ۾ کين جان، مال توڙي مذهب جي آزادي ڏني وئي هئي ۽ جلاوطن ڪرڻ، جڳهين تي قبضو ڪرڻ يا جهيڙو ڪرڻ کان پاسو ڪيو ويو هو. اهو ٺاه، ان ٺاه جي ڪڙي هو، جيڪو مسلمانن جي وچ ۾ ٿيو هو ۽ جنهن جو ذڪر مٿي اچي چڪو آهي. هتي ان جا اهم نقطا ڄاڻائجن ٿا.

### ٺاه جا نقطا:-

1. بنو عوف جا يهودي، مسلمانن سان ملي هڪ ئي امت ليکبا. يهودي پنهنجي دين تي هلندا ۽ مسلمان پنهنجي دين تي. انهن جو، سندن ٻانهن ۽ ٻين واسطيدارن لاءِ به اهو ئي قانون هوندو ۽ بنو عوف کانسواءِ ٻين يهودين جا به اهي ئي حق هوندا.
2. يهودي پنهنجي خرچ جا پاڻ ذميدار هوندا ۽ مسلمان پنهنجي خرچ جا.
3. جيڪا طاقت هن ٺاه جي ڪنهن به ڌر سان جنگ ڪندي، سڀ ان جي خلاف هڪ ٻئي جو ساٿ ڏيندا.
4. هن معاهدي جي ڌرين جا ناتا نيڪ نيتي، ڀلائي ۽ فائدو پهچائڻ جي بنياد تي هوندا، گناهه تي نه.
5. ڪوبه ماڻهو پنهنجي حليف جي ڪارڻ ڏوهي نه ڪيو ويندو.
6. مظلوم جي مدد ڪئي ويندي.
7. جيستائين جنگ جاري رهندي، يهودي به مسلمانن سان گڏ خرچ ڀريندا.
8. هن معاهدي جي سڀني ڌرين تي مديني ۾ فساد ڪرڻ ۽ خون وهائڻ حرام هوندو.



9. هن معاهدي جي فريقتن ۾ ڪا نئين ڳالهه يا جهيڙو جهٽو ٿي پوي، جنهن سان فساد جو ڊپ هجي ته ان جو فيصلو الله پاڪ ۽ محمد رسول الله ﷺ ڪندا.
10. قريشن ۽ سندن مددگارن کي پناهه نه ڏني ويندي.
11. ڪير به يثرب تي ڪاهيندو ته ساڻس وڙهڻ لاءِ سڀ گڏجي هڪ ٿي ويندا ۽ هر ڌر پنهنجي پنهنجي پاسي جو دفاع ڪندي.
12. هيءُ ٺاهه ڪنهن ظالم يا مجرم لاءِ آڙ نه بڻجندي. (1)
- هن ٺاهه سان مديني ۽ ان جي پرياسي ۾ هڪ وفاقي حڪومت ٺهي پئي، جنهن جي راڄڌاني مديني ۾ هئي ۽ جنهن جا سربراهه پاڻ سڳورا ﷺ هئا ۽ جنهن ۾ مسلمانن جو قانون ۽ حڪمراني هلندي هئي ۽ اهڙيءَ طرح مدينو سچ پچ اسلام جي راڄڌاني بڻجي ويو.
- امن ۽ سلامتيءَ جي دائري کي وسيع ڪرڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ آئنده بين قبيلن سان به حالتن مطابق اهڙيءَ طرح ٺاهه ڪيا، جن مان ڪن جو ذڪر اڳتي هلي ڪيو ويندو.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (1/503، 504).

## هتيار بند جهڙيون

هجرت کان پوءِ مسلمانن خلاف قريشن جون سازشون

۽ عبدالله بن ابي سان لڪيڙهه

گذريل صفحن ۾ ٻڌائي آيا آهيون ته مڪي جي ڪافرن، مسلمانن سان ڪهڙا ڪهڙا ڪلور ڪيا هئا ۽ جڏهن مسلمانن هجرت شروع ڪئي ته انهن جي خلاف ڪهڙيون ڪهڙيون ڪارروايون ڪيون هيون، جن جي ڪري اهي ان ڳالهه جا مستحق ٿي چڪا هئا ته سندن مال ملڪيت ضبط ڪئي وڃي ۽ کين ماري مڃايو وڃي. پر پوءِ به سندن حماقتن جو سلسلو بند نه ٿيو ۽ اهي پنهنجين حرڪتن کان ڪونه مڙيا، پر اهو ڏسي ويتر ڏمريا ته مسلمان سندن هٿن مان نڪري ويا آهن ۽ کين مديني ۾ هڪ امن واري جاءِ ملي وئي آهي. تنهنڪري انهن عبدالله بن ابي کي، جيڪو اڃا تائين ڪليو ڪلايو مشرڪ هو، سندس ان حيثيت ڪري قريشن کيس هڪ ڏمڪيءَ وارو خط لکيو جو هو انصارن جو سردار هو ۽ انصار سندس اڳواڻيءَ تي متفق ٿي چڪا هئا. جيڪڏهن ان وچ ۾ پاڻ سڳورا ﷺ مديني نه اچن ها ته اهي کيس پنهنجو بادشاهه بڻائي چڪا هجن ها. مشرڪن پنهنجي ان خط ۾ عبدالله بن ابي ۽ سندس ٻين مشرڪن ساڻين کي مخاطب ٿيندي چئن لفظن ۾ لکيو ته "توهان اسان جي همراه ڪي پناهه ڏني آهي، ان ڪري اسين الله جو قسم کڻي چئون ٿا ته يا ته ان سان وڙهو يا کيس ڪڍي ڇڏيو، يا وري اسين پنهنجي پوري لشڪر سان ڪاهي توهان جا سڀ ڌڳ مڙس ماري وجهنداسون ۽ توهان جي عورتن جون لڄون لٽينداسون." (1)

هن خط پهچڻ شرط عبدالله بن ابي پنهنجن مڪي وارن مشرڪن پائرن جي حڪم جي تعميل لاءِ سنڀري پيو، جو هو اڳيئي پاڻ سڳورن ﷺ جي خلاف دل ۾ ڪينو رکيو ويٺو هو. ڇو ته سندس ذهن ۾ اها ڳالهه وينل هئي ته پاڻ سڳورن کي ڪانئس بادشاهت ڪسي آهي، جيئن ئي اهو خط کيس ۽ سندس بت پرست ساٿارين کي پهتو ته پاڻ سڳورن ﷺ سان جنگ ڪرڻ لاءِ گڏ ٿي ويا. جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي اها خبر پئي ته ان وٽ هلي ويا ۽ فرمايائون ته: "قريشن جي ڏمڪي توهان تي گهرو اثر ڪري وئي آهي. توهان پاڻ، پنهنجون پاڻ کي جيترو نقصان پهچائڻ گهرو ٿا، قريش اوهان کي ان کان وڌيڪ نقصان پهچائي نٿا سگهن. توهان پنهنجن پٽن ۽ پائرن سان پاڻ ئي وڙهڻ چاهيو ٿا؟" پاڻ سڳورن ﷺ جي اها ڳالهه ٻڌي سڀ تڙي پڪڙي ويا. (2)

1 - ابو دائود: (154/2).

2 - ابودائود: (154/2).

ان مهل ته عبدالله بن ابي جنگ کان پاسو ڪيو، ڇو ته سندس ساٿي ڍلا پئجي ويا هئا يا ڳالهه سندن سمجهه ۾ اچي وئي هئي پر حقيقت ۾ قریشن سان سندس ڳجهتا ناتا هلندا رهيا، ڇو ته مسلمانن ۽ قریشن جي وچ ۾ جهيڙي جو ڪوبه موقعو هٿان وڃائڻ نٿي چاهيائين. هن پاڻ سان يهودين کي به ملائي رکيو هو، جيئن هن معاملي ۾ کانئن به مدد ورتي وڃي. پر اها پاڻ سڳورن ﷺ جي ڏاهپ هئي، جنهن سان هر هر پڙڪندڙ جهيڙي جي باهه وسائي ڇڏيندا هئا. (1)

مسلمانن تي مسجد الحرام جا دروازا بند ٿيڻ جو اعلان:- ان کانپوءِ حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه جن عمري لاءِ مڪي ويا ۽ اميه بن خلف جا مهمان ٿيا. انهن اميه کي چيو ته: "مون لاءِ ڪو اڪيلائيءَ وارو وقت ڏس ته ٿورو بيت الله جو طواف ڪري وٺان." اميه ٻنهي مهل کين وٺي نڪتو ته ابوجهل ملي وين. ان (اميه کي مخاطب ٿي) چيو ته: ابو صفوان، توهان ڳڏ ڪير آهي؟ اميه چيو ته: هي سعد رضي الله عنه آهي. ابوجهل، سعد رضي الله عنه کي مخاطب ٿي چيو ته: "اڃا! آئون ڏسان پيو ته تون ڏاڍي امن ۽ اطمينان سان طواف پيو ڪرين. جڏهن ته توهان بي دينن کي پناهه ڏئي ويهاريو آهي ۽ سندن مدد ڪرڻ جو ارادو به رکيو ٿا. ٻڌ! الله جو قسم! جيڪڏهن تون ابو صفوان سان ڳڏ نه هجين ها ته پنهنجي گهر سلامتيءَ سان نه موتي سگهين ها." تنهن تي حضرت سعد رضي الله عنه جن وڏي واڪي چيو ته "ٻڌ! الله جو قسم! جيڪڏهن تون مون کي هن ڪم کان جهليو ته آئون توکي اهڙي ڪم کان جهلي وڃهندس، جيڪو توکي ڏاڍو ڏکيو لڳندو." (يعني مديني وٽان لنگهندڙ تنهنجو واپاري لنگهه). (2)

مهاجرن کي قریشن جي ڏمڪي:- پوءِ قریشن، مسلمانن کي چورائي موڪليو ته "توهان مغرور نه ٿجو ته مڪي مان سلامتيءَ سان نڪتا آهيو، اسان يثرب پهچي اوهان کي تباهه ۽ برباد ڪري ڇڏينداسين." (3)

اها رڳو ڏمڪي نه هئي پر پاڻ سڳورن ﷺ کي قریشن جي چالن ۽ برن ارادن جي پڪن ذريعن سان خبر پئجي وئي هئي، تنهنڪري پاڻ سڳوران رضي الله عنه يا ته جاڳي رات گذاريندا هئا يا صحابه سڳورن رضي الله عنهم جي پهري ۾ سمهندا هئا. جيئن صحيح بخاري ۽ مسلم ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها جن کان آيل آهي ته مديني اچڻ بعد هڪ رات پاڻ سڳورا رضي الله عنه جاڳي رهيا هئا ۽ اوچتو فرمائون ته "ڪاش اڄ رات منهنجن اصحابين مان ڪو نيڪ مرد مون وٽ پهرو ڏي ها." اڃا

1 - هن معاملي لاءِ ڏسو صحيح بخاري (2/655, 656, 916, 924).

2 - بخاري. (2/563).

3 - رحمة للعالمين (116/1).

اسين ان ئي حالت ۾ هٿاسين ته اسان کي هٿيارن جي جهٽڪار ٻڌڻ ۾ آئي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "کير آهي؟" جواب مليو ته: "سعد بن ابى وقاص رضى الله عنه" فرمايائون ته "ڪيئن اچڻ ٿيو؟" وراڻي ملي ته "مون توهان لاءِ خطرو محسوس ڪيو، ان ڪري توهان وٽ پهرو ڏيڻ لاءِ اچي نڪتس." تنهن تي پاڻ سڳورن ﷺ کين دعا ڪئي ۽ پوءِ سمهي رهيا. (1)

اهو ياد رهي ته پهري جو اهو انتظام ڪن راتين سان لاڳو نٿي ٿيو، پر لڳاتار ۽ سدائين لاءِ هو، جيئن بيبي عائشه رضي الله عنها کان ئي روايت بيان ڪيل آهي ته رات جو پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ پهرو ايندو هو، تان ته اها آيت لٿي ته:

﴿وَاللَّهُ يَعِصَمُكَ مِنَ النَّاسِ﴾ (الله اوهان کي ماڻهن کان محفوظ رکندو.) تڏهن پاڻ سڳورن ﷺ قبلي مان سر مبارڪ ڪڍي فرمايو ته: "هاڻي موٽي وڃو، الله مون کي محفوظ ڪري ڇڏيو آهي." (2)

اهو خطرو رڳو پاڻ سڳورن ﷺ جي ذات تائين محدود نه هو پر سڀني مسلمانن لاءِ هو. جيئن حضرت ابى بن ڪعب رضى الله عنه کان روايت آهي ته جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ ۽ سندن ساٿي مديني آيا ۽ انصارن کين پاڻ وٽ پناهه ڏني ته سڄو عربستان انهن جي خلاف هڪ ٿي ويو. تنهنڪري اهي ڏينهن رات هٿيارن سان ليس هوندا هئا.

ويڙهاند (جنگ) جي اجازت:- انهن ڏکين حالتن ۾، جيڪي مديني ۾ مسلمانن جي وجود لاءِ للڪار بڻجي ويون هيون ۽ جن مان ظاهر هو ته قريش ڪنهن به طرح سڌرڻ ۽ دشمني ڇڏڻ لاءِ تيار نه هئا، الله تعاليٰ مسلمانن کي ويڙهاند جي اجازت ڏني. پر ان کي فرض قرار نه ڏنو. ان موقعي تي الله تعاليٰ جو هي ارشاد نازل ٿيو:

﴿أَذِّنْ لِلَّذِينَ يُقَاتِلُونَ بِأَنَّهُمْ ظَلَمُوا وَإِنَّ اللَّهَ عَلَىٰ نَصْرِهِمْ لَقَدِيرٌ﴾ (الحج 39)

"جن سان (ڪافر) وڙهندا آهن تن کي (جهاد لاءِ) انهيءَ ڪري موڪل ڏني ويئي جو انهن تي ظلم ڪيو ويو آهي. ۽ بيشڪ الله کين مدد ڏيڻ تي وس وارو آهي."

ان آيت جي سلسلي جون ڪجهه ٻيون آيتون به لٿيون، جن ۾ ٻڌايو ويو ته اها اجازت جنگيون ڪرڻ لاءِ نه آهي، پر ڪوڙ کي مٽائڻ ۽ الله جون نشانيون قائم ڪرڻ لاءِ آهي. جيئن اڳتي ٻڌايل آهي ته:

﴿الَّذِينَ إِن مَكَّنَّاهُمْ فِي الْأَرْضِ أَقَامُوا الصَّلَاةَ وَآتَوُا الزَّكَاةَ وَأَمَرُوا بِالْمَعْرُوفِ وَنَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِ...﴾ (الحج 41)

<sup>1</sup> - مسلم (280/2)، صحيح بخاري (404/1).

<sup>2</sup> - جامع ترمذي: ابواب التفسير (130/2).

”انهن ماڻهن کي جيڪڏهن زمين ۾ غلبو ڏينداسون ته نماز پڙهندا ۽ زڪوٰه ڏيندا ۽ چڱن کمن جو حڪم ڪندا ۽ برن کمن کان منع ڪندا.“

صحيح ڳالهه. جنهن کي قبول ڪرڻ کانسواءِ چارو نه آهي، اها هيءَ آهي ته اها چوٽ هجرت کانپوءِ مديني ۾ ملي هئي. مڪي ۾ نه ملي هئي. باقي ان آيت نازل ٿيڻ جي وقت جو صحيح تعين ڪرڻ مشڪل آهي.

جنگ جي اجازت ته ملي پر جن حالتن ۾ ملي آهي جيئن ته رڳو قرينش جي قوت ۽ سرڪشيءَ جو نتيجو هيون. ان ڪري ڏاهپ جي تقاضا اها هئي ته مسلمان پنهنجي تسلط جو دائرو قرينش جي ان واپاري لنگهه تائين ڦهلائي ڇڏين. جيڪو مڪي کان شام تائين ڦهليل هو. ان لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ به رٿائون جوڙيون.

1. جيڪي قبيلن لنگهه جي ويجهو يا مديني جي وچ واري علائقي ۾ رهندا هئا، انهن سان حلف (دوستي ۽ تعاون جو) ۽ جنگ نه ڪرڻ جو ٺاهه  
2. ان لنگهه تي گشتي دستا موڪلڻ.

پهرئين منصوبي جي سلسلي ۾ اهو واقعو ٻڌائڻ جوڳو آهي ته گذريل صفحن ۾ يهودين سان ڪيل جنهن ٺاهه جو تفصيل ڏنو آهي. پاڻ سڳورن ﷺ فوجي مهڙ شروع ڪرڻ کان اڳ اهڙي قسم جي دوستي، مدد ۽ جنگ نه ڪرڻ جو هڪ ٺاهه جُهيند قبيلي سان به ڪيو. انهن جا ڳوٺ مديني کان ٽي منزلون (45,50 ميل) پري هئا. اهڙا ٻيا به ٺاهه ڪيا ويا، جن جو ذڪر اڳتي ايندو. ٻيو منصوبو سرين ۽ غزون سان تعلق رکي ٿو. جنهن جو تفصيل به پنهنجي پنهنجي جڳهه تي ايندو.

سريه ۽ غزوه (1) :- جنگ جي موڪل ملڻ کانپوءِ انهن ٻنهي رٿائن تي عمل ڪرڻ جي سلسلي ۾ فوجي مهمون شروع ٿي ويون ۽ فوجي دستا گشت ڪرڻ لڳا. سندن مقصد اهو ئي هو. جنهن ڏانهن اشارو ڪيو ويو آهي ته مديني جي پرياسي وارن رستن تي عام طور تي ۽ مڪي واري رستي تي خاص طور نظر رکي وڃي ۽ گڏوگڏ انهن رستن تي رهندڙ قبيلن سان ٺاهه ڪيا وڃن ۽ يثرب جي مشرڪن، يهودين ۽ پرياسي جي بدوئن کي اهو احساس ڏياريو وڃي ته مسلمان طاقتور آهن ۽ کين پنهنجي پراڻي ڪمزوريءَ کان نجات ملي چڪي آهي ۽ قرينش کي به سندن اجائي هٿ ڌرميءَ جي خطرناڪ نتيجن کان ڊيڄاريو وڃي ته جيئن جنهن بيوقوفيءَ جي دٻڻ ۾ هو اڃا تائين ڦاسندا پيا وڃن. ان مان

<sup>1</sup> - سيرت نگارن جي اصطلاح ۾ غزوه ان فوجي مهڙ کي چئبو آهي، جنهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ پاڻ شريڪ ٿي نڪرندا هئا. ٻي پوءِ جنگ تي هجي يا نه. سريو وري ان فوجي مهڙ کي چئبو آهي، جنهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ شامل نه ٿيا هجن. سڙايا سريه جي جمع آهي.

نڪري ڪجهه هوش کان ڪم وٺڻ ۽ پنهنجي لاءِ معاشي ذريعن کي خطري ۾ ڏسي صلح طرف مائل ٿين ۽ مسلمانن جي گهرن ۾ گهڙي سندن انت آڻڻ ۽ الله جي راه ۾ رندڪون وجهڻ ۽ مڪي جي ڪمزور مسلمانن تي ڏاڍ ۽ ڏمر ڪرڻ کان پاڻ جهلين ۽ اهڙيءَ طرح مسلمان، عربستان ۾ الله جو پيغام پهچائڻ لاءِ آزاد ٿي وڃن.

انهن سرين ۽ غزون جو ٿورو احوال هتي ڏجي ٿو.

### 1- سيف البحر وارو سريو<sup>(1)</sup> :- (رمضان سنه 1 هـ مطابق مارچ 623ع)

پاڻ سڳورن عليه السلام، حضرت حمزة بن عبدالمطلب رضي الله عنه کي سريي جو امير بڻايو ۽ تيه مهاجر صحابه سڳورا سندن اڳواڻيءَ ۾ ڏئي کين قريش جي هڪ قافلي جي خبر لهڻ لاءِ موڪليو. ان قافلي ۾ ٽي سو ماڻهو شامل هئا، جن ۾ ابوجهل به هو. مسلمان عيص<sup>(2)</sup> جي علائقي وٽ سمنڊ جي ڪناري وٽ پهتا ته قافلو سندن آڏو اچي ويو. ذريون ويڙهه لاءِ صفون ٻڌي بينيون پر جهينه قبيلي جو سردار مجدي بن عمرو، جيڪو ذرين جو حليف هو، تنهن ڪوشش ڪري جنگ ٿاري ڇڏي. حضرت امير حمزه رضي الله عنه جو اهو جهنڊو پهريون جهنڊو هو، جيڪو پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجن مبارڪ هٿن سان ٻڌو هو. ان جو رنگ اڇو هو ۽ ان جو علمبردار حضرت ابومرثد ڪناز بن حصين غنوي رضي الله عنه هو.

### 2. رابغ وارو سريو:- (شوال سنه 1 هـ اپريل 623ع)

پاڻ سڳورن، حضرت عبيدة رضي الله عنه بن حارث بن المطلب کي مهاجرن جي سٺ سوارن جو دستو ڏئي روانو ڪيو. رابغ جي واديءَ ۾ ابو سفيان آڏو پيڻ. ان سان ٻه سو ڇٽا گڏ هئا. ذرين هڪٻئي تي تير وسايا پر وڌيڪ جنگ نه ٿي. هن سريي ۾ مڪي جي لشڪر جا ٻه ماڻهو مسلمانن سان اچي مليا. هڪ حضرت مقداد بن عمرو البهراني رضي الله عنه ۽ ٻيو عتب بن غزوان المازني رضي الله عنه. اهي ٻئي مسلمان هئا ۽ ڪفرن سان گڏ اهو سوچي هليا هئا ته ان طرح مسلمانن سان وڃي ملندا. حضرت ابو عبيده رضي الله عنه جو جهنڊو اڇو هو ۽ علمبردار حضرت مسطح رضي الله عنه بن اثاڻه بن مطلب بن عبدمناف هو.

### 3. خرار وارو سريو<sup>(3)</sup> :- ( ذوالقعد سنه 1 هـ مئي 623ع)

<sup>1</sup> - سيف البحر ۾ (س) کي زير ڏبي. معنيٰ سامونڊي ڪنارو.

<sup>2</sup> - عيص، ع کي زير ڏبي. بحر احمر جي پيراسي ۾ بئح ۽ مروه جي وچ ۾ هڪ جڳهه جو نالو آهي.

<sup>3</sup> - خرار، "خ" تي زير ۽ "ر" تي شد سان، جحفن ويجهو هڪ جڳهه جو نالو.

پاڻ سڳورن ﷺ هن سريي جو امير حضرت سعد بن ابي وقاص رضی اللہ عنہ جن کي مقرر ڪيو ۽ کين ويهن چئن جو دستو ڏئي قريشن جي هڪ قافلي جي خبر لهڻ لاءِ موڪليو ۽ اها تاڪيد ڪيائون ته خرار کان اڳتي نه وڌجو. اهي پنڌ روانا ٿيا. رات جو سفر ڪندا هئا ۽ ڏينهن جو لڪي گذاريندا هئا. پنجين ڏينهن صبح جو خرار پهتا ته خبر پيڻ ته قافلو هڪ ڏينهن اڳ لنگهي چڪو آهي.

هن سريي جو جهنڊو اچو هو ۽ علمبردار حضرت مقداد بن عمرو رضی اللہ عنہ هو.

#### 4. غزوه ابواء يا ودان<sup>(1)</sup>: - صفر سنه 2 هه آگست 623ع

هن مهه ۾ ستر مهاجرن سان گڏ پاڻ سڳورا ﷺ پاڻ به نڪتا هئا ۽ مديني ۾ حضرت سعد بن عبادة رضی اللہ عنہ کي پنهنجو قائم مقام ڪري ويا هئا. مهه جو مقصد قريشن جي هڪ قافلي جي راهه روڪڻ هو. پاڻ سڳورا ﷺ ودان تائين پهتا پر ڪابه جهڙپ نه ٿي.

هن غزوي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ بنو ضميره جي سردار عمرو بن مخشي الضمري سان دوستائو ٺاهه ڪيو. ٺاهه جي لکت هن ريت هئي.

"هي بنو ضميره لاءِ محمد رسول الله جي لکت آهي. اهي پنهنجي جان ۽ مال بابت بي فڪر رهندا ۽ جيڪو انهن تي چڙهائي ڪندو، ان جي خلاف سندن مدد ڪئي ويندي. سواءِ ان جي جو اهي پاڻ الله جي دين خلاف جنگ ڪن." (اهو ٺاهه ان وقت تائين آهي) جيستائين سمنڊ کين ٻوڙي نه ڇڏي. (يعني سدائين لاءِ آهي) ۽ جڏهن به نبي ﷺ پنهنجي مدد لاءِ کين سڏيندا ته انهن کي اچڻو پوندو."<sup>(2)</sup>

اها پهرين فوجي مهه هئي، جنهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ نڪتا هئا ۽ پندرهن ڏينهن مديني کان ٻاهر رهي موتيا هئا ۽ حضرت امير حمزه رضی اللہ عنہ جن ان مهه جو علمبردار هو.

#### 5. غزوه بُواط: - (ربيع الاول سنه 2 هه سيپٽمبر 623ع)

هن مهه ۾ پاڻ سڳورا ﷺ به سو صحابه سڳورا ساڻ وٺي نڪتا. مقصد قريشن جي هڪ قافلي جي خبر لهڻ هو، جنهن ۾ اميه بن خلف سميت قريشن جا هڪ سو ماڻهو ۽ اڍائي هزار اٿ هئا. پاڻ سڳورا ﷺ "رضوا" ويجهو هڪ جڳهه "بُواط"<sup>(3)</sup> تائين ويا پر ڪابه جهڙپ ڪانه ٿي.

<sup>1</sup> - ودان، "و" تي زبر ۽ "د" تي شد سان، مڪي ۽ مديني وچ ۾ هڪ جڳهه جو نالو. اهو رايو کان مديني ويندي 29 ميلن جي مفاصلي تي آهي. ابواء، ودان جي ويجهو ئي هڪ جڳهه جو نالو آهي.

<sup>2</sup> - المواهب اللدنية (75/1) زرقانيءَ جي شرح سان.

<sup>3</sup> - بُواط، ب تي پيش سان ۽ رضوي، جُهينه جي جابلو سلسلي جا ٻه جبل آهن. جيڪي اصل ۾ هڪ ئي جبل جون ٻه شاخون آهن. اهي مڪي کان شام وڃڻ واري رستي سان ڳنڍيل آهن ۽ مديني کان 48 ميل پري آهن.

### 6. غزوه سفوان:- (ربيع الاول سنه 2 هـ، سيپٽمبر 623ع)

هن غزوي جو ڪارڻ اهو هو ته ڪرز بن جابر فهريءَ مشرڪن جي هڪ ننڍڙي جٽي سان مديني جي چراگاهه تي حملو ڪيو ۽ ڪجهه وهڻ ڪاهي ويو. پاڻ سڳورا ﷺ ستر صحابه ڪرام سان گڏ سندن پٺيان لڳا، پر ڪرز ۽ سندس ساٿاري نڪري ويا ۽ پاڻ سڳورا ﷺ بنا ڪنهن ٽڪراءَ جي موٽي آيا. هن غزوي کي ڪي ماڻهو بدر واري پهرين جنگ به چون ٿا.

هن غزوي دوران مديني جو امير زيد بن حارثه رضي الله عنه کي مقرر ڪيو ويو. جهنڊو اچو هو ۽ علمبردار حضرت علي رضي الله عنه هو.

### 7. غزوه ذي العُشيرة:- (جماد الاول ۽ جماد الاخر سنه 2 هـ، نومبر ۽ ڊسمبر 623ع)

هن مهڙ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان ڏيڍ يا ٻه سؤ مهاجر ساڻ هئا، پر پاڻ سڳورن ﷺ ڪنهن کي پاڻ سان هلڻ لاءِ زور نه ڀريو هو. سواريءَ لاءِ رڳو ٽيهه اٺ هئا. ان ڪري ماڻهو واري واري سان سوار ٿيندا هئا. هن مهڙ جو مقصد قريش جي هڪ قافلي تائين پهچڻ هو، جيڪو شام ڏانهن وڃي رهيو هو. پتو پيو هو ته اهو مڪي کان نڪري چڪو آهي. هن قافلي ۾ قريش وٽ ڪافي مال متاع هو. پاڻ سڳورا ﷺ ان کي ڳولهيندا ذوالعُشيرة (1) تائين پهتا پر قافلو ڪافي ڏينهن اڳ نڪري چڪو هو. هي اهو ئي قافلو هو، جنهن کي شام کان واپس ٿيڻ تي پاڻ سڳورن ﷺ گرفتار ڪرڻ چاهيو پر قافلو نڪري ويو ۽ ان ڪري بدر واري جنگ لڳي.

ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته هن مهڙ تي پاڻ سڳورا ﷺ جمادي الاول جي آخر ۾ نڪتا هئا. ۽ جمادي الآخر ۾ موٽيا هئا. شايد اهو ئي ڪارڻ آهي جو هن غزوي جي مهيني جي تعين ۾ سيرت نگارن جو اختلاف آهي.

هن غزوي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ، بنو مدلج ۽ ان جي اتحادي بنو ضميره سان جنگ نه ڪرڻ جو ٺاه ڪيو.

سفر جي ڏينهن ۾ مديني جي سربراهيءَ جو ڪم ابو سلمه بن الاسد مخزومي رضي الله عنه سرانجام ڏنو. هن پيڙي به جهنڊو اچو هو ۽ علمبرداري حضرت حمزة رضي الله عنه جن ڪري رهيا هئا.

### 8. نخله وارو سريو:- (رجب سنه 2 هـ، جنوري 624ع)

هن مهڙ تي پاڻ سڳورن ﷺ حضرت عبدالله بن جحش رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ ٻارنهن مهاجرن جو هڪ جتو روانو ڪيو. بن ماڻهن جي سواريءَ لاءِ هڪ هڪ اٺ هو، جنهن تي واري واري

<sup>1</sup> - عشيرو، ع تي پيش ۽ ش تي زير. هن کي عُشيرة ۽ عسيروه به چيو ويو آهي. ينبوع جي ويجھو هڪ جڳھ جو نالو آهي.



سان سوار ٿيندا هئا. جتي جي اڳواڻ کي پاڻ سڳورن ﷺ هڪ لکت ڏني هئي ۽ هدايت ڪئي هئي ته ٻه ڏينهن سفر ڪرڻ کانپوءِ ئي ان کي کولي ڏسي. تنهنڪري ٻن ڏينهن کانپوءِ حضرت عبدالله ﷺ لکت کولي ڏني ته ان ۾ لکيل هو ته "جڏهن توهان هيءَ لکت ڏسو ته اڳتي وڌندا وڃي مڪي ۽ طائف جي وچ ۾ نخل ۾ پڙاءُ ڪريو ۽ اتي قريش جي هڪ قافلي لاءِ گهات هڻي ويهو ۽ اسان لاءِ ان جي خبر وٺي اچو." انهن "سمع و طاعت" چيو ۽ پنهنجن ساٿين کي اطلاع ڏئي فرمايو ته آئون ڪنهن کي به زور نٿو پريان. جنهن کي شهادت جو شوق هجي، اهو هلي ۽ جنهن کي موت ناگوار لڳي اهو واپس هليو وڃي، باقي آئون هر حال ۾ اڳتي ويندس. ان تي سڀ ساٿي اتي سڏا ٿيا ۽ منزل مقصود ڏانهن هلي پيا. رستي ۾ سعد بن ابي وقاص رضی اللہ عنہ ۽ عتبہ بن غزوان رضی اللہ عنہ جو اٺ وڃائجي ويو، جنهن تي اهي ٻئي سڳورا سفر ڪري رهيا هئا. ان ڪري اهي ٻئي پنڀني رهجي ويا.

حضرت عبدالله بن جحش رضی اللہ عنہ طويل سفر ڪري اچي نخل ۾ منزل ڪئي. اتان قريش جو هڪ قافلو لنگهيو، جيڪو ڪشمش، چمڙو ۽ ٻيو واپار جو سامان کڻي پئي ويو. قافلي ۾ عبدالله بن مغيره جا ٻه پٽ عثمان ۽ نوفل ۽ مغيره جا غلام عمرو بن حزمي ۽ حڪيم بن كيسان هئا. مسلمانن پاڻ ۾ صلاح ڪئي ته ڇا ڪيو وڃي جو اڄ حرام مهيني رجب جو آخري ڏينهن آهي. جي وڙهون ٿا ته حرام مهيني جي بي حرمتي ٿي ٿئي ۽ رات ترسون ٿا ته اهي حرم جي حدن ۾ داخل ٿي ويندا. ان کانپوءِ سڀني اها راءِ ڏني ته حملو ڪيو وڃي. پوءِ هڪ چڻي عمرو بن حزميءَ کي تير هنيو ۽ ان کي پورو ڪري ڇڏيو. ٻين مان عثمان ۽ حڪيم گرفتار ڪيا ويا، باقي نوفل ڀڄي ويو. ان کانپوءِ اهي، ٻنهي قيدين ۽ قافلي جي سامان سان مديني پهتا. انهن غنيمت جي مال مان خمس (پنجون حصو) به ڪڍي ورتو.<sup>(1)</sup> اهو اسلامي تاريخ جو پهريون خمس، پهريون مقتول ۽ پهريان باندي هئا.

پاڻ سڳورن ﷺ سندن ان حرڪت تي باز پرس ڪئي ۽ فرمايو ته: توهان کي حرام مهيني ۾ جنگ ڪرڻ جو حڪم نه ڏنو ويو هو ۽ پوءِ قافلي جي سامان ۽ قيدين جي معاملي کي في الحال جيئن جو ٿيڻ ڇڏي ڏنائون.

هوڏانهن ان حادثي سان مشرڪن کي اها واويلا ڪرڻ جو وجهه ملي ويو ته الله جي منع ڪيل مهيني کي مسلمانن حلال ڪري ڇڏيو، پوءِ ته جيترا هئا وات، اوتريون هيون ڳالهيون. نيٺ الله وحيءَ ذريعي سندن ڀول ڪوليو ۽ ٻڌايو ته مشرڪ جيڪي ڪن پيا اهو مسلمانن جي حرڪت کان گهڻو وڏو ڏوهه آهي. ارشاد ٿيو ته:

<sup>1</sup> - سيرت نگار اهو ٻڌائين ٿا پر ان ۾ مونجهارو اهو آهي ته خمس ڪڍڻ جو حڪم بدر جي جنگ مهل لٿو. ان حڪم لهڻ جي سبب جو جيڪو تفصيل تفسيرن ۾ آيل آهي، ان مان پتو پوي ٿو ته ان کان اڳ مسلمان خمس جي حڪم کان اڻ ڄاڻ هئا.

﴿يَسْأَلُونَكَ عَنِ الشَّهْرِ الْحَرَامِ قِتَالٍ فِيهِ قُلْ قِتَالٌ فِيهِ كَبِيرٌ وَصَدٌّ عَن سَبِيلِ اللَّهِ وَكُفْرٌ بِهِ وَالْمَسْجِدِ الْحَرَامِ وَإِخْرَاجُ أَهْلِهِ مِنْهُ أَكْبَرُ عِنْدَ اللَّهِ وَالْفِتْنَةُ أَكْبَرُ مِنَ الْقَتْلِ...﴾ (217) ﴿البقرة﴾

” (اي پيغمبر) توکان تعظيم وارن مهينن ۾ وڙهڻ بابت پڇن ٿا. چئو ته منجهن ويڙه ڪرڻ وڏو گناهه آهي ۽ الله جي وات کان جهلڻ ۽ الله کي نه مڃڻ ۽ تعظيم واري مسجد کان روڪڻ ۽ ان ۾ رهڻ وارن کي منجهانس لوتڻ الله وٽ (ان کان) تمام وڏو گناهه آهي ۽ فتنو (يعني شرڪ) خون ڪرڻ کان بلڪل وڏو ڏوهه آهي.

ان وحيءَ اها وضاحت ڪري ڇڏي ته وڙهڻ وارن مسلمانن جي سيرت بابت مشرڪن جيڪا واويلا کڻي مڃائي آهي، اها اجائي آهي. ڇو ته قريشن، مسلمانن سان لڙائي ۾ ۽ انهن تي ڏاڍا ۽ ڏم ڪرڻ ۾ سڀ حرمتون پامال ڪري ڇڏيو هيون. ڇا جڏهن هجرت ڪرڻ وارن مسلمانن کان الهه تلهه قريو ويو ۽ پيغمبر ﷺ کي قتل ڪرڻ جو فيصلو ڪيو ويو ته اهو واقعو حرمت واري شهر (مڪي) کان ٻاهر ٿيو هو؟ پوءِ ڇو هاڻي انهن کي حرمت جو تقدس ياد اچي ويو. يقينن مشرڪن جي پرويگنڊه جو اهو طوفان کليل بيحيائي ۽ بيشرمي هو.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ٻنهي قيدين کي آزاد ڪيو ۽ مقتولن جي وارثن کي خون بها پري ڏنو.<sup>(1)</sup>

اهي آهن بدر جي جنگ کان اڳ جا سر يا ۽ غزه. انهن مان ڪنهن ۾ به ڦرلٽ ۽ رتوچاڻ نه ٿي هئي، جيستائين ڪرز بن جابر فهري جي اڳواڻيءَ ۾ ائين نه ٿيو. ان ڪري چئي سگهجي ٿو ته ان جي شروعات به مشرڪن ڪئي. جڏهن ته ان کان اڳي به هو هر طرح جون ڏاڍايون ڪري چڪا هئا. هوڏانهن عبدالله بن جحش رضي الله عنه جي سريي جي واقعن کانپوءِ مشرڪن جو ڊپ حقيقت بڻجي ويو ۽ سندن آڏو هڪ سڄي پڇي خطري جي روپ ۾ ظاهر ٿيو. کين جنهن چار ۾ ڦاسڻ جو ڊپ هو، ان ۾ هاڻي هو سڄ پڇ ڦاسي پيا هئا. کين پتو پئجي چڪو هو ته مديني جي قيادت وٽ ڏاهپ آهي ۽ سندن هڪ هڪ واپاري نقل ۽ چرپر تي نظر رکي ٿي. مسلمان گهرن ته ٿي سؤ ميلن جو فاصلو طءُ ڪري سندن علائقي ۾ اچي کين ماري ڪٽي سگهن ٿا، قيد ڪري سگهن ٿا، الهه تلهه ڦري سگهن ٿا ۽ اهو سڀ ڪجهه ڪري صحيح سلامت واپس موٽي سگهن ٿا. کين سمجهه ۾ اچي ويو هو ته سندن شام سان واپاري ناتا هاڻي لاڳيتو خطري ۾ رهندا پر پوءِ به اهي بيوقوفي ڪرڻ کان نه مڙيا ۽ جُهين ۽ بنو ضميره سان صلح صفائي ڪرڻ بدران پنهنجي ڪاوڙ ۽ ڪروڙ جي جوش ۾ دشمني

<sup>1</sup> - انهن سرين ۽ غزون جو تفصيل هيٺين ڪتابن مان ورتل آهي. زاد المعاد (2/83، 85) ابن هشام (1/591، 605) رحمة للعالمين (1/115، 116، 215/2، 216، 468، 470) انهن ڪتابن ۾ انهن سرين ۽ غزون جي ترتيب ۽ ان ۾ حصو وٺندڙن جي تعداد بابت اختلاف آهن. مون علامه ابن قير ۽ علامه منصور پوريءَ جي تحقيق تي اعتماد ڪيو آهي.

ڪرڻ ۾ اجا به اڳتي وڌي ويا ۽ سندن اڪابرڻ پنهنجي ان ڌمڪيءَ تي عمل ڪرڻ جو فيصلو ڪيو ته مسلمانن جي گهرن ۾ گهڙي کين پورو ڪيو وڃي. اها ئي ڪاوڙ کين بدر جي ميدان ۾ وٺي آئي. باقي رهيا مسلمان ته الله تعاليٰ حضرت عبد الله بن جحش رضي الله عنه واري سريي کانپوءِ شعبان سنه 2 هـ ۾ انهن تي جنگ فرض ڪري ڇڏي ۽ ان سلسلي ۾ ڪيتريون ئي واضح آيتون لٿيون. ارشاد ٿيو ته:

﴿وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ (190) وَقَاتِلُوهُمْ حَيْثُ تَقْتُلُوهُمْ وَأَخْرَجُوهُمْ مِنْ حَيْثُ أَخْرَجَكُمْ وَالْفِتْنَةُ أَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ وَلَا تُقَاتِلُوهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتَّى يُقَاتِلَكُمْ فِيهِ فَإِنْ قَاتَلَكُمْ فَاقْتُلُوهُمْ كَذَلِكَ جَزَاءُ الْكَافِرِينَ (191) فَإِنْ انْتَهَوْا فَإِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ رَحِيمٌ (192) وَقَاتِلُوهُمْ حَتَّى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَيَكُونَ الدِّينُ لِلَّهِ فَإِنْ انْتَهَوْا فَلَا عُدْوَانَ إِلَّا عَلَى الظَّالِمِينَ (193)﴾ (البقرة)

” جيڪي اوهان سان وڙهن تن سان الله جي وات ۾ وڙهو ۽ حد کان نه لنگهو ڇو ته الله حد اورانگهڻ وارن کي پيارو نه رکندو آهي ۽ جتي کين ڏسو، اتي کين ڪهو ۽ جتان اوهان کي لوڏيائون اتان کين لوڏيو ۽ فتنو (شرڪ) ويڙهه کان ڏاڍو (بچڙو) آهي ۽ اوهين تعظيم واري مسجد وٽ (ايستائين) نه وڙهو، جيستائين منجهس اوهان سان نه وڙهن، پوءِ جيڪڏهن اوهان سان وڙهن ته انهن کي ماريو. ڪافرن جي سزا ائين آهي ۽ جيڪڏهن بس ڪن (ته اوهان به بس ڪريو) ڇو ته الله بخشڻهار مهربان آهي ۽ تيسٽائين انهن سان وڙهو، جيستائين فتنو (شرڪ) نه رهي ۽ خاص الله جو دين قائم ٿئي. پوءِ جيڪڏهن بس ڪن ته ظالمن کانسواءِ ڪنهن تي به وڌيڪ هلت ڪرڻ نه جڳائي.

ان کانپوءِ جلد ئي ٻئي قسم جون آيتون لٿيون، جن ۾ جنگ جو طريقو ٻڌايل آهي ۽ ان جي ترغيب ڏني وئي آهي ۽ ڪجهه حڪم به ڏنا ويا هئا. جيئن ارشاد آهي ته:

﴿فَإِذَا لَقِيتُمُ الَّذِينَ كَفَرُوا فَضَرْبَ الرِّقَابِ حَتَّى إِذَا أَنتَحَمْتُمُوهُمْ فَشُدُّوا الْوَتَاقَ فَإِمَّا مَنَّا بَعْدُ وَإِمَّا فِدَاءً حَتَّى تَضَعَ الْحَرْبُ أَوْزَارَهَا ذَلِكَ وَلَوْ يَشَاءُ اللَّهُ لَانتَصَرَ مِنْهُمْ وَلَكِنْ لِيَبْلُوَ بَعْضُكُمْ بِبَعْضٍ وَالَّذِينَ قُتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ فَلَنْ يُضِلَّ أَعْمَالَهُمْ (4) سَيَهْدِيهِمْ وَيُصَلِّحُ بِأَلْهِمْ (5) وَيُدْخِلُهُمُ الْجَنَّةَ عَرَّفَهَا لَهُمْ (6) يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِن تَنصُرُوا اللَّهَ يَنْصُرْكُمْ وَيُثَبِّتْ أَقْدَامَكُمْ (7)﴾ (محمد)

” پوءِ جڏهن اوهين ڪافرن سان جنگ ڪريو تڏهن (انهن جون) گردنون ڪٽيو تانجو جڏهن منجهن گهڻو رتوچاڻ ڪريو تڏهن مضبوطيءَ سان ٻڌو وري (قيد کانپوءِ) يا ته احسان ڪرڻ سان ڇڏڻ يا ڏنڊ وٺڻ (گهرجي) تانجو جنگ پنهنجا هٿيار رکي. اهو (حڪم) آهي ۽ جيڪڏهن الله گهري ها ته ڪائن بدلو وٺي ها پر (گهرندو آهي) ته اوهان مان ڪن کي ڪن سان پرکي ۽ جيڪي الله جي وات ۾ قتل ٿيا، تن جا عمل ڪڏهن ڇٽ نه ڪندو. کين سڌو رستو ڏيکاريندو ۽ سندن حال سڌاريندو ۽ کين انهيءَ

بهشت ۾ داخل ڪندو، جيڪو کين ڄاڻايو اٿس. اي ايمان وارو! جيڪڏهن اوهان الله (جي دين) جي مدد ڪندؤ ته (الله) اوهانجي مدد ڪندو ۽ اوهان جا قدم محڪم ڪندو.

ان کان پوءِ الله تعاليٰ انهن ماڻهن جي مذمت ڪئي، جن جون دليون جنگ جو حڪم ٻڌي ڪنڀڻ لڳيون هيون. ارشاد ٿيو ته:

﴿...فَإِذَا أُنزِلَتْ سُورَةٌ مُحْكَمَةٌ وَذُكِرَ فِيهَا الْقِتَالُ رَأَيْتَ الَّذِينَ فِي قُلُوبِهِمْ مَرَضٌ يَنْظُرُونَ إِلَيْكَ نَظَرَ الْمَعْشِيِّ عَلَيْهِ مِنَ الْمَوْتِ...﴾ (20) ﴿محمد﴾

”پوءِ جڏهن چتي معنيٰ واري سورة لائي وڃي ۽ ان ۾ جهاد جو ذڪر ڪيو وڃي ته جن جي دليين ۾ بيماري آهي، تن کي ڏسندين ته توڏانهن ان (ماڻهوءَ) جي نهارڻ وانگر ڏسندا، جنهن کي موت جي سڪرات کان بيهوشي پهتي هجي. پوءِ انهن لاءِ خرابي آهي.“

حقيقت اها آهي ته جنگ جي ترغيب ڏيڻ ۽ ان کي فرض ڪرڻ ۽ ان جي تياريءَ جو حڪم ڪرڻ، حالتن جي گهرج موجب هو. جيڪڏهن حالتن تي گهري نظر رکندڙ ڪو سپهه سالار هجي ها ته اهو به پنهنجي فوج کي هر طرح جي هنگامي حالتن جو تڪڙو مقابلو ڪرڻ لاءِ تيار رهڻ جو حڪم ڪري ها، پوءِ هو عظيم پالڻهار ڇو نه اهڙو حڪم ڏي، جيڪو هر کليل ۽ ڳجهي ڳالهه جو ڄاڻو آهي. سچ پچو ته حالتون حق ۽ باطل جي وچ ۾ هڪ وڏي رتوڇاڻ ۽ فيصلو ڪندڙ ٽڪراءَ جي تقاضا ڪري رهيون هيون. خاص طور تي عبدالله بن جحش رضي الله عنه واري سربي کانپوءِ، جيڪو مشرڪن جي غيرت ۽ حميت لاءِ وڏو ڌڪ هو. جنهن سندن اندر ساڙي ڇڏيو هو.

جنگي حڪمن وارين آيتن مان ڀتو پيو ٿي ته رتوڇاڻ ٿيڻ جي مهل ويجهي آهي ۽ ان ۾ آخري فتح مسلمانن جي ئي ٿيندي. توهان هن ڳالهه تي غور ڪريو ته الله تعاليٰ ڪيئن نه مسلمانن کي حڪم ڏنو ته جتان مشرڪن اوهان کي ڪڍيو آهي، اتان کين ڪڍي ڇڏيو. پوءِ ڪيئن ته قيدين کي ٻڌڻ ۽ مخالفن کي ڪچلي جنگ جي پڇاڻي ڪرڻ جي هدايت ڏني آهي، جيڪا هڪ غالب ۽ فاتح فوج سان تعلق رکي ٿي. اهو اشارو هو ته نيٺ مسلمان حاوي ٿيندا پر اها ڳالهه اشارن ۾ ٻڌائي وئي ته جيئن جيڪو ماڻهو الله جي راهه ۾ جهاد ڪرڻ لاءِ جيتري گرمجوشي رکي ٿو، ان جو عملي مظاهرو به ڪري سگهي.

انهن ئي ڏينهن ۾ شعبان سنه 3 هـ بمطابق فيبروري 624ع ۾ الله تعاليٰ حڪم ڏنو ته بيت المقدس بدران ڪعبه الله کي قبلو بڻايو وڃي ۽ نماز مهل اوڏانهن منهن ڪيو وڃي. ان جو فائدو اهو ٿيو ته ڪمزور ۽ منافق يهودي جيڪي رڳو ڏقيير پيدا ڪرڻ لاءِ مسلمانن جي صفتن ۾ داخل ٿيا هئا، سي کلي سامهون اچي ويا ۽ مسلمانن کان ڌار ٿي پنهنجي اصل حالت تي موٽي ويا ۽ ان طرح مسلمانن جون صفون ڳچ غدارن کان پاڪ ٿي ويون.

قبلو متجڻ ۾ به هڪ لطيف اشارو موجود هو ته هاڻي هڪ نئون دور شروع ٿيڻ وارو آهي، جيڪو نئين قبلي تي مسلمانن جي قبضي کان اڳ ختم نه ٿيندو. ڇو ته اها اچرج جوڳي ڳالهه ٿيندي ته ڪنهن قوم جو قبلو ان جي ويرين جي قبضي ۾ هجي ۽ جي آهي ته پوءِ ضروري آهي ته ڪنهن نه ڪنهن ڏينهن ان کي آزاد ڪيو وڃي.

انهن حڪمن ۽ اشارن کانپوءِ مسلمانن ۾ خوشيءَ جي لهر پيدا ٿي وئي ۽ جهاد في سبيل الله جو جذبو ۽ دشمنن سان هڪ هڪاڻي ڪرڻ جي خواهش وڌي وئي.

\*\_\*\_\*

## بدر واري جنگ اسلام جي پهرين جنگ

غزوي جو ڪارڻ:- غزوه عُشيرة جي ذڪر ۾ اسين ٻڌائي آيا آهيون ته قريشن جو هڪ قافلو مڪي کان شام ويندي پاڻ سڳورن ﷺ جي گرفت کان بچي نڪتو هو. اهو ئي قافلو جڏهن شام کان موٽي مڪي پهچڻ وارو هو ته پاڻ سڳورن ﷺ طلح بن عبیدالله ﷺ ۽ سعید بن زيد ﷺ کي ان جي خبر لهڻ لاءِ اتر پاسي موڪليو. اهي ٻئي صحابه سڳورا حوراء تائين ويا ۽ اتي ترسي پيا. جڏهن ابو سفيان قافلو وٺي اتان لنگهيو ته اهي تڪڙا تڪڙا مديني موٽيا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي خبر ڏنائون.

هن قافلي ۾ مڪي وارن جي وڏي ملڪيت هئي. يعني هڪ هزار اٺ، جن تي گهٽ ۾ گهٽ پنجاھ هزار دينارن (ٻه سؤ ساڍا ٻاھڻ ڪلو سون جيترو) جي ماليت جيڪو سامان رکيل هو، جنهن جي حفاظت رڳو چاليھ چٽا ڪري رهيا هئا.

مديني وارن جي لاءِ اهو ڏاڍو سٺو وجهه هو، جڏهن ته مڪي وارن لاءِ ايڏو مال قرجي وڃڻ، وڏي فوجي، سياسي ۽ اقتصادي مار جي حيثيت رکي ٿي. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ مسلمانن ۾ پڙهو ڏياريو ته قريشن جو قافلو مال ۽ دولت کڻيو پيو اچي، ان ڪري نڪري پئو. ٿي سگهي ٿو ته الله تعاليٰ اهو غنيمت طور اوهانجي حوالي ڪري.

پر پاڻ سڳورن ﷺ ڪنهن تي به هلڻ لاءِ زور نه ڀريو هو. بلڪ ماڻهن جي مرضيءَ تي ڇڏي ڏنو. چوڻه هن اعلان وقت اها توقع نه هئي ته ڪو قافلي بدران قريشن جي لشڪر سان بدر جي ميدان ۾ زوردار تڪراءِ ٿي پوندو. اهو ئي سبب هو جو ڳچ صحابه سڳورا مديني ۾ ئي ترسي پيا. سندن خيال هو ته پاڻ سڳورن ﷺ جو اهو سفر، پاڻ سڳورن ﷺ جي ٻين فوجي مهمن کان مختلف نه هوندو ۽ ان لاءِ هن غزوي ۾ شريڪ نه ٿيڻ وارن کان پڇا ڳاچا به ڪانه ڪئي وئي.

اسلامي لشڪر جو تعداد ۽ جتن جي ورڇ:- پاڻ سڳورا ﷺ هلڻ لاءِ تيار ٿيا ته ساڻن گڏ ٽي سؤ کان ڪجهه وڌيڪ ماڻهو هئا. (يعني 313 يا 314 يا 317) جن ۾ 82 يا 83 يا 86 مهاجر هئا ۽ ٻيا انصار. انصارن مان 61 اوس قبيلي مان هئا ۽ 170 خزرج قبيلي مان. ان لشڪر، غزوي لاءِ ڪا خاص تياري نه ڪئي هئي. سڄي لشڪر ۾ رڳو ٻه گهوڙا هئا. (هڪ حضرت زبير بن عوام ﷺ جو ۽ ٻيو حضرت مقداد بن اسود ڪندي ﷺ جو) ستر اٺ، جن مان هر هڪ تي ٻه يا ٽي ماڻهو واري

واري سان چڙهيا ٿي. هڪ اٺ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت علي ۽ حضرت مرثد بن ابي مرثد غنوي رضی اللہ عنہ جي حصي ۾ آيو هو. جنهن تي ٽئي سڳورا واري واري سان سوار ٿيا ٿي.

مديني جي انتظام ۽ نماز پڙهائڻ جو ڪم پهرين حضرت ابن ام مڪتوم رضی اللہ عنہ جي سپرد ڪيو ويو، پر جڏهن پاڻ سڳورا ”روحاء“ تائين پهتا ته پاڻ سڳورن ﷺ حضرت ابو لبا به بن عبدالمنذر رضی اللہ عنہ کي مديني جو منتظم ڪري واپس موڪليو. لشڪر جي تنظيم هن ريت ڪئي وئي جو هڪ جتو مهاجرن جو ٺاهيو ويو ۽ هڪ انصارن جو. مهاجرن جو جهنڊو حضرت علي رضی اللہ عنہ کي ڏنو ويو ۽ انصارن جو حضرت سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ کي ۽ سالار جي اچي جهنڊي جو علمبردار حضرت مصعب بن عمير عبدري رضی اللہ عنہ کي بڻايو ويو. ميمنه جو سالار حضرت زبير بن العوام رضی اللہ عنہ کي مقرر ڪيو ويو ۽ ميسره جو سالار حضرت مقداد بن الاسود رضی اللہ عنہ کي ڪيو ويو. اسان اڳيئي ٻڌائي آيا آهيون ته سڄي لشڪر ۾ رڳو اهي ئي ٻه بزرگ شهسوار هئا. ساقه جي ڪمان حضرت قيس بن ابي صعصعہ رضی اللہ عنہ جي حوالي ڪئي وئي ۽ سڄي لشڪر جي سپهه سالاري پاڻ سڳورن ﷺ پاڻ سنڀالي.

**بدر ڏانهن اسلامي لشڪر جو وڌڻ:-** پاڻ سڳورا ﷺ اٺپوري لشڪر کي وٺي مديني جي موٽ کان نڪري مڪي واري عام رستي تي هلندي بئر رواح (روحاء وارو ڪوهه) تائين پهتا. پوءِ اتان وڌندي مڪي جو رستو ڪاٻي پاسي ڇڏيندي، ساڄي پاسي کان ٿورو هتي نازيه وٽ پهتا. (سندن منزل بدر جو ميدان هو) پوءِ نازيه جي هڪ پاسي کان لنگهي رحقان جي وادي پار ڪئي. اها نازيه ۽ صفراء واري لنگهه جي وچ ۾ هڪ وادي آهي. ان کانپوءِ صفراء واري لنگهه مان گذريا. پوءِ اتان ٽپي صفراء جي واديءَ جي ويجهو وڃي پهتا ۽ اتان جُهَيْنَه قبيلي جي ٻن ماڻهن يعني بسيس بن عمر ۽ عدي بن ابي الزغباء کي قافلي جي خبر لهڻ لاءِ بدر موڪليائون.

**مڪي ۾ خطري جو اعلان:-** ٻئي پاسي قافلي جي صورتحال اها هئي جو ابوسفينان، جيڪو نگران هو. اهو ڏاڍو محتاط هو. کيس خبر هئي ته مڪي جو رستو خطرن سان ڀريل آهي. ان ڪري هو حالتن جي لاڳيتي خبرچار وٺندو پئي آيو ۽ جن قافلن سان مليو ٿي، تن کان ڄاڻ ورتائين ٿي. تنهنڪري کيس جلد ئي خبر پئي ته محمد ﷺ پنهنجن ساٿين کي قافلي تي حملي جي دعوت ڏني آهي. تنهنڪري هن هڪدم ضمضر بن عمرو غفاريءَ کي ڏوڪڙ ڏئي مڪي موڪليو ته اتي وڃي قافلي جي سنڀال لاءِ قريشن ۾ عام پڙهو ڏياري. ضمضر ڏاڍو تڪڙو مڪي پهتو ۽ مڪي جي واديءَ ۾ پهچي اٺ کي بدصورت بڻائي ڪجاوو اٿو ڪري. قميص ڦاڙي ان اٺ تي چڙهي واکا ڪيائين ته "اي قريشيو! قافلو... قافلو... توهانجو مال جيڪو ابوسفينان سان گڏ آهي، ان تي محمد ﷺ ۽ ان جا ساٿي هلاڻ ڪرڻ پيا اچن. مونکي پڪ ڪانهي ته توهان کين رسي سگهندا. مدد... مدد...".

**مڪي وارن جي جنگ لاءِ تياري:-** اهي واکا ٻڌي هر طرف کان ماڻهو ڊوڙي پيا. چوڻ لڳا ته محمد ﷺ ۽ ان جا ساٿي سمجهن ٿا ته هي قافلو به ابن حزمي جي قافلي جهڙو آهي؟ نه هرگز نه. الله جو قسم! انهن کي هاڻ پتو پوندو ته اسانجو معاملو ڪجهه ٻيو آهي. ان کانپوءِ سڄي مڪي ۾ رڳو ٻن قسمن جا ماڻهو هئا. يا ته ماڻهو پاڻ جنگ لاءِ نڪري رهيا هئا يا وري پنهنجي جاءِ تي ڪو ماڻهو موڪلي رهيا هئا. ان طرح جهڙوڪر سڀئي نڪري رهيا هئا. خاص طور تي مڪي جي سردارن مان ڪوبه پنٿي نه هئيو. رڳو ابولهب پنهنجي جڳهه تي هڪ قرضدار کي موڪليو. پرپاسي جي قبيلن جي ماڻهن کي به قريشن ڀرتي ڪيو ۽ قريشن جي پنهنجي قبيلن مان سواءِ بنو عديءَ جي ڪوبه پٺيان نه رهيو. بنو عديءَ جي ڪنهن به ماڻهوءَ هن جنگ ۾ شرڪت نه ڪئي.

**مڪي جي لشڪر جو تعداد:-** پهرين ته مڪي جي لشڪر ۾ تيرنهن سو ڇٽا هئا، جن وٽ هڪ سو گهوڙا ۽ ڇهه سو زرهون هيون. ان به گهڻا هئا پر نيڪ تعداد معلوم ڪونهي. لشڪر جو سپهه سالار ابوجهل بن هشام هو. قريشن جا نو معزز ماڻهو رسد جا ذميدار هئا. هڪ ڏينهن نو ۽ هڪ ڏينهن ڏهه اٺ ڪهندا هئا.

**بنوبڪر جي قبيلن جو مسئلو:-** مڪي جو لشڪر هلڻ لاءِ تيار ٿيو ته کين ياد آيو ته بنو بڪر جي قبيلن سان سندن دشمني ۽ جنگ هلي رهي آهي. ان ڪري کين ڊپ ٿيو ته متان اهي قبيلن پٺيان حملو نه ڪن ۽ ان طرح هو دشمنن جي وچ ۾ ڦاسي پون. اهو خيال قريشن کي جنگ جي ارادي کان روڪي وجهي ها پر ان مهل ابليس لعنتي، بنوڪنانه جي سردار سراقه بن مالڪ بن جعشم مدلجي جي شڪل ۾ ظاهر ٿيو ۽ چيائين ته: "آئون توهانجو پانهن پيلي آهيان ۽ ان ڳالهه جي ضمانت توڙي ڏيان ته بنوڪنانه توهانجي پٺيان ڪا اڻوڻت نه ڪندا."

**مڪي جي لشڪر جي روانگي:-** هن ضمانت ملڻ کانپوءِ مڪي وارا پنهنجن گهرن کان نڪري پيا ۽ مديني ڏانهن روانا ٿيا. الله تعاليٰ جي هن ارشاد مطابق ته "آڪڙجندي ۽ ماڻهن کي پنهنجو شان ڏيکاريندي." جيئن پاڻ سڳورن ﷺ جو ارشاد آهي ته: "پنهنجي ڍال ۽ هٿيار کڻي الله ۽ ان جي رسول تي ڪاوڙ ڪندي، بدلي جي باهه ۾ ورتل ۽ حميت ۽ غضب جي جذبي سان ڀريل. ان ڳالهه تي ڏند ڪرتيندي ته الله جي رسول ۽ سندس صحابين، مڪي وارن جي قافلي تي اک کڻڻ جي جرئت ڪيئن ڪئي؟" بهرحال اهي ڏاڍا تڪا اتر طرف بدر ڏانهن اچي رهيا هئا ۽ عسفان جي وادي ۽ قديد کان لنگهي جحفه پهتا ته ابوسفيان جو هڪ نئون نياپو پهتن، جنهن ۾ چيو ويو هو ته توهان پنهنجي



قافلي، پنهنجن ماڻهن ۽ مال جي حفاظت لاءِ نڪتا آهيو ۽ جيئن ته الله انهن سڀني کي بچائي ورتو آهي، تنهنڪري هاڻي موتي اچو.

**قافلو بچي نڪتو:** - ابوسفیان جي بچي نڪرڻ جو تفصيل هن ريت آهي ته هو شام جي واپاري لنگهه تان پئي هليو ۽ لاڳيتو جاج جوج رکندو آيو. هن خبرچار رکڻ جون ڪوششون به ٽڪڙيون ڪري ڇڏيون هيون. جڏهن هو بدر جي ويجهو پهتو ته هن قافلي کان اڳتي وڌي مجدي بن عمرو سان ملاقات ڪئي ۽ ان کان مديني جي لشڪر بابت پڇيو. مجديءَ چيو ته: "مون ڪوبه ڌاريون ماڻهو ته ڪونه ڏٺو باقي به سوار ڏٺا، جن دڙي وٽ پنهنجن اٺن کي ويهاريو پوءِ پنهنجي مشڪ ۾ پاڻي پري هليا ويا." ابوسفیان ٽڪڙو اتي پهتو ۽ سندن اٺن جو ليڏو ڪڍي پڇي ڏٺو ته ان مان ڪجهه جي ڪڙي نڪتي. ابوسفیان چيو ته: الله جو قسم! اهو يثرب وارن جو چارو آهي. ان کان پوءِ ترت قافلي ۾ پهتو ۽ ان کي اولهه پاسي ڪناري ڏانهن وٺي ويو ۽ بدر کان لنگهندڙ واپاري لنگهه کان کاڌي طرف هلڻ لڳو ۽ ان طرح قافلي کي مديني جي لشڪر کان بچائي ويو ۽ هڪدم مڪي جي لشڪر کي پنهنجي بچي وڃڻ جو ڄاڻ ڏيندي نياپو موڪليائين، جيڪو لشڪر کي جحفه ۾ مليو.

**مڪي جي لشڪر جو واپسيءَ جو ارادو ۽ پاڻ ۾ قوت پوڻ:** - اهو نياپو ٻڌي مڪي جي

لشڪر موٽڻ چاهيو پر ابوجهل اتي بيٺو ۽ ڏاڍي هٿ ۽ وڏائيءَ سان چيائين ته "الله جو قسم! بدر وڃي ٿي ڏينهون اتي رهڻ کان اڳ اسين ڪونه موٽنداسين. ان دوران اٺ ڪهنداسين، ماڻهن کي کاڌو ڪارائينداسين ۽ شراب پيارينداسين. ٻانهيون اسان لاءِ گانا ڳائينديون ۽ سڄو عربستان اسان جو ۽ اسان جي سفر جو حال ٻڌندو ۽ اهڙيءَ طرح سدائين لاءِ اسانجو ڏاڪو ڄمي ويندو."

ابوجهل جهڙي ٻئي شيطان اخنس بن شريق چيو ته: واپس موٽي هلو پر ماڻهن سندس ڳالهه نه مڃي. ان ڪري هو بنو زهراءَ وارن کي ساڻ وٺي موٽي ويو، ڇو ته اهو بنو زهراءَ جو حليف ۽ هن لشڪر ۾ سندن سردار هو. بنو زهراءَ وارن جو ڪل تعداد اٽڪل ٽي سو هو. سندن ڪوبه ماڻهو بدر جي جنگ ۾ موجود نه هو. بعد ۾ بنو زهراءَ وارن اخنس بن شريق جي ان فيصلو تي ڏاڍيون خوشيون ملهائون ۽ انهن جي دل ۾ سندس عزت وڌي وئي ۽ سدائين لاءِ سندس فرمانبرداري ڪندا رهيا.

بنو زهراءَ وانگر بنو هاشم به موٽڻ گهريو پر ابوجهل سختيءَ سان چيو ته: جيستائين اسين نه موٽنداسين تيستائين هي ٽولو اسان کان ڌار نه ٿيڻ ڪپي.

مطلب ته لشڪر پنهنجو سفر جاري رکيو. بنو زهراءَ جي موٽڻ کانپوءِ هاڻي سندن تعداد هڪ هزار وڃي بچيو هو ۽ سندن رخ بدر ڏانهن هو. بدر جي ويجهو پهچي هڪ دڙي جي پٺيان وڃي لٿا. اهو دڙو بدر جي ميدان جي ڏکڻ طرف هو.

**اسلامي لشڪر لاءِ نازڪ حالتون:**-- هوڏانهن خبرن پاڻ سڳورن ﷺ کي رستي ۾ ئي ذفران جي واديءَ ۾ قافلي ۽ لشڪر بابت ڄاڻ ڏني. پاڻ سڳورن ﷺ اهو اندازو ڪري ورتو ته هاڻي هڪ خوني ٽڪراءُ ٿيندو ۽ هاڻي همت ۽ مڙسيءَ کان ڪم وٺڻو پوندو. ڇو ته اها پڪي ڳالهه هئي ته قريشن جي لشڪر کي هن علائقي ۾ ائين گهمڻ ڦرڻ ڏنو ويو ته ان سان قريشن جي هاڪ ٿيندي ۽ سندن سياسي بالادستيءَ جو دائرو وڌي ويندو. مسلمانن جو آواز دٻجي ويندو ۽ ان کانپوءِ اسلام خلاف دل ۾ ڪينو رکندڙ جهڙو تهڙو به اسلام جي دعوت کي نقصان پهچائڻ لاءِ ميدان ۾ ٿي پوندو.

ان کانسواءِ ان ڳالهه جي به ضمانت ڪانه هئي ته مڪي وارن جو لشڪر مديني تي اڳرائي ڪري چڙهائي نه ڪندو ۽ هن ٽڪراءُ کي مديني جي حدن تائين پهچائي مسلمانن کي سندن گهرن ۾ گهڙي تباهه ۽ برباد ڪرڻ جي جسارت نه ڪندو. هاڻو! جي مديني جي لشڪر پاران ٿوري به سستي ڪئي وئي ته اهو ممڪن ٿي پوندي ۽ جي ائين نه به ٿيندو ته مسلمانن جي دهشت ۽ ساڪ ضرور خراب ٿيندي.

**مجلس شوري جي گڏجاڻي:**-- حالتن جي هن اوجھي ۽ ڊيڄاريندڙ تبديليءَ کي ڏسندي پاڻ

سڳورن ﷺ هڪ اعليٰ فوجي مجلس شوري سڏرائي. جنهن ۾ سامهون آيل حالتن جو ذڪر ڪري سالارن ۽ عام سپاهين کان صلاحون ورتيون. ان موقعي تي هڪ ٽولو خوني ٽڪراءُ جو ٻڌي ڪنبي ويو ۽ سندن دليون ڌڙڪڻ لڳيون. ان ٽولي بابت الله تعاليٰ فرمايو ته:

﴿كَمَا أَخْرَجَكَ رَبُّكَ مِنْ بَيْتِكَ بِالْحَقِّ وَإِنَّ فَرِيقًا مِنَ الْمُؤْمِنِينَ لَكَارِهُونَ (5) يُجَادِلُونَكَ فِي الْحَقِّ بَعْدَمَا تَبَيَّنَ كَأَنَّمَا يُسَاقُونَ إِلَى الْمَوْتِ وَهُمْ يَنْظُرُونَ (6)﴾ (الانفال)

” جيئن تنهنجي رب توکي تنهنجي گهر (مديني) مان سڄي تدبير لاءِ ٻاهر آندو ۽ بيشڪ مؤمنن منجهان هڪ ٽولي ضرور ناراض هئي. اهي سڄي ڳالهه بابت ان جي واضح ٿيڻ کان پوءِ (به) توسان گفتگو ڪندا رهيا ڇڻ ته اهي (اڪين سان) ڏسندي موت ڏانهن هڪليا وڃن ٿا.

پر جيستائين لشڪر جي مهتدارن جو تعلق هو ته حضرت ابوبڪر رضه اٿيو ۽ ڏاڍي سني ڳالهه ڪيائين. پوءِ حضرت عمر رضه اٿيو ۽ ان به چڱو ڳالهايو. پوءِ حضرت مقداد بن عمرو رضه اٿيو. ان هن طرح عرض ڪيو ته: ”يا رسول الله ﷺ! الله اوهان کي جيڪا راهه ڏيکاري آهي، ان تي هلندا هلو. اسان اوهان سان آهيون. الله جو قسم! ته اسين اوهان سان اها ڳالهه نه ڪنداسين جا بني اسرائيل. حضرت موسيٰ عليه السلام سان ڪئي هئي ته:

﴿فَاذْهَبْ أَنْتَ وَرَبُّكَ فَقَاتِلَا إِنَّا هَاهُنَا قَاعِدُونَ (24)﴾ (المائدة)

”تنهنڪري تون ۽ تنهنجو پالڻهار وڃي وڙهو بيشڪ اسين هتي (ئي) وينا آهيون.“  
 اسين ته اهو چوندا سين ته توهان ۽ توهان جو پالڻهار هلو ۽ وڙهو ۽ اسين به توهان سان  
 ڪلهو ڪلهي ۾ ملائي وڙهنداسين. ان هستيءَ جو قسم! جنهن توهان کي حق سان موڪليو آهي،  
 جيڪڏهن توهان اسان کي برڪ غماد تائين وٺي هلو ته اسين اتي به توهان سان گڏ رستي وارن سان  
 ويڙه ڪندا هلنداسين.“

پاڻ سڳورن ﷺ سندن تعريف ڪئي ۽ کين دعا ڪئي.

اهي ئي مهندار مهاجرن منجهان هئا، جن جو لشڪر ۾ ٿورو تعداد هو. جڏهن ته پاڻ سڳورن  
 ﷺ انصارن جي راءِ معلوم ڪرڻ چاهي ٿي ڇو ته لشڪر ۾ سندن گهڻائي هئي ۽ ٽڪراءَ جو اصل بار  
 انهن جي ئي ڪلهن تي پوڻ وارو هو. هونئن بيعت عقبه جي لحاظ کان انهن تي لازم نه هو ته مديني  
 کان ٻاهر نڪري جنگ ڪن. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ مٿين تنهي بزرگن جون ڳالهيون ٻڌي فرمايو  
 ته: ”پيا به ڪي مون کي صلاح ڏيو.“ ان جو مقصد انصارن کان صلاح پيڇڻ هو ۽ اها ڳالهه انصارن جي  
 مهندار ۽ علمبردار حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه سمجهي ورتي، تنهنڪري انهن عرض ڪيو ته: الله  
 جو قسم! ائين پيو لڳي ته اوهان اسان سان مخاطب آهيو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”هاڻو.“  
 تڏهن چيائين ته: ”اسان اوهان تي ايمان آندو آهي، اوهانجي تصديق ڪئي آهي ۽ اها  
 گواهي ڏني آهي ته توهان تي جيڪي ڪجهه لٿو آهي، سو سڀ حق آهي ۽ ان تي اسان توهان کي  
 فرمانبرداريءَ جو عهد ڏنو آهي. تنهنڪري يا رسول الله ﷺ! توهانجو جيڪو ارادو آهي، ان لاءِ اڳتي  
 وڌو. ان هستيءَ جو قسم جنهن توهان کي حق سان موڪليو آهي، جي توهان اسان کي ساڻ وٺي سمنڊ  
 ۾ ڪاهي پوڻ چاهيو ته ان ۾ به اسين گڏ هلنداسين. اسان جو هڪ ماڻهو به پنٿي نه هٽندو. اسان کي  
 اهڙو ڪوبه الڪو ڪونهي ته متان سپاڻي توهان سان گڏ دشمنن سان مهاڏو اٽڪائڻو پوي. اسين  
 جنگ جا ڪوڏيا آهيون ۽ ٿي سگهي ٿو ته الله اوهان کي اسان جا اهي جوهر ڏيکاري، جن سان اوهان  
 جون اکيون نري پون. بس اسان کي ساڻ وٺي هلو، الله تعاليٰ برڪت ڏيندو.“

هڪ روايت ۾ هيئن آهي ته حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ کي عرض ڪيو ته  
 شايد توهان کي انديشو آهي ته انصار پنهنجو اهو فرض ٿا سمجهن ته توهان جي مدد رڳو پنهنجي  
 علائقي ۾ ڪن. ان ڪري آئون انصارن پاران پيو ڳالهايان ۽ انهن پاران جواب پيو ڏيان ته توهان جتي  
 چاهيو هليا هلو، جنهن سان وڻيو تعلق رکو ۽ جنهن سان چاهيو ناتو توڙي ڇڏيو. اسان جي مال مان  
 جيڪو ڪپي کڻي وٺو ۽ جيڪو ڪپي اهو ڇڏي ڏيو ۽ ان معاملي ۾ جيڪو اوهان جو فيصلو هوندو، اهو  
 ئي اسان جو فيصلو هوندو. الله جو قسم! جي اوهان اڳتي وڌندي برڪ غماد تائين وڃو ته اسان به

اوهان سان گڏوگڏ هليا هلنداسين ۽ جي توهان اسان کي ساڻ ڪري سمنڊ ۾ ٿيڻ چاهيو ته اسان به ٿي پونداسين."

حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه جي اها ڳالهه ٻڌي پاڻ سڳورا ڏاڍا سرها ٿيا ۽ فرمايائون ته: "هلو ۽ ٿلندا ڪڏندا هلو. الله مون سان ٻن ٽولن مان هڪ جو واعدو ڪيو آهي. واللہ هن وقت آئون چڻ قوم جون قتل گاهون ڏسي رهيو آهيان."

اسلامي لشڪر جو باقي سفر:- ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام ذفران کان اڳتي وڌيا ۽ ڪجهه جابلو وروڪڙن مان لنگهي ديت نالي هڪ وسنديءَ ۾ پهتا ۽ حنان نالي هڪ ٽڪريءَ کي ساڄي پاسي ڇڏيندي، بدر جي ويجهو اچي لٿا.

دشمن جي خبرچار وٺڻ:- هتي پهچي پاڻ سڳورا عليه السلام غار واري ساٿي حضرت ابوبڪر رضي الله عنه کي ساڻ وٺي پاڻ ئي خبرچار وٺڻ لاءِ نڪري پيا. اڃا پري کان ئي مڪي جي لشڪر جو احوال وٺي رهيا هئا ته هڪ پوڙهو عرب اچي مليو. پاڻ سڳورن عليه السلام کانئس قريشن، محمد عليه السلام ۽ سندن ساٿين جو حال پڇيو. ٻنهي لشڪرن بابت پڇڻ جو مقصد اهو هو ته پاڻ سڳورن عليه السلام جي سڃاڻپ نه ٿي سگهي. پر جهوني چيو ته "جيسٽائين توهان اهو نه ٻڌائيندا ته توهان جو تعلق ڪهڙي قوم سان آهي، آئون به ڪجهه ڪونه ٻڌائيندس." پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: جڏهن تون اسان کي ٻڌائيندين ته اسين به توکي ٻڌائينداسين. هن چيو ته اها ته سڌي سنئين سوڊيبازي آهي؟ پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "ها." هن چيو ته مونکي پتو پيو آهي ته محمد عليه السلام ۽ سندس ساٿي فلاڻي ڏينهن نڪتا آهن. جيڪڏهن ٻڌائڻ واري صحيح ٻڌايو آهي ته پوءِ اڄ اهي فلاڻي جڳهه تي هوندا. (هن نيڪ اها جڳهه ٻڌائي، جتي ان وقت مديني جو لشڪر لٿل هو) ۽ مونکي اهو به پتو پيو آهي ته قريش فلاڻي ڏينهن نڪتا آهن. جي مونکي خبر ڏيڻ واري صحيح خبر ڏني آهي ته اهي اڄ فلاڻي جڳهه تي هوندا. (هن نيڪ ان جڳهه جو نالو ورتو، جتي ان وقت مڪي جو لشڪر لٿل هو).

جڏهن جهوني ڳالهه پوري ڪئي ته پڇيو ته چڱو هاڻي ٻڌايو ته توهان ٻئي ڪهڙن مان آهيو؟ پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: اسان پاڻيءَ مان آهيون ۽ اهو چئي موٽي هلڻ لڳا. پوڙهو بڪ ڪندو رهيو. "پاڻيءَ مان آهن." ڇا؟ "ڇا عراق جي پاڻيءَ مان آهن؟"

مڪي جي لشڪر بابت اهم ڄاڻ حاصل ڪرڻ:- ان ڏينهن شام جو پاڻ سڳورن عليه السلام دشمنن جي خبرچار وٺڻ لاءِ هڪ نئون جاسوسي دستو موڪليو. ان ڪارروائيءَ لاءِ مهاجرن جا ٽي مهندار علي بن ابي طالب رضي الله عنه، زبير بن العوام رضي الله عنه ۽ سعد بن ابي وقاص رضي الله عنه جن صحابه سڳورن جي هڪ ٽولي سان روانا ٿيا. اهي سڌو بدر جي چشمي وٽ پهتا. اتي به غلام مڪي جي لشڪر لاءِ

پاڻي پري رهيا هئا. انهن کي گرفتار ڪري پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ آندو ويو. ان وقت پاڻ سڳورا ﷺ نماز پڙهي رهيا هئا. اصحابين، انهن ٻنهي کان حال احوال ورتو. انهن چيو ته اسين قريشن جا پخالي آهيون، انهن اسان کي پاڻي ڀرڻ لاءِ موڪليو هو. ماڻهن کي اهو جواب نه وڻيو. کين شڪ هو ته اهي ابوسفيان جا ماڻهو آهن. سندن دل ۾ اڃا به اها آرزو هئي ته کين قافلي تي غلبو حاصل ٿئي. تنهنڪري صحابه سڳورن انهن ٻنهي کي مار مارجڻو ٿورو وڌيڪ ڪري ڇڏيو ۽ مجبور ٿي هنن چيو ته ها اسين ابوسفيان جا ماڻهو آهيون. ان بعد مارڻ وارن پنهنجا هٿ جهليا.

پاڻ سڳورن ﷺ نماز مان فارغ ٿي ناراضگيءَ سان فرمايو ته: جڏهن انهن ٻنهي صحيح ڳالهه ڪئي ته توهان انهن کي مار ڪڍي ۽ جڏهن ڪوڙ ڳالهائون ته ڇڏي ڏنو. الله جو قسم! انهن ٻنهي صحيح چيو هو ته اهي قريشن جا ماڻهو آهن.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ٻنهي ٻانهن کي چيو ته چڱو هاڻي مون کي قريشن بابت ٻڌايو. انهن چيو ته: اهو ڏڙو جيڪو واديءَ جي آخري ڇيڙي تي نظر پيو اچي. قريش ان جي پٺيان آهن. پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: ماڻهو ڪيترا آهن؟ انهن ورائيو ته: ڪوڙ سارا آهن. پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: سندن تعداد ڪيترو آهي؟ انهن چيو ته اسين نٿا ڄاڻون. پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: روز گهڻا اٺ ڪهندا آهن؟ انهن چيو ته: هڪ ڏينهن نو ۽ هڪ ڏينهن ڏهه. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: پوءِ اهي نو سو ۽ هزار جي وچ ۾ آهن. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته: انهن ۾ ڪهڙا ڪهڙا قريشن جا چڱا مڙس شامل آهن؟ انهن چيو ته ربيعه جا ٻئي پٽ عتبه ۽ شيبه ۽ ابوالبختر بن هشام، حڪيم بن حزام، نوفل بن خويلد، حارث بن عامر، طعيمه بن عدي، نضر بن حارث، زمعه بن اسود، ابوجهل بن هشام، اميه بن خلف ۽ ڪجهه ٻين ماڻهن جا نالا به ڳڻايائون. پاڻ سڳورن ﷺ صحابه سڳورن ڏانهن نهاري فرمايو ته: "مڪي پنهنجي جگر جا ٽڪرا اوهان آڏو اچي اڇليا آهن."

رحمت ڀريو مينهن وسڻ:- الله عزوجل ان رات اهڙو مينهن وسايو جيڪو مشرڪن لاءِ ته تيز هو ۽ انهن لاءِ اڳرائي ڪرڻ ممڪن نه رهيو. پر مسلمانن تي اهو مينهن هلڪو وسيو ۽ انهن کي پاڪ ڪري ڇڏيائين ۽ شيطان جي گندگي (بزدلي) ختم ڪري ڇڏيائين ۽ زمين کي سنوت ۾ آندائين. ان جي ڪري ريتي سخت ٿي پير رکڻ لائق بڻجي وئي. اتي رهڻ جو مزو اچي ويو ۽ دليون مضبوط ٿي ويون.

اهم فوجي مرڪزن ڏانهن اسلامي لشڪر جي اڳرائي:- ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي لشڪر کي اڳتي وڌايو، جيئن مشرڪن کان اڳ بدر جي چشمي وٽ پهچي وڃن ۽ ان تي مشرڪ قبضو نه ڪري سگهن. سمهڻيءَ مهل پاڻ سڳورا ﷺ بدر کان ويجهي ۾ ويجهي چشمي تي

لثا. ان موقعي تي حضرت خباب بن منذر رضي الله عنه هڪ ماهر فوجيءَ جي حيثيت ۾ پڇيو ته: يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! هن جڳهه تي اوهان الله جي حڪم سان لثا آهيو ته پوءِ اسان لاءِ هن کان اڳتي پوئتي ٿيڻ جي گنجائش نه آهي. يا رڳو جنگي حڪمت عمليءَ طور لثا آهيو؟ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: رڳو جنگي حڪمت عمليءَ طور آهي. "انهن چيو ته: "هيءَ جاءِ مناسب ڪانهي. توهان اڳتي وڌي هلو ۽ قريشن جي سپ کان ويجهي چشمي وٽ ديرو ڄمايو. پوءِ اسان پيا چشما ڍڪي ڇڏينداسين ۽ پنهنجي چشمي تي حوض ٺاهي پاڻي پري ڇڏينداسين. ان کان پوءِ اسين قريشن سان جنگ ڪنداسين ته اسين پاڻي پيئندا رهنداسين ۽ انهن کي پاڻي نه ملندو." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته توڏاڍو سٺو مشورو ڏنو آهي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم لشڪر سميت اٿيا ۽ اڌ رات جو دشمنن جي سپ کان ويجهي چشمي وٽ اچي لثا. پوءِ صحابه سڳورن حوض ٺاهيو ۽ پيا سپ چشما ڍڪي ڇڏيا.

**قيادت جو مرڪز (مورچو):** - صحابه سڳورن چشمي وٽ ديرو ڄمائي ورتو ته حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه راءِ ڏني ته مسلمان پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم لاءِ مورچو ٺاهين ته جيئن الله نه ڪري جي فتح بدران شڪست ملي يا ڪا به هنگامي حالت پيدا ٿي پوي ته ان لاءِ اڳيئي تيار هجئون. ان لاءِ انهن عرض ڪيو ته: "يا رسول الله! ڇو نه اسين اوهان لاءِ هڪ چپر جوڙيون، جنهن ۾ اوهان ويهو ۽ اسان اوهان جي ويجهو اوهان جون سواريون به جهلي بيهنداسين. ان کانپوءِ دشمنن سان جهڙپ ڪنداسين. جيڪڏهن الله تعاليٰ اسان کي عزت بخشي ۽ دشمنن تي فتح ڏني ته اها شيءِ اسان کي پسند آهي ۽ جي بي صورت ٿي ته توهان سوار ٿي اسانجي قوم جي انهن ماڻهن وٽ هليا وڃجو، جيڪي پٺيان رهجي ويا آهن. يا رسول الله! حقيقت ۾ پنٿي اهڙا ماڻهو رهجي ويا آهن. جيڪي اوهان جي محبت ۾ اسان کان وڌيڪ آهن. جيڪڏهن کين جنگ جو ثورو به اندازو هجي ها ته اهي هرگز پنٿي نه رهن ها. الله انهن جي ذريعي اوهان جي حفاظت ڪندو. اهي اوهان جا سڄڻ آهن ۽ توهان سان گڏ جهاد ڪندا." ان تي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سندن ساراهه ڪئي ۽ سندن لاءِ دعا گهري پوءِ مسلمانن جنگ جي ميدان جي اتر اوڀر ۾ هڪ مٿاهين دڙي تي چير ٻڌو، جتان جنگ جو سڄو ميدان نظر آيو ٿي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي ان مورچي جي سنڀال لاءِ حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه جي نگرانيءَ ۾ انصاري جوڏن جو هڪ ٽولو مقرر ڪيو ويو.

**لشڪر جي ترتيب ۽ رات گذارڻ:** - ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم لشڪر جي ترتيب ڪئي (1) ۽ جنگ جي ميدان ۾ پهتا. اتي پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم پنهنجي هٿ جي اشاري سان فرمائيندا ويا ته هيءَ صبح جو فلاڻي جي قتل گاهه ٿيندي، انشاءَ الله ۽ هيءَ صبح جو فلاڻي جي قتل گاهه ٿيندي انشاءَ

<sup>1</sup> - جامع ترمذي (201/1).

الله<sup>(1)</sup> ان کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ اتي ٿي هڪ وڻ هيٺان رات گذاري ۽ مسلمانن به آرام ڪيو. سندن دليون پراعتقاد هيون. کين اميد هئي ته صبح جو پنهنجن اکين سان پنهنجي پالڻهار جون بشارتون ڏسندا.

﴿إِذْ يُعَشِّيكُمُ النَّعَاسَ أَمَنَةً مِنْهُ وَيُنزِلُ عَلَيْكُمْ مِنَ السَّمَاءِ مَاءً لِيُطَهِّرَكُمْ بِهِ وَيُذْهِبَ عَنْكُمْ رِجْزَ الشَّيْطَانِ وَلِيَرْبِطَ عَلَى قُلُوبِكُمْ وَيُثَبِّتَ بِهِ الْأَقْدَامَ﴾ (11) (الانفال)

” (ياد ڪريو) جيڏي مهل پنهنجي پاران امن ڏيڻ لاءِ اوهان کي اوجھرائي ڍڪايائين ۽ اوهان تي آسمان مان پاڻي هن لاءِ وسايائين ته ان سان اوهان کي پاڪ ڪري ۽ اوهان کان شيطان جي پليٽائي هٽائي ۽ اوهان جي دلين کي محڪم رکي ۽ ان سان (اوهان جي) قدمن کي جمائي ڇڏي.

ها 17 رمضان سن 2 هـ جي جمعرات هئي ۽ پاڻ سڳورا ﷺ ان مهيني جي 8 يا 12 تاريخ تي مديني مان نڪتا هئا.

### جنگ جي ميدان ۾ مڪي جي لشڪر جو پڇڻ ۽ منجهن قوت پوڻ: - ٻئي پاسي

قريش واديءَ جي منهن وٽ پنهنجي ديري ۾ رات گذاري ۽ صبح جو پنهنجن سڀني دستن سان دڙي تان لهي بدر ڏانهن هليا. هڪ ٽولو پاڻ سڳورن ﷺ واري حوض ڏانهن وڌيو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: انهن کي وڃڻ ڏيو. پوءِ انهن مان جنهن به پاڻي پيتو، اهو جنگ ۾ ماريو ويو. انهن مان رڳو حڪيم بن حزام بچيو، جيڪو پوءِ مسلمان ٿيو ۽ ڏاڍو چڱو مسلمان ٿيو. سندس دستور هو ته جڏهن کيس پڪو قسم کڻڻو هوندو هو ته چوندو هو ته: ”لَا وَالَّذِي نَجَّيْنِي مِنْ يَوْمِ بَدْرٍ“ (قسم آهي ان هستيءَ جو، جنهن مون کي بدر جي ڏينهن نجات ڏني).<sup>(2)</sup>

بهرحال جڏهن قريش مطمئن ٿي ويا ته انهن مديني جي لشڪر جي سگهه جو کائو لڳائڻ لاءِ عمير بن وهب جمحيءَ کي موڪليو. عمير گهوڙي تي چڙهي لشڪر جو چڪر لڳايو. پوءِ واپس موٽي چيائين ته: ”تي سوڻ ڄڻن کان ڪجهه گهٽ وڌ ماڻهو آهن. پر ٿورو ترسو، آئون ڏسي اڃان ته انهن جي ڪا بچهي جڳهه يا پٺيان ڪو حصو رهيل ته ڪونهي؟“ ان کانپوءِ هو گهوڙو ڊوڙائيندي واديءَ ۾ پري نڪري ويو پر کيس ڪجهه نظر نه آيس. تنهن کانپوءِ موٽي اچي چيائين ته: ”مون پيو ڪجهه نه ڏٺو پر اي قريشيو! مون وڏيون آفتون ڏٺيون آهن، جن تي موت سوار هو. يثرب جا اٺ پاڻ تي موت کنيو پيا اچن. اهي اهڙا ماڻهو آهن، جن جو سڀ ڪجهه سندن تلوارون آهن، پيو ڪجهه نه. الله جو قسم! آئون سمجهان ٿو ته سندن ڪوبه ماڻهو توهان جي ڪنهن ماڻهوءَ کي مارڻ کانسواءِ نه مرندي ۽

<sup>1</sup> - مسلم، مشڪوة (2/543).

<sup>2</sup> سيرة ابن هشام - (1 / 621)

جي توهان جي چونڊ ماڻهن کي انهن ماري وڌو ته پوءِ جيئن جو ڪهڙو مزو رهندو! ان لاءِ تورو چڱي طرح سوچي وٺو."

ان موقعي تي ابوجهل جي خلاف، جيڪو جهيڙو ڪرڻ تي سندرو ٻڌيو بيٺو هو، هڪ نئون جهڳڙو جاڳي پيو، جنهن ۾ مطالبو ڪيو ويو ته جنگ کانسواءِ مڪي واپس ورجي. ان لاءِ حڪيم بن حزام ڊوڙ ڏک ڪئي. هو عتبہ بن ربيع وٽ آيو ۽ چيائين ته: "اي ابو الوليد! توهان قريشن جا وڏا مهندار آهيو، پوءِ اهو چڱو ڪم ڇو نٿا ڪريو، جنهن سان توهان جو نالو سدائين چڱن لفظن سان ياد ڪيو وڃي." عتبہ چيو ته: "حڪيم! اهو ڪهڙو ڪم آهي؟" هن چيو ته: "توهان ماڻهن کي واپس وٺي وڃو ۽ نخله واري سري ۾ ماريل پنهنجي حليف عمرو بن حزمي جو معاملو پنهنجي ذمي ڪڍو." عتبہ چيو ته "مونکي منظور آهي. تون منهنجي پاران ان جي ضمانت وٺي وٺ. هو منهنجو حليف هو. آئون سندس خون بها ۽ قريل مال پري ڏيندس."

ان کانپوءِ عتبہ، حڪيم بن حزام کي چيو ته "تون حنظله جي پٽ وٽ وڃ، ڇو ته ماڻهن جو معاملو ڦٽائڻ ۽ پڙڪائڻ جي سلسلي ۾ مونکي ان کانسواءِ ٻئي ڪنهن کان ڊپ ڪونهي. حنظله جي پٽ مان مراد ابوجهل هو. حنظله ان جي ماءُ هئي."

ان کانپوءِ عتبہ بن ربيع بيهي تقرير ڪندي چيو ته: "اي قريشيو! توهان محمد ﷺ ۽ سندس ساٿين سان وڙهي ڪو ڪارنامو ڪونه ڪندا. الله جو قسم جيڪڏهن توهان انهن کي ماري وڌو ته توهان کي رڳو اهڙا چهرا ڏسڻ ۾ ايندا جن کي اوهان ڏسڻ پسند نه ڪندا. ڇو ته ماڻهن پنهنجي سوٽ، ماسات يا ڪٽم قبيلي جي ڪنهن ماڻهوءَ کي ماريو هوندو. ان ڪري واپس هلو ۽ محمد ﷺ ۽ سڄي عربستان کان پاسيرا ٿي ويهي رهو. جيڪڏهن (بين) عربن کيس ماري وڌو ته اهو ڪم توهان جي دلين وٽان ٿيندو ۽ جي ڪم ايتو تيو ته محمد ﷺ توهان کي ان حالت ۾ ڏسندو ته جيڪو سلوڪ اوهان هن سان ڪرڻ چاهيو، اهو نه ڪيو."

هوڏانهن حڪيم بن حزام، ابوجهل وٽ پڳو ته ابوجهل زهره پئي ٺاهي. حڪيم چيو ته: اي ابوالحڪم! مونکي عتبہ تو وٽ هن نيائي سان موڪليو آهي. ابوجهل چيو ته: "الله جو قسم! محمد ﷺ ۽ سندس ساٿين کي ڏسي عتبہ جي دل سُسي وئي آهي. نه هرگز نه. الله جو قسم! اسين نه موٽنداسين. تان ته الله اسان جي ۽ محمد ﷺ جي وچ ۾ ڪو فيصلو ڪري وجهي. عتبہ جيڪي ڪجهه چيو آهي، اهو رڳو ان لاءِ جو محمد ﷺ ۽ سندس ساٿين کي اٺ خور سمجهي ٿو ۽ جڏهن ته عتبہ جو پٽ به انهن ۾ شامل آهي. ان ڪري هو توکي انهن کان ڊيڄاري پيو. (عتبہ جو فرزند ابو حذيفه رضی اللہ عنہ اوائلي مسلمانن مان هو ۽ هجرت ڪري مديني پڄي چڪو هو) عتبہ کي پتو پيو ته



ابوجهل چوي ٿو ته: "الله جو قسم عتبہ جي دل سُسي وئي آهي." ته چيائين ته "سرين کي خوشبوءَ لڳائڻ واري هن پاڙيائپ ڏيکارڻ واري کي جلدي خبر پوندي ته ڪنهن جي دل سُسي وئي آهي، منهنجي يا سندس؟" هوڏانهن ابوجهل ان ڊپ کان ته متان اهي اعتراض سگهارا ٿي وڃن، هن ڳالهه ٻولهه کانپوءِ عامر بن حزمي کي، جيڪو عبدالله بن جحش واري سري جي مقتول عمرو بن حزمي جو ڀاءُ هو، سڏائي چيو ته تنهنجو حليف عتبہ چاهي ٿو ته ماڻهن کي موٽايو وڃي، جڏهن ته تون پنهنجو بدلو پنهنجن اکين سان ڏسي چڪو آهين، ان ڪري اتي ۽ پنهنجي مظلوميت ۽ پنهنجي ڀاءُ جي قتل جي فرياد ڪر. ان تي عامر اٿيو ۽ سرين اڳاڙو ڪري رڙ ڪيائين. واہ عمرو واہ عمرو، هاہ عمرو هاہ عمرو. ان تي ماڻهو پٽڪي پيا ۽ ڳالهه وڌي وئي ۽ جنگ جو ارادو پڪو ٿي ويو ۽ عتبہ جنهن سوچ ويچار جي دعوت ڏني هئي، اها رائيگان وئي ۽ اهڙيءَ طرح هوش کي جوش ملهه ماري ويو ۽ ان ڪوشش جو ڪوبه ڪڙتيل نه نڪتو.

**بئي لشڪر آمهون سامهون:-** بهرحال جڏهن مشرڪن جو لشڪر ظاهر ٿيو ۽ بئي فوجون هڪٻئي کي نظر اچڻ لڳيون ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "يا الله! اهي قريش آهن، جيڪي پنهنجي پوري هٿ ۽ هوڏ سان تنهنجي مخالفت ڪندي ۽ تنهنجي رسول ﷺ کي ڪوڙو ڪندي اچي پڳا آهن. يا الله تنهن جي مدد... جنهن جو تو واعدو ڪيو آهي. يا الله اڄ انهن جا ترا ڪڍي ڇڏ." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ عتبہ بن ربيع کي هڪ ڳاڙهي پلي اٺ تي ڏسي فرمايو ته: "جيڪڏهن قوم ۾ ڪنهن وٽ خير آهي ته اهو ڳاڙهي اٺ واري وٽ آهي. جيڪڏهن ماڻهن هن جي ڳالهه مڃي ورتي ته سڌي رستي تي رسي ويندا."

ان موقعي تي پاڻ سڳورن ﷺ مسلمانن جون صفون ٻڌيون. صفون ٻڌڻ مهل هڪ عجيب واقعو ٿيو. پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿ ۾ هڪ تير هو. جنهن جي ذريعي پاڻ صفون سڌيون ڪري رهيا هئا. ته سواد بن غزبه رضه جي پني تي جيڪو صف کان ڪجهه اڳتي بيٺل هو تير سان ڌڪيندي فرمايائون ته: سواد! برابر ٿي بيهر. سواد رضه چيو ته: يا رسول الله! توهان مون کي تڪليف ڏني آهي، ان جو بدلو ڏيو. پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي پني مبارڪ هٿائي فرمايو ته: بدلو وٺي وٺ. سواد پاڻ سڳورن ﷺ سان چهتي پيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي پني مبارڪ کي چمڻ لڳو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: سواد هيءَ حرڪت تون ڪهڙي ڪارڻ پيو ڪرين؟ انهيءَ ورائيو ته: يا رسول الله! هتي جيڪا حالت آهي، اها اوهان ڏسو پيا. مون چاهيو ٿي ته ان موقعي تي اوهان سان منهنجو آخري معاملو اهو هجي ته منهنجو جسر اوهان جي جسر سان ڇهجي وڃي. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ سندن حق ۾ خير جي دعا گهري.

جڏهن صفون ٻڌجي چڪيون ته پاڻ سڳورن ﷺ هدايت ڪئي ته جيستائين سندن پاران آخري حڪم نه ملي، تيستائين جنگ شروع نه ڪئي وڃي. ان کانپوءِ جنگ جي طريقي بابت خاص طور تي ٻڌائيندي فرمايائون ته: جڏهن مشرڪ ٽولي جي شڪل ۾ توهانجي ويجهو اچن ته انهن تي تير وسائڻو ۽ پنهنجا تير بچائڻ جي ڪوشش ڪجو<sup>(1)</sup> (يعني اجايا تير هلائي زبان نه ڪجو) ۽ جيستائين اهي سر تي چڙهي نه اچن، تيستائين تلوارون نه ڪڍجو.<sup>(2)</sup> ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ ۽ حضرت ابوبڪر رضه مارجي ڏانهن ويا ۽ حضرت سعد بن معاذ رضه پنهنجي حفاظتي دستي سان مارجي جي در تي بيهي رهيو.

ٻئي پاسي مشرڪن جي حالت اها هئي جو ابوجهل الله کان فيصلي جي دعا گهري. هن چيو ته: "يا الله! اسان مان جيڪا ڌر پنهنجائپ کي وڌيڪ ڪٽڻ واري ۽ وڌيڪ غلط حرڪتون ڪرڻ واري آهي، تون ان کي اڄ ختم ڪري ڇڏ. يا الله! اسان مان جيڪا ڌر تو وٽ وڌيڪ پياري ۽ وڌيڪ وڻندڙ آهي، اڄ ان جي مدد ڪجان." بعد ۾ ان ڳالهه ڏي اشارو ڪندي الله تعاليٰ هيءَ آيت نازل ڪئي.

﴿إِنْ تَسْتَفْتِحُوا فَقَدْ جَاءَكُمْ الْفَتْحُ وَإِنْ تَنْتَهُوا فَهُوَ خَيْرٌ لَكُمْ وَإِنْ تَعُودُوا نَعُدْ وَلَنْ نُغْنِي عَنْكُمْ فِتْنَتَكُمْ شَيْئًا وَلَوْ كَثُرَتْ وَأَنَّ اللَّهَ مَعَ الْمُؤْمِنِينَ﴾ (19) (الانفال)

”اي ڪافرو! جڏهن (بدر جي لڙائيءَ لاءِ سنبرڻ مهل ڪفر ۽ اسلام جي سچائي پرڪڻ لاءِ) سوپ گهري هيو ته بيشڪ اوهانجي آڏو (اسلام کي) سوپ آئي ۽ جيڪڏهن اوهين (اسلام جي سچائي سمجهي ڪفر کان) بس ڪندؤ ته اهو اوهان لاءِ چڱو آهي ۽ جيڪڏهن ٻيهر (ويڙهه لاءِ) ايندؤ ته وري اسلام کي سوپ) ڏينداسون ۽ اوهان جو لشڪر جيتوڻيڪ گهڻو هوندو، ته به اوهان کان ڪجهه تاري نه سگهندو.“

**جنگ جو پهريون ڪاڇ:-** هن ويڙهه جو پهريون شڪار اسود بن عبدالاسد مخزومي هو. اهو ڏاڍو ڏنگو ۽ گاريال هو ۽ اهو چوندي ميدان ۾ تپيو ته آئون الله سان عهد تو ڪريان ته يا ته انهن جي حوض جو پاڻي هر حالت ۾ پيئندس يا ان کي ڊاهي ڇڏيندس يا ان لاءِ جان ڏئي ڇڏيندس. جڏهن هو هن پاسان نڪتو ته هتان وري حضرت حمزة رضه بن عبدالمطلب نروار ٿيو. ٻئي حوض کان ڪافي پري پاڻ ۾ تڪرايا. حضرت حمزة رضه اهڙي تلوار هنيس جو سندس پير جي اڌ کڙي ڪٽجي اڏامي وئي ۽ هو پٺ ۾ وڃي ڪريو. سندس پير مان رت ڦوهارا ڪري وهڻ لڳو، جنهن جو رخ سندس ساٿين ڏانهن هو. ان هوندي به هو گوڏن ۾ گسڪندو حوض ڏانهن وڌيو ۽ ان ۾ گهڙڻ وارو ٿي هو ته جيئن

<sup>1</sup> - صحيح بخاري 2/568.

<sup>2</sup> - سنن ابي داؤد (13/2).

پنهنجو قسم پورو ڪري سگهي، اوڏي مهل حضرت حمزة رضي الله عنه پيو ڏک هڻي ڪيس ۽ هو وڃي حوض جي اندر ڪريو.

**دوبدو مقابلا:-** اهو هن ويڙه جو پهريون قتل هو، جنهن سان جنگ جي باهه پڙڪي اٿي. ان کانپوءِ قريشن جا ٽي ڀلا گهوڙي سوار نڪتا، جيڪي سڀ جا سڀ هڪ ئي گهراڻي جا هئا. هڪ عتبہ ۽ ٻيو ان جو ڀاءُ شيبه، جيڪي ٻئي ربيعہ جا پٽ هئا ۽ تيون وليد، جيڪو عتبہ جو پٽ هو. انهن پنهنجي قطار مان نڪري دوبدو مقابلي جو سڏ ڏنو. مقابلي لاءِ انصارن جا ٽي جوڌا نڪتا. هڪ عوف رضي الله عنه، ٻيو معوذ رضي الله عنه، اهي ٻئي حارث جا فرزند هئا ۽ انهن جي ماءُ جو نالو عفرهه هو. تيون عبدالله بن رواحہ رضي الله عنه. قريشن پڇيو ته: توهان ڪير آهيو؟ انهن ورائيو ته انصارن جي هڪ جماعت آهيون. قريشن چيو ته توهان به اسان جي جوڙ جا آهيو، پر اسان جو اوهان سان ڪم ڪونهي. اسين ته پنهنجن سوٽن سان (وڙهڻ) چاهيون ٿا. پوءِ انهن آواز ڏنو، محمد صلى الله عليه وسلم! ... اسان وٽ اسانجي قوم منجهان اسان جي جوڙ جا موڪل. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته عبدة بن حارث رضي الله عنه! اٿ، حمزة رضي الله عنه اٿ! علي رضي الله عنه اٿ! جڏهن اهي اٿيا ۽ قريشن جي ويجهو پڳا ته انهن پڇيو ته توهان ڪير آهيو؟ هنن پنهنجو تعارف ڪرايو. قريشن چيو ته ها توهان اسان جي جوڙ جا آهيو. ان بعد لڙائي شروع ٿي. حضرت عبدة رضي الله عنه جيڪو سڀ کان وڏي عمر جو هو، عتبہ بن ربيعہ جو مقابلو ڪيو. حضرت حمزة رضي الله عنه شيبه سان ۽ حضرت علي رضي الله عنه وليد سان <sup>(1)</sup> حضرت حمزة رضي الله عنه ۽ حضرت علي رضي الله عنه پنهنجي پنهنجي حريف کي جهٽ ماري وڌو پر حضرت عبدة رضي الله عنه ۽ ان جي حريف، هڪ هڪ وار هڪٻئي تي ڪيو ۽ ٻنهي مان هر هڪ کي گهرو گهڙا رسيو. ايتري ۾ حضرت علي رضي الله عنه ۽ حضرت حمزة رضي الله عنه پنهنجي پنهنجي شڪار مان واندا ٿي پهتا ۽ ايندي ئي عتبہ تي ڪاهي پيا ۽ کيس ماري وڌائون ۽ حضرت عبدة رضي الله عنه کي ڪڍي آيا. انهن جو پير ڪٽجي ويو هو ۽ آواز بند ٿي ويو هئڻ، جيڪو لڳاتار بند رهيو. تان ته جنگ جي چوٿين ڏينهن، جڏهن مسلمان مديني واپس ورتل لڳا ته رستي ۾ صفراء جي واديءَ وٽ پاڻ گذاري ويو.

حضرت علي رضي الله عنه الله جو قسم کڻي فرمايو ته: هيءَ آيت اسان بابت ئي لٿي آهي.

﴿هَذَا خِصْمَانِ اخْتَصَمُوا فِي رَبِّهِمْ...﴾ (19) ﴿الحج﴾

”هي ٻه فريق آهن جن پنهنجي رب جي باري ۾ جهيڙو ڪيو آهي.“

**عام لڙائي:-** ان دوبدو مقابلي جو نتيجو مشرڪن لاءِ هڪ بري شروعات هئي. اهي هڪ ئي ڏک ۾ پنهنجا ٽي ڀلا شهسوار ۽ مهندار وڃائي وينا، ان ڪري انهن ڏمرجي اوچتو گڏيل حملو ڪري وڌو.

<sup>1</sup> - ابن هشام، مسند احمد ۽ داؤد جي روايت ان کان مختلف آهي. مشکوٰة (2/343).

بئي پاسي مسلمان پنهنجي پالڻهار کان فتح ۽ مدد جي دعا گهرڻ ۽ ان جي آڏو خلوص ۽ نوڙت جو مظاهرو ڪرڻ بعد پنهنجي پنهنجي جاءِ تي ثابت قدم رهندي ۽ بچاءِ جي حڪمت عملي اختيار ڪندي. مشرڪن جي لاڳيتن تکن حملن کي روڪي رهيا هئا ۽ انهن کي چڱو خاصو نقصان رسائي رهيا هئا. سندن زبان تي احد احد جو ڪلمو جاري هو.

**پاڻ سڳورن ﷺ جي دعا:-** هوڏانهن پاڻ سڳورا ﷺ صفون ٻڌي موٽڻ کانپوءِ پنهنجي پالڻهار کان فتح ۽ مدد جو واعدو پورو ڪرڻ جي دعا گهرڻ ۾ مشغول ٿي ويا. اها دعا هن ريت هئي.

اللَّهُمَّ أَنْجِرْ لِي مَا وَعَدْتَنِي (1) ، اللَّهُمَّ إِنِّي أُنشِدُكَ عَهْدَكَ وَوَعْدَكَ (2)

يعني "يا الله! تو مون سان جيڪو واعدو ڪيو آهي، ان کي پورو ڪري ڏيکار. يا الله! آئون توکان تنهنجي عهد ۽ تنهنجي واعدي جو سوال ڪري رهيو آهيان."

پوءِ جڏهن رڻ گجيو راڙو ٿيو، تڏهن پاڻ سڳورن ﷺ هيءَ دعا گهري.

اللَّهُمَّ إِنَّ تَهْلِكَ هَذِهِ الْعَصَابَةُ الْيَوْمَ لَا تُعْبَدُ (3) اللَّهُمَّ إِنْ شِئْتَ لَمْ تُعْبَدَ بَعْدَ الْيَوْمِ أَبَدًا (4)

يعني "يا الله! جيڪڏهن اڄ هي ٽولو هلاڪ ٿيو ته تنهنجي عبادت نه ڪئي ويندي. يا الله! جيڪڏهن تون چاهين ته (پوءِ) اڄ کانپوءِ تنهنجي عبادت نه ڪئي وڃي."

پاڻ سڳورن ﷺ نهايت عاجزيءَ سان دعا گهري. ايسٽائين جو سندن ڪلهن تان چادر لهي وئي. حضرت ابوبڪر رضه اتي چادر مبارڪ صحيح ڪئي ۽ عرض ڪيو "يا رسول الله ﷺ! بس ڪريو! اوهان، الله کان ڏاڍي نوڙت سان دعا گهري ورتي آهي." هوڏانهن الله تعاليٰ فرشتن کي وحي موڪلي ته:

﴿أَنِّي مَعَكُمْ فَثَبَّتُوا الَّذِينَ آمَنُوا سَأَلَنِي فِي قُلُوبِ الَّذِينَ كَفَرُوا الرُّعْبَ...﴾ (12) (الانفال)

"آئون اوهان سان آهيان تنهنڪري مؤمنن کي چئو ته ڪافرن جي دل ۾ سگهو دهشت وجهندس."

۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي وحي موڪلي ته:

﴿أَنِّي مُمِدُّكُمْ بِأَلْفٍ مِنَ الْمَلَائِكَةِ مُرْدِفِينَ﴾ (9) (الانفال)

"آئون لاڳيتو هڪهڪي پٺيان ايندڙ هڪ هزار ملائڪن سان اوهانجي مدد ڪندس."

**فرشتن جو نازل ٿيڻ:-** ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي جهوتو اچي ويو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ڪنڌ مٿي کڻي فرمايو ته: "ابوبڪر خوش ٿي وڃ، اهو جبرئيل عليه السلام آهي، دز ۾ لٽيل" ابن اسحاق

<sup>1</sup> صحيح مسلم - (حديث رقم 3309) و سنن الترمذی - (حديث رقم 3006)

<sup>2</sup> صحيح البخاري (حديث رقم 2699)

<sup>3</sup> سيرة ابن هشام - (1 / 626)

<sup>4</sup> صحيح البخاري (حديث رقم 2699)

جي روايت ۾ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ابوبڪر خوش ٿي وڃ، تو وٽ الله جي مدد پڄي وئي آهي. اهو جبرئيل عليه السلام آهي، پنهنجي گهوڙي جي واڳ جهلي ۽ ان جي اڳيان اڳيان هلندو پيو اچي ۽ دز سان لٽيو پيو آهي."

ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ مورچي جي در کان ٻاهر نڪتا. پاڻ سڳورن ﷺ کي زره پهريل هئي. پاڻ سڳورا ﷺ پرجوش انداز ۾ اڳتي وڌي رهيا هئا ۽ فرمائيندا پئي ويا ته:

﴿سَيَهْرَمُ الْجَمْعُ وَيُولُونَ الدُّبْرَ (45)﴾ (القمر)

"جلد ٿي اهو ٽولو هارائيندو ۽ پٺ ڦيرڻ پڇندو."

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ هڪ مٺ ۾ پٿريلي مٽي کڻي ۽ قريشن طرف منهن مبارڪ ڪري فرمايائون ته: "شَاهَتَ الْوُجُوهُ" (منهن ڦري وڃن) ۽ ان سان گڏ مٽي سندن منهن ڏانهن اڇلايائون. پوءِ مشرڪن مان اهڙو ڪوبه ڪونه بچيو، جنهن جي پنهني اکين، نڪن ۽ وات ۾ ان هڪ مٺ جيتري مٽيءَ مان ڪجهه نه ويو هجي. ان بابت الله تعاليٰ جو ارشاد آهي ته:

﴿وَمَا رَمَيْتَ إِذْ رَمَيْتَ وَلَكِنَّ اللَّهَ رَمَى... (17)﴾ (الانفال)

"جڏهن تو (ڌوڙ جي مٺ) اڇلي ته (ها) تون نه اڇلي پر الله اڇلي." (1)

**جوابي حملو:-** ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جوابي حملي جو حڪم ۽ جنگ جي ترغيب ڏيندي فرمايو ته: "شُدُّوا (ڪاهي پئو) ان هستيءَ جو قسم، جنهن جي هٿ ۾ محمد ﷺ جي جان آهي، انهن سان جيڪو به چمي، ثواب سمجهي، اڳتي وڌي ۽ اڏول بڻجي وڙهندو ۽ ماريو ويندو. الله ان کي ضرور جنت ۾ داخل ڪندو."

پاڻ سڳورن ﷺ ويڙه لاءِ همٿائيندي اهو به فرمايو ته: ان جنت ڏي وڌو، جنهن جون گهراڻيون آسمانن ۽ زمين جي برابر آهن. (پاڻ سڳورن ﷺ جي اها ڳالهه ٻڌي) عمير بن حمار رضي الله عنه چيو ته: واه، واه! . پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: تون واه واه! ڇو پيو ڪرين؟ ان ورائيو ته نه، الله جو قسم يا رسول الله ﷺ ڪا ڳالهه نه آهي سواءِ ان جي جو مون کي اميد آهي ته ائون به ان جنت وارن ۾ هوندس. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: تون به ان جنت وارن منجهان آهين. ان کانپوءِ پاڻ پنهنجي توشه دان مان ڪجهه ڪارڪون ڪڍي ڪاڻڻ لڳو. پوءِ چيائين ته جي ائون ڪارڪون ڪاڻڻ تائين به جيئرو رهيس ته اها ته ڊگهي عمر ٿي ويندي. پوءِ وٽس جيڪي ڪارڪون هيون، سي اڇلائي ڇڏيائين ۽ مشرڪن سان وڙهندي وڙهندي شهيد ٿي ويو. (2)

<sup>1</sup> المعجم الكبير للطبراني - (3 / 335) (حديث رقم 3057) و السلسلة الصحيحة - (حديث رقم 2824)

<sup>2</sup> - مسلم (139/2)، مشڪوة (331/2).

اهڙيءَ طرح مشهور عورت عفرآءَ جي فرزند عوف به حارث رضي الله عنه پيڇيو ته: يا رسول الله صلى الله عليه وسلم پاڻهار پنهنجي ٻانهي جي ڪهڙي ڳالهه تي خوش ٿيندو آهي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "ان ڳالهه تي ته ٻانهو خالي جسر (بنا حفاظتي هٿيار پهڙڻ جي) پنهنجو هٿ دشمنن ۾ ٻوڙي ڇڏي." يعني بنا زره پهڙڻ جي دشمنن ۾ ڪاهي پوي. اهو ٻڌي عوف رضي الله عنه پنهنجي بدن تان زره لائي ۽ تلوار کڻي دشمنن ۾ ڪاهي پيو ۽ وڙهندي وڙهندي شهيد ٿي ويو.

جنهن مهل پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جوابي حملي جو حڪم ڏنو ته ان مهل دشمنن جي حملن ۾ تڪائي ختم ٿي چڪي هئي ۽ انهن جو جوش ۽ خروش ٿڌو ٿي رهيو هو. ان ڪري اها حڪمت عملي مسلمانن کي سگهه بخشڻ لاءِ ڏاڍي ڪارائتي ثابت ٿي. ڇو ته صحابه سڳورن کي جڏهن حملو ڪرڻ جو حڪم مليو. تڏهن سندن جهاد جو جوش اڃا ٿڌو نه ٿيو هو. ان ڪري انهن ڏاڍي سختيءَ سان مومتمار حملو ڪيو. اهي قطارون چيريندي ۽ ڪنڌ ڪپيندي اڳتي وڌيا. اهو ڏسي سندن جوش ۾ وڌيڪ واڌارو اچي ويو ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم پاڻ به زره پهري تڪڙا تڪڙا هلندا پئي آيا ۽ ڏاڍي يقين سان اهو فرمائي رهيا هئا ته "جلد ئي اهو ٿولو هارائيندو ۽ پٺ ڦيرڻ پڇندو." ان ڪري مسلمانن ڏاڍي جوشيلي انداز ۾ ويڙهه ڪئي ۽ فرشتن به انهن جي مدد ڪئي. جيئن طبقات ابن سعد ۾ عڪرمه رضي الله عنه کان روايت آهي ته: ان ڏينهن ماڻهوءَ جو سر ڪٽجي ڪرندو هو ۽ اهو پتو نه پوندو هو ته ان کي ڪنهن ماريو ۽ ماڻهوءَ جو هٿ ڪپجي ڪرندو هو ۽ اها خبر نه پوندي هئي ته اهو ڪنهن ڪٿيو. ابن عباس رضي الله عنه فرمائي ٿو ته: هڪ مسلمان. هڪ مشرڪ جو پيڇو ڪري رهيو هو ته اوچتو مشرڪ جي مٿان ڪوڙو لڳڻ جو آواز آيو ۽ هڪ شهنسوار جو آواز ٻڌڻ ۾ آيو، جيڪو چئي رهيو هو ته حَيُّوُم! اڳتي وڌ! مسلمان، مشرڪ کي پنهنجي اڳيان ان حالت ۾ ڏٺو جو اهو پٺيءَ پير ڪريو، وڏي ڏٺائين ته ان جي نڪ تي ڌڪ جو نشان هو ۽ منهن قاتل هوس. جهڙوڪر ڪوڙي سا ماريو ويو هجي ۽ سڄو ساڻو ٿيو پيو هو. ان انصاري مسلمان اچي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي اهو قصو ٻڌايو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "تون سچ پيو چوين، اها ٽئين آسمان تان پهتل مدد هئي." (1)

ابوداؤد مازني جو چوڻ آهي ته آئون هڪ مشرڪ کي مارڻ لاءِ ڊوڙي رهيو هوس ته اوچتو ان جو سر منهنجي ترار لڳڻ کان پهرين ڪپجي وڃي ڪريو. آئون سمجهي ويس ته ان کي منهنجي بدران ڪنهن ٻئي ماريو آهي.

هڪ انصاري. حضرت عباس رضي الله عنه بن عبدالمطلب کي قيد ڪري آيو ته حضرت عباس رضي الله عنه چوڻ لڳو ته "والله! مون کي هن ڪونه جهليو آهي، مون کي ته هڪ بنا وارن واري همراھ پڪڙيو

<sup>1</sup> - صحيح مسلم - (6 / 307) (حديث نمبر 4563)

آهي، جيڪو ڏاڍو سهڻو هو ۽ هڪ چٽڪري گهوڙي تي سوار هو. هاڻي اهو مونڪي ماڻهن ۾ نظر نه پيو اچي. "انصاريءَ چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! هن کي مون جهليو آهي." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته چپ ڪر. الله هڪ بزرگ فرشتي وسيلي تنهنجي مدد ڪئي آهي.

**ابليس جو ميدان ڇڏي ڀڄڻ:-** جيئن ته اسين ٻڌائي چڪا آهيون ته ابليس لعين، سراقه بن مالڪ بن جعشر مدلجي جي شڪل ۾ آيو هو ۽ اڃا مشرڪن کان ڌار نه ٿيو هو. پر جڏهن هن مشرڪن خلاف فرشتن کي وڙهندي ڏٺو ته پويان پير ڪري ڀڄڻ لڳو. پر حارث بن هشام کيس جهلي ورتو. هن سمجهيو ته اهو واقعي سراقه آهي، پر ابليس، حارث جي چاٽيءَ ۾ مڪ هنڻي ته هو ڪري پيو ۽ ابليس وٺي ڀڳو. مشرڪ چوڻ لڳا ته سراقه ڪيڏانهن پيو وڃين؟ ڇا تو ائين ڪونه چيو هو ته تون اسان جو مددگار آهين، اسان کان ڌار نه ٿيندين؟ هن ورائيو ته آئون اها شيءِ پيو ڏسان جيڪا توهان نٿا ڏسي سگهو. مون کي الله کان ڊپ ٿو ٿئي ۽ الله وڏي سخت سزا ڏيڻ وارو آهي. ان کانپوءِ ڀڄي وڃي سمنڊ ۾ لڪو.

**مشرڪن جي هار:-** ٿوري دير کانپوءِ مشرڪن جي لشڪر ۾ نااميدي ۽ بيچيني ظاهر ٿيڻ لڳي. مسلمانن جي لڳاتار سخت حملن ڪري سندن صفون ٽٽي پيون هيون. ويڙهه جي اچي پڄاڻي ٿي. پوءِ مشرڪن جا ٽولا ڇڙوڇڙ ٿي پئتي هٽيا ۽ انهن ۾ پاڇ پئجي ويئي. مسلمانن کين ماريندي، ڪهندي ۽ ٻڌندي سندن پيڇو ڪيو. تان ته کين ڀرپور شڪست ملي وئي.

**ابوجهل جي آڪڙ:-** طاغوت اڪبر، ابوجهل جڏهن پنهنجي لشڪر ۾ بيچيني ڦهلجندي ڏٺي ته هن چاهيو ته ان وهڪري آڏو (بند وانگر) بيهي وڃي. تنهنڪري هو پنهنجي لشڪر کي للڪاريندو آڪڙ ۽ وڏائيءَ سان چوڻ لڳو ته سراقه جي ميدان ڇڏڻ تي توهان کي همت نه هارڻ گهرجي. ڇو ته ان محمد ﷺ سان اڳيئي سازباز ڪري ڇڏي هئي. توهان تي عتب ۽ شيبه ۽ وليد جي قتل جو ڊپ به سوار نه ٿيڻ ڪپي. ڇو ته انهن اُٻهراڻيءَ کان ڪم ورتو هو. لات ۽ عزي جو قسم! اسان تيسٽائين نه موٽنداسين، جيستائين کين رسين ۾ نه ٻڏي وٺون. ڏسو! توهان مان ڪير به انهن جي ڪنهن ماڻهوءَ کي قتل نه ڪري، پر کين پڪڙيو ۽ گرفتار ڪريو ته جيئن اسين کين سندن حرڪتن جو مزو چڪايون. پر کيس ان هٿ جي حقيقت جو پتو سگهوئي پئجي ويو. ڇو ته ٿوري دير کانپوءِ مسلمانن جي جوابي حملن جي تيزيءَ ڪري مشرڪن جي صفن ۾ قوت پئجي وئي، پر ابوجهل اڃا به پنهنجي چوڌاري مشرڪن جو ٽولو بيهارڻ ويڙهه ۾ رڌل هو. ان ٽولي ابو جهل جي چوڌاري تلوارن ۽ نيزن جو لوڙهو ڏئي ڇڏيو هو. پر اسلامي لشڪر جي طوفان کين ڇڙوڇڙ ڪري ڇڏيو ۽ ابوجهل نظر اچڻ لڳو.

مسلمانن ڏٺو ته اهو هڪ گهوڙي تي چڪر لڳائي رهيو هو. هوڏانهن سندس موت بن انصاري جوان هٿان سندس زندگيءَ جو خاتمي جو منتظر هو.

**ابوجهل جو قتل:-** حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه جو بيان آهي ته آئون بدر جي ڏينهن صف ۾ بيٺل هوس. اوچتو مڙيس ته ڏٺم ته ڪاٻي ۽ ساڄي پاسي ۾ نوجوان بيٺا آهن. آئون اڃا کين ڏسي اچرج کائي رهيو هوس جو ايتري ۾ هڪ پنهنجي ٻئي ساٿيءَ کان لڪي مون کان پڇيو ته "چاچا! مون کي ابوجهل ڏيکاري ڇڏيو." مون چيو ته: "پاڻيتيا تون ان کي ڇا ڪندين؟ هن ورائيو ته: چون ٿا ته هو پاڻ سڳورن عليه السلام کي گهٽ وڌ ڳالهائي ٿو. ان هستيءَ جو قسم جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي! جي مون کيس ڏسي ورتو ته پوءِ تيسٽائين کانئس جدا نه ٿيندس، جيستائين اسان مان ڪو هڪ مري نه وڃي." سندن چوڻ آهي ته مون کي ان تي اچرج وڪوڙي ويو. ايتري ۾ ٻئي به مون کي اشاري سان سڏ ڪري ساڳي ڳالهه پڇي. سندن بيان آهي ته مون ٿوري دير کان پوءِ ڏٺو ته ابوجهل ماڻهن جي وچ ۾ ڦري رهيو آهي. مون چيو ته: "اڙي ڏسو نٿا! اهو اٿو توهان ٻنهي جو شڪار، جنهن بابت توهان مون کان پڇيو پئي." سندن چوڻ آهي ته اهو ٻڌندي ئي اهي ٻئي پنهنجيون تلوارون کڻي ڪاهي پيا ۽ هن کي ماري وڌائون ۽ پوءِ موتي پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ آيا. پاڻ سڳورن عليه السلام پڇيو ته: توهان مان ڪنهن قتل ڪيو آهي؟ ٻنهي چيو ته: "مون ماريو آهي." پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: پنهنجون پنهنجون تلوارون اڳهي چڪا آهيو؟ انهن چيو ته نه. پاڻ سڳورن عليه السلام ٻنهي جون تلوارون ڏٺيون ۽ فرمايو ته: "توهان ٻنهي قتل ڪيو آهي." باقي ابوجهل جو سامان معاذ بن عمرو بن جموح کي ڏنائون. ٻنهي حملو ڪندڙن جا نالا معاذ بن عمرو ۽ معاذ بن عفراء آهن. (1)

ابن اسحاق جو بيان آهي ته معاذ بن عمرو بن جموح رضي الله عنه ٻڌايو ته مون مشرڪن کان ابوجهل بابت ٻڌو ته ابو الحڪم جيڪو نيزن ۽ تلوارن جي سخت پهري ۾ هو، تنهن تائين ڪير به پڇي نه سگهندو. معاذ بن عمرو رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته جڏهن مون اها ڳالهه ٻڌي ته کيس نشانو بڻائي ان ڏانهن وڌڻ لڳس. جڏهن موقعو مليو ته مون حملو ڪيو ۽ اهڙو ڌڪ هنيو مانس جو سندس تنگ اڌ بڪيءَ کان ڪپجي اڏامي وئي. الله جو قسم! تنگ اڏامڻ مهل ائين پئي لڳي، چڻ اڪريءَ ۾ ڌڪ هڻڻ سان ڪڪڙي تپ ڏئي اڏامي وڃي. سندس چوڻ آهي ته: هوڏانهن مون ابوجهل کي ماريو ۽ هيڏانهن سندس پٽ عڪرم منهنجي ڪلهي تي تلوار وهائي ڪڍي، جنهن سان منهنجو هٿ ڪپجي

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/444، 2/568) مشڪوة (2/352). ڪن ٻين روايتن ۾ ٻيو نالو معوذ بن عفراء ٻڌايو آهي. (ابن هشام 1/635) ابوجهل جو سامان رڳو هڪ ماڻهوءَ کي ان ڪري ڏنو ويو جو پوءِ ان ئي جنگ ۾ معاذ (معوذ رضي الله عنه) بن عفراء شهيد ٿي ويا هئا. باقي ابوجهل جي تلوار حضرت عبدالله بن مسعود رضي الله عنه کي ڏني وئي. ڇو ته انهن ئي ابوجهل جو سر ڪپيو هو. (ڏسو سنن ابي داؤد (2/373)).



منهنجي ٻانهن جي ڪل سان لٽڪي پيو ۽ ويڙهه ۾ ڏڪيائي ٿيڻ لڳي. آئون ان حالت ۾ به سڄو ڏينهن وڙهيس پر جڏهن اهو مونکي سور ڪرڻ لڳو ته مون ان تي پنهنجو پير رکي ان کي زور سان ڇڪي ڌار ڪري ڇڏيو. (1) ان کان پوءِ ابوجهل وٽ معوذ بن عفراءَ رضي الله عنه پهتو. ابوجهل ڏڪيل هو. هن کيس اهڙو ڏڪ واهي ڪڍيو جو اتي ئي ڪري پيو، رڳو ساهه پئي هليس. ان کانپوءِ معوذ بن عفراءَ پاڻ به وڙهندي شهيد ٿي ويو.

جڏهن ويڙهه ختم ٿي ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "ڪير آهي جيڪو ڏسي اچي ته ابوجهل جو حشر ڪهڙو ٿيو؟" ان تي صحابه سڳورا سندس ڳولها ۾ لڳي ويا. حضرت عبدالله بن مسعود رضي الله عنه کيس اهڙي حالت ۾ ڏٺو جو اڃا ساهه کنيائين پئي. سندس سسيءَ تي پير رکيو ۽ سر ڪپڻ لاءِ ڏاڙهي جهلي چيائين ته: او الله جا دشمن! آخر الله توکي رسوا ڪيو نه؟ تنهن تي ابوجهل چيو ته: "مونکي ڇا جو رسوا ڪيو؟ ڇا جنهن ماڻهوءَ کي توهان ماريو آهي، ان کان وڌيڪ اعليٰ مرتبي وارو به ڪو آهي؟" يا جنهن کي توهان ماريو، ان کان مٿاهون ڪو آهي؟" پوءِ چيائين ته: "ڪاش! مونکي هاريو ڪندڙن بدران پيو ڪو ماري ها." ان کانپوءِ چوڻ لڳو. مونکي ڇڏڻ تي اڄ ڪنهن کٽيو؟ حضرت عبدالله بن مسعود رضي الله عنه کيس ٻڌايائون ته الله ۽ ان جي رسول صلى الله عليه وسلم ان کان پوءِ حضرت عبدالله بن مسعود رضي الله عنه جيڪو سندس سسيءَ تي پير رکي چڪو هو، چوڻ لڳو ته "او پڪرين جا ڌنار! تون مٿاهين ۽ ڏڪيءَ جاءِ تي چڙهي ويو آهين. واضح رهي ته عبدالله بن مسعود رضي الله عنه مڪي ۾ پڪريون چاريندو هو.

ان ڳالهه بولڻ کانپوءِ حضرت عبدالله بن مسعود رضي الله عنه سندس سر ڪپي ڇڏيو ۽ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي خدمت ۾ آڻي چيائين ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! هي آتو الله جي دشمن ابوجهل جو سر. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم تي پيرا فرمايو ته: "واقعي، ان الله جو قسم! جنهن کانسواءِ ڪير به عبادت لائق نه آهي." ان کانپوءِ فرمايائون: اللَّهُ أَكْبَرُ الْحَمْدُ لِلَّهِ الَّذِي صَدَقَ وَعْدُهُ وَنَصَرَ عَبْدَهُ وَهَزَمَ الْأَحْزَابَ وَحَدَّه " الله وڏو آهي، سڀ ساراهون الله لاءِ آهن، جنهن پنهنجو وعدو سڄو ڪري ڏيکاريو، پنهنجي بندي جي مدد ڪئي ۽ اڪيلي سر سڀني ٽولن کي ماري مات ڪيو."

پوءِ فرمايائون ته: هلو مون کي ان جو لاش ڏيکاريو. اسان پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي وٺي وڃي لاش ڏيکاريو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: هي هن امت جو فرعون آهي. (2)

<sup>1</sup> - حضرت معاذ بن عمرو بن جموح رضي الله عنه، حضرت عثمان رضي الله عنه جي خلافت تائين حيات هئا.

<sup>2</sup> مسند أحمد - (9 / 61) (حديث نمبر 4026)

ايمان جا روشن نقش:- حضرت عمير بن الحمار رضي الله عنه ۽ حضرت عوف بن حارث بن عفراء رضي الله عنه جي ايمان وڌائيندڙ ڪارنامن جو ذڪر گذري چڪو آهي. حقيقت ۾ هن ويڙهه ۾ قدم قدم تي اهڙا منظر ڏنا ويا، جن ۾ عقيدتي جي سگهه ۽ اصولن جي پختگي جتيءَ طرح محسوس ٿي ٿئي. هن ويڙهه ۾ پيءُ ۽ پٽ ۾، پيءُ ۽ پيءُ ۾ مقابلو ٿيو. اصولن جي اختلاف تي تلوارون اڀيون ٿيون ۽ مظلومن، ظالمن سان وڙهي پنهنجي ڪاوڙ جي باهه کي تڏو ڪيو.

1. ابن اسحاق، ابن عباس رضي الله عنه کان روايت آندي آهي ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم صحابه سڳورن کي فرمايو ته: "مون کي معلوم آهي ته بنو هاشم وغيره جا ڪي ماڻهو زوريءَ جنگ جي ميدان ۾ آندا ويا آهن، انهن کي اسان سان وڙهڻو ڪونهي. ان ڪري بنو هاشم جو ڪوبه ماڻهو ڪنهن جي واري ۾ اچي ته ان کي قتل نه ڪري ۽ ابوالبختري بن هاشم ڪنهن جي واري ۾ اچي ته ان کي قتل نه ڪري ۽ عباس بن عبدالمطلب رضي الله عنه ڪنهن جي واري ۾ اچي ته ان کي به قتل نه ڪري، ڇو ته اهي زوريءَ آندا ويا آهن." ان تي عتب جي پٽ حضرت ابو حذيفه رضي الله عنه چيو ته "اسين پنهنجي پيءُ، پٽن، ڀائرن ۽ ڪٿم قبيلي جي ٻين ماڻهن کي ماريون ۽ عباس کي ڇڏي ڏيون! الله جو قسم! جي هو مون سان ٽڪرايو ته آئون ته ان جو سر قلم ڪري ڇڏيندس." اها خبر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي پهتي ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم عمر بن الخطاب رضي الله عنه کي فرمايو ته: ڇا الله جي رسول جي چاچي جي منهن تي تلوار هنڻي ويندي! حضرت عمر رضي الله عنه چيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! مون کي موڪل ڏيو ته آئون تلوار سان هن جو سر قلم ڪري ڇڏيان. ڇو ته: الله جو قسم! اهو منافق ٿي ويو آهي."

ان کانپوءِ ابو حذيفه رضي الله عنه چوندو رهندو هو ته ان ڏينهن مون جيڪا ڳالهه ڪئي، ان جي ڪري مطمئن نه آهيان. لاڳيتو ڊپ رهندو اٿم. رڳو اها صورت آهي ته منهنجي شهادت ان جو ڪفارو بڻجي وڃي ۽ پوءِ نيٺ پاڻ ڀمامه واري جنگ ۾ شهيد ٿي ويو.

2. ابوالبختريءَ کي قتل ڪرڻ کان ان لاءِ جهليو ويو هو جو مڪي ۾ اهو ماڻهو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي ڪنهن به طرح جي تڪليف نه رسائيندو هو ۽ نه ئي ان پاران ڪا اڻوڻندڙ ڳالهه ٻڌڻ ۾ آئي. هو انهن ماڻهن منجهان هو، جن بني هاشم ۽ بني مطلب سان بائيڪاٽ ڪرڻ وارو معاهدو ڦاڙيو هو.

ان هوندي به ابوالبختريءَ کي ماريو ويو. ٿيو هيئن جو حضرت مجذر رضي الله عنه بن زياد بلوي سان هو ٽڪرائجي ويو. ان سان گڏ هڪ ٻيو به همراھ هو. ٻئي گڏوگڏ پئي وڙهيا. حضرت مجذر رضي الله عنه چيو ته: "ابوالبختري! پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم اسان کي اوهان جي قتل ڪرڻ کان جهليو آهي." ان چيو ته: "۽ منهنجو ساٿي؟" حضرت مجذر رضي الله عنه چيو ته: نه، الله جو قسم! اسان اوهان جي ساٿيءَ

ڪي نٿا ڇڏي سگهون. هن چيو ته تڏهن الله جو قسم آئون ۽ هي، ٻئي مرداسون. ان کانپوءِ ٻنهي لڙائي شروع ڪئي. مجذر رضي الله عنه جن مجبور ٿي ان کي ماري وڌو.

3. مڪي ۾ جاهليت جي زماني کان حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه ۽ اميه بن خلف ۾ ياري هئي. بدر جي ڏينهن اميه پنهنجي پٽ عليءَ جو هٿ جهلي بيٺو هو ته ايتري ۾ اتان کان حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه لنگهيو، جيڪو دشمنن کان قريل ڪي زرهون کڻي پئي ويو. اميه کين ڏسي چيو ته: ڇا توکي منهنجي گهرج آهي، آئون تنهنجن انهن زرهن کان چڱو آهيان. اڄ جهڙو ڏيک مون اڳي ڏٺو ئي ڪونهي. ڇا توکي خير جي گهرج ناهي؟ مطلب اهو هو ته جيڪو مون کي قيد ڪندو، ان کي فديي ۾ خير واريون پليون ڏاڍيون ڏيندس. اهو ٻڌي عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه زرهون اڇليون ۽ ٻنهي کي گرفتار ڪري اڳتي وڌيو.

حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه جو بيان آهي ته آءُ اميه ۽ ان جي پٽ جي وچ ۾ ٻئي هليس ته اميه پڇيو ته توهان ۾ اهو ڪير هو، جنهن پنهنجي ڇاتيءَ تي اٺ پڪيءَ جو ڀر لڳائي ڇڏيو هو؟ مون چيو ته اهي حضرت حمزة رضي الله عنه بن عبدالمطلب هو. اميه چيو ته: هي اهو ئي ماڻهو آهي، جنهن اسان ۾ تباهي مچائي ڇڏي هئي.

حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه جو بيان آهي ته واللہ آئون انهن ٻنهي کي وٺي رهيو هوس ته اوچتو حضرت بلال رضي الله عنه اميه کي مون سان ڏسي ورتو. (ياد رهي ته اميه، حضرت بلال رضي الله عنه کي مڪي ۾ ڏاڍو تنگ ڪندو هو.) حضرت بلال رضي الله عنه چيو ته: "او هو ڪافرن جو مهندار اميه بن خلف هاڻي يا ته آئون بچندس يا هي بچندو." مون چيو ته: "اي بلال رضي الله عنه هي منهنجو قبدي آهي." هن چيو ته "هاڻي يا ته آئون رهندس يا هي رهندو." پوءِ وڏي واڪي هڪل ڪيائين. "اي الله جا انصاريو هي آئون ڪافرن جو مهندار اميه بن خلف. هاڻي يا ته آئون رهندس يا هي رهندو." حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه جو بيان آهي ته ايتري ۾ ماڻهن اسان کي گهيري ورتو. آئون سندن بچاءُ ڪري رهيو هوس پر هڪ همراه تلوار سان سندس پٽ جي پير تي اهڙو ڌڪ هنيو جو هو گهوماتجي وڃي ڪريو. هوڏانهن اميه ايڏي زور سان رڙ ڪئي جو اهڙي مون اڳ ڪڏهن نه ٻڌي هئي. مون چيو ته ڀڃي جند ڇڏاءِ، پر اڄ ڀڃڻ جي گنجائش ڪانهي، خدا جو قسم آئون ڏرو به تنهنجي ڪم نٿو اچي سگهان. حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه جو بيان آهي ته ماڻهن پنهنجن تلوارن سان ٻنهي کي ڳيا ڳيا ڪري پورو ڪري ڇڏيو. ان کانپوءِ حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه جن چونڊو رهندو هو. ته "الله بلال تي رحم ڪري، منهنجون زرهون به ويون ۽ منهنجي قبديءَ بابت به مون کي پريشان ڪري ڇڏيائين."

زادالمعاد ۾ علامه ابن قير لکيو آهي ته: حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه اميه بن خلف کي چيو ته: گوڏن ڀر ويهي ره. هو ويهي رهيو ۽ حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه پاڻ کي ان جي مٿان وجهي ڇڏيو. پر ماڻهن هيٺان تلوارون هڻي اميه کي ماري وڌو. کجهه تلوارن سان حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه جو پير به گهاٽجي ويو. (1)

4. حضرت عمر بن الخطاب رضي الله عنه پنهنجي مامي عاص بن هشام بن مغيره کي ماري وڌو.  
5. حضرت ابوبڪر صديق رضي الله عنه پنهنجي پٽ عبدالرحمان کي، جيڪو ان وقت مشرڪن سان هو، هڪ کڻي ته او پليت منهنجو مال کڻي آهي؟ عبدالرحمان جواب ۾ چيو ته:  
لَمْ يَبْقَ غَيْرُ شَكَّةٍ وَيَعُوبٌ... وَصَارَ يُقْتَلُ ضَلَالِ الشَّيْبِ  
يعني: هتيار، تڪي گهوڙي ۽ هن تلوار کانسواءِ کجهه به نه بچيو آهي، جيڪو پوڙهپڻ جي گمراهيءَ جو خاتمو ڪري سگهي. (2)

6. جنهن مهل مسلمانن، مشرڪن کي جهلڻ شروع ڪيو ته اوڏي مهل پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم مورچي ۾ وينل هئا ۽ حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه تلوار کڻي در تي پهرو ڏئي رهيو هو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ڏٺو ته حضرت سعد رضي الله عنه کي اها ڳالهه نه پئي وئي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پڇيو ته: "اي سعد الله جو قسم! ائين پيو لڳي ته توکي مسلمانن جو اهو ڪم نه پيو وئي." انهن ورائيو ته: "هاڻو الله جو قسم! يا رسول الله صلى الله عليه وسلم مشرڪن سان اسان جي پهرين ويڙهه آهي، جنهن جو موقعو الله پاڪ اسان کي ڏنو آهي. ان ڪري مشرڪن کي جيئرو ڇڏڻ بدران مون کي اها ڳالهه وڌيڪ وڻندي ته انهن کي دل کولي مارجي ۽ چڱيءَ طرح ڪچلي ڇڏجي."

7. هن جنگ ۾ حضرت عكاشه بن محسن اسدي رضي الله عنه جي تلوار ٽٽي پئي. هو پاڻ سڳورن جي خدمت ۾ حاضر ٿيو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کين ڪاٺ جي هڪ پتي ڏني ۽ فرمايو ته: عكاشه رضي الله عنه! هن سان وڃي ويڙهه ڪر. عكاشه رضي الله عنه اها پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کان وٺي هلائي ته اها هڪ ڊگهي، مضبوط چمڪات ڪندڙ اڇي تلوار بڻجي وئي. پوءِ هن ان تلوار سان ئي جنگ ڪئي، تان ته الله مسلمانن کي فتح ڏني. ان تلوار جو نالو "عون" يعني "مدد" رکيو ويو هو. اها تلوار سدائين عكاشه رضي الله عنه وٽ رهي ۽ پاڻ ان سان ئي وڙهندو هو. نيٺ پاڻ حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جي خلافت جي ڏينهن ۾ مرتدن سان وڙهندي شهيد ٿيو. ان وقت به اها تلوار وٽن هئي.

<sup>1</sup> - زادالمعاد (89/2)، صحيح بخاري (308/1) ۾ اهو واقعو ٿورو وڌاري سان ڏنل آهي.

<sup>2</sup> سيرة ابن هشام - (638 / 1)

8. ويڙهه پوري ٿيڻ کان پوءِ حضرت مصعب بن عمير رضي الله عنه پنهنجي ڀاءُ ابو عزيز بن عمير عبدري وٽان لنگهيو. ابو عزيز مسلمانن سان وڙهيو هو ۽ ان مهل هڪ انصاري صحابي سندس هٿ ٻڌي رهيو هو. حضرت مصعب رضي الله عنه جن ان انصاريءَ کي چيو ته: "هن ماڻهوءَ وسيلي پنهنجي هٿ مضبوط ڪجان. هن جي ماءُ وڏي پئسي واري آهي، اها توکي ڪافي فديو ڏيندي." ان تي ابو عزيز پنهنجي ڀاءُ مصعب رضي الله عنه کي چيو ته: "ها تون منهنجي ڀارت پيو ڪرين" مصعب رضي الله عنه چيو ته: (ها) تنهنجي بدران هي انصاري منهنجو ڀاءُ آهي.

9. جڏهن مشرڪن جا لاش ڪوهه ۾ وجهڻ جو حڪم ڏنو ويو ۽ عتبه بن ربيعه کي ڪوهه ڏي گسراڻيندا کڻي وڃي رهيا هئا ته پاڻ سڳورن عليه السلام (عتبه) جي فرزند حضرت ابو حذيفه رضي الله عنه جو ڏڪارو چهرو ڏسي فرمايو ته: "ابوحذيفه! شايد پنهنجي پيءُ لاءِ تنهنجي دل ۾ ڪجهه (همدرديءَ جا) جذبا آهن؟" هن ورائيو ته: "نه، واللہ يا رسول الله صلي الله عليه وسلم! مون کي پنهنجي پيءُ ۽ ان جي مارڻ بابت ڪو فڪر ڪونهي. باقي آئون پنهنجي پيءُ بابت ڄاڻندو هوس ته هو ڏاهو ماڻهو آهي، وڏي نظر ۽ فضل ۽ ڪمال وارو آهي. ان ڪري آئون آس لڳائي وينو هوس ته اهي چڱايون کيس اسلام تائين پهچائي ڇڏينديون. پر ان جي پڄاڻي پنهنجي توقع جي ابتڙ ڪفر تي ٿيندي ڏسي مون کي ڏک ٿيو آهي." ان تي پاڻ سڳورن عليه السلام حضرت ابو حذيفه رضي الله عنه جي حق ۾ خير جي دعا گهري ۽ کين آت ڏني.

پنهني ڌرين جا مقتول:- اها ويڙهه، مشرڪن جي ڀڙي هار ۽ مسلمانن جي ڀڙي فتح سان پڄاڻيءَ تي پهتي. ان ۾ چوڏهن مسلمان شهيد ٿيا، جن مان ڇهه مهاجر ۽ اٺ انصار هئا. باقي مشرڪن کي وڏو نقصان رسيو. سندن ستر چٽا مٿا ۽ ستر قيد ڪيا ويا، جيڪي گهڻو ڪري سندن اڳواڻ ۽ چڱا مڙس هئا.

جنگ جي پڄاڻيءَ تي پاڻ سڳورن عليه السلام مٿن وٽ بيهي فرمايو ته: "توهان پنهنجي نبيءَ لاءِ ڪيڏو نه برو گهرايو ۽ قبيلو هئا. توهان مون کي ڪوڙو سمجهيو، جڏهن ته بين تصديق ڪئي. توهان مون کي بيواهو ڇڏي ڏنو، جڏهن ته بين منهنجي حمايت ڪئي. توهان مون کي ڪڍي ڇڏيو، جڏهن ته بين مون کي پناهه ڏني." ان کانپوءِ حڪم ڏنائون، جنهن تي انهن کي گيهلي بدر جي هڪ ڪوهه ۾ ڦٽو ڪيو ويو.

حضرت ابو طلحه رضي الله عنه کان روايت آهي ته: پاڻ سڳورن عليه السلام جي حڪم تي بدر واري ڏينهن قريشن جي چوويهه وڏن سردارن جا لاش بدر جي هڪ گندي ڪوهه ۾ اڇليا ويا. پاڻ سڳورن عليه السلام جو دستور هو ته جڏهن ڪنهن قوم کان ڪٽيندا هئا ته تي ڏينهن جنگ جي ميدان ۾ رهندا هئا. ان ڪري

جڏهن بدر ۾ ٽيون ڏينهن ٿيو ته پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم سان پاڻ سڳورن ﷺ جي ان تي  
 ڪجاو وڌو ويو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ پنڌ هليا ۽ پٺيان صحابه سڳورا به هليا. تان ته پاڻ  
 سڳورا ﷺ ڪوهه وٽ اچي بيٺا. پوءِ انهن جو نالو ۽ پيءُ جو نالو وٺي سڏڻ لڳا. اي فلاڻا پت فلاڻي  
 جا ۽ اي فلاڻا پت فلاڻي جا! ڇا اها ڳالهه چڱي نه هئي ته توهان الله ۽ ان جي رسول جي اطاعت ڪريو  
 ها؟ ڇو ته اسان سان اسان جي پالڻهار واعدو ڪيو هو. ان کي سڄو پاتوسين ته ڇا توهان سان توهان  
 جي رب جيڪو واعدو ڪيو هو اهو توهان سڄو پاتو؟ حضرت عمر رضه عرض ڪيو ته: يا رسول الله  
 ﷺ! توهان بي جان بتن سان ڪهڙيون پيا ڳالهيون ڪريو؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ان هستيءَ  
 جو قسم! جنهن جي هٿ ۾ محمد ﷺ جي جان آهي، آئون جيڪي چوان پيو اهو اوهان هنن کان  
 وڌيڪ نه پيا ٻڌو. هڪ ٻي روايت ۾ آهي ته توهان هنن کان وڌيڪ ٻڌڻ وارا نه آهيو، باقي اهي وراڻي  
 نٿا ڏئي سگهن. (1)

### مڪي ۾ هارائڻ جي خبر پهچڻ:- مشرڪن، بدر جي ميدان مان ڇڙوڇڙ ٿي ڀڄڻ کانپوءِ

مڪي ڏانهن منهن ڪيو. شرم کان کين سمجهه ۾ نه پئي آيو ته مڪي ۾ ڪيئن داخل ٿجي.  
 ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته: سڀ کان اڳي جيڪو ماڻهو قرينش جي هار جي خبر ڪڍي مڪي  
 پهتو، اهو حيسمان بن عبدالله خزاعي هو. ماڻهن ان کان پڇيو ته: پوئتي جي ڪهڙي خبر آهي؟ ان  
 وراڻيو ته: عتب بن ربيع، شيبه بن ربيع، ابوالحڪم بن هشام، اميه بن خلف ۽ ڪجهه ٻين سردارن  
 جا نالا وٺندي. اهي سڀ مارجي ويا آهن. جڏهن هن مثل سردارن جا نالا ڳڻائڻ شروع ڪيا ته صفوان  
 بن اميه، جيڪو حطير ۾ ويٺو هو، تنهن چيو ته: الله جو قسم! جي هي هوش ۾ آهي ته هن کان مون  
 بابت پڇو. ماڻهن پڇيو ته صفوان بن اميه جو ڇا ٿيو؟ هن چيو ته اهو ته هتي حطير ۾ ويٺو آهي،  
 باقي هن جي پيءُ ۽ پيءُ کي مارجندي مون پاڻ ڏٺو آهي.

پاڻ سڳورن ﷺ جي غلام ابو رافع جو بيان آهي ته آئون تڏهن حضرت عباس رضه جو  
 غلام هوس. اسانجي گهر ۾ اسلام اچي چڪو هو. حضرت عباس رضه جن مسلمان ٿي چڪا هئا.  
 امر الفضل رضي الله عنها جن مسلمان ٿي چڪيون هيون. آئون به مسلمان ٿي چڪو هوس پر  
 حضرت عباس رضه اڃا پنهنجو اسلام لڪايو پئي. هوڏانهن ابولهب بدر جي لڙائيءَ ۾ نه ويو هو.  
 جڏهن کيس خبر پئي تڏهن الله ان تي ذلت ۽ رسوائِي طاري ڪري ڇڏي ۽ اسان کي پاڻ سڳهه ۽ عزت  
 محسوس ٿي. آئون ڪمزور ماڻهو هوس ۽ تير ٺاهيندو هوس ۽ زمزم جي حجري ۾ ويهي تيرن جا  
 منيا گهڙيندو رهندو هوس. والله! ان مهل آئون حجري ۾ ويهي تير گهڙي رهيو هوس. مون وٽ امر

1 - متفق عليه - مشڪوة (2/345).

الفضل رضي الله عنها ويني هئي ۽ مليل اطلاع تي خوش هئي جو ايتري ۾ ابولهب پنهنجا ٻئي پير گسڪائيندو اچي پهتو ۽ حجري جي در تي ويهي رهيو. سندس پٺ مون ڏانهن هئي. اڃا هو وينو مس هو ته اوچتو گوڙ ٿيو. ايتري ۾ ابوسفیان بن حارث بن عبدالمطلب پهچي ويو. ابولهب ان کي چيو ته مون وٽ اچ. منهنجي ڄمار جو قسم تو وٽ ڪا خبر (ضرور) آهي. هو ابولهب وٽ ويهي رهيو. ماڻهو بيٺا هئا. ابولهب چيو ته: پاڻيتيا، همراهن جا حال احوال ڏي؟ هن وراڻيو ته ڪجهه نه بس انهن سان ٽڪراءُ ٿيو ۽ اسان پنهنجا ڪنڌ سندن حوالي ڪري ڇڏيا. انهن کي جيئن وڻيو تي تيئن اسان کي ڪنائون ۽ جيئن کين وڻيو تي، تيئن قيد ڪيائون ۽ الله جو قسم آئون ان هوندي به کين ملامت نٿو ڪري سگهان. حقيقت ۾ اسان جو ٽڪراءُ ڪجهه اهڙن ڳورن چٽن ماڻهن سان ٿيو هو، جيڪي آسمانن ۽ ڌرتيءَ جي وچ ۾ چٽڪمرن گهوڙن تي سوار هئا. الله جو قسم! انهن ڪنهن شيءِ کي نٿي ڇڏيو ۽ نه ئي ڪاشيءَ انهن آڏو بيهي ٿي سگهي.

ابو رافع رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته مون خيمي جو پانڌ پنهنجي هٿ سان مٿي کڻي چيو ته الله جو قسم! اهي فرشتا هئا؟ اهو ٻڌي ابولهب پنهنجو هٿ کنيو ۽ منهنجي منهن تي ٽٽڙ واهي ڪڍيو. آئون ان سان وڙهي پيس پر هن مون کي کڻي زمين تي دسيو ۽ پوءِ مون تي چڙهي مون کي مارڻ لڳو. آئون هيٺو جو هئس، پر ايتري ۾ ام الفضل رضي الله عنها اتي خيمي جو هڪ ڪلو کيس مٿي تي واهي ڪڍيو ۽ گڏوگڏ چيائين ته: هن جو مالڪ ڪونهي، ان ڪري هن کي هيٺو پيو سمجهين؟ ابوجهل خوار ٿي اٿيو ۽ هليو ويو. الله جو قسم! ان کان رڳو ست راتيون پوءِ الله کيس عدس (هڪ قسم جو طاعون) ۾ مبتلا ڪري پورو ڪري ڇڏيو. عدس جي ڳوڙهي کي عرب ڏاڍو نياڳو سمجهندا هئا، ان ڪري (مرڻ کانپوءِ) سندس پٽن به کيس ائين ڇڏي ڏنو ۽ اهو تي ڏينهن ڪفن دفن کانسواءِ پيو رهيو. ڪير به سندس ويجهو نٿي ويو ۽ نه ئي ان کي پورڻ جي ڪوشش ڪئي وئي. جڏهن سندس پٽن کي ڊپ ٿيو ته ان طرح ڇڏي ڏيڻ سان ماڻهو کين ملامت ڪندا ته انهن هڪ ڪڏو ڪوتي ان ۾ ڪائين سان لاش ڌڪي وڌو ۽ پري کان ئي پٿر اچلي ڍڪي ڇڏيائون.

مطلب ته ان طرح مڪي وارن کي بدر جي ميدان ۾ بچڙي شڪست جي خبر ملي ۽ انهن تي ڏاڍو برو اثر پيو. ويندي هنن مٿن تي روح راڙو ڪرڻ کان روڪي وڌو ته متان مسلمانن کي سندن ڌڪ تي خوش ٿيڻ جو موقعو نه ملي وڃي.

ان سلسلي ۾ هڪ دلچسپ واقعو اهو آهي ته بدر جي جنگ ۾ اسود بن عبدالمطلب جا ٽي پٽ مارجي ويا. ان ڪري هن انهن لاءِ روئڻ پئي گهريو. هو انڌو هو، هڪ رات هن هڪ ماڻهيءَ جي پار ڪيڙ جا آواز ٻڌا. جهٽ پنهنجي غلام کي اهو چئي موڪليائين ته "تورو ڏسي اچ ڇا روئڻ جي اجازت

ملي وئي آهي؟ ڇا قريش پنهنجن مٿن لاءِ روئن پيا ته جيئن اٿون به پنهنجي پٽ ابو حڪيمه تي لڙڪ ڳاڙي وٺان، ڇو ته منهنجو هانءُ اڀامي رهيو آهي." غلام موتي اچي ٻڌايو ته اها مائي پنهنجي وڃايل اٺ لاءِ پئي روئي. اسود اهو ٻڌي پاڻ جهلي نه سگهيو ۽ بي اختيار چيائين ته:

أَتَبَكِّي أَنْ يَضِلَّ لَهَا بَعِيرٌ ... وَيَمْنَعُهَا مِنَ النَّوْمِ السَّهْوُ  
فَلَا تَبَكِّي عَلَيَّ بَكَرٍ وَلَكِنَّ ... عَلَيَّ بَدْرٍ تَقَاصَرَتْ الْجُدُودُ  
عَلَيَّ بَدْرٍ سَرَاةٍ بَنِي هُصَيْصٍ ... وَمَخْزُومٍ وَرَهْطِ أَبِي الْوَلِيدِ  
وَبَكِّي إِنْ بَكَيتَ عَلَيَّ عَقِيلٍ ... وَبَكِّي حَارِثًا أَسَدَ الْأَسُودِ  
وَبَكِّيهِمْ وَلَا تَسْمِي حَمِيْعًا ... وَمَا لِأَبِي حَكِيمَةَ مِنْ نَدِيدٍ  
أَلَا قَدْ سَادَ بَعْدَهُمْ رِجَالٌ ... وَلَوْ لَا يَوْمٌ بَدْرٍ لَمْ يَسُودُوا

يعني: ڇا هوءُ ان ڳالهه تي روئي ٿي ته ان جو اٺ وڃائجي ويو آهي؟ ۽ ان ڳالهه جي ڪري سندس نند حرام ٿي وئي آهي؟ تون اٺ تي نه روئ. پر بدر تي روئ، جتي نصيب ڦٽي ويا. ها ها! بدر تي روئ جتي بني هصيص، بني مخزوم ۽ ابوالوليد جي قبيلي جا مهندار آهن. جيڪڏهن روئو ٿي اٿي ته عقييل تي روئ ۽ حارث تي روئ، جيڪو شينهن مڙس هو. تون انهن ماڻهن لاءِ روئ ۽ سڀني جا نالا نه وٺ ۽ ابو حڪيمه جو ته ڪو مت ٿي نه هو. ڏس! ان کانپوءِ اهڙا اهڙا ماڻهو سردار ٿي وينا آهن جو جيڪڏهن بدر جو ڏينهن نه هجي ها ته اهي سردار نه ٿي سگهن ها.

**فتح جي خبر مديني ۾ پهچڻ:-** هوڏانهن مسلمان پوريءَ طرح جنگ کٽي ويا ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه مديني وارن کي تڪڙي خوشخبري پهچائڻ لاءِ ٻه قاصد موڪليا. هڪ حضرت عبدالله بن رواح رضي الله عنه کي مديني جي مٿئين حصي جي رهواسين ڏانهن موڪليو ۽ ٻيو حضرت زيد بن حارثه رضي الله عنه جن کي مديني جي هيٺاهين جي رهاڪن ڏانهن موڪليو ويو.

ان دوران يهودين ۽ منافقن افواهه ڦهلائي مديني ۾ افراتفري مچائي ڇڏي هئي. ايستائين جو اهو افواهه به پکيڙيو ويو هو ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه قتل ڪيا ويا آهن، تنهنڪري جڏهن هڪ منافق، حضرت زيد بن حارثه رضي الله عنه کي پاڻ سڳورن صلى الله عليه جي ڏاچي قصواء تي ايندي ڏٺو ته چيائين ته: "سچ پچ محمد صلى الله عليه قتل ڪيو ويو آهي. ڏسو! هيءُ سندس ئي ڏاچي آهي. اسين ان کي سڃاڻون ٿا ۽ اهو زيد بن حارثه رضي الله عنه آهي، جيڪو هارائي پڳو آهي ۽ ايترو ڊنل آهي جو کيس سمجهه ۾ به نه پيو اچي ته هو ڇا چئي." بهرحال جڏهن ٻئي قاصد ويجهو پهتا ته مسلمانن کين گهيري وڌو ۽ کانئن خبرچار وٺڻ لڳا. نيٺ کين پڪ ٿي ته مسلمان کٽي ويا آهن. ان کانپوءِ چؤطرف خوشيءَ جي لهر ڊوڙي وئي ۽



مديني جون گهتيون الله اڪبر ۽ الحمد لله جي نعرن سان گونججي ويون ۽ جيڪي وڏا مسلمان مديني ۾ رهجي ويا هئا، اهي پاڻ سڳورن ﷺ کي مبارڪون ڏيڻ لاءِ بدر جي رستي تي هلي پيا.

حضرت اسام بن زيد رضي الله عنه جو بيان آهي ته اسان وٽ ان مهل اها خبر پهتي، جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي نياڻي بيبي رقيه رضي الله عنها کي، جيڪا حضرت عثمان رضي الله عنه سان پڙهيل هئي، دفن ڪري قبر تي مٽي وجهي چڪا هئاسين. ان جي سار سنڀال لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ مون کي به حضرت عثمان رضي الله عنه سان گڏ مديني ۾ ڇڏي ڏنو هو.

**غنيمت جي مال جو مسئلو:** - پاڻ سڳورا رضي الله عنها جنگ ختم ٿيڻ کانپوءِ تي ڏينهن بدر جي ميدان ۾ رهيا ۽ اڃا پاڻ سڳورا رضي الله عنها اتان روانا نه ٿيا هئا جو غنيمت جي مال بابت لشڪر ۾ اختلاف ٿي پيو ۽ جڏهن اختلاف وڌيو ته پاڻ سڳورن رضي الله عنها حڪم ڪيو ته جنهن وٽ جيڪي ڪجهه آهي، اهو پاڻ سڳورن رضي الله عنها جي حوالي ڪري ڇڏي. صحابه سڳورن حڪم جي پوڻاري ڪئي ۽ ان کانپوءِ الله تعاليٰ وحيءَ ذريعي ان مسئلي جو حل ڏسيو.

حضرت عبادة بن صامت رضي الله عنه جو بيان آهي ته اسان پاڻ سڳورن رضي الله عنها سان گڏ مديني کان هلي بدر ۾ پهتاسين ته جنگ ٿي پئي ۽ الله تعاليٰ دشمنن کي هار نصيب ڪئي. پوءِ هڪ ٽولو انهن جي پويان لڳو ۽ کين گهيري مارڻ لڳو. هڪ ٽولو وري غنيمت جي مال تي ڪاهي پيو ۽ اهو گڏ ڪرڻ ۽ ورهائڻ لڳو. هڪ ٽولو پاڻ سڳورن رضي الله عنها کي گهيري ۾ آڻي بيٺو هو ته متان دشمن ڏوڪي سان پاڻ سڳورن رضي الله عنها کي ڪو اهنج نه پهچائين. جڏهن رات ٿي ۽ ماڻهو موتي آيا ته غنيمت جو مال ميڙيندڙن چيو ته اهو اسان ميڙيو آهي، تنهنڪري ان ۾ ڪنهن ٻئي جو ڪوبه حصو ڪونهي. دشمنن جو تعاقب ڪرڻ وارن چيو ته "توهان، اسان کان وڌيڪ ان جا حقدار نه آهيو. ڇو ته هن مال کان دشمنن کي ڀڄائڻ ۽ پري رکڻ جو ڪم اسان ڪيو هو ۽ جيڪي پاڻ سڳورن رضي الله عنها جي حفاظت ڪري رهيا هئا، انهن چيو ته "اسان کي پوءِ هو ته وري اوهان کي غافل ڏسي ڪو تڪليف نه پهچائين. ان ڪري اسان پاڻ سڳورن رضي الله عنها جي حفاظت ۾ مشغول رهياسين." ان تي الله تعاليٰ هيءَ آيت نازل ڪئي.

﴿يَسْأَلُونَكَ عَنِ الْأَنْفَالِ قُلِ الْأَنْفَالُ لِلَّهِ وَالرَّسُولِ فَأَتَقُوا اللَّهَ وَأَصْلِحُوا ذَاتَ بَيْنِكُمْ وَأَطِيعُوا اللَّهَ وَرَسُولَهُ إِن كُنْتُمْ مُؤْمِنِينَ (1)﴾ (الانفال)

"توڪان غنيمت جي مال بابت سوال ڪن ٿا. تون چئو ته غنيمت جو مال الله ۽ ان جي رسول لاءِ آهي. بس الله کان ڊڄو ۽ پاڻ ۾ تعلقن کي سناريو ۽ الله ۽ ان جي رسول جي تابعداري ڪريو. جيڪڏهن واقعي مؤمن آهيو."

ان کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ غنيمت جو مال مسلمانن ۾ ورهائي ڇڏيو. (1)

**اسلامي لشڪر جو مديني ڏانهن وڌڻ:** - پاڻ سڳورا ﷺ تي ڏينهن بدر ۾ رهي مديني روانا ٿيا. پاڻ سڳورن ﷺ سان مشرڪن جا باندي به هئا ۽ غنيمت جو مال پڻ هو. پاڻ سڳورن ﷺ ان جي سنڀال جو ڪم حضرت عبدالله بن كعب رضى الله عنه کي سونپيو هو. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ صفراء جي واديءَ مان ٻاهر نڪتا ته ڏڙي ۽ نازيه جي درميان هڪ ڏڙي تي لٿا ۽ اتي خمس (پنجون حصو) ڌار ڪري باقي غنيمت جو مال مسلمانن ۾ ورهائي ڇڏيائون.

صفراء ۾ ئي پاڻ سڳورن ﷺ حڪم ڏنو ته نصر بن حارث کي قتل ڪيو وڃي. اهو بدر جي لڙائيءَ ۾ مشرڪن جو علمبردار هو ۽ اهو قريشن جي وڏن ڏوهارين منجهان هو. اسلام دشمني ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي تڪليف پهچائڻ ۾ سڀني کان اڳڀرو هو. پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم تي حضرت علي رضى الله عنه ان جو سر قلم ڪري ڇڏيو.

ان کان پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ جڏهن عرقِ الظبية پهتا ته عقبه بن ابي معيط کي مارڻ جو حڪم ڏنائون. اهو پاڻ سڳورن ﷺ کي تڪليف رسائيندو هو. جنهن جو ذڪر گذري چڪو آهي. هي اهو ئي ماڻهو هو، جنهن پاڻ سڳورن ﷺ جي پنن تي نماز پڙهندي ان جي اوجھري رکي ڇڏي هئي ۽ ان ئي ماڻهوءَ پاڻ سڳورن ﷺ جي گجڙيءَ ۾ چادر ويڙهي پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ جي ڪوشش ڪئي هئي ۽ جيڪڏهن حضرت ابوبڪر رضى الله عنه وقت تي نه پهچي ها ته هن (پنهنجي ليکي) پاڻ سڳورن ﷺ کي گھٽا ڏئي ماري ڇڏيو هو. جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ سندس قتل جو حڪم ڪيو ته چوڻ لڳو ته "يا محمد ﷺ! ٻارن لاءِ ڪير آهي؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "باه" (2) ان کانپوءِ حضرت عاصم بن ثابت انصاري رضى الله عنه يا حضرت علي رضى الله عنه ان جو سر ڪپي ڇڏيو.

**مبارڪون ڏيندڙن جو اچڻ:** - ان کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ "روحاء" وٽ پهتا ته اهي مسلمان مهندار اچي پهتا، جيڪي ٻنهي قاصدن کان سوپ جي بشارت ٻڌي پاڻ سڳورن جي آجيان ڪرڻ ۽ مبارڪون ڏيڻ لاءِ مديني مان نڪتا هئا. جڏهن انهن مبارڪون ڏنيون ته حضرت سلمه بن سلامه رضى الله عنه چيو ته: "توهان اسان کي ڇا جون مبارڪون پيا ڏيو. اسانجو تڪراءُ الله جو قسم! متو ڪٿل پوڙهن سان ٿيو هو، جيڪي انن جهڙا هئا." ان تي پاڻ سڳورن ﷺ مشڪي فرمايو ته پائيتيا؟ اهي ئي ته قوم جا مهندار هئا.

<sup>1</sup> - مسند احمد (323/5، 324) - حاڪم (326/2).

<sup>2</sup> - اها حديث صحيحين ۾ آيل آهي. ڏسو سنن ابي دائود مع شرح عون المعبود (12/3).

ان کان پوءِ حضرت اسيد بن حضير رضي الله عنه عرض ڪيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! ساراھ آھي الله جي جنھن اوهان کي سوڀارو ڪيو ۽ اوهان جون اکيون تڏيون ڪيون. الله جو قسم! مون اهو سمجھي بدر هلڻ کان ڪونه ڪيڀايو هو ته توهان جو دشمنن سان تڪراءَ ٿيندو. پر مون ته سمجھيو پئي ته رڳو قافلي جو مامرو آھي ۽ جي آئون سمجھان ها ته دشمنن سان تڪراءَ ٿيندو ته ڪڏهن به پنٿي نه رھان ها." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "سچو آھين."

ان کان پوءِ پاڻ سڳورا مديني ۾ ان طرح سوڀارا ٿي داخل ٿيا جو شهر ۽ ڀرپاسي جي سڀني دشمنن تي سندن ڏاک وڃي چڪي هئي. ان سوڀ ڪري مديني جي گھڻن ماڻھن وفدن سان اسلام قبوليو ۽ ان موقعي تي عبدالله بن ابي ۽ سندس ساٿين به ڏيڪاءَ طور اسلام قبوليو.

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي مديني ۾ موٽڻ جي پئي ڏينھن قيدي پهچڻ شروع ٿيا. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم اھي صحابہ سڳورن ۾ ورھايا ۽ انھن سان چڱي ھلت جي ڀارت ڪئي. ان ڀارت جي ڪري صحابہ سڳورا پاڻ ته ڪجھون کائي گذارو ڪندا هئا پر قيدين کي ماني ڪارائيندا هئا. (ياد رھي ته مديني ۾ ڪجھن جي ڪابه قدر قيمت نه هئي ۽ ماني اٽلپ هوندي هئي.)

**قيدين جو معاملو:-** جڏهن پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم مديني پهچي ويا ته صحابہ سڳورن سان قيدين بابت مشورو ڪيائون. حضرت ابوبڪر رضي الله عنه چيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! اھي پنھنجا سوٽ ماسات ۽ ڪٽر قبيلي جا ماڻھو آھن. منھنجي راءِ آھي ته توهان انھن کان فديو وٺو. ان طرح جيڪي اسان وٺنداسين اھو ڪافرن خلاف اسان کي سگھه پهچائڻ جو ذريعو بڻبو ۽ اھو به ٿي سگھي ٿو ته الله انھن کي هدايت ڏئي وڃي ۽ اھي اوهان جا ٻانھن ٻيلي بڻجي وڃن."

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پڇيو ته: "ابن خطاب، تنھنجي ڇا راءِ آھي؟" ان وراڻيو ته "والله منھنجي راءِ ابوبڪر رضي الله عنه جھڙي نه آھي. منھنجي خيال ۾ توهان فلاڻي کي (جيڪو حضرت عمر رضي الله عنه جن جو ويجهو ماڻھو هو) منھنجي حوالي ڪريو ته آئون سندن سر قلم ڪري ڇڏيان. عقيل بن ابي طالب کي علي رضي الله عنه جي حوالي ڪريو ته هو سندس ڪنڌ ڪپي ۽ فلاڻي کي، جيڪو حمزة رضي الله عنه جو ڀاءُ آھي، حمزة رضي الله عنه جي حوالي ڪريو ته اھو سندس سر قلم ڪري ڇڏي. جيئن الله تعاليٰ چاڻي وٺي ته اسان جي دلين ۾ مشرڪن لاءِ ڪابه نرمي نه آھي ۽ (هونئن به) اھي ہمراھ مشرڪن جا وڏا ۽ مھنڊار آھن."

حضرت عمر رضي الله عنه جو بيان آھي ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جي ڳالھ وٺي ۽ منھنجي ڳالھ نه وٺي، تنھنڪري قيدين کان فديو وٺڻ جو فيصلو ٿيو. ان کانپوءِ پئي ڏينھن ٿيڻ تي صبح ساڻ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ۽ حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جي خدمت ۾ پهتس. اھي پئي روئي رھيا هئا. مون پڇيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! مون کي ٻڌايو ته توهان ۽ توهان جو ساٿي ڇو روئي رھيا

آهيو؟ جيڪڏهن روئڻ جي ڳالهه هجي ته آئون به روئيندس. " پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "فديو قبول ٿي جيڪو ڪري جيڪا شيءِ تنهنجي سائين آڏو رکي وئي آهي، ان جي ڪارڻ پيا روئون." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ويجهي وڻ ڏانهن اشارو ڪري فرمايو ته مون کي انهن تي ٿيندڙ عذاب هن وڻ کان به وڌيڪ ويجهو ڏيکاريو ويو. (1) ۽ الله تعاليٰ هي آيت نازل ڪئي ته:

﴿مَا كَانَ لِنَبِيٍّ أَنْ يَكُونَ لَهُ أَسْرَىٰ حَتَّىٰ يُبْخِنَ فِي الْأَرْضِ تُرِيدُونَ عَرَضَ الدُّنْيَا وَاللَّهُ يُرِيدُ الْآخِرَةَ وَاللَّهُ عَزِيزٌ حَكِيمٌ (67) لَوْلَا كِتَابٌ مِّنَ اللَّهِ سَبَقَ لَمَسَّكُمْ فِيمَا أَخَذْتُمْ عَذَابٌ عَظِيمٌ (68)﴾ (الانفال)

"بيغمبر کي نتو جڳائي ته وٽس قيدي هجن (پر ڪنا وڃن) جيستائين ملڪ ۾ ڪافر جو قتل عام نه ڪري (اهين) دنيا جو سامان گهرندا آهيو ۽ الله آخرت (جو ثواب ڏيڻ) چاهيندو آهي ۽ الله غالب حڪمت وارو آهي. جيڪڏهن الله جي تقدير ۾ اڳي لکيل نه هجي ها ته اهو ان جيڪي (فديو) ورتو تنهن تي اوهان کي ضرور وڏو عذاب پهچي ها.

۽ الله پاران جيڪي اڳي لکيو ويو هو اهو هي هو ته:

﴿فِيمَا مَنَّا بَعْدُ وَإِنَّا فِدَاءٌ...﴾ (محمد)

"(قيد کانپوءِ) يا ته احسان ڪرڻ (سان چڏڻ) يا فديو وٺڻ (گهرجي)"

جيئن ته ان آيت ۾ قيدين کان فديو وٺڻ جي موڪل ڏنل هئي، ان ڪري صحابه سڳورن کي فديو وٺڻ جي سزا ڪانه ڏني وئي ۽ رڳو تنبيهه ڪئي وئي ۽ اهو به ته انهن اهڙن اهڙن جنگي ڏوهارين کان فديو وٺڻ قبوليو هو، جيڪي عام قيدي نه هئا پر اهڙا جنگي ڏوهاري هئا، جن کي جديد قانون به مقدمو هلاڻ بنا نه ڇڏي ها ۽ جن بابت مقدمي جو فيصلو عام طور تي موت جي سزا يا عمر قيد هوندي هئي.

بهرحال جيئن ته حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جن جي راءِ مطابق معاملو طءُ تي چڪو هو، ان ڪري مشرڪن کان فديو ورتو ويو. فديي جي رقم چار هزار يا ٽي هزار درهمن کان وٺي هڪ هزار درهمن تائين هئي. مڪي وارا لکڻ پڙهڻ به ڄاڻندا هئا، جڏهن ته مديني وارا لکڻ پڙهڻ نه ڄاڻندا هئا. ان ڪري اهو به طءُ ڪيو ويو ته جنهن وٽ فديو نه هجي، اهو مديني جي ڏهن ٻارن کي لکڻ پڙهڻ سيکاري. ٻارن کي چڱيءَ طرح سکيا ڏيڻ، سندن فديو هوندو.

پاڻ سڳورن ﷺ ڪيترن ئي قيدين تي احسان ڪندي انهن کان فديو وٺڻ بنا به کين ڇڏي ڏنو. ان فهرست ۾ مطلب بن حنطب، صيفي بن ابي رفاع ۽ ابو عزه جمحي جا نالا اچن ٿا. ابو عزه جمحي احد جي لڙائيءَ ۾ قيدي بڻيو ۽ قتل ڪيو ويو. (تفصيل اڳتي ڏنو ويندو.)

<sup>1</sup> - تاريخ عمر بن الخطاب، ابن جوزي (ص: 36).

پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي ناني ابو العاص کي به ان شرط تي فديي بنا ڇڏي ڏنو ته اهو بيبي زينب رضي الله عنها کي مديني موڪليندو. ان جو سبب اهو هو ته بيبي زينب رضي الله عنها، ابوالعاص جي فديي ۾ ڪجهه سامان موڪليو هو، جنهن ۾ هڪ ٻه هڪ هڪ هڪ هو، جيڪو حقيقت ۾ بيبي خديجه رضي الله عنها جو هو ۽ جڏهن بيبي سڳوريءَ، بيبي زينب رضي الله عنها کي ابوالعاص سان پرڻايو ته اهو هار ان کي ڏئي ڇڏيو هو. اهو هار ڏسي پاڻ سڳورن ﷺ جي دل ڀرجي آئي ۽ صحابه سڳورن کان اجازت گهرايائون ته ابو العاص کي ڇڏيو وڃي. صحابه سڳورن اها ڳالهه اکين تي رکي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ، ابوالعاص کي ان شرط تي ڇڏي ڏنو ته اهو بيبي زينب رضي الله عنها جو رستو نه روڪيندو. ان ڪري ابوالعاص بيبي زينب رضي الله عنها کي موڪل ڏني ۽ بيبي زينب رضي الله عنها هجرت ڪئي. پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت زيد بن حارثه ﷺ ۽ هڪ انصاري صحابيءَ کي موڪليو ته توهان ٻئي بطن ياجج ۾ رهجو ۽ جڏهن زينب رضي الله عنها توهان وٽان لنگهي ته ان سان هليا اچجو. اهي ٻئي بزرگ روانا ٿيا ۽ بيبي زينب رضي الله عنها کي ساڻ وٺي مديني موٽيا. بيبي صاحبه رضي الله عنها جي هجرت جو واقعو ڏاڍو ڊگهو ۽ ڏکوئيندڙ آهي.

قيدين ۾ سهيل بن عمرو به هو، جيڪو وڏو مقرر هو. حضرت عمر ﷺ چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! سهيل بن عمرو جا اڳيان ٻه ڏند پڇرائي ڇڏيو. سندس زبان هٻڪندي ۽ هو ڪنهن به جڳهه تي اوهانجي خلاف تقرير ڪرڻ لاءِ نه بيهي سگهندو." پر پاڻ سڳورن ﷺ سندن راءِ نه مڃي، ڇو ته اهو مثلي (مسخ ڪرڻ) جو قسم آهي، جنهن تي الله تعاليٰ طرفان قيامت جي ڏينهن پڪڙ ڪرڻ جو خطرو هو.

حضرت سعد بن نعمان ﷺ عمرو ڪرڻ ويو ته ان کي ابوسفیان قيدي ڪري وڌو. ابوسفیان جو پٽ عمرو به بدر جي جنگ جي قيدين ۾ شامل هو، تنهنڪري عمرو کي ابوسفیان جي حوالي ڪيو ويو ۽ هن حضرت سعد ﷺ کي ڇڏي ڏنو.

قرآن جو تبصرو:- هن غزوي بابت سورة انفال نازل ٿي، جيڪا حقيقت ۾ هن ويڙهه بابت هڪ خدائي تبصرو آهي. جيڪڏهن اها تعبير صحيح آهي ته پوءِ اهو تبصرو بادشاهن ۽ سالارن وغيره جي فاتحانه تبصرن کان صفا ڌار آهي. ان تبصري جون ڪجهه ڳالهيون مختصر طور هتي ڏجن ٿيون.

الله تعاليٰ سڀ کان پهرين مسلمانن جو ڌيان سندن ڪوتاهين ۽ اخلاقي ڪمزورين ڏي ڇڪايو، جيڪي انهن ۾ توري قدر وڃي بچيون هيون ۽ جن مان ڪي هن موقعي تي ظاهر ٿيون. ڌيان

چڪائڻ جو مقصد اهو هو ته مسلمان پنهنجو پاڻ کي انهن ڪمزورين کان پاڪ ڪري پنهنجي ذات جي تڪميل ڪن.

ان کان پوءِ هن سوپ ۾ الله تعاليٰ جي تائيد ۽ غيبي مدد شامل هئڻ جو ذڪر ڪيو ويو آهي. ان جو مقصد اهو هو ته مسلمان پنهنجي دليري ۽ سگهه جي ڏوڪي ۾ نه اچي وڃن، جنهن جي نتيجي ۾ مزاج ۽ طبيعت تي هٿ ۽ وڏائي طاري ٿي وڃي ٿي. پر اهي الله تي پاڙين ۽ ان جي پيغمبر ﷺ جي پيروي ڪندا رهن.

پوءِ انهن وڏن مقصدن جو ذڪر ڪيو ويو آهي، جن جي لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ اها پوائنٽي ۽ رتوچاڻ واري ويڙهه ڪئي هئي ۽ ان ئي سلسلي ۾ ان اخلاقيات جا اهڃاڻ ڏنا ويا، جيڪي ويڙهن ۾ سوپ جو ڪارڻ بڻبا آهن.

پوءِ مشرڪن ۽ منافقن کي ۽ يهودين ۽ جنگي قيدين کي مخاطب ٿي چئي ۽ اثرائتي نصيحت ڪئي وئي آهي ته جيئن اهي حق آڏو جهڪي وڃن ۽ ان تي ڪاربنڊ رهن.

ان کان پوءِ مسلمانن کي غنيمت جي مال بابت بنيادي قاعدا ۽ اصول سمجهايا ويا آهن. پوءِ ان مرحلي ۾ اسلامي دعوت جي سلسلي ۾ جنگ ۽ امن جي ضروري قانونن جي سمجهائي ڏني وئي آهي ته جيئن مسلمانن جي ويڙهه ۽ جاهلن جي ويڙهه ۾ فرق قائم ٿئي ۽ اخلاق ۽ ڪردار جي ميدان ۾ مسلمانن کي سرسي ملي ۽ دنيا چڱيءَ طرح ڄاڻي وٺي ته اسلام رڳو هڪ نظريو نه آهي، پر اهو جيڪي اصول ۽ ضابطا ٻڌائي ٿو، انهن مطابق پنهنجن مڃڻ وارن جي عملي تربيت به ڪري ٿو.

پوءِ اسلامي حڪومت جي قانونن جا نقطا ٻڌايل آهن، جن مان پتو پوي ٿو ته اسلامي حڪومت جي دائري ۾ رهڻ وارن مسلمانن ۽ ان دائري کان ٻاهر رهندڙ مسلمانن ۾ ڪهڙو فرق آهي.

**پيا واقعا:** - سنه 2 هـ ۾ رمضان جا روزا ۽ فطري جو صدقو فرض ڪيو ويو ۽ زڪوٰه جي مختلف طريقن جو تفصيل طئه ڪيو ويو. فطرو فرض ٿيڻ ۽ زڪوٰه جو طريقو مقرر ٿيڻ سان ان بار ۾ گهٽتائي ٿي، جيڪو غريب مهاجرن جي هڪ وڏي انگ لاءِ مسئلو هو، ڇو ته اهي روزگار جي لاءِ ڊوڙڊڪ ڪرڻ کان قاصر هئا.

پوءِ مسلمانن جي زندگيءَ ۾ ڏاڍو سهڻو موقعو آيو جو انهن پنهنجي زندگيءَ جي پهرين عيد ملهائي. اها شوال سنه 2 هـ جي عيد هئي، جيڪا بدر جي جنگ ۾ سوپ ملڻ کانپوءِ ٿي. اها عيد ڪيڏي نه وڻندڙ هئي، جنهن جي سعادت الله تعاليٰ مسلمانن جي سر تي سوپ جو تاج رکڻ کانپوءِ عطا ڪئي ۽ ڪيڏو نه ايمان سان پيريل هو ان عيد جي نماز جو منظر، جيڪا مسلمانن پنهنجن گهرن

مان نڪري الله جي وڏائي ۽ هيڪڙائي جا نعرا هڻندي ميدان ۾ وڃي پڙهي. ان مهل حالت اها هئي ته مسلمانن جون دليون الله جي ڏنل نعمتن ۽ سندس مهربانين جي ڪري سندس رحمت ۽ رضوان جي شوق سان تمنتار هيون. سندن پيشانيون الله جا شڪرانا مڃڻ لاءِ جهڪيل هيون. الله تعاليٰ ان نعمت جو ذڪر هن آيت ۾ ڪيو آهي ته:

﴿وَاذْكُرُوا إِذْ أَنْتُمْ قَلِيلٌ مُسْتَضْعَفُونَ فِي الْأَرْضِ تَخَافُونَ أَنْ يَخَطِفَكُمْ النَّاسُ فَأَوَاكُمُ وَيَأْذِكُمْ بِنَصْرِهِ وَرَزَقَكُمْ مِنَ الطَّيِّبَاتِ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُونَ﴾ (26) ﴿الانفال﴾

”۽ (اي مهاجرؤ سندس احسانن کي) ياد ڪريو جڏهن زمين (ملڪ) ۾ اوهان تورڙا (۽) هيڻا هئا ۽ ڊنا ٿي ته متان ماڻهو اوهان کي تڪڙو ڪڍي وٺن پوءِ اوهان کي جاءِ ڏنائين ۽ اوهان کي پنهنجي مدد سان سگهه ڏنائين ۽ اوهان کي سٺين شين مان روزي ڏنائين ته اوهين شڪرانو ادا ڪريو.“

\*\_\*\_\*

## بدر کانپوءِ جون جنگي سرگرميون

بدر واري جنگ مسلمانن ۽ مشرڪن جي سڀ کان پهرين ۽ فيصلاڻي جنگ هئي. جنهن ۾ مسلمانن کي سوڀ حاصل ٿي، جيڪا سڄي عربستان ڏني. ان ويڙهه جي نتيجن سان سڀ کان وڌيڪ دل آزاري انهن ماڻهن جي ٿي، جن کي سڌو سنئون وڏو نقصان رسيو. يعني مشرڪ، يا اهي ماڻهو جيڪي مسلمانن جي وڌندڙ سگهه کي پنهنجي مذهبي ۽ اقتصادي وجود لاءِ خطرو محسوس ڪندا هئا. يعني يهودي. تنهنڪري جڏهن مسلمان بدر جي جنگ ۾ سوڀارا ٿيا هئا، اهي ٻئي ٽولا مسلمانن جي خلاف نفرت جي باهه ۾ سڙي رهيا هئا. جيئن ارشاد آهي ته:

﴿لَتَجِدَنَّ أَشَدَّ النَّاسِ عَدَاوَةً لِلَّذِينَ آمَنُوا الْيَهُودَ وَالَّذِينَ أَشْرَكُوا...﴾ (82) (المائدة)

”اي پيغمبر! يهودين ۽ مشرڪن کي مؤمنن لاءِ ٻين ماڻهن کان بلڪل وڌيڪ دشمني ڪرڻ وارو ضرور ڏسندين.“

مديني جا ڪجهه ماڻهو ٻنهي ٽولن جا هر خيال ۽ ٻانهن ٻيلي هئا. انهن جڏهن ڏٺو ته پنهنجو وقار برقرار رکڻ جي ٻي ڪا واھ نه بچي آهي تڏهن انهن ڏيڪاءَ خاطر اسلام قبوليو. اهو عبدالله بن ابي ۽ سندس ساٿارين جو ٽولو هو. اهي به مسلمانن سان يهودين ۽ مشرڪن کان گهٽ نفرت نه ڪندا هئا.

ان کانسواءِ چوٿون ٽولو به هو. يعني اهي ٻڌو جيڪي مديني جي ٻهراڙين ۾ رهندا هئا. انهن کي ڪفر ۽ اسلام سان ڪو سروڪار نه هو، پر اهي ڦورو ۽ ڌاڙيل هئا، ان ڪري بدر واري سوڀ جو ڪين به ڏک هو. ڪين ڊپ هو ته مديني ۾ سگهاري حڪومت ٺهي پئي ته سندن ڦرلٽ ڪرڻ جو رستو بند ٿي ويندو. ان ڪري سندن دلين ۾ به مسلمانن خلاف ڪدورت گهر ڪري وئي ۽ اهي مسلمانن جا ويري ٿي پيا.

اهڙيءَ طرح مسلمان چٽي پاسن کان خطري ۾ گهيرجي ويا، پر مسلمانن جي سلسلي ۾ هر ڌر جو رد عمل ٻي ڌر کان مختلف هو. هر ڌر پنهنجي حال سارو اهڙو طريقو اختيار ڪيو هو، جيڪو سندن دلي مقصد جو پورا ٿو ڪري سگهي. جيئن مديني وارن، مسلمانن تي اندران اندر سازشون ڪرڻ شروع ڪيون. يهودين جو هڪ ٽولو ڪليو ڪلابو دشمنيءَ تي لهي پيو. مڪي وارن زوردار حملي ڪرڻ جي ڌمڪين سان گڏ بدلو وٺڻ جو ڪليو اعلان ڪيو. ويڙهه لاءِ سندن تياريون ڪليو ڪلابو ٿي رهيون هيون، جڏهن هو مسلمانن کي اهو ٻڌائي رهيا هجن ته:

ولا بد من يوم اغرَّ محجل يطول استماعي بعده للنوادر



يعني هڪ اهڙو جتو ۽ سهائو ڏينهن ضروري آهي، جنهن کانپوءِ ڊگهي مدي تائين روئڻ پٽڻ وارين جا نوح ٻڌندو رهان.

سال کن کانپوءِ اهي سچ پچ هڪ ويڙهه لاءِ مديني تائين هلي آيا، جيڪا تاريخ ۾ غزوه احد جي نالي سان مشهور آهي ۽ جنهن جو مسلمانن جي شهرت ۽ ساڪ تي برو اثر پيو هو. انهن خطرن کان نبرٽ لاءِ مسلمانن وڏا وڏا قدم کنيا، جن مان پاڻ سڳورن ﷺ جي قائدانه صلاحيتن جو پتو پوي ٿو ۽ اهو پڌرو ٿئي ٿو ته مديني جي قيادت انهن سمورن خطرن کان پليءَ پٽ واقف هئي ۽ انهن سان منهن ڏين لاءِ ڪيتري قدر تيار هئي. ايندڙ ستن ۾ ان جو مختصر خاڪو پيش ڪجي ٿو.

**1. غزوه بني سليم، ڪُڍرو وٽ:-** بدر جي جنگ کانپوءِ سڀ کان پهرين مديني ۾ پهتل اهم خبر اها هئي ته غطفان قبيلي جي شاخ بنو سليم وارا مديني تي ڪاهڻ لاءِ فوج پيا گڏ ڪن. ان جي جواب ۾ پاڻ سڳورن ﷺ به سو سوارن سان سندن پنهنجي علائقي ۾ وڃي هلاڻ ڪئي ۽ ڪڍرو (1) وٽ انهن کي وڃي پڳا. بنو سليم وارن ۾ اڃانڪ تيل حملي ڪري پاڇ پڇي وئي ۽ اهي چڙوچڙ حالت ۾ واديءَ ۾ پنج سو اٺ چڙي وٺي پڳا. جنهن تي مديني جي لشڪر قبضو ڪيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ ان مان خمس (پنجين پتي) ڪڍي بچيل مال، مجاهدن ۾ ورهائي ڇڏيو. هر ڪنهن جي پتيءَ ۾ به ٻه اٺ آيا. هن غزوي ۾ يسار نالي هڪ ٻانهو هت آيو، جنهن کي پاڻ سڳورن ﷺ آزاد ڪري ڇڏيو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ تي ڏينهن اتي رهي مديني موٽيا.

اها ويڙهه شوال سنه 2 هه ۾ بدر کان موٽڻ جي رڳو ٽن ڏينهن کان پوءِ ٿي. هن ويڙهه دوران سباع بن عرفطه رضی اللہ عنہ يا ابن ام مکتوم رضی اللہ عنہ کي مديني جي ذميواري سونپي وئي هئي. (2)

**2. پاڻ سڳورن ﷺ کي قتل ڪرڻ جي سازش:-** بدر جي جنگ ۾ هارائڻ کانپوءِ مشرڪ ڪاوڙ مان بي قابو ٿي ويا ۽ سڄو مڪو پاڻ سڳورن ﷺ خلاف ڪُني وانگر اڀامي رهيو هو. نيٺ مڪي جي ٻن دلير نوجوانن اها ست ستي ته (سندن ليکي) ان اختلاف، دشمني، ذلت ۽ خواريءَ جي جڙ (نعوذ باللہ) يعني پاڻ سڳورن ﷺ جو ئي انت آڻي ڇڏينداسين.

بدر جي ويڙهه کان ٿورا ڏينهن پوءِ جو واقعو آهي ته عمير بن وهب جمحي، جيڪو قريشن جي شيطانن مان هو ۽ مڪي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن کي تڪليف رسائيندو رهندو

<sup>1</sup> - ڪڍرو ۾ ڪي ٽي پيش ايندو. اهو مٿي رنگ جي جهرڪيءَ جو هڪ قسم آهي. پر هتي بنو سليم جي هڪ چشمي جي نالي طور ڄاڻايل

آهي، جيڪو نجد ۾ مڪي کان (نجد وچ واري رستي کان) شام وڃڻ واري لنگهه تي آهي.

<sup>2</sup> - زاد المعاد (90/2)، ابن هشام (44،43/2) مختصر اسيرة للشيخ عبدالله (ص:236).

هو ۽ هاڻي ان جو پٽ وهب بن عمير بدر جي جنگ ۾ مسلمانن وٽ قيدي ٿيل هو. ان عمير هڪ ڏينهن صفوان بن اميه سان حطيم ۾ ويهي بدر جي کوھ ۾ اڇلايل مقتولن بابت ڳالهايو. ان تي صفوان چيو ته: "الله جو قسم! انهن کانپوءِ جيئن جو مزو نٿو اچي." جواب ۾ عمير چيو ته: "الله جو قسم! سچ پيو چوين. الله جو قسم! جيڪڏهن مون تي قرض نه هجي ها، جيڪو ڏيڻ لاءِ مون وٽ ڪجهه ڪونهي ۽ ٻار ٻچا نه هجن ها، جن بابت مون کي ڊپ آهي ته اهي دربدر ٿي ويندا ته آئون سوار ٿي محمد ﷺ وٽ وڃان ها ۽ کيس ماري وجهان ها، ڇو ته مون لاءِ اتي وڃڻ جو هڪ سبب پڻ آهي جو منهنجو پٽ انهن وٽ قيدي ٿيل آهي."

صفوان ان صورتحال کي غنيمت ڄاڻي چيو ته: "ڇڱو ڀلا! تنهنجو قرض آئون پاڻهي پريندس ۽ تنهنجا ٻار ٻچا جيستائين آهن، آئون انهن کي پنهنجو سمجهي سنڀاليندس. ائين ڪونه ٿيندو ته مون وٽ ڪا شيءِ هجي ۽ اها انهن کي نه ملي." عمير چيو ته "ڇڱو هاڻي منهنجو ۽ تنهنجو اهو معاملو ڳجهو رکجان." صفوان چيو ته: "نڪ آهي، آئون ائين ئي ڪندس."

ان بعد عمير پنهنجي تلوار جي ڌار تڪي ڪرائي ۽ ان کي زهر مڪايو. پوءِ روانو ٿيو ۽ مديني پهتو. پر اڃا هو مسجد جي در وٽ پنهنجي ڏاڇي ويهاري ٿي رهيو هو جو حضرت عمر رضه کيس ڏسي ورتو. پاڻ مسلمانن جي هڪ ٽولي کي بدر جي جنگ ۾ الله تعاليٰ جي نوازشن بابت ٻڌائي رهيو هو. عمير کي ڏسندي ئي چيو ته: "هي ڪتو، الله جو ويري عمير، ڪنهن بري نيت سان آيو آهي." پوءِ پاڻ سڳورن رضه جي خدمت ۾ پهچي عرض ڪيو ته: يا رسول الله ﷺ! الله جو ويري عمير پنهنجي تلوار ٻڏي آيو آهي. پاڻ سڳورن رضه فرمايو ته: ان کي مون وٽ وٺي اچ. عمير آيو ته حضرت عمر رضه سندس تلوار ٻڏڻ واري پٽي کي ڳچيءَ وٽان جهلي ڪجهه انصارن کي چيو ته: توهان پاڻ سڳورن رضه وٽ وڃي ويهي رهو ۽ هن پليت کان هوشيار ٿي ويهجو، ڇو ته هي ڀروسي جوڳو نه آهي. ان کانپوءِ حضرت عمر رضه عمير کي اندر وٺي ويو. پاڻ سڳورن رضه جڏهن ڏٺو ته حضرت عمر رضه تلوار جو پتو سندس ڳچيءَ ۾ وجهي کيس وٺيو پيو اچي ته پاڻ سڳورن رضه فرمايو ته: اي عمر! هن کي ڇڏي ڏي ۽ فرمايائون ته: اي عمير تون ويجهو اچ. پوءِ اهو ويجهو آيو ۽ سڀني کي روايتي انداز ۾ ڪيڪاريائين پاڻ سڳورن رضه فرمايو ته: الله تعاليٰ اسان کي هڪ اهڙي سلام سان نوازيو آهي، جيڪو توهان جي هن ڪيڪار کان پلو آهي، يعني سلام جيڪو جنت وارن جي ڪيڪار پچار آهي.

ان کانپوء پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: اي عمير! تون چو آيو آهين؟ ان ورائيو ته اهو قيدي جيڪو اوهانجي قبضي ۾ آهي، ان لاءِ آيو آهين. توهان ان بابت احسان ڪريو.

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: پوءِ ڳچيءَ ۾ تلوار لٽڪائي چو آيو آهين؟ هن چيو ته الله انهن تلوارن جو ستيا ناس ڪري جو اهي اسان جي ڪنهن ڪم نه آيون.

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: سڄي ٻڌاءِ چو آيو آهين؟ هن ورائيو ته رڳو هن قيديءَ لاءِ آيو آهين.

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "نه پر تو ۽ صفوان بن اميه حطير ۾ ويهي قريشن جا جيڪي مثل، ڪوه ۾ اڇليا ويا آهن، انهن بابت ڳالهايو. پوءِ تو چيو ته جيڪڏهن مون تي قرض نه هجي ها ۽ منهنجا ٻار ٻچا نه هجن ها ته آئون هتان وڃي محمد ﷺ کي ماري وجهان ها. ان تي صفوان تنهنجي قرض ۽ ٻارن ٻچن جي ذميداري ان شرط تي ڪئي ته تون مون کي ماري اچ. پر ياد رک ته الله منهنجي ۽ تنهنجي وچ ۾ آڙ آهي.

عمير چيو ته "آئون شاهدي تو ڏيان ته توهان الله جا رسول آهيو. يا رسول الله ﷺ! توهان اسان وٽ آسمان جون جيڪي خبرون آڻيندا هئا ۽ توهان تي جيڪا وحي نازل ٿيندي هئي، ان کي اسان ڪوڙو چوندا هئاسين. پر هي ته اهڙو معاملو آهي، جنهن ۾ مون کان ۽ صفوان کانسواءِ ٻيو ڪوبه موجود نه هو. ان ڪري ولله مون کي پڪ آهي ته اها ڳالهه الله کانسواءِ ٻئي ڪنهن توهان تائين نه پهچائي آهي. بس ساراهه آهي الله جي، جنهن مون کي هدايت ڏني ۽ هن جڳهه تائين پهچايو." پوءِ عمير ڪلمه شهادت پڙهيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن کي مخاطب ٿي فرمايو ته: "پنهنجي پاڻ کي دين سمجهايو، قرآن پڙهايو ۽ ان جي قيديءَ کي آزاد ڪري ڇڏيو."

هوڏانهن صفوان ماڻهن کي چونڊو رهيو ته اها خوشخبري ٻڌي ڇڏيو ته ڪجهه ئي ڏينهن ۾ هڪ اهڙو واقعو ٿيندو، جيڪو بدر وارا سور وساري ڇڏيندو. گڏوگڏ هو اچڻ وڃڻ وارن کان عمير رضه بابت پڇندو به رهندو هو. نيٺ کيس هڪ مسافر ٻڌايو ته عمير رضه مسلمان ٿي چڪو آهي. اهو ٻڌي صفوان قسم ڪيو ته ساڻس ڪڏهن به نه ڳالهائيندو ۽ نه ڪڏهن کيس ڪو فائدو پهچائيندو. هوڏانهن عمير رضه اسلام جي تعليم وٺي مڪي موٽيو ۽ اتي ئي رهي اسلام جي دعوت ڏيڻ شروع ڪيائين. سندن هٿ تي گهڻا ئي ماڻهو مسلمان ٿيا. (1)

**3. غزوه بني قينقاع:-** پاڻ سڳورن ﷺ مديني اچڻ کان پوءِ يهودين سان جيڪو ٺاهه ڪيو هو، جنهن جا شرط گذريل صفحن تي لکجي چڪا آهن، پاڻ سڳورن جي پوري ڪوشش ۽ خواهش

<sup>1</sup>- ابن هشام (1/661، 662، 663)

هئي ته ان ناهه جي شرطن تي عمل ٿيندو رهي. تنهنڪري مسلمانن پاران اهڙو ڪوبه قدم نه کنيو ويو، جيڪو ان ناهه جي هڪ حرف جي به ابتڙ هجي. پر يهودين جي تاريخ بغاوت، ڌوڪياڙي ۽ وعده خلافيءَ جي واقعن سان ڀريل آهي، انهن ترن ٿي پنهنجن پراڻين حرڪتن کي ورجائڻ شروع ڪيو ۽ مسلمانن جي صفتن ۾ ڌار وجهڻ، سازشون ڪرڻ ۽ فساد ۽ بي چيني پيدا ڪرڻ جي ڪوشش شروع ڪري ڏنائون. ان جو هڪ مثال هتي ٻڌندا هلو.

يهودين جي چالاڪيءَ جو هڪ نمونو: - ابن اسحاق ڄاڻايو آهي ته هڪ پوڙهو يهودي شاش بن قيس، جيڪو مرڻ ڪنديءَ تي اچي پهتو هو ۽ وڏو ڪتر ڪافر هو ۽ مسلمانن سان سخت وير رکندو هو ۽ حسد ڪندو هو. اهو هڪ پيري صحابه سڳورن جي هڪ مجلس وٽان لنگهيو جنهن ۾ اوس ۽ خزرج، ٻنهي قبيلن جا ماڻهو پاڻ ۾ ڪچهري ڪري رهيا هئا. کيس اهو ڏسي ڏاڍو ڌچڪو رسيو ته هاڻي انهن ۾ جهالت واريءَ دشمنيءَ بدران اسلام جي الفت ۽ اجتماعيت جڳهه والاري وئي آهي ۽ سندن پراڻا جهڳڙا ختم ٿي ويا آهن. چوڻ لڳو ته: "اڙي هتي ته بنو قيل جا چڱا مڙس پاڻ ۾ ڪير ڪند ٿي ويا آهن. الله جو قسم! انهن اشرافن جي ٻڌيءَ کانپوءِ اسان جي هتي دال ڳرندي نظر نٿي اچي." پوءِ هن هڪ يهودي نوجوان کي، جيڪو ساڻس گڏ هو، حڪم ڏنو ته هن مجلس ۾ وڃي ۽ انهن سا ويهي پوءِ بعات واري جنگ ۽ ان کان اڳ جون ڳالهيون چوري ۽ ان سلسلي ۾ ٻنهي ڌرين جي چيل زرميه شاعريءَ مان به ڪجهه پڙهي انهن کي ٻڌائي. ان يهوديءَ ائين ڪيو. نتيجي ۾ اوس ۽ خزرج ۾ ڏي وٺ ٿي وئي. همراھ ٽڪا منا ٿي ويا ۽ هڪٻئي تي پنهنجي وڏائي بيان ڪرڻ لڳا. تان ته ٻنهي قبيلن جا سڀ ماڻهو گوڏن ڀري ويهي هڪٻئي کي توڪون ۽ طعنا هڻڻ لڳا. پوءِ هڪ ڌر ٻيءَ کي چيو ته: جي اوهان چاهيو ته پوءِ وري ڪڏي جنگ ڪجي. (مقصد اهو هو ته اسين اهڙي ويڙهه لاءِ هيٺ به تيار آهيون، جيڪا اڳ ۾ وڙهي وئي هئي.) ان تي ٻنهي ڌرين ۾ تاءُ اچي ويو ۽ چيائون ته هلو اسين به تيار آهيون. حره ۾ مقابلو ٿيندو. هٿيار...! هٿيار...!

۽ پوءِ ماڻهو هٿيار کڻي حره ڏانهن وڌڻ لڳا. بس ويڙهه ٿيڻ واري هئي جو پاڻ سڳورن عليه السلام کي پتو پئجي ويو. پاڻ سڳورا عليه السلام پنهنجن مهاجر اصحابين کي ساڻ ڪري تڪڙا انهن وٽ پهتا ۽ فرمائون ته: "اي مسلمانو! الله... الله... منهنجي هوندي به جاهليت وارا سڏ! ۽ اهي به ان حالت ۾ جو الله توهان کي اسلام جي هدايت سان ملامال ڪري چڪو آهي ۽ ان جي ذريعي توهان کان جاهليت جون رسمون ختم ڪري، توهان کي ڪفر کان چوٽڪارو ڏياري توهان جون دليون پاڻ ۾ ڳنڍي چڪو آهي." پاڻ سڳورن عليه السلام جي نصيحت ٻڌي انهن کي احساس ٿيو ته سندن حرڪت شيطان جو هڪ جهٽڪو ۽ دشمنن جي چال هئي. پوءِ اهي اچي روئڻ ۾ پيا ۽ اوس ۽ خزرج وارا هڪ ٻئي سان پاڪر

پاڻ لڳا. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي پويان ان طرح واپس وريا جو الله سندن دشمن شاش بن قيس جي چالاڪيءَ سان لڳايل باه وسائي چڪو هو. (1)

اهو انهن فسادن ۽ بي چينيءَ جو هڪ نمونو هو. جيڪي يهودي مسلمانن جي صفتن ۾ برپا ڪرڻ جي ڪوشش ڪندا رهيا هئا. اهڙن ڪمن لاءِ انهن مختلف رٿائون جوڙيون هيون. اهي ڪوڙا افواهه ڦهلائيندا هئا. صبح جو مسلمان تي شام جو وري ڪافر ٿي ويندا هئا ته جيئن ڪمزور ۽ سادن مسلمانن جي دلين ۾ شڪ جو بچ وجهي سگهن. ڪنهن وٽ قرض هوندي هئن ۽ اهو مسلمان ٿي ويندو هو ته ان جو جيئڻ جنجال ڪري ڇڏيندا هئا ۽ قرض لاءِ صبح شام گهر پيا ڪندا هئا ۽ جي ان مسلمان جا قرضي هوندا هئا ته ان کي ادا نه ڪندا هئا. بلڪ ڦٽائڻ جي ڪوشش ڪندا هئا ۽ چوندا هئا ته تنهنجو قرض اسان تي تڏهن هو. جڏهن تون اباڻي دين تي هئين پر هاڻي جڏهن تو دين مٽايو آهي ته پوءِ اسان جي ۽ تنهنجي ڪابه ڏيتي ليتي ڪانهي. (2)

ياد رهي ته يهودين، پاڻ سڳورن ﷺ سان معاهدو ڪرڻ کانپوءِ بدر جي جنگ کان اڳ ئي اهي سڀ حرڪتون شروع ڪري ڇڏيون هيون. هوڏانهن پاڻ سڳورا ﷺ ۽ اصحابي سڳورا يهودين جي سڏيءَ راه تي اچڻ جي آس تي اهي سڀ ڳالهيون سهي رهيا هئا. ان کانسواءِ انهن علائقي ۾ امن ۽ سلامتيءَ جو ماحول برقرار رکڻ به گهريو ٿي.

بنوقينقاع جي عهد شڪني:- جڏهن يهودين ڏٺو ته الله تعاليٰ بدر جي ميدان ۾ مسلمانن جي وڏي مدد ڪئي ۽ کين وڏي سوڀ سان نوازيو ۽ انهن جو رعب ۽ دڊبو پري پري تائين ماڻهن جي دلين ۾ ويهي ويو آهي ته انهن جي حسد جي باه تيز ٿي وئي ۽ انهن کليو ڪلايو دشمني ڪرڻ شروع ڪئي ۽ تڪليف ۽ ايذاءَ ڏيڻ تي لهي آيا.

انهن ۾ سڀ کان وڌيڪ دل جو پليت ۽ ڏنگو ڪعب بن اشرف هو. جنهن جو ذڪر اڳتي ايندو. ان طرح تنهي يهودي قبيلن مان سڀ کان وڌيڪ ڏنگو قبيلو بنوقينقاع هو. اهي ماڻهو مديني جي اندر ئي رهندا هئا ۽ سندن پاڙو به سندن نالي سان سڏبو هو. اهي ماڻهو ڌنڌي جي لحاظ کان سونارا، لوهار ۽ ڪنير هئا. انهن ڌنڌن ڪارڻ سندن هر ماڻهوءَ وٽ ڪافي جنگي سامان هو. سندن ويڙهاڪ جوانن جو انگ ست سؤ تائين هو ۽ اهي مديني جا سڀ کان بهادر يهودي هئا. انهن ئي سڀ کان پهرين عهد ٽوڙيو. جنهن جو تفصيل هن طرح آهي.

1 - ابن هشام (1/555, 556).

2 - مفسر آل عمران سورة جي تفسيرن ۾ سندن اهڙين حرڪتن جو ذڪر ڪيو آهي.

الله پاران بدر جي جنگ ۾ مسلمانن کي سويارو ڪرڻ کانپوءِ انهن جي سرڪشيءَ ۾ واڌ اچي وئي. انهن پنهنجن ڏنگاين، خباثين ۽ فساد ڪرائڻ وارين حرڪتن ۾ واڌارو ڪري ڇڏيو. پوءِ جيڪي مسلمان سندن بازار ۾ ويندا هئا، انهن سان نٺوليون ۽ مشڪري ڪندا هئا. ويندي مسلمان عورتن سان به چيڙچاڙ ڪندا هئا.

جڏهن ڳالهه وڌي وئي ته پاڻ سڳورن عليه السلام کين گڏ ڪري سمجهايو ۽ کين ظلم ۽ بغاوت جي انجام کان ڊيڄاري سڏي راهه تي هلڻ جي دعوت ڏني، پر ان سان سندن ڏنگاين ۽ هوڏ ۾ وڌيڪ واڌ اچي وئي. جيئن امام ابوداؤد رحمه الله ۽ ٻين حضرت ابن عباس رضي الله عنه کان روايت ڪئي آهي ته جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام قريش کي بدر جي ڏينهن شڪست ڏني ۽ پاڻ سڳورا عليه السلام مديني موٽيا ته بنو قينقاع جي بازار ۾ يهودين کي گڏ ڪري فرمايائون ته: "اي يهوديو! ان کان اڳ اسلام قبول ڪري وٺو جو توهان تي به اهڙي مار پئي، جهڙي قريش تي پئجي چڪي آهي." انهن چيو ته: "اي محمد صلى الله عليه وسلم! توکي ان ڪري خود فريبيءَ ۾ مبتلا نه ٿيڻ گهرجي جو تنهنجو مقابلو قريش جي ناهل ۽ جنگ کان ناواقف ماڻهن سان ٿيو ۽ تو انهن کي ماري پڇايو. جڏهن تنهنجي ويڙهه اسان سان ٿي پئي ته توکي پتو پوندو ته اسين مڙس ماڻهو آهيون ۽ اسان جهڙن سان اڳ ڪڏهن به توهان جو پاند نه اٿڪيو هو." ان جي جواب ۾ الله تعاليٰ هيءَ آيت نازل ڪئي. (1)

﴿قُلْ لِلَّذِينَ كَفَرُوا سَعْلَبُونَ وَنُحْشَرُونَ إِلَىٰ جَهَنَّمَ وَبِئْسَ الْمِهَادُ (12) قَدْ كَانَ لَكُمْ آيَةٌ فِي فَنَيْنِ التَّتَمَاتِ فَنَاءُ تُقَاتِلُ فِي سَبِيلِ اللَّهِ وَأُخْرَىٰ كَافِرَةٌ يَرَوْنَهُمْ مِثْلَهُمْ رَأَىٰ الْعَيْنِ وَاللَّهُ يُؤَيِّدُ بِنَصْرِهِ مَنْ يَشَاءُ إِنَّ فِي ذَلِكَ لَعِبْرَةً لِّأُولِي الْأَبْصَارِ (13)﴾ (آل عمران)

"(اي پيغمبر!) ڪافرن کي چٽو ته سگهو مغلوب ٿيندو ۽ دوزخ ڏانهن گڏ ڪيا ويندو ۽ اهو بچڙو ماڳ آهي. انهن ٻن ٽولين جي پاڻ ۾ ويڙهه ڪرڻ ۾ اوهان لاءِ بيشڪ نشاني آهي. هڪ ٽولي الله جي واٽ ۾ وڙهي ۽ ٻي ڪافرن (جي) هئي (مسلمانن) کين پنهنجي پيڻ جيترو اکين سان ڏٺو ٿي ۽ الله! جنهن کي وڻيس، تنهن کي پنهنجي مدد سان سگهه ڏيندو آهي. ڇو ته ان ۾ (سمجهه جي) اکين وارن لاءِ ضرور عبرت آهي.

مطلب ته قينقاع وارن جيڪو جواب ڏنو هو، ان جو چٽو مطلب جنگ جو اعلان هو. پر پاڻ سڳورن عليه السلام درگزر کان ڪم ورتو ۽ صبر ڪيو. مسلمانن به صبر ڪيو ۽ ايندڙ وقت جو انتظار ڪرڻ لڳا.

<sup>1</sup> - سنن ابی داؤد مع عون المعبود (3/115)، ابن هشام (1/552).

هوڏانهن ان نصيحت کانپوءِ بنو قينقاع جون ڏنگايون وٽر چوت چڙهي ويون. ڪجهه ڏينهن کانپوءِ ئي انهن مديني ۾ وڏو هنگامو ڪرائي وڌو. جنهن جي نتيجي ۾ انهن پنهنجن ئي هٿن سان پنهنجي قبر کوتي وڌي ۽ پاڻ لاءِ جيئڻ جنجال ڪري ڇڏيائون.

ابن هشام، ابوعون کان روايت آندي آهي ته هڪ عرب عورت بنو قينقاع جي بازار ۾ ڪجهه سامان کڻي آئي ۽ وڪڻي (ڪنهن گهرج تحت) هڪ سوناري وٽ ويهي رهي، جيڪو يهودي هو. يهودين سندس نقاب هٽائڻ گهريو پر ان انڪار ڪيو. ان تي ان سوناري ماڻ ۾ سندس ڪپڙي جو پوڇڻ پٺئين پاسي ٻڌي ڇڏيو ۽ کيس خبر نه پئي. جڏهن هوءَ اتي ته بي پرده ٿي پئي. جنهن تي يهودي ٽهڪ ڏيڻ لڳا. ان تي عورت وٺي رڙيون ڪيون، جيڪي ٻڌي هڪ مسلمان ان سوناري تي حملو ڪري کيس ماري وڌو. موت ۾ يهودين به ان مسلمان کي ماري وڌو. ان کانپوءِ مقتول مسلمان جي گهر وارن رڙيون وٺي ڪيون ۽ يهودين جي دانهن مسلمانن کي ڏنائون. نتيجي ۾ مسلمانن ۽ بنو قينقاع جي يهودين ۾ وڳوڙ مچي ويو. (1)

**ڪڙو چاڙهڻ، هٿيار ڦٽا ڪرڻ ۽ جلاوطني:-** هن واقعي کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام جي سهپ کان ڳالهه وڌي وئي ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام مديني جي نگراني ابو لبابه بن منظر رضي الله عنه جي حوالي ڪئي ۽ پاڻ، حضرت حمزة بن عبدالمطلب رضي الله عنه جي هٿن ۾ مسلمانن جو جهنڊو ڏئي الله جو لشڪر ساڻ ڪري بنو قينقاع ڏي روانا ٿيا. انهن پاڻ سڳورن عليه السلام کي ايندي ڏٺو ته وڃي قلعي ۾ لڪا. پاڻ سڳورن عليه السلام گهيراڙ ڪري ورتو. اهو جمع جو ڏينهن ۽ شوال سنه 2 هه جي پنڌرهين تاريخ هئي. ذوالقعد جو چنڊ ڏسجڻ تائين پنڌرنهن ڏينهن گهيراڙ هليو. پوءِ الله تعاليٰ سندن دلين تي خوف طاري ڪري ڇڏيو. جنهن جي سنت ئي اها آهي ته جڏهن ڪنهن قوم کي شڪست ۽ خوري نصيب ڪندو آهي ته انهن جي دلين ۾ ڊپ وجهي ڇڏيندو آهي. تنهن کانپوءِ بنو قينقاع وارن ان شرط تي هٿيار ڦٽا ڪيا ته پاڻ سڳورا عليه السلام سندن جان، مال، ٻارن ۽ ٻچن بابت جيڪو فيصلو ڪندا، اهو کين منظور هوندو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام جي حڪم تي سڀني کي ٻڌو ويو.

ان موقعي تي عبدالله بن ابي منافقائو ڪردار ادا ڪيو. هن پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڏاڍيون مٺيون ميڙون ڪيون ته انهن بابت معافيءَ جو حڪم ڪن. هن چيو ته: "يا محمد عليه السلام! منهنجن حليفن تي احسان ڪريو." ياد رهي ته بنو قينقاع، خزرج وارن جا حليف هئا. پر پاڻ سڳورا عليه السلام ترسي پيا. ان تي هن وري ڳالهه ورجائي. پر هن پيري پاڻ سڳورن عليه السلام کانئس منهن موڙي ڇڏيو. پر هو پاڻ سڳورن عليه السلام جو دامن جهلي بيهي رهيو. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: مونکي ڇڏا ۽ ايڏو

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/47، 48).

ڪاوڙيا جو ماڻهن سندن منهن مبارڪ تي ڪاوڙ جو اثر ڏنو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "مار پوئي! مونکي ڇڏا!" پر هن منافق وري زور ڀريو ۽ چيائين ته: "الله جوقسم! آئون ايستائين ڪونه ڇڏيندس، جيستائين توهان منهنجن حليفن تي احسان نه ڪندا. چار سو بنا زهره وارا جوان ۽ ٽي سو زهره پوش جن مون کي آڏي مانجهي ۽ ڀر بچايو هو، توهان انهن کي هڪ ئي ڏينهن ۾ ڪهڙي ڇڏيندا؟" واللہ! آئون ته زماني جي لاهين چاڙهين جو ڊپ پيو محسوس ڪريان."

نيٺ پاڻ سڳورن ﷺ ان منافق جي (جنهن کي اسلام قبوليندي اڃا مهينو به نه ٿيو هو) ڳالهه مڃي ۽ ان جي ڪري سڀني جي جان بخشي وئي. پر کين حڪم ڏنو ويو ته اهي مديني مان نڪري وڃن ۽ پرياسي ۾ ڪٿي به نه رهن. پوءِ اهي سڀ اذراعات شام ڏي هليا ويا ۽ ٿورن ئي ڏينهن ۾ انهن مان گهڻا مري ويا.

پاڻ سڳورن ﷺ سندن مال ضبط ڪري ورتو، جن مان ٽي ڪمانو، ٻه زرهون، ٽي تلوارون ۽ ٽي نيزا پاڻ لاءِ چونڊيائون ۽ غنيمت جي مال مان خمس به ڪڍيائون. غنيمت گڏ ڪرڻ جو ڪم محمد بن مسلمة رضي الله عنه جي حوالي ڪيو ويو. (1)

4. غزوه سويق:- هڪ پاسي صفوان بن اميه، يهودي ۽ منافق پنهنجن سازشن ۾ رڌل هئا ته بئي پاسي ابو سفيان به اهڙو ڪو ڪم ڪرڻ جو وجهه ڳولهي رهيو هو، جيڪو گهٽ خرچ وارو ۽ اثرائتو هجي. هن اهڙي ڪارروائي تڪڙي ڪري پنهنجي قوم جي پت رکڻ ۽ ان جي سگهه جو اظهار ڪرڻ چاهيو ٿي. ان باس باسي هئي ته ايستائين تڙ نه ڪندو، جيستائين پاڻ سڳورن ﷺ سان ويڙهه نه ڪري وٺي. هو پنهنجو قسم پاڙڻ لاءِ ٻه سو سوار وٺي نڪتو ۽ قنات جي واديءَ جي مُنڍ تي نيب نالي هڪ جبل جي هيٺان اچي خيما کوڙيائين. مديني کان ان جو فاصلو اٽڪل ٻارنهن ميل آهي. جيئن ته ابوسفیان مديني تي سڌي سنئين ڪاهه ڪرڻ جي همت نه ٿي ڪري سگهيو، ان ڪري هن هڪ اهڙو ڪم ڪيو، جنهن کي ڦر سان ملندر جلندڙ ڪم چئي سگهجي ٿو. ان جو تفصيل هن ريت آهي ته هو رات جي اوندھ ۾ مديني جي ويجهو پهتو ۽ حُبي بن اخطب وٽ وڃي ان جو در کڙڪايائين. حُبي، انجام جي ڊپ کان در کولڻ کان انڪار ڪيو. ابوسفیان موتي بنونصير جي هڪ سردار سلام بن مشڪر وٽ پهتو، جيڪو بنو نصير جو خزانچي هو. ابوسفیان اندر اچڻ جي اجازت گهري. هن موڪل به ڏني ۽ آڌر پاءُ به ڪئي. ماني ٽڪيءَ کانسواءِ شراب پڻ پياري ۽ کيس راز جون ڳالهيون ٻڌايائين. رات جي پوئين ڀير ابو سفيان اتان نڪري پنهنجن ساتارين وٽ پڳو ۽ انهن جو هڪ ٽولو وٺي مديني جي پرياسي ۾ عريض نالي جاءِ تي حملو ڪيائين ان ٽولي اتي ڪجين جا ڪجهه

<sup>1</sup> - زاد المعاد (2/71، 91) - ابن هشام (2/47، 48، 49).



وڻ ڪٿي ساڙي ڇڏيا ۽ هڪ انصاري ۽ ان جي حليف کي بنيءَ ۾ ڏسي ماري وڌائون ۽ تڪڙا تڪڙا مڪي پڇي ويا. پاڻ سڳورا ﷺ واردات جي خبر ملڻ شرط ابوسفیان ۽ ان جي ساٿين جي پويان لڳا پراهي تڪا پڳا هئا، ان ڪري هت نه اچي سگهيا. پر انهن ٻار هلڪو ڪرڻ لاءِ ستو، توشو ۽ پيو گهڻو ئي سامان اڇلائي ڇڏيو هو. جيڪو مسلمانن جي هٿ لڳو. پاڻ سڳورا ﷺ ڪرڪرة الڪدر تائين وڃي موٽي آيا. مسلمان ستو وغيره کڻي آيا ۽ هن مهل جو نالو غزوه سويق رکيو ويو. (سويق عربي ٻوليءَ ۾ ستو کي چئجي ٿو.) اهو غزوه، بدر جي لڙائي کان رڳو ٻه مهينا پوءِ ذي الحج سنه 2 ه ۾ ٿيو. هن غزوي دوران مديني جي سنڀال جو ڪم ابو لبابه بن عبدالمنذر رضي الله عنه جي حوالي ڪيو ويو هو. (1)

5. غزوه ذي امر: بدر ۽ احد جي ويڙهه جي وچ واري عرصي ۾ پاڻ سڳورن رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ اها سڀ کان وڏي فوجي مهل هئي، جيڪا محرم سنه 3 ه ۾ پيش آئي. ان جو ڪارڻ اهو هو ته پاڻ سڳورن رضي الله عنه کي پتو پيو ته بنو ثعلبه ۽ محرب جو وڏو ٽولو مديني تي ڪاهڻ لاءِ گڏ ٿي رهيو آهي. اها خبر ملڻ شرط پاڻ سڳورن رضي الله عنه مسلمانن کي تيار ٿيڻ جو حڪم ڪيو ۽ سوارن ۽ پيادلن تي ٻڌل ساڍا چار سؤ ماڻهن جي فوج وٺي نڪتا ۽ حضرت عثمان رضي الله عنه کي مديني ۾ پنهنجو جائنشين مقرر ڪري ويا.

رستي تي اصحابي سڳورن بنو ثعلبه جي جبار نالي هڪ همراه کي جهلي پاڻ سڳورن رضي الله عنه آڏو پيش ڪيو. پاڻ سڳورن رضي الله عنه کيس اسلام جي دعوت ڏني، هن اسلام قبوليو. ان کان پوءِ پاڻ سڳورن رضي الله عنه کيس حضرت بلال رضي الله عنه جي حوالي ڪيو ۽ ان سونهو بڻجي مسلمانن کي دشمنن جي سرزمين جو رستو ڏيکاريو.

هوڏانهن ويرين کي مديني جي لشڪر پهچڻ جي خبر پئي ته اهي پرياسي جي جبلن ۾ وڃي لڪيا پر پاڻ سڳورا رضي الله عنه اڳتي وڌندا ويا ۽ لشڪر سان گڏ ان جڳهه تي پهتا، جنهن کي دشمنن پنهنجي فوج گڏ ڪرڻ لاءِ چونڊيو هو. اهو حقيقت ۾ هڪ چشمو هو، جيڪو "ذي امر" جي نالي سان مشهور هو. پاڻ سڳورن رضي الله عنه اتي بدوئن تي رعب ۽ دڀڀو ويهارڻ لاءِ کين مسلمانن جي سگهه جو احساس ڏيارڻ لاءِ صفر سنه 3 ه جو اٽڪل سڄو مهينو اتي گذاريو ۽ ان کانپوءِ مديني ڏانهن موٽيا. (2)

<sup>1</sup> - زاد المعاد (90/2، 91) - ابن هشام (44/2، 45).

<sup>2</sup> - ابن هشام (46/2)، زاد المعاد (91/2) چيو وڃي ٿو ته دعوت يا غوث محاربيءَ هن جنگ ۾ پاڻ سڳورن رضي الله عنه کي قتل ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي هئي پر صحيح اهو آهي ته اهو واقعو هڪ ٻي غزوي ۾ پيش آيو. ڏسو صحيح بخاري (593/2).

6. **ڪعب بن اشرف جو قتل**:- هي هڪ اهڙو يهودي هو، جيڪو اسلام ۽ مسلمانن سان سخت وير رکندو هو. هو پاڻ سڳورن ﷺ کي ايندا ٻهچائيندو رهندو هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ خلاف ڪليو ڪلايو جنگ ڪرڻ جي دعوت ڏيندو رهندو هو. سندس تعلق طي قبيلي جي شاخ بنو نبهان سان هو ۽ ان جي ماءُ بني نضير قبيلي مان هئي. هو وڏو مالدار ۽ سرماييدار هو. عربستان ۾ سندس حسن ۽ جمال جو وڏو چرچو هو. هئي. هو هڪ مشهور شاعر به هو. سندس قلعو مديني جي ڏکڻ ۾ بنو نضير جي وسنديءَ جي پٺيان هو. کيس بدر جي جنگ ۾ مسلمانن جي سوڀ ۽ قريش سردارن جي مارجڻ جي پهرين خبر ملي ته بي ساخته چئي ڏنائين ته "چا سچ پچ ائين ٿيو آهي؟ اهي عربستان جا اشرف ۽ بادشاهه هئا. جي محمد ﷺ انهن کي ماري وڌو آهي ته پوءِ اسان جي لاءِ اهو ٻڌي مرڻ جو مقام آهي."

۽ جڏهن کيس واقعي جي پڪي خبر ملي ته الله جو هيءُ دشمن پاڻ سڳورن ﷺ ۽ مسلمانن کي گاريون ڏيڻ ۽ اسلام جي دشمنن جي ساراهه ڪرڻ لڳو ۽ کين مسلمانن لاءِ پڙڪائڻ لڳو. ان مان هانوءَ تي چنڊو نه پيس ته قريش وٽ هلي ويو ۽ مطلب بن ابي وداعه ساهي جو مهمان بڻيو. پوءِ مشرڪن کي غيرت ڏيارڻ ۽ وير وٺڻ جي جذبي کي وڌائڻ ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان وڙهڻ لاءِ راضي ڪرڻ خاطر شعر چئي انهن قريش سردارن جو ماتر ڪرڻ لڳو، جن کي بدر جي جنگ ۾ مارڻ کانپوءِ ڪوهه ۾ اڇلايو ويو هو. ان دوران ابوسفیان ۽ ٻين مشرڪن کانئس پڇيو ته اسان جو دين تولا ۽ وڌيڪ وڌندڙ آهي يا محمد ۽ ان جي ساٿين جو؟ ۽ ٻنهي مان ڪهڙي ڌر حق تي آهي؟ ڪعب بن اشرف چيو ته "توهان انهن کان وڌيڪ حق تي ۽ وڌيڪ پلارا آهيو." ان سلسلي ۾ الله تعاليٰ هيءَ آيت نازل ڪئي:

﴿أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيحًا مِّنَ الْكِتَابِ يُؤْمِنُونَ بِالْحِجَّتِ وَالطَّاعُوتِ وَيَقُولُونَ لِلَّذِينَ كَفَرُوا هَؤُلَاءِ أَهْدَىٰ مِنَ الَّذِينَ آمَنُوا سَبِيلًا﴾ (51) (النساء)

"(اي بيغمبر) انهن ڏانهن نه ڏنو اٿئي ڇا؟ جن کي ڪتاب مان پاڻو ڏنو ويو ته اهي بتن ۽ شيطان کي مڃيندا آهن ۽ ڪافرن لاءِ چوندا آهن ته هيءَ ٽولي مؤمنن کان وڌيڪ سنئين وات واري آهي."

ڪعب بن اشرف اهو سڀ ڪجهه ڪري مديني موٽي آيو ۽ هتي اچي اصحابي سڳورن جي عورتن بابت واهيات شعر چوڻ لڳو ۽ پنهنجي ڪني زبان سان کين سخت اذيت رسايائين.

اهي ئي حالتون هيون جو پاڻ سڳورن ﷺ تنگ ٿي فرمايو ته: "ڪير آهي، جيڪو ڪعب بن اشرف کي سيڪت ڏي؟" ڇو ته ان الله ۽ ان جي رسول ﷺ کي اذيت ڏني آهي."

ان سڌ تي محمد بن مسلم رضي الله عنه، عبادۃ بن بشر رضي الله عنه، ابو نائل رضي الله عنه، جنهن جو نالو سلڪان بن سلام هو ۽ جيڪو ڪعب جا ٽي شريڪ ڀاءُ هو. حارث بن اوس رضي الله عنه ۽ ابو عبس بن جبر، پنهنجو خدمتون آڇيون. ان ننڍڙي ٽولي جو مهندار محمد بن مسلم رضي الله عنه هو.

ڪعب بن اشرف جي قتل بابت روايتن جو نت اهو آهي ته: جڏهن پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: ڪعب بن اشرف کي ڪير سيڪت ڏيندو؟ ڇو ته ان الله ۽ ان جي رسول صلى الله عليه وسلم کي تڪليف رسائي آهي ته محمد بن مسلم رضي الله عنه اتي چيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! آئون حاضر آهيان. ڇا توهان چاهيو ٿا ته آئون ڪيس ماري وجهان؟" پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "ها" ان عرض ڪيو ته "ته پوءِ توهان مون کي ڪجهه چوڻ جي موڪل ڏيو." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کين موڪل ڏني.

ان کانپوءِ محمد بن مسلم رضي الله عنه، ڪعب بن اشرف وٽ پهتو ۽ چيائين ته: "هن شخص (اشارو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ڏانهن هو) اسان کان صدقو گهريو آهي. سچ پچين ته اسان کي مصيبت ۾ وجهي ڇڏيو اٿس."

ڪعب چيو ته: "والله توهان ته اڃا به گهڻو بيزار ٿيندؤ."

محمد بن مسلم رضي الله عنه چيو ته: "هاڻي جڏهن اسين سندس پوئلڳ ٿي چڪا آهيون ته چڱو نٿو لڳي ته سندس ساٿ ڇڏي وڃون، جيستائين سندس انجام نه ڏسي وٺون ته ڇا ٿو ٿئي! چڱو اسان چاهيون ٿا ته توهان اسان کي هڪ وسق يا ٻه وسق ان ڏيو.

ڪعب چيو ته: "مون وٽ ڪجهه گروي رکو."

محمد بن مسلم رضي الله عنه چيو ته: "توهان ڪهڙي شيءِ پسند ڪندا؟"

ڪعب چيو ته: "پنهنجون عورتون مون وٽ گروي رکو."

محمد بن مسلم رضي الله عنه چيو ته: "تو جهڙي عرب جي سڀ کان سهڻي ماڻهوءَ وٽ اسان پنهنجون عورتون ڪيئن ٿا گروي رکي سگهون!"

هن چيو ته: "پوءِ پنهنجا پٽ ئي گروي رکي ڇڏيو."

محمد بن مسلم رضي الله عنه چيو ته: "اسان پنهنجا پٽ ڪيئن ٿا گروي رکي سگهون؟ جي ائين ٿيو ته کين گار ڏني ويندي ته اهي هڪ يا ٻن وسق جي بدلي ۾ گروي رکيا ويا هئا. اها ڳالهه اسان کان نه پڇندي. باقي اسين اوهان وٽ هٿيار گروي رکي ٿا سگهون."

ان کانپوءِ ٻنهي ۾ طئه ٿي ويو ته محمد بن مسلم رضي الله عنه (هٿيار کڻي) ان وٽ ايندو.

هوڏانهن ابو نائل رضي الله عنه به اهڙيءَ طرح جو قدم کنيو. يعني ڪعب بن اشرف وٽ اچي، ڪجهه دير هيڏانهن هوڏانهن جون ڳالهيون ۽ شعر ٻڌندو ٻڌائيندو رهيو. پوءِ چيائين ته: "ادا ابن

اشرف! آئون هڪ غرض سان آيو آهيان. اهو ٻڌائڻ ٿو گهران. پر ان کي پاڻ تائين رکجان. "ڪعب چيو ته: "نيڪ آهي، آئون ائين ئي ڪندس."

ابو نائله رضي الله عنه چيو ته: "پاڻو هن همراهه (اشارو پاڻ سڳورن عليه السلام ڏانهن هو) جو اچڻ ته اسان لاءِ آزمائش بڻجي ويو آهي. سڄو عربستان اسانجو ويري ٿي پيو آهي. سڀئي اسانجي خلاف پاڻ ۾ ملي ويا آهن. اسانجون راهون بند ٿي ويون آهن. ٻار ٻچا تباهه ٿي رهيا آهن. هاڻي ته ماڳهين اچي سر سان لڳي اٿئون. اسان ۽ اسان جا ٻار ٻچا مصيبتن ۾ جڪڙيل آهن." ان کانپوءِ هن ٿورو نموني سان اهڙي ڳالهه بولڻ ڪئي جهڙي محمد بن مسلم رضي الله عنه ڪئي هئي. ڳالهين ڳالهين ۾ ابو نائله رضي الله عنه اهو به چيو ته منهنجا ڪجهه ساٿي به منهنجن خيالن جا آهن، آئون انهن کي به اوهان وٽ وٺي اچڻ ٿو گهران. توهان انهن کي به ڪجهه وڪڻي ڏيو ۽ انهن تي احسان ڪريو.

محمد بن مسلم رضي الله عنه ۽ ابو نائله رضي الله عنه پنهنجي مقصد ۾ ڪامياب ٿيا، ڇو ته ان ڳالهه بولڻ کانپوءِ هٿيارن ۽ ساٿين سان انهن ٻنهي جي اچڻ تي ڪعب بن اشرف ڀرڪي ڪونه ها. ان پهرئين مرحلي پوري ڪرڻ کانپوءِ 14 ربيع الاول سنه 3 هـ جي چند واري رات جو اهو ننڍڙو ٽولو پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ گڏ ٿيو. پاڻ سڳورا عليه السلام بقيع غرقد تائين ساڻن گڏ هليا. پوءِ فرمايائون ته: الله جو نالو وٺي وڃو، الله توهان جي مدد ڪندو. پوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام گهر ڏي موٽيا ۽ نماز ۽ مناجات ۾ مشغول ٿي ويا.

هوڏانهن هي ٽولو ڪعب بن اشرف جي قلعي جي ويجهو پهتو ته ابو نائله رضي الله عنه کيس وڏي واڪي سڏ ڪيو. آواز ٻڌي هو انهن وٽ اچڻ لاءِ اٿيو ته سندس نئين نوڙي ڪنوار چيو ته: "هن وقت ڪيڏانهن ٿو وڃين؟ آئون اهڙو آواز ٻڌي رهي آهيان، جنهن مان رت پيو ٽمندي محسوس ٿئي." ڪعب چيو ته: "اهو ته منهنجو ڀاءُ محمد بن مسلم رضي الله عنه ۽ منهنجو ٽچ شريڪ ساٿي ابو نائله رضي الله عنه آهي. سخي ماڻهوءَ کي جيڪڏهن موت ڏانهن سڏيو وڃي ته ان تي به هو لبيڪ چونڊو. ان کانپوءِ هو ٻاهر آيو. هو چڻ ته خوشبوءِ ۾ وهنتل هو ۽ مٿي مان سرهاڻ جو لهرن پئي اٿيون.

ابو نائله رضي الله عنه پنهنجن ساٿين کي سمجهائي ڇڏيو هو ته جڏهن هو ايندو ته آئون سندس وار جهلي سونگهيندس. جڏهن توهان ڏسو ته مون سندس مٿو جهلي کيس قابو ڪري ورتو آهي ته ان تي ٽٽي پئجو ۽ کيس ماري وجهجو. پوءِ جڏهن ڪعب آيو ته ٿوري دير ڳالهين ڪندا رهيا، پوءِ ابو نائله رضي الله عنه چيو ته: "ابن اشرف! ڇو نه شعب عجوز تائين هلون، ٿورو اچ رات ڪچهري ٿي وڃي." هن چيو ته: "توهان جي اها مرضي آهي ته هلو." ان تي سڀئي هلڻ لڳا. گس تي ابو نائله رضي الله عنه چيو ته: "اچ جهڙي وڻندڙ خوشبوءِ مون ڪڏهن ڪانه ڏني." اهو ٻڌي ڪعب جو سينو فخر کان ڦونڊجي ويو. چوڻ

لڳو ته مون وٽ عربستان جي سڀ کان وڌيڪ خوشبوءَ واري عورت آهي. ابو نائله چيو ته جي موڪل ڏيو ته تورو توهان جو مٿو سونگهي وٺان؟ هن چيو ته ها ها (چونءِ) ابو نائله رضي الله عنه سندس مٿي ۾ هٿ وڌو پوءِ پاڻ به سونگهيائين ۽ سائين کي به سونگهيائين. تورو اڳتي هليا ته ابو نائله رضي الله عنه چيو ته ڀائو هڪ ڀيرو وري. ڪعب چيو ته: ها ها (چونءِ) ابو نائله رضي الله عنه وري ساڳيو عمل دهرايو. تان ته هو مطمئن ٿي ويو.

ان کانپوءِ تورو اڳتي هلي ابو نائله رضي الله عنه وري چيو ته: ڀائو هڪ ڀيرو وري. هن چيو ته نيڪ آهي. هن ڀيري ابو نائله رضي الله عنه سندس مٿي ۾ هٿ وجهي سوگهو جهليندي چيو ته: "وَنُوَ اللّٰهُ جِي دَشْمَنَ كِي." ايتري ۾ ڪيتريون ئي تلوارون مٿس ٽٽي پيون، پر هو نه مٿو. اهو ڏسي محمد بن مسلم رضي الله عنه تڪڙ ۾ پنهنجي ڪوڏر کڻي ۽ سندس پيٽ تي رکي چڙهي ويٺو. ڪوڏر آريار ٿي ويس ۽ الله جو هي دشمن اتي ئي ڏهي پيو. حملو ٿيندي ئي هن اهڙو رانپاٽ ڪيو هو جو پرياسي ۾ ٿرٿلو مڃي ويو ۽ ڪو قلعو اهڙو نه بچيو جنهن ۾ روشني نه ڪئي وئي هجي. (پر تيو ڪجهه به ڪونه)

هن ڪارروائيءَ ۾ حضرت حارث بن اوس رضي الله عنه کي ڪن سائين جي تلوارن جون چهنجون لڳي ويون هيون، جنهن سان پاڻ گهاٽجي پيو ۽ سندن جسر مان رت وهڻ لڳو. جڏهن موٽڻ مهل هي ٿولو حره عريض پهتو ته ڏٺائون ته حارث رضي الله عنه گڏ نه آهي. ان ڪري سڀيئي اتي بيهي رهيا. ٿوري دير کانپوءِ حارث رضي الله عنه به سندن پيرا کڻي اتي پهتو. اتي ٻين کين کڻي ورتو ۽ بقيع غرقد پهچي ايڏو زور سان نعرو هنيائون جو پاڻ سڳورن عليه السلام به ٻڌو ۽ سمجهي ويا ته انهن، همراهه کي ماري وڌو آهي. تنهنڪري پاڻ سڳورن عليه السلام الله اڪبر چيو. پوءِ جڏهن اهي پاڻ سڳورن عليه السلام جي خدمت ۾ پهتا ته پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته:

أَفَلَحَتِ الْوُجُوهُ (هي منهن سوڀارا ٿيا) انهن چيو ته: وَ وَجْهَكَ يَا رَسُولَ اللَّهِ عليه السلام! (اوهانجو چهرو مبارڪ به يا رسول الله عليه السلام) ان سان گڏوگڏ هن طاغوت جي سسي پاڻ سڳورن عليه السلام جي آڏو رکي ڇڏيائون. پاڻ سڳورن عليه السلام ان جي مارڻ تي الله تعاليٰ جا تورا مڃيا ۽ حارث رضي الله عنه جي زخم تي پڪ مبارڪ لڳائي، جنهن سان اتي جو اتي ڦٽ چٽي ويو ۽ ٻيهر کين ڪڏهن به سور نه ٿيو. <sup>(1)</sup>

هوڏانهن جڏهن يهودين کي پنهنجي طاغوت ڪعب بن اشرف جي مارڻ جو پتو پيو ته سندن هٿ ۽ هوڏ سان ڀريل دٻيلن ۾ ڊپ پيدا ٿيو. سندن سمجهه ۾ اچي ويو ته جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام محسوس ڪري ورتو ته امن امان سان ڪيڏيندڙن، قشريون ۽ فساد ڪرڻ وارن ۽ وعدن ۽ قسمن جو

<sup>1</sup> - هن واقعي جو تفصيل ابن هشام (57\_51/2) صحيح بخاري (341/1، 425، 577/2)، سنن ابی داؤد مع عون المعبود (42/2، 43) ۽ زادالمعاد (91/2) تان ورتل آهي.

احترام نه ڪرڻ وارن تي نصيحت اثر نٿي ڪري ته پاڻ سڳورا ﷺ طاقت استعمال ڪرڻ کان به ڪونه مڙندا. انڪري انهن پنهنجي هيڏي وڏي طاغوت جي موت تي به ڪجهه نه ڪڇيو، پر صفا ماڻ ۾ رهيا، وعدو نڀائڻ جو ڏيکاءَ ڏنائون ۽ همت هاري وينا. يعني نانگ تيزيءَ سان پنهنجن برن ۾ گهڙي ويا. اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ ڊگهي عرصي تائين مديني جي باهران ڪنهن خطري اٿڻ جي خيال کان آجا ٿي ويا ۽ مسلمان ڪيترن ئي اندرين مسئلن کان ڇٽي پيا، جن کان کين ڊپ رهندو هو.

**7. غزوه بحران:-** هيءَ هڪ وڏي فوجي مهڙ هئي، جنهن ۾ 300 جڻا شامل هئا. اها فوج وٺي پاڻ سڳورا ﷺ سنه 3 هـ جي ربيع الآخر ۾ بحران نالي هڪ علائقي ۾ پهتا. اهو حجاز ۾ فرع جي پرياسي ۾ هڪ معدني علائقو آهي. پاڻ سڳورا ﷺ ربيع الآخر ۽ جماد الاول جا ٻئي مهينا اتي ئي رهيا. ان کانپوءِ مديني موٽيا. ڪنهن به قسم جي ويڙهه ڪانه ٿي. (1)

**8. سريه زيد بن حارثه رَضِيَ اللهُ عَنْهُ:-** احد واري لڙائيءَ کان اڳ مسلمانن جي هيءَ آخري ۽ ڪامياب ترين ويڙهه هئي، جيڪا جمادي الآخر سنه 3 هـ ۾ ٿي. واقعي جو تفصيل هن ريت آهي ته قريش بدر واري لڙائيءَ کانپوءِ بي چين ته هئا ئي پر جڏهن اونهارو جي مند آئي ۽ شام ملڪ ڏي واپاري سفر جو وقت اچي پهتو ته کين هڪ ٻئي فڪر اچي ورايو. ان جي وضاحت هن مان ٿئي ٿي ته صفوان بن اميه، جنهن کي قريش پاران هن سال شام وڃڻ واري قافلي جو اڳواڻ چونڊيو ويو هو، تنهن قريش کي چيو ته: "محمد ﷺ ۽ سندس ساٿين اسانجو واپاري لنگهه اسان لاءِ ڏکيو ڪري ڇڏيو آهي. سمجهه ۾ نٿو اچي ته اسين سندس ساٿين سان ڪيئن پڇون. اهي ساحل کان هٽن ڪونه ٿا ۽ اتي جا رهواسي ساڻن ملي ويا آهن. عام ماڻهو به ساڻن مليل آهن. هاڻي سمجهه ۾ نٿو اچي ته اسين ڪهڙو رستو اختيار ڪريون؟ جيڪڏهن اسين گهرن ۾ ئي وينا رهياسين ته الهه تلهه ڇٽ ڪري ڇڏينداسين. اسان جي حياتيءَ جو دارومدار ان تي آهي ته اونهارو ۾ شام سان ۽ سياري ۾ حبش سان واپار ڪريون."

صفوان جي ان سوال تي بحث مباحثو شروع ٿي وئي. نيٺ اسود بن عبدالمطلب، صفوان کي چيو ته: "تون ساحلي رستو ڇڏي عراق واري رستي کان سفر ڪر." واضح رهي ته اهو رستو ڏاڍو ڊگهو آهي. نجد کان ٿي شام پهچي ٿو ۽ مديني جي اوڀر مان چڱو خاصو پري کان لنگهي ٿو. اهو

<sup>1</sup> - ابن هشام (50/2، 51) - زاد المعاد (91/2) هن غزوي جا سبب مختلف ٻڌايا ويا آهن. چيو وڃي ٿو ته مديني ۾ اها خبر پهتي ته بنو سليم وارا مديني تي چڙهائي ڪرڻ لاءِ وڏي پيماني تي جنگي تياريون ڪري رهيا آهن ۽ چيو وڃي ٿو ته پاڻ سڳورا ﷺ قريش جي ڪنهن قافلي جي ڳولها ۾ نڪتا هئا. ابن هشام اهو ئي سبب ڄاڻايو آهي ۽ ابن قير به اهو ئي سبب ٻڌايو آهي. تنهن ڪري پهريون سبب ڄاڻايو ئي ڪونه اٿس. اها ئي ڳالهه صحيح به لڳي ٿي، ڇو ته بنو سليم، فرع جي پرياسي ۾ وينل نه هئا، پر نجد ۾ وينل هئا، جيڪو فرع کان تمام گهڻو پري آهي.

رستو قريش جي ڏنل نه هو. ان ڪري اسود بن عبدالمطلب، صفوان ڪي صلاح ڏني ته هو فرات بن حيان ڪي، جيڪو بڪر بن وائل قبيلي مان هو، ساڻي ڪري کڻي. هو سفر ۾ سندس رهنمائي ڪندو. هن انتظام کانپوءِ قريش جو قافلو صفوان بن اميه جي اڳواڻيءَ ۾ نئين رستي کان روانو ٿيو پر ان قافلي ۽ سندس سفر جي سڄي خبر مديني پهچي وئي. ٿيو هيئن جو سليط بن نعمان رضي الله عنه، جيڪي مسلمان ٿي چڪو هو، نعيم بن مسعود سان گڏ، جيڪو اڃا مسلمان نه ٿيو هو، شراب جي هڪ مجلس ۾ گڏيو. اهو شراب حرام ٿيڻ کان اڳ جو واقعو آهي. جڏهن نعيم تي نشو چڙهيو ته هن قافلي ۽ ان جي سفر جو سڄو منصوبو ٻڌائي ڇڏيس. سليط رضي الله عنه ڏاڍو تڪڙو پاڻ سڳورن عليه السلام جي خدمت ۾ پهتو ۽ سڄو تفصيل بيان ڪيائين.

پاڻ سڳورن عليه السلام هڪدم حملي جي تياري ڪئي ۽ سو سوارن جو هڪ جتو حضرت زيد بن حارثه ڪلبي رضي الله عنه جي هٿ هيٺ موڪلي ڇڏيو. حضرت زيد رضي الله عنه ڏاڍو تڪڙو هلي قريش جي قافلي کي بي خبريءَ ۾ قروه نالي هڪ چشمي وٽ وڃي جهليو ۽ اوچتو حملو ڪري سڄي قافلي تي قبضو ڪري ورتو. صفوان بن اميه ۽ ٻين محافظن لاءِ پڇڻ کان سواءِ ڪو چارو نه رهيو.

مسلمانن قافلي جي رهنما، فرات بن حيان ڪي ۽ چون ٿا ته وڌيڪ ٻن جٽن کي به جهلي ورتو. ٿانو ۽ چانديءَ جو وڏو مقدار، جيڪو قافلي وٽ هو ۽ جنهن جو ڪاڻو هڪ لک درهم ٿاڻين هو، غنيمت طور هٿ آيا. پاڻ سڳورن عليه السلام خمس (پنجون حصو) ڪڍي غنيمت جو مال جڻي وارن ۾ ورهائي ڇڏيو ۽ فرات بن حيان پاڻ سڳورن عليه السلام جي هٿ تي اسلام قبوليو. <sup>(1)</sup>

بدر کانپوءِ قريش لاءِ اهو سڀ کان ڏکوئيندڙ واقعو هو، جنهن سان انهن ۾ بي چيني وڌي وئي. هاڻي انهن وٽ ٻه رستا وڃي بچيا. يات پنهنجو هٿ ۽ وڏائي ڇڏي مسلمانن سان ٺاه ڪن يا هڪ هڪائي ڪري پنهنجي وڃايل ساڪ بحال ڪن ۽ مسلمانن جي سگهه توڙي ڇڏين ته جيئن اهي ٻيهر اسري نه سگهن. مڪي جي قريش اهو ٻيو رستو چونڊيو، پوءِ هن واقعي کان پوءِ قريش ۾ بدلي جي پاونا وڌي وئي ۽ انهن مسلمانن سان ٽڪرائڻ ۽ سندن وسندين ۾ گهڙي انهن تي حملو ڪرڻ جي ڀرپور تياري ڪرڻ شروع ڪئي. اهڙيءَ طرح گذريل واقعن کان سواءِ اهو واقعو به احد واري لڙائي جو وڏو ڪارڻ آهي.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/50,51) رحمة للعالمين (219/2).

## احد واري لڙائي

پلانڊ ونڻ لاءِ قريشن جون تياريون:- مڪي وارن کي بدر واري لڙائيءَ ۾ هار ۽ بيعتِيءَ جو جيڪو ڏڪ ۽ پنهنجن وڏيرن جي مارجڻ جو جيڪو صدمو سهڻو پيو هو، ان جي ڪارڻ اهي مسلمانن خلاف ڪاوڙ ۽ ڪروڙ ۾ ٽهڪي رهيا هئا. انهن پنهنجن مئلن جو ماتر به ڪونه ڪيو هو ۽ قيدين لاءِ فديو ڏيڻ ۾ اڀرائيءَ کان ڪم ونڻ کان به پاڻ جهليو هئائون ته جيئن مسلمان سندن ڏڪ جي شدت جو اندازو نه ڪري سگهن. انهن بدر جي لڙائيءَ کانپوءِ گڏيل فيصلو ڪيو ته مسلمانن سان هڪ هڪائي ڪري پنهنجي هانوءَ تي ڇنڊو هڻندا ۽ ڪاوڙ ۽ ڪروڙ جي باهه کي ٽڌو ڪندا ۽ ان سان گڏوگڏ اهڙي طرح جي جنگ جي تياري به شروع ڪري ڇڏيائون. هن معاملي ۾ قريش جي مهتدارن مان عڪرم بن ابوجهل، صفوان بن اميه، ابو سفيان بن حرب ۽ عبدالله بن ربيعه وڌيڪ پرجوش ۽ اڳرا هئا.

انهن سڀ کان پهريون ڪم اهو ڪيو ته ابو سفيان جو اهو قافلو، جيڪو بدر جي لڙائيءَ جو ڪارڻ بڻيو هو ۽ جنهن کي ابوسفيان بچائي ڪڍي ويڃڻ ۾ ڪامياب ٿي ويو هو، ان جو سڄو مال جنگ جي خرچ لاءِ روڪي ڇڏيو ۽ جن ماڻهن جو اهو مال هو، تن کي چيائون ته: ”اي قريشيو! توهان کي محمد ﷺ ڏاڍو ڏڪ رسايو آهي ۽ توهان جا چونڊ سردار ماري ڇڏيا آهن. تنهن ڪري انهن سان جنگ لاءِ هن مال ذريعي مدد ڪريو. ٿي سگهي ٿو ته اسين پلانڊ ونڻ ۾ ڪامياب ٿي وڃون. قريشن اها ڳالهه قبولي. تنهن کانپوءِ سڄو مال، جنهن ۾ هڪ هزار اٺ ۽ پنجاهه هزار دينار هئا، جنگ جي تياريءَ لاءِ وڪڻي ڇڏيا. ان بابت الله تعاليٰ هيءَ آيت نازل ڪئي:

﴿إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا يُنْفِقُونَ أَمْوَالَهُمْ لِيَصُدُّوا عَنْ سَبِيلِ اللَّهِ فَسَيُنْفِقُونَهَا ثُمَّ تَكُونُ عَلَيْهِمْ حَسْرَةً ثُمَّ يُغْلَبُونَ...﴾

(الانفال)

”۽ ڪافر پنهنجو مال هن لاءِ خرچين ٿا ته (ماڻهن کي) الله جي واٽ کان جهلين. پوءِ اهي سگهو ان (مال) کي خرچ ڪندا ۽ وري (اهو خرچڻ جو) ارمان ٿيندو وري مغلوب ڪيا ويندا.

پوءِ انهن رضاڪارائي ڀرتيءَ جو اعلان ڪيو ته جيئن جيڪي حبشي، ڪنعاني ۽ بنو تمام وارا مسلمانن خلاف ويڙهه ۾ شامل ٿيڻ چاهين ته اهي قريش جي جهنڊي هيٺ اچي گڏ ٿين. انهن هن مقصد ڏانهن ماڻهن کي ڇڪڻ لاءِ مختلف جيلا هلايا. ايستائين جو ابو عزه شاعر جيڪو بدر جي لڙائيءَ ۾ باندي ٿيو هو ۽ جنهن کي پاڻ سڳورن ﷺ احسان ڪري فديي ڪانسواءِ اهو واعدو وٺي ڇڏي ڏنو هو ته پاڻ سڳورن ﷺ خلاف ڪڏهن نه اٿندو، ان کي صفوان بن اميه ڀڙڪايو ته هو قبيلن کي مسلمانن خلاف ڀڙڪائڻ جو ڪم ڪري ۽ ساڻس اهو واعدو ڪيو ته جيڪڏهن هو لڙائيءَ مان



جيئرو بچي آيو ته كيس مالا مال ڪري ڇڏيندو. نه ته سندس چوڪرين جي سنڀال ڪندو. تنهنڪري ابو عزه پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪيل وعدا وعيد وساري، غيرت ۽ حميت جي جذبن کي وڌائڻ وارن شعرن جي ذريعي قبيلن کي پڙڪائڻ شروع ڪيو. اهڙيءَ طرح قريشن، هڪ ٻئي شاعر مسافع بن عبدمناف جُمحي کي به هن مهل لاءِ تيار ڪيو.

هوڏانهن ابو سفيان غزوه سويق کان ناڪام ۽ نامراد، پر هڪ وڏي تعداد ۾ رسد جو سامان ڦرائي موٽي اچڻ کانپوءِ مسلمانن خلاف ماڻهن کي پڙڪائڻ ۾ ڪجهه وڌيڪ سرسي ڏيکاري. پوءِ آخر ۾ زيد بن حارثه رضي الله عنه جي سري ۾ قريشن کي جيڪو سنگين ۽ چيلهه چبي ڪرڻ جهڙو ڏک رسيو، ان باهه تي تيل جو ڪم ڪيو. ۽ ان کانپوءِ مسلمانن سان هڪ هڪائي ڪرڻ لاءِ قريشن جي تياريءَ ۾ تيزي اچي وئي.

قريشن جو لشڪر، جنگي سامان ۽ مهنداري: - تنهن کانپوءِ سال پورو ٿيندي ٿيندي قريشن جي تياري پوري ٿي وئي. سندن پنهنجن ماڻهن کانسواءِ حليفن ۽ حبشين سميت ڪل ٽن هزارن جو لشڪر تيار ٿيو. قريشي مهندارن جو رايو هو ته پاڻ سان عورتون به وٺي هلون ته جيئن ناماچاري ۽ لڄ جي حفاظت جو احساس ڪجهه وڌيڪ جانثاريءَ سان وڙهڻ جو ڪارڻ بڻجي. تنهنڪري هن لشڪر ۾ سندن عورتون به شامل ٿيون، جن جو تعداد پنڌرنهن هو. سواري ۽ سامان ڪٽڻ لاءِ ٽي هزار اٺ هئا ۽ رسالي لاءِ ٻه سو گهوڙا به هئا. (1)

انهن گهوڙن کي چست رکڻ لاءِ سڄو رستو کين پاسي تي رکيو ويو. يعني انهن تي سواري نه ڪئي وئي. حفاظتي هٿيارن ۾ ست سو زرهون هيون.

ابو سفيان کي سڄي لشڪر جو سپهه سالار مقرر ڪيو ويو. رسالي جي ڪمان خالد بن وليد کي ڏني وئي ۽ عڪرمه بن ابوجهل کي سندس ٻانهن ٻيلي ڪيو ويو. جهنڊو دستور موجب قبيلي بني عبدالدار جي هٿ ۾ ڏنو ويو.

مڪي جي لشڪر جي روانگي: - هن پريور تياريءَ کانپوءِ مڪي جو لشڪر ان حالت ۾ مديني ڏانهن روانو ٿيو جو مسلمانن خلاف ڪاوڙ ۽ ڪروڙ ۽ بدلي جي پاونا سندن دلين ۾ شعلي وانگر پڙڪي رهي هئي ۽ اها جلد ئي ٿيڻ واري ويڙهه جي رتوچاڻ ۽ تڪائيءَ جو ڏس پتو ڏيئي رهي هئي.

<sup>1</sup> - زاد المعاد (92/2) اهو ئي مشهور آهي پر فتح الباري (346/7) ۾ گهوڙن جو تعداد هڪ سو ٻڌايو آهي.

مديني ۾ خبر پهچڻ:- حضرت عباس رضي الله عنه قرين جي سڄي چرپر ۽ جنگي تيارين کي گهري نظر رکي پئي. تنهنڪري جيئن ئي هي لشڪر روانو ٿيو ته حضرت عباس رضي الله عنه ان جو سڄو احوال هڪ خط ۾ لکي هڪدم پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڏياري موڪليو.

حضرت عباس رضي الله عنه جن جو قاصد نياپو پڄاڻڻ ۾ تڪو نڪتو. هن مڪي کان مديني جو ڪل پنج سو ڪلوميٽرن جو پنڌ رڳو ٽن ڏينهن ۾ پورو ڪري خط پاڻ سڳورن عليه السلام جي حوالي ڪيو. ان مهل پاڻ سڳورا عليه السلام مسجد قباء ۾ موجود هئا. اهو خط حضرت ابي بن ڪعب رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام کي پڙهي ٻڌايو. پاڻ سڳورن عليه السلام کين ڳالهه ڳجهي رکڻ جي تاڪيد ڪئي ۽ تڪڙو مديني پهچي انصارن ۽ مهاجرن جي اڳواڻن سان صلاح ۽ مشورو ڪيائون.

هنگامي حالتن جي مقابلي جون تياريون:- ان کانپوءِ مديني ۾ هنگامي حالتون طاري ٿي ويون. ماڻهو ڪنهن به صورتحال سان منهن ڏيڻ لاءِ هر وقت هٿيار بند رهڻ لڳا. ويندي نماز ۾ به هٿيار ڌار نٿي ڪيا ويا.

هوڏانهن انصارن جو هڪ ننڍڙو ٽولو جنهن ۾ سعد بن معاذ رضي الله عنه، اسيد بن حضير رضي الله عنه ۽ سعد بن عباد رضي الله عنه شامل هئا، پاڻ سڳورن عليه السلام جي حفاظت لاءِ مقرر ڪيو ويو. اهي سڄي رات هٿيار کڻي پاڻ سڳورن عليه السلام جي در تي پهرو ڏيندا هئا.

ڪجهه ٻيا ٽولا به مديني ۾ گهڙڻ وارن لنگهن تي پهرو ڏيندا هئا ته متان غفلت ۾ اوچتو حملو نه ٿي وڃي.

ٻيا به ڪجهه ٽولا دشمنن جي چرپر جي خبر وٺڻ لاءِ نڪتل هئا. اهي دستا انهن رستن تي گشت ڪندا رهندا هئا، جن تان لنگهي مديني تي حملو ڪرڻ ممڪن هو.

مڪي جو لشڪر مديني جي ويجهو:- هوڏانهن مڪي جو لشڪر مشهور رستي تي هلندو جڏهن ابواءَ وٽ پهتو ته ابو سفيان جي زال هند بنت عتبه اها رت ڏني ته پاڻ سڳورن عليه السلام جي امڙ بيبي آمنه جي تربت کوتي وڃي. پر اها راهه کولڻ جا جيڪي اڳرا (خراب) نتيجا نڪرن ها، تن جي ڊپ کان لشڪر جي مهندارن ان رت کي رد ڪري ڇڏيو.

ان کانپوءِ لشڪر پنهنجو سفر جاري رکيو، تان ته مديني جي ويجهو عتيق جي واديءَ مان لنگهي پوءِ ٿورو ساڄي پاسي لهي احد جبل جي ويجهو عينين نالي هڪ جڳهه تي، جيڪا مديني جي اتر ۾ قنات جي واديءَ جي ڪناري تي هڪ غير آباد زمين آهي، ديرو ڄمايو. اهو جمعة 6 شوال سنه 3 هـ جو واقعو آهي.

مديني جي بچاء لاءِ حڪمت عملي جوڙڻ لاءِ مجلس شوري جي گڏجاڻي:-- مديني ۾ مڪي جي لشڪر جي هڪ هڪ خبر پهچي رهي هئي. ويندي سندن پڙاءِ جي آخري خبر به پهچي وئي. ان مهل ئي پاڻ سڳورن ﷺ مديني جي فوج جي اختيارِيءَ وارن جي مجلس شوري سڏائي. جنهن ۾ مناسب حڪمت عملي جوڙڻ لاءِ صلاح مشورو ڪرڻو هو. پاڻ سڳورن ﷺ کين پنهنجو ڏنل هڪ خواب ٻڌايو. پاڻ سڳورن ﷺ ٻڌايو ته واللہ مون هڪ چڱي شيءِ ڏني. مون ڏنو ته ڪجهه ڊگيون ڪنيون پيون وڃن ۽ مون ڏنو ته منهنجي تلوار جي چهنب ڪجهه تنل آهي ۽ مون اهو به ڏنو ته مون پنهنجي هٿ ۾ هڪ محفوظ زره کڻي آهي. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ڊگيءَ جي تعبير اها ٻڌائي ته ڪجهه صحابه سڳورا ماريا ويندا. تلوار تنل جي اها تعبير ٻڌائي ته پاڻ سڳورن ﷺ جي گهر جو ڪو ماڻهو شهيد ٿيندو ۽ محفوظ زره جي تعبير اها ٻڌائي ته ان مان مراد مدينو شهر آهي.

پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ صحابه سڳورن جي آڏو بچاءِ جي حڪمت عمليءَ بابت پنهنجو رايو پيش ڪيو ته مديني کان ٻاهر نه نڪرجي، پر شهر ۾ ئي قلعو بند ٿي ويهجي. پوءِ جي قریش پنهنجي پڙاءِ تي ئي ويٺا رهيا ته اهو بي مقصد رهڻ ٿيندو ۽ جي مديني ۾ گهڙن ٿا ته مسلمان گهڻين جي منڍ تي ساڻن ويڙهه ڪندا ۽ عورتون ڇتئين تان انهن کي پٿر اڇلائي هڻنديون. اها ئي صحيح راءِ هئي ۽ اها راءِ ئي منافقن جي سردار عبدالله بن ابي به مڃي، جيڪو هن مجلس ۾ خزر جي اهم نمائندي طور شريڪ ٿيو هو. پر ان راءِ کي مڃڻ جو سبب اهو نه هو ته جنگي لحاظ کانسواءِ صحيح هئي. پر سندس مقصد هو ته هو جنگ کان پري به رهي ۽ ڪنهن کي ان جو احساس به نه ٿئي. پر الله تعاليٰ کي ڪجهه ٻيو منظور هو. هن چاهيو ٿي ته هي ماڻهو پنهنجن ساتارين سميت پهريون ڀيرو کلي سامهون اچي خوار ٿئي ۽ سندس ڪپ تي پيل پردو هٽي وڃي ۽ مسلمانن کي هن ڏکئي وقت ۾ پتو پوي ته سندن آستينن ۾ ڪيترا نانگ پيا پلجن.

وڏن صحابين جو هڪ دستو جيڪي بدر واري لڙائيءَ ۾ شريڪ ٿي نه سگهيا هئا، تن پاڻ سڳورن ﷺ کي صلاح ڏني ته ميدان ۾ هلي وڙهجي. انهن پنهنجي راءِ تي زور ڀريو. ويندي ڪن صحابين اهو به چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! اسان ان ڏينهن جا آسائتا هئاسين ۽ الله کان دعائون گهرندا هئاسين. هاڻي الله تعاليٰ اهو وجهه ڏنو آهي ۽ پٿر ۾ ٽپي پوڻ جو وقت اچي ويو آهي ته پوءِ توهان ويرين سان مهاڏو اٽڪائڻ لاءِ نڪري پئو. جيئن هو اهو نه سمجهن ته اسين ڊڄي ويا آهيون."

انهن جوشيلن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو چاچو حضرت حمزة بن عبدالمطلب ﷺ جن سڀ کان اڳرو هو، جيڪو بدر واري ويڙهه ۾ پنهنجي تلوار جا جوهر ڏيکاري چڪو هو. انهن عرض ڪيو ته: "

ان هستيءَ جو قسم جنهن توهان تي ڪتاب نازل ڪيو آهي. آئون تيسٽائين ڪجهه نه چڪندس ، جيستائين مديني کان ٻاهر پنهنجي تلوار سان هڪ هڪاڻي نه ڪري وندس." (1)

پاڻ سڳورن ﷺ گهڻائيءَ جي راءِ آڏو پنهنجي راءِ تان هٽ ڪيو. نيٺ اهو رٿيو ويو ته مديني کان ٻاهر نڪري کليل ميدان ۾ ويڙهه ڪبي.

**اسلامي لشڪر جي ترتيب ۽ جنگ جي ميدان ڏانهن روانو ٿيڻ:** - ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جمعي نماز پڙهائي ۽ وعظ ۽ نصيحت ڪئي. جدوجهد جي ترغيب ڏني ۽ ٻڌايو ته صبر ۽ ثابت قدميءَ سان ئي ڪٿي سگهجي ٿو. گڏوگڏ اهو به حڪم ڪيو ته ويري سان مهاذو اٽڪائڻ لاءِ تيار ٿي وڃو. اهو ٻڌي سڀ خوشيءَ ۾ ٽڙي پيا.

ان کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ وچين نماز پڙهائي ته اوڏي مهل تائين ماڻهو گڏ ٿي چڪا هئا. عواليءَ جا رهواسي به پهچي چڪا هئا. نماز کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ اندر هليا ويا. ساڻن گڏ ابوبڪر رضی اللہ عنہ ۽ عمر رضی اللہ عنہ به هئا. انهن پاڻ سڳورن ﷺ جي مٿي مبارڪ تي عمامو ٻڌو ۽ ڪپڙا پهرايا. پاڻ سڳورن ﷺ هيٺ مٿي به زرهون ٻڌيون، تلوار لٽڪائي ۽ هٿيارن سان سينگارجي ماڻهن آڏو آيا.

ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ جي اچڻ جا منتظر هئا ئي پر ان دوران حضرت سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ ۽ اسيد بن حضير رضی اللہ عنہ جن ماڻهن کي چيو ته: توهان پاڻ سڳورن ﷺ کي ميدان ۾ هلڻ تي زوريءَ راضي ڪيو آهي. ان ڪري هاڻي معاملو پاڻ سڳورن ﷺ جي حوالي ڪري ڇڏيو. اهو ٻڌي ماڻهن کي ندامت محسوس ٿي ۽ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ ٻاهر آيا ته عرض ڪيائون ته "يا رسول الله ﷺ! اسان کي اوهان جي مخالفت ڪرڻ نه گهربو هئي. توهان کي جيڪو وڻي، اهو ڪريو. جيڪڏهن چاهيو ٿا ته مديني ۾ رهو ته پوءِ ائين ئي ڪريو." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ڪوبه نبي جڏهن هٿيار کڻي وٺي ته اهو نيڪ نه آهي ته اهي لاهي ڇڏي، تان ته الله! سندس ۽ سندس ويريءَ جي وچ ۾ فيصلو نه ڪري ڇڏي." (2)

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ لشڪر کي تن حصن ۾ ورهايو.

1. مهاجرن جو دستو: - ان جو جهنڊو حضرت مصعب رضی اللہ عنہ بن عمر عبدري کي عطا ڪيو ويو.
2. اوس قبيلي جي انصارن جو دستو: - ان جو جهنڊو حضرت اسيد بن حضير رضی اللہ عنہ کي ڏنو.
3. خزرج قبيلي جي انصارن جو دستو: - ان جو جهنڊو حباب بن منذر رضی اللہ عنہ جي حوالي ڪيو.

1 - سيرت حلبية (14/2).

2 - مسند احمد. (351/3) نسائي، حاڪم. ابن اسحاق ۽ بخاري هن جو ذڪر باب في الاعتصار ڪيو آهي.

سڄو لشڪر هڪ هزار جوڏن جوانن تي مشتمل هو. جن مان هڪ سو زره پهريل ۽ پنجاهه شهسوار هئا. (1) اهو به چيو وڃي ٿو ته شهسوار ڪوبه ڪونه هو.

حضرت ابن ام مڪتوم رضي الله عنه کي اهو ڪم سونپيو ويو ته پاڻ مديني ۾ رهجي ويلن کي نماز پڙهائي. ان کانپوءِ ڪوچ جو اعلان ڪيو ويو ۽ لشڪر اتر پاسي روانو ٿيو. حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه ۽ سعد بن عباده رضي الله عنه زرهون پهري پاڻ سڳورن عليه السلام جي اڳيان اڳيان هلي رهيا هئا. ثنية الوداع کان تيسا ته هڪ دستو نظر آين، جيڪو ڏاڍا عمدا هٿيار پهريل هو ۽ سڄي لشڪر کان الڳ ٿلڳ هو. پاڻ سڳورن عليه السلام جي پيڇڻ تي کين ٻڌايو ويو ته اهي خزرج جا حليف يهودي آهن. (2) پاڻ سڳورن عليه السلام پڇيو ته ڇا اهي مسلمان ٿي چڪا آهن؟ ماڻهن چيو ته نه. تنهنڪري پاڻ سڳورن عليه السلام مشرڪن خلاف ڪافرن جي مدد وٺڻ کان انڪار ڪري ڇڏيو.

لشڪر جي چڪاس:- پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام "شيخان" نالي جاءِ وٽ پهچي لشڪر جي چڪاس ڪئي ۽ جيڪي ماڻهو ننڍڙا يا ويڙهه جي لائق نه هئا تن کي موٽائي ڇڏيو. انهن جا نالا هي آهن. حضرت عبدالله بن عمر رضي الله عنه، اسامه بن زيد رضي الله عنه، اسيد بن ظهير رضي الله عنه، زيد بن ثابت رضي الله عنه، زيد بن ارقم رضي الله عنه، عرابه بن اوس رضي الله عنه، عمرو بن حزم رضي الله عنه، ابو سعيد خدي رضي الله عنه، زيد بن حارثه انصاري رضي الله عنه ۽ سعد بن حبه رضي الله عنه. هن فهرست ۾ حضرت براء بن عازب رضي الله عنه جو نالو به ڄاڻايو ويندو آهي، پر صحيح بخاريءَ ۾ سندن جيڪا روايت ڏنل آهي، ان مان پتو پوي ٿو ته پاڻ احد واري جنگ ۾ شامل هو.

باقي ننڍپڻ جي باوجود حضرت رافع بن خديج رضي الله عنه ۽ سمره بن جندب رضي الله عنه کي به ويڙهه ۾ شرڪت جي اجازت ملي وئي. ان جو ڪارڻ اهو هو جو حضرت رافع رضي الله عنه ماهر تيرانداز هو. ان ڪري کين اجازت ڏني وئي. جڏهن اها خبر حضرت سمره رضي الله عنه کي پئي ته ان چيو ته ائون ته رافع کان به سگهارو آهيان. ائون کيس دسي سگهان ٿو. تنهنڪري پاڻ سڳورن عليه السلام کي اها ڄاڻ ڏني وئي ته پاڻ سڳورن عليه السلام ٻنهي ۾ ملهه ڪرائي ۽ سڄ پيچ سمره رضي الله عنه، رافع رضي الله عنه کي دسي وڌو. تنهنڪري ان کي به جنگ ۾ شرڪت جي اجازت ڏني وئي.

<sup>1</sup> - اها ڳالهه ابن قير زاد المعاد ۾ ٻڌائي آهي. حافظ ابن حجر جو چوڻ آهي ته اها ڀل آهي. موسيٰ بن عقبه زور ڀري چيو آهي ته جنگ احد ۾ مسلمانن وٽ گهوڙو هو ئي ڪونه. واقدي چوي ٿو ته رڳو ٻه گهوڙا هئا. هڪ پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ ۽ ٻيو ابو برده رضي الله عنه وٽ (فتح الباري (350/7)).

<sup>2</sup> - اهو واقعو ابن سعد ٻڌايو آهي. ان ۾ ٻڌايل آهي ته اهي بنو قينقاع جا يهودي هئا. (34/2) پر اهو صحيح نه آهي. ڇو ته بنو قينقاع کي بدر جي لڙائيءَ کانپوءِ تورن ڏينهن ۾ ئي ڏيهه نيڪالي (جلاوطني) ڏني وئي هئي.

احد ۽ مديني جي وچ ۾ رات گذارڻ:- هتي ئي شام ٿي وئي. تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ سانجهي ۽ سمهڻي نمازون پڙهيون ۽ اتي ئي رات گذارڻ جو فيصلو ڪيو. پهري لاءِ پنجاهه اصحابي چونڊيا. جيڪي ڪئمپ جي ويجهو پهرو ڏيندا رهيا. انهن جو اڳواڻ محمد بن مسلمه انصاري رضه هو. هي اهو ئي بزرگ آهي، جنهن ڪعب بن اشرف کي مارڻ واري ٽولي جي اڳواڻي ڪئي هئي. ذڪوان بن عبدالله بن قيس رضه خاص پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهرو پئي ڏنو.

**عبدالله بن ابي ۽ سندس ساتارين جي سرڪشي:-** پرھ ڦٽيءَ کان ٿورو اڳ پاڻ سڳورا ﷺ روانا ٿيا ۽ "شوط" نالي جڳهه وٽ پهچي فجر نماز پڙهيائون. هاڻي پاڻ سڳورا ﷺ دشمنن جي ويجهو هٿا ۽ ٻئي هڪٻئي کي ڏسي رهيا هئا. هتي پهچي عبدالله بن ابي منافق بغاوت ڪري وڌي ۽ لشڪر جو ٽيون حصو يعني ٽي سو ڇٽا پاڻ سان وٺي اهو چوندي موٽي ويو ته اسان کي اجائي جان ڏيڻ جي ضرورت ڪانهي. هن ان ڳالهه تي به گوڙ ڪيو ته پاڻ سڳورن ﷺ سندس ڳالهه نه مڃي ۽ ٻين جي مڃي.

ڏنو وڃي ته ڌار ٿيڻ جا ڪارڻ اهي نه هئا، جيڪي هن منافق ٻڌايا هئا ته پاڻ سڳورن ﷺ سندس ڳالهه نه مڃي. ڇو ته ان حالت ۾ هو پاڻ سڳورن ﷺ جي لشڪر سان گڏ نه اچي ها. ان ڪري حقيقت اها نه هئي، جيڪا هن ٻڌائي هئي پر حقيقت اها آهي ته اهڙي نازڪ موڙ تي ڌار ٿي هن اسلامي لشڪر ۾ بي چيني ۽ قوت وجهڻ ٿي گهري. جڏهن دشمن سندس هڪ هڪ چرپر کي جاچي ڏسي رهيا هئا ته جيئن عام سپاهي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڇڏي وڃن ۽ بچيل جا حوصلا ٽٽي پون. ٻئي پاسي اهو ڏيک ڏسي دشمنن جا حوصلا وڌن. اها ڪارروائي پاڻ سڳورن ﷺ ۽ سندن سچن ساتين جي خاتمي لاءِ اثرائتي تدبير هئي. جنهن کانپوءِ هن منافق کي اميد هئي ته سندس ۽ سندس ساتين جي اڳواڻي ۽ سرداريءَ لاءِ رستو کلي پوندو.

منافق پنهنجو مقصد ماڻي وٺن ها، ڇو ته ٻيا به ٽولا يعني اوس قبيلي مان بنو حارثه ۽ خزرج قبيلي مان بنو سلمه جا قدم اڙي چڪا هئا ۽ اهي موٽڻ جو سوچي رهيا هئا. پر الله تعاليٰ سڻائي ڪئي ۽ اهي ٻئي دستا بي چينيءَ ۽ موٽڻ جو ارادو ختم ڪري ڄمي بيٺا. انهن بابت الله تعاليٰ فرمايو ته:

﴿إِذْ هَمَّتْ طَائِفَتَانِ مِنْكُمْ أَنْ تَفْشَلَا وَاللَّهُ وَلِيَهُمَا وَعَلَى اللَّهِ فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُؤْمِنُونَ (122)﴾ (آل عمران)

” (ياد ڪرڻ) جنهن مهل اوهان مان ٻن ٽولين بي همت ٿيڻ جو ارادو ڪيو ۽ الله سندن مددگار هو ۽ مؤمنن کي جڳائي ٿو ته الله تي ڀروسو ڪن.“

بهرحال منافقن موٽڻ جو ارادو ڪيو ته ان نازڪ موقعي تي حضرت جابر رضي الله عنه جي والد حضرت عبدالله بن حرام رضي الله عنه کين سندن فرض ياد ڏيارڻ گهريو ۽ هن کين ڌڙڪو ڏيندي موٽي اچڻ تي اڪسائيندي اهو چوندي سندن پيڇو ڪيو ته اچو، الله جي راه ۾ وڙهو يا بچاءُ ڪريو. پر هنن ورائيو ته، جي اسين ڄاڻو ها ته اوهان هتي لڙائي ڪندؤ ته اسين اچون ئي ڪونه ها. اهو ٻڌي حضرت عبدالله بن حرام رضي الله عنه اهو چوندي موٽيو ته او الله جا ويريو! الله جي ڪا مار پوي، ياد رکو الله پنهنجي نبيءَ کي توهان کان آجو ڪري ڇڏيندو. انهن ئي منافقن بابت ارشاد ٿيو ته:

﴿وَلْيَعْلَمَ الَّذِينَ نَافَقُوا وَقِيلَ لَهُمْ تَعَالَوْا قَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ أَوْ ادْفَعُوا قَالُوا لَوْ نَعْلَمُ قِتَالًا لَاتَّبِعْنَاكُمْ هُمْ لِلْكَفَرِ يَوْمَئِذٍ أَقْرَبُ مِنْهُمْ لِلْإِيمَانِ يَقُولُونَ بِأَفْوَاهِهِمْ مَا لَيْسَ فِي قُلُوبِهِمْ وَاللَّهُ أَعْلَمُ بِمَا يَكْتُمُونَ﴾ (آل عمران) (167)

”۽ ته جيئن الله انهن کي به ڄاڻي وٺي جن منافقت ڪئي ۽ کين چيو ويو ته اچو الله جي وات ۾ وڙهو يا (ڪافرن کان) دفاع ڪريو. چيائون ته جيڪڏهن اسان کي ڪنهن جنگ ٿيڻ جي خبر هجي ها ته ضرور اوهان سان هجون ها. اهي ان ڏينهن پاڻ ايمان کان ڪفر ڏي بلڪل ويجهو هئا. پنهنجن واتن سان اهي ڳالهيون چوندا آهن جيڪي سندن دلين ۾ نه آهن ۽ جيڪي لڪائيندا آهن سو الله بلڪل ڄاڻندڙ آهي.“

**بچيل اسلامي لشڪر احد جي دامن ۾ :-** هن بغاوت کانپوءِ پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم بچيل لشڪر

کي ساڻ وٺي، جنهن جي تعداد ست سو هو، دشمنن ڏانهن وڌيا. دشمنن جو لشڪر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ۽ احد جبل جي وچ ۾ ڪيترن ئي پاسن کان رڪاوٽ وجهيو ويٺو هو. ان ڪري پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پيڇيو ته: ڪو اهڙو ماڻهو آهي، جيڪو اسان کي دشمنن جي پرسان لنگهڻ کان سواءِ ڪنهن ويجهي رستي کان وٺي هلي؟

ان جي جواب ۾ ابو خيثم رضي الله عنه عرض ڪيو ته: ”يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! آئون ان ڪم لاءِ تيار آهيان.“ پوءِ ان هڪ ننڍو رستو اختيار ڪيو، جيڪو مشرڪن جي لشڪر کي اولهه پاسي ڇڏيندو بني حارثه جي بنين مان لنگهيو ٿي.

هن رستي تان لنگهندي لشڪر مربع بن قبيظي جي باغ مان لنگهيو. اهو همراھ منافق ۽ انڌو هو. هو لشڪر کي ايندو محسوس ڪري مسلمانن ڏانهن ڌوڙ اچڻ لڳو ۽ چوڻ لڳو ته جي توهان الله جا رسول آهيو ته ياد رکو توهان کي منهنجي باغ مان لنگهڻ جي اجازت ڪانهي. ماڻهو کيس مارڻ لاءِ وڌيا پر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: ”هن کي نه ماريو. هي دل ۽ اک، پنهي کان انڌو آهي.“

پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ اڳتي وڌي واديءَ جي ڇيڙي تي احد جبل جي گهاتيءَ ۾ اچي لٿا ۽ اتي ئي لشڪر پڙاءُ (ديرو) وڌو. سامهون مدينو هو ۽ پٺيان اوچو احد جبل. اهڙيءَ طرح دشمنن جو لشڪر مسلمانن ۽ مديني جي وچ ۾ رندڪ بڻجي ويو.

**بچاءُ جي رت:** - هتي پهچي پاڻ سڳورن ﷺ لشڪر کي ترتيب ڏني ۽ جنگي لحاظ کان ان کي ڪيترين ئي قطارن ۾ ورهايو. ماهر تير اندازن جو هڪ ٽولو به چونڊيو جيڪو پنجاهه جوڌن تي مشتمل هو ۽ ان جي اڳواڻي حضرت عبدالله بن جبير بن نعمان انصاري دوسي بدري رضه جي حوالي ڪئي ۽ کين قنات نالي واديءَ جي ڏاکڻي ڪپ تي هڪ ننڍڙي جبل تي، جيڪو اسلامي لشڪر جي منزل گاهه کان اٽڪل ڏيڍ سؤ ميٽر ڏکڻ اوڀر ۾ هو ۽ هاڻي رماٽ جبل جي نالي سان مشهور آهي، بهاريو. ان جو مقصد انهن جملن مان پروڙي سگهجي ٿو. جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ تير اندازن کي هدايتون ڏيندي فرمائائون. پاڻ سڳورن ﷺ سندن اڳواڻ کي چيو ته: "گهوڙي سوارن کي تير هڻي اسان کان پري رکجو ته جيئن اهي پٺيان ڪاهي نه اچن. اسين ڪتيون يا هارايون، توهان پنهنجي جاءِ تي ئي رهجو، توهان جي پاسان حملو نه ٿيڻ ڪپي." (1) پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ تير اندازن کي فرمايو ته: "اسانجي پٺئين پاسي جي سنڀال ڪجو. ۽ صحيح بخاريءَ جي لفظن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ هيئن فرمايو ته: "جيڪڏهن توهان ڏسو ته اسان کي پڪي پيا جهپين ته به پنهنجي جاءِ نه ڇڏجو، تان ته آئون توهان کي سڏ ڪريان ۽ جي توهان ڏسو ته اسان هنن کي شڪست ڏني آهي ۽ کين ڪچلي ڇڏيو آهي ته به پنهنجي جڳهه ايستائين نه ڇڏجو، جيستائين آئون نه سڏيان." (2) جيڪڏهن ڏسو ته اسان مارجون پيا ته به اسان جي مدد لاءِ نه اچجو ۽ جي ڏسو ته اسين غنيمت جو مال گڏ ڪري رهيا آهيون ته به اسان وٽ نه اچجو." (3)

اهڙين سخت هدايتن سان ان ٽولي کي ان جبل تي بهاري پاڻ سڳورن ﷺ اڪيلي ڪليل لنگهه کي به بند ڪري ڇڏيو، جنهن مان لنگهي مشرڪن جو دستو مسلمانن تائين پهچي کين گهيري ۾ آڻي سگهيو ٿي.

باقي لشڪر جي ترتيب هن ريت هئي. ميمنه تي حضرت منذر بن عمرو رضه مقرر ٿيو ۽ ميسره تي حضرت زبير بن العوام رضه ۽ ساڻن ٻانهن ٻيلي حضرت مقداد بن اسود رضه کي ڪيو ويو. حضرت زبير رضه کي اهو ڪم به ڏنو ويو ته پاڻ خالد بن وليد جي گهوڙي سوارن جو رستو

1 - ابن هشام (2/65، 66).

2 - فتح الباري (7/350).

3 - صحيح بخاري (1/426).



روڪي رڪن. ان ترتيب کان سواءِ قطار جي اڳئين حصي ۾ چونڊ ڪونڊر ۽ پهلو ان مسلمان بيهاريا ويا، جن جي دليري ۽ جانثاريءَ جي هاڪ هئي ۽ جن کي هزارن جي مٿ سمجهيو ٿي ويو.

اها رٿا ڏاڍي گهري ۽ حڪمت واري هئي، جنهن سان پاڻ سڳورن ﷺ جي ان فوجي قيادت جي صلاحيت جو پتو پوي ٿو ته ڪو سپهه سالار ڪيڏو ئي صلاحيت وارو ڇو نه هجي، پر پاڻ سڳورن ﷺ کان گهري ۽ حڪمت عمليءَ واري رٿا نٿو جوڙي سگهي. ڇو ته پاڻ سڳورا ﷺ دشمنن کان پوءِ هتي پهتا هئا پر انهن پنهنجي لشڪر لاءِ اهڙي جاءِ چونڊي، جيڪا جنگي لحاظ کان جنگ جي ميدان جي سڀ کان سٺي جڳهه هئي. يعني پاڻ سڳورن ﷺ جبل جي آڙ وٺي پنهنجي پٺ ۽ ساڄو پاسو محفوظ ڪري ورتو هو ۽ کاٻي پاسي کان جتان جنگ هلندي پٺيان کان حملو ٿي سگهيو ٿي، اتي تير انداز بيهاري ڇڏيا هئا ۽ پڙاءُ لاءِ هڪ مٿاهين جڳهه چونڊي ته جيئن الله نه ڪري، جيڪڏهن هارائجي ته ڀڄڻ ۽ پيڇو ڪرڻ وارن کان بچڻ لاءِ اتي پناهه وٺي سگهجي ۽ جي دشمن لشڪرگاهه تي قبضو ڪرڻ لاءِ اڳرائي ڪري ته کيس وڏو نقصان سهڻو پوي. ان جي پيٽ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ دشمنن کي هڪ هيٺاهين جڳهه تي پڙاءُ ڪرڻ تي مجبور ڪري وڌو هو، جيئن سندن ڪٽڻ کانپوءِ به کين ڪو وڏو فائدو نه رسي ۽ جي مسلمان کتي وڃن ته هو پيڇو ڪرڻ وارن کان نه بچي سگهن. اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ مشهور جوڏن جو هڪ ٽولو جوڙي لشڪر جي ڪوٽ پوري ڪئي. اها هئي پاڻ سڳورن ﷺ جي لشڪر جي ترتيب جيڪا 7 شوال سنه 3 هه تي چنڇر جي ڏينهن ڪئي وئي.

**پاڻ سڳورن ﷺ پاران لشڪر ۾ شجاعت جو روح ڦوڪڻ:-** ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ اعلان ڪيو ته جيستائين پاڻ حڪم نه ڪن، تيستائين جنگ ڪانه چيڙبي. پاڻ سڳورن ﷺ کي هڪ ٻئي مٿان به زرهون پاتل هيون. هاڻي پاڻ سڳورن انهن ۾ دليريءَ ۽ بهادريءَ جو روح ڦوڪيندي هڪ تمام تڪي تلوار مياڻ مان ڪڍي فرمايو ته ڪير آهي، جيڪو هيءَ تلوار وٺي ان جو حق ادا ڪري؟ ان تي گهڻائي اصحابي تلوار وٺڻ لاءِ اڳتي وڌيا، جن ۾ حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه، زبير بن العوام رضي الله عنه ۽ عمر بن خطاب رضي الله عنه جن به شامل هئا، پر ابو دجانہ سماڪ بن خرشه رضي الله عنه اڳتي وڌي عرض ڪيو ته يا رسول الله ﷺ! هن جو حق ڪهڙو آهي؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هن کي دشمنن جي منهن تي ايستائين هڻڻو آهي، جيستائين اها چيبي نه ٿي وڃي." هن چيو ته "يا رسول الله ﷺ! آئون اها تلوار وٺي ان جو حق ادا ڪرڻ ٿو چاهيان." پاڻ سڳورن ﷺ کين اها تلوار ڏئي ڇڏي.

ابودجانہ رضي الله عنه وڏو ڪونڊر مڙس هئا. وڙهڻ مهل آڪڙ ڪري هلندو هو. وٽس هڪ ڳاڙهو رومال هو، جڏهن اهو مٿي تي ٻڌندو هو ته ماڻهو سمجهي ويندا هئا ته هاڻي پاڻ مرڻ گهڙي تائين

وڙهندو رهندو. تنهنڪري جڏهن وهن تلوار ورتي ته مٿي تي رومال ٻڏي صحن جي وچان اڪڙجي لنگهڻ لڳو. ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: جيتوڻيڪ اهڙي هلڻي الله تعاليٰ کي ناپسند آهي پر اهڙن موقعن تي نه.

مڪي جي لشڪر جي تنظيم:- مشرڪن به اصول مطابق پنهنجي لشڪر کي تربيت ڏني. انهن جو سپهه سالار ابوسفیان هو. جنهن لشڪر جي قلب ۾ پنهنجو مرڪز جوڙيو. ميمنه تي خالد بن وليد هو. جيڪو اڃا مشرڪ هو. ميسره تي عڪرم بن ابوجهل هو. پيادل فوج جي اڳواڻي صفوان بن اميه وٽ هئي ۽ تير اندازن تي عبدالله بن ربيع مقرر هو.

جهنڊو بنو عبدالدار جي هڪ ننڍڙي ٽولي جي هٿ ۾ هو. اهو منصب کين تڏهوڪو مليل هو. جڏهن بنو عبدمناف، قصيءَ کان ورثي ۾ مليل منصب پاڻ ۾ ورهايا هئا، جن جو تفصيل مٿي بيان ڪيل آهي. پوءِ ابن ڏاڏن کان اهو دستور هلندو آيو. جنهن جي ڪري ڪوبه ماڻهو هن منصب تي اعتراض نٿي اٿاري سگهيو. پر سپهه سالار ابوسفیان کين ياد ڏياريو ته بدر واري لڙائيءَ ۾ سندن علمدار نصر بن حارث جهلجي پيو هو ته قريشن سان ڪيڏي نه وڏي جٺ ٿي هئي. اها ڳالهه ياد ڏيارڻ سان گڏ کين پڙڪائڻ لاءِ چيائين ته: "اي بني عبدالدار! بدر واري ڏينهن توهان، اسان جو جهنڊو کنيو هو ته اسان جن حالتن ۾ قاتا هئاسين اهي توهان ڏسي ورتيون هيون. حقيقت ۾ فوج جي جهنڊي واري پاسي ئي حملو ٿيندو آهي. جڏهن جهنڊو ڪرندو آهي ته فوج جا پير اڪڙي ويندا آهن. بس هن پيري يا ته توهان چڱيءَ طرح سان جهنڊو سنڀاليو يا جهنڊي تان هٿ ڪڍو. اسين پاڻهي ان کي سنڀالڻ جو بندوبست ڪنداسين." هن ڳالهه مان ابوسفیان جو جيڪو مقصد هو اهو هن حاصل ڪيو. ڇو ته اها ڳالهه ٻڌي بني عبدالدار وارا تپي ويا ۽ ڏمڪيون ڏيڻ لڳا. ائين ٿي لڳو ڇڻ هنن تي ڪاهي پوندا. ڇوڻ لڳا ته اسين پنهنجو جهنڊو توکي ڏيون؟ سڀاڻي جڏهن ويڙهه ٿيندي ته تون ڏسي وڃان اسين ڇا ٿا ڪريون. پوءِ واقعي جڏهن جنگ شروع ٿي ته اهي مڙسيءَ سان بيٺا رهيا، تان ته سندن هڪ هڪ ماڻهو موت جو ڪاڄ ٿي ويو.

قريشن جي سياسي چالبازي:- جنگ کان پهرين قريشن، مسلمانن ۾ قوت وجهڻ ۽ جهڳڙو ڪرائڻ لاءِ اپاءَ ورتا. هن مقصد لاءِ ابوسفیان انصارن کي نياپو موڪليو ته توهان اسان جي ۽ اسان جي سوٽ (محمد ﷺ) جي وچ مان نڪري وڃو ته اسين به اوهان ڏي رخ نه ڪنداسين. ڇو ته اسان کي اوهان سان وڙهڻ جي ضرورت ڪانهي. پر جنهن ايمان آڏو پهچڻ به نٿي بيهي سگهيا، ان جي آڏو هيءَ چال ڪيئن ٿي ڪامياب ٿي سگهي. تنهنڪري انصارن کيس ڏاڍو ڪڙو جواب ڏياري موڪليو.

پوءِ ڏکيو وقت به اچي پهتو ۽ ٻئي فوجون هڪ ٻئي جي ويجهو اچي ويون ته قرينن ان مقصد لاءِ هڪ ٻيڙي کي ڪوشش ڪئي. يعني هڪ پڪو ٺڳ ابو عامر فاسق مسلمانن آڏو آيو. سندس نالو عبد عمرو بن صيفي هو ۽ کيس راهب چيو ويندو هو. پر پاڻ سڳورن ﷺ سندس نالو فاسق رکي ڇڏيو. اهو جاهليت ۾ اوس قبيلي جو سردار هو. پر جڏهن اسلام آيو ته اهو سندس نڙيءَ ۾ هڏيءَ وانگر اٽڪي پيو ۽ هو پاڻ سڳورن ﷺ خلاف کلي دشمنيءَ تي لهي آيو. هو مديني مان هلي قرينن وٽ ويو ۽ کين پاڻ سڳورن ﷺ خلاف پڙڪائي جنگ لاءِ راضي ڪيائين ۽ کين يقين ڏياريا ته منهنجي قوم جا ماڻهو مون کي ڏسندا ته منهنجي ڳالهه مڃي. منهنجو ساٿ ڏيندا. اهو ئي سبب هو جو هي همراھ سڀ کان پهرين احد جي ميدان ۾ حبشين ۽ مڪي وارن جي غلامن سان مسلمانن جي سامهون آيو ۽ پنهنجي قوم کي واکا ڪري پنهنجو تعارف ڪرايائين ۽ چيائين ته اوس قبيلي وارو! آئون ابو عامر آهيان. انهن وراڻيو ته او فاسق! الله تنهنجي اک کي خوشي نه ڏيکاري. هن اهو ٻڌي چيو ته او هو! منهنجي قوم ۾ مون کان پوءِ شر اچي ويو آهي. (پوءِ جڏهن ويڙه شروع ٿي ته هن ڏاڍي زوردار جنگ ڪئي ۽ مسلمانن تي ڏاڍا پٿر وسايا).

اهڙيءَ طرح قرينن پاران ايمان وارن ۾ ڏڦير وجهڻ جي بي ڪوشش به ناڪام ٿي. ان مان اندازو ڪري سگهجي ٿو ته گهڻائيءَ ۾ هجڻ ۽ گهڻو ساز ۽ سامان رکندي به مشرڪن جي دلين ۾ مسلمانن جو ڪيڏو نه ڏهڪاءُ ويندو هو.

**همت ڏيارڻ لاءِ قرينن جو ٽڪسائت:-** هوڏانهن قرينن عورتون به ويڙه ۾ پنهنجو ڪردار ادا ڪرڻ لڳيون. انهن جي اڳواڻي ابوسفيان جي زال هند بنت عتبہ ڪري رهي هئي. انهن عورتن لشڪر ۾ گهمي ۽ دف وڄائي ماڻهن کي جوش ڏياريو ۽ ويڙه لاءِ اڪسايو. ويڙهاڪن کي غيرت ڏياري ۽ نيزي بازي ۽ تلوار بازي، تير بازي ۽ ويڙه لاءِ جذبا پڙڪايا. ڪڏهن انهن علمبردارن کي پڙڪائڻ لاءِ هيئن ٿي چيو ته:

وَيَهَا بَنِي عَبْدِ الدَّارِ ... وَبِهَا حُمَاةَ الْأَدْبَارِ... ضَرْبًا بِكُلِّ بَتَّارٍ وَنَقُولُ  
 ”ڏسو عبدالدار، ڏسو پٺين جا پاسبان، چڱيءَ طرح ڪريو وار.“

۽ ڪڏهن پنهنجي قوم کي ويڙه تي اڪسائڻ لاءِ هيئن ٿي چيائون:

إِنْ تُقْبَلُوا نُعَانِقُ... وَنَفْرِشُ التَّمَارِقِ  
 أَوْ تُدْبِرُوا نُفَارِقُ... فِرَاقَ غَيْرِ وَامِقِ

”جيڪڏهن توهان اڳتي وڌيا ته اسين توهان کي سيني سان لڳائينديوسين ۽ سيح سجائينديون سين. پنتي هتيا ته ڪاوڙجي توهان کان ڌار ٿي وينديون سين.“<sup>(1)</sup>

**جنگ جو پهريون ڪاڇ:-** ان کانپوءِ ٻئي ڌريون هڪٻئي جي آمهون سامهون ۽ صفا ويجهو اچي ويون ۽ لڙائيءَ جو مرحلو شروع ٿي ويو. جنگ جو پهريون ڪاڇ مشرڪن جو علمبردار طلح بن ابي طلح عبدري بڻيو. هي قريشن جو هاڪارو شهنسوار هو. ان کي مسلمان ڪيش الڪتيب (لشڪر جو دنبو) چوندا هئا. هو ان تي چڙهي نڪتو ۽ دويدو وڙهڻ جو سڏ ڏنائين. سندس حد کان وڌيڪ شجاعت ڪري عام اصحابي سڳورا وڙهڻ کان لنواڻڻ لڳا پر حضرت زبير رضي الله عنه اڳتي وڌي هڪ لمحي جي چوٽ ڏيڻ کانسواءِ شينهن وانگر ٽپ ڏئي ان تي چڙهي کيس جهلي زمين تي ڪيرائي تلوار سان کيس ڪهي ڇڏيو.

پاڻ سڳورن عليه السلام اهو ڏيک ڏسي خوشيءَ ۾ تڪبير جو نعرو هنيو. مسلمانن به تڪبير جو نعرو هنيو. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: هر نبيءَ جو هڪ حواري هوندو آهي، منهنجو حواري زبير رضي الله عنه آهي.<sup>(2)</sup>

**ويڙهاند جو مرڪز ۽ علمبردار جو موت:-** ان کانپوءِ هر طرف جنگ جا اپڙڪي پيا ۽ سڄو ميدان، ”رڻ گجيو راڙو ٿيو“ جو ڏيک ڏيڻ لڳو. مشرڪن جي جهنڊي واري جڳهه ويڙه جو مرڪز بڻجي وئي. بنو عبدالدار پنهنجي مهندار طلح بن ابي طلح جي مارڻ کانپوءِ هڪٻئي کانپوءِ جهنڊو سنڀاليو پر هڙڻي مارجي ويا. سڀ کان پهرين طلح جي ڀاءُ عثمان بن ابي طلح جهنڊو کنيو ۽ هيئن چوندي اڳتي وڌيو:

إِنَّ عَلَىٰ أَهْلِ اللّٰوَاءِ حَقًّا ... أَنْ تَخْضِبَ الصَّعْدَةَ أَوْ تَنْدَقًا

علمبردارن جو فرض آهي ته نيزو يا ته (رت سان) رنگجي وڃي يا ڀڄي پوي.

ان تي حضرت حمزة رضي الله عنه حملو ڪيو ۽ سندس ڪلهي تي اهڙي تلوار هڻي جو اها هٿ سميت ڪلهي کي ڪٽيندي ۽ جسر کي چيريندي دن تائين وڃي پهتي ۽ سندن ڦڦڙ نظر اچڻ لڳا. ان کانپوءِ ابو سعد بن ابي طلح جهنڊو کنيو. ان کي حضرت سعد بن ابي وقاص رضي الله عنه تير هنيو. جيڪو وڃي سندس نڙيءَ ۾ لڳو. جنهن سان سندس زبان ٻاهر نڪري آئي ۽ هو ٽڏي تي ئي مري ويو. ڪن سيرت نگارن جو چوڻ آهي ته ابو سعد ٻاهر نڪري دويدو ويڙه جو سڏ ڏنو ۽ حضرت

<sup>1</sup> سيرة ابن هشام - (2 / 67)

<sup>2</sup> - اها ڳالهه سيرت حليبه واري لکي آهي. هونئن حدیث ۾ اهو جملو ٻئي موقعي بابت ڄاڻايل آهي.

علي رضي الله عنه اڳتي وڌي ساڻس مقابلو ڪيو. ٻنهي هڪٻئي تي تلوار جو هڪ هڪ وار ڪيو پر حضرت علي رضي الله عنه ابو سعد کي ماري وڌو.

ان کانپوءِ مسافع بن طلح بن ابي طلح جهنڊو سنڀاليو پر کيس عاصر بن ثابت بن ابي افلح رضي الله عنه تير هڻي ماري وڌو. ان کانپوءِ سندس ڀاءُ ڪلاب بن طلح بن ابي طلح جهنڊو ڪنو پر ان تي حضرت زبير بن العوام رضي الله عنه حملو ڪيو ۽ سندس ڪم پورو ڪري ڇڏيو. پوءِ انهن ٻنهي جي ڀاءُ هلاس بن طلح بن ابي طلح جهنڊو سنڀاليو پر کيس طلح بن عبیدالله رضي الله عنه نيزو هڻي ماري وڌو. ڪن جو چوڻ آهي ته عاصر بن ثابت بن ابي افلح رضي الله عنه تير سان ماريو هوس.

اهي هڪ ئي گهر جا ڇهه ڀاتي هئا. يعني سڀئي ابي طلح عبدالله بن عثمان بن عبدالدار جا پٽ ۽ پوٽا هئا، جيڪي مشرڪن جو جهنڊو سنڀاليندي مئا. ان کانپوءِ عبدالدار قبيلي جي هڪ ٻئي ماڻهوءَ ارطاه بن شرحبيل جهنڊو سنڀاليو، پر حضرت علي رضي الله عنه يا حضرت حمزة رضي الله عنه ماري ڇڏيس. ان کانپوءِ شريح بن قارظ جهنڊو سنڀاليو پر کيس قزمان ماري ڇڏيو. قزمان، منافق هو ۽ اسلام بدران قبائلي حميت جي جوش ۾ مسلمانن سان گڏ وڙهڻ آيو هو. شريح کانپوءِ ابو زيد عمرو بن عبدمناف عبدريءَ جهنڊو ڪنو پر ان کي به قزمان ماريو. پوءِ شرحبيل بن هاشم عبدريءَ جي پٽ جهنڊو سنڀاليو پر اهو به قزمان هٿان مارجي ويو.

اهي بنو عبدالدار جا ڏهه ڄڻا هئا، جن مشرڪن جو جهنڊو سنڀاليو پر سڀئي مارجي ويا. ان کانپوءِ ان قبيلي جو ڪوبه ماڻهو نه بچيو، جيڪو جهنڊو کڻي پر ان موقعي تي هڪ حبشي غلام، جنهن جو نالو صواب هو، جهڙپ هڻي جهنڊو کڻي ورتو ۽ ايڏي دليريءَ سان مڙس ماڻهو ٿي وڙهيو جو پاڻ کان اڳ جهنڊو کڻندڙ پنهنجن مالڪن کان به گوءِ کڻي ويو ۽ لاڳيتو وڙهندو رهيو. تان ته سندس ٻئي هٿ هڪ هڪ ڪري ڪڍجي ويا پر ان کانپوءِ به هن جهنڊو ڪرڻ نه ڏنو ۽ گوڏن پر ويهي ڇاتيءَ ۽ ڳچيءَ جي ٽيڪ تي جهلي رکيائين، تان ته کيس ماريو ويو. ان وقت به هو چڻي رهيو هو ته اي الله! هاڻي ته مون ڪابه ڪسر نه ڇڏي آهي.

ان جي مرڻ کانپوءِ جهنڊو زمين تي ڪري پيو ۽ ان کي کڻڻ وارو ڪوبه نه بچيو. ان ڪري اهو پٽ تي ئي ڪريل رهيو.

بين حصن ۾ جنگ جي ڪيفيت:- هڪ پاسي قريشن جو جهنڊو ويڙه جو مرڪز بڻجي ويو هو ته ٻئي پاسي ميدان جي بين حصن ۾ به سخت ويڙه هلي رهي هئي. مسلمانن تي ايمان جو روح چانيل هو. ان ڪري اهي شرڪ ۽ ڪفر جي لشڪر تي ٻوڏ وانگر ڪاهي پيا هئا، جنهن جي آڏو ڪو بند نٿي بڻجي سگهيو. مسلمان ان موقعي تي امت امت پڪاري رهيا هئا ۽ اهو ئي هن جنگ جو

شعار هو. هوڏانهن حضرت ابو دجانہ رضي الله عنه پنهنجو ڳاڙهو رومال ٻڌي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي ڏنل تلوار هٿ ۾ جهلي ۽ ان جو حق ادا ڪرڻ جو پڪو پهه ڪندي وڙهندي وڙهندي پري تائين هليو ويو. پاڻ جنهن مشرڪ سان اٽڪيو ٿي، ان کي پورو ڪري ٿي ڇڏيائين. هن مشرڪن جون قطارون جون قطارون ڪيرائي ڇڏيون.

حضرت زبير بن العوام رضي الله عنه جو ٻڌايل آهي ته جڏهن مون پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کان تلوار گهري ۽ انهن نه ڏني ته منهنجي دل تي ان جو اثر ٿيو ۽ مون دل ۾ سوچيو ته آئون پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو پڦاٽ آهيان، قريش آهيان ۽ مون پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ ابودجانہ رضي الله عنه کان اڳ وڃي تلوار جي گهر ڪئي هئي پر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم مون کي نه ڏني ۽ هن کي ڏني ڇڏي. ان ڪري واللہ! آئون ڏسندس ته هو ان کان ڪهڙو ڪم ٿو وٺي؟ پوءِ آئون سندس پٺيان لڳي پيس. ان ڇا ڪيو جو پهرين پنهنجو ڳاڙهو رومال ڪڍي مٿي تي ٻڌو. ان تي انصارن چيو ته: ابو دجانہ رضي الله عنه موت جو رومال ڪڍي ورتو آهي. پوءِ هو هيئن چوندي ميدان ۾ ڪاهي پيو ته:

أَنَا الَّذِي عَاهَدَنِي خَلِيلِي ... وَنَحْنُ بِالسَّفْحِ لَدَى النَّخِيلِ  
أَلَا أَقَوْمَ الدَّهْرِ فِي الْكَيْوَلِ ... أَضْرَبُ بِسَيْفِ اللَّهِ وَالرَّسُولِ

”مون نخلستان جي دامن ۾ پنهنجي خليل صلى الله عليه وسلم سان واعدو ڪيو آهي ته ڪڏهن به صنفن جي پويان نه رهندس (بلڪ اڳتي وڌي) الله ۽ ان جي رسول جي تلوار واهيندو رهندس.“  
ان کانپوءِ ساڻن جيڪو به ٽڪرايو ٿي، ان کي ماري ٿي وڌائون. هوڏانهن مشرڪن ۾ هڪ ڄڻو هو، جيڪو اسان جي ڌڪيل سائين کي ڏسي ماري رهيو هو. اهي ٻئي هوريان هوريان ويجهو اچي رهيا هئا. مون الله کان دعا گهري ته ٻنهي جو ٽڪراءُ ٿي وڃي ۽ ٿيو به ائين. ٻنهي هڪٻئي تي هڪ هڪ وار ڪيو. پهرين مشرڪ، ابودجانہ رضي الله عنه تي تلوار هلائي پر ابودجانہ رضي الله عنه اهو ڌڪ ڍال تي روڪيو ۽ مشرڪ جي تلوار ان ڍال ۾ قاسي پئي. ان کانپوءِ ابودجانہ رضي الله عنه تلوار هڻي مشرڪ کي اتي ئي ڏير ڪري وڌو. (1)

ان کان پوءِ ابو دجانہ رضي الله عنه قطارن جون قطارون چيري اڳتي وڌيو ۽ قريش عورتن جي مهندار تائين وڃي پهتو. کين پتو نه هو ته اها ڪا عورت آهي. سندس بيان آهي ته مون هڪ ماڻهو ڏٺو، جيڪو زور شور سان ماڻهن کي ڀڙڪائي رهيو هو. ان ڪري مون کيس نشاني تي ورتو پر جڏهن تلوار سان حملو ڪرڻ وارو هئس ته هن وٺي رڙيون ڪيون ۽ خبر پئي ته اها ته ڪا عورت آهي. مون پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي تلوار کي اهو ڏٺو لڳڻ نه ڏنو ته ان سان ڪا عورت ماري وجهان.

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/68، 69).

اها عورت عتبہ جي ڏيءَ هند هئي، جيئن حضرت زبير بن العوام رضي الله عنه جو بيان آهي ته مون ابو دجانہ رضي الله عنه کي ڏٺو، ان هند بنت عتبہ جي مٿي کان تلوار اڀي ڪئي ۽ پوءِ هٿائي ڇڏي. مون سوچيو ته الله ۽ ان جو رسول ئي وڌيڪ بهتر ڄاڻن ٿا. (1)

هوڏانهن حضرت حمزة رضي الله عنه به ڪاوڙيل شينهن جيان ويڙهه ڪري رهيو هو. سندس آڏو اچي وڏا وڏا بهادر ائين وڪري (پڇي) رهيا هئا، ڇڻ تڪي طوفان ۾ پڻ اڏامي رهيا هجن. هن مشرڪن جي علمبردارن کي مارڻ ۾ حصو وٺڻ کانسواءِ ٻيا به وڏا وڏا ويڙهو ڪلتي ڪري ڇڏيا هئا. پر افسوس جو ان حالت ۾ سندن شهادت ٿي پئي. پر کين بهادران وانگر صفتن ۾ وڙهندي شهيد نه ڪيو ويو هو، پر ڪنيرن وانگر لڪي اڻڄاڻائيءَ ۾ ماريو ويو هو.

**حضرت حمزة رضي الله عنه جي شهادت:** - سندن قاتل جو نالو وحشي بن حرب هو. اسان سندن شهادت جو واقعو ان جي واتان ٻڌايون ٿا. هن ٻڌايو ته آئون جبير بن مطعم جو ٻانهو هئس. ان جو چاچو طعيمه بن عدي بدر جي جنگ ۾ مارجي ويو هو. جڏهن قريش احد واري لڙائيءَ لاءِ روانا ٿيڻ لڳا ته جبير بن مطعم مون کي چيو ته "جيڪڏهن تون محمد صلى الله عليه وسلم جي چاچي حمزي کي منهنجي چاچي جي بدران مارين ته تون آڃو ٿي ويندين." وحشيءَ جو چوڻ آهي ته (ان آڇ جي ڪارڻ) آئون به ٻين سان گڏ روانو ٿيس. آئون حبشي هئس ۽ حبشين وانگر نيزو اچلڻ جو ماهر هئس. نشانو گهٽ گسندو هوم. جڏهن ويڙهه شروع ٿي ته آئون حمزة رضي الله عنه کي ڳولهن لڳس. نيٺ مون کين ماڻهن جي ميٽ ۾ ڏٺو. پاڻ ڀلي خاڪي اٿ وانگر نمايان نظر اچي رهيو هو ۽ ماڻهن کي ڇڙوڇڙ ڪري اڳتي وڌي رهيو هو. سندس آڏو ڪابه شيءِ ٽڪي نه پئي سگهي.

والله! آئون اڃان کين مارڻ جو ارادو ڪري رهيو هوس ۽ ڪنهن پٿر يا وڻ جي اوت وٺي کين ويجهو اچڻ جو وجهه ڏيڻ پئي گهريم ته ايتري ۾ سباع بن عبدالعزيٰ مون کان اڳتي وڌي وٽن پهتو. حمزة رضي الله عنه کيس للڪاريندي چيو ته: "او فلاڻيءَ جا پٽ! اچي ٿو." ان سان گڏ ئي اهڙو زور سان تلوار هنيائينس جو هن جو ڪنڌ ڇڻ هو ئي ڪونه.

وحشيءَ جو چوڻ آهي ته اوڏي مهل مون نيزو توريو ۽ جڏهن منهنجي مرضيءَ موجب ٿيو ته ڏانهس اڇلايم. نيزو دن کان هيٺ لڳو ۽ ٻنهي پيرن جي وچان لنگهي ويو. هن اٿڻ جي ڪئي پر ڪري پيو. مون کيس ان حال ۾ ڇڏي ڏنو. نيٺ هو گذاري ويو. ان کانپوءِ مون وٽن وڃي پنهنجو نيزو ڪڍيو ۽ لشڪر ۾ موٽي اچي ويهي رهيس. (منهنجو ڪم پورو ٿي چڪو هو) منهنجو ان کانسواءِ ٻئي

1 - ابن هشام (2/69).

ڪنهن سان معاملو ڪونه هو. مون کين رڳو ان لاءِ ماريو ته جيئن آئون آزادي حاصل ڪري سگهان. پوءِ جڏهن مڪي پهتس ته مون کي آزادي ملي وئي. (1)

**مسلمانن جي سرسي:-** الله ۽ الله جي رسول جي شينهن حضرت حمزة رضي الله عنه جي شهادت سان مسلمانن کي ڪاپاري ڏک رسيو ته به مسلمان جنگ ۾ سرس رهيا. حضرت ابوبڪر ۽ عمر، علي ۽ زبير، مصعب بن عمير، طلح بن عبیدالله، عبدالله بن جحش، سعد بن معاذ، سعد بن عبادہ، سعد بن ربیع ۽ نضر بن انس وغيره رضي الله عنهم اجمعين ايڏو مڙسيءَ سان وڙهيا جو مشرڪن جا حوصلا خطا ٿي ويا ۽ اهي همت هاري ويهي رهيا.

**عورت جي هنج کان تلوار جي ڌار تائين:-** هاڻي ٿورو هيڏانهن ڏسو. انهن ئي ڪونڌرن ۾ حضرت حنظلہ الغسيل رضي الله عنه به نظر اچي رهيو آهي، جيڪو اڄ هڪ انوکي شان سان ميدان ۾ لٿل آهي. پاڻ ان ئي ابو عامر راهب جو فرزند آهي، جيڪو پوءِ فاسق جي نالي سان مشهور ٿيو. ان جو ذڪر اڳتي اچي چڪو آهي. حضرت حنظلہ رضي الله عنه جي تازي شادي ٿي هئي. جنگ جو پڙهو ڏنو ويو ته ان مهل پاڻ پنهنجي گهرواريءَ سان ستل هو. سڌ ٻڌندي ئي هنج ڇڏي جهاد لاءِ نڪري پيو ۽ جڏهن مشرڪن سان چٽي ويڙهه ٿيڻ لڳي ته پاڻ صنفون چيريندي سڀهه سالار ابوسفیان تائين وڃي پهتو ۽ ابوسفیان کي مارڻ وارو ٿي هو جو الله تعاليٰ پاران سندن لاءِ مقرر ڪيل شهادت ٿي گذري ۽ جيئن ئي ابوسفیان جو نشانو وٺي تلوار اڀي ڪيائين ته شداد بن اوس ڏسي ورتس ۽ جهت ڪري حملو ڪري ڏنائين. جنهن سان حضرت حنظلہ رضي الله عنه شهيد ٿي ويو.

**تير اندازن جو ڪارنامو:-** رماة جبل تي جن تير اندازن کي پاڻ سڳورن عليه السلام بيهاريو هو، انهن به جنگ ۾ ٻين مسلمانن وانگر ڀرپور حصو ورتو. مڪي جي شهسوارن خالد بن وليد جي اڳواڻيءَ ۾ ۽ ابو عامر فاسق جي مدد سان اسلامي فوج جو ڪاٻو طرف توڙي مسلمانن جي پٺيان پهچڻ ۽ انهن جي صفن ۾ افراتفري مچائي ڀرپور مات ڏيڻ لاءِ تي پيرا زورائتو حملو ڪيو. پر مسلمان تير اندازن کين اهڙا ته تير هنيا جو ٿي حملا ناڪام ٿي ويا. (2)

**مشرڪن جي هار:-** ٿوري دير تائين چٽي ويڙهه ٿيندي رهي ۽ ننڍڙو اسلامي لشڪر پوريءَ طرح جنگ تي حاوي رهيو. نيٺ مشرڪن جا حوصلا ٽٽي پيا، سندن صنفون ٽٽڻ لڳيون. ڇڻ ٿي هزار

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/69، 72) صحيح بخاري (2/583) وحشيءَ طائف جي جنگ کان پوءِ اسلام قبوليو ۽ پنهنجي ساڳئي نيزي سان حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جي ڏينهن ۾ يمامه جي جنگ ۾ مسلم ڪذاب کي ماريو. ان رومين خلاف يرموڪ جي جنگ ۾ به حصو ورتو.

<sup>2</sup> - فتح الباري (7/346).



مشرڪ، ست سو نه پر ٽي هزار مسلمانن سان ٽڪرايا هجن. هوڏانهن مسلمان ايمان ۽ يقين، جانبازي ۽ شجاعت جا نهايت وڏا مثال بڻجي تيرن ۽ تلوارن جا جوهر ڏيکاري رهيا هئا.

جڏهن قريش، مسلمانن جي لاڳيتن حملن کي روڪڻ لاءِ پنهنجي سموري سگهه استعمال ڪرڻ کانپوءِ به مجبوري ۽ بيوسي محسوس ڪئي ۽ سندن حوصلا ايترا خطا ٿي ويا جو صواب جي قتل کانپوءِ جڏهن جنگ کي جاري رکڻ لاءِ ڪير به پنهنجو جهنڊو بلند ڪرڻ لاءِ نه اٿيو ته انهن پويان پير ڪرڻ شروع ڪيا ۽ ڀڄڻ ۾ پلائي ڄاتائون ۽ عزت ۽ وقار جو پرم رکڻ لاءِ پلاند ڪرڻ جون ڳالهيون سندن دل مان نڪري ويون.

ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته الله، مسلمانن جي مدد ڪئي ۽ انهن سان ڪيل پنهنجو واعدو نڀايو. تنهنڪري مسلمانن، تلوارن سان مشرڪن کي اهڙي مار ڪڍي جو اهي پنهنجي پٽيءَ کان به پري ڀڄي ويا ۽ ان ۾ شڪ نه آهي ته ڪين مات ملي. حضرت عبدالله بن زبير رضي الله عنه پنهنجي والد کان روايت ڪئي آهي ته "والله مون ڏٺو ته هند بنت عتبہ ۽ سندس ساھيڙيون ور ڪنجي ائين ڀڄڻ لڳيون جو سندن چنگهون نظر اچي رهيون آهن. ڪين قيدي بنائڻ ڪو مسئلو نه هو... الخ (1)

صحيح بخاريءَ ۾ حضرت براء بن عازب رضي الله عنه جي روايت آهي ته جڏهن مشرڪن سان اسانجو ٽڪراءُ ٿيو ته انهن ۾ ڀاڄ پئجي وئي. ايستائين جو مون عورتن کي ور ڪڍي جبلن ڏي تڪڙو ڀڄندي ڏٺو. سندن پيرن جون چيرون به نظر اچي رهيون هيون. (2) ۽ ان ڀاڄ دوران مسلمان، مشرڪن تي تير هلائيندي ۽ مال ميڙيندي سندن پيڇو ڪري رهيا هئا.

**تيراندازن جي خوفناڪ غلطي:-** پر ان مهل، جڏهن هيءَ ننڍڙو اسلامي لشڪر مڪي وارن خلاف تاريخ جي ورقن تي هڪ بي وڏي سوڀ جو داستان رقم ڪري رهيو هو، جيڪا بدر واري لڙائيءَ کان ڪنهن به طرح گهٽ نه هئي، ان مهل تيراندازن جي گهڻائيءَ هڪ خوفناڪ غلطي ڪري وڌي، جنهن ڪارڻ جنگ جو نقشو تبديل ٿي ويو. مسلمانن کي وڏو نقصان رسيو ۽ ان جي ڪارڻ مسلمانن جي اها ساڪ ۽ هيبت دلين مان نڪري وئي، جيڪا بدر جي لڙائيءَ جي نتيجي ۾ کين حاصل ٿي هئي.

گذريل صفحن ۾ اچي چڪو آهي ته پاڻ سڳورن رضي الله عنه تيراندازن کي ڪٽڻ توڻي هارائڻ جي صورت ۾ ان هنڌ تي چمي بيهڻ جو سختيءَ سان تاڪيد ڪيو هو. ان هوندي به جڏهن هنن ڏٺو ته

<sup>1</sup> - ابن هشام (77/2).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (579/2).

مسلمان غنيمت جو مال ميڙي رهيا آهن ته انهن کي دنيا جي ڪجهه چڪ ٿي. تنهنڪري انهن مان ڪن، ٻين کي چيو ته غنيمت...! غنيمت...! توهان جا ساٿي کڻي ويا...! هاڻي انتظار ڇا جو؟

اهو ٻڌندي ئي سندن اڳواڻ حضرت عبدالله بن جبیر رضي الله عنه کين پاڻ سڳورن صلی الله علیه و آله جو حڪم ياد ڏياريو ۽ فرمايو ته: ڇا توهان وساري ويٺا آهيو ته پاڻ سڳورن صلی الله علیه و آله توهان کي ڪهڙو حڪم ڪيو هو؟ پر سندن ڪيترن ئي ساٿين ان يادگيريءَ کي هڪ ڪن کان ٻڌي ٻئي مان ڪڍي ڇڏيو ۽ چوڻ لڳا ته "الله جو قسم! اسين به انهن وٽ وينداسين ۽ ڪجهه غنيمت جو مال ضرور هٿ ڪنداسين." (1) ان کانپوءِ چاليهن تير اندازن پنهنجا مورچا ڇڏي ڏنا ۽ غنيمت جو مال ميڙڻ لاءِ عام لشڪر سان وڃي مليا. اهڙيءَ طرح مسلمانن جي پٺ خالي ٿي وئي ۽ اتي رڳو حضرت عبدالله بن جبیر رضي الله عنه ۽ سندن نوَ ساٿي وڃي بچيا. جيڪي ان عزم سان پنهنجن مورچن تي ڄميا بيٺا رهيا ته يا ته کين ورڻ جي موڪل ڏني ويندي يا اهي پنهنجي جان، الله جي حوالي ڪري ڇڏيندا.

**اسلامي لشڪر مشرڪن جي گهيري ۾:** - خالد بن وليد، جيڪو ان کان اڳ تي پيرا ان مورچي کي ختم ڪرڻ جي ناڪام ڪوشش ڪري چڪو هو، ان سونهري موقعي جو فائدو وٺندي ڏاڍي تيزيءَ سان ڦيرو کڻي اسلامي لشڪر جي پٺ تي وڃي پهتو ۽ ٿوري دير ۾ حضرت عبدالله بن جبیر رضي الله عنه ۽ سندن ساٿين جو خاتمو ڪري مسلمانن تي پٺيان حملو ڪري ڏنائين. سندس شهنشوارن نعرو هنيو، جنهن سان هارايل مشرڪن کي نئين تبديليءَ جو پتو پيو ۽ اهي به مسلمانن تي ڪاهي پيا. هوڏانهن بنو حارث قبيلي جي هڪ عورت عمرة بنت علقمة جهڙپ هڻي پٺ تي پيل مشرڪن جو جهنڊو کڻي ورتو. پوءِ ته بس ڇڙو ڇڙ تيل مشرڪن جي چوڌاري گڏ ٿيڻ لڳا ۽ هڪ ٻئي کي سڏڻ لڳا. هاڻي مسلمان اڳيان پٺيان گهيري ۾ اچي، ڄڻ ته چڪيءَ جي ٻن پڙن جي وچ ۾ ڦاسي پيا هئا.

**پاڻ سڳورن صلی الله علیه و آله جو دليرائو فيصلو:** - اهڙي وقت تي پاڻ سڳورا صلی الله علیه و آله رڳو نوَ صحابه سڳورن (2) جي گهيري ۾ پٺيان بيٺل هئا (3) ۽ مسلمانن جي ويڙهه ۽ مشرڪن جو حشر ڏسي رهيا هئا جو پاڻ سڳورن صلی الله علیه و آله کي اوچتو خالد بن وليد جا گهوڙي سوار نظر آيا. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلی الله علیه و آله آڏو به رستا وڃي بچيا ته يا پاڻ سڳورا صلی الله علیه و آله پنهنجن نون ساٿين سان گڏ تڪڙا پڇي وڃي ڪنهن هٿيڪي جاءِ تي رسن ۽ پنهنجي لشڪر کي، جيڪو دشمنن جي گهيري ۾ اچڻ وارو هو، قسمت تي ڇڏي ڏين يا پنهنجي جان خطري ۾ وجهي پنهنجن اصحابين کي سڏين ۽ انهن جو چڱو

1 - هي ڳالهه صحيح بخاري ۾ براء بن عازب رضي الله عنه کان مروِي آهي. ڏسو (426/1).

2 - صحيح مسلم 107/2 ۾ روايت آهي ته پاڻ سڳورا صلی الله علیه و آله احد واري ڏينهن رڳو ستن انصاري ۽ ٻن قريش صحابين جي وچ ۾ موجود هئا.

3 - جنهن جو دليل الله تعاليٰ جو هيءُ فرمان آهي ته: ﴿وَالرَّسُولُ يُدْعُوكُمْ فِي أَخْرَاكُمْ﴾ (153) (آل عمران) "يعني رسول توهان کي توهان جي پٺيان سڏي پيو."

خاصو تعداد گڏ ڪري هڪ مضبوط محاذ جوڙين ۽ ان جي ذريعي مشرڪن جو گهيرو ٽوڙي پنهنجي لشڪر لاءِ احد جبل تي مٿي چڙهڻ جو رستو بڻائين.

آزمائش جي ان نازڪ گهڙيءَ ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي عبقرت ۽ بيمثال دليري پذيري تي، چيو ته پاڻ سڳورن ﷺ جان بچائي ڀڄڻ بدران جان خطري ۾ وجهي اصحابي سڳورن جي جان بچائڻ جو فيصلو ڪيو.

تنهن ڪري پاڻ سڳورن ﷺ خالد بن وليد جي گهڙي سوارن کي ڏسندي ئي وڏي واڪي اصحابي سڳورن کي سڏيو. الله جا ٻانهو... هيڏانهن...! پاڻ سڳورن ﷺ پليءَ پت ڄاتون ٿي ته اهو سڏ مسلمانن کان اڳ مشرڪن تائين پهچندو ۽ ٿيو به ائين ئي، اهو سڏ ٻڌي مشرڪن کي پتو پيو ته پاڻ سڳورا ﷺ اتي موجود آهن. تنهنڪري سندن هڪ جتو مسلمانن کان اڳ پاڻ سڳورن ﷺ تائين پهچي ويو ۽ ٻين شهسوارن تيزيءَ سان مسلمانن کي گهيرو شروع ڪيو. هاڻي اسين پنهنجي محاذن جو تفصيل ڌار ڌار ٻڌائينداسين.

**مسلمانن ۾ قزقوت:** - جڏهن مسلمان گهيري ۾ اچي ويا ته هڪ ٽولو هوش وڃائي وينو. ان کي اچي سر سان لڳي، تنهنڪري اهو جنگ جو ميدان ڇڏي وٺي ڀڳو. ان کي ڪابه خبر نه هئي ته پٺيان ڇا ٿي رهيو آهي؟ انهن مان ڪجهه ڀڄي وڃي مديني پهتا ۽ ڪي جبل تي چڙهي ويا. هڪ ٻيو گروهه پٺيان مڙيو ته مشرڪن سان اهڙو وڃڻو جو هڪٻئي کي سڃاڻي نه سگهيا. ان جي ڪري مسلمانن هٿان ئي ڪي مسلمان مارجي ويا. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها کان روايت آهي احد واري ڏينهن (پهرين ته) مشرڪن کي مات ملي. ان کان پوءِ ابلبس هوڪاريو ته "الله جا ٻانهو! پٺيان... ان تي اڳين صف پٽي وري ۽ پٺين صف سان اٽڪي پئي. حذيفه رضي الله عنه ڏٺو ته سندن والد يمان رضي الله عنه تي حملو ٿي رهيو آهي ته چيائين ته: الله جا ٻانهو! هيءُ منهنجو پيءُ آهي، پر الله جو قسم! ماڻهن هٿ نه جهليو، نيٺ کين ماري وڌائونس. حذيفه رضي الله عنه چيو ته الله توهان جي مغفرت ڪري. حضرت عروة رضي الله عنه ٻڌائي ٿو ته: الله جو قسم! حضرت حذيفه رضي الله عنه سدائين خير گهرندو رهيو، ايسٽائين جو وڃي الله کي ڀرتو. (1)

مطلب ته ان جتي ۾ ڏاڍي قوت پئجي وئي هئي. ڪيترائي ماڻهو حيرانيءَ ۾ پئي قربيا. سندن سمجهه ۾ نه پئي آيو ته ڪيڏانهن وڃن. اهڙي وقت تي ڪنهن هوڪو ڏنو ته محمد ﷺ قتل

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (539/1، 581/2) فتح الباري (351/7، 362، 363) بخاريءَ کانسواءِ ڪن روايتن ۾ آهي ته پاڻ سڳورن ديت ڏيڻ گهري پر حضرت حذيفه رضي الله عنه چيو ته مون سندن ديت مسلمانن کي صدقو ڪري ڇڏي. ان ڪارڻ پاڻ سڳورن ﷺ جي نظر ۾ پاڻ اڃا ته وڌيڪ خير وارو ٿيو. ڏسو مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 246).

ٿي ويو آهي. ان سان سندن رهيل ڪهيل هوش به اڏامي ويو. گهڻن جو حوصلو ٽٽي ويو. ڪن ويڙهه کان هٿ جهلي ورتو ۽ مايوس ٿي هٿيار ڦٽا ڪيا. ڪن ٻين سوچيو ته منافقن جي سردار (راس المنافقين) عبدالله بن ابي سان ملي ڪيس چيو وڃي ته هو ابوسفيان کان سندن لاءِ امان گهري.

ڪجهه دير کانپوءِ انهن وٽان حضرت انس بن النضر رضي الله عنه لنگهيو. ڏنائين ته اهي هٿ هٿ تي رکي ويٺا آهن. پڇيائين ته ڇا جو انتظار اٿو؟ جواب ڏنائون ته پاڻ سڳورا عليه السلام قتل ٿي ويا آهن. حضرت انس بن نضر رضي الله عنه چيو ته پوءِ هاڻي پاڻ سڳورن عليه السلام کانپوءِ توهان جيئرا رهي ڇا ڪندا؟ اٿو ۽ جنهن ڳالهه لاءِ پاڻ سڳورن عليه السلام جان ڏني، ان لاءِ توهان به جان ڏيو. ان کانپوءِ چيائين ته اي الله! هنن (يعني مسلمانن) جيڪي ڪجهه ڪيو آهي ان لاءِ توکان معافي ٿو گهران ۽ انهن يعني مشرڪن جيڪي ڪجهه ڪيو آهي ان کان اٿون بيزاري اختيار ٿو ڪريان ۽ اهو چئي اڳتي وڌي ويو. اڳيان حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه مليس. ان پڇيو ته ابو عمر رضي الله عنه! ڪيڏانهن پيو وڃين؟ حضرت انس ورائيو ته "آه! جنت جي سڳند جي ڪهڙي ڳالهه ڪجي. اي سعد! اٿون ان (واس) کي احد جي هن پار پيو محسوس ڪريان. ان کانپوءِ پاڻ اڳتي وڌي ويو ۽ مشرڪن سان وڙهندي شهيد ٿي ويو. جنگ جي پڇاڻيءَ تي سندن سڃاڻپ نه پئي ٿي سگهي. نيٺ سندن پيڻ رڳو آڱرين جي پورن ذريعي سندن سڃاڻپ ڪئي. کين نيزي، تلوار ۽ تيرن جا اسيءَ کان وڌيڪ گهاٽا لڳا هئا. (1)

اهڙيءَ طرح ثابت بن دحاح رضي الله عنه پنهنجيءَ قوم کي سڏ ڪندي چيو ته: "جيڪڏهن محمد عليه السلام مارجي ويا آهن ته به الله ته زندهه آهي، اهو ته نٿو مري سگهي. توهان پنهنجي دين لاءِ وڙهو. الله توهان کي سوپ ڏيندو ۽ مدد ڪندو. ان تي انصارن جي هڪ جماعت اٿي ۽ حضرت ثابت رضي الله عنه انهن جي مدد سان خالد جي رسالي تي حملو ڪيو ۽ وڙهندي وڙهندي خالد جي هٿان نيزو لڳڻ سان شهيد ٿيو. ان وانگر ئي سندن ساٿين به وڙهندي وڙهندي شهادت جو رتبو ماڻيو. (2)

هڪ مهاجر اصحابي، هڪ انصاري اصحابي جي پيرسان لنگهيو، جيڪو رتوڇاڻ ٿيل هو. مهاجر چيو ته پاڻو فلاڻا! خبر اٿي ته محمد عليه السلام جن مارجي ويا آهن؟ انصاريءَ چيو ته جيڪڏهن محمد عليه السلام مارجي ويا آهن ته به الله جو دين پهچائي چڪا آهن. هاڻي توهان جو ڪم آهي ته ان دين جي حفاظت لاءِ وڙهو. (3)

اهڙيءَ طرح جي حوصلو ڏياريندڙ ڳالهين سان اسلامي لشڪر جو حوصلو وڌيو ۽ سندن هوش نڪاڻي تي لڳو. تنهن کانپوءِ انهن هٿيار ڦٽا ڪرڻ ۽ ابن ابي سان ملي امان وٺڻ جي ڳالهه سوچڻ

1 - زاد المعاد (93/2، 96) صحيح بخاري (579/2).

2 - السيرة الحلبية (22/2).

3 - زاد المعاد (96/2).

بدران هٽيار ڪنيا ۽ مشرڪن جي لوڏ سان ٽڪرائجي سندن گهيرو توڙڻ ۽ پنهنجي مرڪز تائين رستو صاف ڪرڻ جي ڪم ۾ جنبي ويا. ان دوران اهو به پتو پئجي ويو ته پاڻ سڳورن ﷺ جي مارجڻ جي خبر ڪوڙي آهي. ان سان سندن حوصلو وڌي ويو. تنهن کانپوءِ اهي هڪ ڇتي ويڙهه کانپوءِ گهيرو توڙڻ ۽ هڪ مضبوط مرڪز ويجهو گڏ ٿيڻ ۾ ڪامياب ٿي ويا.

اسلامي لشڪر جو ٽيون گروهه اهو هو جنهن کي رڳو پاڻ سڳورن ﷺ جو فڪر هو. اهو گروهه گهيرو ٿيندي ڏسي هڪدم پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن وريو. انهن ۾ سڀ کان اڳرا ابو بڪر صديق ﷺ، عمر بن الخطاب ﷺ ۽ علي بن ابي طالب ﷺ وغيره هئا. اهي سڀ ويڙهه ۾ به سڀ کان اڳرا هئا پر جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي جان کي خطرو ڏٺائون ته پاڻ سڳورن ﷺ جي سنڀال ۽ بچاءُ ڪرڻ وارن مان به سڀ کان اڳرا نڪتا.

پاڻ سڳورن ﷺ جي ويجهو ڇتي ويڙهه :- اهڙي وقت تي جڏهن اسلامي لشڪر گهيرو ۾ اچي مشرڪن جي وچ ۾ چڪيءَ جي ٻن پٿرن وانگر بيسجي رهيو هو. پاڻ سڳورن ﷺ جي چوڌاري به ڇتي ويڙهه ٿي رهي هئي. اسان ٻڌائي چڪا آهيون ته مشرڪن جنهن مهل گهيرو پئي ڪيو، ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ سان رڳو نو ماڻهو هئا ۽ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ مسلمانن کي هڪ ڪري چيو ته مون ڏانهن اچو! آئون الله جو رسول آهيان، ته پاڻ سڳورن ﷺ جي هڪ مشرڪن به ٻڌي ۽ سڃاتي. (پو ته ان مهل اهي مسلمانن کان وڌيڪ پاڻ سڳورن ﷺ جي ويجهو هئا.) تنهن کانپوءِ انهن پاڻ سڳورن ﷺ تي تڪڙو حملو ڪيو ۽ ڪنهن مسلمان جي پڇڻ کان اڳ پورو زور لڳائي ڇڏيو. ان تڪڙي حملي ڪارڻ انهن مشرڪن ۽ اتي بيٺل نون اصحابي سڳورن جي وچ ۾ ڇتي ويڙهه شروع ٿي وئي، جنهن ۾ محبت، دليري ۽ جانثاريءَ جا انمول واقعا ڏنا ويا.

صحيح مسلم ۾ حضرت انس رضه کان روايت آهي ته احد واري ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ ستن انصارن ۽ ٻن قريش صحابين سان گڏ ٿورو ڀرتي رهجي ويا هئا. جڏهن حملو ڪندڙ پاڻ سڳورن ﷺ جي بلڪل ويجهو پهتا ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ڪير آهي جيڪو هنن کي اسان کان پري ڪري ۽ ان لاءِ جنت آهي؟ يا (اهو فرمايائون ته) اهو جنت ۾ مون سان گڏ هوندو؟" ان تي هڪ انصاري اصحابي اڳتي وڌيو ۽ وڙهندي وڙهندي شهيد ٿيو. ان کانپوءِ ٻيهر مشرڪ پاڻ سڳورن ﷺ جي صفا ويجهو اچي پهتا ته ٻيهر ائين ٿيو. اهڙيءَ طرح واري واري سان ست ئي انصاري اصحابي سڳورا شهيد ٿي ويا. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجن بچيل ساٿين يعني قريشن کي چيو ته "اسان پنهنجن ساٿين سان انصاف نه ڪيو." (1)

1 - صحيح مسلم (107/2).

انهن ستن مان آخري اصحابي حضرت عماره رضي الله عنه بن يزيد بن السكن هو. اهو وڙهندو رهيو، وڙهندو رهيو. تان ته گهائڻ کيس ڪيرائي ڇڏيو. (1)

ابن السكن رضي الله عنه جي ڪرڻ کان پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ رڳو به قريشي اصحابي وڃي بچيا. جيئن صحيحين ۾ ابو عثمان رضي الله عنه کان روايت آهي ته جن ڏينهن ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام لڙايون ڪيون، انهن مان هڪ لڙائيءَ ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام سان طلح بن عبیدالله رضي الله عنه ۽ سعد رضي الله عنه (بن ابي وقاص) کانسواءِ ڪوبه نه بچيو. (2) ۽ اها گهڙي پاڻ سڳورن عليه السلام جي حياتيءَ جي سڀ کان نازڪ گهڙي هئي. جڏهن ته مشرڪن لاءِ ڏاڍو سهڻو وجهه هو ۽ حقيقت اها آهي ته مشرڪن ان موقعي مان فائدو وٺڻ ۾ ڪا گهٽتائي نه ڪئي هئي. انهن پاڻ سڳورن عليه السلام جي مرڪز تي سخت حملو ڪيو هو ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام کي مارڻ چاهيائون ٿي. ان حملي ۾ عتب بن ابي وقاص پاڻ سڳورن عليه السلام کي پٿر هنيو. جنهن سان پاڻ سڳورا عليه السلام پاسيرا ٿي وڃي ڪريا. پاڻ سڳورن عليه السلام جو هيٺيون ساڄو ربايعي ڏند (3) شهيد ٿي ويو ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام جو هيٺيون چپ به زخمي ٿي پيو. عبدالله بن شهاب زهريءَ اڳتي وڌي سندن نرڙ مبارڪ به زخمي ڪري وڌي. هڪڙي هنيلي سوار عبدالله بن قمنءَ پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڪلهي تي اهڙي زور سان تلوار هنئي جو ان جو سور پاڻ سڳورن عليه السلام کي هڪ مهيني تائين محسوس ٿيندو رهيو. پر ان سان پاڻ سڳورن عليه السلام جي ٻئي زره ٽٽي نه سگهي. ان کانپوءِ هن پهرين جيان ئي ٻيهر زور سان تلوار جو وار ڪيو، جيڪا اک کان هيٺ اپريل هڏيءَ تي لڳي ۽ ان ڪري خود (4) جون ٻه ڪڙيون چهري مبارڪ ۾ اندر گهٽي ويون. ان تي هن چيو ته: اچي وٺ! آئون قمنءَ (ٽوڙڻ واري)

جو پٽ آهيان. پاڻ سڳورن عليه السلام منهن تان رت اگهندي چيو ته: "الله شل توکي ٽوڙي." (5)

1 - توري دير کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ صحابه سڳورن جو هڪ جتو پهچي ويو. انهن ڪافرن کي حضرت عماره رضي الله عنه کان پري ڌڪيو ۽ کين پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ کڻي آيا. پاڻ سڳورن عليه السلام کين پنهنجي پير جي ٽيڪ ڏني ۽ سندن دم ان حالت ۾ نڪتو جو سندن ڳل پاڻ سڳورن عليه السلام جي پير تي رکيل هو. (ابن هشام 81/2).

2 - صحيح بخاري (527/1، 581/2).

3 - وات جي صفا وچ ۾ هيٺ ۽ مٿي جا ٻه ڏند ٺنڀا سڏبا آهن ۽ انهن جي ساڄي، کاٻي، هيٺ ۽ مٿي جو هڪ هڪ ڏند ربايعي سڏجي ٿو. جيڪو جهنڊار ڏند کان پهرين هوندو آهي.

4 - لوه يا پٿر جي ٽوپي، جيڪا جنگ ۾ مٿي ۽ منهن جي بچاءَ لاءِ پائڻي آهي.

5 - الله تعاليٰ پاڻ سڳورن عليه السلام جي اها دعا قبولي. ان سلسلي ۾ ابن عائد جي روايت آهي ته ابن قمنءَ جنگ کان گهر موٽڻ کان پوءِ پنهنجون پڪريون ڏسڻ نڪتو ته اهي کيس جبل جي چوٽيءَ تي مليون. هو اتي پهتو ته هڪ جابلو بڪر مٿس حملو ڪيو ۽ کيس سڀ هٿي هٿي جبل تان ڪيرائي وڌو. (فتح الباري (373/7) ۽ طبرانيءَ جي روايت آهي ته الله تعاليٰ هن تي هڪ جابلو بڪر مسلط ڪيو. جنهن سڱ هٿي هٿي کيس ٽڪر ٽڪر ڪري ڇڏيو. (فتح الباري (366/7).

صحيح بخاريء ۾ آيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ جو رباعي ڏند شهيد ڪيو ويو ۽ مٿو مبارڪ به گهائجي ويو. ان وقت پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجي چهري مبارڪ تان رت اڳهندي اهو فرمائي رهيا هئا ته ”ها قوم ڪيئن ڪامياب ٿي سگهندي. جنهن پنهنجي نبيءَ جي چهري کي زخمي ڪيو ۽ ان جو ڏند شهيد ڪري ڇڏيو، جڏهن ته هو کين الله ڏانهن سڏي رهيو هو.“ ان سلسلي ۾ الله عز وجل پاران هيءَ آيت نازل ٿي:

﴿لَيْسَ لَكَ مِنَ الْأَمْرِ شَيْءٌ أَوْ يَتُوبَ عَلَيْهِمْ أَوْ يُعَذِّبُهُمْ فَإِنَّهُمْ ظَالِمُونَ﴾ (آل عمران) (128)

”اي پيغمبر! ان ڪم ۾ تنهنجو ڪو واسطو نه آهي (الله) يا مٿن باجهه سان موٽندو يا ڪين عذاب ڪندو ڇو ته اهي ظالم آهن.“<sup>(1)</sup>

طبرانيءَ جي روايت آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ان ڏينهن فرمايو ته: ”ان قوم تي الله جو سخت ڏم ٿئي، جنهن پنهنجي پيغمبر جو منهن رتوڇاڻ ڪري ڇڏيو.“  
پوءِ تورو ترسي فرمايائون ته:

”اللَّهُمَّ اغْفِرْ لِقَوْمِي فَإِنَّهُمْ لَا يَعْلَمُونَ“<sup>(2)</sup>

”اي الله منهنجي قوم کي معاف ڪر اهي نه ٿا علم رکن.“

صحيح مسلم جي روايت ۾ به ائين آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ هر هر فرمائي رهيا هئا ته:

”رَبِّ اغْفِرْ لِقَوْمِي فَإِنَّهُمْ لَا يَعْلَمُونَ“<sup>(3)</sup>

”اي الله منهنجي قوم کي معاف ڪر اهي نه ٿا علم رکن.“ (يعني نادان آهن.)

قاضي عياض جي شفا ۾ هي لفظ آهن ته:

”اللَّهُمَّ اهْدِ قَوْمِي فَإِنَّهُمْ لَا يَعْلَمُونَ“<sup>(4)</sup>

”اي الله منهنجي قوم کي هدايت ڏي اهي نه ٿا علم رکن.“ (يعني نادان آهن.)

ان ۾ شڪ ناهي ته مشرڪن پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ تي گهريو، پر ٻنهي قريش اصحابين يعني حضرت سعد بن ابي وقاص رضي الله عنه ۽ طلحه بن عبدالله رضي الله عنه جن جي بي مثال دليريءَ ۽ شجاعت سان ٻه ڇڻا هوندي به دشمنن جي ڪاميابيءَ کي ناڪاميءَ ۾ بدلائي ڇڏيائون. اهي ٻئي عربستان جا مڃيل تيرانداڙ هئا. انهن تير هڻي هڻي حملو ڪندڙ مشرڪن کي پاڻ سڳورن ﷺ کان پري رکيو.

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (582/2) صحيح مسلم (108/2).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري - (296 / 11) (حديث رقم 3218)

<sup>3</sup> - صحيح مسلم - (271 / 9) (حديث رقم 3347)

<sup>4</sup> - كتاب الشفاء بتعريف حقوق المصطفى 81/1.

جيسٽائين سعد بن ابى وقاص رضي الله عنه جو تعلق هو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پنهنجي ترڪش جا سڀ تير سندن آڏو وڪيري فرمايو ته: "هلاءَ، توتي منهنجا ماءُ پيءُ قربان ٿين." (1) سندن صلاحيت جو اندازو ان ڳالهه مان لڳائي سگهجي ٿو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم انهن کانسواءِ ڪنهن ٻئي لاءِ ماءُ پيءُ جي قربان ٿيڻ جي ڳالهه نه ڪئي هئي. (2)

باقي جيسٽائين حضرت طلحہ رضي الله عنه جو تعلق آهي ته سندن ڪارنامي جو اندازو نسائيءَ جي هڪ روايت مان لڳائي سگهجي ٿو. جنهن ۾ حضرت جابر رضي الله عنه پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم تي مشرڪن جي ان حملي جو ذڪر ڪيو آهي. جڏهن پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم انصارن جي ننڍڙي جتي سان بيٺل هئا. حضرت جابر رضي الله عنه جو بيان آهي ته مشرڪ، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم تائين وڃي پهتا ۽ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: ڪير آهي، جيڪو هنن کي منهن ڏي؟ حضرت طلحہ رضي الله عنه چيو ته آئون آهيان. ان کانپوءِ حضرت جابر رضي الله عنه انصارن جي اڳيان وڌڻ ۽ هڪ هڪ تي شهيد ٿيڻ جو تفصيل بيان ڪيو آهي جيڪو اسين صحيح مسلم جي حوالي سان ڄاڻائي چڪا آهيون. حضرت جابر رضي الله عنه جو بيان آهي ته جڏهن اهي سڀ شهيد ٿي ويا ته حضرت طلحہ رضي الله عنه اڳتي وڌي يارنهن ڇڻن سان اڪيلي مقابلو ڪيو. ايسٽائين جو سندن هٿ تي تلوار جو گهاٽو لڳو، جنهن سان سندن آڱريون ڪڇجي ويون. ان تي سندن وات مان آواز نڪتو حس (شو). پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: جيڪڏهن تون بسم الله چوين ها ته فرشتا توکي مٿي کڻي وٺن ها ۽ ماڻهو به اهو لقاءَ ڏسن ها. حضرت جابر رضي الله عنه جو بيان آهي ته الله تعاليٰ مشرڪن جو رخ تبديل ڪري ڇڏيو. (3)

اڪليل ۾ حاڪم جي روايت آهي ته احد واري ڏينهن کين (حضرت طلحہ کي) اوڻيتاليهه يا پنجٽيهه گهاٽا رسيا ۽ سندن وچين ۽ شهادت واري آڱريون شل ٿي ويون. (4)

امام بخاريءَ قيس بن ابى حازم کان روايت آندي آهي ته "مون حضرت طلحہ رضي الله عنه جو هٿ ڏٺو، جيڪو شل هو. ان سان احد واري ڏينهن پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو بچاءُ ڪيو هئائين. (5)

ترمذيءَ جي روايت آهي ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ان ڏينهن، ان بابت چيو ته جيڪو ماڻهو ڪنهن شهيد کي ڌرتيءَ تي هلندو ڦرندو ڏسڻ گهري ته اهو طلحہ بن عبیدالله رضي الله عنه کي ڏسي وٺي. (6)

1 - صحيح بخاري (407/1، 580/2-581).

2 - صحيح بخاري (407/1، 580/2-581).

3 - فتح الباري (361/7) سنن نسائي (52/2، 53).

4 - فتح الباري (361/7).

5 - صحيح بخاري (527/1، 581).

6 - مشڪوة (566/2)، ابن هشام (86/2)، ترمذي: مناقب (حديث نمبر: 3740)، ابن ماجه: المقدمة (حديث نمبر: 125).



ابو دائود طيالسيء، بيبي عائشه رضي الله عنها کان روايت بيان ڪئي آهي ته ابوبڪر رضی اللہ عنہ جڏهن احد جي لڙائيءَ بابت ٻڌائيندو هو ته چوندو هو ته سڄي جي سڄي جنگ طلحہ رضی اللہ عنہ لاءِ هئي. (1) (يعني ان ويڙهه ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي بچائڻ جو اصل ڪارنامو ان ئي سرانجام ڏنو هو.) حضرت ابوبڪر ان بابت اهو به فرمائيندو هو ته:

يا طلحة بن عبيد الله قد وَّجِبْتَ لَكَ الْجَنَانُ وَبُوتَ الْمَهَا الْعَيْنَا (2)

”اي طلحہ بن عبيدالله تو لاءِ جنت واجب ٿي وئي ۽ تو پنهنجو ٽاڪ حور عين ۾ بڻائي ڇڏيو.“

ان نازڪ لمحي ۽ ڏکيءَ مهل ۾ الله تعاليٰ غيبي مدد موڪلي. جيئن صحيحين ۾ حضرت سعد رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته مون پاڻ سڳورن ﷺ کي احد واري ڏينهن ڏنو. پاڻ سڳورن ﷺ سان ٻه ڄڻا اڃا ڪپڙا پهريل بينل هئا. اهي ٻئي پاڻ سڳورن ﷺ پاران پريور نموني وڙهي رهيا هئا. مون ان کان اڳ ۽ ان کانپوءِ انهن ٻنهي کي ڪڏهن نه ڏٺو. هڪ ٻي روايت ۾ آهي ته اهي ٻئي جبرئيل عليه السلام ۽ ميڪائيل عليه السلام جن هئا. (3)

پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اصحابي سڳورن جو اچي گڏ ٿيڻ:- اهو سڄو حادثو ڪجهه لمحن ۾ اوجتو ٿي اوجتو ۽ ڏاڍو تڪڙو ٿيو هو. نه ته پاڻ سڳورن ﷺ جا چونڊ اصحابي، جيڪي ويڙهه هلندي پهرين قطار ۾ بينل هئا، جنگ جي حالت تبديل ٿيڻ شرط يا پاڻ سڳورن ﷺ جو سڏ ٻڌندي ئي پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن ڊوڙندي پهتا ته متان پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪو اٿوڻندڙ واقعو نه ٿي پوي. پر انهن جي پهچڻ تائين پاڻ سڳورا ﷺ زخمي ٿي چڪا هئا. ڇهه انصاري شهيد ٿي چڪا هئا. ستون گهائجي ڪري پيو هو ۽ حضرت سعد رضی اللہ عنہ ۽ حضرت طلحہ رضی اللہ عنہ پوريءَ سگهه سان بچاءُ ڪري رهيا هئا. هنن پهچڻ شرط پنهنجن جسمن ۽ هٿيارن سان پاڻ سڳورن ﷺ جي چوڌاري گهيراءُ ڪري ورتو ۽ دشمنن جي لڳاتار حملي کي روڪڻ لاءِ بهادريءَ کان ڪم ورتو. جنگ جي ميدان مان سڀ کان پهرين پاڻ سڳورن ﷺ تائين پهچڻ وارو پاڻ سڳورن ﷺ جو يار غار حضرت ابوبڪر صديق رضی اللہ عنہ هو.

ابن حبان پنهنجي صحيح ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها کان روايت آندي آهي ته حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ فرمايو ته: ”احد واري ڏينهن سڀ ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ کان پاسيرا هئا (يعني محافظن کانسواءِ سڀ اصحابي، پاڻ سڳورن ﷺ کي سندن مورچي وٽ ڇڏي ويڙهه جي اڳين قطار

1 - فتح الباري (361/7).

2 - مختصر تاريخ دمشق (82/7) (بحواله حاشيه شرح شذور الذهب (ص: 114)).

3 - صحيح بخاري (580/2).

پر هليا ويا هئا. پوءِ (گهيرا ٿيڻ کان پوءِ) آئون پهريون ماڻهو هوس جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتس. ڏنم ته پاڻ سڳورن ﷺ آڏو هڪ چڻو بيٺل هو. جيڪو سندن پاران وڙهي رهيو هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي بچائي رهيو هو. مون (دل ۾) چيو ته تون طلح آهين! توتي منهنجا ماءُ پيءُ قربان ٿين، تون طلح آهين! توتي منهنجا ماءُ پيءُ قربان ٿين. ايتري ۾ ابو عبدة بن جراح رضي الله عنه مون وٽ پهتو. اهو اهڙيءَ طرح ڊوڙي رهيو هو. چڻ جهرڪي (اڏامي رهي) هجي. تان ته اچي مون تائين پڳو. هاڻي اسين ٻئي پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن پڳاسين. ڏنوسين ته پاڻ سڳورن ﷺ آڏو طلح رضي الله عنه پٽ تي پيل هو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: پنهنجي پيءُ کي سنڀاليو هن (جنت) واجب ڪري ورتي آهي." حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جو بيان آهي ته (اسين پهتاسين ته) پاڻ سڳورن ﷺ جو منهن مبارڪ گهائجي چڪو هو ۽ خود جون ٻه ڪڙيون اک جي هيٺان ڳل ۾ ڪتل هيون. مون انهن کي ڪيڏن چاهيو ته ابو عبدة رضي الله عنه چيو ته: الله جو واسطو اٿو، اهي مونکي ڪيڏن ڏيو. ان کان پوءِ هن ڏندن سان هڪ ڪڙي جهلي ۽ هوريان هوريان ڪيڏن لڳو ته جيئن پاڻ سڳورن کي ايڏا نه پهچي ۽ نيٺ هڪ ڪڙي پنهنجي ڏندن سان چڪي ڪڍيائين پر (ان ڪوشش ۾) سندس هڪ هيٺيون ڏند ٽٽي پيو. هاڻي مون ٻي ڪڙي چڪڻ گهري ته ابو عبدة رضي الله عنه وري چيو ته: ابوبڪر! الله جو واسطو اٿو. مون کي چڪڻ ڏيو! ان کانپوءِ هوريان هوريان ٻي به ڪڍي ورتائين، پر سندس ٻيو هيٺيون ڏند به پڇي پيو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: پنهنجي پيءُ طلح رضي الله عنه کي سنڀاليو. (هن جنت) واجب ڪري ورتي. حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جو بيان آهي ته پوءِ اسان طلح رضي الله عنه ڏانهن ڌيان ڏنو ۽ کين سنڀاليو. کين ڏهن کان مٿي گهڙا آيا هئا. (1) (ان مان اندازو ڪري سگهجي ٿو ته حضرت طلح رضي الله عنه ان ڏينهن بچاءُ ۽ قتال ۾ ڪيڏي نه جانبازيءَ سان وڙهيو هو.)

پوءِ انهن نازڪ لمحن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي چوڌاري جانثار اصحابين جي هڪ جماعت به اچي پهتي، جن جا نالا هي آهن. (1) ابودجان رضي الله عنه (2) مصعب بن عمير رضي الله عنه (3) علي بن ابي طالب رضي الله عنه (4) سهل بن حنيف رضي الله عنه (5) مالڪ بن سنان رضي الله عنه (ابو سعيد خدي رضي الله عنه جو والد) (6) ام عمارة نسيبه بنت ڪعب مازنيه رضي الله عنها (7) قتادة بن نعمان رضي الله عنه (8) عمر بن الخطاب رضي الله عنه (9) حاطب بن ابي بلتع رضي الله عنه ۽ (10) ابو طلح رضي الله عنه

مشرڪن جي دٻاءُ ۾ واڌارو:— هوڏانهن مشرڪن جو تعداد به هر لمحي وڌي رهيو هو. جنهن جي ڪري سندن حملا تيز ٿيندا پئي ويا ۽ انهن جو دٻاءُ وڌي رهيو هو. ايستائين جو پاڻ سڳورا رضي الله عنه انهن کڏن مان هڪ ۾ وڃي ڪريا، جيڪي ابو عامر فاسق اهڙي قسم جي حرڪت لاءِ ئي ڪوتايون

<sup>1</sup> - زاد المعاد (2/95).

هيون ۽ ان ڪارڻ پاڻ سڳورن ﷺ جي گوڏي ۾ ست آئي. پوءِ حضرت علي رضی اللہ عنہ، پاڻ سڳورن ﷺ جو هت جهليو ۽ طلح بن عبیدالله رضی اللہ عنہ (جيڪو پاڻ به سخت گهايل هو) پاڻ سڳورن ﷺ کي پاڪر ۾ وٺي ڇڏيو. تڏهن پاڻ سڳورا ﷺ پوريءَ طرح سان بيهي سگهيا.

نافع بن جبير رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته: "مون هڪ مهاجر اصحابيءَ کي اهو چوندي ٻڌو ته: مان احد واري لڙائيءَ ۾ موجود هئس. مون ڏٺو ته هر پاسي کان پاڻ سڳورن ﷺ تي تيرن جو وسڪارو ٿي رهيو آهي ۽ پاڻ سڳورا ﷺ تيرن جي وچ ۾ آهن پر سڀ تير پاڻ سڳورن ﷺ کان قيربا ٿي ويا. (يعني گهيرو ڪندڙ اصحابي انهن کي روڪي رهيا هئا.) ۽ مون ڏٺو ته عبدالله ابن شهاب زهري چئي رهيو هو ته: مونکي ٻڌايو ته محمد ﷺ ڪٿي آهي؟ هاڻي يا ته مان رهندس يا هو. جڏهن ته پاڻ سڳورا ﷺ سندس ويجهو هئا. پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ ڪير به نه هو. پوءِ هو پاڻ سڳورن ﷺ کان اڳتي نڪري ويو. ان تي صفوان هن تي چوه چنڊيا. جواب ۾ هن چيو ته "والله مون کيس ڏٺو ئي ڪونه. الله جو قسم هن کي اسان کان بچايو ويو آهي. ان کانپوءِ اسين چار ئي ڇڏا اهو قسم ڪئي نڪتاسين ته ڪين ماري ڇڏينداسين پر انهن تائين پهچي نه سگهياسين." (1)

**بیمثال جانبازي:-** بهرحال هن موقعي تي مسلمانن اهڙي ته بي مثال جانثاري ۽ قربانيءَ جو مظاهرو ڪيو جنهن جو مثال تاريخ ۾ ملڻ مشڪل آهي. جيئن ابو طلح رضی اللہ عنہ پنهنجو پاڻ کي پاڻ سڳورن ﷺ آڏو ڍال بڻائي ڇڏيو. ان پنهنجي ڇاتي آڏو ڪري ٿي ڇڏي ته جيئن پاڻ سڳورا ﷺ دشمنن جي تيرن کان محفوظ رهن. حضرت انس رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته احد واري ڏينهن ماڻهو (عام مسلمان) هاراڻڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ (اچڻ بدران هيڏي هوڏي) پڇي ويا ۽ ابو طلح رضی اللہ عنہ پاڻ سڳورن ﷺ آڏو هڪ ڍال کڻي بيهي رهيو. پاڻ ماهر تيرانداڙ هو. گهڻو چڪي تير هلائيندو هو، تنهنڪري ان ڏينهن به يا ته ڪمانون توڙي وڏائين. پاڻ سڳورن ﷺ وٽان ڪوئي ترڪش وارو لنگهيو ٿي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ٿي ته: اهي (تير) ابو طلح آڏو وڪيري ڇڏ ۽ جيڪڏهن پاڻ سڳورن ﷺ قوم ڏانهن سر ڪڍي ڏنو ٿي ته ابو طلح چيو ته: "منهنجا ماءُ پيءُ توهان تي قربان، اوهان مٿو مٿي ڪري جهاتي نه پايو. متان اوهان جي قوم جو ڪو تير نه اوهان کي لڳي وڃي منهنجي ڇاتي اوهان جي ڇاتيءَ جي آڏو آهي." (2)

1 - زادالمعاد (97/2).

2 - صحيح بخاري (581/2).

حضرت انس رضي الله عنه کان به روايت آهي ته: حضرت ابو طلحہ رضي الله عنه پنهنجو ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام جو هڪ ئي ڍال سان بچاءُ ڪري رهيو هو ۽ ابو طلحہ رضي الله عنه ڏاڍو ڀلو تير انداز هو. جڏهن ان تير هلايو تي ته پاڻ سڳورن عليه السلام ڪنڌ مٿي ڪٽي ڏنو ٿي ته سندس تير ڪٿي ڪريو. (1)

حضرت ابودجانہ رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام جي اڳيان بيٺو هو ۽ پنهنجي پن کي پاڻ سڳورن عليه السلام لاءِ ڍال ڪري ڇڏيو هئائين. مٿن تيرن جو وسڪارو ٿيو پئي پر پاڻ چريو به ڪونه ٿي. حضرت حاطب بن ابي بلتعہ رضي الله عنه، عتبہ بن ابي وقاص جو پيڇو ڪيو. جنهن پاڻ سڳورن عليه السلام جو ڏند مبارڪ شهيد ڪيو هو. ان کي ايڏي زور سان تلوار هنياڻين جو سندس سر ڌڙ کان ڌار ٿي ويو. پوءِ سندس گهوڙي ۽ تلوار تي قبضو ڪيائين. حضرت سعد بن ابي وقاص رضي الله عنه ڏاڍو چاهيو ته پنهنجي ان پيءُ عتبہ کي پاڻ ماري پر ڪامياب نه ٿي سگهيو ۽ اها سعادت حضرت حاطب رضي الله عنه کي نصيب ٿي.

حضرت سهل بن حنيف رضي الله عنه به وڏو جانباز تير انداز هو. ان پاڻ سڳورن عليه السلام سان موت جي بيعت ڪئي ۽ ان کانپوءِ مشرڪن کي ڌڪي پري ڪيائين.

پاڻ سڳورا عليه السلام پاڻ به تير هلائي رهيا هئا. جيئن حضرت قتادة بن نعمان رضي الله عنه جي روايت آهي ته پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجي ڪمان سان ايڏا تير هلايا جو ان جو ڪنارو ٽٽي پيو. پوءِ اها ڪمان قتادة بن نعمان رضي الله عنه کائڻ ورتي ۽ پاڻ وٽ سنڀالي رکيائين. ان ڏينهن اهو واقعو به ٿيو ته حضرت قتادة رضي الله عنه جي هڪ اک، ڌڪ لڳڻ سان ٻاهر نڪري آئي. پاڻ سڳورن عليه السلام اها پنهنجي هٿ مبارڪ سان کڻي جي اندر وڌي. ان کانپوءِ سندن ٻنهي اکين مان اها ئي وڌيڪ سهڻي لڳندي هئي ۽ ان جي نظر به وڌيڪ تيز ٿي وئي هئي.

حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه کي وڙهندي وڙهندي منهن تي ڌڪ لڳو. جنهن سان سندن اڳيون ڏند پڇي پيو ۽ کين ويهه يا ان کان به وڌيڪ گهڻا رسيا. جن مان ڪي پير ۾ به لڳا ۽ پاڻ معذور ٿي پيو.

ابو سعيد خدری رضي الله عنه جي والد مالڪ بن سنان رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام جي منهن مبارڪ تان رت چوسي صاف ڪيو. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: ان کي ٽڪي ڇڏ. ان چيو ته: الله جو قسم آئون ڪڏهن به ڪونه ٽڪيندس. ان کانپوءِ موٽي وڃي وڙهڻ لڳو. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: جيڪو ماڻهو ڪنهن جنتيءَ کي ڏسڻ چاهي، اهو هن کي ڏسي سگهي ٿو. ان کانپوءِ وڙهندي وڙهندي سندن شهادت ٿي.

1 - صحيح بخاري (1/406).

هڪڙو اٽلپ ڪارنامو بيبي ام عمارة نسيب بنت ڪعب رضي الله عنه جو به آهي. پاڻ ڪجهه مسلمانن سان گڏ وڙهندي ابن قمن تائين پهتي. ابن قمن سندن ڪلهي تي تلوار جو وار ڪري گهرو گهاٽ ڏنو. هن به ابن قمن کي پنهنجي تلوار سان ڪئي ڏڪ هنيا پر نياڳو به زرهون پائي آيو هو. ان ڪري بچي ويو. بيبي ام عمارة رضي الله عنها کي ويڙهه ۾ ٻارنهن گهاٽ رسيا.

حضرت مصعب بن عمير رضي الله عنه به ڏاڍي دليريءَ سان وڙهيو. هو ابن قمن ۽ سندس ساتارين جي لاڳيتن حملن کان پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو بچاءَ ڪري رهيو هو. سندس هٿن ۾ ئي اسلامي جهنڊو هو. ظالمن سندن ساڄي هٿ تي اهڙي ته زور سان تلوار هنئين جو هٿ ڪڍجي ويو. ان کانپوءِ ڪاٻي هٿ ۾ جهنڊو جهليائين ۽ ڪافرن جي مقابلي ۾ ڄمي بيٺو. نيٺ سندس ڪاٻو هٿ به ڪڍجي ويو. ان کانپوءِ جهنڊو گوڏن جي ٽيڪ سان ڇاتيءَ سان لڳائي ڇڏيائين. ان ئي حالت ۾ کين شهادت نصيب ٿي. سندس قاتل ابن قمن هو. هو کين محمد صلى الله عليه وسلم سمجهي رهيو هو. ڇو ته حضرت مصعب بن عمير رضي الله عنه جا مهاندا پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سان ملندا هئا، تنهنڪري هو حضرت مصعب رضي الله عنه کي شهيد ڪري مشرڪن ڏانهن هليو ويو ۽ رڙيون ڪري پڙهو ڏنائين ته محمد صلى الله عليه وسلم قتل ڪيو ويو آهي. (1)

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي شهادت جي خبر ۽ ويڙهه تي ان جو اثر:- سندس ان هڪڙي جي ڪري پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي شهادت جي خبر مسلمانن ۽ مشرڪن ۾ ڦهلجي وئي ۽ هيءُ ئي اها نازڪ گهڙي هئي. جنهن ۾ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کان پري گهيري ۾ آيل گهڻن ئي اصحابي سڳورن جا حوصلا جواب ڏئي ويا. سندن ارادا ٿڌا ٿي ويا ۽ سندن صفتن ۾ ڦڙڦوٽ ۽ بي چيني ڦهلجي وئي. پر ان سان گڏ پاڻ سڳورن جي شهادت جي خبر ان لحاظ کان فائديمند به ٿي جو ان کانپوءِ مشرڪن جي پرجوش حملن ۾ ڪجهه گهٽتائي اچي وئي. ڇو ته انهن سمجهيو پئي ته سندن آخري مقصد نيٺ پورو ٿيو. تنهن کانپوءِ انهن مان گهڻن حملو بند ڪري مسلمانن جي نعشن جي بيحرمي ڪرڻ شروع ڪئي.

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي لاڳيتي ويڙهه ۽ حالتن تي قابو پائڻ:- حضرت مصعب رضي الله عنه جي شهادت کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جهنڊو حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه کي ڏنو. انهن ڄمي مقابلو ڪيو. اتي موجود ٻين اصحابي سڳورن به بي مثال دليريءَ سان جان جي بازي لڳائي دفاع ۽ حملو ڪيو، جنهن سان نيٺ ان ڳالهه جو امڪان پيدا ٿيو ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم مشرڪن جون صفون چيري گهيري ۾ قاتل اصحابي سڳورن ڏانهن رستو بڻائي سگهن. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم

<sup>1</sup> - ابن هشام (73/2, 80, 81, 82, 83) ۽ زاد المعاد (97/2).

اڳتي وڌيا ۽ اصحابي سڳورن وٽ پهتا. سڀ کان پهرين حضرت كعب بن مالڪ رضي الله عنه پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي سڃاتو ۽ وٺي خوشيءَ ۾ واکا ڪيائين ته مسلمانو! خوش ٿي وڃو. الله جو رسول هتي آهي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم اشارو ڪيو ته چپ ڪر. متان مشرڪن کي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي جڳهه جو پتو پئجي وڃي پر هوڪو مسلمانن جي ڪنن تائين پهچي چڪو هو. تنهن کانپوءِ مسلمان پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي پناهه ۾ اچڻ شروع ٿي ويا ۽ هوريان هوريان اٽڪل ٽيهه کن اصحابي سڳورا گڏ ٿي ويا. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جبل جي گهاتي يعني پنهنجي جاءِ ڏانهن هٿڻ شروع ڪيو. پر جيئن ته ان واپسيءَ جو مطلب اهو ٿي ها ته مشرڪن، مسلمانن کي گهيڙڻ جي جيڪا ڪارروائي ڪئي هئي، اها بي نتيجي نڪتي. ان ڪري مشرڪن ان واپسيءَ کي ناڪام ڪرڻ لاءِ پنهنجا لاڳيتي حملا جاري رکيا. پر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم انهن حملو ڪندڙن جي ميڙ کي چيري نيٺ رستو ٺاهي ورتو ۽ اسلام جي شينهن جي شجاعت ۽ دليريءَ جي سامهون هنن جي هڪ به نه هلي. ايتري ۾ مشرڪن جو هڪ هنيلو سوار عثمان بن عبدالله بن مغيره اهو چوندي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ڏانهن وڌيو ته يا ته مان رهندس يا هو رهندو. هوڏانهن پاڻ سڳورا به هڪ هڪاڻي ڪرڻ لاءِ بيهي رهيا پر اهڙي نوبت نه آئي. چوٽه هن جو گهوڙو هڪ کڏي ۾ ڪري پيو ۽ ايتري ۾ حارث بن صم رضي الله عنه ان وٽ پهچي کيس للڪاريو ۽ سندس پير تي ايڏي ته زور سان تلوار واهي ڪڍي جو کيس اتي ئي ويهاري ڇڏيائين. پوءِ هن کي پورو ڪري سندس هٿيار کڻي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ پهتو. پر ايتري ۾ مڪي جي فوج جي هڪ ٻئي سوار عبدالله بن جابر، حضرت حارث بن صم رضي الله عنه تي حملو ڪيو ۽ سندس ڪلهي تي تلوار هڻي ڪڍي. پر مسلمانن جهڙو ڏئي ڪين کڻي ورتو. هوڏانهن خطرن سان ڪيڏيندڙ مانجهي مرد حضرت ابودجان رضي الله عنه، اڄ گاڙهو رومال ٻڏي ڇڏيو هو، عبدالله بن جابر تي ڪاهي پيو ۽ کيس اهڙي تلوار هنيائين جو سندس سسي اڏامي وئي.

قدرت جو ڪرشمو ڏسو ته ان ئي رتوچاڻ دوران مسلمانن کي ننڊ جاجهوتا به اچي رهيا هئا ۽ جيئن قرآن ٻڌايو آهي ته اهو الله پاران امن ۽ اطمينان هو. ابو طلحه رضي الله عنه جو بيان آهي ته آئون به انهن ماڻهن مان هوس، جن کي احد واري ڏينهن ننڊ پئي آئي. ايستائين جو منهنجن هٿن مان گهڻا پيرا تلوار به ڇڏائجي وئي. حالت اها هئي جو اها ڪرندي هئي ۽ آئون جهليندو هوس، وري ڪرندي هئي ۽ وري جهليندو هوس. (1)

مطلب ته اهڙي قسم جي جانبازيءَ سان اهو جتو منظم طور تي پنٿي هڻندو جبلن جي لڪ ۾ لڳايل پڙا تائين پهتو ۽ بچيل لشڪر لاءِ به ان محفوظ جڳهه تائين پهچڻ جو گس ٺاهي ڇڏيو. تنهن

1 - صحيح بخاري 2/582.

کانپوءِ بچيل لشکر بہ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي ويو ۽ حضرت خالد جي فوجي حڪمت عملي پاڻ سڳورن ﷺ جي فوجي حڪمت عمليءَ آڏو ناڪام ٿي وئي.

**أبي بن خلف جو مارچ:** - ابن اسحاق جو بيان آهي ته جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ گهاتيءَ ۾ موتي آيا تڏهن ابي بن خلف هيئن چونڊو آيو ته محمد ﷺ ڪٿي آهي؟ يا ته مان رهندس يا هو رهندو. اصحابي سڳورن چيو ته: يا رسول الله ﷺ! اسان مان ڪو هن جو مقابلو ڪري؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: هن کي اچڻ ڏيو. جڏهن ويجهو آيو ته پاڻ سڳورن ﷺ، حارث بن صم ﷺ کان ننڍڙو نيزو وٺي ان کي جهٽڪو ڏنو ته ماڻهو ائين ٿڙي پڪڙي ويا چڻ بدن کي جهٽڪو ڏيڻ سان مڪيون اڏامي ويون هجن. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ان جو نشانو وٺي اهڙو ته نيزو واهي ڪڍيس جو هو گهوڙي تان بولائون ڪائيندو وڃي ڪريو. جڏهن قريش وٽ پهتو ته جيتوڻيڪ نڪو ڪيس ڪو وڏو گهٽاءُ رسيو هو ۽ نه ئي رت پئي وهيس ته به چيائين ته مون کي محمد ﷺ ماري ڇڏيو. ماڻهن چيس ته تو اڃائي ڪٿي دل ننڍڙي ڪئي آهي نه ته الله جو قسم! تنهنجو ته وار به ونگو نه ٿيو آهي. هن چيو ته "هن مڪي ۾ مون کي چيو هو ته آئون توکي ماريندس. (1) ان ڪري الله جو قسم ته هو جيڪر مون تي ٿڪي ها ته به منهنجي جان هلي وڃي ها. نيٺ الله جو هيءُ دشمن مڪي موٽندي سرف نالي جڳهه وٽ مري ويو. (2) ابو الاسود، حضرت عروة ﷺ کان روايت ڪئي آهي ته ان هستيءَ جو قسم، جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، جيڪا تڪليف مون کي آهي، اها جيڪڏهن ذي المجاز جي رهاڪن کي هجي ها ته اهي سڀئي مري وڃن ها. (3)

**حضرت طلحہ رضی اللہ عنہ جو پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪٽڻ:** - جبل ڏانهن موٽندي رستي تي هڪ ٽڪري هئي، پاڻ سڳورن ﷺ ان تي چڙهڻ جي ڪوشش ڪئي پر چڙهي نه سگهيا. هڪ ته سندن جسار مبارڪ ڳرو ٿي ويو هو، مٿان وري پاڻ سڳورن ﷺ ٻٽيون زرهون پائي ڇڏيون هيون ۽ ٻيو ته پاڻ سڳورن ﷺ کي سخت ڏک به رسيا هئا. تنهنڪري حضرت طلحہ بن عبیدالله رضی اللہ عنہ هيٺ ويٺا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي پنهنجن ڪلهن تي ويهاري اٿي بيٺا. اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ ٽڪريءَ تي چڙهيا. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: طلحہ رضی اللہ عنہ (جنت) کڻي ورتي. (4)

<sup>1</sup> - ٿيو هيئن هو ته جڏهن مڪي ۾ ابي، پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏسندو هو ته چونڊو هو ته اي محمد ﷺ! مون وٽ عود نالي هڪ گهوڙو آهي. آئون ان کي روز ٽي صاع (ساڍا ست ڪلو) دائو ڪارائيندو آهيان. ان تي چڙهي توکي ماريندس. موت ۾ پاڻ سڳورا ﷺ فرمائيندا هئا ته (تون نه) پر آئون توکي انشاءِ الله ماريندس.

<sup>2</sup> - ابن هشام 84/2- زاد المعاد 97/2.

<sup>3</sup> - مختصر سيرة الرسول شيخ عبدالله (ص: 250)، ابن هشام (84/2)، زاد المعاد (97/2).

<sup>4</sup> - ابن هشام (82/2، 86/2)، ترمذي، احمد، حاکم..

**مشرڪن جو آخري حملو:** - جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ جبل جي لڪ ۾ پنهنجي مورچي ۾ پهتا ته مشرڪن مسلمانن کي ڇيهو رسائڻ جي آخري ڪوشش ڪئي. ابن اسحاق ٻڌائي ٿو ته پاڻ سڳورن ﷺ جي لڪ ۾ پهچڻ کانپوءِ ابوسفيان ۽ خالد بن وليد جي اڳواڻيءَ ۾ مشرڪن جو هڪ جتو چڙهي آيو. پاڻ سڳورن ﷺ دعا گهري ته يا الله! اهي اسان کان مٿي نه رسڻ گهرجن. پوءِ حضرت عمر بن خطاب رضه ۽ مهاجرن جي هڪ جتي وڙهي انهن کي جبل تان هيٺ لهڻ تي مجبور ڪري وڌو. (1)

مغازي امويءَ جو بيان آهي ته مشرڪ جبل تي چڙهي آيا ته پاڻ سڳورن ﷺ حضرت سعد رضه کي چيو ته انهن جي حوصلاشڪني ڪريو، يعني انهن کي پنٿي ڏڪيو. ان وراڻيو ته آئون اڪيلو ڪيئن ٿو انهن کي پنٿي ڏڪي سگهان! ان تي پاڻ سڳورن ﷺ تي پيرا ساڳي ڳالهه ورجائي. نيٺ حضرت سعد رضه پنهنجي ترڪش مان هڪ تير ڪڍيو ۽ هڪ چٽي کي هنيو ته اهو اتي ئي ڏهي پيو. حضرت سعد رضه جو چوڻ آهي ته مون وري به ساڳيو تير ڪنيو، ان کي سڃاڻم ٿي ۽ ان سان ٻئي کي ماريم ته ان جو به ڪم پورو ٿي ويو. ان کان پوءِ وري تير ڪنيم جو ان کي سڃاڻم ٿي ۽ ان سان ٽئين چٽي کي به ماريم ته اهو به مري ويو. ان کانپوءِ مشرڪ هيٺ لهي ويا. مون سوچيو ته هي ڪو ڀلارو تير آهي. پوءِ اهو تير پنهنجي ترڪش ۾ رکي ڇڏيم. اهو تير سڄي حياتي حضرت سعد رضه وٽ رهيو ۽ کائڻ پوءِ سندن اولاد وٽ رهيو. (2)

**شهيدن جو مٿلو:** - اهو آخري حملو هو، جيڪو مشرڪن پاڻ سڳورن ﷺ تي ڪيو. جيئن ته انهن کي پاڻ سڳورن ﷺ جي انجام جو پورو پتو پئجي نه سگهيو هو، پر پاڻ سڳورن ﷺ جي شهادت جي جهڙي ڪر پڪ هئڻ، ان ڪري انهن پنهنجي ديري تي پهچي مڪي موٽڻ جي تياري شروع ڪري ڇڏي. ڪجهه مشرڪ مرد ۽ عورتون مسلمان شهيدن جو مٿلو ڪرڻ ۾ لڳي ويا. يعني شهيدن جي آلت ۽ ڪن ۽ نڪ وغيره ڪٽڻ لڳا ۽ پيٽ چيري ڇڏيائون. هند بنت عتبه، حضرت حمزة رضه جو جبرو چيري ڪڍيو ۽ وات ۾ وجهي چٻاڙيو ۽ ڳت ڏيڻ چاهي پر گهي نه سگهي، نيٺ ٽڪي ڇڏيائين ۽ ڪپيل نڪن ۽ ڪنن مان چير ۽ هار ٺاهيائين. (3)

**مسلمانن جو آخر تائين ويڙه لاءِ تيار رهڻ:** - ان آخري وقت تي به اهڙا واقعا ٿيا، جن مان اندازو لڳائي سگهجي ٿو ته مسلمان مانجهي مرد توڙ تائين ويڙه لاءِ ڪيڏا نه تيار هئا ۽ الله جي راه ۾ جان ڏيڻ جو ڪهڙو نه جذبو رکيائون ٿي.

1 - ابن هشام (86/2).

2 - زاد المعاد (95/2).

3 - ابن هشام (90/2).



(الف) حضرت كعب بن مالك رضي الله عنه جو بيان آهي ته آئون انهن مسلمانن مان هوس جيڪي جبل جي لڪ کان ٻاهر هئا. مون ڏٺو ته مشرڪ، مسلمان شهيدن جو مثل پيا ڪن ته ترسي پيس، پوءِ اڳتي وڌيس. ڇا ڏسان ته هڪ مشرڪ ڳري زهر پهريل، شهيدن جي وچان لنگهي رهيو آهي ۽ چونڊو پيو وڃي ته ڪنل پڪرين وانگر ڪريا پيا آهن! هڪ مسلمان وري ان کي تاڻي پيو، اهو به زهر پهريل آهي. آئون ڪجهه وڌي ان جي پٺيان وڃي بيٺس. پوءِ بيٺي بيٺي اڪين ٿي اڪين ۾ مسلمان ۽ ڪافر کي تورڻ لڳس. مون کي لڳو ته ڪافر پنهنجي قد ڪاٺ ۽ ساز سامان جي لحاظ کان سرس آهي. هاڻي آئون ٻنهي جي ٽڪرائڻ جو انتظار ڪرڻ لڳس. نيٺ ٻئي ٽڪرائجي ويا ۽ مسلمان، ڪافر کي اهڙي تلوار واهي ڪڍي جيڪا کيس پيرن تائين ڪپيندي وئي ۽ مشرڪ جا ٻه ٽڪر ٿي ويا. پوءِ مسلمان پنهنجو ٻوٽاڙو لاهي چيو ته اڙي ڪعب رضي الله عنه! ڪيئن تو پائين؟ آئون ابودجانه آهيان!<sup>(1)</sup>

(ب) جنگ جي پڇاڻيءَ تي ڪجهه مومن عورتون جنگ جي ميدان ۾ پهتيون. جيئن حضرت انس رضي الله عنه جو بيان آهي ته مون بيبي عائشه بنت ابي بڪر رضي الله عنها ۽ ام سليم رضي الله عنها کي ڏٺو ته مريم تائين ڪپڙو ويڙهي پٺ تي پائيءَ جي کلي کڻي پئي آيون ۽ زخمين جي وات ۾ وجهي رهيون هيون.<sup>(2)</sup> حضرت عمر رضي الله عنه جي چواڻي ته احد واري ڏينهن حضرت ام سليل رضي الله عنها اسان لاءِ پائيءَ جي کلي هر هر پري پئي آئي.<sup>(3)</sup>

انهن ئي عورتن ۾ ام ايمن رضي الله عنها به شامل هئي. جنهن جڏهن هارائي پڳل مسلمانن کي مديني ۾ گهٽندي ڏٺو ته سندن منهن ۾ مٿي اڇلائي هنيائين ۽ چيائين ته هيءُ سٺ ڪٿڻ جو چرخو وٺو ۽ اسان کي تلوار ڏيو.<sup>(4)</sup> ان کان پوءِ پاڻ تڪڙي جنگ جي ميدان ۾ پڳي ۽ زخمين کي پاڻي پيارڻ لڳي. کين حبان بن عرقه تير هنيو. جنهن تي پاڻ ڪري پئي ۽ سندن پلاند مٿي تي ويو. ان تي الله جي دشمن وڏو تهڪ ڏنو. پاڻ سڳورن عليه السلام کي اها ڳالهه ڏکي لڳي ۽

<sup>1</sup> - البدايه والنهائيه (17/4).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (403/1، 581/2).

<sup>3</sup> - صحيح بخاري (403/1).

<sup>4</sup> - سٺ ڪٿڻ، عرب ۾ عورتن جو خاص ڪم هو. انڪري سٺ ڪٿڻ جو چرخو، عورتن جو اهڙو ئي خاص سامان هو. ڇڻ اسان جي ملڪن ۾ چوڙي، ان موقعي تي مٿئين محاورو جو اسان جي ٻوليءَ ۾ اهو محاورو چوندو ته "اوھين چوڙيون پائي ويھو، اسان کي تلوار ڏيو." (هي مؤلف طرفان لڳايل حاشيو آهي. اسان وٽ سنڌ ۾ اهڙي موقعي تي چوڙيون پائڻ، گندي وجهي ويهڻ جهڙا مهڻا ڏيڻ کان علاوه ساڳيو عربيءَ وارو محاورو به رائج آهي. دودي جنيسر واري قصي ۾ جڏهن هو ماءُ کان پڳ پڌرائڻ جي موڪل وٺڻ تو اچي ته ماءُ کيس مهڻو ڏيندي چوي ٿي ته "مون چٽيو هو پٽ ڪري، پر تون نڪتين ڏيءَ، ويهي آڻڻ وڃ ۾ پانڌيون ڪٽج ٿيهه." سندس زال وري هن طرح جو مهڻو ڏنس ته "چاچي منهنجي ڪانڌ کي چني چوڙائي ڏي، اڳين هيوسين به چٽيون. هاڻي تلي تينديونسين تي." (مترجم).

حضرت سعد بن ابى وقاص رضي الله عنه کي هڪ بنا اٿي جي تير ڏئي فرمايائون ته: هيءُ هلائي. حضرت سعد رضي الله عنه تير اچليو ته اهو حبان جي نرگهت ۾ وڃي لڳو ۽ هو ڪري پيو ۽ سندس پردو کلي پيو. ان تي پاڻ سڳورا عليه السلام ايڏو کليا جو سندن ڏند مبارڪ نظر اچڻ لڳا. پاڻ فرمايائون ته: سعد رضي الله عنه، ام ايمن جو پلاند وٺي ڇڏيو. الله سندس دعا قبولي. (1) (يعني حضرت سعد رضي الله عنه جي مستجاب الدعاء بنجڻ جي دعا ڪيائون).

**جبل جي لڪ ۾ ساهه پٽڻ کانپوءِ:-** جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام لڪ ۾ توري ساهي پتي ورتي ته حضرت علي رضي الله عنه "مهراڻ" منجهان پنهنجي ڍال ۾ پاڻي پري آيو. چيو وڃي ٿو ته مهراڻ، پٿرن ۾ ٺهيل هڪ ڪڏو هوندو آهي، جنهن ۾ ڪجهه پاڻي گڏ ٿي ويندو آهي يا چيو وڃي ٿو ته: احد ۾ هڪ چشمي جو نالو هو. بهرحال حضرت علي رضي الله عنه اهو پاڻي پاڻ سڳورن عليه السلام جي خدمت ۾ پيئڻ لاءِ پيش ڪيو. پاڻ سڳورن عليه السلام ان ۾ ڌپ محسوس ڪئي، ان ڪري پيئائون ته ڪونه باقي ان سان منهن تي لڳل رت ڌوئائون ۽ مٿي تي به هاريائون. ان مهل پاڻ سڳورا عليه السلام فرمائي رهيا هئا ته "ان ماڻهوءَ تي الله جو ڏم ٿئي، جنهن سندس نبيءَ جو منهن رتوڇاڻ ڪيو." (2)

حضرت سهل رضي الله عنه چونڊو هو ته آئون ڄاڻان ٿو ته پاڻ سڳورن عليه السلام جو گهٽ ڪنهن اگهيو؟ پاڻي ڪنهن هنيو ۽ علاج ڪهڙي شيءِ سان ڪيو ويو؟ پاڻ سڳورن عليه السلام جي جگر جي ٽڪري بيبي فاطمه رضي الله عنها، پاڻ سڳورن عليه السلام جو گهٽ صاف ڪيو ۽ حضرت علي رضي الله عنه ڍال مان پاڻي هاري رهيو هو ۽ جڏهن بيبي صاحبہ ڏٺو ته پاڻي هڻڻ سان رت وهڻ وڌندو پيو وڃي ته ڪڪن جي ٽڏي جو ٽڪرو کڻي ساڙي ڦٽ تي چنبڙائي ڇڏيو، جنهن سان رت وهڻ بند ٿي ويو. (3)

هوڏانهن حضرت محمد بن مسلم رضي الله عنه منو ۽ سواڊي پاڻي هٿ ڪري آندو. پاڻ سڳورن عليه السلام اهو پيئو ۽ خير جي دعا گهري. (4) گهٽ جي ڪري پاڻ سڳورن عليه السلام، اڳين (ظهر) نماز ويهي پڙهي ۽ اصحابي سڳورن به پاڻ سڳورن عليه السلام جي پٺيان ويهي نماز پڙهي. (5)

**ابوسفيان جو توڪون هڻڻ ۽ حضرت عمر رضي الله عنه سان ڏي وٺ:-** مشرڪن، موٽڻ جي تياري ڪري ورتي ته ابوسفيان احد جبل تي چڙهيو ۽ وڏي واڪي چيائين ته ڇا توهان ۾ محمد عليه السلام آهي؟ ماڻهن جواب نه ڏنو. هن وري چيو ته ڇا توهان ۾ ابو قحافه جو پٽ (ابوبڪر) آهي؟ ماڻهن موت

1 - السيرة الحلبية (22/2).

2 - ابن هشام (85/2).

3 - صحيح بخاري (584/2).

4 - السيرة الحلبية (30/2).

5 - ابن هشام (87/2).

ڪانه ڏني. ان تي هن ٻيهر سوال ڪيو ته ڇا توهان ۾ عمر بن الخطاب آهي؟ ماڻهو هن پيري به چپ رهيا، ڇو ته پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن کي ورندي ڏيڻ کان جهلي ڇڏيو هو. ابوسفیان انهن تن کانسواءِ ڪنهن جو نه پڇيو. ڇو ته کيس ۽ سندس قوم کي پتو هو ته اسلام انهن تنهي جي دم قدم سان آهي. بهرحال جڏهن ڪابه ورندي نه مليس ته هن چيو ته هلو انهن تنهي مان ته جان چٽي. اهو ٻڌي حضرت عمر رضه پاڻ جهلي نه سگهيو ۽ چيائين ته "او دشمن الله جا! جن جا تو نالا ورتا آهن. اهي سڀ جيئرا آهن ۽ اڃا الله توکي خوار ڪرڻ جو بندوبست ڪري رکيو آهي." ان کانپوءِ ابوسفیان چيو ته: "توهانجي مقتولن جو مثلو ڪيو ويو آهي، پر مون نه ڪو ان جو حڪم ڏنو هو ۽ نه ئي ان تي ناراض ٿيو آهيان." پوءِ هن نعرو هنيو: **أَعْلُ هُبْلُ (هبل مٿاهون هجي).**

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: توهان ورندي ڇو نٿا ڏيو؟ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم عرض ڪيو ته ڪهڙو جواب ڏيون؟ پاڻ سڳورن فرمايو ته: **چئو ته اللهُ أَعْلَى وَأَجَلُّ (الله ئي اعليٰ ۽ برتر آهي).**

پوءِ ابوسفیان نعرو هنيو ته **"لَنَا الْعُزَىٰ وَلَا عُزَىٰ لَكُمْ (اسان لاءِ عزتي آهي ۽ اوهان لاءِ عزتي ناهي).**

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ورندي ڇو نٿا ڏيو؟ صحابه سڳورن رضي الله عنهم پڇيو ته ڪهڙو جواب ڏيون؟ پاڻ سڳورن فرمايو ته: **چئو ته اللهُ مَوْلَانَا وَلَا مَوْلَىٰ لَكُمْ (الله اسانجو مولِي آهي ۽ توهان جو مولِي ڪوئي ڪونهي).**

ان کانپوءِ ابوسفیان چيو ته "ڪيڏو نه پلو ڪم ٿيو آهي. اڄوڪو ڏينهن بدر جي ڏينهن جو پلاند آهي ۽ ويڙهه جو پاسو ڦرندو رهندو آهي."<sup>(1)</sup>

حضرت عمر رضه ورندي ڏني ته "هڪجهڙو نه آهي. اسانجا مقتول جنت ۾ آهن ۽ توهان جا مثل دوزخ ۾".

ان کانپوءِ ابوسفیان چيو ته: "عمر! منهنجي ويجهو اڄ" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته وڃ، ڏس ته ڇا ٿو چوي؟ حضرت عمر رضه ويجهو ويو ته ابوسفیان چيو ته: "عمر! الله جو واسطو اٿئي، ٻڌاءِ ته ڇا اسان محمد ﷺ کي ماري ڇڏيو آهي؟" حضرت عمر رضه چيو ته "والله! نه، پر هن مهل پاڻ تنهنجيون ڳالهيون ٻڌي رهيا آهن." ابوسفیان چيو ته: "تون منهنجي نظر ۾ ابن قمنه کان وڌيڪ سچو آهين."<sup>(2)</sup>

<sup>1</sup> - يعني ڪڏهن هڪ ڌر کڻي ٿي ته ڪڏهن ٻي. جيئن ڏول ڪڏهن ڪير چڪي ٿو ته ڪڏهن ڪير.

<sup>2</sup> - ابن هشام (93/2، 94) زاد المعاد (94/2)، صحيح بخاري (579/2).

بدر ۾ هڪ ٻي جنگ وڙهڻ جا وعدا وعيد:- ابن اسحاق لکي ٿو ته ابو سفيان ۽ سندس ساٿاري موٽڻ لڳا ته ابو سفيان چيو ته "مٿئين سال بدر ۾ وري ويڙهه ڪرڻ جو واعدو آهي." پاڻ سڳورن ﷺ هڪ اصحابيءَ کي چيو ته چئي ته چڱو هاڻي اها ڳالهه اسان جي ۽ اوهان جي وچ ۾ طئه ٿي." (1)

**مشرڪن جي موقف جي جاچ:-** ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ حضرت علي رضيه الله عنه کي موڪليو ۽ چيو ته "قوم (مشرڪن) جي پٺيان وڃي ۽ ڏس ته اهي ڇا پيا ڪن ۽ سندن ارادا ڪهڙا آهن؟ جيڪڏهن انهن گهوڙا پاسيرا ڪيا آهن ۽ اٺن تي سوار آهن ته پوءِ سندن ارادو مڪي وڃڻ جو آهي ۽ جي گهوڙن تي چڙهيل هجن ۽ اٺن کي هڪلي وٺي وڃي رهيا هجن ته پوءِ مديني جو ارادو اٿن." پوءِ فرمايائون ته: "ان هستيءَ جو قسم جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، جيڪڏهن انهن مديني وڃڻ جو ارادو ڪيو ته اٿون مديني ۾ وڃي ساڻن هڪ هڪاڻي ڪندس." حضرت علي رضيه الله عنه جو بيان آهي ته ان کانپوءِ سندن ڪيڊ لڳس. ڏنر ته انهن گهوڙا پاسيرا ڪري رکيا هئا ۽ اٺن تي سوار هئا ۽ مڪي ڏانهن منهن هڻن. (2)

**شهيدن ۽ گهايلن جي خبرگيري:-** قريشن جي موٽڻ کانپوءِ مسلمانن، پنهنجن شهيدن ۽ زخمين جي خبرچار وٺڻ شروع ڪئي. حضرت زيد بن ثابت رضيه الله عنه جو بيان آهي ته احد واري ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ مون کي سعد بن الربيع رضيه الله عنه جي ڳولا لاءِ موڪليو ۽ فرمايو ته: کيس ڏسين ته منهنجا سلام ڏجان ۽ چئجان ته پاڻ سڳورن ﷺ ڇڏيو آهي ته تون هينئر ڇا پيو محسوس ڪرين؟ حضرت زيد رضيه الله عنه جو چوڻ آهي ته مان مقتولن جي وچان لنگهندو وٽس پهتس. ڏنر ته پاڻ آخري پساهن ۾ آهي. کيس نيزن، تلوارن ۽ تيرن جا ستر کان مٿي گهاءَ رسيا هئا. مون چيو ته: "اي سعد! رسول الله ﷺ سلام موڪليا آهن ۽ ڇڏيو آهي ته توهان هينئر ڇا محسوس ڪري رهيا آهيو؟" پاڻ وراثيائين ته "پاڻ سڳورن ﷺ کي سلام چئجان ۽ عرض ڪجان ته يا رسول الله جنت جي خوشبوءِ پيو محسوس ڪريان ۽ منهنجي قوم انصارن کي چئجان ته جيڪڏهن توهان مان ڪنهن جي هڪ اک به ڪم ڪندي هجي ۽ ويري پاڻ سڳورن ﷺ تائين پهچي وڃن ته (رسول الله جي مدد نه ڪرڻ ڪري) توهانجو الله وٽ ڪوبه بهانو ڪم اچي نه سگهندو." ان کانپوءِ سندن روح پرواز ڪري ويو. (3)

1 - ابن هشام (94/2).

2 - ابن هشام (94/2)، حافظ ابن حجر فتح الباري (347/7) ۾ لکيو آهي ته مشرڪن جا ارادا ڄاڻڻ لاءِ حضرت سعد بن ابي وقاص رضيه الله عنه

کي موڪليو ويو هو.

3 - زاد المعاد (96/2).

ماڻهن زخمين ۾ اَصيرم ﷺ کي به ڏٺو، جنهن جو نالو عمرو ﷺ بن ثابت هو. ان ۾ به تورا پساھ هئا. ان کان پهرين کين اسلام جي دعوت ڏي هئي ته پاڻ نٿاڻي ويندو هو، ان ڪري ماڻهن (اچرج ۾) چيو ته اصيرم هتي ڪيئن آيو آهي؟ هن کي ته اسان اهڙي حالت ۾ ڇڏيو هو جو هيءُ دين جو انڪاري هو. پوءِ کانئس پڇيو ويو ته توکي هتي ڪهڙي شيءِ وٺي آئي؟ قوم جي حمايت جو جوش يا اسلام جي چڪ؟ هن وراڻيو ته: "اسلام جي چڪ. اصل ۾ مون الله ۽ ان جي رسول ﷺ تي ايمان آندو ۽ پوءِ رسول الله ﷺ جي حمايت ۾ ويڙهه ۾ شريڪ ٿيس. تان ته هن حالت ۾ پهتس، جيڪا اوهان جي اکين آڏو آهي." ان مهل پاڻ گذاري ويو. ماڻهن سندس ذڪر پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪيو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هو جنتين منجهان آهي." ابو هريرة ﷺ جو چوڻ آهي ته جيتوڻيڪ هن الله ڪارڻ هڪ نماز به نه پڙهي هئي. (1) چوٽه اسلام قبول ڪندو اڃا ڪنهن نماز جي مهل ئي نه آئي هئي جو پاڻ شهيد ٿي ويو.

انهن ئي گهايلن ۾ قزمان به هو. ان به هن جنگ ۾ پنهنجا جوهر ڏيکاريا هئا ۽ اڪيلي سر ستن يا اٺن مشرڪن کي تلوار سان ڪنو هٽائين. هو جڏهن مليو ته زخمن کان چور هو. ماڻهن کيس کڻي بنو ظفر جي پاڙي ۾ آندو ۽ مسلمانن کيس خوشخبري ٻڌائي. چوڻ لڳو ته: واللّٰه منهنجي جنگ رڳو پنهنجي قوم جي ناموس لاءِ هئي. جي اها ڳالهه نه هجي ها ته آئون ويڙهه نه ڪريان ها. ان کانپوءِ جڏهن هن جا ڦٽ ناسور بڻجي ويا ته هن پنهنجو پاڻ کي ڪهي خودڪشي ڪري ڇڏي. هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ سان جڏهن به هن جي ڳالهه ڪبي هئي ته فرمائيندا هئا ته هو دوزخي آهي. (2) (ان سان پاڻ سڳورن ﷺ جي پيشنگوئي سچي ثابت ٿي) اها حقيقت آهي ته دين جي سربلنديءَ بدران وطنيت يا ٻئي ڪنهن ارادي سان وڙهڻ واري جو انجام اهڙو ئي ٿيندو آهي. ڀلي اهي اسلام جي جهنڊي هيٺان يا حضور ﷺ جي اصحابين جي لشڪر ۾ ئي شامل ٿي چو نه وڙهي رهيا هجن.

ان جي برعڪس مقتولن ۾ بنو ثعلبه جو هڪ يهودي هو. ان اهڙي وقت جڏهن اڃا جنگ جا آثار نظر اچڻ شروع ٿيا هئا، پنهنجي قوم کي چيو ته: "اي يهوديو! الله جو قسم! توهان ڄاڻو ٿا ته محمد ﷺ جي مدد اوهان تي فرض آهي." يهودين چيو ته "ها پر اڄ سبت (ڇنڇر) جو ڏينهن آهي." هن چيو ته توهان لاءِ ڪوبه سبت ناهي. پوءِ هن پنهنجي تلوار ۽ سامان کنيو ۽ چيو ته جيڪڏهن آئون مارجي وڃان ته منهنجو مال محمد ﷺ کي ڏجو. اهو ان جو جيڪي وٽيس ڪري. ان

<sup>1</sup> - زادالمعاد (94/2)، ابن هشام (90/2).

<sup>2</sup> - زادالمعاد (97/2، 98)، ابن هشام (88/2).

ڪانپوءِ جنگ جي ميدان ۾ لٿو ۽ وڙهندي وڙهندي مارجي ويو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "مخيريق ڀلو يهودي هو".<sup>(1)</sup>

ان موقعي تي پاڻ سڳورن ﷺ پاڻ به شهيدن جي جاچ ورتي ۽ فرمايو ته آئون انهن لاءِ شاهدي ڏيندس. حقيقت اها آهي ته جيڪو ماڻهو الله جي راه ۾ گهائجي وڃي ٿو، ان کي الله قيامت جي ڏينهن اهڙيءَ حالت ۾ اٿاريندو آهي جو سندس ڦٽ مان رت پيو وهندو، رنگ ته رت جو ئي هوندو پر خوشبوءِ مشڪ جي هوندي.<sup>(2)</sup>

ڪجهه اصحابين، پنهنجن شهيدن کي مديني پهچائي ڇڏيو هو. پاڻ سڳورن ﷺ انهن کي حڪم ڏنو ته پنهنجن شهيدن کي واپس آڻي اتي پوريو، جتي شهيد ٿيا هئا ۽ شهيدن جا هٿيار ۽ چمڙي جي پوشاڪ لاهي ڇڏيو. پوءِ غسل ڏيڻ کان سواءِ جنهن حالت ۾ هجن، ان ئي حالت ۾ کين پوريو وڃي. پاڻ سڳورا ﷺ بن بن، تن تن، شهيدن کي هڪ ئي قبر ۾ پوري رهيا هئا ۽ بن بن ماڻهن کي هڪ ئي ڪپڙي ۾ گڏ ڍڪي رهيا هئا ۽ پڇيائون ٿي ته انهن مان ڪنهن کي وڌيڪ قرآن ياد آهي. ماڻهو جنهن ڏانهن اشارو ڪندا هئا، ان کي قبر ۾ اڳيان تي ڪيائون ۽ فرمايائون ٿي ته قيامت جي ڏينهن آئون انهن ماڻهن بابت شاهدي ڏيندس. عبدالله بن عمرو بن حرام رضى الله عنه ۽ عمرو بن جموح رضى الله عنه کي هڪ ئي قبر ۾ دفن ڪيو ويو، ڇو ته انهن ٻنهي ۾ دوستي هئي.<sup>(3)</sup>

حضرت حنظل رضى الله عنه جو لاش غائب هو. ڳولڻ تي هڪ جاءِ تي ان حالت ۾ مليو جو زمين تي پيو هو ۽ ان مان پاڻي پئي ٿيو. پاڻ سڳورن ﷺ اصحابي سڳورن کي ٻڌايو ته فرشتا کين غسل ڏئي رهيا آهن. پوءِ فرمايائون ته سندس گهر واريءَ کان پڇو ته معاملو ڇا آهي؟ سندس گهرواريءَ کان پڇيو ويو، جنهن پيرائتي ڳالهه ڪري ٻڌائي. تڏهن کان حضرت حنظل رضى الله عنه جو نالو غسيل الملائڪه (فرشتن جو وهنجاريل) پئجي ويو.<sup>(4)</sup>

پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي چاچي حضرت حمزة رضى الله عنه جو حال ڏنو ته ڏاڍا ڏڪارا ٿيا. سندن پٽي، بيبي صفيه رضي الله عنها اتي هلي آئي هئي، جنهن پنهنجي ڀاءُ حضرت حمزة رضى الله عنه کي ڏسڻ پئي چاهيو. پر پاڻ سڳورن ﷺ سندن فرزند حضرت زبير رضى الله عنه کي چيو ته کين واپس وٺي وڃ جو پاڻ پنهنجي ڀاءُ جو حال ڏسي نه وٺي. پر بيبي صفيه رضي الله عنها چيو ته اها ڪهڙي ڳالهه آهي؟ آئون ڄاڻان ٿي ته منهنجي ڀاءُ جو مثلو ڪيو ويو آهي، پر اهو الله جي راه ۾ آهي، ان ڪري

<sup>1</sup> - ابن هشام (88/2، 89).

<sup>2</sup> - ابن هشام (98/2).

<sup>3</sup> - زاد المعاد (98/2) صحيح بخاري (584/2).

<sup>4</sup> - زاد المعاد (94/2).

جيڪي ٿيو، اسين ان تي راضي آهيون. آئون ثواب سمجھي انشاءَ الله ضرور صبر ڪنديس. ان کانپوءِ پاڻ حمزة رضي الله عنه وٽ اچي ان لاءِ دعا گھربائين، انالله پڙھيائين ۽ الله کان چوٽڪارو گھربائين. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام حڪم ڪيو ته حضرت حمزة رضي الله عنه کي حضرت عبدالله بن جحش رضي الله عنه سان گڏ پوريو وڃي. اهو حضرت حمزة رضي الله عنه جو پاڻيڄو ۽ سندن ٽي شريڪ ڀاءُ به هو.

حضرت ابن مسعود رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته: پاڻ سڳورا عليه السلام، حضرت حمزة رضي الله عنه بن عبدالله المطلب تي جهڙيءَ طرح رنا هئا، ان کان وڌيڪ ڪنهن کي به ڪنهن تي اسان روئندي نه ڏٺو. پاڻ سڳورن عليه السلام کين قبلي واري پاسي رکيو، پوءِ جنازي تي بيٺا ۽ اوچنگارون ڪري روئڻ لڳا. (1) حقيقت ۾ شهيدن جو منظر هو ئي ڏاڍو ڏڪارو ۽ روٽاڙيندڙ. جيئن حضرت خباب بن ارت رضي الله عنه ٻڌايو ته حضرت حمزة رضي الله عنه کي هڪ ڪارن پٽن واري چادر کانسواءِ ڪوبه ڪفن نه ملي سگھيو. اها چادر سر تي وڌي ٿي وئي ته پير کلي ٿي پيا ۽ پيرن تي وجهڻ سان سر کليو ٿي ويو. نيٺ چادر سان مٿو ڍڪيو ويو ۽ پيرن تي اذخ (2) گاهه وڌو ويو. (3)

حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته مصعب بن عمير رضي الله عنه به شهيد ٿيو هو ۽ اهو مون کان چڱو هو. ان کي هڪ چادر جو ڪفن ڏنو ويو. حالت اها هئي ته جيڪڏهن مٿو ڍڪيو ٿي ويو ته پير ٿي ظاهر ٿيا ۽ پير ڍڪيا ٿي ويا ته مٿو پئي نظر آيو. سندس اها حالت حضرت خباب رضي الله عنه به ٻڌائي آهي ۽ اهو واڌارو ڪيو آهي ته (اها حالت ڏسي) پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته چادر سان ان جو مٿو ڍڪيو ۽ پيرن تي اذخ وجهي ڇڏيو. (4)

**پاڻ سڳورن عليه السلام جي الله جي ساراهه ۽ وڏائي بيان ڪرڻ ۽ دعا گھرڻ:-** امام احمد رحمته الله عليه جي روايت آهي ته احد واري ڏينهن جڏهن مشرڪ واپس هليا ويا ته پاڻ سڳورن عليه السلام اصحابي سڳورن کي فرمايو ته: قطار ناهيو ته آئون پنهنجي پالڻهار جي وڏائي بيان ڪري وٺان. ان حڪم تي اصحابي سڳورن، پاڻ سڳورن عليه السلام جي پٺيان صفون ٻڌيون ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام هيئن فرمايو ته: "يا الله! سڀ ساراهون تولاڻ آهن. يا الله! جنهن شيءِ کي تون ڪشادو ڪرين، ان کي ڪير به سوڙهو نٿو ڪري سگھي ۽ جنهن شيءِ کي تون سوڙهو ڪرين، ان کي ڪير به ڪشادو نٿو ڪري سگھي. جنهن کي تون گمراه ڪرين، ان کي ڪير به هدايت نٿو ڏئي سگھي ۽ جنهن کي تون هدايت

<sup>1</sup> - اها ابن شاذان جي روايت آهي. ڏسو مختصر السيرة شيخ عبدالله (ص: 255).

<sup>2</sup> - اهو موج جهڙو سڳند وارو گاهه آهي. گھڻن جاين تي چانهه ۾ وجهي ڪاڙهيو آهي. عربستان ۾ ان جو ٻوٽو گرانٽ ڏيڍ جيترو مس ٿو ٿئي پر هندوستان ۾ هڪ ميٽر کان به ڊگهو ٿئي ٿو.

<sup>3</sup> - مسند احمد، مشکوٰة (1/140).

<sup>4</sup> - صحيح بخاري (2/579، 584).

ڏين ان کي ڪوبه گمراهه نٿو ڪري سگهي. جيڪا شيءِ تون روڪين، اها ڪير نٿو ڏئي سگهي ۽ جيڪا شيءِ تون ڏين، اها ڪير به چئي نٿو سگهي. تنهنجي ڌڪاريل شيءِ کي ڪير ويجهو نٿو ڪري سگهي ۽ تنهنجي ويجهي ڪيل شيءِ کي ڪير ڌڪاري نٿو سگهي. يا الله! اسان لاءِ پنهنجون برڪتون، رحمتون ۽ فضل ۽ رزق ڦهلائي ڇڏ.

يا الله! آئون توکان سدائين رهڻ واريون نعمتون گهران ٿو. جيڪي نه ٿين ۽ نه ختم ٿين. يا الله! آئون توکان فقر جي ڏينهن لاءِ مدد ۽ ڊپ واري ڏينهن امن گهران ٿو. يا الله! جيڪي ڪجهه تو ڏنو آهي، ان جي شر کان ۽ جيڪي نه ڏنو آهي، ان جي شر کان پناهه گهران ٿو. يا الله! اسان ۾ ايمان جي چاهت پيدا ڪري اسان جي دلين کي ان سان سينگاري ڇڏ ۽ ڪفر، فسق ۽ نافرمانيءَ کان بيزاري پيدا ڪر ۽ اسان کي هدايت پاتلن مان ڪر. يا الله! اسان کي مسلماني ۾ مار ۽ مسلمانيءَ ۾ ئي جيار ۽ خواري ۽ فتني کان بچائي نيڪو ڪارن ۾ شامل ڪر. يا الله! تون انهن ڪافرن کي مار ۽ انهن تي قهر ۽ ڏمر نازل ڪر جو اهي تنهنجن پيغمبرن کي ڪوڙو ڪن ٿا ۽ تنهنجي وات تي هلڻ کان روڪين ٿا. يا الله! انهن ڪافرن کي به مار جن کي ڪتاب ڏنو ويو آهي. ”يا اله الحق“ (1)

مديني ڏانهن موت ۽ محبت ۽ جانثاريءَ جا انمول واقعا:- شهيدن کي پورڻ ۽ دعا گهرڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ مديني جو رخ ڪيو. جهڙيءَ طرح جنگ هلندي اصحابي سڳورن محبت ۽ جانثاريءَ جا داستان رقم ڪيا هئا، اهڙيءَ طرح ئي وات هلندي مؤمنياڻين به خلوص ۽ جانثاريءَ جو مظاهرو ڪري ڏيکاريو.

جيئن وات تي پاڻ سڳورن ﷺ سان بيبي حمه بنت جحش جي ملاقات ٿي. کيس سندس پيءُ عبدالله بن جحش رضي الله عنه جي شهادت جي خبر ڏنائون. ان انالله پڙهي ۽ چوٽڪاري لاءِ دعا گهري. پوءِ سندس مامي حضرت حمزة رضي الله عنه جي شهادت جي خبر ڏنائون. ان وري به انالله پڙهي ۽ چوٽڪاري لاءِ دعا گهري. ان کانپوءِ سندس مڙس حضرت مصعب بن عمير رضي الله عنه جي شهادت جي خبر ڏني وئي ته پاڻ تڙپي رڙيون ڪرڻ لڳي ۽ پار ڪڍي روئڻ لڳي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: " عورت جو مڙس سندس لاءِ وڏي اهميت رکي ٿو." (2)

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ بنو دینار جي هڪ عورت وتان لنگهيا، جنهن جو مڙس، پيءُ ۽ پيءُ ٽيئي جڻا شهيد ٿيا هئا. جڏهن ان کي خبر ڏني وئي ته چوڻ لڳي ته پاڻ سڳورن ﷺ جو ڇا ٿيو؟ ماڻهن چيو ته فلاڻي جي ماءُ! پاڻ سڳورا ﷺ خيريت سان آهن ۽ جيئن تون چاهين ٿي، تيئن آهن.

<sup>1</sup> - بخاري، الادب المفرد، مسند احمد (424/3).

<sup>2</sup> - ابن هشام (98/2).



عورت وراثيو ته ٿورو مون کي ڏيکاريو، آئون به ته پاڻ سڳورن ﷺ جو وجود بابرکت کي ڏسي وٺان. ماڻهن کيس اشاري سان ٻڌايو. جڏهن سندس نظر پاڻ سڳورن ﷺ تي پئي ته بي اختيار چيائين ته "كُلُّ مُصِيبَةٍ بَعْدَكَ حَلَلٌ" (پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏسڻ) کانپوءِ هر مصيبت هيچ آهي. (1)

وات تي حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه جي امڙ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ڊوڙندي پهتي. ان وقت حضرت سعد بن معاذ رضي الله عنه، پاڻ سڳورن ﷺ جي گهوڙي جي واڳ جهلي پئي هليو. چوڻ لڳو ته: "يا رسول الله ﷺ! منهنجي امڙ آئي آهي." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته کيس پليڪار ڪر. ان کانپوءِ سندس استقبال لاءِ بيهي رهيا. جڏهن اها ويجهي پهتي ته پاڻ سڳورن ﷺ کيس سندس فرزند عمرو بن معاذ رضي الله عنه جي شهادت تي ڏک جو اظهار ڪندي کيس آت ڏني ۽ صبر جي تلقين ڪئي. جنهن تي پاڻ فرمايائين ته جڏهن مون اوهان کي صحيح سلامت ڏسي ورتو، هاڻي مون لاءِ هر تڪليف گهٽ آهي. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ احد جي شهيدن لاءِ دعا گهري ۽ فرمايو ته: "اي سعد رضي الله عنه جي ماءُ تون خوش ٿي ۽ شهيدن جي گهر وارن کي خوشخبري ٻڌاءِ ته سندن شهيد سڀئي جنت ۾ گڏ آهن ۽ سندن گهر وارن لاءِ انهن سڀني جي شفاعت قبول ڪئي وئي آهي."

ان وراثيو ته: "يا رسول الله ﷺ! انهن جي پوئين لاءِ به دعا گهرو." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "يا الله! انهن جي دل جو ڏک دور ڪر ۽ انهن کي تڪليف جو سلو عطا ڪر ۽ پونين جي چڱي نظرداري ڪر." (2)

پاڻ سڳورا ﷺ مديني ۾:- ان ئي ڏينهن چنڇر 7 شوال سنه 3 هه تي شام جو پاڻ سڳورا ﷺ مديني پڳا. گهر پهچي پنهنجي تلوار بيبي فاطمه رضي الله عنها کي ڏنائون ته ڏي ۽ هن تان رت ڌو، الله جو قسم! هيءَ اڄ مون لاءِ ڏاڍي ڪارائتي ثابت ٿي آهي. پوءِ حضرت علي رضي الله عنه به پنهنجي تلوار ڏني ۽ فرمايو ته هن تان به رت ڌو، الله جو قسم! هيءَ به اڄ مون لاءِ ڏاڍي ڪارائتي ثابت ٿي آهي. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "جيڪڏهن تو بي مثال جنگ ڪئي آهي ته توسان گڏ سهل بن حنيف رضي الله عنه ۽ ابو دجانہ رضي الله عنه به بيمثال جنگ ڪئي آهي." (3)

گهڻيون روايتون هن ڳالهه تي متفق آهن ته مسلمان شهيدن جو تعداد ستر هو، جن مان گهڻا انصار هئا، يعني انهن جا 65 ڄڻا شهيد ٿيا هئا، 41 خزر ج جا ۽ 24 اوس جا. هڪ ڄڻو يهودي هو ۽ مهاجر شهيد رڳو چار هئا.

1 - ابن هشام (99/2).

2 - السيرة الحلبية (47/2).

3 - ابن هشام (100/2).

باقي بچيا قريشن جا مثل ته ابن اسحاق مطابق سندن تعداد 22 هو، پر بين سيرت نگارن هن ويڙه جو جيڪو تفصيل ڏنو آهي ۽ جن ۾ مٿاڇري انداز ۾ جنگ جي مختلف مرحلن ۾ مرڻ وارن مشرڪن جو ذڪر ڪيل آهي ان تي گهري نظر وجهڻ سان پتو پوي ٿو ته مرڻ وارا 22 نه پر 37 هئا. واللہ اعلم<sup>(1)</sup>

**مديني ۾ هنگامي حالتون:-** مسلمانن احد جي جنگ تان موٽڻ بعد (8 شوال سنه 3 هه ڇنڇر ۽ آچر جي وچ واري) رات هنگامي حالت ۾ گذاري. جنگ کين ٽڪائي ڇڏيو هو. تنهن هوندي به اهي سڄي رات مديني جي رستن ۽ گهٽين تي پهرو ڏيندا رهيا ۽ پنهنجي مهندار، رسول الله ﷺ جي بچاءَ لاءِ خاص اڀاءَ وٺندا رهيا. ڇو ته انهن کي هر پاسي کان نقصان پهچڻ جو انديشو هو.

**غزوه حمراء الاسد:-** هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ سڄي رات جنگ ڪري پيدا ٿيل حالتن تي سوچيندي گذاري. پاڻ سڳورن ﷺ کي انديشو هو ته جيڪڏهن مشرڪن کي اهو خيال آيو ته جنگ جي ميدان ۾ ڪٿڻ کانپوءِ به اسان ڪو لاپ حاصل نه ڪيو ته پڪ ڪين ندامت ٿيندي ۽ اهي وات تان ئي موتي مديني تي ڪاهي سگهن ٿا. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ فيصلو ڪيو ته هر حالت ۾ مڪي جي لشڪر جي ڪڍ (پويان) لڳڻ ڪپي. جيئن سيرت نگارن لکيو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ احد واري جنگ جي ٻئي ڏهاڙي يعني آچر 8 شوال سنه 3 هه تي صبح ساڻ اعلان ڪيو ته دشمن جي مقابلي لاءِ هلڻو آهي ۽ گڏوگڏ اهو به اعلان ڪيو ته رڳو اهي ماڻهو هلن، جيڪي احد واري لڙائيءَ ۾ موجود هئا. پوءِ به عبدالله بن ابي پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ هلڻ جي اجازت گهري پر پاڻ سڳورن ﷺ اجازت نه ڏنس. هوڏانهن مسلمان جيتوڻيڪ گهايل، ڏڪن ۾ ورتل ۽ ڊپ ڊاءَ واري حالت ۾ هئا ته به سڀني بنا ڪڇڻ جي حڪم مڃيو. حضرت جابر بن عبدالله رضه به اجازت گهري، جيڪو احد واري جنگ ۾ نه هليو هو. چيائين ته "يا رسول الله ﷺ! توهان جنهن جنگ ۾ شامل هجو، آئون به اوهان سان هجان ۽ جيئن ته (هن جنگ ۾) منهنجي پيءُ منهنجين نينگرين جي سنڀال لاءِ گهر ۾ روڪي ڇڏيو هو، تنهنڪري مون کي موڪل ڏيو ته آئون به توهان سان گڏ هلاڻ. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ کيس اجازت ڏني. پروگرام مطابق پاڻ سڳورا ﷺ مسلمانن کي وٺي نڪتا ۽ مديني کان اٺ ميل پري حمراء الاسد وٽ لٿا.

اتي رهڻ دوران معبد بن ابي معبد خزاعي، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي اسلام قبوليو. ڪي چون ٿا ته شرڪ تي قائم هو، پر پاڻ سڳورن ﷺ جو خيرخواه هو، ڇو ته خزاعه ۽ بنو هاشم ۾ حلف (يعني دوستي ۽ سات جو عهد) هو. مطلب ته هن چيو ته: "اي محمد ﷺ! توهان کي ۽

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/122\_129) فتح الباري (7/351) ۽ غزوه احد، ليڪڪ محمد احمد باشميل (ص: 278، 279، 280).

توهان جي سائين کي جيڪو ڏک رسيو آهي، الله جو قسم! اسان کي به ان جو ڏک آهي. اسان جي آس هئي ته الله توهان کي خيريت سان رکي ها. ان همدرديءَ جي اظهار کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کيس چيو ته ابوسفیان وٽ وڃي سندس حوصلا توڙي.

هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ کي جيڪو خدشو هو ته مشرڪ مديني تي ڪاهڻ جي ڳالهه سوچيندا، سو بلڪل سچو هو. جيئن مشرڪن مديني کان 36 ميل پري روحاء وٽ پهچي جڏهن ديرو هنيو ته پاڻ ۾ هڪٻئي تي چوه چنديندي چوڻ لڳا ته "توهان ڪجهه نه ڪيو. سندن شان ۽ سگهه توڙي کين ائين ئي ڇڏي ڏنو، جڏهن ته اڃا انهن جا ايترا سر بچيل آهن جو اهي توهان لاءِ وري به مٿي جو سور بڻجي سگهن ٿا، تنهن ڪري موٽو ۽ کين پاڙون پتي ڇڏيو."

پر لڳي ائين تو ته اها هڪ مٿاڇري رت هئي، جيڪا انهن ماڻهن پاران ڏني وئي هئي، جن کي ڌرين جي سگهه ۽ حوصلن جو صحيح ڪاٺو نه هو. ان ڪري هڪ سمجهو ماڻهوءَ صفوان بن اميه ان رت جي مخالفت ڪندي چيو ته "پائرو! ائين نه ڪريو. مون کي ڊپ ٿو ٿئي ته جيڪي (مسلمان احد واري جنگ) ۾ نه آيا هئا، متان اهي به هاڻي توهان جي خلاف گڏ ٿي وڃن. تنهنڪري هن ئي حالت ۾ موتي هلو جو سوپ اوهان ماڻي آهي، نه ته مون کي ڊپ آهي ته مديني تي ڪاهيو ويو ته گردش ۾ اچي ويندو." پر گهڻائيءَ اها رت نه قبولي ۽ فيصلو ڪيو ته مديني هلبو، پر اڃا اهي اتي ئي هئا جو معبد بن ابي معبد خزاعي اچي پهتن. ابوسفیان کي خبر نه هئي ته ڪو اهو مسلمان ٿي چڪو آهي. هن پڇيس ته معبد! پنتي جي ڪا خبر ڇا ڏي؟ معبد (واڏي ڏيندي) چيو ته: "محمد ﷺ پنهنجا ساٿي وٺي اوهان جي پويان لڳي چڪو آهي. سندس لشڪر ايڏو وڏو آهي جو مون اهڙو لشڪر ڪڏهن نه ڏٺو. سڀ ماڻهو توهان جي خلاف ڪاوڙ ۾ پيا ٿيڪن. احد ۾ پنتي رهجي وڃڻ وارا به پهچي ويا آهن. انهن جيڪي هتان وڃايو آهي، ان لاءِ سخت لڄي آهن ۽ توهان جي خلاف ايترو پٽڪيل آهن جو مون ان جو مثال ڪڏهن به ناهي ڏٺو."

ابوسفیان چيو ته: "پائو اهو ڇا پيو چوين؟"

معبد چيو ته: "الله جو قسم! آئون سمجهان ٿو ته توهان هلڻ کان اڳ سندن گهوڙن کي ڏسي وٺندا يا لشڪر جو مهڙ وارو دستو هن تڪر پٺيان ظاهر ٿي ويندو."

ابوسفیان چيو ته: "الله جو قسم! اسان ته فيصلو ڪيو آهي ته انهن تي وري ٻيهر حملو ڪريون ۽ سندن پاڙون پتي ڇڏيون."

معبد چيو ته: "ائين نه ڪجو، ان ۾ ئي توهان جو پلو آهي."

اهي ڳالهيون ٻڌي مڪي جو لشڪر هانءُ هاري ويٺو. انهن جي دلين ۾ ڊپ ۽ رعب ويهي ويو ۽ انهن چڱو ان ۾ ڄاتو ته مڪي ڏانهن پنهنجو سفر جاري رکن. باقي ابو سفیان اسلامي لشڪر کي

پٺيان اچڻ کان روڪڻ ۽ ٻيهر تڪراءَ ٿيڻ کان بچڻ لاءِ افواهي مهڙ جو جوابي حملو ڪيو. هن ڀرسان لنگهنڌڙ عبدالقيس قبيلي جي هڪ قافلي وارن کي چيو ته: "چا توهان منهنجو هڪ نياپو محمد ﷺ کي پڄائيندا؟ منهنجو وعدو آهي ته ان جي بدلي ۾ جڏهن توهان مڪي ايندا ته عڪاظ جي بازار ۾ توهان کي ايتري ڪشمش ڏيندس، جيتري اوهان جي هيءَ ڏاچي کڻي سگهي ٿي." انهن چيو ته "هاڻو."

ابوسفیان چيو ته: "محمد ﷺ کي اها خبر وڃي ڏيو ته اسان سندس ۽ سندس ساٿين جون پاڙون پٽڻ لاءِ ٻيهر موٽي حملو ڪرڻ جو فيصلو ڪيو آهي." ان کانپوءِ جڏهن قافلہ حمراء الاسد ۾ پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن وٽان لنگهيو ته کين ابوسفیان جو نياپو ڏٺو ۽ چيو ته اهي توهان جي خلاف گڏ آهن. انهن کان ڊڄو، پر سندن ڳالهين پٺي مسلمانن جو ايمان وڌي ويو ۽ انهن حَسْبُنَا اللَّهُ وَنِعْمَ الْوَكِيلُ (الله اسانجي لاءِ ڪافي آهي ۽ اهو ئي وڏو ڪارساز آهي) چيو. اهڙيءَ طرح اهي الله جي نعمت ۽ فضل سان موٽيا. کين ڪا تڪليف نه رسي ۽ انهن الله جي فرمانبرداري ۽ پيروي ڪئي ۽ الله وڏي فضل وارو آهي.

پاڻ سڳورا ﷺ آچر جي ڏينهن حمراء الاسد ڏانهن روانا ٿيا هئا. سومر، اڱارو ۽ اربع يعني 9، 10 ۽ 11 شوال سنه 3 هه تائين اتي رهيا، ان کانپوءِ مديني موٽيا. مديني موٽڻ کان اڳ ابو عزه جمحي سندن هٿ چڙهي ويو. هي اهو ئي ماڻهو آهي، جيڪو بدر ۾ قيدي بنجڻ کانپوءِ سندس غريبي ۽ گهڻين نياڻين ڪري ان شرط تي بنا معاوضي جي ڇڏيو ويو هو ته هو پاڻ سڳورن ﷺ جي خلاف ڪنهن جو به ساٿ نه ڏيندو. پر هن واعدو نه پاڙيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن جي خلاف شعر لکي ماڻهن کي پڙڪايائين. جنهن جو ذڪر گذريل صفحن ۾ اچي چڪو آهي. هو مسلمانن سان وڙهڻ لاءِ پاڻ احد واري لڙائيءَ ۾ آيو. جڏهن جهلجي پيو ته چوڻ لڳو ته: "محمد ﷺ! منهنجي خطا در گذر ڪر. مون تي احسان ڪر ۽ منهنجين نياڻين ڪارڻ مون کي ڇڏي ڏي. آئون واعدو ٿو ڪريان ته ٻيهر اهڙي حرڪت نه ڪندس." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته هاڻي ائين نه ٿيندو ته تون مڪي وڃي سينو نوڪي چوين ته مون محمد ﷺ کي ٻه ڀيرا ڏوڪو ڏنو آهي. "مؤمن هڪ ئي سوراخ مان ٻه ڀيرا نٿو ڏنگجي سگهي. ان کانپوءِ حضرت زبير رضی اللہ عنہ يا حضرت عاصم بن ثابت رضی اللہ عنہ کي حڪم ڪيائون ۽ ان سندس ڪنڌ کڻي ڇڏيو.

اهڙيءَ طرح ئي مڪي جو هڪ جاسوس به ماريو ويو. سندس نالو معاويه بن مغيره بن ابي العاص هو ۽ اهو عبدالملڪ بن مروان جو نانو هو. اهو ان طرح هٿ چڙهيو جو جڏهن احد واري ڏينهن مشرڪ موٽي ويا ته هو پنهنجي سوٽ حضرت عثمان سان ملڻ آيو. حضرت عثمان رضی اللہ عنہ سندس لاءِ

پاڻ سڳورن ﷺ کان پناهه گهري. پاڻ سڳورن ﷺ ان شرط تي امان ڏني ته جيڪڏهن پاڻ تن ڏينهن کانپوءِ به ڏنو ويو ته ماريو ويندو. پر جڏهن مدينو اسلامي لشڪر کان خالي ٿي ويو ته هيءُ همراھ قريشن لاءِ جاسوسي ڪرڻ خاطر تن ڏينهن کان مٿي رهي پيو ۽ جڏهن لشڪر موتي آيو ته پڇڻ جي ڪوشش ڪيائين. پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت زيد بن حارثه رضي الله عنه ۽ حضرت عمار بن ياسر رضي الله عنه کي حڪم ڪيو ۽ انهن سندس پيڇو ڪري کيس ماري ڇڏيو. (1)

حمراء الاسد واري غزوي جو ذڪر جيتوڻيڪ ڌار ڪيو وڃي ٿو پر حقيقت ۾ اها ڪا ڌار جنگ نه هئي، پر احد واري جنگ جو ئي حصو هئي.

احد واري جنگ جو اڀتار:- اها آهي احد واري جنگ. جنهن جي پڄاڻيءَ تي وڏا وڏا بحث ڪيا ويا آهن ته ان کي مسلمانن جي هار سمجهجي يا نه؟ جيستائين حقيقت جو سوال آهي ته ان ۾ شڪ نه آهي ته جنگ جي ٻئي مرحلي ۾ مشرڪن سرسي ماڻي ۽ جنگ جو ميدان سندن هٿ ۾ هو. جاني نقصان به مسلمانن جو وڌيڪ ٿيو ۽ ڏاڍو پوائتو ٿيو ۽ مسلمانن جو گهٽ ۾ گهٽ هڪ گروهه هار مڃي وٺي پڳو ۽ صورتحال مڪي جي لشڪر جي هٿ ۾ رهي، پر ان هوندي به ڪي ڳالهيون اهڙيون آهن، جن جي ڪري اسين هن جنگ کي مشرڪن جي سوڀ نٿا مڃي سگهون.

هڪ اهو ته اها ڳالهه پڪي آهي ته مڪي جو لشڪر، مسلمانن جي ڪيمپ تي قبضو نه ڪري سگهيو هو ۽ مديني جي لشڪر جو وڏو حصو وٺ پڪڙي ۽ افراتفريءَ هوندي به پڳو ڪونه هو، پر وڏيءَ دليريءَ سان وڙهندي پنهنجي سالار وٽ اچي گڏ ٿيو ۽ مسلمانن جو پاسو ايترو به هلڪو نه ٿيو هو جو مڪي جو لشڪر سندن ڪيڊ لڳي سگهي. ان کانسواءِ مشرڪ ڪو هڪ به مسلمان جهلي نه سگهيا ۽ نه ئي ڪافرن غنيمت جو مال هٿ ڪيو. مٿان وري اهي جنگ جي ٽئي مرحلي لاءِ به تيار نه ٿيا، جڏهن ته اسلامي لشڪر اڃا پنهنجي ڪيمپ ۾ ئي هو. ان کانسواءِ ڪافر جنگ جي ميدان ۾ هڪ ڏينهن به نه ترسيا، جڏهن ته ان زماني ۾ فاتحن جو اهو ئي دستور هو. ڪافر هڪدم موتي ويا ۽ مسلمانن کان اڳ ميدان ڇڏيائون. اهو به ته کين ٻار ٻچا قيدي ڪرڻ ۽ مال لٽڻ لاءِ مديني ۾ گهٽڙ جي همت ئي ڪانه ٿي. جڏهن ته شهر کائڻ ٿوري پنڌ تي هو ۽ فوج کان پوريءَ ريت خالي ۽ صفا کليل هو ۽ رستي ۾ ڪابه جهل پل ڪانه هئي.

انهن سڀني ڳالهين جو مطلب اهو ٿو نڪري ته قريشن کي وڏ ۾ وڏ اهو فائدو ٿيو ته انهن وجهه وٺي مسلمانن کي ٿورو چيهو رسايو. باقي اسلامي لشڪر کي گهيري ۾ وٺڻ کانپوءِ ان کي

<sup>1</sup> - احد ۽ حمراء الاسد وارين جنگين جو تفصيل ابن هشام (60/2 \_ 129)، زاد المعاد (91/2 \_ 108)، فتح الباري مع صحيح بخاري (345/7 \_ 377)، مختصر السيرة، شيخ عبدالله (ص: 242 \_ 257) تان گڏ ڪيو ويو آهي.

پوريءَ طرح تھس نھس ڪرڻ جو جيڪو فائدو کين وٺڻو هو، ان ۾ ناڪام رهيا ۽ اسلامي لشڪر ڪجهه وڌيڪ نقصان رسڻ کانپوءِ به گھيرو توڙي نڪري ويو ۽ اهڙو نقصان ته خود فاتحن کي به گھڻائي پيرا رسيو. ان ڪري هن معاملي کي مشرڪن جي سوڀ نٿو چئي سگھجي.

موٽڻ لاءِ ابوسفينان جي تڪڙ ڪرڻ به ان ڳالهه ڏانهن اشارو ڪري ٿي ته کيس ڊپ هو ته جيڪر جنگ جوڻڻ جو مرحلو شروع ٿيو ته سندس لشڪر کي نقصان ۽ هار جو منهن ڏسڻو پوندو. ان ڳالهه جي وڌيڪ تائيد ابوسفينان جي ان موقف مان ٿئي ٿي، جيڪو غزوه حمراء الاسد جي سلسلي ۾ ڄاڻايل آهي.

اهڙيءَ حالت ۾ اسان هن جنگ کي ڪنهن هڪ ڌر جي سوڀ يا هار سمجھڻ بدران غير فيصلاھتي جنگ چئي سگھون ٿا، جنهن ۾ هر ڌر ڪاميابي ۽ نقصان مان پنهنجو حصو ماڻيو هو. پوءِ جنگ جي ميدان مان ڀڄڻ کانسواءِ ۽ پنهنجي ڪيمپ کي دشمن جي قبضي ۾ ڇڏڻ کانسواءِ ويڙهه کان پاسيرو ٿي ويا ۽ غير فيصلاھتي ويڙهه ان کي ئي چئبو آهي. ان ڏانهن ئي قرآن ۾ اشارو ڪيل آهي ته:

﴿وَلَا تَهِنُوا فِي ابْتِغَاءِ الْقَوْمِ إِنْ تَكُونُوا تَأْلَمُونَ فَإِنَّهُمْ يَأْلَمُونَ كَمَا تَأْلَمُونَ وَتَرْجُونَ مِنَ اللَّهِ مَا لَا يَرْجُونَ...﴾ (104) (النساء)

” ۽ ڪافرن جي ڳولا ۾ سستي نه ڪريو. جيڪڏهن اوهين ڏکوئبا آهيو ته اهي به اوهان جهڙا ڏکوئبا آهن ۽ اوهين الله ۾ اها اميد ٿا رکو جا اميد انهن کي نه آهي.“

هن آيت ۾ الله تعاليٰ، تڪليف رسائڻ ۽ تڪليف محسوس ڪرڻ ۾ هڪ لشڪر کي ٻئي جهڙو ئي ٻڌايو آهي، جنهن جو مطلب اهو آهي ته ٻئي ڌرين برابر ٿيون ۽ ٻئي ڌرين ان طرح واپس موٽيون جو انهن مان ڪير به سگھو ٿي نه سگھيو هو.

**هن جنگ تي قرآن جو تبصرو:-** پوءِ قرآن مجيد ۾ هن ويڙهه جي هڪ هڪ مرحلي تي روشني وڌي وئي ۽ ٽيڪاٽيٽي (تبصرو) ڪندي اهي ڪارڻ ڏسيا ويا، جن جي ڪري مسلمانن کي هيڏو سارو چيهو رسيو هو ۽ ٻڌايو ويو ته اهڙيءَ طرح جي فيصلاھتن موقعن تي ايمان وارا ۽ هيءَ امت (جيڪا بين جي پيٽ ۾ خير الامهه سڏجي ٿي) جنهن اعليٰ مقصدن لاءِ جوڙي وئي آهي، ان جي لحاظ کان به ايمان وارن مختلف گروهن ۾ ڪهڙيون ڪهڙيون ڪمزوريون وڃي بچيون آهن.

اهڙيءَ طرح قرآن مجيد، منافقن جي موقف جو ڀول ڪولي ڇڏيو ۽ سندن دلين ۾ الله ۽ رسول خلاف لڪل ڪيني کي ظاهر ڪري وڌو ۽ سادڙن مسلمانن ۾ انهن منافقن ۽ سندن يهودي ڀائرن،

جيڪي وسوسا ڦهلائي ڇڏيا هئا، انهن جو رد ڪيو ۽ انهن حڪمتن ۽ مقصدن ڏانهن اشارو ڪيو، جيڪي هن ويڙهه ۾ حاصل ٿيا هئا.

هن ويڙهه بابت آل عمران جون سنڀ آيتون لٿيون. سڀ کان پهرين ويڙهه جي پهرئين مرحلي جو ذڪر ڪيو ويو ۽ ارشاد ٿيو ته:

﴿وَإِذْ غَدَوْتَ مِنْ أَهْلِكَ تُبَوِّئُ الْمُؤْمِنِينَ مَقَاعِدَ لِلْقِتَالِ...﴾ (121) ﴿آل عمران﴾

”اي پيغمبر ياد ڪر (جنهن مهل (تون) پنهنجي گهر مان سوڀرو نڪتئين جو مؤمنن کي جنگ لاءِ مورچن تي وهاريئي ٿي.“

پوءِ آخر ۾ هن ويڙهه جي نتيجن ۽ حڪمت جو تفصيلي ايتار ڪيو ويو. ارشاد ٿيو ته:

﴿مَا كَانَ اللَّهُ لِيَذَرَ الْمُؤْمِنِينَ عَلَىٰ مَا أَنْتُمْ عَلَيْهِ حَتَّىٰ يَمِيزَ الْخَبِيثَ مِنَ الطَّيِّبِ وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُطْلِعَكُمْ عَلَى الْغَيْبِ وَلَكِنَّ اللَّهَ يَجْتَبِيٰ مِنْ رُسُلِهِ مَنْ يَشَاءُ فَأَمِنُوا بِاللَّهِ وَرُسُلِهِ وَإِنْ تُؤْمِنُوا وَتَتَّقُوا فَلَكُمْ أَجْرٌ عَظِيمٌ﴾ (179) ﴿آل عمران﴾

”اي منافقو! الله کي نٿو جڳائي ته جنهن تي اوهين آهيو، تنهن تي مؤمنن کي (به) ڇڏي ڏي ته پليت کي پاڪ کان ڌار ڪري ۽ الله کي نٿو جڳائي ته اوهان کي ڳجهه تي واقف ڪري پر الله پنهنجن پيغمبرن مان جنهن کي گهرندو آهي، تنهن کي چونڊيندو آهي. پوءِ الله ۽ سندس پيغمبرن کي مڃيو ۽ جيڪڏهن (اوهين) مڃيندو ۽ ڊڄندو ته اوهان لاءِ وڏو اجر آهي.“

**جنگ بابت الله جون حڪمتون ۽ مقصد:** - علامه ابن قير هن موضوع تي تفصيل سان

لکيو آهي. (1) حافظ ابن حجر لکي ٿو ته عالم چون ٿا ته احد جي لڙائي ۽ ان ۾ مسلمانن کي پهتل ٿيڻ ۾ الله جي حڪمت ۽ فائدو هو. جهڙوڪ مسلمانن کي گناهن جي خراب پڄاڻي ۽ غلط ڪارين جي نقصانن کان آگاهه ڪرڻ. ڇو ته تيرانداز کي پنهنجي مرڪز تي ڄمي بيٺو جو حڪم پاڻ سڳورن ﷺ ڏنو هو. انهن حڪم نه مڃيندي مرڪز ڇڏي ڏنو. (انڪري ئي کين نقصان رسيو) هڪ حڪمت، پيغمبرن جي اها سنت ظاهر ڪرڻ هو ته پهرين اهي مصيبت ۾ ڦاسايا وڃن ٿا، پوءِ نيٺ کين سرسي ملي ٿي ۽ ان ۾ اها حڪمت به لڪيل آهي ته جيڪڏهن کين رڳو سوڀون ملنديون ته ايمان وارن ۾ اهڙا ماڻهو به گهڻا ايندا، جيڪي ايمان وارا ناهن. پوءِ سڄي ۽ ڪوڙي ۾ پيٽ نه ٿي سگهندي ۽ جيڪڏهن سدائين پيا هارائيندا ته سندن بعثت جو مقصد ئي پورو نه ٿي سگهندو. ان ڪري چڱائي ان ۾ آهي ته ٻئي حالتون ٿي گذرن ته جيئن ڪوڙي ۽ سڄي ۾ پيٽ ڪري سگهجي. ڇو ته منافقن جي ڪٽ، مسلمانن کان لڪيل هئي. جڏهن اهو واقعو ٿي گذريو ۽ منافقن، پنهنجي اندر جي اوڀر

<sup>1</sup> - زاد المعاد (99/2\_108).

ڪڍي ته مسلمانن کي ڀتو پئجي ويو ته سندن ئي گهر ۾ ويڙي وينل آهن. ان ڪري مسلمان. ساڻن منهن ڏيڻ لاءِ هوشيار ۽ تيار ٿي ويا.

هڪ حڪمت اها به هئي ته ڪن جڳهين تي مدد پهچڻ ۾ دير ٿيڻ سان ٺهڻائي ۽ عاجزي پيدا ٿئي ٿي ۽ نفس جي وڏائي ختم ٿئي ٿي. تنهنڪري جڏهن ايمان وارا مصيبت ۾ ڦاسا ته سهڻ جو مظاهرو ڪيائون، باقي منافقن ۾ واويلا مچي وئي.

هڪ حڪمت اها به هئي ته الله، ايمان وارن لاءِ پنهنجي انعامن جي گهر (يعني جنت) ۾ ڪجهه اهڙا درجا به رکيا هئا، جن تائين سندن عملن جي پهچ ڪانه ٿي ٿئي. تنهنڪري تڪليفن ذريعي انهن تائين پهچ ممڪن ڪئي وئي.

هڪ ٻي حڪمت اها به هئي ته شهادت، ولين جو سڀ کان مٿانهون مرتبو آهي. تنهنڪري اهو مرتبو کين ڏنو ويو.

هڪ ٻي حڪمت اها به هئي ته الله پنهنجن دشمنن کي ناس ڪرڻ تي گهريو، ان ڪري اهي سبب پيدا ڪيائين، يعني ڪفر ۽ ظلم ۽ الله جي دوستن کي حد کان وڌيڪ اهڻج پهچائڻ واري سرڪشي (پوءِ ان ئي عمل جي ڪارڻ) ايمان وارن جا گناهه ڏوئي ڇڏيائين ۽ ڪافرن کي هلاڪ ۽ برباد ڪيائين.<sup>(1)</sup>

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - فتح الباري (347/7).



## احد کان پوءِ جون فوجي مهمون

مسلمانن جي شهرت ۽ ساڪ تي احد جي ناڪاميءَ جو ڏاڍو برو اثر پيو. مخالفن جي دلين مان سندن ڊپ نڪري ويو. ان ڪري ايمان وارن جي اندرين ۽ ٻاهرين مشڪلاتن ۾ واڌارو اچي ويو. مديني ۾ چؤطرف کان خطرا ڏسڻ ۾ پئي آيا. يهودي، ڪپتيا (منافق) ۽ بدو پڌري پٽ دشمنيءَ تي لهي آيا ۽ هرگروه مسلمانن کي ڇيهو رسائڻ جي ڪوشش ڪئي. ايسٽائين جو اهي سمجهڻ لڳا ته اهي مسلمانن کي ختم ڪري سگهن ٿا. تنهنڪري، جنگ کي اجا به مهينا به نه گذريا هئا جو بنو اسد، مديني تي حملو ڪرڻ جي تياري ڪئي. پوءِ صفر سن 4 هـ ۾ عضل ۽ قاره جي قبيلن هڪ اهڙي نڳيءَ واري ڇال هلي، جنهن ۾ ڏهه اصحابي سڳورا شهيد ٿي ويا ۽ ان ئي مهيني ۾ بنو عامر جي رئيس ساڳئي قسمر جي دولاب سان ستر صحابن کي شهيد ڪرائي ڇڏيو. اهو حادثو بئرمعونه جي نالي سان مشهور آهي. ان دوران بنو نضير وارا به کلي دشمنيءَ تي لهي آيا هئا. ايسٽائين جو انهن ربيع الاول سن 4 هـ ۾ پاڻ سڳورن کي ئي شهيد ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي. هوڏانهن بنوغطفان جو حوصلو ايترو وڌي ويو هو جو انهن جمادي الاول سن 4 هـ ۾ مديني تي ڪاهڻ جو ارادو ڪيو.

مطلب ته مسلمانن جي جيڪا ساڪ احد واري جنگ ۾ خراب ٿي هئي، ان جي ڪارڻ مسلمان ڊگهي عرصي تائين لاڳيتو هنگامي حالتن ۾ رهيا. پر اها پاڻ سڳورن عليه السلام جي مثالي ڏاهپ هئي، جنهن سڀني خطرن جو منهن موڙي، مسلمانن جو دٻڊبو وري قائم ڪيو ۽ کين ٻيهر عزت ۽ مرتبي جي مٿاهين جڳهه تي پهچايو. ان سلسلي ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام جو سڀ کان پهريون قدم حمراء الاسد تائين مشرڪن جي پويان لڳڻ هو. ان ڪارروائيءَ سان پاڻ سڳورن عليه السلام جي لشڪر جي عزت بحال ٿي وئي. ڇو ته اهو اهڙو ته پروقار ۽ دليرائو جنگي قدم هو جو مخالفن ۽ خاص طور تي منافقن ۽ يهودين جا وات حيرت کان ڦاٽي ويا. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام لڳاتار اهڙيون ته جنگي ڪارروايون ڪيون جو ان سان نه رڳو مسلمانن جو اڳوڻو دٻڊبو موٽي آيو، پر ان ۾ واڌارو به ٿيو. ايندڙ صفحن ۾ ان بابت ئي بيان اچي رهيو آهي.

1. سريه ابو سلمه رضي الله عنه :- احد واري لڙائيءَ کانپوءِ مسلمانن خلاف سڀ کان پهرين بنو اسد بن خزيمه جو قبيلو اٿيو. ان بابت مديني ۾ اها ڄاڻ پهتي ته خويلد جا ٻه پٽ، طلحه ۽ سلمه پنهنجي قوم ۽ پنهنجن ساٿارين سان گڏ بنو اسد کي پاڻ سڳورن عليه السلام تي ڪاهڻ جي دعوت ڏيندا وٽن پيا. پاڻ سڳورن عليه السلام تڪڙ ۾ ڏيڍ سؤ انصارين ۽ مهاجرن جو هڪ جتو تيار ڪيو ۽ حضرت ابو سلمه رضي الله عنه کي ان جو جهنڊو ڏئي سڀه سالار ڪري موڪليو. حضرت ابو سلمه رضي الله عنه، بنو اسد جي چرپر ڪرڻ

کان اڳ ئي انهن تي ايترو اوچتو حملو ڪيو جو اهي هيڏي هوڏي پڇي ويا. مسلمانن، سندن اٺن ۽ بڪرين کي جهلي ورتو ۽ صحيح سلامت مديني موٽيا. کين دويدو مقابلو به نه ڪرڻو پيو.

اهو سريو، محرم سنه 4 هـ جو چند ڏسڻ شرط موڪليو ويو هو. موٽڻ کانپوءِ س حضرت

ابو سلمه رضي الله عنه کي احد واري لڙائيءَ ۾ لڳل گهٽائي پيو ۽ ان ڪارڻ پاڻ جلدئي گذاري ويو. (1)

2. عبدالله بن انيس رضي الله عنه وارو سريو: - ان ئي مهيني محرم سنه 4 هـ جي 5 تاريخ تي اها ڄاڻ پهتي ته خالد بن سفيان هڏي، مسلمانن تي ڪاهڻ لاءِ فوج گڏ ڪري رهيو آهي. پاڻ سڳورن عليه السلام ان کي منهن ڏيڻ لاءِ حضرت عبدالله بن انيس رضي الله عنه کي موڪليو.

عبدالله بن انيس رضي الله عنه مديني کان 18 ڏينهن ٻاهر رهي موٽيو. پاڻ، خالد کي ماري سندس سسي ساڻ کڻي آيو هو. پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهچي اها سسي پاڻ سڳورن عليه السلام آڏو پيش ڪيائين. پاڻ سڳورن عليه السلام کين هڪ لٺ ڏئي فرمايو ته: اها منهنجي ۽ تنهنجي وچ ۾ قيامت جي ڏينهن نشاني رهندي. تنهن کانپوءِ جڏهن سندن وفات جو وقت ويجهو آيو ته پاڻ وصيت ڪيائين ته اها لٺ مون سان گڏ ڪفن ۾ ويڙهي وڃي. (2)

3. رجيع وارو حادثو: - ان ئي سال سن 4 هـ جي صفر مهيني ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ عضل ۽

قاره وارن مان ڪي ماڻهو آيا ۽ چيائون ته: انهن ۾ اسلام جو چؤبول متل آهي، تنهنڪري ڪجهه ماڻهو ساڻن گڏ دين سيکارڻ ۽ قرآن پڙهائڻ لاءِ موڪليا وڃن. پاڻ سڳورن عليه السلام (ابن اسحاق جي بيان مطابق) ڇهه ڄڻا يا (صحيح بخاريءَ جي روايت مطابق) ڏهه ڄڻا موڪليا. ابن اسحاق جي مطابق ته مرثد بن ابي مرثد غنوي کي ۽ صحيح بخاريءَ مطابق عاصر بن عمر بن الخطاب رضي الله عنه جي ناني حضرت عاصر بن ثابت رضي الله عنه کي سندن امير ڪري موڪليو. جڏهن اهي رايع ۽ جدي جي وچ ۾، هذيل قبيلي جي رجيع نالي چشمي وٽ پهتا ته انهن تي عضل ۽ قاره جي مٿي ڄاڻايل ماڻهن، هذيل قبيلي جي هڪ شاخ بنو لحيان وارن کان حملو ڪرايو ۽ بنو لحيان جا اٽڪل هڪ سو تيراندا سندن پويان لڳا ۽ پيرا کڻي انهن تائين پهتا. اهي اصحابي سڳورا رضي الله عنهم هڪ دڙي تي وڃي لڪا. بنو لحيان وارن کين گهيري ۾ وٺي چيو ته "توهان سان عهد ٿا ڪريون ته جيڪڏهن اسان وٽ لهي ايندو ته اسين توهان جو ڪوبه ماڻهو نه مارينداسين." حضرت عاصر رضي الله عنه لهڻ کان انڪار ڪيو ۽ پنهنجن ساٿين سان گڏ، ساڻن ويڙهه ڪئي. نيٺ تيرن جي وسڪار ڪري ست ڄڻا شهيد ٿي ويا ۽ رڳو ٽي ڄڻا، حضرت خبيب رضي الله عنه، زيد بن دثنه رضي الله عنه ۽ هڪ ٻيو صحابي وڃي بچيا. بنو

<sup>1</sup> - زاد المعاد (108/2).

<sup>2</sup> - زاد المعاد (109/2) - ابن هشام (619/2، 620).

لحيان وارن وري پنهنجي آچ ورجائي ۽ ان تي ٿئي اصحابي سڳورا هيٺ لهي آيا، پر هنن وعدي خلافي ڪندي کين رسي سان ٻڏي ڇڏيو. ان تي ٽئين اصحابي سڳوري اهو چوندي ته اها پهرين وعدي خلافي آهي، ساڻن وڃڻ کان انڪار ڪيو. انهن کيس گيهلي وٺي وڃڻ جي ڪوشش ڪئي پر ڪامياب نه ٿيا ته کين شهيد ڪري ڇڏيائون ۽ حضرت خبيب رضي الله عنه ۽ زيد رضي الله عنه کي مڪي وڃي وڪيائون. اهي ٻئي اصحابي سڳورا رضي الله عنهم بدر واري ڏينهن مڪي جي سردارن کي مارڻ ڪري گهريل هئا.

حضرت خبيب رضي الله عنه ڪجهه ڏينهن مڪي وارن وٽ قيدي رهيو، پوءِ مڪي وارن کين مارڻ جي خيال کان کين حرم کان ٻاهر تنعيم آندو. جڏهن سوريءَ تي چاڙهڻ لڳا ته ان فرمايو ته: "مون کي ڇڏيو ته ٿورو ٻه رڪعتون نماز پڙهي وٺان." مشرڪن، کين ڇڏيو ۽ ان ٻه رڪعتون نماز پڙهي جڏهن سلام ورايائون ته چيائين ته: "الله جو قسم! توهان ائين نه سمجهو ها ته آئون جيڪي ڪجهه ڪريان پيو، سو ڊپ کان پيو ڪريان ته آئون اڃا ڊيگهه ڪريان ها." ان کانپوءِ چيائين ته: "يا الله! هنن کي هڪ هڪ ڪري ڳڻ. پوءِ کين اڪيلو ڪري مارجان ۽ انهن مان ڪنهن کي به نه بخشجان." پوءِ هي شهر پڙهيائين.

|  |  |
|--|--|
| لَقَدْ أَجْمَعَ الْأَحْزَابُ حَوْلِي وَالْبُؤَا  | قَبَائِلُهُمْ وَاسْتَجْمَعُوا كُلَّ مَجْمَعٍ     |
| وَقَدْ قَرَّبُوا أَبْنَاءَهُمْ وَنِسَاءَهُمْ     | وَقُرَّبَتْ مِنْ جِدْعٍ طَوِيلٍ مُمْتَعٍ         |
| إِلَى اللَّهِ أَشْكُو غُرْبَتِي بَعْدَ كُرْبَتِي | وَمَا أَرْصَدَ الْأَحْزَابُ لِي عِنْدَ مَضْرَعِي |
| فَذَا الْعَرْشِ صَبْرَتِي عَلَى مَا يُرَادُ بِي  | فَقَدْ بَصَعُوا لِحْمِي وَقَدْ يَأْسَ مَطْمَعِي  |
| وَقَدْ خَيْرُونِي الْكُفْرَ وَالْمَوْتَ دُونَهُ  | فَقَدْ ذَرَفَتْ عَيْنَايَ مِنْ غَيْرِ مَجْرَعٍ   |
| وَلَسْتُ أَبَالِي حِينَ أُقْتَلُ مُسْلِمًا       | عَلَى أَيِّ شَقٍّ كَانَ فِي اللَّهِ مَضْجَعِي    |
| وَدَلِكُ فِي ذَاتِ إِلَهِهِ وَإِنْ يَشَأْ        | يُبَارِكُ عَلَيَّ أَوْصَالَ شَلُو مُمْزَعٍ       |

ترجمو:

ان کانپوءِ ابوسفیان کين چيو ته: "ڇا توکي اها ڳالهه ڪانه وٺندي ته (تنهنجي بدران) محمد صلى الله عليه وسلم اسان وٽ هجي ها. اسين کيس ماريون ها ۽ تون پنهنجن ٻارن ٻچن سان هجين ها؟" تنهن تي پاڻ ورائيائين ته: "نه، والله، مون کي ته اهو به گوارا ناهي ته آئون پنهنجن ٻارن ٻچن سان هجان ۽ (ان جي بدران) محمد صلى الله عليه وسلم جتي آهي اتي کين ڪو ڪنڊو به لڳي پوي ۽ اهو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي ايڏا رسائي."

ان کانپوءِ مشرڪن کين سوريءَ تي چاڙهيو ۽ سندن لاش جي نگرانيءَ لاءِ هڪ ڄڻو پهري تي بيهاري ويا پر رات جو حضرت عمرو بن اميه ضمري رضي الله عنه آيو ۽ وجهه وٺي لاش کي کڻي ويو ۽ ان

ڪي پوري ڇڏيائين. حضرت خبيب رضي الله عنه کي مارڻ وارو عقبه بن حارث هو. حضرت خبيب رضي الله عنه سندس پيءُ حارث کي بدر جي جنگ ۾ ماريو هو.

صحيح بخاري ۾ آهي ته حضرت خبيب رضي الله عنه پهريون بزرگ هو جنهن مارڻ مهل ٻه رڪعتون نماز پڙهيون هيون. ان کي قيد ۾ انگور کائيندي ڏٺو ويو. جڏهن ته انهن ڏينهن ۾ مڪي ۾ ڪجهيون به ڪو نه ٿي مليون.

بيو اصحابي سڳورو، جيڪو هن واقعي ۾ جهليو ويو، يعني حضرت زيد بن دثنه رضي الله عنه، ان کي صفوان بن اميه خريدي پنهنجي پيءُ جي پالند ۾ ماري ڇڏيو.

قريشن، حضرت عاصم رضي الله عنه جي جسم جو ڪوبه ٽڪرو سڃاڻپ ڪرڻ لاءِ هٿ ڪرڻ لاءِ ماڻهو موڪليا. ڇو ته ان، بدر واري لڙائيءَ ۾ قريشن جي ڪنهن وڏي ماڻهوءَ کي ماريو هو، پر الله تعاليٰ مٿس جينين جو پهرو ڏياري ڇڏيو، جن قريش جي ماڻهن کان سندن لاش کي بچايو ۽ اهي ڪو حصو به هٿ ڪري نه سگهيا. اصل ۾ حضرت عاصم رضي الله عنه، الله تعاليٰ اها دعا گهري هئي ته نه ڪو ڪين ڪو مشرڪ ڇهندو ۽ نه ئي پاڻ ڪنهن مشرڪ کي ڇهندو. پوءِ جڏهن حضرت عمر رضي الله عنه کي ان واقعي جي ڄاڻ ملي ته فرمائيندو هو ته الله تعاليٰ مؤمنن بانهي جي حفاظت سندس مرڻ کانپوءِ به ائين ڪري ٿو، جيئن زندگيءَ ۾ ڪندو آهي.<sup>(1)</sup>

4. بئر معونه وارو الميو: - جنهن مهيني ربيع وارو حادثو ٿيو، ان مهيني ۾ ئي بئر معونه وارو الميو به ٿي گذريو، جيڪو ربيع واري حادثي کان وڌيڪ سخت هو.

ٿيو هيئن جو ابو براء عامر بن مالڪ، جيڪو نيزن سان ڪيڏيندڙ (مُلاَعِبُ الْأَسْتَةِ) جي نالي سان مشهور هو، مديني ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ حاضر ٿيو. پاڻ سڳورن عليه السلام کيس اسلام جي دعوت ڏني. هن اسلام قبوليو ته ڪونه پر انڪار به نه ڪيو. هن چيو ته: "يا رسول الله صلي الله عليه وسلم! جيڪڏهن توهان پنهنجن اصحابين کي دين جي دعوت ڏيڻ لاءِ نجدين وٽ موڪليو ته آئون سمجهان ٿو ته اهي توهان جي دعوت قبوليندا." پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "مون کي پنهنجن اصحابين بابت نجدين کان خطرو ٿو محسوس ٿئي." ابو براء چيو ته اهي منهنجي پناهه ۾ هوندا." ابن اسحاق جي بيان مطابق ان تي پاڻ سڳورن عليه السلام چاليهه ڄڻا، ۽ صحيح بخاريءَ جي روايت مطابق ستر ڄڻا ساڻس گڏ روانا ڪيا. ستر واري روايت وڌيڪ صحيح آهي ۽ منذر بن عمروءَ کي، جيڪو بنو ساعده منجهان هو ۽ "مُعْتَقُ لِمَوْتِ" موت جي لاءِ آزاد ڪيل جي لقب سان مشهور هو انهن مٿان امير مقرر ڪيو. اهي ماڻهو سڀئي وڏي مرتبي وارا فاضل ۽ قاري هئا. ڏينهن جو ڪاٺيون ڪري اجوري مان اصحاب

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/169 کان 179) زاد المعاد (2/109) صحيح بخاري (2/568، 569، 585).

صفه (مسجد نبوي ۾. رهندڙ صحابن جو گروهه) لاءِ کاڌو خوراڪ وٺندا هئا ۽ قرآن پڙهندا ۽ پڙهائيندا هئا ۽ رات جو الله جي عبادت ڪندا هئا. اهي هلندي هلندي اچي معونه جي کوه وٽ پهتا. اهو کوه بنو عامر ۽ حره بني سليم جي وچ ۾ هو. اتي لهڻ کانپوءِ انهن اصحابين، امر سليم جي ڀاءُ حرام بن ملحان رضي الله عنه کي پاڻ سڳورن صلوات الله عليه جو خط ڏئي الله جي دشمن عامر بن طفيل وٽ موڪليو. پر هن خط ڏٺو به ڪونه ۽ هڪ ماڻهوءَ کي اشارو ڪيائين، جنهن حضرت حرام رضي الله عنه کي پٺيان ايڏو ته زور سان نيزو هڻي ڪڍيو جو آروپار نڪري ويو. رت ڏسي حضرت حرام رضي الله عنه چيو ته: "الله اڪبر ڪعبي جي رب جو قسم آئون ڪامياب ٿيس."

ان کانپوءِ هڪدم الله جي دشمن عامر، ٻين صحابه سڳورن تي حملو ڪرڻ لاءِ پنهنجي قبيلي بنو عامر کي سڏ ڏنو. پر انهن ابو براء جي ڏنل پناهه جي ڪري سندس ڳالهه تي ڌيان نه ڏنو. اتان مايوس ٿي هن بنو سليم وارن کي سڏ ڏنو. بنو سليم جي ٽن قبيلن، عصبه، رعل ۽ ذڪوان سندس سڏ ورايو ۽ تڪڙو اچي اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي گهيري ۾ ورتائون. موت ۾ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم به ويڙهه ڪئي پر سڀ شهيد ٿي ويا. باقي وڃي حضرت ڪعب بن زيد بن نجار رضي الله عنه بچيو، جنهن کي شهيدن جي وچ ۾ جيئرو لڏو ويو ۽ پاڻ خندق واري جنگ تائين حيات هو. ان کانسواءِ ٻه ٻيا اصحابي سڳورا، حضرت عمرو بن اميه ضمري رضي الله عنه ۽ حضرت منذر بن عقبه بن عامر رضي الله عنه اٺ چارڻ ويا هئا. انهن سانحي واري جڳهه تي پڪي اڏامندي ڏني ته تڪڙا تڪڙا اتي پهتا. حضرت منذر رضي الله عنه ته پنهنجن ساٿين سان گڏ وڙهندي شهيد ٿي ويو باقي حضرت عمرو بن اميه ضمري کي قيدي ڪيو ويو. پر جڏهن پتو پيو ته سندن تعلق مضر قبيلي سان آهي ته عامر سندس نرڙ جا وار ڪٽائي، پنهنجي ماءُ جي پاران، جنهن هڪ غلام کي آجو ڪرڻ جي باس باسي هئي، آزاد ڪري ڇڏيو.

حضرت عمرو بن اميه ضمري رضي الله عنه هيءَ ڏکوئيندڙ خبر کڻي مديني پهتو، جنهن سان چڻ احد واري جنگ جو وقت اڪڙي پيو. هي واقعو ته ان لحاظ کان به ڏکوئيندڙ هو ته احد جا شهيد ته دوڊو ويڙهه ۾ ماري ويا هئا، پر هي ويچارا ته هڪ شرمناڪ غداريءَ جي ڪري ماري ويا هئا.

حضرت عمرو رضي الله عنه موتڻ مهل قنات جي واديءَ جي چيڙي تي قرقره وٽ پهتو ته هڪ وڻ هيٺ ساھي پتڻ لاءِ لهي پيو. اتي ئي بنو ڪلاب جا ٻه ماڻهو به اچي لٿا. جڏهن اهي ٻئي سمهي رهيا ته حضرت عمرو بن اميه رضي الله عنه ٻنهي کي ماري وڌو. هن ڀانيو ته پاڻ پنهنجن ساٿين جو پلانڊ ڪري رهيو آهي. جڏهن ته اهي ٻئي پاڻ سڳورن صلوات الله عليه جا حليف هئا، پر حضرت عمرو رضي الله عنه نٿي ڄاتو. تنهن کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورن صلوات الله عليه کي پنهنجي ڪئي جي ڄاڻ ڏني ته پاڻ سڳورن صلوات الله عليه فرمايو ته:

تو اهڙن بن ماڻهن کي ماريو آهي، جن جي ديت مون کي ضرور پرڻي پوندي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ، مسلمانن ۽ سندن حليف يهودين کان ديت گڏ ڪرڻ ۾ مصروف ٿي ويا. (1) ۽ اهو ئي واقعو غزوه بني نضير جو ڪارڻ بڻيو، جيئن اڳتي بيان ڪيو ويو آهي.

پاڻ سڳورن ﷺ کي انهن بن واقعن جو ڏاڍو ڏک پهتو، جيڪي ڪجهه ئي ڏينهن ۾ هڪٻئي پويان ٿيا هئا (2) ۽ پاڻ سڳورا ﷺ ايترو ڏڪارا ٿيا (3) جو جن قبيلن، انهن اصحابي سڳورن سان اهو ظالماڻو سلوڪ ويو هو، پاڻ سڳورا ﷺ هڪ مهيني تائين انهن کي پٽيندا رهيا. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ حضرت انس رضی اللہ عنہ کان آيل آهي ته جن ماڻهن پاڻ سڳورن ﷺ جي اصحابين کي بئرمعون وٽ شهيد ڪيو هو، پاڻ سڳورن ﷺ ٽيهن ڏينهن تائين انهن کي پٽيو. پاڻ سڳورا ﷺ فجر نماز کانپوءِ رعل، ذڪوان، لحيان ۽ عصيه کي پٽيندا هئا ۽ چوندا هئا ته عصيه، الله ۽ ان جي رسول جو ڏوهاري آهي. ان بابت الله تعاليٰ پنهنجي رسول تي وحي لائي، جيڪا پوءِ منسوخ ٿي وئي. اها وحي هيءَ هئي، "اسان جي قوم کي اهو ٻڌائي ڇڏيو ته اسين پنهنجي رب سان ملياسين، اهو اسان مان راضي آهي ۽ اسين کانس راضي آهيون." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجو قنوت ترڪ ڪيو. (4)

5. غزوه بني نضير: - اسين ٻڌائي آيا آهيون ته يهودي، اسلام ۽ مسلمانن کان پيا سڙندا هئا، پر جيئن ته اهي ويڙهو نه هئا ۽ سازشي هئا ان ڪري ويڙهه بدران ڪيني ۽ ڪدورت جو مظاهرو ڪندا هئا ۽ مسلمانن سان ٺاهه هوندي به ڪين اهڙي رسل لاءِ حيلابهان پيا ڳولهندا هئا. البته بنو قينقاع جي ڏيهه نيڪالي (جلاوطني) ۽ ڪعب بن اشرف جي مارچ کانپوءِ سندن حوصلا ٿي ويا ۽ انهن ڊڄي کڻي ماڻ ڪڍي، پر احد واري جنگ کانپوءِ سندن جرئت وري وڌي ۽ انهن پڌري پٽ دشمني ۽ وعدي خلافي ڪئي ۽ مديني جي منافقن ۽ مڪي جي مشرڪن سان ڳجهه ڳوهه ۾ ملي مسلمانن خلاف مشرڪن جي حمايت ۾ ڪم ڪيو. (5)

پاڻ سڳورن ﷺ ڄاڻي وائي اها روش سني پئي، پر رجيع ۽ معونه جي حادثن کانپوءِ يهودين جي همت ايتري قدر وڌي وئي جو انهن پاڻ سڳورن ﷺ کي ٽي مارڻ جو رٿيو.

1 - ابن هشام (183/2 کان 188) - زاد المعاد (109/2، 110) - صحيح بخاري (584، 586).

2 - واقدي لکي ٿو ته رجيع ۽ معونه، ٻنهي حادثن جي ڄاڻ پاڻ سڳورن ﷺ کي هڪ ئي رات ملي..

3 - ابن سعد، حضرت انس رضی اللہ عنہ کان روايت آندي آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ جيترو بئرمعون وارن لاءِ ڏڪارا هئا، مون ڪنهن ٻئي لاءِ ڪين ايترو افسوس ڪندي نه ڏٺو. مختصر السيرة للشيخ عبدالله (260).

4 - صحيح بخاري (586/2، 587، 588).

5 - سنن ابي داؤد - باب خبر النضير جي روايت سان اها ڳالهه نهڪندڙ نه آهي. ڏسو سنن ابي داؤد مع شرح عون المعبود (116/3، 117).

ان جو تفصيل هن ريت آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجن ڪجهه اصحابين سان يهودين وٽ ويا ۽ انهن سان بنو ڪلاب جي ٻنهي مٿن جي ديت ۾ مدد ڏيڻ جي ڳالهه ٻولهه ڪئي. (جن کي حضرت عمرو رضه بن اميه پل ۾ ماري وڌو هو) ناه موجب مدد ڪرڻ انهن تي واجب هو. انهن چيو ته: "ابو القاسم! اسين بلڪل مدد ڪنداسين، توهان هتي ويهو، اسين توهان جي ضرورت پوري ڪري ٿا ونون." پاڻ سڳورا ﷺ سندن هڪ گهر جي پٽ سان ٽيڪ ڏئي ويهي رهيا ۽ سندن وعدي پوري ڪرڻ جو انتظار ڪرڻ لڳا. پاڻ سڳورن ﷺ سان حضرت ابوبڪر رضه، حضرت عمر رضه، حضرت علي رضه ۽ ٻيا به گهڻائي اصحابي سڳورا ساڻ هئا.

هوڏانهن يهودي اڪيلاهيءَ ۾ گڏ ٿيا ته انهن تي شيطان سوار ٿي ويو ۽ جيڪو نياڳ سندن قسمت ۾ لڪجي چڪو هو، ان کي شيطان پلو ڪري سامهون آندو. يعني انهن يهودين پاڻ ۾ صلاح ڪئي ته ڇو ته پاڻ سڳورن ﷺ کي ئي ماري ڇڏجي. تنهن کانپوءِ انهن چيو ته "ڪير آهي، جو هيءَ چڪي کڻي مٿي وڃي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي مٿان اچي کين ڪچلي ڇڏي؟" ان تي هڪ نياڳي يهوديءَ عمرو بن جحاش چيو ته "آئون." انهن کي سلام بن مشڪم روڪيو ته ائين نه ڪريو، ڇو ته الله جو قسم! ته کين (پاڻ سڳورن ﷺ کي) توهان جي ارادن جي خبر پئجي ويندي ۽ اها اسان ۽ سندس وچ ۾ ٿيل ناهه جي خلاف ورزي نه ٿيندي. پر انهن سندس هڪ به نه ٻڌي ۽ پنهنجي منصوبي تي عمل ڪرڻ لاءِ سندرو ٻڌي بيٺا.

هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ وٽ الله تعاليٰ پاران جبرئيل عليه السلام پهتو ۽ کين يهودين جي ارادن کان واقف ڪيو. پاڻ سڳورا تڪڙ ٿيا ۽ مديني ڏي هلي پيا. پوءِ اصحابي سڳورا به کين اچي پڳا ۽ چوڻ لڳا ته توهان اتي آيا ۽ اسين سمجهي نه سگهياسين. پاڻ سڳورن ﷺ ٻڌاين ته يهودين جو ارادو ڪهڙو هو.

مديني موٽڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ هڪدم محمد بن مسلمه رضه کي بني نضير وٽ موڪليو ۽ کين نياپو ڏنو ته توهان مديني مان نڪري وڃو، هاڻي هتي مون سان گڏ نٿا رهي سگهو. توهان کي ٻن ڏينهن جي چوٽ آهي. ان کانپوءِ جيڪو به مليو ان کي ماريو. اهو نياپو پڇڻ کانپوءِ يهودين وٽ جلاوطن ٿيڻ کانسواءِ ڪوبه چارو نه رهيو. تنهنڪري اهي ڪجهه ڏينهن تائين سفر جون تياريون ڪندا رهيا، پر ان دوران منافقن جي مهندار عبدالله بن ابي جو نياپو رسين ته پنهنجي جڳهه تي ويٺا رهو ۽ گهر ٻار نه ڇڏيو. مون سان به هزار جنگي جوڌا آهن، جيڪي توهانجي قلعي ۾ اچي توهان جي حفاظت لاءِ جان به گهوري ڇڏيندا ۽ جيڪڏهن توهان کي ڪڍيو به ويو ته اسان به توهان سان

گڏ نڪرنداسين ۽ توهانجي معاملي ۾ ڪنهن کان به نه ڊڄنداسين ۽ جيڪڏهن ويڙهه ٿي ته اسين توهان جي سهائتا ڪنداسين ۽ توهان جا حليف بنو قريظ ۽ بنو غطفان وارا به توهانجي مدد ڪندا.

اهو نياپو ملڻ سان يهودين جي پيٽ ۾ ساهه پيو ۽ انهن طئه ڪيو ته جلاوطن ٿيڻ بدران ويڙهه ڪئي ويندي. سندن سردار حبي بن اخطب سمجهيو پئي ته منافقن جي مهندار جيڪي ڪجهه چيو آهي، اهو ڪري ڏيکاريندو. ان ڪري هن پاڻ سڳورن ﷺ ڏي جوابي نياپو موڪليو ته اسين پنهنجو ساڻيهه ڇڏي ڪونه وينداسين، توهان کي جيڪي ڪرڻو آهي، اهو پلي ڪريو.

ان ڳالهه ۾ شڪ ڪونهي ته مسلمانن لاءِ اها ڏاڍي نازڪ صورتحال هئي، ڇو ته انهن لاءِ پنهنجي تاريخ جي هن موڙ تي دشمنن سان مهاڏو اٽڪائڻ فائديمند نه هو. پڄاڻي ڏاڍي پوائتي ٿي پئي سگهي. پاڻ سڳورا ﷺ ڏسي رهيا هئا ته سڄو عربستان، مسلمانن جي خلاف هو ۽ مسلمانن جا به تبليغي وفد ڏاڍي ظالماڻي طريقي سان ڪنا ويا هئا. ٻئي پاسي بني نضير وارا ايترا ته سگهارا هئا جو سندن پاران هٿيار ڦٽا ڪرڻ سولو نه هو ۽ ساڻن وڙهڻ ۾ ڏاڍا مسئلا هئا، پر بئرمعون جي حادثي کان اڳ ۽ پوءِ حالتن جيڪو رخ ورتو هو، انهن جي ڪارڻ مسلمان، قتل ۽ وعدي خلافيءَ جهڙن مامرن جي سلسلي ۾ وڌيڪ حساس ٿي ويا هئا ۽ انهن ڏوهن ڪرڻ وارن خلاف مسلمانن جو انتقامي جذبو وڌي ويو هو. تنهنڪري انهن طئه ڪيو ته جيئن ته بنو نضير وارن پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ جو رٿيو هو، ان ڪري انهن سان وڙهڻ ضروري آهي، پلي ته نتيجو ڪهڙو به نڪري، تنهن ڪري جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي حبي بن اخطب جو نياپو پهتو ته پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم الله اڪبر چيو ۽ پوءِ ويڙهه لاءِ اٿي کڙا ٿيا ۽ حضرت ابن ام مڪتوم رضي الله عنه کي مديني جو مهندار ڪري بنو نضير جي علائقي ڏانهن روانا ٿيا. حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه جي هٿ ۾ جهنڊو هو. بنو نضير وارن جي علائقي کي گهيري ۾ ورتو ويو.

هوڏانهن بنو نضير پنهنجن قلعن ۾ وڃي لڪا ۽ فصيلن تان تير ۽ پٿر اڇلائيندا رهيا. جيئن ته ڪجين جي باغن جا وڻ سندن لاءِ ڍال بڻجي رهيا هئا، ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ حڪم ڪيو ته اهي وڻ پٽي ساڙي ڇڏيو. ان ئي واقعي ڏانهن اشارو ڪندي حضرت حسان رضي الله عنه فرمايو ته:

وَهَانَ عَلَى سَرَاةِ بَنِي لُؤَيٍّ ... حَرِيقًا بِالْبُيُوتِ مُسْتَطِيرٌ

”بني لويءَ جي سردارن لاءِ اهو معمولي ڪم آهي ته بويره ۾ باهه جا پنيٽ پڙڪائين. (بويره

بنونضير جي نخلستان جو نالو آهي) ۽ ان بابت الله تعاليٰ هيءَ آيت لائين ته:

﴿مَا قَطَعْتُمْ مِنْ لَيْتَةٍ أَوْ نَرَكْتُمْوهَا قَائِمَةً عَلَىٰ أُصُولِهَا فَبِإِذْنِ اللَّهِ وَلِيُخْرِجَ الْفَاسِقِينَ﴾ (5) (الحشر)



” (اي مؤمنو) جيڪي ڪجين جا وڻ وڍيو يا انهن کي پنهنجي پاڙن تي بيٺل ڇڏيو سو الله جي حڪم سان هو ۽ هن لاءِ ته هو بدڪارن کي خوار ڪري.“

مطلب ته جڏهن سندن گهيراڙ ڪيو ويو ته بنو قريظ وارا به پري رهيا، عبدالله بن ابي به خيانت ڪئي ۽ سندن حليف بني غطفان وارا به مدد لاءِ نه پهتا. مطلب ته ڪير به سندن سهائتا ڪرڻ ۽ مصيبت تارڻ لاءِ نه پڳو. ان تي الله تعاليٰ هي مثال ڏنو ته:

﴿كَمَثَلِ الشَّيْطَانِ إِذْ قَالَ لِلْإِنْسَانِ اكْفُرْ فَلَمَّا كَفَرَ قَالَ إِنِّي بَرِيءٌ مِّنْكَ... (16)﴾ (الحشر)

” (انهن جو مثال) شيطان جي مثال وانگر آهي، جڏهن ماڻهوءَ کي چونڊو آهي ته ڪافر ٿي، پوءِ جنهن مهل ڪافر ٿيو (تنهن مهل هو) چونڊو آهي ته بيشڪ آئون توکان بيزار آهيان.“

گهيراڙ گهڻو ڊگهو نه ٿيو. رڳو ڇهه راتيون يا ڪن روايتن مطابق پنڌرنهن راتيون هليو. ان دوران الله تعاليٰ سندن دلين ۾ رعب وجهندو رهيو ۽ هو هانءَ هاري وينا ۽ هٿيار ڦٽا ڪرڻ تي راضي ٿي ويا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي چورائي موڪلياڻون ته اسين مديني مان نڪرڻ لاءِ تيار آهيون. پاڻ سڳورن ﷺ سندن ڏيهه نيڪاليءَ (جلاوطني) جي آڇ قبولي ۽ اهو به مڃيائون ته اهي هٿيارن کي ڇڏي باقي جيترو به سامان انن تي ڪئي وڃي سگهن. سو ڪئي ٻارن بچن سميت هليا وڃن.

بنو نضير اها آڇ قبوليندي هٿيار ڦٽا ڪيا ۽ پنهنجن هٿن سان پنهنجا گهر تباهه ڪيا ته جيئن در ۽ دريون به ڪئي وڃن. پوءِ عورتن ۽ ٻارن کي سوار ڪري ڇهه سؤ اٺن تي چڙهي نڪتا. گهڻا تڙا يهودي ۽ سندن اڳواڻ جهڙوڪ حبي بن اخطب ۽ سلام بن ابي الحقيق خيبر ڏانهن ويا، جڏهن ته هڪ ٽولو شام ڏانهن ويو. رڳو بن چئن يعني يامين بن عمرو رضي الله عنه ۽ ابو سعيد رضي الله عنه بن وهب اسلام قبوليو. تنهنڪري سندن ڪنهن به شيءِ کي هٿ نه لڳايو ويو.

پاڻ سڳورن ﷺ شرط مطابق بنو نضير جا هٿيار، زمين، گهر ۽ باغ پنهنجي هٿ ورتا. هٿيارن ۾ پنجاهه زرهون، پنجاهه خود ۽ ٽي سؤ چاليهه تراڙون هيون.

بنو نضير جي انهن باغن، زمين ۽ گهرن تي رڳو پاڻ سڳورن ﷺ جو حق هو. کين اختيار هو ته پاڻ وٽ رکن يا ڪنهن کي ڏئي ڇڏين. تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ هن مال جو خمس نه ڪڍيو، ڇو ته اهو الله تعاليٰ پاران پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ”في“ هو. مسلمانن اهو وڙهي حاصل نه ڪيو هو. تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجو حق استعمال ڪندي اهو سڄو مال پراڻن مهاجرن ۾ ورهائي ڇڏيو. البته بن انصاري اصحابين يعني ابودجانه رضي الله عنه ۽ سهل بن حنيف رضي الله عنه کي به سندن غربت ڪري ان مان ڪجهه ڏنو. ان کانسواءِ پاڻ سڳورن ﷺ ٿورو ٿورو ٽڪرو پاڻ لاءِ به ڌار ڪيو، جنهن مان پاڻ سڳورا

ﷺ پنهنجن گهر وارين لاءِ سال جو خرچ ڪيندا هئا ۽ ان کانپوءِ جيڪي بچندو هو، اهو جهاد جي تياريءَ لاءِ هٿيار ۽ گهوڙا وٺڻ لاءِ ڪتب آڻيندا هئا.

غزوه بني نضير ربيع الاول سنه 4 هـ بمطابق آگسٽ 625ع ۾ ٿي ۽ الله تعاليٰ ان بابت سڄي سورة حشر لائي، جنهن ۾ يهودين جي ڏيهه نيڪاليءَ جو منظر بيان ڪندي، منافقن جي عمل کي وائڪو ڪيو ويو ۽ "قِي" جا حڪم ٻڌائيندي مهاجرن ۽ انصارن جي ساراهه ڪئي وئي ۽ ٻڌايو ويو ته جنگي حڪمت عمليءَ ڪري دشمنن جا وڻ وڍي سگهجن ٿا ۽ انهن کي ساڙي به سگهجي ٿو. ائين ڪرڻ زمين تي فساد ڪرڻ جي برابر ڪونهي. پوءِ ايمان وارن کي تقوىٰ ڪرڻ ۽ آخرت جي تياري ڪرڻ جي تاڪيد ڪئي وئي آهي. ان کانپوءِ الله تعاليٰ پنهنجي وڏائي بيان ڪندي ۽ پنهنجن صفتن جو بيان ڪندي سورة حشر ڪئي آهي.

ابن عباس رضي الله عنهما هن سورة (حشر) بابت فرمائيندو هو ته هن کي سورة بني نضير چوندا ڪريو. (1)

6 غزوه نجد:- غزوه بني نضير ۾ ڪابه قرباني ڏيڻ بنا مسلمانن وڏي سوچ ماڻي. ان سان مسلمانن جي راڄ کي سگهه پهتي ۽ منافقن تي مايوسي چانئجي وئي. هاڻي اهي ڪليءَ طرح ڪجهه ڪرڻ کان لهرائڻ لڳا. اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ انهن بدوئن کي سيڪت ڏيڻ لاءِ هڪ ڪرا ٿي ويا، جن احد جي جنگ کانپوءِ مسلمانن کي ڏاڍو ستايو هو ۽ ظالماڻي انداز سان مسلمان مبلغن کي ماريو هو ۽ هاڻي سندن همت ايتري قدر وڌي وئي هئي جو اهي مديني تي ڪاهڻ جو سوچي رهيا هئا. تنهن کان سواءِ غزوه بنو نضير کان واندڪائي ملڻ کان پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ انهن کي سيڪت ڏيڻ لاءِ اڃا نڪتا به نه هئا جو کين پتو پيو ته بني غطفان جا ٻه قبيلا بنو محارب ۽ بنو ثعلبه جنگ لاءِ بدوين ۽ اعرابين کي گڏ پيا ڪن. اها ڄاڻ ملڻ شرط پاڻ سڳورن ﷺ نجد تي ڪاهڻ جو فيصلو ڪيو ۽ نجد جي رڻ پٽ ۾ پري تائين هليا ويا. جنهن جو مقصد اهو هو ته انهن پٿر دل رولاڪن کي ڊپ وٺي وڃي ۽ ٻيهر مسلمانن خلاف اڳ جهڙيون ڪارروايون ڪرڻ جي همت نه ٿين. هوڏانهن مٿي ڦريل بدوي، جيڪي ڦرلٽ جي تياري ڪري رهيا هئا، سي مسلمانن جي اوجھتي ڪاه جو ٻڌي ڊپ ۾ وٺي پڳا ۽ وڃي جبلن ۾ لڪا. مسلمانن، قرون ڪندڙ قبيلن کي داٻو ڏيڻ کانپوءِ امن امان سان مديني جي واٽ ورتي.

سیرت نگارن هن سلسلي ۾ هڪ غزوي جو نالو ڄاڻايو آهي، جيڪو ربيع الآخر يا جمادي الاول سنه 4 هـ ۾ نجد ۾ ٿي گذريو. ان غزوي کي غزوه ذات الرقاع سڏين ٿا. جيستائين حقيقتن ۽

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/190، 191، 192) - زاد المعاد (2/71، 110). صحيح بخاري (574/2، 575)

ثبوتن جو سوال آهي ته ان ۾ شڪ نه آهي ته انهن ڏينهن ۾ نجد ۾ هڪ جنگ ضرور ٿي هئي، ڇو ته مديني جون حالتون ئي اهڙيون هيون. ابوسفیان، احد واري جنگ تان موٽڻ مهل ايندڙ سال بدر جي ميدان تي جنهن غزوي لاءِ للڪاريو هو ۽ جنهن کي مسلمانن قبوليو هو. هاڻي ان جو وقت پرڄي آيو هو ۽ جنگي لحاظ کان اها ڳالهه ڪنهن به طرح مناسب نه هئي ته بدوئن ۽ اعرابين جي سرڪشين کي نظرانداز ڪري بدر جهڙي وڏي جنگ تي وڃڻ لاءِ مديني کي خالي ڇڏيو وڃي، پر ضروري هو ته بدر جي ميدان ۾ جنهن پوائنٽي ويڙهه جي توقع هئي، ان لاءِ نڪرڻ کان اڳ انهن بدوئن کي اهڙو ڪاپاري ڌڪ هڻجي جو اهي مديني تي ڪاهڻ جي همت ئي نه ڪري سگهن.

باقي رهي اها ڳالهه ته اها ئي ويڙهه، جيڪا ربيع الاخر يا جمادي الاول سن 4 هه ۾ ٿي، سا ذات الرقاع واري ويڙهه هئي؟ اسان جي چندڇاڻ مطابق اهو نڪر نه آهي. ڇو ته غزوه ذات الرقاع ۾ حضرت ابو هريرة رضي الله عنه ۽ حضرت ابو موسيٰ اشعري رضي الله عنه شامل هئا ۽ ابوهريرة رضي الله عنه خيبر جي جنگ کان رڳو ڪجهه ڏهاڙا اڳ اسلام قبوليو هو. اهڙيءَ طرح حضرت ابو موسيٰ اشعري رضي الله عنه (مسلمان ٿي يمن ڏانهن ويو ته سندن ٻيڙي حبشه جي سامونڊي ڪپ تي اچي بيٺي ۽ پاڻ حبش کان ان مهل موٽيو هو، جڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام خيبر پهچي چڪا هئا. اهڙيءَ طرح اهي پهريون ڀيرو) خيبر ۾ ئي پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتا هئا. ان جو مطلب اهو ٿو نڪري ته غزوه ذات الرقاع، خيبر جي جنگ کانپوءِ ٿي هئي.

سن 4 هه کان گهڻو پوءِ ذات الرقاع واري ويڙهه ٿيڻ جي هڪ نشاني اها به آهي ته پاڻ سڳورن عليه السلام ذات الرقاع واري ويڙهه ۾ صلوة خوف <sup>(1)</sup> پڙهي هئي ۽ صلوات خوف سڀ کان پهرين غزوه عسفان ۾ پڙهي وئي ۽ ان ۾ ڪوبه اختلاف ڪونهي ته عسفان جي جنگ، خندق جي جنگ کانپوءِ ٿي. جڏهن ته خندق جي جنگ سن 5 هه جي آخر ۾ ٿي. حقيقت ۾ عسفان واري جنگ، حديبيه واري سفر جي سلسلي جو هڪ واقعو آهي، جتان موٽڻ کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام خيبر ڏانهن هليا هئا. ان ڪري هن لحاظ کان به ذات الرقاع واري ويڙهه، خيبر جي جنگ کانپوءِ ثابت ٿئي ٿي.

**7. بدر واري بي لڙائي:** - اعرابين جي چيلهه چڙهي ڪرڻ ۽ بدوئن جي فساد کان مطمئن ٿيڻ کان پوءِ مسلمانن پنهنجي وڏي دشمن (قريش) سان ويڙهه ڪرڻ جي تياري شروع ڪئي. جيئن ته

<sup>1</sup> - جنگ جي حالت ۾ پڙهندڙ نماز کي صلوة خوف چئجي ٿو. جنهن جو هڪ طريقو اهو آهي ته اڌ فوج هٿيار کڻي امام جي پٺيان نماز پڙهندي آهي. باقي اڌ فوج هٿيار کڻي دشمن تي نظر رکندي آهي. هڪ رڪعت کانپوءِ اها فوج امام جي پٺيان اچي وڃي ۽ پهرين فوج دشمن تي نظر رکندي آهي. امام بي رڪعت پڙهي وٺي ته واري واري سان ٻئي ڏڙا پنهنجي پنهنجي نماز پوري ڪن. ان نماز جا اهڙا ئي بيا به طريقا آهن، جيڪي جنگ مهل اختيار ڪبا آهن.

سال تڪڙو پئي پورو ٿيو ۽ احد واري ويڙهه ۾ رٿيل وقت ويجهو اچي رهيو هو ۽ محمد ﷺ ۽ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم جو فرض هو ته جنگ جي ميدان ۾ ابوسفيان ۽ سندس قوم سان هڪ هڪائي ڪرڻ لاءِ نڪري کڙا ٿين ۽ جنگ ۾ ان حڪمت عمليءَ سان هلن جو حالتون ان ڌر جي حق ۾ ٿي وڃن، جيڪا وڌيڪ هدايت ورتل هجي.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ شعبان سن 4 هـ بمطابق جنوري 626ع ۾ مديني جي واڳ حضرت عبدالله بن رواحہ رضی اللہ عنہ جي حوالي ڪري رٿيل جنگ جي لاءِ بدر جي وات وٺي هليا. پاڻ سڳورن ﷺ سان ڏيڍ هزار ماڻهو ۽ ڏهه گهوڙا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ جهنڊو حضرت علي رضی اللہ عنہ جي حوالي ڪيو ۽ بدر پهچي مشرڪن جو انتظار ڪرڻ لڳا.

هوڏانهن ابوسفيان به پنجاه سوارن سان ٻه هزار مشرڪن جو لشڪر وٺي نڪتو ۽ مڪي کان هڪ مرحلو پري مرالظهران جي واديءَ ۾ مڃن نالي مشهور چشمي وٽ لٿو. پر هو مڪي کان ٿي دل لاهي نڪتو هو. هر هر مسلمانن سان ٿيندڙ ويڙهه جي پڇاڻيءَ جو سوچي ڊپ کان ڪنبي ٿي ويو. مرالظهران پهچي هانءُ هاري ويٺو ۽ موٽڻ لاءِ بهانو ڳولھڻ لڳو. نيٺ پنهنجن ساٿين کي چيائين ته: "فريشيو! ويڙهه تڏهن ڪرڻ گهرجي، جڏهن ساوڪ ۽ خوشحالي هجي جو جانور به چري سگهن ۽ توهان به کير پي سگهو. هن وقت ڏڪار آهي، تنهنڪري آئون موٽان ٿو، توهان به موٽي هلو."

ائين ٿو لڳي ته سڄو لشڪر ڊپ ۾ ورتل هو، ڇو ته ابوسفيان جي ان رت تي ڪنهن به قسم جي مخالفت ڪرڻ بدران سڀني موٽڻ وارو رستو اختيار ڪيو ۽ ڪنهن به سفر جاري رکڻ ۽ مسلمانن سان ويڙهه ڪرڻ جي راءِ نه ڏني.

هوڏانهن مسلمانن ان ڏينهن بدر ۾ رهي دشمنن جو انتظار ڪيو ۽ ان دوران پنهنجو واپاري سامان وڪڻندا رهيا. ان کانپوءِ ان شان سان مديني موٽيا جو جنگ ۾ اڳرائي ڪرڻ جو سهرو سندن سر تي ٻڌجي چڪو هو، دلين تي سندن دٻڊبو ويهي چڪو هو ۽ ماحول تي سندن گرفت مضبوط ٿي چڪي هئي. اها جنگ بدر موعدي، بدر ثانيه، بدر آخري ۽ بدر صغرا جي نالي سان سڏجي ٿي.<sup>(1)</sup>

**دُومة الجندل واري جنگ:** - پاڻ سڳورا ﷺ بدر کان موٽيا ته هر پاسي امن ٿي چڪو هو ۽ سڄي اسلامي علائقي ۾ سک ۽ شانتيءَ جون هوائون پئي هليون. هاڻي پاڻ سڳورا ﷺ عرب جي آخري چيڙي تائين ڏيان ڏيڻ لاءِ آجا هئا ۽ ان جي گهرج به هئي ته جيئن حالتون مسلمانن جي هٿ وس رهن ۽ دوست، دشمن آڻ مڃين.

<sup>1</sup> - هن جنگ جي تفصيل لاءِ ڏسو ابن هشام (209/2، 210) - زاد المعاد (2/ 112).

جڏهن ته بدر صغرا کانپوءِ ڇهن مهينن تائين پاڻ سڳورا ﷺ سڪ سان مديني ۾ رهيا. ان کان پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي خبر ملي ته شام جي ويجهو دومة الجندل وٽ وسندڙ قبيلن ايندڙ ويندڙ قافلن تي ڏاڙا پيا هڻن ۽ اتان لنگهڻ واريون شيون ڦري ٿا وٺن. اهو به پتو پيو ته انهن مديني تي ڪاهڻ لاءِ هڪ وڏو لشڪر گڏ ڪري ورتو آهي. اها ڇاڻ ملڻ کان پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ سباع بن عرفطه رضه کي مديني ۾ پنهنجو جائنشين مقرر ڪري هڪ هزار مسلمان وٺي روانا ٿيا. اهو 25 ربيع الاول سن 5 هـ جو واقعو آهي. رستو ٻڌائڻ لاءِ بنو عذره جو هڪ ماڻهو ساڻ کنيو ويو هو.

هن غزوي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو معمول هو ته رات جو سفر ڪندا هئا ۽ ڏينهن جو لڪي ويندا هئا ته جيئن دشمنن جي مٿان اوجھو اٿڻ ڄاڻائيءَ ۾ وڃي ڪٽڪن. ويجهو ڀڄڻ تي پتو پيو ته اهي ڀڄي ويا آهن. تنهن کانپوءِ سندن چوپائي مال ۽ ڌراڙن کي سوگهو ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي وئي، جن مان ڪي جهلجي پيا ته ڪي ڀڄي ويا.

جيستائين دومة الجندل جي رهاڪن جو سوال آهي ته جنهن کي جنهن پاسي رستو مليو، ان پاسي منهن ڪري وٺي ڀڳا، جڏهن مسلمان اتي پهتا ته کين ڪوبه نه مليو. پاڻ سڳورن ﷺ به تي ڏينهن اتي رهي ڪافي جتا هيڏي هوڏي موڪليا، پر ڪجهه به نه مليو. نيٺ پاڻ سڳورا ﷺ مديني موٽيا. هن جنگ ۾ عبيد بن حصن<sup>(1)</sup> سان ٺاهه به ٿيو.

دُوم ( دال تي پيش) شام جو هڪ سرحدي شهر آهي. هتان کان دمشق پنجن راتين جي پنڌ تي آهي ۽ مدينو پنڌرنهن راتين جي پنڌ تي.

انهن اوچتن ۽ فيصلا ڪن قدامن ۽ ڏاهپ ڀريل منصوبن سان پاڻ سڳورا ﷺ اسلامي علائقن ۾ امن امان قائم ڪرڻ ۽ حالتون وس ۾ ڪرڻ ڪامياب ٿي ويا ۽ وقت تي ضابطو ڪري ورتائون ۽ اندرين ۽ ٻاهرين لاڳيتين مشڪلاتن جي شدت گهٽائي ورتي، جيڪي چؤطرف کان کين گهيري وينيون هيون، تنهن کانپوءِ منافقن به هانءُ هاري ڪٿي ماڻ ڪئي. يهودين جي هڪ قبيلي کي ڏيه نيڪالي ڏني وئي. ٻين قبيلن پاڙيسري هئڻ جو ناتو نپايو. بدوي ۽ اعرابي ٿڌا ٿي ويا ۽ قريشن، مسلمانن سان تڪرائڻ کان پاسو ڪيو ۽ مسلمانن کي اسلام ڦهلائڻ ۽ جهانن جي پالڻهار جو نياپو ماڻهن تائين پهچائڻ جو وجهه ملي ويو.

\*-\*-\*

<sup>1</sup> - فزاره قبيلي جو سردار.

## غزوة احزاب (خندق واري جنگ)

هڪ سال کان وڌيڪ مدي جي لاڳيتين فوجي ڪاررواين کانپوءِ عربستان ۾ امن ٿي ويو. پر يهودي، جيڪي پنهنجين نياڳياڻين، ننگين ۽ دولابن جي ڪارڻ هر طرح جي ذلت ڏسي چڪا هئا، اڃا به هوش ۾ نه آيا هئا. تنهنڪري خيبر ڏانهن لڏڻ کانپوءِ پهرين ته انهن انتظار ڪيو ته ڏسون ته مسلمانن ۽ بت پرستن جي وچ ۾ جيڪا ڏي وٺ هلي پئي، ان جو نتيجو ڪهڙو ٿو نڪري. پر جڏهن ڏٺائون ته حالتون مسلمانن جي حق ۾ ٿي ويون آهن ۽ اهي ڏينهن ڏينهن سگهارا ٿيندا وڃن ۽ پري پري تائين سندن دڊبو قائم ٿيندو وڃي ته کين اڇي ساڙ ٿيو. انهن ٻيهر سازش شروع ڪئي ۽ مسلمانن کي هڪ اهڙو ڪاپاري ڌڪ هڻڻ جي تياري ڪرڻ لڳا، جنهن سان سندن پڇاڻي ٿي وڃي. پر جيئن ته انهن ۾ سڌو سنئون مسلمانن سان ٽڪرائڻ جي همت نه هئي، ان ڪري هن مقصد لاءِ هڪ ڏاڍي پوائنٽي سٺ ستيائون.

ان جو تفصيل هن ريت آهي ته بنو نضير جا ويهارو کن سردار مڪي جي قريش وٽ پهتا ۽ کين پاڻ سڳورن ﷺ سان ويڙهه ڪرڻ لاءِ راضي ڪرڻ خاطر پنهنجي پوري سهائتا جي پڪ ڏياريا. قريش، سندن ڳالهه مڃي ورتي. جيئن ته اهي احد واري ڏينهن مسلمانن سان بدر جي ميدان ۾ ويڙهه ڪرڻ جي واعدي جي خلاف ورزي ڪري چڪا هئا، ان ڪري سندن خيال هو ته هاڻي هن رتيل جنگ سان اهي پنهنجي ناموس به واپس وٺن ۽ پنهنجي قول کي به پاڻي ڏين.

ان کانپوءِ يهودين جو اهو وفد بنو غطفان وٽ ويو ۽ قريش وانگر کين به ويڙهه لاءِ راضي ڪيائين. پوءِ ان وفد بين عرب قبيلن ۾ گهمي ڦري ماڻهن کي ويڙهه لاءِ اڪسايو ۽ انهن قبيلن جا به ڪيترائي ماڻهو تيار ٿي ويا. اهڙيءَ طرح يهودي سياستدانن پوري ڪاميابيءَ سان وڏن وڏن ڪافر گروهن کي پاڻ سڳورن ﷺ ۽ سندن دعوت ۽ مسلمانن خلاف اڪسائي جنگ لاءِ تيار ڪيو.

ان کانپوءِ رتيل پروگرام مطابق ڏکڻ کان قريش، ڪنانه ۽ تهامه ۾ وسندڙ بين حليف قبيلن مديني ڏانهن هلڻ شروع ڪيو. سندن سردار ابوسفيان هو ۽ انهن جو تعداد چار هزار هو. اهو لشڪر مرالظهران پهتو ته بنو سليم به ساڻن شامل ٿي ويا. هوڏانهن ان ئي مهل اوڀر کان غطفاني قبيلن فزاره، مره ۽ اشجع نڪتا. فزاره جو سپهه سالار عيينه بن حصن هو. بنو مره جو حارث بن عوف ۽ بنو اشجع جو مسعر بن رخيله. انهن سان گڏ ئي بنو اسد ۽ بين قبيلن جا به ڪيترائي ماڻهو آيا هئا.

انهن سڀني قبيلن رتيل وقت ۽ رتيل پروگرام تحت مديني تي چڙهائي ڪئي، ان ڪري ٿورن ئي ڏينهن ۾ مديني وٽ ڏهه هزار فوج گڏ ٿي وئي. اهو ايڏو وڏو لشڪر هو جو شايد مديني جي سڄي

آبادي (عورتن، ٻارن، پوڙهن ۽ جوانن سميت به) ايتري نه هئي. جيڪڏهن اهي اوچتو گهات هڻن ها ته مسلمان پاڻ بچائي نه سگهن ها. ٿي سگهيو ٿي ته سندن پاڙ پٽجي وڃي ها. پر مديني جي قيادت هوشيار هئي. وقت ۽ حالتن تي سندن ڀرپور نظرون هيون ۽ اها نيڪ تجزيو به ڪري ٿي سگهي ۽ حالتن سان پڇڻ لاءِ مناسب قدم به کڻي ٿي سگهي. تنهنڪري ڪافرن جو هي وڏو لشڪر جيئن ئي پنهنجي جڳهه تان چريو ته مديني جي قيادت کي خبر پئجي وئي.

اها خبر ملندي ئي پاڻ سڳورن ﷺ مجلس شوريٰ سڏائي ۽ بچاءَ جي سلسلي ۾ مشورو ڪيو. شوريٰ وارن سوچ ويچار ڪري حضرت سلمان فارسي رضه جي رت قبولي. اها رت حضرت سلمان فارسي رضه انهن لفظن ۾ پيش ڪئي هئي ته: يا رسول الله ﷺ! فارس ۾ جڏهن اسان جو گهيرا ٿيندو هو ته اسين پنهنجي چوڌاري ڪاهي (خندق) کوٽي ڇڏيندا هئاسين.

اها ڏاڍي پلي رت هئي. عربن کي ان جي ڄاڻ نه هئي. پاڻ سڳورن ﷺ ان رت تي هڪدم عمل ڪندي هر ڏهن ماڻهن کي چاليهه هٿ ڪاهي کوٽڻ جو ڪم سونپيو ۽ مسلمانن محنت سان دل لڳائي ڪم شروع ڪيو. پاڻ سڳورا ﷺ ان ڪم لاءِ همٿائيندا به رهيا ۽ پاڻ به اهو ڪم ڪندا رهيا. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ حضرت سهل به سعد رضه کان آيل آهي ته: اسان پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ ڪاهيءَ ۾ هئاسين. ماڻهن کوٽيو پئي ۽ اسان ڪلهن تي مٽي ڍوئي پئي جو (ايتري ۾) پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته:

اللَّهُمَّ لَا عَيْشَ إِلَّا عَيْشُ الْآخِرَةِ فَاعْفِرْ لِلْمُهَاجِرِينَ وَالْأَنْصَارِ (1)

”اي الله يقيناً زندگي ته آخرت جي زندگي آهي پوءِ تون مهاجرن ۽ انصارن کي معاف ڪر“

هڪ ٻي روايت ۾ حضرت انس رضه کان آيل آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ ڪاهي ڏسڻ لاءِ آيا ته ڏٺائون ته مهاجر ۽ انصار صبح ساڻ کوٽائي ڪري رهيا آهن. انهن وٽ غلام ڪونه هئا، نه ته غلام ئي سندن بدران اهو ڪم ڪن ها. پاڻ سڳورن ﷺ سندن محنت ۽ بڪ ڏسي چيو ته:

اللَّهُمَّ إِنَّ الْعَيْشَ عَيْشُ الْآخِرَةِ فَاعْفِرْ لِلْأَنْصَارِ وَالْمُهَاجِرَةِ

”اي الله يقيناً زندگي ته آخرت جي زندگي آهي پوءِ انصارن ۽ مهاجرن کي بخش ڪر“

انصارن ۽ مهاجرن ان جي جواب ۾ چيو ته:

نَحْنُ الَّذِينَ بَايَعُوا مُحَمَّدًا عَلَى الْجِهَادِ مَا بَقِينَا أَبَدًا (2)

1 - صحيح بخاري، (588/2).

2 - صحيح بخاري (397/1، 588/2).

”اسين اهي آهيون جو محمد ﷺ سان بيعت ڪئي آهي هميشه لاءِ جهاد ڪنداسون جيستائين باقي رهياسون“

صحيح بخاريءَ ۾ ئي هڪ روايت حضرت براء بن عازب رضي الله عنه کان آيل آهي ته مون پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڏٺو ته اهي ڪاهيءَ جي مٿي ڍوئي رهيا هئا. پاڻ سڳورن عليه السلام جو جسم مبارڪ دز ۾ لٽيل هو. پاڻ سڳورن عليه السلام جا وارا گهاتا هئا. مون کين (ان حالت ۾) عبدالله بن رواح رضي الله عنه جا جنگي شعر پڙهندي ٻڌو. پاڻ سڳورا عليه السلام مٿي ڍوئيندا ٿي ويا ۽ هيئن چوندا ٿي ويا ته:

اللَّهُمَّ لَوْ لَأَنْتَ مَا اهْتَدَيْنَا وَلَا تَصَدَّقْنَا وَلَا صَلَّيْنَا  
فَأَنْزَلْنَا سَكِينَةً عَلَيْنَا وَنَبَّتُ الْأَقْدَامَ إِنْ لَأَقَيْنَا  
إِنَّ الْأَلَى قَدْ بَعَا عَلَيْنَا وَإِنْ أَرَادُوا فِتْنَةً أَيْنَا

”اي الله! جيڪڏهن تون نه هجيئن ته اسين هدايت نه پايون ها، نه صدقو ڏيون ها، نه نماز پڙهون ها، پوءِ اسان تي راحت نازل ڪر، ۽ جيڪڏهن تڪراءُ ٿئي ته اسان اسانڪي ثابت قدم رکج، انهن اسان جي خلاف ماڻهن کي پٽڪايو آهي، جيڪڏهن اهي ڪنهن فتني جو ارادو ڪن ٿا ته اسين ڪڏهن به انڪار نه ڪنداسين.“

حضرت براء رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته پاڻ سڳورا عليه السلام پويان لفظ چڪي چوندا هئا. هڪ روايت ۾ آخري شعر هن طرح آهن.

إِنَّ الْأَلَى قَدْ بَعَا عَلَيْنَا وَإِنْ أَرَادُوا فِتْنَةً أَيْنَا (1)

”يعني انهن اسان تي ظلم ڪيو آهي ۽ جيڪڏهن اهي اسان کي فتني ۾ وجهڻ چاهين ٿا ته اسان انڪار نه ڪنداسون.“

مسلمان هڪ پاسي دل لڳائي ڪم ڪري رهيا هئا ته ٻئي پاسي ايڏيون بڪون به سهي رهيا هئا، جو انهن جي خيال سان ئي هانءُ ڏريو وڃي. جيئن حضرت انس رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته (خندق وارن) وٽ به منيون جو آندا ٿي ويا ۽ بانس واري چرٻيءَ سان ٺاهي ماڻهن آڏو رکيا ٿي ويا. ماڻهو بڪيا هوندا هئا ۽ ان جو ڏاڻقو اڻٿوڻدڙ هوندو هو. ان مان ڏپ پئي ايندي هئي. (2)

ابوطلح رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته اسان، پاڻ سڳورن عليه السلام کي بڪ جي دانهن ڏني ۽ پنهنجو پيٽ کولي هڪ هڪ پٿر ٻڌل ڏيڪاريو، تنهن تي پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجو پيٽ کولي ڏيڪاريو، جنهن تي به پٿر ٻڌل هئا. (3)

1 - صحيح بخاري (589/2).

2 - صحيح بخاري (588/2).

3 - جامع ترمذي، مشڪوة المصابيح (448/2).



ڪاهي ڪوتيندي نبوت جا ڪيترائي اهڃاڻ پڌرا ٿيا. صحيح بخاريءَ ۾ آهي ته حضرت جابر بن عبدالله رضي الله عنه، پاڻ سڳورن عليه السلام تي بڪ جا آثار ڏنا ته هڪ ڇيلو ڪنو ۽ سندن گهر واريءَ هڪ صاع (اتڪل اڍائي ڪلو) جو پيٽا، پوءِ لڪ ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام کي درخواست ڪيائون ته پنهنجن ڪجهه ساٿين سان گڏ هلو. پر پاڻ سڳورا عليه السلام سڀني ڪاهي ڪوتيندڙن کي ساڻ وٺي هليا، جن جو تعداد هڪ هزار هو. انهن سڀني ماڻهن ان ٿوري ڪاڏي مان پيٽ پري ڪاڏو، پوءِ به ٻوڙ جي هندي ساڳيءَ حالت ۾ رهي ۽ ڳوهيل اٿو به اوتري جو اوترو رهيو ۽ ان مان ماني پڄاڻي پئي وئي. (1)

حضرت نعمان بن بشير رضي الله عنه جي پيٽ ڪاهيءَ وٽ به بڪ ڪارڪون ڪڍي آئي ته سندن پاڻ ۽ مامون ڪائين، پر پاڻ سڳورن عليه السلام وٽان لنگهڻ مهل پاڻ سڳورن عليه السلام اهي ڪجھون ڪائين وٺي ورتيون ۽ هڪ ڪپڙي مٿان وڪيري ڇڏيون. پوءِ ڪاهي ڪوتيندڙن کي سڏ ڪيائون. ڪاهي ڪوتيندڙ اهي ڪائيندا ويا ۽ اهي وڌنديون ويون. تان ته سڀئي ڪاهي هليا ويا ۽ پوءِ به ڪجھون هيون جو ڪپڙي جي ڪنارن مان ٻاهر پئي ڪريون. (2)

انهن ئي ڏينهن ۾ انهن ٻنهي واقعن کان وڌيڪ هڪ واقعو ٿي گذريو، جيڪو صحيح بخاريءَ ۾ حضرت جابر رضي الله عنه کان بيان ڪيل آهي ته اسان ڪاهي ڪوتي رهيا هئاسين جو هڪ چپ اڳيان اچي وئي. ماڻهو پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتا ۽ عرض ڪيائون ته ههڙيءَ طرح هڪ چپ اڳيان اچي وئي آهي. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "آئون لهان ٿو." ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام اٿيا، سندن پيٽ تي پٿر ٻڌل هو. اسان تن ڏينهن کان ڪجهه نه ڪاڏو هو. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام ڪوڏر ڪڍي هنئي ته اها چپ پري ٽڪرا ٽڪرا ٿي وئي. (3)

حضرت براء رضي الله عنه وڌيڪ ٻڌائي ٿو ته خندق واري جنگ ۾ ڪوتائي هلندي هڪ چپ اڳيان اچي وئي. اسان، پاڻ سڳورن عليه السلام کي اچي ٻڌايو. پاڻ سڳورا آيا ۽ ڪوڏر ڪڍي بسم الله پڙهي هڪ ڌڪ هنيائون (ته هڪ ٽڪرو ڀڃي پيو) ۽ فرمايائون ته "الله اڪبر! مون کي شام ملڪ جون ڪنجيون ڏنيون ويون آهن. الله جو قسم! آئون هينئر اتي جا ڳاڙها محل پيو ڏسان." پوءِ ٻيو ڌڪ هنيائون ته هڪ ٻيو ٽڪر ٿي پيو ۽ فرمايائون ته: "مون کي فارس ڏنو ويو آهي. والله! آئون مدائن جو اچو محل پيو ڏسان." پوءِ ٽيون ڌڪ هنيائون ۽ فرمايائون ته: "بسم الله" ته باقي بچيل چپ به ٿي پئي. پوءِ فرمايائون ته: "والله! آئون هن مهل، هن جاءِ تان صنعاء جو قاتڪ ڏسي رهيو آهيان." (4)

1 - اهو واقعو صحيح بخاريءَ ۾ آيل آهي. (588/2، 589).

2 - ابن هشام (218/2).

3 - صحيح بخاري (588/2).

4 - سنن نسائي (56/2)، مسند احمد، هي لفظ نسائيءَ جا نه آهن. نسائيءَ ۾ عن رجل من الصحابة آهي.

ابن اسحاق به اهڙي ئي هڪ روايت حضرت سلمان فارسي رضي الله عنه کان آندي آهي. (1)

جيئن ته مدينو اتر پاسي کانسواءِ ٻين سڀني پاسن کان لاري وارن جبلن ۽ ڪجين جي باغن سان گهيريل آهي ۽ پاڻ سڳورن صلوات الله عليه هڪ ماهر فوجي ۽ وانگر اهو ڄاتو ٿي ته مديني تي هيڏي وڏي لشڪر جي چڙهائي رڳو اتر کان ئي ٿي سگهي ٿي. ان ڪري پاڻ سڳورن صلوات الله عليه رڳو ان پاسن کاهي کوٽرائي. مسلمانن کاهي کوٽڻ جو ڪم لاڳيتو پئي ڪيو. سڄو ڏينهن کوٽائي ڪندا هئا ۽ شام جو گهر موٽندا هئا. تان ته مديني جي ڀتين تائين ڪافرن جو لشڪر پهچڻ کان اڳ رٿيل پروگرام موجب کاهي تيار ٿي وئي. (2)

هوڏانهن قريش پنهنجو چئن هزارن جو لشڪر وٺي مديني پهتا ته روم، جرف، زغابه جي وچ ۾ مجمع الاسيال وٽ اچي لٿا ۽ ٻئي پاسي غطفان ۽ سندن نجدي ساٿي ڇهه هزار فوج وٺي اچي احد جي اترئين پاسي ڏنڊ نقمي وٽ لٿا. جيئن قرآن ۾ آهي ته:

﴿وَلَمَّا رَأَى الْمُؤْمِنُونَ الْأَحْزَابَ قَالُوا هَذَا مَا وَعَدَنَا اللَّهُ وَرَسُولُهُ وَصَدَقَ اللَّهُ وَرَسُولُهُ وَمَا زَادَهُمْ إِلَّا إِيمَانًا وَتَسْلِيمًا (22)﴾ (الأحزاب)

”۽ جيڏي مهل مؤمنن (ڪافرن جي) لشڪرن کي ڏٺو (تنهن مهل) چيائون ته هي اهو انجام آهي، جيڪو الله ۽ سندس پيغمبر اسان کي ڏنو هو ۽ الله ۽ سندس پيغمبر سچ فرمايو هو ۽ انهيءَ (حالت) سندن اصمان ۽ اطاعت جي جذبي کي هيڪاري وڌايو.

پر منافق ۽ ضعيف اعتقاد وارا ماڻهو اهو لشڪر ڏسي ڊڄي ويا.

﴿وَإِذْ يَقُولُ الْمُنَافِقُونَ وَالَّذِينَ فِي قُلُوبِهِمْ مَرَضٌ مَا وَعَدَنَا اللَّهُ وَرَسُولُهُ إِلَّا غُرُورًا (12)﴾ (الأحزاب)

”۽ ان مهل منافقن ۽ جن جي دلين ۾ بيماري آهي تن چيو ٿي ته الله ۽ سندس پيغمبر اسان کي ڏنو آهي.“

بهرحال هن لشڪر کي منهن ڏيڻ لاءِ پاڻ سڳورا صلوات الله عليه به ٿي هزار مسلمان وٺي پهتا ۽ ڪوه سلح کي پٺ ڏئي قلعي بنديءَ وانگر ٿي وينا. سامهون کاهي هئي، جيڪا مسلمانن ۽ ڪافرن جي وچ ۾ هئي. مسلمانن جو نعرو حم لاينصرون (حمر هنن جي مدد نه ڪئي وڃي) هو. مديني جي واڳ حضرت ابن ام مڪتوم رضي الله عنه جي حوالي هئي ۽ عورتن ۽ ٻارن کي مديني جي قلعي ۽ کوٽڻ ۾ محفوظ ڪيو ويو هو.

جڏهن مشرڪ حملي لاءِ وڌيا ته ڇا ڏسن ته هڪ ويڪري کاهي سندن ۽ مديني جي وچ ۾ ٺهيل آهي. مجبور ٿي کين گهيرا ڪرڻو پيو، جڏهن ته اهي گهران نڪرڻ مهل ان لاءِ سنڀري نه نڪتا

1 - ابن هشام (219/2).

2 - ابن هشام (220/2).

هئا، ڇو ته بچاءَ جو اهو طريقو سندن ئي چواڻي ته هڪ اهڙي چال هئي، جنهن کان عرب اڻڄاڻ هئا. تنهنڪري هنن ان ڳالهه بابت سوچيو ئي ڪونه هو.

مشرك، ڪاهيءَ وٽ پهچي ڪاوڙ ۾ ڦيرا پائڻ لڳا. کين اهڙي جڳهه جي ڳولها هئي، جتان اهي لهي سگهن. هوڏانهن مسلمان سندن چر پر تي پوري پوري نظر رکيو ويٺا هئا ۽ انهن تي تير به وسائي رهيا هئا ته جيئن کين ڪاهيءَ جي ويجهو اچڻ جي همت نه ٿئي ۽ اهي ان ۾ ٿي نه پون ۽ نه مني وجهي رستو ٺاهي سگهن.

هوڏانهن قريش جي شهسوارن کي گهڀرو ڪري ويهڻ واري ڳالهه نه پئي آئي. اها سندن عادت ۽ شان جي خلاف ڳالهه هئي، تنهنڪري سندن هڪ ٽولو، جنهن ۾ عمرو بن عبد ود، عڪرم بن ابي جهل ۽ ضرار بن خطاب وغيره شامل هئا، هڪ سوڙهي پاسي کان ڪاهيءَ ٽپي ويا ۽ سندن گهوڙا ڪاهي ۽ سلع جي وچ ۾ ڦيرا پائڻ لڳا. هوڏانهن حضرت علي رضي الله عنه ڪجهه مسلمان ساڻ وٺي نڪتو ۽ جنهن جڳهه تان انهن گهوڙا ٽپايا هئا، ان تي قبضو ڪري سندن موٽڻ جو لنگهه بند ڪري ڇڏيائين. ان تي عمرو بن عبدود دويدو مقابلي لاءِ للڪاريو. حضرت علي رضي الله عنه ساڻس هڪ هڪائي ڪرڻ لاءِ سامهون ٿيو ۽ هڪ اهڙي توڪ هنياڻينس جو هو آبي مان نڪري گهوڙي تان لهي پيو ۽ حضرت علي رضي الله عنه جي آمهون سامهون ٿيو. هو ڏاڍو دلير هو، ٻنهي ۾ ڏاڍو مقابلو ٿيو. ٻنهي هڪ ٻئي تي لڳا تار وار ڪيا. نيٺ حضرت علي کيس پورو ڪري ڇڏيو. ٻيا مشرڪ ڪاهي ٽپي پڄي ويا. اهي ايترو ته ڊڄي ويا جو عڪرم پڇڻ مهل پنهنجو نيزو به ڇڏي ويو.

مشرڪن ڪيترائي ڀيرا ڪاهي اڪرڻيا ان کي پري گس ٺاهڻ لاءِ وڏي ڪوشش ڪئي، پر مسلمانن ڏاهپ سان کين پري رکيو ۽ کين اهڙا ته تير هنيا جو سندن هر اڀاءُ ناڪام ٿيو.

اهڙا مقابلا هلندي پاڻ سڳورن عليه السلام ۽ اصحابي سڳورن رضوان الله عليهم اجمعين کان ڪي نمازون به ڇڏائجي ويون. جيئن صحيحين ۾ حضرت جابر رضي الله عنه کان آيل آهي ته حضرت عمر رضي الله عنه خندق واري جنگ هلندي پاڻ سڳورن عليه السلام آڏو ڪافرن خلاف ڳالهائيندي چيو ته: يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! اڄ آئون ڏاڍي مشڪل سان سج لهڻ مهل نماز پڙهي سگهيس. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: ولله! آئون ته اڃا تائين به نماز نه پڙهي سگهيو آهيان. ان کانپوءِ اسان پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ بظمان ۾ لٿاسين. پاڻ سڳورن عليه السلام نماز لاءِ وضو ڪيو ۽ اسان به وضو ڪيو. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام وچين نماز پڙهي. اها سج لٿي کانپوءِ جي ڳالهه آهي. ان کانپوءِ سانجهيءَ جي نماز پڙهي. <sup>(1)</sup>

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (2/590).

پاڻ سڳورن ﷺ کي ان نماز جي ڇڏائڻ جو ايڏو ڌڪ هو جو پاڻ سڳورن ﷺ، مشرڪن کي پارائو ڏنو. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ حضرت علي رضه کان آيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ خندق واري ڏينهن فرمايو ته: "الله! انهن مشرڪن لاءِ سندن گهرن ۽ قبرن کي باهه سان ڀري ڇڏي، ڇو ته انهن اسان کي وڃين نماز (پڙهڻ) کان مشغول رکيو، تان ته سج لهي ويو." (1)

مسند احمد ۽ مسند شافعي ۾ آيل آهي ته مشرڪن، پاڻ سڳورن ﷺ کي اڳين، وڃين، سانجهي ۽ سومهڙي نماز پڙهڻ کان مصروف رکيو. تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ اهي سڀ نمازون گڏي پڙهيون. امام نووي بيان ڪري ٿو ته انهن روايتن ۾ تطبيق جي صورت اها ٿيندي ته خندق واري جنگ ڪافي ڏينهن هلي. ان ڪري ڪڏهن هڪ صورت ٿي ته ڪڏهن بي. (2)

ان مان معلوم ٿئي ٿو ته مشرڪن پاران ڪاهي ٿيڻ جي ڪوشش ۽ مسلمانن پاران بچاءَ جو سلسلو ڪئي ڏهاڙا هلندو رهيو، پر جيئن ته ٻنهي فوجن جي وچ ۾ ڪاهي هئي، ان ڪري آمهون سامهون لڙائي نه ٿي سگهي، رڳو تيراندازي ٿيندي رهي.

ان تيراندازيءَ سان ٻنهي ڌرين جا اڱرين تي ڳڻڻ جيترا ماڻهو مارجي به ويا. يعني ڇهه مسلمان ۽ ڏهه مشرڪ، جن مان هڪ يا ٻه ڄڻا تراڙن جو ڪاڇ بڻجي ويا.

ان ئي تيراندازيءَ دوران حضرت سعد بن معاذ رضه کي به هڪ تير لڳو، جنهن سان سندن ٻانهن جي وڏي رڳ ڪپجي وئي. کين حبان بن عرقه نالي هڪ مشرڪ قريشيءَ جو تير لڳو هو. حضرت سعد رضه (گهائڻو کانپوءِ) الله کي ٻاڏايو ته يا الله! تون ڇاڻين ٿو ته جنهن قوم تنهنجي رسول کي ڪوڙو قرار ڏنو ۽ ان کي تڙي ڇڏيو، انهن سان تنهنجي راهه ۾ جهاد ڪرڻ مون کي جيڏو وڻندڙ آهي، ايڏو ڪنهن پيءُ قوم سان ڪونهي. يا الله! آئون سمجهان ٿو ته هاڻي تو اسان جي ۽ هنن جي ويڙهه کي توڙ تائين پڄاڻي ڇڏيو آهي. بس جيڪڏهن اڃا به قريشن سان وڙهڻ جو مرحلو رهيل هجي ته مون کي ان لاءِ حياتي رڪ ته آئون تنهنجي راهه ۾ جهاد ڪريان ۽ جي تو لڙائيءَ کي توڙ تي رسائي ڇڏيو آهي ته پوءِ هيءُ گهائڻ پلي ته منهنجي موت جو ڪارڻ بڻائي ڇڏي. (3) سندن ان دعا جو آخري ٽڪرو اهو هو ته (پر) مون کي موت نه ڏي، جيستائين بنو قريظ جو انجام ڏسي منهنجيون اکيون نري نه وڃن. (4) مطلب ته هڪ پاسي مسلمان جنگ جي ميدان ۾ اهڙا سور سهي رهيا هئا ته ٻئي پاسي سازشي پنهنجن حرڪتن ۾ رڌل هئا. سندن ڪوشش هئي ته مسلمانن جي جسم ۾ پنهنجو

1 - صحيح بخاري (590/2).

2 - مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 287) - شرح مسلم للنووي (1/227).

3 - صحيح بخاري (591/3).

4 - ابن هشام (227/2).

زهر اوتي ڇڏين. جيئن بنو نضير جو سڀ کان وڏو ڏوهاري حبي بن اخطب، بنو قريظ وارن وٽ آيو ۽ سندن سردار كعب بن اسد قريظي وٽ پهتو. هي كعب بن اسد اهو ئي ماڻهو آهي، جنهن کي بنو قريظ پاران ٺاهه ڪرڻ جا اختيار هئا ۽ جنهن پاڻ سڳورن ﷺ سان ٺاهه ڪيو هو ته جنگ مهل پاڻ سڳورن ﷺ جي مدد ڪندو. (جيئن پوئين صفحن تي اچي چڪو آهي) حبي اچي سندن در تي ڌڪ هنيو ته هن کڻي در بند ڪيو، پر حبي ساڻس اهڙيون ڳالهيون ڪرڻ لڳو جو نيٺ کيس در کولڻو پيو. حبي چيو ته: "اي كعب! آئون سدائين تو وٽ عزت ۽ (فوج جي) بي پناهه لشڪر سان پهتو آهيان. مون قريظن کي سندن سردارن ۽ اڳواڻن سميت اٺي روم جي مجمع الاسيال ۾ لائو آهي ۽ بنو غطفان کي سندن اڳواڻن ۽ سردارن سميت احد وٽ ڏنڊ نقمي وٽ ويهاريو آهي. انهن مون سان عهد ڪيو آهي ته محمد ﷺ ۽ سندس ساٿين کي پورو ڪري ساهه پٽيندا."

كعب چيو ته: "الله جو قسم! تون مون وٽ سدائين واري ڌلت ۽ فوجن جو ڪڪر کڻي آيو آهين، جيڪو رڳو چمڪي ۽ گوڙ پيو ڪري، پر ان ۾ آهي ڪجهه به ڪونه. حبي! تو تي ڌڪ پيو ٿئي. مون کي منهنجي حال تي ڇڏي ڏي. مون محمد ﷺ ۾ صدق ۽ ايمان کانسواءِ ڪجهه نه ڏٺو آهي."

پوءِ به حبي کيس فريب ڏئي مڃرائڻ جي ڪوشش ڪندو رهيو ۽ نيٺ کيس مڃائي ويو. باقي کيس اهو عهد ڪرڻو ڏيڻو پيو ته جيڪڏهن قريظ، محمد ﷺ کي پورو ڪرڻ کانسواءِ موتيا ته آئون به توسان گڏ تنهنجي قلعي ۾ هلندس ۽ پوءِ جيڪو انجام توهان جو ٿيندو، اهو ئي منهنجو به ٿيندو. حبي جي ان واعدو کانپوءِ كعب بن اسد، پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪيل ٺاهه توڙيو ۽ مسلمانن سان رڻيل ذميوارين کان آجوتو، انهن جي خلاف مشرڪن پاران وڙهڻ نڪتو.<sup>(1)</sup>

ان کانپوءِ بنو قريظ جا يهودي عملي طور تي جنگ ۾ حصو وٺڻ لڳا. ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته بيبي صفيه بنت عبدالمطلب رضي الله عنها، حضرت حسان بن ثابت رضي الله عنه جي فارغ نالي قلعي ۾ هئي. حضرت حسان رضي الله عنه، عورتن ۽ ٻارن سان گڏ اتي هو. بيبي صفيه رضي الله عنها جو بيان آهي ته اسان وٽان هڪ يهودي مٽيو ۽ قلعي کي ڦيرا پائڻ لڳو. اها تڏهن جي ڳالهه آهي، جڏهن بنو قريظ، پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪيل ٺاهه توڙي، پاڻ سڳورن ﷺ سان وڙهڻ لڳا هئا ۽ اسان ۽ سندن وچ ۾ ڪير به نه هو، جيڪو اسان کي بچائي... پاڻ سڳورا رضي الله عنه، مسلمانن سميت دشمنن آڏو گهيريل هئا. جيڪڏهن اسان تي ڪو ڪاهي اچي ها ته پاڻ سڳورا رضي الله عنه (دشمنن کي) ڇڏي نه اچي سگهن ها. ان ڪري مون چيو ته "اي حسان رضي الله عنه! هي يهودي، جيئن توهان ڏسو پيا ته

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/220، 221).

قلعي جا چڪر پيو ڪٿي ۽ مون کي ڊپ آهي ته هي بين يهودين کي به اسان جي ڪمزوريءَ کان آگاهه ڪندو. هوڏانهن پاڻ سڳورا ﷺ ۽ اصحابي سڳورا رضي الله عنهم اهڙا قاتل آهن جو اسان جي مدد لاءِ نه پڇي سگهندا. ان ڪري اوهان وجو ۽ هن کي ماري ڇڏيو. "حضرت حسان رضى الله عنه چيو ته: "والله توهان ته ڄاڻو ٿيون ته آئون ان ڪم جو ماڻهو نه آهيان. بيبي صفيه رضي الله عنها جو بيان آهي ته پوءِ مون پاڻ سندرو ٻڌو ۽ هڪ بند ڪنيو ۽ قلعي مان نڪري ان يهوديءَ وٽ پڳيس ۽ بند هڻي هڻي کيس ماري وڌم. ان کان پوءِ قلعي ۾ موتي اچي حسان رضى الله عنه کي چيمر ته: "وڃي هن جا هٿيار پنهور ڪڍي اچ، جيئن ته هو مرد آهي، ان ڪري مون سندس هٿيار کونه لاتا آهن." حسان رضى الله عنه چيو ته: "مون کي سندس هٿيارن ۽ سامان جي گهرج ڪانهي." (1)

حقيقت اها آهي ته مسلمانن تي ٻارن ۽ عورتن جي سنڀال لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي پٺيءَ جي ان دليرائي ڪارنامي جو گهرو ۽ چڱو اثر پيو. هن ڪارروائيءَ مان شايد يهودين اهو سمجهيو ته انهن قلعن ۽ عورتن ۾ به مسلمانن جو حفاظتي لشڪر وينل آهي، جڏهن ته اتي ڪوبه لشڪر ڪونه هو. اهڙيءَ طرح يهودين وري اها همت نه ڪئي. باقي اهي مشرڪن کي ساز و سامان لاڳيتو پهچائيندا رهيا، جن مان ويهه اٺ مسلمانن به جهلي ورتا.

يهودين جي ٺاهه جي خلاف ورزيءَ جي ڄاڻ پاڻ سڳورن ﷺ تائين پهتي ته پاڻ سڳورن ﷺ هڪدم پڇا ڳاڇا ڪرائي ته جيئن بنوقريظ جي موقوف جو پتو پوي ۽ ان جي روشنيءَ ۾ ڪو قدم ڪنيو وڃي. پاڻ سڳورن ﷺ پڪ ڪرڻ لاءِ حضرت سعد بن معاذ رضى الله عنه، سعد بن عباده رضى الله عنه، عبدالله بن رواح رضى الله عنه ۽ خوات بن جبير رضى الله عنه کي موڪليو ۽ کين هدايت ڪئي ته وجو! ڏسو! بنو قريظ بابت جيڪا ڄاڻ ملي آهي، اها سچي آهي يا نه؟ جي سچي آهي ته واپس اچي مون کي اشارن ۾ ٻڌائجو. متان ماڻهو هانءُ هاري ويهن ۽ جيڪڏهن اهي ٺاهه تي قائل آهن ته پوءِ ماڻهن ۾ پڙهو ڏياري ڇڏجو. جڏهن اهي بنو قريظ جي ويجهو پهتا ته کين پڇڙائي تي ڏنائون. انهن کليو ڪلايو گاريون پئي ڏنيون ۽ دشمنيءَ جون ڳالهيون پئي ڪيون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي گهٽ وڌ پئي ڳالهايو. چوڻ لڳا ته: "ڪهڙو الله جو رسول...؟ اسان جي ۽ محمد ﷺ جي وچ ۾ ڪوبه وعدو وعيد ٿيل ڪونهي." اهو ٻڌي اهي موتي آيا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي اشاري ۾ ٻڌايائون ته: "عضل ۽ قاره." يعني جهڙيءَ طرح عضل ۽ قاره وارن رجيع وارن سان ٺڳي ڪئي هئي، اهڙيءَ طرح يهودي به وعدي خلافي ڪرڻ تي سندرو ٻڌيو بيٺا هئا.

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/228)، حافظ ابن حجر چوي ٿو ته امام احمد هن کي قومي سند سان گڏ عبدالله بن زبير کان بيان ڪيو آهي. ڏسو فتح الباري (285/6) - (18).

جيتوڻيڪ انهن اصحابين لڪ ۾ ڳالهه ڪئي هئي، ته به عام ماڻهن کي حالتن جو پتو پئجي ويو ۽ اهڙيءَ طرح هڪ خوفناڪ خطرو پيدا ٿي ويو.

حقيقت ۾ ان مهل مسلمان ڏاڍي نازڪ حالت مان گذري رهيا هئا. پٺيان بنو قريظ هئا، جن جو حملو روڪڻ لاءِ سندن ۽ مسلمانن جي وچ ۾ ڪوئي ڪونه هو. اڳيان مشرڪن جو وڏو لشڪر هو، جن کي ڇڏي پٺيان هٿ ممڪن نه هو. مٿان وري مسلمان عورتون ۽ ٻار بنا ڪنهن حفاظتي اپاءَ جي بدعهد يهودين جي ويجهو هئا، ان ڪري ماڻهن ۾ بيچيني پيدا ٿي وئي، جنهن جي ڪيفيت هن آيت ۾ بيان ڪيل آهي.

﴿وَإِذْ زَاغَتِ الْأَبْصَارُ وَبَلَغَتِ الْقُلُوبُ الْحَنَاجِرَ وَتَظُنُّونَ بِاللَّهِ الظُّنُونَا (10) هُنَالِكَ ابْتُلِيَ الْمُؤْمِنُونَ وَزُلْزِلُوا زَلْزَالًا شَدِيدًا (11)﴾ (الأحزاب)

”ان مهل اکيون ڦاٽي پيون ۽ دليون (دهشت کان نرگهت کي پهتيون ۽ الله جي باري ۾ ڪئي گمان پانيون ٿي اتي مؤمنن کي پرڪيو ويو ۽ کين سخت لوڏيو ويو.“

اهڙي موقعي تي منافقن به اندر جو زهر اوجاڳي ڪڍيو ۽ چيو ته محمد ﷺ ته اسان سان وعدا ٿي ڪيا ته اسان کي قيصر ۽ ڪسري جا خزانا ملندا ۽ هتي اها حالت آهي جو ڪاڪوس پيشاب تي نڪرڻ لاءِ به سر جو سانگو لاهڻو ٿو پوي. ڪن ٻين منافقن پنهنجي قوم جي مهندارن آڏو به چيو ته اسان جا گهر ويرين لاءِ ڪليا پيا آهن، موڪل ڏيو ته موتي وڃون، ڇو ته اسان جا گهر شهر کان ٻاهر آهن. نوبت اتي اچي رسي جو بنو سلمه جا قدم اڪرڻ لڳا ۽ اهي پنهنجي موتن جو سوچڻ لڳا.

اهڙن ماڻهن بابت ئي الله تعاليٰ اهو ارشاد فرمايو آهي ته:

﴿وَإِذْ يَقُولُ الْمُنَافِقُونَ وَالَّذِينَ فِي قُلُوبِهِمْ مَرَضٌ مَا وَعَدَنَا اللَّهُ وَرَسُولُهُ إِلَّا غُرُورًا (12) وَإِذْ قَالَتْ طَائِفَةٌ مِّنْهُمْ يَا أَهْلَ يَثْرِبَ لَا مُقَامَ لَكُمْ فَارْجِعُوا وَيَسْتَأْذِنُ فَرِيقٌ مِّنْهُمُ النَّبِيَّ يَقُولُونَ إِنَّ بُيُوتَنَا عَوْرَةٌ وَمَا هِيَ بِعَوْرَةٍ إِن يُرِيدُونَ إِلَّا فِرَارًا (13)﴾ (الأحزاب)

”۽ ان مهل منافقن ۽ جن جي دلين ۾ بيماري هئي تن چيو ٿي ته الله ۽ سندس پيغمبر اسان کي ڏڳيءَ کانسواءِ (پيو) ڪو انجام نه ڏنو آهي ۽ ان مهل منجهائن هڪ ٽولي چيو ته اي مديني وارو! اوهان لاءِ (هتي ترسڻ جي) ڪا جاءِ ڪانهي، تنهنڪري موتو ۽ منجهائن هڪ ٽوليءَ، پيغمبر ﷺ کان موڪلايو ٿي ۽ چوڻ لڳا ته اسان جا گهر هيڪلا آهن. جڏهن ته اهي هيڪلا نه هئا، ڇڏڻ کانسواءِ (پيو) ڪو ارادو نه هئو.“

هڪ پاسي لشڪر جو اهو حال هو، ٻئي پاسي پاڻ سڳورن ﷺ جي حالت اها هئي جو پاڻ سڳورن ﷺ بنو قريظ جي بدعدهيءَ جي خبر ٻڌي پنهنجو چهرو ڪپڙي سان ڍڪي ڇڏيو ۽ گهڙي

دير تائين سنوان سڌا لیتيا پيا هئا. اها حالت ڏسي ماڻهن جي بيچيني وپتر وڌي وئي، پر ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ پراميد ٿي اٿيا ۽ الله اڪبر چوندي فرمائون ته: مسلمانو! الله جي مدد ۽ سوپ جي خوشخبري ٻڌي وٺو ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ايندڙ حالتن سان منهن ڏيڻ لاءِ پروگرام ٺاهيو ۽ ان پروگرام تحت ئي مديني جي سنڀال لاءِ ڪجهه محافظ موڪليا ته جيئن مسلمانن کي اڻڄاڻ ڏسي يهودي، عورتن ۽ ٻارن تي ڪاهي نه اچن. پر ان مهل هڪ فيصلا ڪن قدم جي ضرورت هئي، جنهن سان دشمنن جي مختلف ٽولن کي هڪ ٻئي کان ڪٽي ڇڏجي. ان مقصد لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ بنو غطفان جي ٻنهي سردارن، عيينه بن حصن ۽ حارث بن عوف سان مديني جي ايت جي ٽين پتي ڏيڻ تي ٺاه ڪرڻ جو سوچيو ته جيئن اهي ٻئي سردار پنهنجن قبيلن ۾ موتي وڃن ۽ مسلمان، قرينن جي اڳيئي آزمايل سگهه کي توڙڻ لاءِ انهن کي اڪيلو ڪري انهن تي ڪاپاري ڏک هڻڻ لاءِ آڃا ٿي وڃن. ان رت تي ڪجهه ڳالهه ٻولهه به ٿي پر جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ ۽ حضرت سعد بن عبادہ رضی اللہ عنہ سان صلاح ڪئي ته انهن ٻنهي هڪ زبان ٿي چيو ته: يا رسول الله ﷺ! جيڪڏهن الله! اوهان کي اهو حڪم ڏنو آهي ته پوءِ ته هر حال ۾ اهو مڃڻو آهي، پر جي رڳو اوهان اسان جي ڪري ائين ڪرڻ ٿا گهرو ته اسان کي ان جي گهرج ڪانهي. جڏهن اسين ۽ اهي بت پرست هئاسين تڏهن به اهي ماڻهو ميزباني يا وڪري ۽ خريد ڪانسواءِ هڪ ڍاڻو به اسان کان نٿي وٺي سگهيا. هاڻ جڏهن الله تعاليٰ اسان کي سڌي راهه ڏيکاري مسلمان ڪيو آهي ۽ توهان وسيلي عزت ۽ مان ڏنو آهي ته پوءِ هاڻ اسين کين پنهنجو مال ڇو ڏيون؟ واللہ اسان ته انهن کي رڳو پنهنجون تراڙون ڏينداسين. پاڻ سڳورن ﷺ ٻنهي جي راءِ سان سهمت ٿيندي فرمايو ته: جڏهن مون ڏٺو ته سڄو عربستان هڪ ئي اوهان تي ڪاهي آيو آهي، تڏهن مون اوهان جي ڪارڻ اهو ڪم ڪرڻ گهريو پئي.

۽ پوءِ... الله تعاليٰ جي مهربانيءَ سان، دشمنن ڏليل ٿيا. سندن لشڪر هارايو ۽ سندن سگهه ٽٽي پئي. ٿيو هيئن جو بنو غطفان جو هڪ ماڻهو، جنهن جو نالو نعيم بن مسعود بن عامر اشجعي هو، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيو ۽ چيائين ته: يا رسول الله ﷺ! آئون مسلمان ٿي ويو آهيان، پر منهنجي مسلمان ٿيڻ جو پتو منهنجي قوم کي ناهي، تنهنڪري اوهان حڪم ڪريو ته آئون ڇا ڪريان؟ پاڻ سڳورن ﷺ چيو ته: تون اڪيلو آهين (تنهنڪري ڪو جنگي عمل ته نٿو ڪري سگهين باقي) جيتري قدر ٿي سگهئي، کين پاڙيو ڪندو ره. ڇو ته ويڙهه ته حڪمت عمليءَ جو نالو آهي. ان تي حضرت نعيم رضی اللہ عنہ هڪدم بنو قريظ وٽ پهتو. جاهليت ۾ انهن سان سندس گهڻي ات ويني هئي. اتي پهچي انهن کي چيائين ته: توهان ڄاڻو ٿا ته مون کي توهان سان گهرو لڳاءُ آهي. انهن چيو



ته هائو. نعيم چيو ته چڱو پوءِ ٻڌو. قريش جو معاملو پيو آهي، هي توهان جو علائقو آهي، هتي توهان جا گهر بار آهن، مال ملڪيتون آهن. توهان اهي ڇڏي ڪيڏانهن ويندا. پر جڏهن قريش ۽ غطفان، محمد ﷺ سان وڙهڻ آيا ته توهان محمد ﷺ جي خلاف سندن سات ڏنو. ظاهر آهي ته انهن جو هتي گهر گهات ڪونهي، نه ڪو مال ملڪيت آهي، نه ئي بار بچا آهن. ان ڪري کين وجهه مليو ته ڌڪ ڪري ويندا نه ته ٽپڙ ويڙهي هليا ويندا. پوءِ توهان هوندا ۽ محمد ﷺ هوندو. تنهن کانپوءِ هو جهڙيءَ طرح چاهيندو اهڙيءَ طرح توهان سان پلانڊ ڪندو. ان تي بنو قريظ وارن اڪيون پٽيون ۽ چيائون ته نعيم! ٻڌاءِ ته هاڻي ڇا ٿو ڪري سگهجي؟ هن ورائيو ته ڏسو! قريش جيستائين توهان کي پنهنجا ڪي ماڻهو يرغمالي ڪري نه ڏين، تيستائين توهان ساڻن جنگ ۾ شامل نه ٿيو. قريظ وارن چيو ته توڏاڏي سني صلاح ڏني آهي.

ان کانپوءِ حضرت نعيم رضي الله عنه قريش وٽ ويو ۽ چيائين ته: "منهنجي گهڻ گهرائي ۽ خلوص جي ته اوهان کي خبر آهي؟" هنن چيو ته "هاڻو." حضرت نعيم رضي الله عنه چيو ته: "پوءِ ٻڌو، يهودين، محمد ﷺ ۽ سندن ساٿين سان جيڪا ٺڳي ڪئي آهي، ان تي اهي لڄارا آهن، هاڻ انهن ۾ خط و ڪتابت پئي هلي ته اهي (يهودي) توهان کان ڪجهه يرغمالي وٺي ان (محمد ﷺ) جي حوالي ڪن پوءِ توهان جي خلاف محمد ﷺ سان ٺاه ڪن. تنهنڪري جي اهي يرغمالي گهرن ته متان ڏيو." ان کانپوءِ غطفان وٽ پهچي اها ئي ڳالهه ورجايائين (۽ انهن جا به ڪن ڪڙا ڪري ڇڏيائين)

ان کانپوءِ جمعي ۽ ڇنڇر جي وچ واري رات جو قريش، يهودين کي نياپو ڪيو ته اسان جي رهائش مناسب جڳهه تي ناهي، اسانجا گهوڙا ۽ اٺ مرن پيا، تنهنڪري هتان اسين ۽ اتان اوهين اٿو ته محمد ﷺ تي حملو ڪريون، پر يهودين جواب ڏنو ته اڄ چنڇر جو ڏينهن آهي ۽ توهان ته ڄاڻو ٿا ته اسان کان اڳ جن ماڻهن هن ڏينهن بابت شرعي حڪم توڙيو هو، انهن تي ڪهڙو عذاب نازل ٿيو هو. ان کانسواءِ توهان جيستائين پنهنجا ڪجهه ماڻهو يرغمال ڪري نه ڏيندو، اسين ڪونه وڙهنداسين. قاصد جڏهن اهو جواب کڻي موٽيو ته قريش ۽ غطفان وارن چيو ته: "والله! نعيم رضي الله عنه سچ چيو هو." پوءِ انهن، يهودين کي چورائي موڪليو ته الله جو قسم! اسين توهان کي پنهنجو هڪ ماڻهو به نه ڏينداسين. بس اوهان اسان سان گڏ نڪرو ۽ (پنهي پاسن کان) محمد ﷺ تي ڪاهي پئو. اهو ٻڌي قريظ وارن پاڻ ۾ چيو ته "والله نعيم رضي الله عنه اسان کي سچ چيو هو." اهڙيءَ طرح پنهي ڌرين جو هڪٻئي تان اعتبار ڪڍي ويو. سندن صفتن ۾ قوت پئجي وئي ۽ اهي همت هاري وينا.

بئي طرف مسلمان الله تعاليٰ کي ٻاڏائي رهيا هئا ته: اَللّٰهُمَّ اسْتُرْعَوْرَاتِنَا وَاٰمِن رَوْعَاتِنَا ”(اي الله! اسان جي ڍڪ رک ۽ اسان کي خطرن کان بچاءِ) ۽ پاڻ سڳورا رضي الله عنه هيءَ دعا گهري رهيا هئا ته:

اللَّهُمَّ مُنْزِلَ الْكِتَابِ سَرِيعِ الْحِسَابِ اللَّهُمَّ اهْزِمِ الْأَحْزَابَ اللَّهُمَّ اهْزِمْهُمْ وَزَلْزِلْهُمْ (1) (اي الله! اي كتاب لاهڻ وارا! اي تڪڙو حساب ڪرڻ وارا! هنن لشڪرن کي شڪست ڏي. اي الله! انهن کي شڪست ڏي ۽ جهنجهوڙي ڇڏين. انيڻ الله تعاليٰ پنهنجي رسول ۽ مسلمانن جو عرض اڳهايو ۽ مشرڪن جي صفن ۾ قوت ۽ بزدلي ڦهلائڻ کانپوءِ الله تعاليٰ انهن تي سخت هوائن وارو طوفان موڪليو. جنهن سندن تنبو اڪيڙي ڇڏيا، هنديون ايتيون ڪري ڇڏيون، تنبوئن جا قلا اڪوڙي ڇڏيا، ڪاشيءَ به صحيح سلامت نه بچي ۽ ان سان گڏوگڏ فرشتن جو لشڪر موڪليو ويو، جنهن کين جهنجهوڙي ۽ سندن دلين ۾ ڊپ وجهي ڇڏيو. اهڙي تڏي ۽ تيز هوائن واري رات ۾ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت حذيفه يمان رضى الله عنه کي ڪافرن جي خبر وٺڻ لاءِ موڪليو، جنهن محاذ تي پهچي مٿيون حالتون ڏٺيون ۽ مشرڪ موٽڻ لاءِ تيار ٿيندي ڏٺا. حضرت حذيفه رضى الله عنه، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي خبر ڏني. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ صبح جو ڏٺو ته ميدان صاف لڳو پيو هو. الله تعاليٰ دشمنن کي ڪجهه به هڙ حاصل ڪرڻ کان سواءِ موٽائي ڇڏيو هو ۽ ساڻن وڙهڻ مهل پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ڪافي هو. مطلب ته اهڙي طرح الله تعاليٰ پنهنجو واعدو نڀايو ۽ پنهنجي لشڪر جي لڇ رکي، پنهنجن ٻانهن جي مدد ڪئي ۽ اڪيلي ئي سڀني لشڪرن کان ڪٽرايو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ مديني موٽي آيا.

صحيح روايت مطابق هيءَ جنگ شوال سن 5 هـ ۾ لڳي ۽ مشرڪن هڪ مهينو يا اٽڪل هڪ مهينو پاڻ سڳورن ﷺ ۽ مسلمانن کي گهيري رکيو. سڀني ماخذن تي نظر وجهڻ کانپوءِ پتو پئي ٿو ته گهيرو، شوال ۾ ٿيو هو ۽ پڇاڻي ڏي القعد ۾. ابن سعد رضى الله عنه جو چوڻ آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ اربع جي ڏينهن واپس موٽيا ۽ ڏي القعد ختم ٿيڻ ۾ اجا ست ڏينهن هئا.

هيءَ جنگ جاني ۽ مالي نقصان واري ويڙهه نه هئي، پر اعصابي ويڙهه هئي. هن ۾ ڪوبه خوفناڪ ٽڪراءُ نه ٿيو. ان هوندي به اها اسلامي تاريخ جي هڪ فيصلاتي جنگ هئي. ڇو جو ان جي ڪارڻ مشرڪن جا حوصلا نٿي ويا ۽ اها ڳالهه پڌري ٿي ته عربن ۾ ڪابه سگهه مسلمانن جي ننڍڙي قوت کي، جيڪا مديني ۾ وڏي ويجهي رهي آهي، ختم نٿي ڪري سگهي. ڇو ته هن جنگ ۾ جيڏي وڏي قوت آندي وئي هئي، ان کان وڌيڪ سگهه آڻڻ عربن جي وس جي ڳالهه نه هئي. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ احزاب کان موٽڻ تي فرمايو ته: **الآن نَغْرُوهُمْ وَلَا يَغْزُونَنَا نَحْنُ نَسِيرٌ إِلَيْهِمْ** (2)

”هاڻي اسين انهن تي ڪاهينداسين، اهي اسان تي ڪونه ڪاهيندا. هاڻي اسانجو لشڪر انهن ڏي ويندو.“

1 - صحيح بخاري، (411/1) - (590/2).

2 - صحيح بخاري (590/2).

## غزوه بنو قريظ

جنهن ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ خندق کان موٽيا، ان ئي ڏينهن ٻنپهرن مهل جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ، ام سلمه رَضِيَ اللهُ عَنْهَا جي گهر ۾ وهنجي رهيا هئا ته جبرئيل عليه السلام آيو ۽ چيائين ته: "چا توهان هٿيار لاهي ڇڏيا آهن، جڏهن ته فرشتن اڃا هٿيار نه لائا آهن ۽ آئون به قريشن جو پيڇو ڪندي بس هاڻي پيو موتان. اٿو! ۽ پنهنجن سائين کي وٺي بنو قريظ ڏانهن هلو. آئون اڳيان اڳيان پيو هلان. سندن قلعن ۾ زلزلو ڪندس ۽ سندن دلين ۾ ڊپ وجهندس." اهو چئي جبرئيل عليه السلام فرشتن سان گڏ روانو ٿي ويو.

هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ هڪ صحابيءَ کان پڙهو ڏياريو ته جيڪو ماڻهو فرمانبرداريءَ تي قائم آهي، اهو وچين نماز بنو قريظ ۾ ئي هلي پڙهي. ان کانپوءِ مديني جي واڳ حضرت ام مکتوم رَضِيَ اللهُ عَنْهَا جي حوالي ڪري حضرت علي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کي جنگ جو جهنڊو ڏئي اڳيان موڪليائون. حضرت علي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ بنو قريظ جي قلعن وٽ پهتو ته بنو قريظ وارن پاڻ سڳورن ﷺ کي گهٽ وڌ ڳالهائڻ شروع ڪري ڏنو.

ايتري ۾ پاڻ سڳورا ﷺ به مهاجرن ۽ انصارن سان گڏ روانا ٿي چڪا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ، بنو قريظ وٽ پهچي "انا" نالي هڪ ڪوهه وٽ لٿا. عام مسلمانن به لڙائيءَ جو پڙهو ٻڌي هڪدم بني قريظ جي علائقي ڏانهن رخ ڪيو. رستي ۾ وچين نماز جو وقت ٿيو ته ڪن چيو ته اسان کي جيئن حڪم ٿيو آهي، بنو قريظ پهچڻ کانپوءِ ئي نماز پڙهنداسين. پر ڪن اصحابين چيو ته: پاڻ سڳورن ﷺ جو مقصد اهو نه، پر هيءُ هو ته پاڻ تڪڙا روانا ٿيون. ان ڪري انهن وات تي ئي نماز پڙهي. (پاڻ سڳورن ﷺ کي جڏهن ان معاملي جو پتو پيو ته انهن ڪنهن به ڌر کي ڪجهه به نه چيو.)

مطلب ته مختلف ٽولن ۾ ورهائجي اسلامي لشڪر بنو قريظ جي علائقي ۾ پهتو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان اچي مليو. پوءِ بنو قريظ جي قلعن جو گهيراءُ ڪيو ويو. ان لشڪر جو ڪل تعداد ٽي هزار هو ۽ ان ۾ تيهه گهوڙا به هئا.

جڏهن گهيراءُ سخت ٿي ويو ته يهودين جي سردار ڪعب بن اسد، يهودين آڏو ٿي رٿون رکيون.

1. يا ته اسلام قبولين ۽ محمد ﷺ جي دين ۾ داخل ٿي پنهنجي جان، مال ۽ ٻار ٻچا بچائي وٺن. ڪعب بن اسد اها رت ڏيندي چيو ته الله ڄاڻي ٿو ته توهان تي اها ڳالهه پڌري ٿي چڪي آهي ته اهي سچ پچ نبي ۽ رسول آهن ۽ اهي ئي آهن، جن جو ڏس پتو توهان جي ڪتابن ۾ ڏنل آهي.

2. يا پنهنجن ٻارن ٻچن کي پاڻ پنهنجن هٿن سان ماري ڇڏيو. پوءِ تلوارون کڻي پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن نڪري پئو ۽ پوريءَ سگهه سان ٽڪرايو. ان کانپوءِ يا ته سوپارا ٿيو يا سڀئي مارجي وڃو.

3. يا وري پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم تي دوکي سان چنچر جي ڏينهن حملو ڪريو، ڇو ته کين اطمينان هوندو ته اڄ لڙائي نه ٿيندي.

پر يهودين ٿي رٿون رد ڪري ڇڏيون. جنهن تي سندن سردار ڪعب بن اسد (ببزار تي) چيو ته "توهان مان ڪنهن به ماءُ جي بيت مان ڄمڻ کانپوءِ هڪ رات به هوشمنديءَ سان ناهي گذاري." اهي ٿي رٿون رد ڪرڻ بعد بنو قريظہ آڏو رڳو هڪ واٽ تي ٻڃي ته پاڻ سڳورن ﷺ آڏو هٿيار ڦٽا ڪن ۽ پنهنجي پاڳ جو فيصلو انهن تي ڇڏي ڏين. پر انهن چاهيو ٿي ته هٿيار ڦٽا ڪرڻ کان اڳ پنهنجن ڪن مسلمان دوستن سان رابطو ڪن. ٿي سگهي ٿو ته خبر پئجي وڃي ته هٿيار ڦٽا ڪرڻ جو نتيجو ڪهڙو نڪرندو. تنهن کانپوءِ انهن، پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن نياپو موڪليو ته توهان ابو لبابه رضی اللہ عنہ کي اسان ڏانهن موڪليو. اسين ساڻس مشورو ڪرڻ ٿا گهرون. ابو لبابه رضی اللہ عنہ سندن حليف هو ۽ ان جا باغ ۽ خاندان ۽ ٻار ٻچا به ان ئي علائقي ۾ هئا. جڏهن ابو لبابه رضی اللہ عنہ اتي پهتو ته مرد کين ڏسي ڊوڙي پيا ۽ عورتون ۽ ٻار اوچگارون ڏئي روئڻ لڳا. اها حالت ڏسي حضرت ابو لبابه رضی اللہ عنہ جي دل به پرڃي آئي. يهودين چيو ته: "ابو لبابه! ڇا توهان مناسب سمجهو ٿا ته اسين محمد ﷺ جي آڏو هٿيار ڦٽا ڪري ڇڏيون؟" ان ورائيو ته ها! پر گڏوگڏ هٿ سان ڳچيءَ ڏانهن اشارو ڪيائين، جنهن جو مطلب اهو هو ته ڪسجي ويندو. پر کين هڪدم محسوس ٿيو ته اها الله ۽ ان جي رسول سان خيانت آهي. تنهنڪري هو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ موٽڻ بدران سڌو مسجد نبويءَ ۾ پهتو ۽ پنهنجو پاڻ کي هڪ تنبي سان ٻڌي ڇڏيائين ۽ قسم کاڌائين ته هاڻي پاڻ سڳورا ﷺ ئي پنهنجن هٿن سان اچي کين کوليندا ۽ پاڻ ٻيهر بنو قريظہ جي علائقي ڏي ڪونه ويندو. هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ سندن موٽڻ ۾ دير محسوس ڪئي. پوءِ جڏهن تفصيل معلوم ٿين ته چيائون ته جيڪڏهن هو مون وٽ اچي ها ته آئون سندس چوٽڪاري لاءِ دعا گهران ها، پر هاڻي هو اهڙو ڪم ڪري وينو آهي ته هاڻي آئون به تيسٽائين کيس نٿو کولي سگهان، جيستائين الله تعاليٰ سندس توبه قبول نٿو ڪري وٺي.

هوڏانهن ابو لبابه رضی اللہ عنہ جي اشاري کانپوءِ به بنو قريظہ اهو فيصلو ڪيو ته پاڻ سڳورن ﷺ آڏو هٿيار ڦٽا ڪن ۽ اهي جيڪو وٿين سو فيصلو ڪن. جڏهن ته بنو قريظہ هڪ ڊگهي عرصي تائين گهيري ۾ رهي ٿي سگهيا. ڇو ته هڪ پاسي انهن وٽ گهڻي تعداد ۾ کاڌي پيٽي جو سامان هو.

پاڻيءَ جا چشما ۽ ڪوهه هئا، سگهيا ۽ محفوظ قلعا هئا ۽ ٻئي پاسي مسلمان کليل ميدان ۾ رت ڄمائيندڙ سيءَ ۾ بڪ جون سختيون سهي رهيا هئا ۽ خندق واري جنگ کان به اڳ لاڳيتين جنگي مصروفيتن ڪري ٿڪا ٿڪا پيا هئا. پر حقيقت ۾ بني قريظ واري لڙائي هڪ اعصابي لڙائي هئي. الله تعاليٰ سندن دلين ۾ ڊپ وجهي ڇڏيو هو ۽ سندن حوصلا خطا ٿي ويا هئا. حالت اها ٿي جو جڏهن حضرت علي رضيه الله عنه ۽ حضرت زبير رضيه الله عنه اڳرائي ڪئي ۽ حضرت علي رضيه الله عنه گجگوڙ ڪندي اعلان ڪيو ته اي ايمان وارو! الله جو قسم! هاڻي آئون به يا ته اهو چڪندس جيڪو حمزه رضيه الله عنه چڪيو آهي يا هنن جو قلعو فتح ڪري ساهه پٽيندس.

حضرت علي رضيه الله عنه جو اهڙو عزم ڏسي بنو قريظ وارن تڪڙ ۾ پنهنجو پاڻ کي پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم جي حوالي ڪري ڇڏيو ته پاڻ سڳورا صلي الله عليه وسلم جيڪو وٿين اهو فيصلو ڪن. پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم حڪم ڏنو ته مردن کي ٻڌي ڇڏيو. تنهن کانپوءِ محمد بن مسلمه انصاري رضيه الله عنه جي نگرانيءَ ۾ سڀني جا هٿ ٻڌا ويا ۽ عورتن ۽ ٻارن کي مردن کان ڌار ڪيو ويو. اوس قبيلي وارن پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم کي عرض ڪيو ته توهان بنو قينقاع سان جهڙو سلوڪ ڪيو هو، اهو اوهان کي ياد ئي آهي. بنو قينقاع، اسان جي پيءُ خزرج جا حليف هئا ۽ هي وري اسان جا حليف آهن، تنهنڪري انهن تي احسان ڪريو. پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم فرمايو ته: "ڇا توهان ان تي راضي ناهيو ته توهان مان ئي هڪ جڻو فيصلو ڪري؟" انهن چيو ته "ڇو نه." پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم فرمايو ته: "اهو معاملو سعد بن معاذ رضيه الله عنه جي حوالي آهي." اوس وارن چيو ته: "اسين ان تي راضي آهيون."

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم، حضرت سعد بن معاذ رضيه الله عنه کي سڏرايو. پاڻ مديني ۾ هو ۽ لشڪر سان گڏ نه آيو هو، ڇو ته خندق واري جنگ ۾ سندن ٻانهن جي رڳ ڪيڇڻ ڪارڻ زخمي ٿي پيو هو. کين هڪ گڏهه تي چاڙهي پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم وٽ آندو ويو. جڏهن ويجهو پهتو ته سندن قبيلي وارن کين ٻنهي پاسن کان گهيري ورتو ۽ چوڻ لڳا ته "سعد رضيه الله عنه پنهنجن حليفن بابت چڱائي ۽ احسان کان ڪم وٺجو... پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم توهان کي ان لاءِ ئي حڪم (فيصلو ڪندڙ) بنايو آهي ته توهان انهن سان چڱو سلوڪ ڪريو." پر پاڻ چپ چاپ هو. ڪابه ورندي نه پئي ڏنائين. جڏهن ماڻهن گهڻو تنگ ڪيو ته چيائين ته: "هاڻي وقت اچي ويو آهي ته سعد، الله جي معاملي ۾ ڪنهن جي ڪاڻ ڪيڏن جي پرواهه نه ڪري. اهو ٻڌي ڪي ماڻهو ان مهل ئي مديني موٽي ويا ۽ قيدين جي موت جي خبر ڦهلائي ڇڏيائون.

ان کانپوءِ حضرت سعد رضيه الله عنه، پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم وٽ پهتو ۽ پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم فرمايو ته: "پنهنجي سردار جي آجيان لاءِ اتي بيهو." ماڻهن جڏهن کين سواريءَ تان لائو ته پاڻ سڳورن صلي الله عليه وسلم

فرمايو ته: "اي سعد هي ماڻهو تنهنجي فيصلي لاءِ راضي ٿيا آهن." حضرت سعد رضي الله عنه چيو ته: "چا منهنجو فيصلو انهن تي لاڳو ٿيندو؟" ماڻهن چيو ته: "هاڻو هن چيو ته: "مسلمانن تي به؟" ماڻهن چيو ته: "هاڻو" پاڻ ٻيهر سوال ڪيائين ته: "۽ جيڪي هتي آهن، انهن تي به؟" سندن اشارو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ڏانهن هو، پر ادب ۽ رعب ڪري منهن ٻئي پاسي ڪري ڇڏيو هئائين. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "ها، مون تي به." حضرت سعد چيو ته: "پوءِ انهن بابت منهنجو فيصلو اهو آهي ته مردن کي قتل ڪيو وڃي، عورتن ۽ ٻارن کي قيدي بڻايو وڃي ۽ مال ورهايو وڃي." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "تو انهن بابت اهو ئي فيصلو ڪيو آهي، جيڪو ستن آسمانن مٿي الله جو فيصلو آهي."

حضرت سعد رضي الله عنه جو اهو فيصلو ڏاڍو عدل ۽ انصاف تي ٻڌل هو، ڇو ته بنو قريظہ وارن مسلمانن جي زندگي ۽ موت جي نازڪ لمحن ۾ خطرناڪ بدعهدي ڪئي هئي. مٿان وري انهن مسلمانن جي خاتمي لاءِ ڏيڍ هزار تلوارون، ٻه هزار نيزا، ٽي سؤ زرهون ۽ پنج سؤ ڍالون گڏ ڪري رکيون هيون، جيڪي سوڀ ماڻڻ کانپوءِ مسلمانن جي هٿ چڙهيون.

هن فيصلي کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي حڪم تي بنو قريظہ کي مديني آڻي، بنو نجار جي هڪ عورت، جيڪا حارث رضي الله عنه جي نياڻي هئي، جي گهر قيدي ڪري رکيو ۽ مديني جي بازار ۾ ڪاهيون کوٽيون ويون. پوءِ انهن کي ٽولا ٽولا ڪري آندو ويو ۽ انهن ڪاهين ۾ سندن سسيون ڌڙ کان ڌار ڪيون ويون. ڪارروائي شروع ٿيڻ کان ٿوري دير پوءِ بچيل قيدين پنهنجي سردار ڪعب بن اسد کان پڇيو ته: توهان ڇا ٿا پانڻيو؟ اسان سان ڇا ٿي رهيو آهي؟ ان چيو ته: "ڇا توهان ڪٿي به سوچ سمجهه کان ڪم نٿا وٺي سگهو؟ ڏسو نٿا ته سڏڻ وارو رکجي نٿو ۽ وڃڻ وارو موٽي نٿو. الله جو قسم! اهو ته قتل آهي." مطلب ته انهن سڀني جون (جن جو تعداد ڇهه ست سؤ جي وچ ۾ هو) سسيون ڌڙ کان ڌار ڪيون ويون.

بنو قريظہ جي ان برباديءَ سان گڏ بنو نضير جو شيطان ۽ خندق واري جنگ جو وڏو ڏوهاري حُبي بن اخطب به پنهنجي انجام کي رسيو. هو امر المؤمنين بيبي صفيه رضي الله عنها جو پيءُ هو. قريش ۽ غطفان جي موٽڻ کان پوءِ جڏهن بنو قريظہ جو گهيراڙ ڪيو ويو ۽ اهي قلعه بند ٿي ويا ۽ هي به انهن سان گڏ هو. ڇو ته خندق واري جنگ هلندي هو جڏهن ڪعب بن اسد کي عهد توڙڻ تي راضي ڪرڻ آيو هو ته هن وعدو ڪيو هو ۽ هاڻي اهو وعدو نڀائي رهيو هو. کيس جڏهن پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم آڏو آندو ويو ته کيس هڪ وڳو پهريل هو، جنهن کي هن پاڻ ئي گهڻين جاين تان ڦاڙي ڇڏيو هو ته جيئن اهو غنيمت جي مال جي لائق نه رهي. سندس ٻئي هٿ ڳچيءَ جي پويان رسيءَ سان ٻڌل هئا. هن، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي مخاطب ٿيندي چيو ته: "ٻڌو! مون توهان سان وير وجهڻ تي پنهنجو پاڻ کي برو ڀلو نه چيو آهي، پر جيڪو الله سان وڙهي ٿو، اهو نيٺ هارائي ٿو." پوءِ ماڻهن

ڏانهن منهن ڪري چيائين ته: الله جي فيصلي ۾ ڪو حرج ڪونهي. اهو ته پاڳ جو لکيو آهي ۽ هي وڏو قتلام (قتل عام) آهي، جيڪو الله! بني اسرائيل لاءِ لکيو هو. ان کانپوءِ هو ويٺو ۽ سندس سسي وڍي وئي. هن واقعي ۾ بنو قريظ جي هڪ عورت به ماري وئي. هن، حضرت خلد بن سويد رضي الله عنه کي جنڊ جو پڙ اچلي ماريو هو، ان جي پلاٽڊ ۾ کيس ماريو ويو. پاڻ سڳورن عليه السلام حڪم ڪيو ته جنهن جا هيٺيان وار آيل هجن، تن کي ماريو وڃي. جيئن ته عطيه قرظي رضي الله عنه کي اڃا وار نه آيا هئا، ان ڪري کيس جيئڻ ڏنو ويو. پوءِ هو مسلمان ٿي اصحابين ۾ شامل ٿيو.

حضرت ثابت بن قيس رضي الله عنه عرض ڪيو ته: زبير بن باطا ۽ سندس گهر وارن کي سندن لاءِ "هه" ڪيو وڃي. ان جو ڪارڻ اهو هو ته زبير، ثابت رضي الله عنه تي ڪجهه احسان ڪيا هئا، سندن عرض اگهاميو. ان کانپوءِ ان، زبير کي چيو ته: پاڻ سڳورن عليه السلام توکي ۽ تنهنجي گهراڻي کي مون لاءِ "هه" ڪيو آهي ۽ آئون انهن سڀني کي تنهنجي حوالي ڪريان ٿو. (يعني تون ٻارن ٻچن سميت آزاد آهين) پر جڏهن زبير بن باطا کي پتو پيو ته سندس سڄي قوم ماري وئي آهي ته هن چيو ته: "ثابت! مون توتي جيڪو ٿورو ڪيو هو، ان جو واسطو اٿئي، مون کي به منهنجن دوستن وٽ پهچائي ڇڏ. تنهن تي کيس به ماري سندس دوستن تائين پهچايو ويو. باقي حضرت ثابت رضي الله عنه، زبير جي پٽ عبدالرحمان کي جيئرو رکيو، جيڪو پوءِ مسلمان ٿيو. اهڙيءَ طرح بنو نجار جي هڪ عورت حضرت ام المنذر رضي الله عنها، سلمى بنت قيس عرض ڪيو ته سموال قرظي جي پٽ رفاع کي سندس حوالي ڪيو وڃي. سندس عرض اگهاميو ۽ رفاع کي سندس حوالي ڪيو ويو، جيڪو پڻ مسلمان ٿيو. ڪن ٻين ماڻهن به ان رات هٿيار ڦٽا ڪرڻ کان اڳ اسلام قبوليو هو. تنهنڪري سندن جان مال ۽ اولاد محفوظ رهيا. ان رات ئي عمرو نالي هڪ ڄڻو، جنهن بنو قريظ جو عهد توڙڻ ۾ سات نه ڏنو هو، ٻاهر نڪتو. کيس پهريدارن جي سالار محمد بن مسلم رضي الله عنه ڏٺو، پر سڃاڻي ڇڏي ڏنو. پوءِ نه ڄاڻ هو ڪاڏي هليو ويو!

بنو قريظ جي سڄي ميڙي پونجيءَ (مال) مان پنجين پتي (خمس) ڪڍي ورهائي وئي. شهنسوارن کي ٽي ڀاڱا، هڪ ڀاڱو سندس لاءِ ۽ ٻه گهوڙي لاءِ ۽ پيادي کي هڪ حصو ڏنو ويو. قيادي ۽ ٻار، حضرت سعد بن زيد انصاري رضي الله عنه جي نگرانيءَ ۾ نجد موڪلي، انهن جي بدلي ۾ گهوڙا ۽ هٿيار ورتا ويا.

پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجي لاءِ بنو قريظ جي عورتن مان بيبي ربحانه رضي الله عنها بنت عمرو بن خنانه کي چونڊيو. ابن اسحاق رضي الله عنه جي بيان مطابق اها پاڻ سڳورن عليه السلام جي وفات تائين

پاڻ سڳورن ﷺ جي ملڪيت ۾ رهي. (1) پر ڪلبيءَ جو چوڻ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ کين سن 6 ه ۾ آزاد ڪري شادي ڪري ڇڏي هئي. پوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ حجة الوداع تان موٽيا ته ان جو انتقال ٿي ويو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کين بقيع ۾ دفن ڪيو. (2)

بنو قريظ جو ڪم پورو ٿيڻ کانپوءِ نڪ مرد حضرت سعد بن معاذ رضه جي ان دعا جي پوري ٿيڻ جي مهل اچي وئي، جنهن جو ذڪر غزوه احزاب ۾ اچي چڪو آهي. تنهن کانپوءِ سندن گهٽاءِ اڪلي پيو. ان مهل پاڻ مسجد نبويءَ ۾ هو. پاڻ سڳورن ﷺ، سندن لاءِ خيمو لڳرايو هو ته جيئن ويجهي کان سندن عبادت ڪندا رهن. بيبي عائشه رضي الله عنها جو چوڻ آهي ته سندن چاٽيءَ جي گهٽاءِ مان رت وهڻ لڳو. مسجد ۾ بنو غفار جا ٻه ڪجهه خيما لڳل هئا، اهي پاڻ ڏانهن رت وهندو ڏسي چرڪيا. انهن چيو ته "خيمي وارو! هي توهان جي پاسان، اسان ڏانهن ڇا پيو وهندو اچي؟ ڏنائون ته حضرت سعد رضه جي گهٽاءِ مان رت پئي وهيو. پوءِ ان ڪارڻ ئي پاڻ گذاري ويا. (3)

صحيحين ۾ حضرت جابر رضه کان آيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته سعد بن معاذ رضه جي موت تي رحمان جو عرش لڏي ويو. (4)

امام ترمذيءَ، حضرت انس رضه کان هڪ حديث آندي آهي ۽ ان کي صحيح به ڪوٺيو آهي ته جڏهن حضرت سعد بن معاذ رضه جو جنازو ڪنڀو ويو ته منافقن چيو ته سندن جنازو ڪيڏو نه هلڪو آهي؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ان کي فرشتن پئي ڪنيو." (5)

بنو قريظ جو گهٽاءِ هلندي هڪ ئي مسلمان شهيد ٿيو، جنهن جو نالو خالد بن سويد هو. هي اهو ئي صحابي آهي، جنهن کي بنو قريظ جي هڪ عورت جنڊ جو پڙ اڇلائي ماريو هو. ان کانسواءِ حضرت عڪاشه رضه جي ڀاءُ ابو سنان بن محسن رضه به گهيري دوران وفات ڪئي.

باقي جيستائين حضرت ابو لبابه رضه جو معاملو آهي ته اهو لاڳيتا ڇهه ڏينهن ٽنپي سان ٻڌو رهيو. سندس گهر واري هر نماز مهل کين اچي ڪوليندي هئي ۽ پاڻ نماز پڙهي وري ان ٽنپي سان ٻڌرائي ڇڏيندو هو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ تي صبح ساڻ ان جي توبه (جي قبوليت جي آيت) لٿي. ان مهل پاڻ سڳورا ﷺ بيبي ام سلمه رضي الله عنها جي گهر ۾ ويٺل هئا. حضرت ابو لبابه رضه جو چوڻ آهي ته: بيبي ام سلمه رضي الله عنها پنهنجي حجري جي در تي بيهي مون

1 - ابن هشام (245/2).

2 - تلقيح الفهوم (ص: 12).

3 - صحيح بخاري (591/2).

4 - صحيح بخاري (536/1) - صحيح مسلم (294/2) - جامع ترمذي (225/2).

5 - جامع ترمذي (225/2).



ڪي چيو ته: اي ابو لبابه رضي الله عنه! مبارڪ هجنتي! الله تنهنجي توبه قبولي آهي. اهو ٻڌي اصحابي سڳورا کين ڪولڻ لاءِ اتي ڪڙا ٿيا، پر هن انڪار ڪندي چيو ته کين پاڻ سڳورن عليه السلام ڪانسواءِ ٻيو ڪير به نه ڪولي. پوءِ جڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام فجر جي نماز لاءِ نڪتا ۽ سندن ويجهو لنگهيا ته کين ڪولي ڇڏيائون.

اها جنگ ذي القعد ۾ ٿي. پنجويهه ڏينهن گهيرا هليو. <sup>(1)</sup> الله تعاليٰ هن جنگ ۽ خندق واري جنگ جي باري ۾ سورة احزاب ۾ ڪافي آيتون لائون ۽ ٻنهي جنگين جي اهم ڳالهين تي تبصرو ڪيو. مومنن ۽ منافقن جي حالت بيان ڪئي، دشمنن جي مختلف ٽولن ۾ قزقوت ۽ پاڙيائپ جو ذڪر ڪيو ۽ اهل ڪتاب جي بدعهديءَ جي نتيجن تي روشني وڌي وئي.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (237/2، 238) - غزوي جي تفصيل لاءِ ڏسو ابن هشام (233/2 \_ 273) - صحيح بخاري (590/2، 591) - زاد المعاد (72/2)، (73، 74) - مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 287، 288، 289، 290).

## نيون مهمون

1. سلام بن ابي الحقيق جو مارچن:- سلام بن ابي الحقيق، جنهن جي ڪنيت ابو رافع هئي، وڏن يهودي ڏوهارين مان هو. جن مسلمانن خلاف مشرڪن کي ورغلائڻ ۾ وڏي چڙهي حصو ورتو هو ۽ هر طرح جي مدد ڪئي هئي. (1) ان کانسواءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي ايڏاڻ به رسائيندو هو. ان ڪري جڏهن مسلمان، بنو قريظ کان واندئا تيا ته خزرج قبيلي وارن کيس مارڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ کان موڪل گهري. جيئن ته ان کان اڳ ڪعب بن اشرف جو قتل، اوس قبيلي جي ڪن صحابن هٿان ڪرايو ويو هو. ان ڪري خزرج وارن جي خواهش هئي ته اهڙو ئي ڪو ڪارنامو اسين به ڪري ڏيکاريون، ان ڪري انهن موڪل گهرڻ ۾ تڪڙ ڪئي.

پاڻ سڳورن ﷺ موڪل ته ڏني پر تاڪيد ڪئي ته عورتن ۽ ٻارن کي نه ماريو وڃي. ان کانپوءِ پنجن ماڻهن جو ننڍڙو جتو مهر لاءِ موڪليو. اهي سڀ خزرج قبيلي جي شاخ بنو سلمه مان هئا ۽ سندن اڳواڻ حضرت عبدالله بن عتيڪ رضي الله عنه هو.

هي جتو سڌو خيبر ڏانهن هليو. ڇو ته ابو رافع جو قلعو ان پاسي هو. جڏهن ويجهو پهتا ته سج لهي چڪو هو ۽ ماڻهو پنهنجا ڍور واپس وٺي وڃي چڪا هئا. عبدالله بن عتيڪ رضي الله عنه چيو ته: "توهان هتي بيهو، آئون ڪنهن بهاني سان اندر گهڙڻ جي ڪوشش ڪريان ٿو. پاڻ ويو ۽ در ويجهو مٿي تي ڪپڙو وجهي ائين ويهي رهيو، ڇڻ جهنگ جي خيال کان وينو هجي. پهريدار هڪل ڪئي ته او الله جا پانها! اندر اچڻو اٿئي ته اڄ نه ته آئون در ٿو بند ڪريان."

عبدالله بن عتيڪ رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته آئون اندر گهڙي ويس ۽ لڪي ويس. جڏهن سڀ ماڻهو اندر اچي ويا ته پهريدار در بند ڪري ڪليءَ ۾ چاٻيون تنگيون (گهڙي دير کانپوءِ جڏهن هر پاسي مان ميٺ ٿي وئي ته) آئون اٿيس ۽ چاٻيون ڪڍي در کوليم. ابو رافع مٿئين منزل تي رهندو هو ۽ اوطاق لڳندي هئي. جڏهن ڪچهريءَ وارا هليا ويا ته آئون مٿي چڙهيس. مون جيڪو به در کوليو، اهو انداربان بند ڪري ٿي ڇڏيو. مون سوچيو ته جيڪڏهن ماڻهن کي منهنجي خبر پئي به ته مون تائين پڇڻ کان اڳ ابو رافع کي پوري ڪري وجهندس. اهڙيءَ طرح آئون هن تائين رسي ته ويس (پر) هو پنهنجن ٻارن پڇن سان گڏ هڪ اونداهي ڪمري ۾ هو. پر مون کي خبر ڪانه هئي ته اهو ڪمري ۾ ڪٿي آهي. ان ڪري مون سڏ ڪيو ته "ابو رافع! هن چيو ته "ڪير آهي؟" آئون جهٽ سندس آواز ڏانهن وڌيس ۽ کيس تلوار جو ڌڪ هنيم، پر آئون ٿورو اڀرو ٿي ويس. ان ڪري ڌڪ گسي ويو.

<sup>1</sup> - فتح الباري (7/343).

هوڏانهن هن وڏي رڙ ڪئي. تنهنڪري آئون تڪڙو ڪمري مان نڪتس ۽ ٿورو پري بيٺس، پوءِ ويجهو اچي (آواز بدلائي) چيم ته ابو رافع! اهو ڪٿو چاڄو هو؟ هن چيو ته تنهنجي ماءُ برباد ٿي، هڪ همراهه اجهو هاڻي مون کي هن ڪمري ۾ تلوار هڻي ويو آهي. عبدالله بن عتيڪ رضي الله عنه ٻڌايو ته هن پيري مون ايڏو زوردار ڏک هنيومانس جو رتوچاڻ ٿي ويو، پر هو مٿو ڪونه. ان ڪري مون تراڙ سندس پيٽ تي رکي دٻائي ته اهان آريار ٿي ويس. مون کي لڳو ته هو مري ويو، انڪري آئون هڪڙو هڪڙو ڪري در کولي موٽيس ۽ هڪ ڏاڪڻ وٺ پهچي اهو سمجهندي ته زمين تي پهچي چڪو آهيان، پير رکيم ته هيٺ ڪري پيس. چانڊوڪي رات هئي، منهنجو مريو نڪري ويو، مون پٽڪي سان ان کي چڪي ٻڌو ۽ در وٽ اچي ويهي رهيس. دل ۾ چيم ته جيسين هن جي مرڻ جي پڪ نٿي ٿيڻ، تيسين هتان ڪونه ترندس. نيٺ جڏهن ڪڪڙ بانگ ڏني ته موت جي خبر ڏيڻ واري قلعي جي فصيل تي چڙهي پڙهو ڏنو ته "آئون حجاز وارن کي ابو رافع جي موت جو اطلاع پيو ڏيان." پوءِ آئون پنهنجن ساٿين وٽ پهتس ۽ کين چيم ته هتان پڇو، الله تعاليٰ ابو رافع کي پنهنجي انجام تي رسايو. پوءِ آئون پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتس ۽ پيرائتي ڳالهه کين ٻڌايم. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "پنهنجو پير اڳيان ڪر." مون پير اڳيان ڪيو. پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجو هٿ ان تي ڦيريو ۽ ائين لڳو جڻ ڪو سور هو ئي ڪونه. (1)

اها صحيح بخاريءَ جي روايت آهي. ابن اسحاق جي روايت اها آهي ته ابو رافع جي گهر ۾ پنجئي اصحابي سڳورا رضي الله عنهم گهڙيا هئا ۽ سڀني گڏجي کيس ماريو هو ۽ جنهن صحابيءَ ان کي تلوار جو زور ڏئي ماريو هو، اهو عبدالله بن انيس رضي الله عنه هو. هن روايت ۾ اهو به ٻڌايل آهي ته انهن جڏهن رات جو ابو رافع کي ماريو ۽ عبدالله بن عتيڪ رضي الله عنه جو مريو نڪري ويو ته ان کي کنيو ۽ قلعي جي ڀت جي آريار ويندڙ نهر ۾ لهي ويا. هوڏانهن يهودين باهه ٻاري ۽ چوٽاسي نظر ڊوڙائي، نيٺ موٽي ويا. اصحابي سڳورا رضي الله عنهم موٽڻ مهل حضرت عبدالله بن عتيڪ رضي الله عنه کي کڻي پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پڄا. (2)

ان سريي لاءِ ذي القعد يا ذوالحج سنه 5 هه ۾ روانگي ٿي هئي. (3)  
جڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام احزاب ۽ قريظ جي ويڙهه کان فارغ ٿيا ۽ جنگي ڏوهارين کي سيڪت ڏئي بس ڪيائون ته پوءِ انهن قبيلن ۽ اعرابين کي سيڪت ڏيڻ لاءِ حملا شروع ڪيائون، جيڪي امن

1 - صحيح بخاري (577/2).

2 - ابن هشام (274/2، 275).

3 - رحمة للعالمين (223/2) ۽ غزوه احزاب جو ٻين ڪتابن ۾ آيل بيان.

جي راهه ۾ رنڊڪ بڻجي رهيا هئا ۽ طاقت استعمال ڪرڻ بنا ماڻ نٿي ڪري سگهيا. هيٺ اهڙي سرين ۽ غزون جو مٿاڇرو ذڪر ڪجي ٿو.

## 2. محمد بن مسلم رضي الله عنه وارو سريو:- احزاب ۽ بنو قريظہ وارين جنگين مان آجوتين کان

پوءِ هيءُ پهريون سريو آهي، جنهن تي ماڻهو موڪليا ويا. هن ۾ ٽيهه ماڻهو شامل هئا.

هن سريي کي نجد ۾ بڪرات جي علائقي ۾ ضريه جي پيرپاسي ۾ قرطاء نالي هڪ جڳهه تي موڪليو ويو هو. ضريه ۽ مديني جي وچ ۾ ستن راتين جو پنڌ آهي. روانگي 10 محرم سن 6 هه تي ٿي ۽ نشانو، بنو بڪر بن ڪلاب جي هڪ شاخ هئي. مسلمانن ڇاپو هنيو ته سڀ دشمن ڀڄي ويا. مسلمان ڍور ۽ بڪريون هڪلي، مديني پهتا. اهي، بنو حنيفه جي سردار ٿمام بن اٿال حنفيءَ کي به جهلي آيا هئا، جيڪو مسلم ڪذاب جي حڪم تي ڇمڙا پوش تي پاڻ سڳورن عليه السلام کي مارڻ نڪتو هو. <sup>(1)</sup> ۾ مسلمانن هٿان جهلجي پيو ۽ کيس مسجد نبويءَ ۾ آڻي هڪ ٽنپ سان ٻڌو ويو. پاڻ سڳورا عليه السلام آيا ته ڪانئس پڇيائون ته: "ٿمام، تنهنجي ويجهو ڇا آهي؟" ان چيو ته "اي محمد عليه السلام! منهنجي ويجهو خير آهي. جيڪڏهن تون قتل ڪندين ته هڪ مارڻ واري کي قتل ڪندين ۽ جي احسان ڪندين ته هڪ قدردان تي احسان ڪندين ۽ جي مال گهرجئي ته جيڪو وڻي سو گهر." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام کيس انهن حالن ۾ ڇڏي ڏنو. وري جڏهن ٻيهر اتان لنگهيا ته وري ساڳيو سوال ڪيائون ۽ ٿمام به وري ساڳيو جواب ڏنو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام ٽيون ڀيرو لنگهيا ته وري به ساڳيو سوال ڪيائون ۽ وري به ساڳيو جواب مليو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام اصحابي سڳورن کي چيو ته: ٿمام کي آزاد ڪري ڇڏيو. انهن آزاد ڪري ڇڏيو، ٿمام مسجد نبويءَ جي ويجهو ڪجين جي هڪ باغ ۾ گهڙي ويو ۽ اتان وهنجي سهنجي اچي پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ اسلام قبوليائين. پوءِ چيائين ته: "الله جو قسم! سڄي ڌرتيءَ تي منهنجي نظر ۾ توهان جي چهري کان وڌيڪ اڻوڻندڙ منهن ڪوبه نه هو، پر هاڻي توهان جو چهرو سڀني چهرن کان وڌيڪ پيارو ٿي ويو آهي ۽ الله جو قسم! سڄي ڌرتيءَ تي منهنجي نظر ۾ ڪوبه دين، اوهان جي دين کان وڌيڪ اڻوڻندڙ نه هو، پر هاڻي توهان جو دين، ٻين دينن کان وڻي ٿو. توهان جي سوارن مون کي ان حالت ۾ جهليو آهي جو آئون عمري جو ارادو ڪري رهيو هوس." پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "خوش ره! ۽ حڪم ڪيو ته عمرو ڪري وٺ. جڏهن هو قريشن جي علائقي ۾ پهتو ته انهن چيس "ٿمام! تون به بي دين ٿي وئين؟" ٿمام چيو ته: "نه! پر آئون محمد عليه السلام جي هٿ تي مسلمان ٿي ويو آهيان ۽ ٻڌو! الله جو قسم! توهان وٽ ڀمام کان ان جو داڻو به تيسٽائين نه پهچندو. جيستائين پاڻ سڳورا عليه السلام موڪل نه ڏيندا.

<sup>1</sup> - سيرت حلبيه (2/297).

يمام، مڪي وارن جي بنيءَ وانگر هو. حضرت ثمامه رضي الله عنه، وطن موتي، مڪي لاءِ ڪڻڪ موڪلڻ بند ڪري ڇڏي، جنهن سان قريش ڏاڍا ڏکيا ٿيا ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام کي مائٽيءَ جا واسطا ڏئي لکيائون ته ثمامه رضي الله عنه کي لکن ته اهي ڪڻڪ موڪلڻ بند نه ڪن. پاڻ سڳورن عليه السلام ائين ئي ڪيو. <sup>(1)</sup>

**3. غزوه بنو لحيان:-** بنو لحيان اهي ئي آهن، جن ربيع وٽ ڏهن صحابن کي ماري ڇڏيو ۽ ٻن کي مڪي وارن وٽ وڪڻي ڇڏيو، جتي اهي اڏيتون ڏئي ماري ويا، پر جيئن ته سندن علائقو حجاز ۾ گهڻو اندر مڪي جي ويجهو هو ۽ ان وقت مسلمانن ۽ قريشن توڙي اعرابين ۾ ڏي وٺ هلندڙ هئي، ان ڪري پاڻ سڳورن عليه السلام، ان علائقي ۾ پري وڃڻ کي صحيح نه ڄاتو. پر جڏهن ڪافرن جي مختلف گروهن ۾ قوت پئجي وئي ۽ سندن حوصلا تنڻي ويا ۽ انهن، حالتن آڏو گوڏا کوڙي ڇڏيا ته پاڻ سڳورن عليه السلام کي بنو لحيان کان پلاند ڪرڻ جو وجهه ملي ويو. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام ربيع الاول يا جمادي الاول سن 6 هه ۾ ٻه سو اصحابي وٺي اوڏانهن رخ ڪيو. مديني جي واڳ حضرت ابن ام مڪتوم رضي الله عنه جي حوالي ڪيائون ۽ ظاهر اهو ڪيائون ته پاڻ شام ملڪ ڏانهن پيا وڃن. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام ڪاهيندا امج ۽ عسفان جي وچ ۾ بطن غران نالي هڪ واديءَ ۾ پهتا، جتي اصحابي سڳورا شهيد ڪيا ويا هئا. انهن لاءِ رحمت جي دعا گهريائون. هوڏانهن بنو لحيان کي پاڻ سڳورن عليه السلام جي اچڻ جي خبر پئجي وئي هئي، ان ڪري اهي وڃي جبلن ۾ لڪا ۽ سندن ڪوبه ماڻهو جهلجي نه سگهيو. پاڻ سڳورا عليه السلام اتي ٻه ڏينهن رهيا. ان دوران جتا موڪليائون، پر بنو لحيان هت نه آيا. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام عسفان ڏي هليا ۽ اتي ڏهه شهسوار ڪراغ الغمير موڪليا ته جيئن قريشن کي به سندن اچڻ جو پتو پوي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام ڪل چوڏنهن ڏينهن مديني کان ٻاهر رهي مديني موٽيا.

ان مهل کان واندڪائي ملڻ کان پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام لاڳيتو فوجي مهمون ۽ سريه موڪليا، جن جو ٿورو ذڪر هتي پيش ڪجي ٿو.

**4. غمر وارو سريو:-** ربيع الاول يا ربيع الآخر سن 6 هه حضرت عڪاشه بن محسن رضي الله عنه کي چاليهه ڄڻن جو اڳواڻ بنائي غمر ڏي موڪليائون. اهو بنو اسد جي هڪ چشمي جو نالو آهي. مسلمانن جي اچڻ جو ٻڌي دشمن پڇي ويا ۽ مسلمان سندن ٻه سو اٺ مديني ڪاهي آيا.

<sup>1</sup> - زاد المعاد (2/ 119)، مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 292، 293)، صحيح بخاري (حديث نمبر 4372)، فتح الباري (688/7).

5. ذوالقصة وارو پهريون سريو:- ان ئي مهيني ربيع الاول يا ربيع الآخر سن 6 هـ ۾ حضرت محمد بن مسلم رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ ڏهن جڻن جو هڪ جتو ذوالقصة موڪلياڻون. اها جڳهه بنو ثعلبه جي علائقي ۾ آهي. دشمن، جن جو تعداد هڪ سو کن هو، لڪي ويا ۽ جڏهن اصحابي سڳورا رضي الله عنهم سمهي پيا ته اوچتو حملو ڪري کين ماري ڇڏياڻون. رڳو محمد بن مسلم رضي الله عنه بچي نڪرڻ ۾ ڪامياب ٿيو ۽ اهو به زخمي ٿي پيو هو.

6. ذوالقصة وارو ٻيو سريو:- محمد بن مسلم رضي الله عنه جي ساٿين جي شهادت کانپوءِ ربيع الاول سن 6 هـ ۾ ئي پاڻ سڳورن عليه السلام حضرت ابو عبیده رضي الله عنه کي ذوالقصة ڏانهن موڪليو. هو چاليهه ڄڻا وٺي روانو ٿيو ۽ رات جو پنڌ ڪندي صبح ساڻ بنو ثعلبه جي علائقي ۾ پهچڻ شرط ڇاپو هنياڻين، پر بنو ثعلبه تيزيءَ سان جبلن ۾ وڃي لڪا ۽ مسلمانن جي ور نه چڙهي سگهيا. رڳو هڪ ڄڻو جهلجي پيو، جيڪو مسلمان ٿيو. باقي ڍور ۽ ٻڪريون ڄام هٿ آيون.

7. جموم وارو سريو:- هيءُ لشڪر زيد بن حارثه رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ ربيع الآخر سن 6 هـ ۾ جموم ڏانهن موڪليو ويو. جموم، مرالظهران (اڄڪلهه وادي فاطمه) ۾ بنو سليم جي هڪ چشمي جو نالو آهي. حضرت زيد رضي الله عنه اتي پهتو ته مزينه جي هڪ عورت حليمه نالي جهلي ورتائين. ان بنو سليم جي هڪ جڳهه جو ڏس ڏنو، جتان گهڻا ئي ڍور، ٻڪريون ۽ قيدي هٿ لڳا. حضرت زيد رضي الله عنه اهي سڀ ڪاهي مديني پڳو. پاڻ سڳورن عليه السلام ان مزني عورت کي آزاد ڪري سندس شادي ڪرائي ڇڏي.

8. عيص وارو سريو:- اهو لشڪر هڪ سو ستر سوارن تي مشتمل هو ۽ اهي حضرت زيد بن حارثه رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ تين جمادي الاول سنه 6 هـ ۾ عيص ڏانهن وڌيا. هن مهڙ ۾ قرينشن جي هڪ قافلي جو مال هٿ آيو، جيڪو پاڻ سڳورن عليه السلام جي ناني ابوالعاص جي قيادت ۾ سفر ڪري رهيو هو. ابو العاص ان مهل تائين مسلمان نه ٿيو هو. پاڻ پڪڙيو ته ڪونه پر پڇي سڌو مديني پهتو ۽ بيبي زينب رضي الله عنها کان پناهه وٺي کين چيائين ته اها پاڻ سڳورن عليه السلام کان سندن مال ڇڏرائي ڏي. بيبي سڳوريءَ، پاڻ سڳورن عليه السلام آڏو اها ڳالهه رکي ته پاڻ سڳورن عليه السلام هڪدم اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي اشارو ڪيو ته مال موتائي ڏيو. اصحابي سڳورن رضي الله عنهم ڌرو پرزو موتائي ڏنو. ابوالعاص سمورو سامان کڻي مڪي پهتو ۽ امانتون مالڪن جي حوالي ڪري پوءِ مسلمان ٿي مديني پهتو. پاڻ سڳورن عليه السلام پهرئين نڪاح تحت ئي بيبي زينب

رضي الله عنها سندن حوالي ڪئي، جيئن صحيح حديث مان ثابت ٿئي ٿو.<sup>(1)</sup> ائين ان ڪري ڪيو ويو جو تيستائين ڪافرن لاءِ مسلمان عورتن جي حرام هجڻ جو حڪم نه لٿو هو ۽ جيئن هڪ حديث ۾ آيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ نئون نڪاح ڪري رخصتي ڪئي يا اهو ته ڇهن مهينن کانپوءِ رخصتي ڪيائون، اها ڳالهه نه ڪو معنوي لحاظ کان صحيح آهي ۽ نه ئي سند جي لحاظ کان<sup>(2)</sup> ۽ جيڪي ماڻهو ان ضعيف حديث کي مڃين ٿا، اهي هڪ اڇرج جوڳي متضاد ڳالهه ڪن ٿا ته ابو العاص سنه 8 هه جي آخر ۾ مڪو فتح ٿيڻ کان ٿورو اڳ مسلمان ٿيو هو ۽ اهو به چون ٿا ته سن 8 هه جي شروع ۾ بيبي زينب رضي الله عنها گذاري وئي هئي. جڏهن ته اهي ڳالهيون گڏ نه ٿيون ٿي سگهن. سوال اهو آهي ته ان حالت ۾ ابو العاص جي اسلام قبول ٿيڻ مهل بيبي سڳوري حيات ڪٿي هئي جو کين نئين يا پراڻي نڪاح تحت ابو العاص جي حوالي ڪيو وڃي ها اسان ان موضوع تي بلوغ المرام جي سلسلي ۾ تفصيلي ڳالهه ٻولڻ ڪئي آهي.

مشهور صاحب مغازي، موسي بن عتبہ جو رجحان هن پاسي آهي ته اهو واقعو سن 7 هه ۾ ابو بصير ۽ سندس ساٿين جي هٿان ٿيو، پر ان سلسلي ۾ نه ڪا صحيح حديث آهي نه ضعيف.

**9. طرف يا طرق وارو سريو:-** هي لشڪر به حضرت زيد بن حارثه ﷺ جي اڳواڻي ۾ جمادي الآخر ۾ طرف يا طرق نالي جڳهه ڏي موڪليو ويو. اها جڳهه بنو ثعلبه جي علائقي ۾ هئي. حضرت زيد ﷺ سان رڳو پنڌرنهن ڄڻا گڏ هئا، پر بدوي خبر پوڻ تي ڀڄي ويا. کين ڊپ هو ته پاڻ سڳورا ﷺ اچي رهيا آهن. حضرت زيد ﷺ کي چار اٺ هٿ لڳا ۽ پاڻ ڇڻڻ ڏينهن بعد موٽيو.

**10. وادي القريٰ وارو سريو:-** هن جتي ۾ ٻارنهن ڄڻا هئا ۽ سندن سالار به حضرت زيد ﷺ ئي هو. اهي رجب سن 6 هه ۾ وادي القريٰ ڏي هليا. مقصد دشمنن جي چرپر جي خبر وٺڻ هو، پر وادي القريٰ جي رهاڪن انهن تي حملو ڪري ڇهن صحابن کي شهيد ڪري ڇڏيو ۽ رڳو ٽي ڄڻا بچيا، جن مان هڪ حضرت زيد ﷺ هو.<sup>(3)</sup>

**11. سريه خبط:-** هي لشڪر رجب سن 8 هه ۾ موڪليل ٻڌايو وڃي ٿو، پر لڳي ائين ته ته اهو حديبيه کان اڳ جو واقعو آهي. حضرت جابر ﷺ جو بيان آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ تي سو ڇڻڻ جو جڻو موڪليو. اسان جو اڳواڻ ابو عبیده بن جراح ﷺ هو. قريشن جي هڪ قافلوي جي خبرچار وٺڻي

<sup>1</sup> - سنن ابي دائود مع شرح عون المعبود، باب الي متي ترد عليه امراته اذا اسلم بعدها.

<sup>2</sup> - بنهي حديثن تي ٿيل بحث لاءِ ڏسو تحفة الاحوذی (195/2، 196).

<sup>3</sup> - رحمة للعالمين (226/2) - انهن سرين جو تفصيل رحمة للعالمين، زاد المعاد (121/2، 122) ۽ تليق الفهور اهل الاثر جي حاشيي ۾

(ص: 28، 29).

هئي. هن مهڙو ۾ اسان ڏاڍا بڪيا به رهياسين، ايستائين جو اسان پن کائي به گذارو ڪيو. ان ڪري ئي هن جو نالو جيش خبط پئجي ويو. نيٺ هڪ ماڻهوءَ تي اٺ ڪنا، پوءِ ٻيا ٽي اٺ ڪنا، پوءِ ٽيون ڀيرو اٺ ڪهڙ کانپوءِ حضرت ابو عبیده رضي الله عنه جهلي ڇڏيو. ان کانپوءِ سمنڊ، عنبر نالي هڪ مڇي (ڪپ تي) اڇلائي ڏني. جنهن جو گوشت اسين اڌ مهيني تائين کائيندا رهياسين ۽ ان جو تيل به لڳائيندا رهياسين. تان ته اسان جا جسم اڳي جهڙا (توانا) ٿي ويا ۽ اسان تندرست ٿي وياسين. ابو عبیده رضي الله عنه ان جي پاسراڻيءَ جو هڪ ڪنڊو کنيو ۽ لشڪر جو سڀ کان ڊگهو ماڻهو ڳولهي سڀ کان ڊگهي اٺ تي چاڙهيائين ۽ انهن کي ڪنڊي هيٺان لنگهيائين ته لنگهي ويو. اسان ان جي گوشت جا ڪجهه ٽڪرا توشي طور ساڻ رکيا ۽ جڏهن مديني پهتاسين ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي ان بابت ٻڌايوسين. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "اهو هڪ رزق آهي، جيڪو الله تعاليٰ توهان لاءِ موڪليو. ان جو گوشت توهان وٽ بچيل هجي ته اسان کي به کارايو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي خدمت ۾ ڪجهه گوشت موڪلي ڏنو. (1) واقعي جو تفصيل پورو ٿيو.

مٿي جيڪو لکيو اتر ته اهو واقعو حديبيه کان اڳ جو آهي، ان جو ڪارڻ اهو آهي ته حديبيه واري ٺاه کانپوءِ مسلمان، قریش جي قافلن پويان نه لڳندا هئا.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (2 / 625، 626) - صحيح مسلم (2 / 145، 146).



## غزوه بني المصطلق يا غزوه مريسيه (سن 5 يا 6 هـ)

هي غزوه جنگي لحاظ کان وڏي حيثيت ته نٿو رکي، پر ڪجهه واقعن جي ڪري اهميت رکي ٿو. جن سان اسلامي معاشري ۾ قزقوت پئجي وئي ۽ جنهن جي ڪري هڪ پاسي منافقن تان پردو هٽيو ته ٻئي پاسي اهڙا تعزيري قانون لٿا، جن سان اسلامي معاشري جي عظمت ۽ نفس جي پاڪيزگيءَ جي هڪ خاص شڪل عطا ٿي. اسين پهرين ته غزوي بابت ٻڌائينداسين ۽ پوءِ انهن واقعن جو تفصيل ڏينداسين.

هي غزوه، سيرت نگارن مطابق شعبان سن 5 يا سن 6 هـ (1) ۾ ٿيو. ان جو سبب اهو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ کي خبر پئي ته بنو المصطلق جو.

ان جو جواب پهرين ڌر اهو ڏنو ته افڪ واري حديث ۾ حضرت سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ جو ذڪر، راويءَ جي ڀل آهي، ڇو ته اها ئي حديث بيبي عائشه رضي الله عنها کان ابن اسحاق زهري عن عبدالله بن عتب عن عائشه رضي الله عنها جي سند سان ڏني آهي. ان ۾ سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ بدران اسيد بن حضير رضی اللہ عنہ جو نالو آهي. تنهنڪري امام ابو محمد بن حزم چونڊو هو ته بيشڪ اهو صحيح آهي ۽ سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ جو ذڪر ڀل ۾ ٿيل آهي. (2)

منهنجو عرض اهو آهي ته جيتوڻيڪ پهرين ڌر جو دليل چڱو خاصو وڙني آهي، (۽ ان ڪري ئي آئون به ان کي مڃيندو هوس) پر ڌيان سان جاچڻ کانپوءِ خبر پوندي ته هن دليل جو مک نقطو اهو آهي ته پاڻ سڳورا رضی اللہ عنہم، بيبي زينب رضي الله عنها سان سن 5 هـ جي پڇاڙيءَ ۾ پرڻيا. جڏهن ته ان بابت ڪن شبنهن کانسواءِ ڪابه پڪي شاهدي نٿي ملي. جڏهن ته افڪ واري واقعي ۾ ۽ ان کانپوءِ حضرت سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ (متوفي 5 هـ) جو هجڻ گهڻين روايتن مان ثابت آهي، جن کي ڀولو

1 - ان لاءِ دليل اهو ڏجي ٿو ته ان غزوي تان موٽندي افڪ (بيبي عائشه رضي الله عنها تي بهتان هڻڻ) جو واقعو پيش آيو ۽ ياد رهي ته اهو واقعو بيبي زينب رضي الله عنها سان پاڻ سڳورن رضی اللہ عنہم جي پرڻجڻ ۽ مسلمان عورتن لاءِ پردي جو حڪم ٿيڻ کانپوءِ ٿيو. جيئن ته بيبي زينب رضي الله عنها جو پرڻو 5 هـ جي صفا پڇاڙيءَ ۾ يعني ذي القعد يا ذوالحج سن 5 هـ ۾ ٿيو هو ۽ ان ڳالهه تي سڀ متفق آهن ته اهو غزوه شعبان جي مهيني ۾ ٿي ٿيو. ان ڪري اهو شعبان جو مهينو 5 هـ جو نه پر سن 6 هـ جو ئي ٿي سگهي ٿو. ٻئي پاسي جيڪي ماڻهو هن غزوي جو دور سن 5 هـ جو شعبان ٻڌائين ٿا، انهن جو دليل اهو آهي ته افڪ واري حديث ۾ افڪ وارن صحابن جي سلسلي ۾ حضرت سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ ۽ سعد بن عبادہ رضی اللہ عنہ جي وچ ۾ سخت منهن ماري ٿي پئي هئي. ياد رهي ته سعد بن معاذ رضی اللہ عنہ سن 5 هـ جي پڇاڙيءَ ۾ غزوه بنو قريظ کانپوءِ گذاري ويو هو. ان ڪري افڪ واري واقعي مهل سندن هجڻ، ان ڳالهه جو دليل آهي ته اهو واقعو ۽ اهو غزوه سن 6 هـ ۾ نه پر سن 5 هـ ۾ ٿيو.

2 - ڏسو زاد المعاد (115/2)

سمجهڻ نڪ نه ٿيندو. ان ڪري ائين چو نه سمجهجي ته بيبي سڳوري رضي الله عنها جو پرڻو 5 هه جي منڍ ۾ ٿيو هجي ۽ افڪ وارو واقعو ۽ غزوه بني المصطلق، شعبان سن 5 هه ۾ ٿيو هجي. سردار حارث بن ابي ضرار، پاڻ سڳورن ﷺ سان ويڙهه ڪرڻ لاءِ پنهنجي قبيلي ۽ ڪن ٻين عربن ساڻ پيو اچي. پاڻ سڳورن ﷺ، بريدة بن حصيب اسلمي رضى الله عنه کي خبر وٺڻ لاءِ موڪليو. جنهن، ان قبيلي ۾ وڃي حارث بن ابي ضرار سان ملاقات ڪئي ۽ ڳالهه بوليه ڪري موٽي اچي پاڻ سڳورن ﷺ کي خبر ڏنائين.

جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي پڪ ٿي ته اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي تياريءَ جو حڪم ڏنائون ۽ تڪڙا تڪڙا نڪري پيا. پاڻ ﷺ 2 شعبان تي نڪتا هئا. هن غزوي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ منافقن جو هڪ ٽولو به هو، جيڪو ان کان اڳ ڪنهن به جنگ ۾ نه ويو هو. پاڻ سڳورن ﷺ مديني جي واڳ حضرت زيد بن حارثه رضى الله عنه کي (ڪي چون ٿا ته حضرت ابو ذر رضى الله عنه کي ۽ ڪي چون ٿا ته نميله بن عبدالله ليثي رضى الله عنه کي) ڏني. حارث بن ابي ضرار، اسلامي لشڪر جي خبر وٺڻ لاءِ هڪ خابرو موڪليو، پر مسلمانن کيس جهلي ماري ڇڏيو.

جڏهن حارث بن ابي ضرار ۽ سندس ساٿارين کي پاڻ سڳورن ﷺ جي نڪرڻ ۽ پنهنجي خابروءَ جي مارڻ جو پتو پيو ته اهي ڊڄي ويا ۽ جيڪي عرب ساڻن گڏ هئا، سي ڇڙوڇڙ ٿي ويا. پاڻ سڳورا ﷺ مريسيح جي چشمي (1) وٽ پهتا ته بنو المصطلق، جنگ لاءِ تيار ٿي ويا. پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن به صفون ٻڌيون. سڄي اسلامي لشڪر جو علمبردار حضرت ابوبڪر رضى الله عنه هو ۽ رڳو انصارين جو جهنڊو حضرت سعد بن عبادة رضى الله عنه وٽ هو. ڪجهه دير ته ڌرين ۾ تيرن جي ڏي وٺ ٿي، ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم تي اصحابي سڳورن يڪو حملو ڪيو ۽ سوڀ ماڻي. مشرڪن هارايو ۽ ڪجهه مارجي به ويا. عورتن ۽ ٻارن کي قيدي بڻايو ويو ۽ ڍور ۽ پڪريون به هٿ آيون. مسلمانن مان رڳو هڪ ڇڻو ماريو ويو، جنهن کي هڪ انصاريءَ، دشمنن جو ماڻهو سمجهي ماريو هو.

هن غزوي بابت سيرت نگارن جو بيان اهو ئي آهي، پر علامه ابن قيم لکيو آهي ته اهو غلط آهي، ڇو ته هن غزوة ۾ ويڙهه نه ٿي هئي، پر پاڻ سڳورن ﷺ چشمي وٽ انهن تي چاپو هڻي عورتن، ٻارن ۽ چوپائي مال تي قبضو ڪيو هو. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ، بنو المصطلق تي چاپو هنيو ۽ اهي غافل هئا. الي آخر الحديث (2)

<sup>1</sup> - مريسيح، قديد جي ڀرپاسي ۾ سمنڊ جي ڪپ جي ويجھو، بنو المصطلق جي هڪ چشمي جو نالو آهي.

<sup>2</sup> - صحيح بخاري - ڪتاب العتق (345/1) - فتح الباري (431/7).

قيدين ۾ بيبي جويره رضي الله عنها به هئي، جيڪا بنو المصطلق جي سردار حارث بن ابي ضرار جي نياڻي هئي. پاڻ، ثابت بن قيس رضي الله عنه جي حصي ۾ آئي. ثابت رضي الله عنه کين مڪاتب (1) ڪيو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه مقرر ڪيل اگهه ڏئي ان سان پرڻو ڪيو. ان شاديءَ ڪري مسلمانن، بنو المصطلق جي هڪ سؤ گهراڻن کي، جيڪي مسلمان ٿي ويا هئا، تن کي آزاد ڪري ڇڏيو ۽ چيائون ته: اهي پاڻ سڳورن صلى الله عليه جي ساهرن مان آهن. (2)

اهو آهي غزوي جو تفصيل. باقي بچيا اهي واقعا، جيڪي هن غزوي ۾ پيش آيا ته جيئن ته انهن جي جڙ منافقن جو سردار عبدالله بن ابي ۽ سندس ساٿاري هئا، ان ڪري ضروري آهي ته پهرين اسلامي معاشري ۾ سندن هلت چلت جي هڪ جهلڪ ڏجي ۽ پوءِ واقعن جو تفصيل لکجي.

### غزوه بني المصطلق کان اڳ ڪپتين (منافقن) جو رويو: - اسين ڪيترائي ڀيرا ٻڌائي

آيا آهيون، ته عبدالله بن ابي کي مسلمانن ۽ اسلام سان عام ۽ پاڻ سڳورن صلى الله عليه سان خاص وير هو، ڇو ته اوس ۽ خزرج وارا سندس اڳواڻيءَ تي يڪراءِ ٿي چڪا هئا ۽ سندس تاجپوشيءَ لاءِ ڪوڏين جو تاج ٺهرائي رهيا هئا جو ايتري ۾ مديني ۾ اسلام جي روشني پهچي وئي ۽ ماڻهن جو ڌيان ابن ابي تان هٽي ويو. ان ڪري هن سمجهيو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه کانئس بادشاهت ڦري ورتي آهي.

سندس اهو ساڙ منڍي کان ٿي پڌرو هو، جڏهن اڃا هن اسلام نه قبوليو هو. پوءِ مسلمان ٿيڻ کان اڳ هڪ ڀيرو پاڻ سڳورا صلى الله عليه سواريءَ تي چڙهي حضرت سعد بن عبادة رضي الله عنه جي عيادت ڪرڻ لاءِ پئي ويا ته رستي ۾ هڪ مجلس وٽان لنگهيا، جنهن ۾ عبدالله بن ابي به ويٺل هو. هن، پنهنجو نڪ ڍڪيندي چيو ته اسان تي دز نه اڏاءِ. پوءِ جڏهن پاڻ سڳورن صلى الله عليه مجلس وارن آڏو قرآن پڙهيو ته چوڻ لڳو ته "وڃي پنهنجي گهر ويهه، اسان جي مجلس ۾ قرآن ٻڌائي ٻڌائي تنگ نه ڪر." (3)

اها مسلمان ٿيڻ کان اڳ جي ڳالهه آهي، پر بدر واري لڙائيءَ ۾ جڏهن هن هوا جو رخ ڏسي اسلام قبوليو، تڏهن به هو الله، ان جي رسول ۽ ايمان وارن جو ويري ٿي رهيو ۽ اسلامي معاشري ۾ ڦيٽاڙو ڪرڻ ۽ اسلام جي آواز کي جهڪو ڪرڻ جي ڪم ۾ لاڳيتو رڌل رهيو. هن اسلام جي ويرين سان چڱا ناتا رکيا ٿي. جيئن بنو قينقاع جي معاملي ۾ اڻوڻندڙ طريقي سان ٿي پيو هو. (جنهن جو

1 - مڪاتب ان ٻانهي يا ٻانهيءَ کي چئبو آهي، جيڪو مالڪ سان مقرر ڪيل رقم عيوض آڻو ٿيڻ جو ٺاه ڪري.

2 - زاد المعاد (2/112، 113) - ابن هشام (2/289، 290، 294، 295).

3 - ابن هشام (1/584، 587) - صحيح بخاري (924) - صحيح مسلم (2/109).

ذڪر ڪري چڪا آهيون) اهڙيءَ طرح احد واري لڙائيءَ ۾ به شر، بدعهدي، مسلمانن ۾ قوت ۽ بيچيني پيدا ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي هئائين. (ان جو ذڪر به آيل آهي.)

هن منافق جي "دوڪي ۽ ڊوڪي" جي حالت اها هئي جو اسلام قبول ڪرڻ کان پوءِ هر جمعي تي جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ خطبو ڏيڻ لاءِ ايندا هئا ته پهرين هي پاڻ اتي بيهي چوندو هو ته "ماڻهو! اهي توهان جي وچ ۾ الله جا رسول آهن. الله انهن جي وسيلي توهان کي عزت ۽ احترام ڏنو آهي، تنهنڪري سندن مدد ڪريو ۽ کين سگهارو ڪريو ۽ سندن ڳالهه ٻڌو ۽ مڃيو." ان کانپوءِ هو ويهي رهندو هو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ اتي خطبو پڙهندا هئا. سندس نڪ جي پڪائيءَ ۽ بي حياتي ايتري وڌي وئي جو جڏهن احد واري لڙائيءَ کانپوءِ پهريون جمعو آيو ته هي ماڻهو ان لڙائيءَ ۾ بدترين دغاڙي ڪرڻ کانپوءِ به خطبي کان اڳ اتي بيٺو ۽ اهي ئي ڳالهيون ورجائڻ لڳو. جيڪي اڳي ڪندو هو. پر هن پيري مسلمانن کيس ڪيڙن کان جهلي چيو ته: "او الله جا ويري ويهي ره. تو جيڪي حرڪتون ڪيون آهن، تن کانپوءِ تون ان لائق رهيو ئي ڪونه آهين." ان تي هو، ماڻهن کي اورانگهيندو، اها بڙ بڙ ڪندو ٻاهر نڪري ويو ته همراھ جي حمايت ڇڏي ڪير، ڇڻ ڪو ڏوه ڪري وڌم. اتفاق سان در تي هڪ انصاري کيس ملي ويو. ان چيس ته ڏوڙ پوئي، موتي هل! پاڻ سڳورا ﷺ تنهنجي چوٽڪاري جي دعا ڪري ڇڏيندا. هن چيو ته: الله جو قسم! آئون چاهيان ئي ڪونه ٿو ته منهنجي چوٽڪاري لاءِ دعا گهري وڃي. (1)

ان کانسواءِ ابن ابي. بنو نضير سان به ناتا رکيا هئا ۽ ان هن سان ملي مسلمانن خلاف ڳجهه ڳوهه (اندرو اندر) ۾ سازشون ستيون هئائين. اهڙيءَ طرح ابن ابي ۽ سندس ساٿارين خندق واري جنگ ۾ مسلمانن ۾ ڌڪير ۽ ڦڙڦوٽ وجهڻ لاءِ ۽ انهن کي ڊيچارڻ لاءِ هر طرح جا جتن ڪيا هئا، جن جو ذڪر الله تعاليٰ سورة احزاب جي هيٺين آيتن ۾ ڪيو آهي.

﴿وَإِذْ يَقُولُ الْمُنَافِقُونَ وَالَّذِينَ فِي قُلُوبِهِمْ مَرَضٌ مَا وَعَدَنَا اللَّهُ وَرَسُولُهُ إِلَّا غُرُورًا (12) وَإِذْ قَالَتْ طَائِفَةٌ مِّنْهُمْ يَا أَهْلَ يَثْرِبَ لَا مُقَامَ لَكُمْ فَارْجِعُوا وَيَسْتَأْذِنُ فَرِيقٌ مِّنْهُمُ النَّبِيَّ يَقُولُونَ إِنَّ بُيُوتَنَا عَوْرَةٌ وَمَا هِيَ بِعَوْرَةٍ إِن يُرِيدُونَ إِلَّا فِرَارًا (13) وَلَوْ دُخِلَتْ عَلَيْهِمْ مِنْ أَقْطَارِهَا ثُمَّ سُئِلُوا الْفِتْنَةَ لَأْتَوْهَا وَمَا تَلَبَّثُوا بِهَا إِلَّا يَسِيرًا (14) وَلَقَدْ كَانُوا عَاهَدُوا اللَّهَ مِنْ قَبْلُ لَا يُولُونَ الدُّبَارَ وَكَانَ عَهْدُ اللَّهِ مَسْئُولًا (15) قُلْ لَنْ يَنْفَعَكُمْ الْفِرَارُ إِن فَرَرْتُمْ مِنَ الْمَوْتِ أَوِ الْقَتْلِ وَإِذًا لَأُثَمَّتُونَ إِلَّا قَلِيلًا (16) قُلْ مَنْ ذَا الَّذِي يَعْصِمُكُمْ مِنَ اللَّهِ إِن أَرَادَ بِكُمْ سُوءًا أَوْ أَرَادَ بِكُمْ رَحْمَةً وَلَا يَجِدُونَ لَهُمْ مِنْ دُونِ اللَّهِ وَلِيًّا وَلَا نَصِيرًا (17) قَدْ يَعْلَمُ اللَّهُ الْمُعَوِّقِينَ مِنْكُمْ وَالْقَائِلِينَ لِإِخْوَانِهِمْ هَلُمَّ إِلَيْنَا وَلَا يَأْتُونَ الْبَأْسَ إِلَّا قَلِيلًا (18) أَشِحَّةً عَلَيْكُمْ فَإِذَا جَاءَ الْخَوْفُ رَأَيْتَهُمْ يَنْظُرُونَ إِلَيْكَ تَدُورُ أَعْيُنُهُمْ كَالَّذِي يُغَسِّى

1 - ابن هشام (2/105).

عَلَيْهِ مِنَ الْمَوْتِ فَإِذَا ذَهَبَ الْخَوْفُ سَلَقُواكُمْ بِالْسِنَةِ حَدَادٍ أَشْحَةً عَلَى الْخَيْرِ أَوْلَيْكَ لَمْ يُؤْمِنُوا فَأَحْبَطَ اللَّهُ أَعْمَالَهُمْ وَكَانَ ذَلِكَ عَلَى اللَّهِ يَسِيرًا (19) يَحْسِبُونَ الْأَحْزَابَ لَمْ يَذْهَبُوا وَإِنْ يَأْتِ الْأَحْزَابُ يَوَدُّوا لَوْ أَنَّهُمْ بَادُونَ فِي الْأَعْرَابِ يَسْأَلُونَ عَنْ أَنْبَائِكُمْ وَلَوْ كَانُوا فِيكُمْ مَا قَاتَلُوا إِلَّا قَلِيلًا (20) ﴿الْأَحْزَابِ﴾

”۽ انهيء مهل منافقن ۽ جن جي دليين ۾ بيماري آهي. تن چيو ٿي ته الله ۽ سندس پيغمبر اسان کي ٺڳيءَ کان سواءِ (پيو) ڪو انجام نه ڏنو آهي ۽ ان مهل منجهائين هڪ ٽوليءَ چيو ته: اي مديني وارو! اوهان لاءِ (هتي ترسڻ جي) ڪا جاءِ ڪانهي، تنهنڪري موتو ۽ منجهائين هڪ ٽوليءَ پيغمبر کان موڪلايو ٿي ۽ چوڻ لڳا ته اسان جا گهر هيڪلا آهن. جڏهن ته اهي هيڪلا نه هئا، پڇڻ کان سواءِ (پيو) ڪو ارادو نه هئڻ ۽ جيڪڏهن ان (مديني) جي آسپاس کان مٿن ڪا (ڪافرن جي) فوج اچي ڪڙڪي ها وري کين گهرو جنگ ڪرڻي پئي ها ته ضرور اها ڪن ها ۽ ان لاءِ توري (دير) کان سواءِ ترسن ٿي نه ها ۽ (هن کان) اڳ ۾ الله سان انجام ڪيو هئائون ته (پڇڻ لاءِ) پنيون نه ڦيريندا ۽ الله جي انجام جو (ضرور) پڇائڻو ٿيندو. (کين) چئو ته: جيڪڏهن اوهين مرڻ يا مارجڻ کان پڇندؤ ته پڇڻ اوهان کي فائدو نه ڏيندو ۽ ان مهل بلڪل تورو ٿي فائدو ڏنو ويندو. (اي پيغمبر!) کين چئو ته: اوهان کي الله (جي عذاب) کان ڪير بچائيندو. جيڪڏهن اهو اوهان کي ڪا تڪليف پهچائڻ گهري يا اوهان کي ڪا ٻاجهه پهچائڻ گهري (ته اها ڪير روڪيندو) ۽ الله کان سواءِ پاڻ لاءِ نڪو دوست ۽ نه مددگار لهندا. اوهان مان (جهاد کان) جهليندڙن ۽ پنهنجن ڀائرن کي (هيئن) چونڌڻ کي ته اسان ڏانهن اچو. بيشڪ الله ڄاڻندو آهي ۽ تورن کان سواءِ (پيا) لڙائيءَ ۾ نٿا اچن. (هٿون) اوهان تي پيچائي ڪندڙ آهي. پوءِ جنهن مهل ڊپ جو وقت اچي (تنهن مهل) کين ڏسندين ته توڏانهن نهاريندا آهن جو سندن اکيون ان (ماڻهوءَ) وانگر نهارينديون آهن، جنهن تي موت (جي سڪرات) جي بهوشي پهتي هجي. پوءِ جنهن مهل (جنگ جو) پوءِ لهندو آهي، تنهن مهل (غنيمت جي) مال وٺڻ تي لالچي ٿي اوهان کي تڪينن زبانن سان ايڏائيندا آهن. انهن ايمان نه آندو، تنهنڪري الله سندن عمل ڇڏ ڪيا ۽ اهو ڪم الله کي آسان آهي. (ڊپ کان) پائيندا آهن ته (ڪافرن جا) لشڪر نه ويا آهن ۽ جيڪڏهن (ڪافرن جا) لشڪر اچن ها ته (هيءَ ڳالهه) گهرن ها ته اهي جيڪر جهنگن ۾ وينل هجن ها (۽) اوهان جون خبرون هر ڪنهن کان پڇندا رهن ها ۽ جيڪڏهن اوهان ۾ هجن ته رڳو تورو (اچي) جنگ وڙهن ها.

انهن آيتن ۾ موقعي مطابق منافقن جي ڪردار، سوچ ۽ خودغرضي ۽ موقعي پرستيءَ جو

چتو نقشو چٽيو ويو آهي.

جيتوڻيڪ يهودين، منافقن ۽ مشرڪن، مطلب ته اسلام جي سڀني دشمنن اها ڳالهه ڀليءَ پٽ ڄاتي ٿي ته اسلام جي غلبي جو ڪارڻ مادي (يعني هٿيار، لشڪر يا گهٽائي) ڪونهي، پر ان جو ڪارڻ اها الله پرستي ۽ اخلاقي قدر آهن، جن سان سڄو اسلامي سماج ۽ دين اسلام سان ناتو رکندڙ هر ماڻهو سرفراز آهي. انهن اسلام جي دشمنن کي اهو به معلوم هو ته ان فيض جو سرچشمو پاڻ سڳورن ﷺ جي ذات بابرڪات آهي، جيڪا اخلاقي قدرن جو معجزو جي حد تائين بلند نمونو آهي. اهڙيءَ طرح اهي اسلام جا دشمن چئن پنجن سالن تائين وڙهندي جهڙندي اهو به سمجهي ويا هئا ته هن دين ۽ دين وارن کي هٿيارن سان ختم نٿو ڪري سگهجي. ان ڪري ئي انهن اهو رٿيو هو ته اخلاقي پهلوءَ کي بنياد بڻائي هن دين خلاف واءِ واءِ ڪري ڇڏجي ۽ ان جو پهريون نشانو خاص طور تي پاڻ سڳورن ﷺ جي هستيءَ کي بڻايو وڃي. جيئن ته منافق، مسلمانن جي گهر جا پيڍي هئا ۽ مديني ۾ ئي رهندا هئا، اهي مسلمانن سان بنا روڪ ٽوڪ جي ملي جلي سگهيا ٿي ۽ وجهه ملڻ تي مسلمانن کي پڙڪائي به سگهيا ٿي. ان ڪري افواهون ڦهلائڻ جو بار انهن منافقن پنهنجي سر ڪنيو يا انهن جي مٿان وڌو ويو ۽ عبدالله بن ابي، منافقن جي سردار، ان جي مهنداريءَ جو ذمو پاڻ کنيو.

سندس اهو پروگرام ان مهل ٿورو پڌرو ٿيو، جڏهن حضرت زيد رضي الله عنه، بيبي زينب رضي الله عنها کي طلاق ڏني ۽ پاڻ سڳورا رضي الله عنها، بيبي زينب رضي الله عنها سان پرڻيا. جيئن ته عربن ۾ اهو دستور هو ته اهي متبني (هنج ورتل پٽ) کي پنهنجي سڳي پٽ وانگر سمجهندا هئا ۽ ان جي زال کي سڳي پٽ جي زال وانگر سمجهندا هئا، ان ڪري جڏهن پاڻ سڳورا رضي الله عنها، بيبي زينب رضي الله عنها سان پرڻيا ته منافقن کي پاڻ سڳورن رضي الله عنه خلاف واويلا ڪرڻ جا به وجهه ملي ويا. هڪ اهو ته بيبي زينب رضي الله عنها، پاڻ سڳورن رضي الله عنه جي پنجين گهر واري هئي. جڏهن ته قرآن، چئن کان مٿي زالون رکڻ جي اجازت ناهي ڏني، ان ڪري اها شادي ڪيئن ٿي صحيح ٿي سگهي؟

بيو اهو ته بيبي سڳوري رضي الله عنها، پاڻ سڳورن رضي الله عنه جي هنج ورتل پٽ جي گهر واري هئي، ان ڪري عربن جي دستور مطابق ان سان پرڻجڻ وڌو ڏوهه ۽ گناهه هو. اهڙيءَ طرح هن معاملي جي ڏاڍي واءِ واءِ ڪئي وئي ۽ قسامين قسامين قصا ٺاهيا ويا. چوڻ وارن ته اهو به چيو ته: محمد رضي الله عنه، زينب رضي الله عنها کي اوچتو ڏنو ۽ سندن سونهن کان ايترو متاثر ٿيو جو دل ڏئي ويٺو ۽ جڏهن سندن پٽ زيد رضي الله عنه کي پتو پيو ته ان، زينب رضي الله عنها کي محمد رضي الله عنه لاءِ ڇڏي ڏنو.

منافقن ان قصي جي ايڏي ته واءِ واءِ ڪئي جو ان جا اثر اڃا تائين حديشن ۽ تفسيرن جي ڪتابن ۾ نظر اچن پيا. ان مهل اها سڄي واءِ واءِ ڪمزور ۽ سادن سون مسلمانن ۾ ايڏي سگهاري ثابت ٿي. نيٺ قرآن مجيد ۾ ان جي باري ۾ چئيون آيتون لٿيون. جن سان ان لڪل شڪ جو پورو پورو علاج ٿيو. ان اوڀلا جي ڦهلاءَ جو ڪاٿو ان مان ڪري سگهجي ٿو ته سورة احزاب جي منڍ ۾ ئي هيءَ آيت ڏنل آهي ته:

﴿يَا أَيُّهَا النَّبِيُّ اتَّقِ اللَّهَ وَلَا تُطِعِ الْكَافِرِينَ وَالْمُنَافِقِينَ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلِيمًا حَكِيمًا (1)﴾ (الأحزاب)

”اي پيغمبر! الله کان ڊڄ ۽ ڪافرن ۽ منافقن جو چيو نه مڃ. بيشڪ الله ڄاڻندڙ حڪمت وارو آهي.“

اهو منافقن ڏانهن هڪ مٿاڇرو اشارو ۽ مختصر خاڪو آهي. پاڻ سڳورا ﷺ اهي سڀ حرڪتون صبر سان سهي رهيا هئا ۽ عام مسلمان به هن شر کان پانڌ بچائي صبر ۽ سهي جو مظاهرو ڪري رهيا هئا، ڇو ته کين تجربو هو ته منافق، قدرت پاران هر هر خوار خراب ڪيا ويندا. جيئن ارشاد آهي ته:

﴿أُولَٰئِكَ يَرْوَنَ أَنَّهُمْ يُفْتَنُونَ فِي كُلِّ عَامٍ مَّرَّةً أَوْ مَرَّتَيْنِ ثُمَّ لَا يَتُوبُونَ وَلَا هُمْ يَذَّكَّرُونَ (126)﴾ (التوبة)

”نه ڏسندا آهن ڇا ته هر سال هڪ ڀيرو يا ٻه ڀيرا سزا ڏني ويندي اٿن. بيشڪ؟ وري نڪي توبه ڪندا آهن ۽ نڪي اهي نصيحت وٺندا آهن.“

### غزوه بنو المصطلق ۾ منافقن جو ڪردار: - جڏهن بني المصطلق واري جنگ ٿي ۽ منافق

به ان ۾ شامل هئا ته انهن بلڪل ائين ڪيو، جيڪو هن آيت ۾ ٻڌايل آهي ته:

﴿لَوْ خَرَجُوا فِيكُمْ مَا زَادُوكُمْ إِلَّا خَبَالًا وَلَأَوْضَعُوا خِلَالَكُمْ يَبْغُونَكُمُ الْفِتْنَةَ... (47)﴾ (التوبة)

”جيڪڏهن اوهان سان (گڏجي) نڪرن ها ته اوهان ۾ شرارت ڪانسواءِ ڪجهه نه وڌائين ها ۽ ضرور اوهان ۾ فتنو وجهندڙ ٿي اوهان جي وچ ۾ فساد وجهڻ لاءِ ڊوڙن ها.“

اهڙيءَ طرح هن غزوي ۾ کين اندر جي باه ڪيڏ جا به وجهه مليا، جن مان فائدو وٺندي انهن، مسلمانن ۾ چڱو خاصو ڏڦير ۽ ڦڙڦوٽ وجهي ڇڏي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي خلاف ڏاڍي واءِ واءِ ڪئي. انهن جو تفصيل هن ريت آهي.

### 1. مديني جي سڀ کان بچڙي ماڻهوءَ کي ڪيڏ جي ڳالهه: - پاڻ سڳورا ﷺ غزوه

بني المصطلق کان وٺي اڃا مريسيع نالي چشمي وٽ ئي رهيا پيا هئا جو ڪجهه ماڻهو پاڻي ڀرڻ ويا. انهن ۾ حضرت عمر رضي الله عنه جو هڪ مزدور به هو، جنهن جو نالو جهجاه غفاري هو. پاڻي وٽ هڪ ٻئي همراه سنان بن دبر جهنيءَ جي ڌڪا ڏيڻ تي ٻنهي ۾ جهيڙو ٿي پيو. پوءِ جهنيءَ پڪاريو، يا معشر الانصار (اي انصاريو! مدد لاءِ پهچو) ۽ جهجاه پڪاريو، يا معشر المهاجرين! (اي مهاجرو!

مدد لاء پهچو) پاڻ سڳورا ﷺ خبر پهچندي ئي اتي پهتا ۽ فرمايائون ته: "آئون اڃا توهان ۾ موجود آهيان، پوءِ به جهالت وارا سڏ پيا ڏيو؟ هن کي ڇڏي ڏيو، اهو ڏپ وارو (پاڻي) آهي."

ان واقعي جي خبر عبدالله بن ابي ابن سلول کي پئي ته ڪاوڙ ۾ پڙڪي پيو ۽ چيائين ته "ڇا انهن اها حرڪت ڪئي آهي؟ اهي اسان جي پتنن ۾ اچي هاڻي اسان جا ئي ويري ۽ مد مقابل ٿي ويا آهن! الله جو قسم! اسان جي ۽ انهن جي حالت تي وڏن جي اها چوڻي نهڪي اچي ٿي ته پنهنجن ڪتن کي پالي وڌو ڪريو ته جيئن اوهان کي ئي ڦاڙي ڪائين. ٻڌو! الله جو قسم! جڏهن اسان مديني پهچون ته اسان جو سڀ کان معزز ماڻهو، سڀ کان بچڙي ماڻهو ڪي ڌڪي ٻاهر ڪري." پوءِ ويندن کي چيائين ته: اها مصيبت توهان پاڻ پنهنجي سر ڪئي آهي. توهان انهن کي پنهنجي شهر ۾ آندو ۽ پنهنجي ميڙي پونجي (مال) ورهائي ڏني. ڏسو! توهان وٽ جيڪي ڪجهه آهي، جيڪڏهن اهو کيس ڏيڻ بند ڪريو ته هو توهان جو شهر ڇڏي ٻئي پاسي هليا ويندا."

ان مهل مجلس ۾ نوجوان صحابي حضرت زيد بن ارقم رضه به ويند هو، ان اچي پنهنجي چاچي کي پيرائتي ڳالهه ڪري ٻڌائي. سندن چاچي، پاڻ سڳورن ﷺ کي خبر پهچائي. ان مهل حضرت عمر رضه به ويند هو، جنهن چيو ته: سائين! عباد بن بشر رضه کي چئو ته هن کي ماري ڇڏي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: عمر رضه! اهو ڪيئن ٿو صحيح ٿي سگهي؟ ماڻهو ڇا چوندا ته محمد ﷺ پنهنجن ئي سائين کي پيو مارائي. نه، پر هلڻ جو اعلان ڪرائي ڇڏو."

اهو اهڙو وقت هو، جنهن مهل پاڻ سڳورا ﷺ روانا ڪونه ٿيندا هئا. ماڻهو هلڻ لڳا ته حضرت اسيد بن حضير رضه، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو ۽ سلام واري چيائين ته: اڄ توهان بي مهلا هٿو هلڻ جو حڪم ڏنو آهي؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: توهان جي چڱي مڙس (يعني عبدالله ابن ابي) جيڪي چيو آهي، اهو تو تائين نه پهتو آهي؟ هن پڇيو ته: ان ڇا چيو آهي؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "سندس خيال آهي ته جڏهن هو مديني پهچندو ته سڀ کان معزز ماڻهو سڀ کان بچڙي ماڻهو ڪي مديني مان تڙي ڪيندو." هن چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! الله جو قسم! هو ذليل آهي ۽ اوهان عزت وارا." ان کانپوءِ چيائين ته: "يا رسول الله ﷺ! هن سان نرمي ڪريو، ڇو ته: الله جو قسم! الله تعاليٰ اوهان کي ان مهل اسان وٽ پهچايو، جڏهن سندس قوم کيس تاج پهرائڻ لاءِ ڪوڏين جو تاج ٺهرائي رهي هئي. ان ڪري هاڻي هو سمجهي ٿو ته توهان کانئس، سندس بادشاهت چئي ورتي آهي."

پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ سڄو ڏينهن ۽ سڄي رات هلندا رهيا ۽ ٻئي ڏينهن به ايتري دير تائين سفر ڪندا رهيا جو اس ساڙڻ لڳي. ان کانپوءِ هڪ هنڌ لٿا ته ماڻهو زمين تي لپتندي ئي بي خبر



سمهي پيا. پاڻ سڳورن ﷺ به اهو ئي چاهيو ٿي ته ماڻهن کي سڪ سان ويهي ڪجهه ڪرڻ جو وجهه نه ملي.

هوڏانهن عبدالله بن ابي کي پتو پيو ته زيد بن ارقم رضي الله عنه ڳالهه ڪولي ڇڏي آهي ته هو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو ۽ الله جو قسم! ڪٿي ڇوڻ لڳو ته: هن جيڪا ڳالهه ٻڌائي آهي، اها ڳالهه مون نه ڪئي آهي ۽ نه ئي اهڙي ڳالهه زبان تي آندي اٿر. ان مهل اتي ڪجهه انصاري به ويٺل هئا. انهن به چيو ته: ”يا رسول الله ﷺ! اڃا هي ٻار آهي. تي سگهي ٿو ته پليو هجي ۽ هن جيڪي چيو هجي، سو کيس چڱيءَ طرح ياد نه رهيو هجي!“

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ، عبدالله بن ابي جي ڳالهه کي سچ سمجهيو. حضرت زيد جو بيان آهي ته ان تي مون کي اهڙو ڏک ٿيو، جهڙو اڳ ڪڏهن نه ٿيو هئس ۽ ائون ڏک ۾ گهر وڃي ويهي رهيس. نيٺ الله تعاليٰ سورة المنافقين لائي، جنهن ۾ ٻئي ڳالهيون آهن ته:

﴿هُمُ الَّذِينَ يَقُولُونَ لَا تُنْفِقُوا عَلَيَّ مِنْ عِنْدِ رَسُولِ اللَّهِ حَتَّىٰ يَنْفَضُوا...﴾ (7) (المنافقون)

”اهي اهڙا آهن جو (هڪٻئي کي) چوندا آهن ته جيڪي (مهاجر) الله جي پيغمبر وٽ آهن، تن تي خرچ نه ڪريو، تانجو ڇڏي وڃن.“

﴿يَقُولُونَ لَئِن رَجَعْنَا إِلَى الْمَدِينَةِ لَيُخْرِجَنَّ الْأَعَزُّ مِنْهَا الْأَذَلَّ...﴾ (8) (المنافقون)

”چوندا آهن ته جيڪڏهن (اسين) مديني ۾ موٽي پهتاسون ته وڌيڪ عزت وارو، وڌيڪ بيعزتي کي اتان ضرور ڪڍي ڇڏيندو.“

حضرت زيد رضي الله عنه جو بيان آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ مون کي سڏائي اهي آيتون ٻڌايون ۽ چيو ته الله تنهنجي تصديق ڪئي آهي.<sup>(1)</sup>

ان منافق جو (باسعادت) پٽ، جنهن جو نالو به عبدالله رضي الله عنه هو. سندس ابتر ڇڱو ماڻهو ۽ وڏن اصحابين منجهان هو. ان پنهنجي پيءُ جي عمل کان بيزاري ڏيکاري ۽ مديني جي در تي تلوار جهلي بيهي رهيو. جڏهن عبدالله بن ابي اتي پهتو ته کيس چيائين ته: الله جو قسم! تون هتان اڳتي وڌي به ڪونه سگهندين، جيستائين پاڻ سڳورا ﷺ توکي موڪل نه ڏين. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ اتي پهچي کيس مديني ۾ گهڙڻ جي موڪل ڏني، تڏهن پٽ، پيءُ جو رستو ڇڏيو. عبدالله بن ابي جي ان ئي پٽ پاڻ سڳورن ﷺ کي اهو به چيو ته جي توهان هن کي مارائڻ گهرو ته مون کي ٻڌايو. الله جو قسم هن جو سر توهان جي خدمت ۾ آڻي رکندس.<sup>(2)</sup>

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/499، 2/227، 2/228، 229) - ابن هشام (2/290، 291، 292).

<sup>2</sup> - ابن هشام جا ساڳيا صفحا ۽ مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 277).

2. **افڪ وارو واقعو:** - هن غزوي جو پيو خاص واقعو افڪ وارو واقعو آهي. هن واقعي جو نت آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ جو دستور اهو هوندو هو ته سفر تي ويندي، بيبي سڳورين جي نالن جا پڪا وجهندا هئا ۽ جنهن جي نالي جو ڪٿو نڪرندو هو، ان کي ساڻ وٺي ويندا هئا. هن غزوي ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها جي نالي جو ڪٿو نڪتو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ کين ساڻ وٺي ويا. موٽڻ مهل هڪ جڳهه تي لٿا. بيبي عائشه رضي الله عنها حاجت لاءِ وئي ۽ پنهنجي پيٽ کان اڏارو ورتل هار کائڻ وڃائجي ويو. ان ڳالهه جو احساس ٿيندي ئي پاڻ هڪدم ان جاءِ تي وئي، جتي هار وڃايو هو. ان مهل اهي ماڻهو آيا، جيڪي سندن پالڪي (پاڪڙو يا ڪڇاڻو جيڪو ڍڪيل هجي ان کي محفو به چئبو آهي) کي اٺ تي کڻي رکندا هئا. انهن سمجهيو ته بيبي سڳوري پالڪيءَ ۾ وينل آهي، ان ڪري اها اٺ تي رکي ڇڏيائون ۽ پالڪيءَ جي هلڪي هجڻ تي شڪيا به ڪون، ڇو ته بيبي عائشه رضي الله عنها اڃا ننڍي وهيءَ جي هئي ۽ سندن بت پيريل ۽ ڳرو نه هو ۽ جيئن ته گهڻن ماڻهن پالڪي کڻي هئي، ان ڪري هلڪي هجڻ تي شڪ به ڪونه ٿين. جيڪڏهن رڳو هڪ يا ٻه ڇٽا پالڪي کي کڻن ها ته پڪ سان محسوس ڪري وٺن ها.

مطلب ته بيبي عائشه رضي الله عنها هار ڳولهي موتي ته لشڪر روانو ٿي چڪو هو ۽ ميدان خالي پيو هو. نه ڪو سڏڻ وارو هو نه ئي سڏ ورائڻ وارو. پاڻ اهو سوچي اتي ويهي رهي ته کين ڏسي ڳولھڻ وارا موتي اتي ايندا، پر الله تعاليٰ، جيڪو هر شيءِ تي قادر آهي، اهو مٿي آسمان تان ويهي جيئن وٿيس تيشن ڪري ٿو. تنهن کانپوءِ بيبي عائشه رضي الله عنها جي اک لڳي وئي. پوءِ صفوان بن معطل رضی اللہ عنہ جو اهو آواز ٻڌي کين جاڳ ٿي ته انا لله و انا اليه راجعون، پاڻ سڳورن ﷺ جي گهر واري .....؟ هو گذريل رات کان پنڌ ڪري صبح جو اتي پڳو هو. جتي بيبي سڳوري وينل هئي. هن بيبي عائشه رضي الله عنها کي سڃاتو، ڇو ته کين پڙدي جي حڪم کان اڳ ڏسي چڪو هو. ان، انا لله پڙهي ۽ پنهنجي سواري بيبي سڳوريءَ جي ويجهو ويهاري. بيبي عائشه رضي الله عنها ان تي چڙهي. حضرت صفوان رضی اللہ عنہ انا لله کان سواءِ ٻي ٻڙڪ به ٻاهر نه ڪڍي ۽ ماڻ ڪري سواريءَ جو رسو جهلي پنڌ هلندي لشڪر ۾ پهتو. اوڏي مهل ٻيهر تيا هئا ۽ لشڪر هڪ هنڌ ترسيل هو. کين ان حالت ۾ گڏ ايندي ڏسي جيترا هئا وات، اوترون ڳالهيون ٿيڻ لڳيون ۽ الله جي دشمن نياڳي عبدالله بن ابي ڪر جي اوڀر ڪڍڻ جو هڪ پيو وجه ملي ويو. جيئن ته سندس اندر ۾ حسد ۽ ساڙ جي چڻنگ ڊڪامي رهي هئي، ان سندس ڪپت کي پٿرو ڪري وڌو. يعني بدڪاريءَ جي تهمت مڙهي ڳالهه ٺاهڻ ۽ افواه ڦهلائڻ شروع ڪري ڏنائين. سندس ساٿاري به ان ڪر ۾ جنبي ويا ۽ مديني پهچي انهن ڏاڍي واءِ واءِ ڪري ڏني. ٻئي پاسي پاڻ سڳورا ﷺ ماڻ ۾ هئا ۽ ڪجهه

ڪونه ٿي ڪڇيائون، پر جڏهن وحي اچڻ ۾ گهڻا ڏينهن لڳا ته پاڻ سڳورا ﷺ، بيبي عائشه رضي الله عنها کان ڌار ٿيڻ لاءِ پنهنجن ويساه جوڳن اصحابين کان صلاحون وٺڻ لڳا. حضرت علي رضه اشارن ٿي اشارن ۾ کين ڌار ٿي وڃڻ ۽ بي شادي ڪرڻ جي صلاح ڏني، پر اسامه رضه وغيره صلاح ڏني ته پاڻ سڳورا ﷺ اڃا بيبي سڳوريءَ کي نڪاح ۾ رکڻ ۽ دشمنن جي ڳالهين تي ڌيان نه ڏين. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ منبر تي چڙهي عبدالله بن ابي جي ايڏائڻ کان چوٽڪارو ڏيارڻ لاءِ ڌيان ڇڪرايو. ان تي حضرت سعد بن معاذ رضه ۽ اسيد بن حضير رضه، کيس مارڻ جي موڪل گهري، پر حضرت سعد بن عبادة رضه تي قبائلي حميت غالب اچي وئي، جيڪو عبدالله بن ابي جي قبيلي خزرج جو سردار هو ۽ سندن ٻنهي ڄڻن سان منهن ماري ٿي پئي، جنهن جي ڪري ٻئي قبيلن پڙڪي پيا. پاڻ سڳورن ﷺ ڏاڍي مشڪل سان کين ماڻ ڪرائي ۽ پوءِ پاڻ به ماڻ ڪري ويهي رهيا.

هوڏانهن بيبي عائشه رضي الله عنها جو حال اهو هو ته پاڻ غزوي تان موٽندي ٿي بيمار ٿي پئي ۽ هڪ مهيني تائين لاڳيتي بيمار رهي. کين ان تهمت بابت خبر به ڪانه هئي. باقي کين ان ڳالهه جو ڪٿو ضرور هو ته پاڻ سڳورا ﷺ بيماريءَ ۾ جهڙيءَ طرح سندن سار سنڀال لهندا هئا، هاڻي اها نظر نه پئي اچي. ڇاڪ ٿيڻ کانپوءِ پاڻ هڪ رات ام مسطح رضي الله عنها سان گڏ حاجت لاءِ ميدان ۾ وئي. اتفاق سان ام مسطح رضي الله عنها پنهنجي چادر ۾ وڃڻي ڪري پئي ۽ ان لاءِ پنهنجي پٽ کي پٽڻ لڳي. بيبي عائشه رضي الله عنها، کين توڪيو ته ان بيبي عائشه رضي الله عنها کي ٻڌايو ته منهنجو پٽ به افواه ڦهلائڻ جي ڏوهه ۾ ڀاڱي ڀائيواري آهي ۽ پوءِ تهمت لڳڻ جي سڄي ڳالهه پيرائتي ڪري ٻڌايائين. بيبي عائشه رضي الله عنها موٽڻ کانپوءِ صحيح احوال وٺڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ کان مائٽن ۾ وڃڻ جي اجازت گهري، موڪل ملڻ تي مائٽن ۾ وئي ۽ سڄي ڳالهه جي پڪي خبر پوڻ تي بي اختيار ٿي اچي روئڻ ۾ پئي ۽ لاڳيتو ٻه راتيون ۽ هڪ ڏينهن روئندي گذاريائين. ان دوران نه آرام ڪيائين ۽ نه ئي روئڻ بند ڪيائين. کين لڳو ٿي ته روئندي روئندي سندن هانءُ ڦاٽي پوندو. اهڙيءَ حالت ۾ پاڻ سڳورا ﷺ اتي آيا ۽ شهادت جي ڪلمي تي خطبو پڙهيائون ۽ پوءِ فرمايائون ته: "اي عائشه! مون کي تنهنجي باري ۾ هيءَ ڳالهه معلوم ٿي آهي. جي تو ائين ناهي ڪيو ته الله تعاليٰ جلد ئي تنهنجي آجي هجڻ جو ڄاڻ ڏيندم ۽ جي الله نه ڪري توکان ڪو گناهه ٿيو آهي ته تون الله کان چوٽڪاري لاءِ دعا گهر ۽ توبه ڪر، ڇو ته ٻانهو جڏهن گناهه باسي الله آڏو توبه ڪندو آهي ته الله ان جي توبه قبوليندو آهي."

ان مهل بيبي عائشه رضي الله عنها جا لڙڪ بيبي رهيا ۽ هاڻي هڪ ڦڙو به ڪونه ٿي وهيو. پاڻ، پنهنجن مائٽن کي چيائين ته توهان، پاڻ سڳورن ﷺ کي جواب ڏيو، پر مائٽن جي

سمجھ ۾ نه پئي آيو ته ڪهڙو جواب ڏين. تنهن تي بيبي عائشه رضي الله عنها پاڻ ئي چيو ته: "والله آئون ڄاڻان ٿي ته اها ڳالهه بار بار ٻڌي توهانجي دل ۾ ويهي وئي آهي ۽ توهان ان ڳالهه کي سچ سمجهي ڇڏيو آهي. ان ڪري جي آئون چوان ته آئون بيڏوهي آهيان ۽ الله چڱيءَ طرح ڄاڻي ٿو ته آئون بيڏوهي آهيان. ته به توهان منهنجي ڳالهه تي اعتبار نه ڪندؤ ۽ جي آئون ڪا ڳالهه مڃي ويهان، جڏهن ته الله تعاليٰ ڄاڻي ٿو ته آئون بيڏوهي آهيان ته توهان هڪدم مڃي ويهندؤ. اهڙيءَ حالت ۾ منهنجو ۽ اوهان جو مثال اهڙو آهي، جهڙو حضرت يوسف عليه السلام جي والد چيو هو ته:

﴿فَصَبْرٌ جَمِيلٌ وَاللَّهُ الْمُسْتَعَانُ عَلَىٰ مَا تَصِفُونَ﴾ (18) (يوسف)

"تنهنڪري مونکي چڱو صبر ڪرڻ گهرجي ۽ جيڪي اوهين بيان ڪندا آهيو، تنهن تي الله کان مدد گهري وڃي ٿي."

ان کانپوءِ بيبي عائشه رضي الله عنها ڀرتي وڃي لپتي پئي ۽ ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ تي وڃي لهڻ لڳي. جڏهن وڃي لهڻ جي شدت ۽ ڪيفيت ختم ٿي ته پاڻ سڳورا ﷺ مسڪرائڻ لڳا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جيڪا ڳالهه پهرين ڪئي، اها اها هئي ته: "اي عائشه رضي الله عنها! الله توکي آجو ڪيو آهي. ان تي (خوشيءَ ۾) سندن امڙ چيو ته: (عائشه رضي الله عنها) پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن مهڙ ڪر (تورا مڃ). بيبي سڳوريءَ پنهنجي بيڏوهي هجڻ ۽ پاڻ سڳورن جي محبت تي ڀروسو ۽ پڪ هڻڻ سبب لاڏ ڪندي چيو ته: "والله! آئون انهن ڏانهن ڪونه اينديس ۽ رڳو الله جي ساراه ڪنديس."

ان موقعي تي اڻڪ واري واقعي بابت جيڪي ڏهه آيتون الله تعاليٰ نازل ڪيون، اهي سورة نور ۾ آهن، جيڪي ﴿إِنَّ الَّذِينَ جَاءُوا بِالْإِفْكِ عُصْبَةٌ مِّنْكُمْ...﴾ کان شروع ٿين ٿيون.

ان کانپوءِ تهمت هڻڻ جي ڏوهه ۾ مسطح بن اثابه رضي الله عنه، حسان بن ثابت رضي الله عنه ۽ حمنة بنت جحش رضي الله عنها کي اسي اسي ڪوڙا هنيا ويا. <sup>(1)</sup> باقي عبدالله بن ابي هن سزا کان بچي ويو. جڏهن ته تهمت هڻڻ ۾ هو سڀ کان اڳڀرو هو ۽ ان ئي هن معاملي ۾ اهم ڪردار ادا ڪيو هو. کيس سزا نه ڏيڻ جو سبب يا ته اهو آهي ته جن ماڻهن تي حد لاڳو ڪئي ويندي آهي اها سندن آخرت جي عذاب ۽ گناه جو ڪفارو بڻجي ٿي وڃي ۽ عبدالله بن ابي کي الله تعاليٰ آخرت ۾ سخت عذاب ڏيڻ جو اعلان ڪري ڇڏيو هو. يا وري اها ئي مصلحت ڪارفرما هئي، جنهن جي ڪري سندس اسلام

<sup>1</sup> - اسلامي قانون اهو ئي آهي ته جيڪو ماڻهو ڪنهن تي زنا جي تهمت مڙهي ۽ ثبوت نه پيش ڪري ته ان کي (يعني تهمت لڳائڻ واري کي) اسي ڪوڙا هنيا وڃن.

سان پڌرو وير هوندي به کيس ماريو نه ويو. (1) حافظ ابن حجر رحمته الله عليه، امام حاکم جي هڪ روايت نقل ڪئي آهي ته عبدالله بن ابي تي به حد لڳائي وئي هئي.

اهڙيءَ طرح هڪ مهيني کانپوءِ مديني جي فضا شڪ شبهن ۽ بيچينيءَ کان پاڪ ٿي وئي ۽ عبدالله بن ابي اهڙو خوار ٿيو جو ٻيهر سر نه کڻي سگهيو. ابن اسحاق جو چوڻ آهي ته ان کانپوءِ جڏهن به هو ڪا گڙبڙ ڪندو هو ته سندس ئي قوم جا ماڻهو کيس گهٽ وڌ ڳالهائيندا هئا ۽ توڪيندا هئا. اها حالت ڏسي پاڻ سڳورن رحمته الله عليهم، حضرت عمر رضي الله عنه کي چيو ته: "اي عمر رضي الله عنه! ڇا تو پانئين؟ ڏس! واللہ جيڪڏهن تون هن ماڻهوءَ کي ان ڏينهن ماري ڇڏين ها، جنهن ڏينهن تو، مون سان کيس مارڻ جي ڳالهه ڪئي هئي ته سندس ڪيترائي همدرديون ڇڏين ها، پر جيڪڏهن اڄ سندس انهن همدردين کي کيس مارڻ جو چئجي ته اهي کيس ماري ڇڏيندا." حضرت عمر رضي الله عنه چيو ته: "والله! مون اهو ڀليءَ پٽ ڄاڻي ورتو آهي ته الله جي رسول جي سوچ منهنجي سوچ کان وڌيڪ وزن رکي ٿي." (2)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/364، 2/696، 697، 698) - زاد المعاد (2/113، 114، 115) - ابن هشام (2/297 \_ 307).

<sup>2</sup> - ابن هشام (2/293).

## غزوه مريسيع کانپوءِ جون فوجي مهمون

### 1. ديار بني كعب جي ماڳ وارو سريو (دومة الجندل جو علائقو): - هي سريو

حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ شعبان 6 هـ ۾ موڪليو ويو. پاڻ سڳورن عليه السلام کين پنهنجي آڏو ويهاري پاڻ پنهنجن مبارڪ هٿن سان پتڪو ٻڌو ۽ ويڙهه ۾ سٺي حڪمت عملي اختيار ڪرڻ جي وصيت ڪيائون ۽ فرمايائون ته جيڪڏهن اهي تنهنجي اطاعت قبولين ته تون سندن بادشاهه جي نياڻيءَ سان پرڻو ڪجان. حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه اتي پهچي تي ڏينهن لڳيتو اسلام جي دعوت ڏني. نيٺ قوم وارن اسلام قبوليو. پوءِ حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه تماضر بنت اصبع سان شادي ڪئي. اها ئي حضرت عبدالرحمان رضي الله عنه جي پٽ ابو سلمه جي ماءُ بڻي. ان خاتون جو پيءُ پنهنجي قوم جو سردار ۽ بادشاهه هو.

### 2. ديار بني سعد جي ماڳ وارو سريو (فدڪ وارو علائقو): - هيءُ سريو شعبان 6 هـ

۾ حضرت علي رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ موڪليو ويو. ان جو ڪارڻ اهو هو جو پاڻ سڳورن عليه السلام کي پتو پيو ته بنو سعد جي هڪ جماعت يهودين کي مدد پهچائڻ گهري ٿي. تنهنڪري پاڻ سڳورن عليه السلام حضرت علي رضي الله عنه کي ٻه سؤ ماڻهو ڏئي موڪليو. اهي رات جو پنڌ ڪندا هئا ۽ ڏينهن جو لڪي ويندا هئا. نيٺ هڪ خابرو هٿ لڳن. ان باسيو ته هنن، خير جي ڪجين جي بدلي ۾ مدد ڏيڻ جي آڇ ڪئي آهي. تنهن کانپوءِ حضرت علي رضي الله عنه انهن تي حملو ڪري پنج سؤ اٺ ۽ ٻه سؤ پڪريون هٿ ڪيون. باقي بنو سعد پنهنجن ٻارن ڀڄن سان گڏ ڀڄي ويا. سندن سردار وٽن بن علي هو.

### 3. وادي القريٰ وارو سريو: - هيءُ سريو شعبان 6 هـ ۾ حضرت ابوبڪر رضي الله عنه يا حضرت

زيد بن حارثه رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ رمضان 6 هـ ۾ موڪليو ويو. ان جو ڪارڻ اهو هو ته بنو فزاره جي هڪ شاخ دولاب سان پاڻ سڳورن عليه السلام کي مارڻ جو رٿيو هو. تنهنڪري پاڻ سڳورن عليه السلام حضرت ابوبڪر صديق رضي الله عنه کي موڪليو. حضرت سلمه بن اڪوع رضي الله عنه جو بيان آهي ته هن جنگ ۾ آئون به ساڻن گڏ هوس. فجر نماز پڙهڻ کانپوءِ سندن حڪم تي ڇاپو هنيوسين ۽ چشمي تي ڪاهي پياسين. حضرت ابوبڪر صديق رضي الله عنه ڪن ماڻهن کي ماريو. مون هڪ ٽولو ڏنو. جنهن ۾ عورتون ۽ ٻار به هئا. مون کي لڳو ته متان هي مون کان اڳ جبل تي نه چڙهي وڃن. مون کين جهلڻ جي ڪوشش ڪئي ۽ انهن جي ۽ جبل جي وچ ۾ تير اڇلايم، تنهن تي اهي بيهي رهيا. انهن ۾ ام قرفه نالي هڪ عورت به هئي، جنهن کي چمڙي جو پراڻو لباس پهريل هو. ساڻس گڏ سندس ڌيءُ به هئي، جيڪا

عربستان جي سهڻين عورتن مان هڪ هئي. آئون انهن سڀني کي چڪيندو اٿس، اهوڪر صديق رضي الله عنه وٽ وٺي آيس. جنهن اها چوڪري مون کي ڏني. مون اڃا کيس هٿ به نه لائو هو جو پاڻ سڳورن عليه السلام اها چوڪري مون کان (سلم بن اڪوع رضي الله عنه) وٺي مڪي موڪلي ڇڏي ۽ موت ۾ اتي جي گهڻن ئي مسلمان قيدين کي آڄو ڪرائي ورتو. (1) ام قرفه هڪ شيطان عورت هئي پاڻ سڳورن عليه السلام جي قتل جون ڳالهيون ڪندي هئي ۽ ان ارادي سان پنهنجي خاندان جا ٽيهه شهسوار تيار ڪيا هئا، انهيءَ کي مناسب بدلو ملي ويو ۽ ان جا ٽيهه ئي سوار ماري ويا.

**4. عُرَينين وارو سريو:-** هي سريو شوال 6 هه ۾ حضرت ڪرز بن جابر فهري رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ موڪليو ويو. ان جو ڪارڻ اهو هو ته عڪل ۽ عرنيه جا ڪجهه ماڻهو مديني اچي مسلمان ٿيا ۽ مديني ۾ ئي رهي پيا، پر کين مديني جي آبهوا راس نه آئي. تنهنڪري پاڻ سڳورن عليه السلام کين ڪجهه اٺن سان گڏ چراگاهه ڏانهن موڪلي ڇڏيو ۽ کين حڪم ڪيو ته اٺن جو ڪير ۽ پيشاب پيئندا رهن. جڏهن اهي نوبنا ٿي ويا ته پاڻ سڳورن عليه السلام جي اوتار کي ماري، اٺ ڪاهي هليا ويا ۽ مرتد ٿي ويا. تنهنڪري پاڻ سڳورن عليه السلام کين ڳولڻ لاءِ ڪرز بن جابر فهري رضي الله عنه کي ويهن اصحابين ساڻ روانو ڪيو ۽ اها دعا ڪئي ته يا الله! عرنيه وارن تي رستو اٽو ڪري ڇڏ ۽ ڪنگڙ کان به وڌيڪ سوڙهو ڪري ڇڏ.

الله تعاليٰ اها دعا قبولي، تنهن کانپوءِ اهي جهلجي پيا ۽ مسلمان اوتار کي مارڻ جي ڏوهه ۾ قصاص طور سندن هٿ پير ڪپيا ويا، اکين ۾ گرم ڪانيون ڦيريون ويون ۽ کين حره جي هڪ ڪنڊ ۾ ڇڏيو ويو، جتي اهي پٽ تي تڙپي تڙپي مري ويا. (2) اهو واقعو صحيح بخاري وغيره ۾ حضرت انس رضي الله عنه کان آيل آهي. (3)

سيرت نگارن ان کانپوءِ هڪ ٻئي سريي جو به ذڪر ڪيو آهي، جيڪو حضرت عمرو بن اميه ضمري رضي الله عنه، حضرت سلم بن ابي سلمه رضي الله عنه جي سات سان شوال 6 هه ۾ سر ڪيو. ان جو تفصيل هن ريت ڄاڻايو ويو آهي ته حضرت عمرو بن اميه ضمري رضي الله عنه، ابوسفيان کي مارڻ لاءِ مڪي ويو هو، ڇو ته ابو سفيان، پاڻ سڳورن عليه السلام کي مارڻ لاءِ هڪ اعرابيءَ کي مديني موڪليو هو، پر پنهني ڌرين مان ڪير به سوپارو نه ٿيو. سيرت نگار اهو به ٻڌائين ٿا ته هن سفر ۾ حضرت عمرو رضي الله عنه تي ڪافر ماري هئا ۽ حضرت خبيب رضي الله عنه جو لاش ڪٿي ويو هو. جڏهن ته حضرت خبيب رضي الله عنه جي شهادت جو واقعو رجيع کان ڪجهه ڏهاڙا يا ڪجهه مهينا پوءِ ٿيو ۽ رجيع وارو واقعو صفر 4 هه جو

1 - صحيح مسلم (89/2) چيو وڃي ٿو ته هي سريو 7 هه ۾ ٿيو هو.

2 - زاد المعاد (122/2).

3 - صحيح بخاري (602/2) وغيره.

آهي. ان ڪري آئون اهو سمجهڻ کان قاصر آهيان ته اهي ٻئي واقعا الڳ الڳ سفرن جا آهن، جيڪي سيرت نگارن جي ڀل ڪري هڪٻئي سان ملي ويا آهن ۽ انهن ٻنهي کي هڪ سفر سمجهي ذڪر ڪيو ويو آهي يا اهو ته اهي ٻئي واقعا سچ سچ به هڪ ئي سفر ۾ ٿيا آهن ۽ سيرت نگارن کان سال جو تعين ڪرڻ ۾ ڀولو ٿيو آهي ۽ انهن 4 هه بدران 6 هه ڄاڻايو آهي. علامه منصورپوري رحمۃ اللہ علیہ به هن واقعي کي جنگي مهرا يا سريو مڃڻ کان رضي الله عنه انڪار ڪيو آهي. واللہ اعلم.

اهي آهن اهي سريا ۽ غزوه، جيڪي خندق واري جنگ ۽ بني قريظ تي چڙهائيءَ کانپوءِ ٿيا. انهن مان ڪنهن کي به سخت جنگ نٿو ڪوئي سگهجي. رڳو ڪي معمولي جهڙپون ٿيون، تنهنڪري انهن مهمن کي جنگ بدران فوجي گشت ۽ تاديبي چرپر چئي سگهجي ٿو، جنهن جو مقصد ضدي بدوين ۽ مغرور دشمنن کي ڊيچارڻ هو. غور سان ڄاڻڻ تي پتو پوي ٿو ته خندق واري جنگ کانپوءِ حالتون متجسس لڳيون هيون ۽ اسلام جي دشمنن جا حوصلا پست ٿي رهيا هئا. هاڻي ڪين اها اميد ڪانه رهي هئي ته ڪو اسلام جي دعوت کي ٽوڙي ۽ ان جي شان ۽ عظمت کي پائمال ڪري سگهجي ٿو. پر اها تبديلي اڃا به تڏهن پڌري ٿي، جڏهن مسلمان صلح حديبيه کان فارغ ٿي ويا. اها صلح اصل ۾ اسلام جي سگهه لاءِ مڃتا هئي ۽ ان سان پڪ ٿي وئي ته هاڻي هن قوت کي عربستان مان ڪابه ڌر ختم نٿي ڪري سگهجي.

\*\_\*\_\*



## صلح حديبيه (ذي القعد 6 هـ)

**عمري تي وڃڻ جو سبب:** - جڏهن عربستان جون حالتون گهڻي حد تائين مسلمانن جي حق ۾ ٿي ويون ته اسلامي دعوت جي سوڀ ۽ وڏي فتح جا آثار هوريان هوريان ظاهر ٿيڻ لڳا ۽ مسجد الحرام ۾، جنهن جو دروازو مشرڪن، مسلمانن تي ڇهه سال بند رکيو هو، مسلمانن جي عبادت جو حق مڃڻ جي شروعات ٿي.

پاڻ سڳورن ﷺ کي مديني ۾ اهو خواب ڏيکاريو ويو ته پاڻ سڳورا ﷺ ۽ اصحابي سڳوراضي الله عنهم، مسجد الحرام ۾ گهڙيا آهن. پاڻ سڳورن ﷺ كعبة الله جي ڪنجي ورتي ۽ اصحابين ساڻن كعبة الله جو طواف ۽ عمرو ڪيو. پوءِ ڪن ماڻهن مٿو ڪوڙايو ۽ ڪن تورا وار ڪترايا. پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي اهو خواب ٻڌايو ته اهي ڏاڍا سرها ٿيا ۽ انهن اهو سمجهيو ته هن سال مڪي ۾ گهڙڻ نصيب ٿيندو. پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن کي اهو به ٻڌايو ته: پاڻ سڳورا ﷺ عمرو ڪندا. ان ڪري اصحابي سڳورا به سفر لاءِ تيار ٿي ويا.

**عمرو ڪرڻ لاءِ پڙهو گهمائڻ:** - پاڻ سڳورن ﷺ مديني ۽ پرياسي جي وسندين ۾ پڙهو ڏياريو ته هلڻ وارا پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ هلن، پر گهڻن اعرابين هلڻ ۾ دير ڪئي. ٻئي پاسي پاڻ سڳورن ﷺ اجرا ڪپڙا پاتا. مديني جي واڳ ام مڪتوم رَضِيَ اللهُ عَنْهَا يا نيميل ليشي رَضِيَ اللهُ عَنْهَا کي ڏنائون ۽ پنهنجي قصواء نالي ڏاجيءَ تي چڙهي پهرين ذي القعد 6 هـ آچر جي ڏينهن نڪتا. ساڻن گڏ ام المؤمنين بيبي ام سلمه رضي الله عنها به هئي. چوڏنهن سو (يا پنڌرنهن سو) اصحابي سڳورا ساڻن گڏ هئا. پاڻ سڳورن ﷺ سفر وارو هٿيار يعني مياڻن ۾ بند تلوارن کانسواءِ ٻيو ڪوبه هٿيار ساڻن نه کنيو هو.

**مڪي ڏانهن مسلمانن جو وڌڻ:** - پاڻ سڳورن ﷺ جو رخ مڪي ڏانهن هو. ذوالحليفه پهچي پاڻ سڳورن ﷺ هدي (1) کي پتو ٻڌو (يعني قرباني جي جانور کي ڳائي ٻڌي) ۽ ٿوهار چيري نشان ٺاهيو ۽ عمري جو احرام ٻڌائون ته جيئن ماڻهو مطمئن ٿين ته پاڻ سڳورا ﷺ جنگ ڪونه ڪندا. اڳيان خزاعه قبيلي جو هڪ خابرو به موڪليو ويو ته جيئن هو قريشن جي ارادن جي خبرچار

<sup>1</sup> - هدي، اهو جانور، جيڪو حج ۽ عمري ڪرڻ وارا مڪي يا رَضِيَ اللهُ عَنْهَا منيٰ ۾ ذبح ڪن ٿا. جاهليت جي ڏينهن ۾ عربن جو دستور هو ته قرباني جو جانور رو، ٻڪري آهي ته علامت طور ڳچيءَ (ڪنڌ) ۾ پتو (ڳائي) وڌي وڃي ٿو ۽ جي اٺ آهي ته ٿوهار چيري رت مڪيو وڃي ٿو. اهڙي وهڻ کي ڪير به هٿ نه لائيندو هو. شريعت به اهو دستور برقرار رکيو.

وئي اچي. عسفان ويجهو پهتا ته ان خابروء اچي خبر ڏني ته ائون كعب بن لوي وارن کي ان حالت ۾ ڇڏي آيو آهيان جو انهن، پاڻ سڳورن ﷺ سان وڙهڻ لاءِ حليف قبيلو گڏ ڪري ورتا آهن ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان وڙهڻ ۽ کين كعبة الله پهچڻ کان روڪڻ جو پڪو پهه ڪري وينا آهن. اها خبر ٻڌي پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم سان صلاح ڪئي ۽ چيو ته: 'چا توهان جي اها راءِ آهي ته جيڪي ماڻهو قريش جي مدد لاءِ سندرو ٻڌي بيٺا آهن، اسان انهن تي اوجتو ڪاهي پئون ۽ کين جهلي ونون؟ ان کانپوءِ جيڪڏهن اهي ماڻ ڪري ويهندا ته ان جو مطلب اهو ٿيندو ته جنگ جي سختين سندن چيلهه پيچي ڇڏي آهي ۽ جي هو وڙهڻ ٿا ته به ان حالت ۾ جو الله تعاليٰ کين شڪست نصيب ڪندو، يا توهان جي اها راءِ آهي ته اسين كعبة الله جو رخ ڪريون ۽ جيڪو اسان جي راهه ۾ رنڊڪ وجهي، ان سان وڙهون؟ ان تي حضرت ابوبڪر صديق رضه عرض ڪيو ته: الله ۽ ان جو رسول وڌيڪ چاڻن ٿا. هونئن اسين عمري لاءِ آيا آهيون، ڪنهن سا وڙهڻ لاءِ نه، پر جيڪو اسان جي ۽ كعبة الله جي وچ ۾ رڪاوٽ بڻبو، ان سان وڙهنداسين. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: پلي پوءِ هلو. تنهن تي ماڻهن سفر جاري رکيو.

### كعبة الله پهچڻ کان مسلمانن کي جهلڻ جي ڪوشش:- هوڏانهن قريش کي پاڻ

سڳورن ﷺ جي نڪرڻ جي خبر پئي ته انهن مجلس شوريٰ سڏائي ۽ طه ڪيو ته ڪيئن به ڪري مسلمانن کي كعبة الله کان پري رکجي. تنهنڪري جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ حليف ذرين کان پاسو ڪندي سفر جاري رکيو ته بني كعب جي هڪ ڇٽي اچي کين خبر ڏني ته قريش ذوالطوي وٽ اڳ جهليو وينا آهن ۽ خالد بن وليد به سو سوارن جو جتو وٺي ڪراع الغمير ۾ سنبريو بيٺو آهي. (ڪراع الغمير، مڪي وڃڻ واري مڪ واپاري رستي تي آهي) خالد، مسلمانن کي روڪڻ جي ڪوشش به ڪئي، جو انهن پنهنجن سوارن کي اهڙي هنڌ بيهاريو، جتان ٻئي ڌريون هڪ ٻئي کي ڏسي رهيون هيون. خالد، اڳين نماز مهل جڏهن ڏٺو ته مسلمان ركوع ۽ سجدي ۾ وڃي رهيا آهن ته چوڻ لڳو ته اهي غافل هئا، اسين ڪاهي پئون ها ته کين ماري وجهون ها. ان کانپوءِ وڃين نماز مهل مسلمانن تي اوجتو ڪاهڻ جو رٿيائين، پر الله تعاليٰ ان وچ ۾ صلوات خوف (جنگ مهل پڙهجنديڙ خاص نماز) جو حڪم نازل ڪيو ۽ خالد جي هٿان موقعو نڪري ويو.

### خوني ٽڪراءَ کان بچڻ جي ڪوشش ۽ رستو متاثر:- هوڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ ڪراع

الغمير جو مڪ لنگهه ڇڏي ٻيو ور وڪڙن وارو رستو اختيار ڪيو، جيڪو جابلو ورن وڪڙن منجهان لنگهيو ٿي. يعني پاڻ سڳورا ﷺ ساڄي پاسي کان تورو هيٺ لهي حمش جي وچ مان لنگهندي هڪ اهڙي واٽ تي هليا، جيڪا ثنية المرار وٽان نڪتي ٿي. ثنية المرار مان حديبيه ۾ لهن ٿا ۽ حديبيه،

مڪي جي هيٺال ۾ آهي. اها واٽ وٺڻ جو فائدو اهو ٿيو ته ڪراچ الغمير جو مک رستو، جيڪو تنعيم کان لنگهي حرم تائين وڃي ٿو ۽ جنهن تي خالد بن وليد جو جتو اڳ جهلي بيٺو هو، اهو ڪاٻي پاسي رهجي ويو. خالد، جڏهن مسلمانن جي (هلڻ سان اٿيل) دز ڏسي محسوس ڪيو ته انهن رستو مٽائي ڇڏيو آهي ته گهوڙو ڊوڙائي قريش کي نئين خطري جي ڄاڻ ڏيڻ لاءِ ڊوڙندي مڪي پهتو.

ٻئي پاسي پاڻ سڳورا ﷺ لاڳيتو هلندا رهيا. جڏهن ثنية المرار پهتا ته ڏاڇي ويهي رهي. ماڻهن گهڻو ئي هڪلون ڪيس، پر اها ويٺي رهي. ماڻهن چيو ته قصواء اڙي ڪئي آهي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: قصواء اڙي نه ڪئي آهي ۽ نه ڪو هن کي اهڙي هير آهي، پر ڪيس ان هستيءَ روڪيو آهي، جنهن هاڻيءَ کي روڪيو هو. پوءِ فرمايائون ته: "ان هستيءَ جو قسم جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، اهي ڪنهن به اهڙي ڳالهه جي گهر نه ڪندا، جنهن ۾ ڪين الله جي حرمت جو اونو هجي، پر پوءِ به اٿون اهي ضرور مڃيندس." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ڏاڇيءَ کي هڪل ڪئي ته اها ٽپ ڏئي اتي بيٺي. پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ ٿورو رستو مٽائي اچي اقصائي حديبي ۾ هڪ چشمي وٺ لٽا، جنهن ۾ ٿورڙو پاڻي هو ۽ ماڻهن ٿورو ٿورو کنيو ته به جلد ئي پاڻي ختم ٿي ويو. تنهن تي ماڻهن پاڻ سڳورن ﷺ کي اڃ جي دانهن ڏني. پاڻ سڳورن ﷺ ترڪش مان هڪ تير ڪڍيو ۽ حڪم ڪيو ته: چشمي ۾ وجهي ڇڏيو. ماڻهن ائين ئي ڪيو. ان کانپوءِ الله جي ڪرڻي اها ٿي جو ان چشمي مان لاڳيتو پاڻي ٻوڙيا ڪري نڪرندو رهيو، تان ته سڀئي ماڻهو اڃ لاهي موتيا.

**بُدِيل بن ورقاء جي تياڪڙي:** - پاڻ سڳورا ﷺ سانتيڪا ٿي ويٺا ته بدِيل بن ورقاء خزاقي پنهنجي قبيلي خزاء جا ڪجهه ماڻهو وٺي پهتو. تهامه جي رهاڪن ۾ اهو ئي قبيلو (خزاء) پاڻ سڳورن ﷺ جو همدرد هو. بدِيل چيو ته: "اٿون ڪعب بن لوئي کي ڏسندو پيو اچان. اهي حديبي جي گهڻي پاڻيءَ واري ماڳ تي ترسيا پيا آهن. ساڻس گڏ ٻار ٻچا به آهن. اهي توهان سان وڙهڻ ۽ توهان کي ڪعبة الله کان روڪڻ جو پڪو پهه ڪري نڪتا آهن." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اسين ڪنهن سان وڙهڻ نه نڪتا آهيون. قريش کي لڙاين تڪائي وڌو آهي ۽ ڏاڍو نقصان به رسايو آهي. ان ڪري جي اهي گهرن ته ڪجهه عرصي لاءِ ٺاهه ڪري سگهجي ٿو ۽ اهي منهنجي ۽ منهنجن ماڻهن جي وچان نڪري وڃن. پوءِ جي منهنجو غلبو ٿئي ته ٻين وانگر منهنجي اطاعت ڪن يا وري مدت پوري ٿيڻ تي تازا توانا تي چڪا هوندا. باقي جيڪڏهن ڪين ويڙهه کانسواءِ ٻي واٽ هٿ نٿي اچي ته پوءِ ان هستيءَ جو قسم، جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، اٿون پنهنجي دين لاءِ ساڻن

ايستائين وڙهندو رهندس، جيستائين منهنجي سر ۾ ساھ آھي يا جيستائين اللھ تعاليٰ پنهنجو حڪم نٿو نازل ڪري."

بديل چيو ته: "توهان جيڪي چيو، اهو آئون قريشن تائين پهچائيندس. ان کانپوءِ قريشن وٽ ويو ۽ چيائين ته: آئون فلاڻي وٽان ٿيو پيو اچان. مون کانئس هڪ ڳالهه ٻڌي آهي، چئو ته توهان کي ٻڌايان. ان تي جاهلن چيو ته اسان کي گهرج ڪانهي ته تون اسان سان هن جي ڳالهه ڪرين، پر جيڪي ماڻهو سمجهدار هئا، انهن چيو ته ڀلا ٻڌاءِ ته سهي ته توڇا ٻڌو آهي؟ بديل چيو ته مون کيس هي هي ڳالههون ڪندي ٻڌو آهي. ان تي قريشن، مڪرم بن حفص کي موڪليو. کيس ڏسندي ئي پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: هي بدعهد ماڻهو آهي، تنهن کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ، ساڻس ڳالهه ٻولهه ڪئي ته ان کي به ساڳي ڳالهه چيائون، جيڪا بديل ۽ ان جي ساٿين کي چئي هئائون. ان موٽي وڃي قريشن کي پيرائتي ڳالهه ڪري ٻڌائي.

قريشن جو قاصد:- ان کانپوءِ حليس بن علقمه نالي بنو ڪنانه جي هڪ ماڻهوءَ چيو ته: مون کي هن وٽ وڃڻ ڏيو. ماڻهن چيس ته پلي وڃ. پاڻ سڳورن ﷺ کيس پريان کان ايندو ڏسي اصحابي سڳورن کي چيو ته "اهو فلاڻو آهي. سندس تعلق اهڙيءَ قوم سان آهي، جيڪا قرباني جي جانورن جو ڏاڍو احترام ڪندي آهي، تنهنڪري جانورن کي اٿاري بيهاريو." اصحابين جانورن کي اٿاري بيهاريو ۽ پاڻ به لبيڪ جي صدا هڻندي سندس آڃيان ڪيائون. هن اها حالت ڏني ته چيائين: "سبحان الله! هنن ماڻهن کي ڪعبه الله وڃڻ کان روڪڻ چڱو نه آهي ۽ اتان ئي پنهنجن ساٿين وٽ موٽي ويو ۽ چيائين ته: "مون قربانيءَ جا جانور ڏنا، جن جي ڳچين ۾ نشانيءَ جا رسا ٻڌل هئا ۽ جن جا ٿوڀا چيريل هئا. ان ڪري کين ڪعبه الله ۾ اچڻ کان روڪڻ کي آئون چڱو نٿو سمجهان." ان تي قريشن ۽ سندس وڃ ۾ اهڙي ڏي وٺ ٿي جو هو تاءَ ۾ اچي ويو.

ان مهل عروه بن مسعود ثقفي وڃ ۾ پيو ۽ چيائين ته: "هن (محمد ﷺ) توهان جي آڏو چڱي رت رکي آهي، تنهنڪري ان کي مڃي وٺو ۽ مون کي ان وٽ وڃڻ ڏيو. ماڻهن چيس ته پلي وڃ. تنهنڪري هو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو ۽ ڳالهه شروع ڪيائين. پاڻ سڳورن ﷺ کيس به بديل واري ساڳي ڳالهه ٻڌائي. ان تي عروه چيو ته: "اي محمد ﷺ! اهو ته ٻڌاءِ ته جيڪڏهن تون پنهنجي قوم جو صفايو به ڪري ڇڏيو ته ڇا تو کان اڳ به ڪنهن عرب بابت ٻڌو اٿئي، جنهن پنهنجي ئي قوم جو صفايو ڪيو هجي ۽ جي بي صورت پيش اچي ته الله جو قسم آئون اهڙا مهاندا ۽ اهڙا لوفر ماڻهو (هتي) پيو ڏسان، جيڪي ان لائق آهن جو اهي توکي ڇڏي ڀڄي ويندا." ان تي حضرت ابوبڪر رضه ڪاوڙجي چيو ته اسين پاڻ سڳورن ﷺ کي ڇڏي ڀڄنداسين! عروه پڇيو ته: هي ڪير

آهي! ماڻهن ٻڌايس ته ابوبڪر رضي الله عنه آهي. ان تي حضرت ابوبڪر رضي الله عنه ڏي منهن ڪري چيائين ته: "ڏس! ان هستيءَ جو قسم جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، جيڪڏهن تنهنجو مون تي ٿورو نه ڪيل هجي ها، جنهن جي ڪري آئون ماڻ ۾ آهيان ته آئون پڪ سان تنهنجي ڳالهه جي ورندي ڏيان ها."

ان کانپوءِ عروه، پاڻ سڳورن عليه السلام سان ڳالهائڻ لڳو. هن جڏهن ڳالهايو ٿي ته پاڻ سڳورن عليه السلام جي سونهاري مبارڪ ۾ هٿ تي وڌا. مغيره بن شعبه رضي الله عنه، پاڻ سڳورن عليه السلام جي مٿان بيٺل هو. سندس هٿ ۾ تلوار هئي ۽ مٿي تي خود. عروه جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام جي سونهاري مبارڪ ڏي هٿ تي وڌايو ته هن تلوار جو هٿيو سندس هٿ تي هڻي چيو ٿي ته پنهنجو هٿ پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڏاڙهي مبارڪ کان پري رک. نيٺ عروه مٿو مٿي کڻي پڇيو ته هيءُ ڪير آهي؟ ماڻهن ٻڌايس ته مغيره بن شعبه رضي الله عنه آهي. ان تي کيس چيائين ته: "او بي وڙا! ڇا آئون تنهنجي بدعهديءَ ڪري ڊوڙڊڪ ڪونه پيو ڪريان؟ ڳالهه اها هئي ته: جاهليت ۾ حضرت مغيره رضي الله عنه، ڪن ماڻهن سان گڏ هو. پوءِ انهن کي ماري مال متاع کڻي پڇي ويو هو ۽ اچي مسلمان ٿيو هو. تنهن تي پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو هو ته آئون (تنهنجو) اسلام آڻڻ ته قبوليان ٿو، باقي مال سان منهنجو ڪوبه واسطو نه آهي. (ان معاملي ۾ عروه جي ڊوڙڊڪ جو ڪارڻ اهو هو ته حضرت مغيره رضي الله عنه سندس پائيتيو هو.)"

ان کانپوءِ عروه، پاڻ سڳورن عليه السلام سان اصحابي سڳورن جي هلت ڏسڻ لڳو. پوءِ اچي پنهنجن ساٿين کي ٻڌايائين ته: "اي قوم وارو! الله جو قسم آئون قيصر، ڪسري ۽ نجاشيءَ جهڙن بادشاهن وٽ وڃي چڪو آهيان، پر مون اهڙو ڪوبه بادشاهه نه ڏٺو آهي، جنهن جا ساٿي ان جي ايڏي عزت ڪندا هجن، جيڏي محمد عليه السلام جا ساٿي، محمد عليه السلام جي عزت ڪندا آهن. الله جو قسم! هو ٿڪ به اڇلائيندو هو ته سندس ڪو ساٿي جهٽي وٺندو هو ۽ ان کي پنهنجي منهن ۽ بدن تي ملي ڇڏيندو هو ۽ جڏهن هو حڪم ڪندو هو ته ان جي پورائي لاءِ سڀ ڊوڙي پوندا هئا ۽ جڏهن وضو ڪندو هو ته ائين لڳندو هو ته سندس وضوءَ جي پاڻيءَ لاءِ ماڻهو وڙهي پوندا ۽ جڏهن ڪجهه چوندو هو ته سڀ پنهنجو آواز جهڪو ڪري وٺندا هئا ۽ ادب کان گهڻي دير اڪيون کڻي نه ڏسندا هئا ۽ ان توهان کي ڏاڍي چڱي رت ڏني آهي، تنهنڪري اها مڃي وٺو."

اهو ئي آهي، جيڪو سندن هٿ اوهان کان روڪي ٿو:— جڏهن قرينن جي جوشيلن ۽ ويڙهو نوجوانن ڏٺو ته سندن چڱا مڙس ٺاه ڪرڻ چاهين ٿا ته انهن ٺاه ۾ رنڊڪ وجهڻ جو رٿيو ته رات جو هتان نڪري ماڻ ميٺ ۾ مسلمانن جي ڪيمپ ۾ گهڙي ويندا ۽ اتي اهڙو هنگامو ڪندا جو

جنگ جي باهه پڙڪڻ لڳندي. پوءِ انهن هن منصوبي تي عمل ڪرڻ جي ڪوشش به ڪئي ۽ رات جي ڪاري سخت اونداهي ۾ ستر، اسي جڻن، تنعيم جبل کان لهي مسلمانن جي ڪيمپ ۾ گهٽڻ جي ڪوشش ڪئي، پر اسلامي لشڪر جي پهريدارن جي ڪمانڊر محمد بن مسلمہ رضي الله عنه سڀني کي جهلي ورتو. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام ناهه جي نيت سان سڀني کي معاف ڪندي ڇڏي ڏنو. ان بابت الله تعاليٰ جو ارشاد نازل ٿيو ته:

﴿وَهُوَ الَّذِي كَفَّ أَيْدِيَهُمْ عَنْكُمْ وَأَيْدِيَكُمْ عَنْهُمْ بِبَطْنِ مَكَّةَ مِنْ بَعْدِ أَنْ أَظْفَرَكُمْ عَلَيْهِمْ...﴾ (24) ﴿الفتح﴾

”۽ الله اهو آهي، جنهن ڪافرن جا هٿ اوهان کان ۽ اوهان جا هٿ انهن کان جهليا، مڪي جي وچ ۾ اوهان کي متن سويارو ڪري ڇڏيو.“

**حضرت عثمان رضي الله عنه جي سفارت:-** هاڻي پاڻ سڳورن عليه السلام سوچيو ته: هڪ سفير موڪليو وڃي، جيڪو قريش کي پاڻ سڳورن عليه السلام جي سفر جو مقصد چڱيءَ طرح سمجهائي سگهي. ان ڪر لاءِ حضرت عمر رضي الله عنه کي سڏرايو ويو، پر ان اهو چئي معذرت گهري ته: يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! جي مون کي ڪو اهڃو رسايو ويو ته مڪي ۾ بني ڪعب مان هڪ ڄڻو به منهنجي سهائتا لاءِ نه اٿندو. توهان حضرت عثمان بن عفان رضي الله عنه کي موڪليو. ان جو ڪٽم قبيلو مڪي ۾ ئي آهي ۽ پاڻ توهان جو نياپو چڱيءَ طرح پهچائي ڇڏيندو. پاڻ سڳورن عليه السلام، حضرت عثمان رضي الله عنه کي گهرايو ۽ قريش وٽ ويڃڻ جو حڪم ڏيندي فرمايو ته: ”ڪين ٻڌائي ڇڏجان ته اسين وڙهڻ لاءِ نه پر عمرو ڪرڻ لاءِ آيا آهيون. ڪين اسلام جي دعوت به ڏجان.“ پاڻ سڳورن عليه السلام اهو به حڪم ڪيو ته: حضرت عثمان مڪي ۾ مؤمنن ۽ مؤمنياڻين وٽ وڃي ڪين سوپ جي بشارت ڏي ۽ اهو به ٻڌائين ته الله تعاليٰ هاڻي پنهنجي دين کي مڪي ۾ پٿرو ۽ سگهارو ڪرڻ وارو آهي. ايترو جو ڪنهن به ايمان واري کي لڪڻ جي ضرورت نه پوي.

حضرت عثمان رضي الله عنه، پاڻ سڳورن عليه السلام جو نياپو ڪڍي نڪتو. بلذح وٽ ڪين قريش مليا، انهن پڇيو ته: ”ڪيڏانهن پيا وڃو؟“ فرمايائين ته: ”مون کي پاڻ سڳورن عليه السلام ههڙيءَ طرح جو نياپو ڏئي موڪليو آهي.“ قريش چيو ته: ”اسان توهان جي ڳالهه ٻڌي ورتي. توهان ڀلي پنهنجو ڪم وڃي ڪريو. ٻئي پاسي سعيد بن عاص اتي حضرت عثمان رضي الله عنه سان ڪيڪار پيچار ڪئي ۽ پنهنجي گهوڙي تي حضرت عثمان رضي الله عنه کي سوار ڪيو ۽ گڏ ويهاري پنهنجي پناهه ۾ مڪي وٺي آيو. اتي پهچي حضرت عثمان رضي الله عنه، قريش جي چڱن مڙسن کي پاڻ سڳورن عليه السلام جو نياپو ڏنو. ان کانپوءِ قريش، ڪين ڪعبه الله جو طواف ڪرڻ جي آڇ ڪئي، پر هن انڪار ڪيو. ڪين اهو گوارا نه هو ته پاڻ سڳورن عليه السلام جي طواف ڪرڻ کان اڳ، پاڻ طواف ڪري وٺن.

**حضرت عثمان رضي الله عنه جي شهادت جو افواه ۽ بيعت رضوان:-** حضرت عثمان رضي الله عنه پنهنجو ڪم پورو ڪري ڇڏيو، پر قريشن، کين پاڻ وٽ ترسائي ڇڏيو. شايد انهن چاهيو ٿي ته صورتحال تي پاڻ ۾ صلاح مصلحت ڪري ڪو فيصلو ڪري وٺن ۽ حضرت عثمان رضي الله عنه کي آندل نياپي جو جواب ڏئي موڪلين، پر حضرت عثمان رضي الله عنه جي دير ڪرڻ ڪري مسلمانن ۾ افواه ڦهلاجي ويو ته کين ماريو ويو آهي. جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام کي خبر پهتي ته پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته اسين هن جاءِ تان ايسٽائين چري به نٿا سگهو، جيستائين انهن سان ويڙهه نه ڪري وٺون. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي بيعت لاءِ سڏيو. اصحابي سڳورا اها بيعت ڪرڻ لاءِ ڪاهي پيا ته اهي ميدان ڇڏي ڀڄندا ڪونه. هڪ جماعت ته موت تي بيعت ڪئي، يعني اها ته مري وينداسين پر پڙ نه ڇڏينداسين. ابو سنان اسدي رضي الله عنه بيعت ڪئي. ان کانپوءِ سلمه بن اڪوع رضي الله عنه تي پيرا بيعت ڪئي. شروع ۾، وچ ۾ ۽ آخر ۾. پاڻ سڳورن عليه السلام پاڻ پنهنجو هٿ جهلي چيو ته هيءُ عثمان رضي الله عنه جو هٿ آهي. پوءِ جڏهن بيعت پوري ٿي وئي ته حضرت عثمان رضي الله عنه به پهچي ويو ۽ ان به بيعت ڪئي. هن بيعت ۾ رڳو هڪ ڄڻو شامل نه ٿيو، جيڪو منافق هو. ان جو نالو جد بن قيس هو.

پاڻ سڳورن عليه السلام اها بيعت هڪ وڏ هيٺان ورتي هئي. حضرت عمر رضي الله عنه هٿ مبارڪ جهليو بيٺو هو ۽ حضرت معقل بن يسار رضي الله عنه وڏ جون ڪجهه شاخون جهلي پاڻ سڳورن عليه السلام کان پري ڪري بيٺو هو. ان ئي بيعت جو نالو بيعت رضوان آهي ۽ ان بابت ئي الله تعاليٰ هيءَ آيت لائي آهي ته:

﴿لَقَدْ رَضِيَ اللَّهُ عَنِ الْمُؤْمِنِينَ إِذْ يُبَايِعُونَكَ تَحْتَ الشَّجَرَةِ...﴾ (18) (الفتح)

”بيشڪ الله مؤمنن کان راضي ٿيو، جنهن مهل وڏ هيٺ توسان بيعت ٿي ڪيائون.“

**ناه ۽ ناه جا نقطا:-** مطلب ته قريشن، حالتن جي نزاکت سمجهي ورتي، تنهنڪري تڪڙ ۾ سهيل بن عمرو کي صلح جون ڳالهيون ڪرڻ لاءِ موڪليو ۽ تاڪيد ڪئي ته ناه ۾ اها ڳالهه ضرور طءُ ڪري ته پاڻ سڳورا عليه السلام هن سال موتي وڃن. ائين نه ٿئي ته عرب چون ته پاڻ سڳورا عليه السلام اسانجي شهر ۾ زوريءَ گهڙي پيا. اهي هدايتون وٺي سهيل بن عمرو پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتو پاڻ سڳورن عليه السلام، کيس ايندو ڏسي اصحابي سڳورن کي چيو ته: ”توهانجو ڪم سولو ڪيو ويو. هن همراه کي موڪلڻ جو مطلب ئي اهو آهي ته قريش ناه ڪرڻ گهرن ٿا.“ سهيل پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهچي گهڙي دير تائين ڳالهه ٻولهه ڪئي ۽ نيٺ ٻنهي ڌرين ۾ ناه جا شرط طءُ ٿي ويا، جيڪي هن ريت هئا:

1. پاڻ سڳورا ﷺ هن سال مڪي ۾ گهڙڻ کانسواءِ موٽي ويندا. ايندڙ سال مسلمان مڪي ۾ ايندا ۽ تي ڏينهن رهندا. انهن وٽ سواريءَ جو هٿيار يعني مياڻن ۾ پيل تلوارون هونديون ۽ انهن کان ڪابه پڇاڳاچا نه ڪئي ويندي.

2. ڏهن سالن تائين ڌرين ۾ جنگ ڪانه ٿيندي. ان عرصي ۾ ماڻهو محفوظ رهندا، ڪير به ڪنهن تي هٿ نه ڪڻندو.

3. جيڪو محمد ﷺ سان ٺاه ڪرڻ چاهي، ڀلي ڪري ۽ جيڪو قريشن سان ٺاه ڪرڻ چاهي، ڀلي ڪري. جيڪو قبيلو جنهن ڌر سان شامل ٿيندو، ان جو ئي حصو سمجهيو ويندو. تنهنڪري اهڙي ڪنهن به قبيلي سان زيادتي ٿي ته ان ڌر سان ٿيل زيادتي سمجهي ويندي.

4. قريشن جو ڪوبه ماڻهو پنهنجي سنڀاليندڙ جي موڪل کانسواءِ پڇي محمد ﷺ وٽ پهچندو ته محمد ﷺ ان کي موٽائي ڇڏيندو، پر محمد ﷺ جي ساٿين مان جيڪو ماڻهو پناهه وٺڻ لاءِ پڇي قريشن وٽ ايندو، قريش ان جي ٻانهن ڪونه موٽائيندا.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت علي رضيه الله عنه کي لکت لاءِ سڏيو ۽ مٿان لکرايو ته: بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ ان تي سهيل چيو ته: اسين رحمان کي ڪونه سڃاڻو؟ توهان هيئن لکو ته: بِاسْمِكَ اللّٰهُمَّ

(اي الله تنهنجي نالي سان) پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت علي رضيه الله عنه کي اهڙيءَ طرح لکڻ جو حڪم ڏنو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ لکرايو ته: "هي آهن اهي ڳالهيون، جن تي محمد رسول الله ﷺ ٺاه ڪيو. ان تي سهيل چيو ته: "جيڪڏهن اسان توکي الله جو رسول سمجهون ها ته پوءِ نه ڪو توکي ڪعبه الله وڃڻ کان جهليون ها ۽ نه ئي جنگ ڪريون ها. تنهنڪري تون محمد بن عبدالله لکراءِ. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: توهان ڪيڏو به انڪار ڪريو، پر آئون الله جو رسول آهيان. پوءِ حضرت علي رضيه الله عنه کي حڪم ڪيائون ته: محمد بن عبدالله لک ۽ لفظ "رسول الله ﷺ" ڏاهي ڇڏ. حضرت علي رضيه الله عنه اهو لفظ ڏاهڻ پسند نه ڪيو، تنهن تي پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجن مبارڪ هٿن سان اهو لفظ مٽايو، ان کانپوءِ سڄو دستاويز لکيو ويو.

ٺاه ٿي وڃڻ کانپوءِ بنو خزاع، پاڻ سڳورن ﷺ جي ڌر سان شامل ٿي ويا. اهي حقيقت ۾ عبدالمطلب جي ڏينهن کان ئي بنو هاشم جا حليف هئا، جيئن اڳتي لکي آيا آهيون. ان ڪري هن پيري به ٺاه ۾ شامل رهڻ حقيقت ۾ ان ئي اڳاٽي دوستيءَ کي پڪو ڪرڻ هو. ٻئي پاسي بنو بڪر، قريشن سان شامل ٿي ويا.



ابو جندل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جِي موت: - ٺاه جو دستاويز اڃا لڪجي رهيو هو ته سهيل جو فرزند. حضرت ابو جندل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ پير ڪڙيون گسرائيندو اتي اچي پهتو. هو مڪي جي هيٺال مان پڇي آيو هو. هن اتي پهچي پاڻ کي ڪڏي مسلمانن جي وچ ۾ اڃايو. سهيل چيو ته: هي پهريون ڄڻو آهي، جنهن بابت آئون اوهان سان معاملو ڪريان ٿو ته هن کي موٽائي ڇڏيو. پاڻ سڳورن رَضِيَ اللهُ عَنْهُ فرمايو ته: اڃا ته پاڻ دستاويز به پورو ڪونه لکيو آهي! هن چيو ته: پوءِ آئون توهان سان ٺاه ڪريان ٿي ڪونه ٿو. پاڻ سڳورن رَضِيَ اللهُ عَنْهُ چيو ته چڱو توهان هن کي منهنجي ڪري ئي ڪڏي ڇڏيو. هن چيو ته: تنهنجي ڪري به ڪونه ٿو ڇڏي سگهان. پاڻ سڳورن رَضِيَ اللهُ عَنْهُ فرمايو ته: "نه نه ايترو ته تون ڪري ٿي سگهين ٿو." هن چيو ته: نه، آئون ائين نٿو ڪري سگهان. پوءِ سهيل، ابو جندل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جي ڳل تي تفتڙ واهي ڪڍيو ۽ کين مشرڪن ۾ واپس وٺي وڃڻ لاءِ گلي کان جهلي گيهلڻ لڳو. ابو جندل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ واکا ڪري چوڻ لڳو ته: مسلمانو! ڇا مون کي مشرڪن ۾ موٽايو ويندو ته جيئن اهي مون کي منهنجي دين بابت فتنن ۾ وجهي ڇڏين؟ پاڻ سڳورن رَضِيَ اللهُ عَنْهُ فرمايو ته: "ابو جندل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ! صبر ڪر ۽ ان کي ثواب جو ڪارڻ سمجهه. الله تعاليٰ تو لاءِ ۽ توسان گڏ ٻين سڀني ڪمزور مسلمانن لاءِ ڪشادي ۽ پناهه واري جڳهه ٺاهيندو. اسان قريشن سان ٺاه ڪري ڇڏيو آهي ۽ هڪ ٻئي کي الله جو واسطو وڌو اٿئون. ان ڪري واعدي خلافي نٿا ڪري سگهون."

ان کانپوءِ حضرت عمر رَضِيَ اللهُ عَنْهُ ٽپ ڏئي ابو جندل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ وٽ پهتو. هو پاسي کان هلندي چونڊو پئي ويو ته: ابو جندل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ! صبر ڪر. اهي مشرڪ آهن، سندن رت ڇڻ ڪتي جو رت آهي. گڏوگڏ پنهنجي تلوار جو هٿيو به سندن ويجهو ڪندو ويو. حضرت عمر رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جو بيان آهي ته مون کي اميد هئي ته هو تلوار وٺي پنهنجي پيءُ (سهيل) کي ماري ڇڏيندو. پر هن پنهنجي پيءُ بابت بخل کان ڪم ورتو ۽ پوءِ ٺاه جو پڌرنامو لاڳو ٿي ويو.

عمرو ادا ڪرڻ لاءِ قرباني ڏيڻ ۽ وار ڪٽائڻ: - پاڻ سڳورن رَضِيَ اللهُ عَنْهُ ٺاه جو دستاويز لکائي پورو ڪيو ته فرمايائون ته: اٿو ۽ پنهنجا پنهنجا جانور قربان ڪريو. پر ٿي پيرا اها ڳالهه ورجائڻ کانپوءِ به ڪير نه اٿيو. نيٺ پاڻ سڳورا رَضِيَ اللهُ عَنْهُ، بيبي ام سلمه رضي الله عنها وٽ ويا ۽ ماڻهن جي هلت جو ذڪر ڪيائون. ام المؤمنين چيو ته: "يا رسول الله رَضِيَ اللهُ عَنْهُ! جي اوهان اهو چاهيو ٿا ته پوءِ ڪنهن کي به ڪجهه چوڻ کانسواءِ مان ڪري وڃي پنهنجو قربانيءَ وارو جانور ڪهو ۽ حجام کي سڌرائي وار ڪوڙايو." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن رَضِيَ اللهُ عَنْهُ ٻاهر اچي بنا ڪجهه ڪيڇڻ جي پنهنجو جانور ڪنو ۽ حجام کي سڌائي مٿو ڪوڙايو. ڏسندي ئي ڏسندي ٻين ماڻهن به اتي پنهنجا پنهنجا جانور ڪنا ۽ پوءِ هڪ ٻئي جا وار ڪوڙڻ لڳا. لڳو ائين پئي ڇڻ ڏک ۾ سڀ هڪ ٻئي کي ماري

وجهندا. ان موقعي تي ڊيگين ۽ انن جون ست ست يتون ڪيون ويو. پاڻ سڳورن ﷺ اهو اٺ ڪنو، جيڪو اڳي ابوجهل جو هوندو هو. ان جي نڪ ۾ چانديءَ جو هڪ چلو پيل هو. ان کي ڪهڙ جو مقصد قريشن کي ساڙڻ هو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ مٿو ڪوڙائڻ وارن لاءِ تي پيرا چوٽڪاري جي دعا گهري ۽ قنچي سان وار ڪٽائڻ وارن لاءِ هڪ پيرو. هن ئي سفر ۾ الله تعاليٰ، حضرت ڪعب بن عجره رضی اللہ عنہ جي سلسلي ۾ اهو حڪم نازل ڪيو ته جيڪو ماڻهو ڪنهن تڪليف جي ڪري پنهنجو مٿو (احرام جي حالت ۾) ڪوڙائي، اهو روزي يا صدقي يا قربانيءَ جي شڪل ۾ فديو ڏي.

**مهاجر عورتن کي موتائڻ کان انڪار:-** ان کانپوءِ ڪجهه مؤمنياڻيون آيون. سندن سنڀاليندڙن گهر ڪئي ته حديبيه واري ٺاهه مطابق اهي موتايون وڃن، پر پاڻ سڳورن ﷺ اها گهر اهو چئي رد ڪري ڇڏي ته معاهدي ۾ لکيل آهي ته: **وَ عَلٰى اَنَّهُ لَا يَأْتِيكَ مِّنْ رَّجُلٍ وَّ اِنْ كَانَ عَلٰى دِينِكَ اِلَّا رَدَدْتَهُ (1)** (۽ هي ٺاهه ان شرط تي ڪيو پيو وڃي ته) اسان جو جيڪو مرد توهان وٽ ايندو، توهان اهو هر حال ۾ موتائيندا. ڀلي ته اهو توهان جي ئي دين تي هلندڙ ڇو نه هجي).

تنهنڪري عورتن جي ته ڳالهه به هن ٺاهه ۾ ڪانه هئي. پوءِ الله تعاليٰ هن سلسلي ۾ اها آيت لاهي ته: **﴿يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِذَا جَاءَكُمْ الْمُؤْمِنَاتُ مُهَاجِرَاتٍ فَامْتَحِنُوهُنَّ اللَّهُ أَعْلَمُ بِإِيمَانِهِنَّ فَإِنْ عَلِمْتُمُوهُنَّ مُؤْمِنَاتٍ فَلَا تَرْجِعُوهُنَّ إِلَى الْكُفَّارِ لَأَهُنَّ حِلٌّ لَّهُمْ وَلَا هُمْ يَحِلُّونَ لَهُنَّ وَأَنَّهُنَّ مَا أَتَّفَقُوا وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ أَنْ تَنكِحُوهُنَّ إِذَا آتَيْتُمُوهُنَّ أَجُورَهُنَّ وَلَا تُمْسِكُوا بِعِصَمِ الْكُوفَرِ... (10)﴾ (المتحنة)**

”اي ايمان وارو! جڏهن اوهان وٽ مؤمنياڻيون وطن ڇڏي اچن، تڏهن کين جانچيو. الله انهن جي ايمان کي چڱو ڄاڻندڙ آهي. پوءِ جيڪڏهن کين مؤمنياڻيون ڄاڻو ته انهن کي ڪافر ڏانهن موتائي نه موڪليو. نه ڪي اهي (مسلمان زالون) انهن (جي ڪافر مڙسن) کي حلال آهن ۽ نه ڪي اهي (ڪافر مڙس) انهن (مسلمان زالن) کي حلال آهن ۽ جيڪي (حق مهر بابت) خرچ ڪيائون، سو انهن مڙسن کي ڏيو ۽ جڏهن کين سندن حق مهر ڏيو ته انهن جي نڪاح ڪرڻ اوهان تي (ڪو) گناهه نه آهي.“

هيءَ آيت لهڻ کانپوءِ جڏهن ڪا مؤمنياڻي هجرت ڪري ايندي هئي ته پاڻ سڳورا ﷺ، الله

تعالوي جي ڏسيل وات مطابق سندس امتحان وٺندا هئا.

**﴿يَا أَيُّهَا النَّبِيُّ إِذَا جَاءَكَ الْمُؤْمِنَاتُ يُبَايِعَنَّكَ عَلَىٰ أَنْ لَا يُشْرِكَنَّ بِاللَّهِ شَيْئًا وَلَا يَسْرِقَنَّ وَلَا يَزْنِيَنَّ وَلَا يَقْتُلَنَّ أَوْلَادَهُنَّ وَلَا يَأْتِيَنَّ بِهَتَّانِ يَفْتَرِيَنَّ بَيْنَ أَيْدِيهِنَّ وَأَرْجُلِهِنَّ وَلَا يَعْصِبَنَّ فِي مَعْرُوفٍ فَبَايِعَهُنَّ وَأَسْتَعْفِرَ لَهُنَّ إِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ رَحِيمٌ (12)﴾ (المتحنة)**

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (380/1).

جڏهن تو وٽ مؤمن زالون اچن، هن (شرط) تي توسان بيعت ڪن ته ڪنهن کي الله سان شريڪ نه ڪنديون ۽ نڪي چوري ڪنديون ۽ نڪي زنا ڪنديون ۽ نڪي پنهنجي اولاد کي ڪهنديون ۽ نه ڪي اهڙي ڪوڙي تهمت آڻينديون، جنهن کي پنهنجن هٿن ۽ پنهنجن پيرن سان ٺاهيو هجي ۽ نه ڪنهن چڱي ڪم ۾ تنهنجي نافرمان ڪنديون، تڏهن سندن بيعت قبول ڪر ۽ انهن لاءِ الله کان چوٽڪارو گهر، ڇو ته الله بخشڻهار مهربان آهي.

تنهن کانپوءِ جيڪي عورتون هن آيت ۾ ٻڌايل شرطن جي پابنديءَ جو واعدو ڪنديون هيون، پاڻ سڳورا ﷺ تن کي چوندا هئا ته مون توهان کان بيعت وٺي ڇڏي. پوءِ انهن کي موٽائيندا ڪونه هئا.

ان حڪم مطابق مسلمانن، پنهنجن ڪافر زالن کي طلاقون ڏئي ڇڏيون. ان وقت حضرت عمر رضي الله عنه جون ٻه زالون شرڪ ڪندڙ هيون، پاڻ سڳورن رضي الله عنه ٻنهي کي طلاق ڏياري ڇڏي. پوءِ انهن مان هڪ سان معاويہ پرڻيو ۽ ٻيءَ سان صفوان بن اميه.

**ناهه جي شرطن جو اڀتار:** - اهو آهي حديبيه وارو ناهه، جيڪو ماڻهو ان جي شرطن جو پوري پسنمظر سميت جائزو وٺندو، ان کي ڪوبه شڪ نه رهندو ته اهو ناهه مسلمانن جي وڏي سوڀ هو، ڇو ته قريش اڃا تائين مسلمانن جي وجود کي تسليم نه ڪيو هو ۽ انهن کي ختم ڪرڻ لاءِ پڪو پھ ڪري ويٺا هئا. کين انتظار هو ته هڪ نه هڪ ڏينهن هيءَ سگهه ٿئي ويندي. ان کانسواءِ قريش، عربستان جي ديني ۽ دنياوي اڳواڻن جي حيثيت ۾ اسلام جي سڌ ۽ عام ماڻهن جي وچ ۾ پوري سگهه سان رنڊڪ وجهڻ ۾ رڌل هوندا هئا. ان پسنمظر ۾ ڏسجي ته رڳو "ناهه جي لاءِ راضي ٿيڻ ئي مسلمانن جي سگهه کي مڃڻ ۽ ان ڳالهه جو اعلان ڪرڻ هو ته قريش هن سگهه کي دٻائڻ جي طاقت نٿا رکن. ٻيو ته ٽئين شرط پٺيان پڌري پٽ اها نفسياتي ڪيفيت ڏسڻ ۾ پئي اچي ته پنهنجو ديني ۽ دنياوي مرتبو وساري، کين اچي سر سان لڳي هئي. کين ٻين جو اونو ڪونه هو. يعني سڄو عربستان ڀلي مسلمان ٿئي، ان جي کين اون ڪانه هئي. ڇا قريش جي اها سوچ پڌري هار ۽ مسلمانن جي وڏي سوڀ ڪانه آهي؟ مسلمانن ۽ اسلام جي دشمنن جي وچ ۾ جيڪا رتوڇاڻ ٿي، ڇا ان جو مقصد اهو نه هو ته عقيدتي ۽ دين بابت ماڻهن کي پوري آزادي ۽ خودمختياري ملي وڃي. يعني پنهنجي مرضيءَ سان جيڪو ماڻهو چاهي مسلمان ٿئي ۽ جيڪو نه چاهي سو نه ٿئي. ڪابه سگهه سندن راهه ۾ رڪاوٽ نه بڻجي. مسلمانن جو اهو مقصد هرگز نه هو ته دشمن جو مال ڦريو وڃي، کين ماريو وڃي يا زوريءَ مسلمان ڪيو وڃي.

توهان ڏسي سگهو ٿا ته هن ٺاهه جي ڪري مسلمانن کي اهو مقصد پوريءَ طرح حاصل ٿي ويو ۽ اهڙيءَ طرح جو شايد جنگ ۾ ڪٿڻ کانپوءِ به ائين مقصد حاصل نه ٿيڻ ها. ٻيو ته هن آزاديءَ کانپوءِ مسلمانن کي دعوت ۽ تبليغ جي ميدان ۾ وڏيون ڪاميابيون حاصل ٿيون. جيئن مسلمان فوج جو تعداد، جيڪو ٺاهه کان اڳ ڪڏهن به ٽن هزارن کان وڌيو نه هو، اهو رڳو ٻن سالن ۾ مڪو فتح ڪرڻ مهل وڌي ڏهه هزار ٿي ويو.

ٻيو شرط به حقيقت ۾ ان وڏي سوڀ جو هڪ جزو آهي، ڇو ته جنگ جي شروعات مسلمانن نه پر مشرڪن ڪئي هئي الله تعاليٰ جو ارشاد آهي ته:

﴿وَهُمْ بَدَعُوا أَوَّلَ مَرَّةٍ﴾ (التوبة)

جيستائين مسلمانن جي جاسوسي ۽ فوجي جتن جو تعلق آهي ته انهن مان مسلمانن جو مقصد رڳو اهو هو ته قريش پنهنجي ٻاراڻي هنڌ ۽ الله جي راهه ۾ رندڪ وجهڻ کان پاڻ جهلين ۽ هڪجهڙائيءَ جي بنياد تي ڳالهيون ڪن، يعني ٻئي ڌريون پنهنجي پنهنجي واٽ تي هلڻ لاءِ آزاد هجن. هاڻي غور ڪريو ته ڏهن سالن تائين جنگ نه ڪرڻ جو ٺاهه اهڙي هنڌ ۽ الله جي راهه کان روڪڻ کان پاڻ جهلڻ جو ئي واعدو آهي، جيڪو ان ڳالهه جو دليل آهي ته جنگ ڇيڙڻ وارو ڪمزور ٿي پنهنجي مقصد ۾ ناڪام ٿي ويو.

جيستائين پهرئين شرط جو سوال آهي ته اهو حقيقت ۾ مسلمانن جي ناڪاميءَ بدران ڪاميابيءَ جو اهڃاڻ آهي، ڇو ته اهو شرط حقيقت ۾ ان پابنديءَ جي پڄاڻيءَ جو اعلان آهي، جيڪا قريشن، مسلمانن تي مسجد الحرام ۾ گهڙڻ جي سلسلي ۾ لاڳو ڪري ڇڏي هئي. ها باقي قريشن جي دل جي ڏي لاءِ به ايتري ڳالهه ڏنل هئي ته ان هڪڙي سال لاءِ مسلمانن کي روڪڻ ۾ ڪامياب ٿي ويا، پر ظاهر آهي ته اهو وقتي فائدو هو، جنهن جي ڪابه حيثيت ڪانه هئي.

هڪ ٻي ڳالهه به ڌيان جوڳي آهي ته قريشن، مسلمانن کي ٽي رعايتون ڏئي، رڳو هڪ رعايت ورتي هئي، جيڪا چوٿين شرط ۾ آيل آهي، پر اها رعايت جهڙي هئي، تهڙي ڪانه هئي ۽ ان سان مسلمانن کي نقصان به ڪونه ٿي رسيو. ڇو ته اها حقيقت پڌري پئي هئي ته جيستائين ڪو مسلمان، مسلمان هوندو، الله، ان جي رسول کان ۽ مدينه الاسلام مان ڪڏهن به ڪونه ڀڄندو. ان جي ڀڄڻ جي رڳو هڪ ئي صورت ٿي سگهي ٿي ته اهو مرتد ٿي وڃي ۽ ظاهر آهي ته ڪنهن جي مرتد ٿيڻ کانپوءِ مسلمانن کي ان جي ضرورت ڪانه رهي ها. پر اسلامي معاشري ۾ سندس موجودگيءَ کان گهڻو ڀلو هو ته هو ڌار ٿي وڃي. ان ئي نقطي ڏانهن پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي هن ارشاد ۾ اشارو ڪيو هو ته:

" إِنَّهُ مَنْ ذَهَبَ مِّنَّا إِلَيْهِمْ فَأَبْعَدَهُ اللَّهُ " (1)

باقي ٻچيا مڪي جا اهي رهاڪو، جيڪي مسلمان ٿي چڪا هئا يا ٿيڻ وارا هئا ته جيتوڻيڪ انهن لاءِ هن ناهه مطابق مديني ۾ پناهه جي جاءِ نه هئي، پر الله جي زمين ته بهرحال وڏي هئي. ڇا حبش جي زمين اهڙي نازڪ دور ۾ مسلمانن لاءِ ٻانهون ڪونه ڦهلايون هيون، جڏهن مديني جا رهاڪو اڃا اسلام جي نالي کان به واقف ڪونه ٿيا هئا؟ اهڙيءَ طرح ٿي اڄ به زمين جو ڪو ٽڪر مسلمانن لاءِ پنهنجون ٻانهون ڪولي ٿي سگهيو ۽ ان ڳالهه ڏانهن ئي پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي هن ارشاد ۾ اشارو ڪيو هو ته: " وَمَنْ جَاءَنَا مِنْهُمْ سَجَعَلُ اللَّهُ لَهُ فَرَجًا وَمَخْرَجًا " (2).

اهڙا شرط مڃائڻ سان جيتوڻيڪ ظاهري طور تي قريشن جو ڳاٽ اوچو ٿيو، پر ڏٺو وڃي ته اهي شرط قريشن جي گهٽپراحت، پریشاني، اعصابي دٻاءُ ۽ توت قوت جا اهڃاڻ هئا. ان مان پتو پوي ٿو ته کين پنهنجي بت پرست سماج بابت ڏاڍو ڊپ ٿي پيو هو ۽ اهي محسوس ڪري رهيا هئا ته سندن سماجي ڍانچو هڪ اونهي ڪڏ جي ڪنڌيءَ تي بيٺو آهي ۽ ڪيڏي مهل به هيٺ ڪري سگهي ٿو. تنهنڪري ان جي حفاظت لاءِ اهڙا شرط مڃائڻ ضروري آهن. ٻئي پاسي پاڻ سڳورن ﷺ جنهن کليل دل سان اهو شرط مڃيو هو ته قريشن وٽ پناهه وٺندڙ ڪنهن به مسلمان جي گهر ڪونه ڪندا، اها ان ڳالهه جو دليل هئي ته پاڻ سڳورن ﷺ کي نئين جوڙيل سماج جي مضبوطيءَ جي پوريءَ طرح پروڙ هئي ۽ اهڙو شرط پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ڪوبه انديشو پيدا نه ڪري سگهيو.

### مسلمانن جو ڏک ڪرڻ ۽ حضرت عمر رضي الله عنه جي بحث ڪرڻ:- اها آهي حديبيه

واري ناهه جي شرطن جي حقيقت. ظاهري طرح انهن شرطن ۾ به ڳالهيون اهڙيون هيون، جن جي ڪري مسلمان ڏاڍا ڏکيو ٿي ويا. هڪ اها ته پاڻ سڳورن ﷺ ٻڌايو هو ته پاڻ ڪعبه الله ۾ پهچي ويندا ۽ ان جو طواف به ڪندا، پر پاڻ سڳورا ﷺ طواف ڪرڻ بنا ٿي موتي رهيا ها. ٻي ڳالهه اها ته پاڻ سڳورا ﷺ، الله جا رسول هئا ۽ حق تي هئا ۽ الله پنهنجي دين کي سوڀارو ڪرڻ جو واعدو به ڪيو هو، پوءِ ڇا جي ڪري پاڻ سڳورا ﷺ قريشن جي دٻاءُ ۾ اچي ويا ۽ سندن شرطن تي ناهه ڪري وينا؟ اهي ٻئي ڳالهيون گهڻائي شڪ شبها ۽ وسوسا پيدا ڪري رهيون هيون. هوڏانهن مسلمان ناهه جي شرطن تي غور ڪرڻ بدران غم ۾ ٻڏي ويا هئا ۽ شايد سڀ کان وڌيڪ ڏک حضرت عمر رضي الله عنه کي ٿيو هو. تنهنڪري ئي ان پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! ڇا اسين حق تي ۽ هو باطل تي ناهن؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هاڻو." هن چيو ته: "ڇا اسان جا ڪنل جنت ۾ ۽

1 - صحيح مسلم - باب صلح الحديبيه (105/2).

2 - ساڳي حديث صحيح مسلم ۾ (105/2).

هنن جا مثل دوزخ ۾ ناهن؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هاڻو." هن چيو ته: "پوءِ اسين دين جي معاملي ۾ دابي ۾ چو اچون ۽ ان حالت ۾ موتون جو اسان جي ۽ هنن جي وچ ۾ الله تعاليٰ ڪو فيصلو نه ڪيو هجي؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ابن خطاب! آئون الله جو رسول آهيان ۽ ان جي نافرماني نٿو ڪري سگهان. هو منهنجي مدد ڪندو ۽ مون کي ڇڏيندو ڪونه." هن چيو ته: "چا توهان، اسان کي نه ٻڌايو هو ته اسين ڪعبة الله جي زيارت ڪنداسين ۽ ان جو طواف ڪنداسين؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: هاڻو! پر چا مون اهو به چيو هو ته هن ئي سال ڪنداسين؟" هن چيو ته: "نه" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "تون نيٺ ڪعبة الله تائين پهچندي ۽ ان جو طواف ڪنديين."

ان کانپوءِ حضرت عمر رضه ڪاوڙ ۾ حضرت ابوبڪر رضه وٽ آيو ۽ ساڻن ڳالهيون ڪيائين ۽ ان به ساڳيا جواب ڏنا، جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ ڏنا هئا. پڇاڙيءَ ۾ ايترو وڌيڪ به چيائين ته: رڪاب مان تيسرائين پير نه ڪڍجان، جيستائين موت نه اچي، ڇو ته: الله جو قسم پاڻ سڳورا ﷺ سچا آهن.

ان کانپوءِ ﴿إِنَّا فَتَحْنَا لَكَ فَتْحًا مُّبِينًا﴾ جون آيتون لٿيون، جن ۾ ناهه کي فتح مبین ڪوٺيو ويو آهي. اهي آيتون لهڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عمر رضه کي گهراڻي پڙهي ٻڌايون، جنهن تي پاڻ چوڻ لڳو ته "يا رسول الله ﷺ! اها سوڀ آهي؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "هاڻو" تنهن تي سندن دل کي آت ملي ۽ پاڻ موٽي ويو.

تنهن کانپوءِ حضرت عمر رضه کي پنهنجي غلطيءَ جو احساس ٿيو ته ڏاڍو پشيمان ٿيو. پاڻ چوندو هو ته: "مون ان ڏينهن جيڪا ڀل ڪئي ۽ جيڪي ڪجهه ڳالهايو، ان جي ڊپ کان گهٽائي چڱا ڪم ڪيم. صدقو ۽ خيرات ڪندو رهيس. روزا رکندو رهيس ۽ نمازون پڙهندو رهيس ۽ غلام آزاد ڪندو رهيس. وڌيڪ الله تعاليٰ سڻائي ڪندو." (1)

**ڪمزور مسلمانن جي مسئلي جو حل:-** پاڻ سڳورن ﷺ جي مديني پهچڻ کانپوءِ هڪ مسلمان، جنهن کي مڪي ۾ ڏاڍو تنگ ڪيو ويو هو، پاڻ ڇڏائي اتي پهتو. ان جو نالو ابو بصير رضه هو. پاڻ ثقيف قبيلي منجهان هو ۽ قريشن جو حليف هو. قريشن، ان کي موتائڻ لاءِ ٻه ماڻهو موڪليا ۽ اهو چورائي موڪليو ته پنهنجي وچ ۾ تيل ٺاهه تي عمل ڪريو. پاڻ سڳورن ﷺ، ابو بصير رضه کي انهن جي حوالي ڪيو. اهي ٻئي کيس وٺي نڪتا ۽ اچي ذوالحليفة ۾ لٿا ۽ ڪارڪون ڪاڻڻ

<sup>1</sup> - صلح حديبيه جو تفصيل هنن ڪتابن مان ورتل آهي. فتح الباري (439/7 \_ 458) - صحيح بخاري (378/1 \_ 381 \_ 598/2 \_ 600 \_ 717) - صحيح مسلم (104/2، 105، 106) - ابن هشام (308/2 \_ 322) - زاد المعاد (122/2 \_ 127) - مختصر السيرة للشیخ عبدالله (ص: 207 \_ 305) - تاريخ عمر بن الخطاب لابن الجوزي (ص: 39، 40).

لڳا. ابو بصير رضي الله عنه هڪ ڇٽي کي چيو ته: "فلاڻا! تنهنجي تلوار ڏاڍي پلي پئي ڏسجي." هن اها مياڻ مان ڪڍي چيو ته: "بيو نه ته وري! هيءُ آهي به پلي. مون هن کي گهڻائي پيرا آزمايو آهي. ابو بصير رضي الله عنه چيو ته "پلا تورو ڏيکار ته سهي." هن، ابو بصير رضي الله عنه کي تلوار ڏني ۽ ابو بصير رضي الله عنه تلوار وٺندي ئي کيس ماري وڌو.

بيو ڇٽو پڇي مديني پهتو ۽ ڊوڙندو مسجد نبويءَ ۾ گهڙي ويو. پاڻ سڳورن عليه السلام، کيس ڏسي فرمايو ته: هيءُ ڏنل پيو لڳي. هن همراھ پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهچي چيو ته: منهنجو ساٿي الله جو قسم! ماريو ويو آهي ۽ آءُ به مارڻ وارو آهيان. ايتري ۾ ابو بصير به اچي ويو ۽ چوڻ لڳو ته: "يا رسول الله صلي الله عليه وسلم! الله تعاليٰ توهان جو قسم پورو ڪيو. توهان مون کي انهن جي حوالي ڪيو. پوءِ الله تعاليٰ مون کي انهن کان ڇڏرايو. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "جيڪڏهن هن کي ڪو ساٿي ملي ويو ته هي ته جنگ جي باهه پڙڪائي ڇڏيندو." اها ڳالهه ٻڌي ابو بصير رضي الله عنه سمجهي ويو ته کين ٻيهر ڪافرن جي حوالي ڪيو ويندو. ان ڪري پاڻ مديني مان نڪري سمنڊ جي ڪناري وٽ وڃي رهيو. ٻئي پاسي ابو جندل بن سهيل رضي الله عنه به پاڻ ڇڏائي ڀڳو ۽ اچي ساڻن مليو. هاڻي قريشن جو جيڪو ماڻهو مسلمان ٿيندو هو. اهو اچي حضرت ابو بصير رضي الله عنه سان ملندو هو. اهڙيءَ طرح سندن چڱو خاصو ٿولو ٺهي پيو. ان کانپوءِ انهن کي شام واري واٽ تي قريشن جي ڪنهن به قافلي جي لنگهڻ جي خبر پوندي هئي ته اهي، انهن سان چيڙچاڙ ضرور ڪندا هئا ۽ قافلي وارن کي ماري، مال ڦري وٺندا هئا. قريشن تنگ ٿي پاڻ سڳورن عليه السلام کي واسطا وجهي نياپو موڪليو ته انهن کي پاڻ وٽ گهرائي وٺو ۽ هاڻي جيڪو به توهان وٽ پهچي، ان کي ڪجهه نه چيو ويندو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام کين مديني ۾ گهرائي ورتو.

قريش سردارن جو مسلمان ٿيڻ:— هن ٺاهه کانپوءِ 7 هه جي منڍ ۾ حضرت عمرو بن العاص، خالد بن وليد ۽ عثمان بن طلحه رضي الله عنهم مسلمان ٿيا. جڏهن اهي پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتا ته پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "مڪي پنهنجي جگر جا ٽڪرا اسان کي ڏئي ڇڏيا آهن." (1)

\* \* \*

<sup>1</sup> - انهن اصحابين سڳورن جي مسلمان ٿيڻ جي سن ۾ ڏاڍو اختلاف آهي. اسماء الرجال جي عام ڪتابن ۾ اهو سن 8 هه جو واقعو ٻڌايو ويو آهي. ڀر نجاشيءَ وٽ حضرت عمرو بن العاص رضي الله عنه جي اسلام قبول ٿيڻ وارو مشهور آهي، جيڪو سن 7 هه ۾ ٿيو ۽ اها به ڄاڻ آهي ته حضرت خالد رضي الله عنه ۽ عثمان بن طلحه رضي الله عنه، حضرت عمرو بن العاص رضي الله عنه جي حبش مان موٽڻ کانپوءِ مسلمان ٿيا هئا، ڇو ته انهن حبش مان موٽي مديني وڃڻ جو ارادو ڪيو ته وات تي اهي ٻئي کين مليا هئا ۽ تنهنجي ڄڻ گڏجي وڃي پاڻ سڳورن عليه السلام آڏو اسلام قبوليو. ان جو مطلب ته اهي ٽي ڄڻا سن 7 هه جي منڍ ۾ مسلمان ٿيا. (والله اعلم).

## ٻيو مرحلو

### نئين تبديلي

صلح حديبيه حقيقت ۾ اسلام ۽ مسلمانن جي زندگيءَ ۾ نئين تبديلي آڻڻ جي شروعات هئي. جيئن ته اسلام سان وير رکندڙن ۾ قريش سڀ کان سگهاري ۽ ويڙهو قوم هئا، ان ڪري جڏهن اهي جنگ جي ميدان ۾ پنهنجي هٿيا ته ڄڻ خندق واري جنگ جي ٽن ڌرين، يعني قريش، غطفان ۽ يهودين مان سڀ کان سگهي ڌر ڌار ٿي وئي ۽ جيئن ته قريش ئي سڄي عربستان ۾ بت پرستيءَ جا نمائندا ۽ اڳواڻ هئا، ان ڪري جنگ جي ميدان مان نڪرندي ئي بت پرستن جا جذبا مانا ٿي ويا ۽ سندن دشمنيءَ واري هلت گهڻي پاڳي متجي وئي. تنهن کانپوءِ اسان ڏسون ٿا ته غطفان وارن به ڪو وڏو فساد نه ڪيو، جيڪو ٿورو گهڻو ڪيائون، اهو به يهودين جي پڙڪائڻ تي.

باقي بچيا يهودي، تن مديني مان نيڪالي ملڻ کانپوءِ خيبر کي پنهنجين سازشن جو اڏو بڻائي ڇڏيو هو ۽ اتي ويهي شرارتون ڪري رهيا هئا. اهي مديني جي پرياسي ۾ رهندڙ ڳوٺاڻن کي پڙڪائيندا ٿي رهيا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ توڙي مسلمانن جي خاتمي يا گهٽ ۾ گهٽ کين ڪو وڏو ڇيهو رسائڻ جي ست ستيندا ٿي رهيا. ان ڪري حديبيه واري ٺاهه کانپوءِ سڀ کان پهريون ڪم ان فتني جي مرڪز کي ٽوڙڻ لاءِ ڪيو.

مطلب ته امن جي ڏينهن ۾ مسلمانن کي اسلام پڪيٽڙ جو واهه جو وجهه ملي ويو. انهن ڏينهن جي سرگرمين کي ٻن قسمن ۾ ورهائي سگهجي ٿو.

1. تبليغي سرگرميون ۽ بادشاهن ڏانهن خط

2. جنگي سرگرميون

مناسب ٿيندو ته جنگي سرگرمين کان اڳ هتي بادشاهن کي لکيل خطن جو تفصيل ڏنو وڃي، ڇو ته اسلام جو اصل مقصد اهو ئي آهي، جنهن لاءِ مسلمانن ڏاڍا ڏکيا ڏينهن ڏنا.

\*\_\*\_\*



## بادشاهن ۽ سردارن ڏي موڪليل خط

سن 6 هه جي پڇاڙيءَ ۾ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ حديبيه کان موتيا ته انهن مختلف بادشاهن کي خط لکي اسلام جي دعوت ڏني.

پاڻ سڳورن ﷺ اهي خط لکڻ جو ارادو ڪيو ته کين ٻڌايو ويو ته بادشاهه رڳو اهڙا خط قبوليندا آهن، جن تي مهر لڳل هوندي آهي. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ هڪ چانديءَ جي منڊي ٺهرائي، جنهن تي محمد رسول الله لکيل هو. اها لکت تن ستن ۾ هئي. محمد هڪ ست ۾، رسول بيءَ ست ۾ ۽ الله تينءَ ست ۾. ان جي شڪل هيئن ٿي بيئي

الله

رسول

محمد(1)

پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ڄاڻو ۽ تجربي وارن صحابه سڳورن کي قاصد چونڊيو کين خط ڏئي بادشاهه ڏي موڪليو. علامه منصورپوريءَ پڪي ڳالهه لکي آهي ته اهي قاصد خير ڏانهن وڃڻ کان ڪجهه ڏينهن اڳ پهرين محرر سن 7 هه تي موڪليا ويا هئا. (2) هتي اهي خط ۽ انهن جي نتيجن جو ڪجهه ذڪر پيش ڪجي ٿو.

1. حبش جي بادشاهه نجاشيءَ ڏانهن لکيل خط:- ان نجاشيءَ جو نالو اصحمه بن ابجر هو. پاڻ سڳورن ﷺ ان ڏانهن جيڪو خط لکيو هو، اهو عمرو بن اميه ضمريءَ رضه هتان سن 6 هه جي پڇاڙيءَ ۾ يا سن 7 هه جي منڍ ۾ موڪليو. طبريءَ ان خط جي لکت ڏني آهي، پر مٿاڇري نظر وجهڻ سان ئي پتو پوي ٿو ته هي اهو خط نه آهي، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ حديبيه واري ٺاهه کانپوءِ لکيو هو، پر اها شايد ان خط جي لکت آهي، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ مڪي وارن ڏينهن ۾ حضرت جعفر رضه کي حبشه ڏانهن هجرت ڪرڻ مهل ڏنو هو. ڇو ته خط جي پڇاڙيءَ ۾ انهن مهاجرن جو ذڪر هنن لفظن ۾ ڪيل آهي ته: ”وَقَدْ بَعَثْتُ إِلَيْكُمْ ابْنَ عَمِي جَعْفَرًا وَمَعَهُ نَفَرٌ مِنَ الْمُسْلِمِينَ فَإِذَا جَاءَكَ فَأَقْرَهُمْ وَدَعْ التَّجِيرَ.“

”مون توهان ڏي پنهنجي سوٽ جعفر کي مسلمانن جي هڪ جماعت سان موڪليو آهي، جڏهن اهي توهان وٽ پهچن ته کين پاڻ وٽ رهاڻجو ۽ ڏاڍائي نه ڪجو.“

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (2/872، 873).

<sup>2</sup> - رحمة للعالمين (1/171).

بيھتيء، ابن عباس رضي الله عنه جي حوالي سان هڪ ٻئي خط جي لکت به ڏني آهي، جيڪو پاڻ سڳورن عليه السلام، نجاشيءَ ڏي موڪليو. ان جو ترجمو آهي ته:

"هي خط آهي محمد عليه السلام نبيءَ پاران حبشه جي بادشاهه نجاشيءَ ڏانهن.

سلام ان تي جيڪو سڌي راهه تي هلي ۽ الله ۽ ان جي رسول تي ايمان آڻي. آئون شاهدي ڏيان تو ته: الله وحده لاشريڪ ڪانسواءِ ڪوبه عبادت جوڳو ڪونهي. نڪو سندس زال آهي ۽ نه پٽ ۽ (آئون اها به شاهدي ڏيان تو ته) محمد عليه السلام ان جو ٻانهو ۽ رسول آهي ۽ آئون توهان کي اسلام جو سڌ ڏيان ٿو، ڇو ته آئون ان جو رسول آهيان، تنهنڪري اسلام قبوليو ته سلامت رهندؤ. اي اهل ڪتاب! هڪ اهڙي ڳالهه ڏي مڙو، جيڪا اسان ۽ توهان وٽ ساڳي آهي ته اسين الله ڪانسواءِ ڪنهن ٻئي جي عبادت نه ڪريون، ساڻس ڪنهن کي به شريڪ نه ڪريون ۽ اسان مان ڪي، الله ڪانسواءِ ڪنهن کي به پنهنجو پالڻهار نه بڻائين. بس پوءِ جي اهي منهن موڙين ته چئجو ته شاهد رهجو، اسين مسلمان آهيون.

جي توهان (اها دعوت) نه قبولي ته توهان (جي سر) تي سڄي نصارا قوم جو گناهه پوندو." ڊاڪٽر حميد الله صاحب (پاريس) هڪ ٻئي خط جي لکت به ڏني آهي، جيڪو ويجهڙائيءَ ۾ هٿ آيو آهي ۽ رڳو هڪ لفظ جي ڦير گهير سان ساڳيو خط علامه ابن قيم جي ڪتاب زاد المعاد ۾ به موجود آهي. ڊاڪٽر صاحب هن خط جي لکت جي ڇنڊڇاڻ ڏاڍي محنت سان ڪئي آهي ۽ نئين دور جي دريافتن مان گهڻو لاپ حاصل ڪيو آهي ۽ ان خط جو فوتو به ڪتاب ۾ ڏنو آهي. ان خط جو ترجمو هن ريت آهي:

بسم الله الرحمن الرحيم

محمد رسول الله عليه السلام پاران حبشه جي بادشاهه نجاشيءَ ڏانهن ان ماڻهوءَ تي سلام، جيڪو سڌي واٽ تي هلي. تنهن کانپوءِ آئون توهان آڏو الله جي ساراهه ڪريان ٿو، جنهن ڪانسواءِ ڪوبه معبود ناهي، جيڪو قدوس ۽ سلام آهي. امن ڏيڻ وارو محافظ ۽ نگران آهي ۽ آئون شاهدي ڏيان ٿو ته عيسيٰ ابن مريم عليه السلام، الله جو روح ۽ سندس ڪلمو آهي. الله تعاليٰ ان کي پاڪيزه ۽ پاڪدامن مريم بتول عليها السلام ڏانهن آندو ۽ سندس روح ۽ ڦوڪ سان مريم عليها السلام جي بطن مبارڪ ۾ عيسيٰ آيو. جيئن الله تعاليٰ، آدم عليه السلام کي پنهنجن هٿن سان ٺاهيو. آئون الله وحده لاشريڪ له پاران سندس اطاعت لاءِ هڪٻئي جي مدد ڪرڻ جو سڌ ڏيان ٿو ۽ اهڙيءَ ڳالهه ڏانهن (سڏيان ٿو) ته توهان منهنجي پيروي ڪريو ۽ جيڪو مون وٽ پهتو آهي ان تي ايمان آڻيو، ڇو ته آئون الله جو رسول عليه السلام آهيان ۽ آئون توهان کي ۽ توهان جي لشڪر کي الله ڏانهن سڏيان

ٿو. هاڻي مون تبليغ ۽ نصيحت ڪري ڇڏي آهي. تنهنڪري منهنجي نصيحت قبوليو ۽ ان ماڻهوءَ تي سلام هجي، جيڪو سنڌي واٽ تي هلي." (1)

ڊاڪٽر حميد الله پوري خاطريءَ سان چيو آهي ته اهو ئي خط آهي، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ حديبيه کان موٽڻ کانپوءِ نجاشيءَ ڏانهن موڪليو. جيستائين سندن تعلق آهي ته دليلن تي نظر وجهڻ کانپوءِ خط جي صحيح هجڻ تي شڪ نٿو ٿئي، پر ان ڳالهه جو ڪو دليل ناهي ته پاڻ سڳورن ﷺ حديبيه کان موٽڻ کانپوءِ ئي اهو خط موڪليو هو، پر بيهقيءَ جيڪو خط ابن عباس رضه کان روايت ڪيو آهي، ان جي لکت انهن خطن سان ملندڙ جلندڙ آهي، جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ حديبيه کان موٽڻ کانپوءِ عيسائي بادشاهن ۽ اميرن کي لکيا هئا، ڇو ته جهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ انهن خطن ۾ " يَا أَهْلَ الْكِتَابِ تَعَالَوْا إِلَى كَلِمَةٍ سَوَاءٍ " واري آيت لکي هئي، اهڙيءَ طرح ئي بيهقي واري ڄاڻايل خط ۾ اها ئي آيت لکيل آهي. ان کانسواءِ ان خط ۾ اصحمه جو چئو نالو به آيل آهي. جڏهن ته ڊاڪٽر حميد الله جي اتاريل خط ۾ ڪنهن جو به نالو ڪونهي، ان ڪري آئون سمجهان ٿو ته ڊاڪٽر صاحب وارو خط حقيقت ۾ اهو خط آهي، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ اصحمه جي وفات کانپوءِ سندس جائنشين جي نالي لکيو هو ۽ شايد اهو ئي سبب آهي جو ان ۾ ڪوبه نالو لکيل ڪونهي.

هن ترتيب جو مون وٽ ڪو دليل ڪونهي، پر ان جو بنياد رڳو اندريون شاهديون آهن، جيڪي انهن خطن جي لکتن مان ملن ٿيون. باقي ڊاڪٽر حميد الله صاحب تي اڇرج ٿو ٿئي جو هن ٻئي پاسي ابن عباس رضه جي روايت سان بيهقيءَ جو ڏنل خط پوري پڪ سان پاڻ سڳورن ﷺ جو لکيل اهو خط چئي ڇڏيو آهي، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ اصحمه جي وفات کانپوءِ سندس جائنشين کي لکيو هو. جڏهن ته ان خط ۾ اصحمه جو نالو چئو لکيل آهي. (والعلم عند الله) (2)

جڏهن عمرو بن اميه رضه، پاڻ سڳورن ﷺ جو خط نجاشيءَ کي ڏنو ته نجاشيءَ اهو وٺي اکين تي رکيو ۽ تخت تان هيٺ لهي بيٺو ۽ حضرت جعفر بن ابي طالب رضه جي هٿ تي مسلمان ٿيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن هڪ خط لکي موڪليائين، جيڪو هن ريت آهي:

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

محمد ﷺ رسول الله جي خدمت ۾ نجاشي اصحمه پاران

يا نبي الله! توهان تي الله پاران سلام ۽ سندس رحمت ۽ برڪت ٿئي. اهو الله، جنهن کانسواءِ

ڪوبه عبادت جي لائق ڪونهي. اما بعد:

1 - ڪتاب "حضور اڪرم ﷺ کي سياسي زندگي"، (اردو) مؤلف ڊاڪٽر حميد الله (ص: 108, 109, 122, 123, 124, 125) - زاد المعاد جو آخري جملو والسلام علي من اتبع الهدى بدران اسلم انت آهي. زاد المعاد (60/3).

2 - ڊاڪٽر حميد الله جو ڪتاب "حضور اڪرم ﷺ کي سياسي زندگي"، (ص: 108 \_ 114) تائين ۽ (ص: 121 \_ 131) تائين.

يا رسول الله ﷺ! مون کي توهان جو نياپو پهتو، جنهن ۾ توهان عيسى عليه السلام جي ڳالهه ٻڌائي آهي. آسمان ۽ ڌرتيءَ جي الله جو قسم! توهان جيڪي ڪجهه لکيو آهي، حضرت عيسى ان کان هڪ رتي برابر وڌيڪ نه هو. هو اهڙو ئي آهي، جهڙو اوهان لکيو آهي. (1) توهان جيڪي ڪجهه اسان ڏي اماڻيو آهي، اسان ان کي پرکيو ۽ توهان جي سوٽ ۽ توهان جي اصحابين جي مهمان نوازي ڪئي ۽ آئون شاهدي ڏيان ته توهان، الله جا سچا ۽ پڪا رسول آهيو ۽ مون توهان سان بيعت ڪئي ۽ توهان جي سوٽ سان بيعت ڪئي ۽ ان جي هٿ تي الله ڪارڻ اسلام قبوليو. (2)

پاڻ سڳورن ﷺ نجاشيءَ کي اهو به لکيو هو ته هو حضرت جعفر رضه ۽ ٻين مهاجرن کي حبش مان روانو ڪري. تنهنڪري هن، حضرت عمرو بن اميه رضه سان گڏ ٻن ٻيڙين ۾ انهن کي موڪلڻ جو بندوبست ڪيو. هڪ ٻيڙي، جنهن ۾ حضرت جعفر رضه ۽ حضرت ابو موسيٰ اشعري رضه ۽ ڪجهه ٻيا اصحابي سڳورا سوار ٿيا، اها ٻيڙي سڌو خير پهتي. ٻي ٻيڙيءَ ۾ گهڻو ڪري عورتون ۽ ٻار هئا، جيڪي سڌو مديني پهتا. (3)

مٿي ڄاڻايل نجاشي تبوك واري لڙائيءَ کانپوءِ رجب 9 هه ۾ گذاري ويو. پاڻ سڳورن ﷺ سندس گذاري وڃڻ واري ڏينهن ئي اصحابي سڳورن کي سندس وفات جي ڄاڻ ڏني ۽ ان لاءِ غائبانه جنازي نماز پڙهي. ان کان پوءِ جيڪو بادشاهه ٿيو، پاڻ سڳورن ﷺ ان ڏانهن به خط موڪليو، پر اهو پتو نه پئجي سگهيو ته ان اسلام قبوليو يا نه! (4)

**2. مصر جي بادشاهه مقوقس ڏانهن خط:-** پاڻ سڳورن ﷺ هڪ خط جريح بن مٿي (5) ڏانهن اماڻيو، جنهن جو لقب مقوقس هو ۽ جيڪو مصر ۽ اسڪندريه جو بادشاهه هو. خط جي لکت هن طرح هئي:

<sup>1</sup> - حضرت عيسى عليه السلام بابت اهي جملا، ڊاڪٽر حميد الله جي ان راءِ جي تائيد ڪن ٿا ته سندس ڏنل خط اصح جي نالي هو. (والله اعلم).

<sup>2</sup> - زادالمعاد (61/3).

<sup>3</sup> - ابن هشام (359/2).

<sup>4</sup> - هي ڳالهه ڪنهن قدر صحيح مسلم جي روايت مان اخذ ڪري سگهجي ٿي، ڇو جو حضرت انس کان مروِي آهي. (99/2).

<sup>5</sup> - اهو نالو علامه منصورپوريءَ، رحمة للعالمين (178/1) ۾ ڏنو آهي. ڊاڪٽر حميدالله ان جو نالو بنيامين ٻڌايو آهي. ڏسو "حضور اڪرم □ کي سياسي زندگي" (ص:141).

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

الله جي ٻانهي ۽ ان جي رسول محمد ﷺ پاران قبط جي بادشاه مقوقس ڏانهن

ان تي سلام، جيڪو سڌي وات تي هلي. اما بعد.

آئون توهان کي اسلام جي دعوت ڏيان ٿو. اسلام قبوليندو ته سلامت رهندو ۽ اسلام قبوليندو ته الله توهان کي ٻيڻو اجر ڏيندو، پر جي توهان منهن موڙيو ته توهان تي قبضي قوم جو به گناهه ٿيندو. اي قبطيو! هڪ اهڙي ڳالهه ڏي اچو، جيڪا اسان ۽ توهان لاءِ هڪجهڙي آهي ته اسين الله کانسواءِ ڪنهن جي به عبادت نه ڪريون ۽ ان سان ڪنهن به شيءِ کي شريڪ نه ڪريون ۽ اسان مان هڪٻئي کي الله جي بدران رب نه بنايون. پوءِ جيڪڏهن اهي منهن موڙين ته (کين) ٻڌائي ڇڏجو ته شاهد رهجو ته اسين مسلمان آهيون. (1)

هي خط پهچائڻ لاءِ حضرت حاطب بن ابي بلتعه رضه کي چونڊيو ويو، جنهن مقوقس جي درٻار ۾ پهچي چيو ته: "هن سر زمين تي توهان کان اڳ هڪڙو اهڙو ماڻهو ٿي گذريو آهي، جيڪو پنهنجو پاڻ کي رب اعليٰ سمجهندو هو. الله تعاليٰ کيس جڳ جهان لاءِ قيامت تائين عبرت جو نشان بڻائي ڇڏيو. پهرين ته سندس هٿان ماڻهن کان پلاند ڪيو پوءِ کيس ئي انتقام جو نشانو بڻايائين. تنهنڪري چڱو اهو ٿيندو ته توهان ان مان عبرت وٺو، ائين نه ٿئي ته ماڳهين بيا توهان مان عبرت حاصل ڪن."

مقوقس چيو ته: "اسانجو به هڪ دين آهي، جيڪو ايسٽائين نٿا ڇڏي سگهون، جيستائين

ڪو ان کان ڀلو دين نٿو ملي."

حضرت حاطب رضه چيو ته: "اسان، توهان کي اسلام جي دعوت ڏيون ٿا، جنهن کي الله تعاليٰ سڀني دينن جو مت بڻايو آهي." ڏسو! هن نبيءَ ماڻهن کي اسلام جي دعوت ڏني ته ان جي خلاف قريش سڀ کان زياده سخت ثابت ٿيا، يهودين سڀني کان وڌيڪ دشمني ڪئي ۽ نصارا سڀ کان زياده قريب رهيا منهنجي عمر جو قسمر! جهڙي طرح حضرت موسى عليه السلام حضرت عيسى عليه السلام جي خوشخبري ڏني هئي، اهڙي طرح حضرت عيسى عليه السلام محمد ﷺ جي لاءِ خوشخبري ڏني هئي ۽ اسين توهان کي قرآن مجيد جي دعوت آئين ٿي ڏيون ٿا جيئن توهان توراہ وارن کي انجيل جي دعوت ڏيو ٿا. جيڪو نبي جنهن قوم کي پائيندو آهي اها قوم ان جي امت ٿي ويندي

<sup>1</sup> - زادالمعاد - ابن قير (61/3) ويجهڙائيءَ ۾ اهو خط هٿ آيو آهي. ڊاڪٽر حميدالله ان جو فوٽو به ڇپايو آهي. ان ۾ ۽ زادالمعاد جي لکت ۾ رڳو ٻن لفظن جو فرق آهي. زادالمعاد ۾ اسلر تسلر - اسلر يوتڪ الله آهي ۽ هن خط ۾ آهي ته فاسلر تسلر يوتڪ الله. اهڙيءَ طرح زادالمعاد ۾ اثر اهل القبط آهي ۽ هن خط ۾ اثر القبط آهي. ڏسو "حضور اڪرم □ کي سياسي زندگي" (ص: 136، 137).

آهي ۽ ان قوم تي لازمي هوندو آهي ته اها انهيءَ نبيءَ جي اطاعت ڪري، ۽ توهان انهيءَ نبيءَ کي ڀاتو آهي ۽ پوءِ اسين توهان کي دين مسيح کان روڪيون نٿا پر اسين ان جو ئي حڪم ڏيون ٿا."

مقوقس چيو ته: "مون هن نبيءَ جي ڳالهين کي ڌيان سان پرکيو ته ڏنر ته هو ڪنهن اڻوڻندڙ ڳالهه جو حڪم نٿو ڏي ۽ ڪنهن به چڱائيءَ کان نٿو روڪي. اهو نه ڪو پٽڪيل جادوگر آهي ۽ نه ئي ڪوڙو ڪاهن. پاڻ آئون ته ڏسان پيو ته ان کي نبوت جي اها نشاني مليل آهي، جو هو لڪل کي ظاهر ڪري ٿو ۽ ڪن ۾ چيل ڳالهه به ڄاڻي وٺي ٿو. آئون وڌيڪ غور ڪندس."

مقوقس اهو خط وٺي (احترام سان) عاج جي هڪ دٻيءَ ۾ رکيو ۽ پنهنجي هڪ ٻانهيءَ جي حوالي ڪيو. پوءِ هڪ عربي لکندڙ ڪاتب کي سڏرائي پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن موڪلڻ لاءِ هيٺ ڏنل خط لکرايو:

بسم الله الرحمن الرحيم

محمد بن عبدالله ڏانهن قبض جي بادشاهه مقوقس پاران

توهان تي سلام هجن. اما بعد.

مون توهان جو خط پڙهيو ۽ ان ۾ توهان جي لکيل ڳالهه ۽ دعوت کي سمجهيم. مون کي خبر هئي ته اڃا هڪ نبي اچڻو آهي. مون سمجهيو ٿي ته اهو شام ملڪ ۾ ظاهر ٿيندو. مون توهان جي قاصد کي ڏاڍي عزت ڏني آهي. توهان جي خدمت ۾ به ٻانهيون موڪلي رهيو آهيان، جن جي قبطين ۾ ڏاڍي هاڪ آهي ۽ ڪجهه ڪپڙا به موڪلي رهيو آهيان ۽ توهان جي سواريءَ لاءِ هڪ خچر به هڏيو ڪري رهيو آهيان. توهان کي سلام هجن.

مقوقس پيو ڪجهه به ڪونه لکيو ۽ نه اسلام قبوليو. ٻئي ٻانهيون، ماريه رضي الله عنها ۽ سيرين رضي الله عنها هيون. خچر جو نالو دلدل هو، جيڪو معاويه جي ڏينهن تائين جيئرو هو. (1) پاڻ سڳورن ﷺ، ماريه رضي الله عنها کي پاڻ وٺ رکيو. ان مان ئي پاڻ سڳورن ﷺ جو فرزند ابراهيم پيدا ٿيو. باقي سيرين رضي الله عنها کي حضرت حسان بن ثابت رضی اللہ عنہا جي حوالي ڪري ڇڏيو.

<sup>1</sup> - زادالمعاد (61/3).

### 3. فارس (ايران) جي بادشاهه خسرو پرويز ڏانهن لکيل خط:- پاڻ سڳورن ﷺ

هڪ خط ايران جي بادشاهه خسرو پرويز ڏانهن موڪليو، جنهن جي لکت هن ريت هئي:

بسم الله الرحمن الرحيم

محمد ﷺ رسول الله پاران فارس جي بادشاهه خسرو ڏانهن

"ان ماڻهوءَ تي سلام، جيڪو سڌي واٽ تي هلي ۽ الله ۽ ان جي رسول تي ايمان آڻي ۽ شاهدي ڏي ته الله کان سواءِ ڪير به عبادت جوڳو نه آهي. هو وحده لا شريك آهي ۽ محمد ﷺ ان جو پانهو ۽ رسول آهي. آئون توهان کي الله ڏانهن سڏيان ٿو، ڇو ته آئون سڀني انسانن لاءِ الله پاران موڪليل آهيان ته جيئن جيڪو جيئرو آهي، اهو بچڙي پڇاڙي ۽ ڇوڪري ۽ ڪافرن تي سڄي ڳالهه ثابت ٿي وڃي. (يعني حجت پوري ٿئي) بس توهان اسلام قبوليو ۽ ان سلامتيءَ سان رهو ۽ جي توهان انڪار ڪيو ته مجوسين جي گناهه جو بار به توهان تي هوندو."

هي خط کڻي وڃڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عبدالله بن حذافه سهمي رضه کي چونڊيو. ان اهو خط بحرين جي حڪمران جي حوالي ڪيو. اها خبر ڪانهي ته هن اهو خط پنهنجي ڪنهن ماڻهوءَ هٿان ڪسري تائين پهچايو يا حضرت عبدالله سهمي رضه کي ئي اودانهن روانو ڪيو. بهرحال جڏهن اهو خط خسرو کي پڙهي ٻڌايو ويو ته هن اهو ڦاڙي ڇڏيو ۽ ڏاڍي هٿ ۽ وڏائيءَ سان چيائين ته: "منهنجي رعايا مان هڪ حقير غلام، پنهنجو نالو منهنجي نالي کان اڳ ٿو لکي!" پاڻ سڳورن ﷺ کي جڏهن ان واقعي جي خبر پئي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "الله ڪري ته سندس بادشاهت به ٽڪرا ٽڪرا ٿي وڃي." پوءِ ٿيو به ائين، جيئن پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو هو. اهڙي طرح خسرو پنهنجي يمن واري گورنر باذان کي لکي موڪليو ته ٻه جوان مرد موڪل ته وڃي حجاز واري ان همراهه کي وٺي مون تائين پهچائين. باذان هڪدم ٻه ماڻهو چونڊي کين هڪ خط ڏئي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ موڪليو، جنهن ۾ حڪم ڏنل هو ته پاڻ سڳورا ﷺ انهن سان گڏ خسرو وٽ هليا وڃن. جڏهن اهي مديني پهتا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي سامهون ٿيا ته هڪ چيو ته: "شهه شاهه ڪسري، شاهه باذان کي هڪ خط ذريعي حڪم ڏنو آهي ته اهي توهان وٽ ماڻهو موڪلي، توهان کي ڪسري وٽ پهچائين ۽ باذان، ان ڪم لاءِ مون کي اوهان وٽ موڪليو آهي ته توهان مون سان گڏجي هلو. گڏوگڏ هن ڏمڪيون به ڏنيون. پاڻ سڳورن ﷺ کين ٻئي ڏينهن تائين ترسايو.

هوڏانهن ان ئي مهل جڏهن مديني ۾ اها دلچسپ مهم درپيش هئي، خسرو پرويز پاڻ به پنهنجي ئي گهراڻي جي هڪ سازش ۽ بغاوت جي ور چڙهي ويو هو، جنهن جي نتيجي ۾ قيصر جي

فوجن هٿان فارسي فوجن جي لاڳيتين شڪستن کانپوءِ خسرو جو پٽ شيرويه، پنهنجي پيءُ کي ماري پاڻ بادشاهه ٿي ويٺو هو. اهو اڱاري جي رات، جمادي الاول سن 7 هـ جو واقعو آهي. (1)

پاڻ سڳورن ﷺ کي ان واقعي جي خبر وحيءَ ذريعي پهتي. تنهن کانپوءِ صبح جو جڏهن ٻئي فارسي نمائندا پهتا ته پاڻ سڳورن ﷺ کين واقعو ٻڌايو. انهن چيو ته: "هوش ۾ ته آهيو ته اوهان ڇا پيا چئو؟ اسين ته توهان جي ان کان ننڍڙي ڳالهه کي به اعتراض جوڳو سمجهون ٿا، پوءِ ڇا توهان جي هيءَ ڳالهه بادشاهه کي لکي موڪليون؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هاڻو! کيس منهنجي اها ڳالهه ڀلي لکي موڪليو ۽ کيس اهو به چئجو ته منهنجو دين ۽ منهنجي حڪومت اوستائين ضرور پهچندا، جيستائين ڪسري پهچي چڪو آهي. پر ان کان به اڳتي اتي وڃي بيهندي، جنهن کان اڳيان اٺ ۽ گهوڙن جا پير وڃي ٿي نٿا سگهن. توهان ٻئي کيس اهو به وڃي چئجو ته جي مسلمان ٿيندين ته جيڪي ڪجهه تنهنجي هٿ ۾ آهي، اهو سڀ تو وٽ ئي رهڻ ڏيندس ۽ توکي تنهنجي قوم جو بادشاهه ڪندس. ان کانپوءِ اهي ٻئي مديني مان نڪتا ۽ اچي باذان وٽ پهتا ۽ کيس پيرائتي ڳالهه ڪري ٻڌايائون. ٿورن ڏينهن کانپوءِ هڪ خط پهتو ته شيرويه پنهنجي پيءُ کي ماري ڇڏيو آهي. شيرويه، پنهنجي خط ۾ اها به هدايت ڪئي ته جنهن ماڻهوءَ جي نالي بابا توکي لکيو هو، ان کي ٻئي حڪم تائين ڪجهه نه چئجان.

ان واقعي ڪري باذان ۽ سندس فارسي ساٿي (جيڪي يمن ۾ رهيل هئا) مسلمان ٿي ويا. (2)

**4. روم جي قيصر ڏانهن لکيل خط:-** صحيح بخاريءَ جي هڪ ڊگهي حديث ۾ ڳالهين مان ڳالهه نڪرندي هن خط جو نت ڏنو ويو آهي، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ، روم جي شهنشاهه هرقل کي لکيو هو. اهو خط هن طرح آهي:

بسم الله الرحمن الرحيم

الله جي ٻانهي ۽ ان جي رسول محمد ﷺ پاران روم جي شهنشاهه هرقل ڏانهن.  
ان ماڻهوءَ تي سلام هجي، جيڪو سڌي وات تي هلي ٿو. توهان اسلام قبوليو ته سلامت رهندؤ. اسلام قبوليندؤ ته الله ان جو ڀيڻو اجر ڏيندو، پر جي انڪار ڪندؤ ته توهان تي آريسين (رعيت) جي گناهه جو بار به پوندو. اي اهل ڪتاب! هڪ اهڙي ڳالهه ڏي اچو، جيڪا اسان جي ۽

1 - فتح الباري (127/8).

2 - محاضرات خضري (147/1) - فتح الباري (127/8، 128).



اوهان جي لاءِ هڪ جهڙي آهي ته اسين الله کانسواءِ ٻيو ڪنهن کي به نه پوڄيون، ساڻس ڪا به شيءِ شريڪ نه ڪريون ۽ الله بدران ڪنهن کي به ڪير به پالڻهار نه سمجهي. بس پوءِ به جيڪو نه مڃي ته انهن کي ٻڌائي ڇڏيو ته اسين مسلمان آهيون. (1)

هيءُ خط پهچائڻ لاءِ دحيه بن خليفه ڪلبي رضي الله عنه کي چونڊيو ويو. پاڻ سڳورن صلوات الله عليه، کين حڪم ڪيو ته اهو خط بصري جي واليءَ جي حوالي ڪري ۽ اهو هن خط کي قيصر تائين پهچائي پڄاڻيندو. ان کانپوءِ جيڪي ٿيو، ان جو تفصيل صحيح بخاريءَ ۾ حضرت ابن عباس رضي الله عنه کان بيان ڪيل آهي. ان جو بيان آهي ته ابو سفيان بن حرب کين ٻڌايو ته هرقل، کيس قريش جي جماعت سميت گهرايو. اها جماعت حديبيه واري "ناهه کانپوءِ قائم ٿيل امن وارن ڏينهن ۾ شام ملڪ ۾ واپار سانگي وئي هئي. اهي ايليئه (بيت المقدس) ۾ هن وت پهتا. (2) هرقل کين درٻار ۾ سڏايو. ان مهل سندس چوڌاري روم جا وڏا وڏا ماڻهو بيٺل هئا. پوءِ هن انهن کي ۽ پنهنجي ترجمان کي گهرائي کين چيو ته: "اهو همراھ جيڪو پنهنجو پاڻ کي نبي ٿو سمجهي، ان سان توهان مان ڪنهن جي ويجهڙائپ يا مائٽي آهي؟" ابو سفيان ٻڌائي ٿو ته مون چيو ته: "آئون سندس سڀ کان ويجهو مائٽ آهيان." هرقل چيو ته: "هن کي ويجهو ڪريو ۽ سندس ساٿين کي به ويجهو آڻي سندس پٺيان ويهاريو." ان کانپوءِ هرقل پنهنجي ترجمان کي چيو ته: "آئون هن همراھ کان هُن شخص (پاڻ سڳورن صلوات الله عليه) بابت سوال ڪندس. جيڪڏهن هي ڪوڙ ڳالهائي ته تون کيس ڪوڙو چئجان." ابو سفيان ٻڌائي ٿو ته: الله جو قسم! جيڪڏهن ڪوڙ ڳالهائڻ تي خوار ٿيڻ جو ڊپ نه هجي ها ته آئون پاڻ سڳورن صلوات الله عليه بابت ضرور ڪوڙ ڳالهائين ها. ابوسفيان ٻڌائي ٿو ته ان کانپوءِ هرقل جيڪو پهريون سوال ڪيو، اهو هي هو ته توهان ۾ هن جو نسب ڪيئن آهي؟

مون چيو ته: هو اوچي نسل وارو آهي.

هرقل پڇيو ته: ڇا هن کان پهرين به توهان ۾ ڪنهن اهڙي دعويٰ ڪئي آهي؟

مون چيو ته: نه

هرقل پڇيو ته: ڇا سندس ابن ڏاڏن مان ڪو بادشاهه ٿيو آهي؟

مون چيو ته: نه

1 - صحيح بخاري (4/1، 5).

2 - ان مهل قيصر، فارسين کان جنگ کٽڻ ڪري الله جو شڪر ادا ڪرڻ لاءِ حمص کان ايليئه (بيت المقدس) ويو هو. (صحيح مسلم 99/2) تفصيل هن ريت آهي ته فارسين خسرو پرويز جي مارجڻ بعد رومين کي سندن قبائيل علائقا ڏيڻ جو ٺاهه ڪيو ۽ کين اها صليب به موٽائي ڏني. جنهن بابت عيسائين جو عقيدو آهي ته ان تي حضرت عيسيٰ عليه السلام کي چاڙهيو ويو هو. قيصر ان ٺاهه کانپوءِ صليب کي اڳوڻي جڳهه تي لڳائڻ ۽ سوڀارو ٿيڻ جي ڪري تورا مڃڻ لاءِ 629ع يعني 7هه ۾ ايليئه (بيت المقدس) ويو هو.

هرقل پڇيو ته: ڀلا سندس پيروي وڌن ماڻهن ڪئي يا ڪمزورن؟

مون چيو ته: ڪمزورن

هرقل پڇيو ته: (سندس پوئلڳ) وڌن پيا يا گهٽجن پيا؟

مون چيو ته: وڌن پيا.

هرقل پڇيو ته: ڇا هن جو دين قبول ڪانپوءِ ڪو ماڻهو مرتد به ٿيو آهي؟

مون چيو ته: نه

هرقل پڇيو ته: اها دعوى ڪرڻ کان اڳ ڇا توهان کيس ڪوڙ ڳالهائيندي ٻڌو؟

مون چيو ته: نه

هرقل پڇيو ته: ڇا هو بدعهدي به ڪري ٿو؟

مون چيو ته: نه، پر اسان ۽ هن جي وچ ۾ هيٺي ٺاهه ٿيو آهي. نڄاڻ هو ان دوران ڇا ڪندو؟

ابوسفيان ٻڌائي ٿو ته: هن فقري کانسواءِ مون کي ڪٿي به غلط ڳالهه ڪرڻ جو وجهه نه مليو.

هرقل پڇيو ته: ڇا توهان هن سان ويڙهه ڪئي آهي؟

مون چيو ته: هائو.

هرقل پڇيو ته: نتيجو ڇا نڪتو؟

مون چيو ته: ويڙهه ۾ اسين ٻئي (ذريون) هڪجهڙيون آهيون. ڪڏهن هو اسان کي ڏکيو وڃي ته

ڪڏهن اسين ڏکيو وڃونس.

هرقل پڇيو ته: هو توهان کي ڪهڙين ڳالهين جو حڪم ڪري ٿو؟

مون چيو ته: هو چوي ٿو ته رڳو هڪ الله جي عبادت ڪريو ۽ ان سان ڪنهن کي به شريڪ نه ڪريو.

توهان جا ابا ڏاڏا جيڪي ڪجهه چوندا هئا، ان کي ڇڏي ڏيو. هو اسان کي نماز، سچائي، تقويٰ ۽

پاڪائي ۽ مٿن مائٽن سان چڱي هلت جو حڪم ڏئي ٿو.

ان کان پوءِ هرقل پنهنجي ترجمان کي چيو ته: "تون هن (ابو سفيان) کي چئو ته مون توکان

هن جو نسب پڇيو ته تو چيو ته هو اوچي نسب جو آهي. دستور به اهو آهي ته پيغمبر پنهنجي قوم جي

اوچي نسل مان هوندو آهي. پوءِ مون پڇيو ته اها دعوى ان کان اڳ نه ڪنهن اوهان مان ڪئي هئي؟

تو چيو ته "نه". جيڪڏهن سندس ابن ڏاڏن مان ڪو بادشاهه ٿيو هجي ها ته آئون چوان ها ته هو به

بادشاهت ٿو گهري.

پوءِ مون پڇيو ته هو جيڪا ڳالهه ڪري پيو، اها ڳالهه ڪرڻ کان اڳ به توهان ڪڏهن کيس

ڪوڙ ڳالهائيندي ٻڌو آهي ته تو چيو ته "نه" آئون چڱيءَ طرح ڄاڻان ٿو ته ائين ٿي ئي نٿو سگهي ته

جيڪو ماڻهو، ماڻهن سان ڪوڙ نه ڳالهائي، اهو الله تي بهتان هڻي سگهندو.

مون اهو به پڇيو ته سندس بيروي وڏا ماڻهو پيا ڪن يا ڪمزور؟ تنهن تي تو ٻڌايو ته سندس بيروي ڪمزور پيا ڪن ۽ سچ پڇين ته اهڙا ئي ماڻهو پيغمبرن جي بيروي ڪندا آهن.

مون پڇيو ته ڇا هن دين ۾ داخل ٿيڻ کانپوءِ ڪير مرتد به ٿيو آهي؟ تنهن تي تو ٻڌايو ته "نه" ۽ حقيقت اها آهي ته ايمان جي تازگي جڏهن روحن ۾ گهٽندي آهي ته ائين ئي ٿيندو آهي.

پوءِ مون پڇيو ته ڇا هو بدعهدي به ڪري ٿو؟ تنهن تي تو ٻڌايو ته "نه". پيغمبر اهڙا ئي ٿيندا آهن، اهي بدعهدي ڪونه ڪندا آهن.

مون اهو به پڇيو ته هو ڪهڙين ڪهڙين ڳالهين جو حڪم ڏي ٿو؟ تنهن تي تو ٻڌايو ته هو الله جي عبادت ڪرڻ ۽ ان سان ڪنهن کي به شريڪ نه ڪرڻ جو حڪم ڏي ٿو. بت پرستيءَ کان روڪي ٿو ۽ نماز، سچائي، تقويٰ ۽ پاڪائيءَ جو حڪم ڏي ٿو.

هاڻي جيڪي ڪجهه تو ٻڌايو آهي، جيڪڏهن اهو صحيح آهي ته پوءِ اهو ماڻهو جلد ئي منهنجي پيرن واري جاءِ جو به مالڪ ٿي ويندو. آئون ڄاڻان ٿو ته اهڙو هڪ الله جو نبي اچڻو آهي، پر مون کي خيال به ڪونه هو ته اهو توهان منجهان ٿيندو. جيڪڏهن مون کي هن تائين پهچڻ جي پڪ هجي ها ته آئون ساڻس ملڻ جي تڪليف ضرور ڪريان ها ۽ جيڪڏهن ان تائين پهچان ها ته سندس ٻئي پير ڏوٿان ها."

ان کانپوءِ هرقل، پاڻ سڳورن عليه السلام جو خط گهرائي پڙهيو، خط پڙهي واندو ٿيو ته اتي گوڙ مڇي ويو. هرقل اسان بابت حڪم ڏنو ۽ اسان کي ٻاهر موڪليو ويو. ٻاهر اچي مون پنهنجن ساٿين کي چيو ته "ابو ڪبشه (1) جي پٽ جو معاملو چوٽ چڙهي ويو. هن کان ته بنو اصر (رومي) (2) جو بادشاهه به ڊڄي ٿو." ان کانپوءِ مون کي پوري پڪ ٿي ته پاڻ سڳورن عليه السلام جو دين نيٺ غالب ٿيندو.

تنهن کانپوءِ الله تعاليٰ منهنجي دل ۾ اسلام جي محبت وجهي ڇڏي. (3)

اهو هو قيصر تي پاڻ سڳورن عليه السلام جي خط جو اثر، جيڪو ابوسفيان اکين سان ڏٺو. هن خط جو هڪ اثر اهو به ٿيو ته قيصر، پاڻ سڳورن عليه السلام جي قاصد يعني دحيه ڪلبي رضي الله عنه کي مال متاع ۽ ڪپڙا لٽا سوکڙيءَ طور ڏنا، پر موٽڻ مهل حسمي ۾ جذام قبيلي جي ڪن ماڻهن ڏاڙو هڻي سڀ

1 - ابو ڪبشه جو پٽ، پاڻ سڳورن عليه السلام کي چيو ويندو آهي. ابو ڪبشه، پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڏاڏي يا ناني مان ڪنهن جي ڪنيت هئي، اهو به چيو وڃي ٿو ته: پاڻ سڳورن عليه السلام جي رضاعي پيءُ (بيبي حليمه سڳوري) جي گهري واري) جي ڪنيت هئي. بهرحال ابو ڪبشه اڻڄاتل ماڻهو هو ۽ عربن جو دستو هو ته جڏهن ڪنهن جي عيب جوئي ڪرڻي هوندي هئن ته ان کي سندس ابن ڏاڏن مان ڪنهن اڻڄاتل ماڻهوءَ سان منسوب ڪري ڇڏيندا هئا.

2 - بنو الاصر (اصر جو اولاد) اصر معنيٰ زردو يا هڻڻو. رومين کي بنو الاصر چيو ويندو هو، ڇو ته روم جي جنهن پٽ مان رومين جو نسل هليو، اهو ڪنهن سبب ڪري اصر (زردو) جي لقب سان مشهور ٿيو.

3 - صحيح بخاري (4/1)، صحيح مسلم (2/98، 99)

سامان ڦري ورتو. حضرت دحيه رضي الله عنه مديني پهچي، گهر وڃڻ بدران سڌو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ پهتو ۽ پيرائتي ڳالهه ڪري ٻڌايائين، جنهن تي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم حضرت زيد بن حارثه رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ پنج سؤ اصحابين جو هڪ جٿو حسميٰ موڪليو. جن جذام قبيلي تي حملو ڪري چڱا خاصا ماڻهو ماري ڇڏيا ۽ انهن جا جانور ۽ عورتون ڪاهي آيا. جانورن ۾ هڪ هزار اٺ ۽ پنج هزار بڪريون هيون ۽ قيدين ۾ هڪ سؤ عورتون ۽ ٻار هئا.

جيئن ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ۽ جذام قبيلي ۾ ٺاهه ٿيل هو، ان ڪري قبيلي جي هڪ سردار حضرت زيد بن رفاعه جذاميءَ رضي الله عنه جلد پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ پهچي دانهن ڏني. هو پنهنجي قبيلي جي ڪن ماڻهن سان گڏ اڳيئي مسلمان ٿي چڪو هو ۽ جڏهن حضرت دحيه کان ڦر ٿي ته ان جي مدد به ڪئي هئائين. ان ڪري پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سندن چوڻ تي غنيمت جو مال ۽ قيدي موٽائي ڇڏيا. عام طور تي هن واقعي کي حديبيه واري واقعي کان اڳ جو چيو وڃي ٿو، پر اها ڪليل غلطي آهي، ڇو ته قيصر وٽ حديبيه واري ٺاهه کانپوءِ ئي خط موڪليو ويو هو. ان ڪري ئي علامه ابن قير لکيو آهي ته اهو واقعو بنا ڪنهن شڪ شهبه جي حديبيه کان پوءِ جو آهي. (1)

**5. منذر بن ساوي ڏانهن خط:-** پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم هڪ خط بحرين جي حڪمران منذر بن ساوي ڏانهن به موڪلي کيس اسلام جي دعوت ڏني. موت ۾ منذر، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي لکيو ته ”اما بعد، يا رسول الله صلى الله عليه وسلم مون توهان جو خط بحرين وارن کي پڙهي ٻڌايو. ڪن ماڻهن اسلام کي محبت ۽ پاڪيزگيءَ جي نظر سان ڏٺو ۽ ان جي حلقي ۾ اچي ويا ۽ ڪن کي ڳالهه نه وڻي. منهنجي ڌرتيءَ تي يهودي ۽ مجوسي گهڻا آهن، تنهنڪري توهان انهن بابت حڪم موڪليو.“ ان جي جواب ۾ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم هي خط لکيو ته:

بسم الله الرحمن الرحيم

محمد صلى الله عليه وسلم رسول الله پاران منذر بن ساوي ڏانهن

تو تي سلام هجي. آئون توهان کي الله جي ساراهه ڪريان ٿو، جنهن کانسواءِ ڪير به عبادت جوڳو ناهي ۽ آئون شاهدي ڏيان تو ته محمد صلى الله عليه وسلم ان جو پانهو ۽ رسول آهي.

اما بعد! آئون توکي الله عزوجل جي ياد ڏياريان ٿو. ياد رهي ته جيڪو ماڻهو چڱائي ڪندو ۽ جيڪو ماڻهو منهنجن قاصدن جي اطاعت ۽ سندن حڪمن جي پيروي ڪندو، ڇڻ ته اهو منهنجي اطاعت ڪندو ۽ جيڪو انهن سان خيرخواهي ڪندو، ڇڻ اهو مون سان خير خواهي ڪندو. منهنجن قاصدن تنهنجي چڱي ساراهه ڪئي آهي ۽ مون تنهنجي قوم بابت تنهنجي سفارش قبولي آهي،

<sup>1</sup> - زادالمعاد (122/2) تلقيح النهوم (ص:29).

تنهنڪري ان کي قبول ڪر ۽ جيستائين تون چڱو هلندين، تيستائين اسان توکي ڪونه هٽائينداسين ۽ جيڪي يهوديت ۽ مجوسيت تي قائم رهن، تن لاءِ جزيو (ٽيڪس) آهي. (1)

6. هوڏه بن علي ڏانهن لکيل خط:- پاڻ سڳورن ﷺ، هوڏه بن علي، يمامه جي حاڪم ڏانهن هيٺ ڏنل خط لکيو:

بسم اللّٰه الرحيم

محمد ﷺ رسول الله پاران هوڏه بن عليءَ ڏانهن:

ان ماڻهوءَ تي سلام، جيڪو سڌي واٽ تي هلي. توکي ڄاڻ هجڻ گهرجي ته منهنجو دين انن ۽ گهوڙن جي پهچ جي آخري حد تائين نيٺ غالب ٿيندو، تنهنڪري اسلام قبول ڪر. تنهنجي هٿ هيٺ جيڪي ڪجهه آهي، اهو تو وٽ ئي رهندو.

هي خط پهچائڻ لاءِ حضرت سليط بن عمرو عامري رضه جي چونڊ ڪئي وئي. هو مهر لڳل خط کڻي هوڏه وٽ پهتو. ان سندن چڱي آڌرپاءُ ڪئي. حضرت سليط رضه خط پڙهي ٻڌايو ته: هن وڃڻ جو جواب ڏنو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي لکيو ته: "توهان جنهن شيءِ جي دعوت ڏيو پيا، اها پنهنجو مت پاڻ آهي. عربستان ۾ منهنجو دابو ويٺل آهي، ان ڪري مون کي ڪو عهدو ڏيو. آئون توهان جي پيروي ڪندس.

هن حضرت سليط رضه کي تحفا به ڏنا ۽ هجر جو ٺهيل ڪپڙو به ڏنو. حضرت سليط رضه اهي سوکڙيون کڻي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو ۽ پيرائتي ڳالهه ڪري ٻڌايائين. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "جيڪڏهن هو زمين جو هڪڙو ٽڪرو به مون کان گهرندو ته آئون ڪونه ڏيندس. باقي جيڪي ڪجهه سندس هٿ ۾ آهي، اهو به تباهه ٿيندو."

جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ مڪو فتح ڪري موٽيا ته جبرئيل عليه السلام اها خبر ٻڌائي ته هوڏه مري ويو آهي. پاڻ سڳورن ﷺ (ماڻهن کي) چيو ته: "ٻڌو يمامه هڪ ڪذاب (ڪوڙو) ظاهر ٿيڻ وارو آهي، جيڪو مون کان پوءِ قتل ڪيو ويندو. هڪ جڙي پيڇيو ته: "يا رسول الله ﷺ! ڪيس ڪير ماريندو؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "تون ۽ تنهنجا ساٿي." پوءِ ٿيو به ائين. (2)

<sup>1</sup> - زادالمعاد (61/3، 62) هي خط ويجهڙو ۾ مليو آهي ۽ ڊاڪٽر حميد الله صاحب ان جو عڪس ڇپرايو آهي. زادالمعاد جي لکت ۽ هن فوٽوءَ واري لکت ۾ رڳو هڪ لفظ جو فرق (يعني عڪس ۾) آهي لال الا هو بدران لال غيره آهي.

<sup>2</sup> - زادالمعاد (63/3).

7. دمشق جي حاڪم حارث بن ابي شمر غسانيءَ ڏانهن لکيل خط:- پاڻ سڳورن ﷺ کيس هيٺ ڏنل خط موڪليو:

بسم الله الرحمن الرحيم

محمد ﷺ رسول الله پاران حارث بن ابي شمر ڏانهن

"ان ماڻهوءَ تي سلام، جيڪو سڌي واٽ تي هلي ۽ ايمان آڻي ۽ تصديق ڪري. آئون توکي دعوت ٿو ڏيان ته ايمان آڻ ان الله تي جيڪو وحده لا شريك له آهي ته تولا ۽ تنهنجي بادشاهت باقي رهندي."

اهو خط اسد بن خزيمه قبيلي جي هڪ اصحابي سڳوري شجاع بن وهب رضي الله عنه جي هٿان موڪليو ويو. جڏهن هن اهو خط حارث کي ڏنو ته ان چيو ته: "مون کان منهنجي بادشاهت ڪير ٿو چئي سگهي؟ آئون پاڻ ان تي يلغار ڪرڻ وارو ئي آهيان." ۽ مسلمان نه ٿيو.<sup>(1)</sup>

8. عمان جي بادشاهه ڏانهن لکيل خط:- پاڻ سڳورن ﷺ هڪ خط عمان جي بادشاهه جيفر ۽ سندس پيءُ عبد ڏانهن لکيو. ٻنهي جي پيءُ جو نالو جلندي هو. خط جي لکت هن طرح هئي:

بسم الله الرحمن الرحيم

محمد ﷺ بن عبدالله پاران جلنديءَ جي ٻنهي پٽن جيفر ۽ عبد ڏانهن

ان ماڻهوءَ تي سلام، جيڪو سڌي واٽ تي هلي. اما بعد!

آئون توهان ٻنهي کي اسلام جي دعوت ڏيان ٿو. اسلام قبوليو ته سلامت رهندؤ، ڇو ته آئون سموري انسان ذات لاءِ الله جو (موڪليل) رسول آهيان، ته جيئن جيڪي جيئرا آهن، انهن کي آخرت جي خطري کان آگاهه ڪري ڇڏيان ۽ ڪافرن جي حجت به پوري ٿي وڃي. جيڪڏهن توهان ٻئي اسلام قبوليندؤ ته توهان ٻنهي کي والي ۽ حاڪم ڪري رکندس ۽ جيڪڏهن توهان ٻنهي اسلام کان منهن موڙيو ته توهان جو راڄ پاڳ ختم ٿي ويندو. توهان جي ڌرتيءَ تي گهوڙا چاڙهيا ويندا ۽ توهان جي بادشاهت تي نبوت غالب اچي ويندي.

اهو خط پهچائڻ لاءِ حضرت عمرو بن العاص رضي الله عنه کي چونڊيو ويو. پاڻ ٻڌائين ٿا ته: آئون عمان پهتس ۽ وڃي عبد سان مليس. ٻنهي پاڻن ۾ اهو وڌيڪ سمجهو ۽ نرم دل وارو هو. مون چيو ته: "آئون توهان وٽ ۽ توهان جي پيءُ وٽ پاڻ سڳورن ﷺ جو نياپو ڪڍي آيو آهيان." هن چيو ته: "منهنجو پيءُ جمار ۽ بادشاهي. ٻنهي ۾ مون کان وڏو آهي، ان ڪري آئون توکي ان تائين پهچايان ٿو ته اهو خط پڙهي وٺي." ان کانپوءِ هن پڇيو ته: "پلا توهان دعوت ڇا جي پيا ڏيو؟" مون چيو ته:

<sup>1</sup> - زاد المعاد (62/3)، محاضرات خضري (146/1).

"اسين هڪ الله جي دعوت ڏيندا آهيون، جيڪو اڪيلو آهي ۽ ساڻس ڪوبه ڀائيوار نه آهي. اسين چئون ٿا ته ان کانسواءِ جنهن جي به پوڄا ڪجي ٿي، اها ڇڏي ڏيو ۽ هيءَ شاهدي ڏيو ته محمد ﷺ الله جو ٻانهو ۽ رسول آهي."

عبد پڇيو ته: "اي عمرو! تون پنهنجي قوم جي سردار جو پٽ آهين. ٻڌاءِ ته تنهنجي پيءُ ڇا ڪيو؟ ڇو ته اسان لاءِ سندس ڪيل عمل اتباع لائق هوندو."

مون چيو ته: "اهو ته محمد ﷺ تي ايمان آڻڻ کانسواءِ ٿي گذاري ويو، پر مون کي حسرت آهي ته ڪاش ان اسلام قبوليو هجي ها ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي تصديق ڪئي هجي ها. آئون پاڻ به ان جهڙو ئي هوس، پر الله مون کي اسلام قبولڻ جي هدايت ڏني."

عبد پڇيو ته: تون ڪڏهن سندس پوئلڳ ٿئين؟

مون چيو ته: ويجهڙائيءَ ۾ ئي.

هن پڇيو ته: تو کي اسلام قبوليو؟

مون چيو ته: نجاشيءَ وٽ ۽ ٻڌايومانس ته نجاشي به مسلمان ٿي چڪو آهي.

عبد پڇيو ته: سندس قوم، سندس بادشاهيءَ جو ڇا ڪيو؟

مون چيو ته: اها برقرار رکي ۽ سندس پوٽواري ڪئي.

هن پڇيو ته: اسقفن ۽ راهبن به پوٽواري ڪئي؟

مون چيو ته: هاڻو.

عبد چيو ته: اي عمرو ﷺ! سوجي سمجهي ڳالهائ، ڇو ته ماڻهوءَ جو ڪوبه گڻ ڪوڙ کان وڌيڪ خوريءَ وارو ناهي.

مون چيو ته: آئون ڪوڙ نه پيو ڳالهائان ۽ نه ئي اسين ان کي حلال سمجهون ٿا.

عبد چيو ته: منهنجي خيال ۾ هر قل کي نجاشيءَ جي مسلمان ٿيڻ جو پتو ناهي پيو.

مون چيو ته: ڇو نه (بلڪل خبر اٿس)

عبد پڇيو ته: توکي ڪيئن خبر پئي؟

مون چيو ته: نجاشي، هر قل کي ڏن (خراج) ڏيندو هو، پر جڏهن اسلام قبوليائين ۽ محمد ﷺ کي رسول الله ڪري مڃيائين تڏهن چيائين ته: "الله جو قسم! هاڻي جيڪڏهن هو مون کان هڪ درهم به گهرندو ته آئون ڪونه ڏيندس." جڏهن اها خبر هر قل تائين پهتي ته پاڻس يناق چيو ته "ڇا تون پنهنجن غلامن کي ائين ئي ڇڏي ڏيندي ته اهي توکي خراج ڏيڻ بدران ڪنهن ٻئي ماڻهوءَ جو دين وڃي قبولين؟ هر قل چيو ته: اهو هڪڙو ماڻهو آهي، جنهن کي هڪ دين وڻيو ۽ هن اهو قبوليو. هاڻي آئون

ان کي ڪري به ڇا تو سگهان؟ الله جو قسم! جي مون کي پنهنجي بادشاهيءَ جو لوپ نه هجي ها ته آئون به ائين ڪريان ها، جيئن هن ڪيو آهي.

عبد چيو ته: عمرو! سمجهي پيو ته ڇا پيو چوين؟

مون چيو ته: واللہ آئون سچ پيو چوان.

عبد پڇيو ته: چڱو ڀلا هاڻي اهو ٻڌاءِ ته هو ڪهڙي ڳالهه جو حڪم ڪري ٿو ۽ ڪهڙي شيءِ کان روڪي ٿو؟

مون چيو ته: الله عزوجل جي اطاعت ڪري ٿو ۽ ان جي نافرماني ڪرڻ کان جهلي ٿو. نيڪي ۽ رحمدليءَ جو حڪم ڏي ٿو ۽ ظلم ۽ ڏاڍائي، زناڪاري، شراب واپرائڻ ۽ پٿر، بت ۽ صليب کي پوڄڻ کان روڪي ٿو.

عبد چيو ته: ڪيڏي نه چڱي ڳالهه جي دعوت ڏي ٿو. جيڪڏهن ادا به منهنجو سات ڏي ها ته اسان سوار ٿي (هلي وڃي) محمد ﷺ تي ايمان آڻيون ها ۽ سندس تصديق ڪريون ها، پر منهنجو ڀاءُ پنهنجي بادشاهت جو لوپ ان کان وڌيڪ رکي ٿو جو ان کي ڇڏي وڃي ڪنهن ٻئي جو تابع ٿئي.

مون چيو ته: جي هو اسلام قبوليندو ته پاڻ سڳورا ﷺ کين سندس قوم جي بادشاهت تي برقرار رکندا. باقي (اهو شرط ضرور هڻندا ته) هتي جي مالدارن کان صدقو وٺي فقيرن ۾ ورهائي ڇڏي.

عبد چيو ته: واهه جي ڳالهه ٻڌايئي. ڀلا اهو صدقو ڇا آهي؟

جواب ۾ مون ڌار ڌار شين لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي مقرر ڪيل صدقن بابت ٻڌايو. جڏهن

انن جو وارو آيو ته هن پڇيو ته: اي عمرو! اسان جي انهن جانورن تي به صدقو لڳندو ڇا، جيڪي پاڻ وڃي وڻن ٽٽن مان چريو اچن.

مون چيو ته: هاڻو

عبد چيو ته: واللہ آئون نٿو سمجهان ته منهنجي قوم هوندي سوندي به اها ڳالهه مڃيندي.

حضرت عمرو بن عاص رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته آئون سندس اوطاق ۾ ڪجهه ڏينهن ترسييس.

هو پنهنجي ڀاءُ کي منهنجون سڀ ڳالهيون ٻڌائيندو هو. پوءِ هڪ ڏينهن مون کي سڏايائين. آئون اندر ويس ته پهريدارن ڪڏي مون کي ٻانهن کان جهليو. هن چيو ته هن کي ڇڏي ڏيو. تنهن تي مون کي ڇڏي ڏنائون. مون ويهڻ چاهيو ته خادمون مون کي ويهڻ کونه ڏنو. مون بادشاهه ڏي ڏٺو ته هن چيو ته پنهنجي ڳالهه ڪر. مون بند ٿيل لفافو کيس ڏنو. هن مهر توڙي خط پڙهيو، جڏهن سڄو پڙهي ورتائين ته پنهنجي ڀاءُ کي ڏنائين. ان به خط پڙهيو ۽ مون کيس پنهنجي ڀاءُ جي پيٽ ۾ وڌيڪ نرم دل ڏنو.

بادشاهه پڇيو ته: مون کي ٻڌاءِ ته قريش ڪهڙو رويو اختيار ڪيو آهي؟



مون چيو ته: سپ، سندن اطاعت قبولي چڪا آهن. ڪو دين سان محبت ڪري ته ڪو تلوار جي ڊپ کان.

بادشاهه پڇيو: ساڻن ڪهڙا ماڻهو گڏ آهن؟

مون ورائيو ته: هر قسم جا ماڻهو. انهن پنهنجي مرضيءَ سان اسلام قبوليو آهي ۽ ان کي ٻين شين تي ترجيح ڏني آهي. انهن، الله جي هدايت ۽ پنهنجي عقل جي رهنمائيءَ سان اها ڳالهه ڄاڻي ورتي آهي ته اهي اڳي گمراهه هئا. ائون نٿو سمجهان ته توهان کانسواءِ ٻيو ڪو رهيو هجي. جيڪڏهن توهان اسلام نه قبوليو ۽ محمد ﷺ جي پيروي نه ڪئي ته توهان تي چڙهائي ڪئي ويندي ۽ هتي ساوڪ جو نالو نشان به نه رهندو. ان ڪري اسلام قبوليو ته سلامت رهندو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ توهان کي، توهان جي قوم جو حاڪم ڪري رکندا. نه ڪو توهان تي سوار ڪاهيندا ۽ نه پيدا.

بادشاهه چيو ته: مون کي اڄ ڇڏو، سپاڻي وري اچجان.

ان کانپوءِ ائون سندس پاءُ وٽ موٽي ويس.

هن چيو ته: عمرو! مون کي اميد آهي ته جيڪڏهن هن تي بادشاهت جو لوپ غالب نه پيو ته

هو اسلام ضرور قبوليندو.

ٻئي ڏينهن ٻيهر بادشاهه وٽ ويس، پر هن ملڻ کان انڪار ڪيو. تنهنڪري ائون وري پاڻس وٽ موٽي ويس ۽ ٻڌايو مانس ته بادشاهه تائين پهچي ڪونه سگهيس. پاڻس مون کي ان تائين پهچائي ڇڏيو. هن چيو ته: "مون تنهنجي دعوت تي غور ڪيو آهي. جيڪڏهن ائون بادشاهت ڪنهن اهڙي ماڻهوءَ جي حوالي ڪريان، جنهن جا گهوڙيسوار اڃا تائين هتي پهتا به ڪونه آهن ته ائون عربستان جو سڀ کان ڪمزور ماڻهو سمجهيو ويندس ۽ جيڪڏهن هو هتي ڪاهي آيو ته به اهڙي ويڙهه ٿيندي، جيڪا ان اڳي ٻڌي به ڪانه هوندي."

مون چيو ته: ڀلا ائون سپاڻي موٽي وڃان.

جڏهن کيس منهنجي وڃڻ جي پڪ ٿي ته هن پاڻس کي اڪيلائيءَ ۾ چيو ته: "اهو پيغمبر جن تي غالب اچي چڪو آهي، انهن جي پيٽ ۾ منهنجي ڪابه حيثيت ڪانهي ۽ هن، جنهن کي به نياپو موڪليو آهي، ان دعوت قبولي آهي." تنهن کانپوءِ ٻئي ڏينهن صبح ساڻ مون کي سڏايو ويو ۽ بادشاهه ۽ پاڻس، ٻنهي اسلام قبوليو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ (جي نبوت) جي تصديق ڪئي ۽ صدقو وصول ڪرڻ ۽ ماڻهن جا فيصلا ڪرڻ لاءِ مون کي آزاد ڇڏيو ويو ۽ منهنجي مخالفت ڪندڙن جي پيٽ ۾ منهنجي مدد ڪئي وئي.<sup>(1)</sup>

<sup>1</sup> - زاد المعاد (62,63/3).

هن واقعي جي بيان مان پتو پوي ٿو ته بين بادشاهن جي پيٽ ۾ هنن ٻنهي وٽ ڏاڍو دير سان خط موڪليو ويو هو. شايد اهو مڪي جي فتح کانپوءِ جو واقعو آهي.

انهن خطن ذريعي پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي دعوت دنيا جي گهڻن ئي بادشاهن تائين پهچائي. نتيجي ۾ ڪن ايمان آندو ۽ ڪي ڪافر رهيا، باقي ايترو ضرور آهي ته ڪفر ڪرڻ وارن جو ڌيان به هن پاسي ڇڪجي ويو ۽ اسلام ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي مبارڪ هستيءَ کان پليءَ پٽ واقف ٿي ويا.

\*\_\*\_\*

## حديبيه واري ٺاهه کانپوءِ فوجي سرگرميون

غزوه غابه يا غزوه ذي قرد:- هي غزوه حقيقت ۾ بنو فزاره جي هڪ ٽولي جي پويان لڳڻ هو، جيڪو پاڻ سڳورن عليه السلام جا جانور ڪاهي ويو هو.

حديبيه کانپوءِ ۽ خيبر کان اڳ، هي پهريون غزوه آهي، جنهن ۾ پاڻ سڳورا عليه السلام هليا هئا. امام بخاريءَ ان سلسلي ۾ هڪ ڌار باب جوڙي لکيو آهي ته اهو خيبر جي جنگ کان رڳو ٽي ڏينهن اڳي ٿيو هو. اها ئي روايت هن غزوي جي مک هيرو حضرت سلم بن اڪوع رضي الله عنه کان به آيل آهي. سندن روايت صحيح مسلم ۾ ڏسي سگهجي ٿي. اڪثر سيرت نگارن جو چوڻ آهي ته هي واقعو صلح حديبيه کان اڳ جو آهي پر صحيح بخاريءَ ۾ بتايل ڳالهه، انهن جي ڳالهه کان وڌيڪ صحيح آهي. (1)

حضرت سلم بن اڪوع رضي الله عنه کان جيڪي روايتون آيل آهن، انهن جو نت اهو آهي ته پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجون ڪير ڏيندڙ ڏاڇيون پنهنجي غلام رباح ۽ هڪ ٻئي اوفار سان گڏ چارڻ لاءِ موڪليون هيون ۽ اٿون به ابو طلحہ رضي الله عنه جي گهوڙي سميت ساڻن گڏ هوس ته اوچتو صبح ساڻ عبدالرحمان فزاريءَ چاپو هنيو ۽ سڀ ڏاڇيون ڪاهي ويو ۽ هڪ اوفار به ماري ڇڏيائين. مون چيو ته: "رباح رضي الله عنه! هي گهوڙو وٺ ۽ ان کي ابو طلحہ رضي الله عنه تائين پهچاءِ ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام کي به ڄاڻ ڏي." اٿون پاڻ وري هڪ ڌڙي تي چڙهي ويس ۽ مديني ڏانهن منهن ڪري ٿي پيرا چير ته: "يا صباحاه! هاڻ صبح ساڻ حملو" پوءِ اٿون حملو ڪندڙن پٺيان نڪتس، انهن تي تير به پئي وسايو ۽ هيءُ رجز به پئي پڙهيم:

أَنَا ابْنُ الْأَكُوْعِ وَالْيَوْمُ يَوْمُ الرُّضْعِ

يعني "اٿون اڪوع جو پٽ آهيان ۽ اڄوڪو ڏينهن ڪير پيڻ واري جو ڏينهن آهي" (يعني اڄ خبر پوندي ته ڪنهن پنهنجي ماءُ جو ڪير پيتو آهي). (2)

سلم بن اڪوع رضي الله عنه جو چوڻ آهي ته: الله جو قسم! اٿون لاڳيتو مٿن تيرن جو وسڪارو ڪندو رهيس. جڏهن ڪو سوار مون ڏانهن مڙيو ٿي ته اٿون ڪنهن وڻ جي آڙ وٺي بيٺس ٿي ۽ پوءِ ڪيس تير هڻي ڌڪي ٿي وڌم. جڏهن اهي جبل جي سوڙهي لنگهه ۾ گهڙيا ته اٿون جبل تي چڙهي

<sup>1</sup> - صحيح بخاري باب غزوة ذات قرد (603/2) صحيح مسلم باب غزوة ذي قرد وغيره (113/2، 114، 115) فتح الباري (460/7، 461،

462) زادالمعاد (120/2).

<sup>2</sup> صحيح البخاري - (247 / 10) - (رقم الحديث : 2814)

ويس ۽ ڪين پتر هڻڻ لڳس. اهڙيءَ طرح آئون لاڳيتو سندن پويان رهيس. نيٺ انهن پاڻ سڳورن ﷺ جون سموريون ڏاڍيون ڇڏي ڏنيون، پر پوءِ به آئون سندن پٺيان هلندو رهيس ۽ انهن تي تير وسائيندو رهيس. هنن پنهنجو بار هلڪو ڪرڻ لاءِ تيهن کان وڌيڪ چادرون ۽ تيهن کان وڌيڪ نيزا اڇلائي ڇڏيا. هنن جيڪي ڪجهه اڇلايو ٿي، مون نشانيءَ طور انهن وٽ ڪجهه پتر رکي ٿي ڇڏيا ته جيئن پاڻ سڳورا ﷺ ۽ سندن ساٿي سڃاڻي وٺن (ته اهو دشمنن کان ڦريل مال آهي). ان کانپوءِ اهي لنگهه جي هڪ سوڙهي موڙ تي ويهي پٺپهرن جي ماني کائڻ لڳا. آئون به هڪ چوٽيءَ تي چڙهي وينس. اهو ڏسي چار جڻا جبل تي چڙهي مون ڏانهن وڌيا. (جڏهن اهي سڏ پند تي پهتا ته) مون چيو ته: "توهان مان جنهن جي پويان لڳس، ان کي نيٺ وڃي جهليندس، پر توهان مان ڪير به مون کي ڪونه جهلي سگهندو." منهنجي اها ڳالهه ٻڌي چارئي موتي ويا ۽ آئون پنهنجي جاءِ تي ويٺو رهيس، تان ته مون پاڻ سڳورن ﷺ جي سوارن کي وٺڻ جي وڃان ايندي ڏٺو. سڀني کان اڳيان حضرت اخرم ﷺ هو. ان جي پٺيان ابو قتادة ﷺ ۽ ان جي پويان مقداد بن اسود ﷺ (محاذ تي پهچڻ کانپوءِ) عبدالرحمان ۽ حضرت اخرم ﷺ ۾ جهڙپ ٿي پئي. حضرت اخرم ﷺ عبدالرحمان جي گهوڙي کي زخم ڪري وڌو پر عبدالرحمان نيزو هڻي ڪين ماري وڌو ۽ سندن گهوڙي تي چڙهي وينو. ايتري ۾ حضرت ابو قتادة ﷺ عبدالرحمان جي مٿان وڃي ڪڙڪيو ۽ نيزو هڻي کيس ماري وڌائون. ٻيا حملو ڪندڙ پٺ ڏئي وٺي پڳا. اسان سندن پويان لڳاسين. آئون سندن پٺيان پند پئي ڊوڙيس. سج لهڻ کان ٿورو اڳ اهي هڪ لڪ ۾ گهڙي ويا، جنهن ۾ ڏي ڦرڻ نالي هڪ چشمو هو. اهي اڃايل هئا ۽ اتي پاڻي پيئڻ گهريائون ٿي، پر مون انهن کي چشمي جي ويجهو وڃڻ نه ڏنو ۽ اهي پاڻيءَ جو هڪ ڍڪ به پي نه سگهيا. پاڻ سڳورا ﷺ ۽ گهوڙيسوار اصحابي سڳورا سج لهڻ کانپوءِ مون تائين پهتا. مون عرض ڪيو ته: "يا رسول الله ﷺ! اهي سڀ اڃايل آهن، جي اوهان مون کي هڪ سو جڻا ڏيو ته آئون زين سميت سندن گهوڙا ڦري ۽ ڪين بگٽر کان جهلي توهان وٽ وٺي ايندس." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اي اڪوع جا پٽ! تون انهن کان سگهو نڪتو آهين، هاڻي ٿورو ساھي پت." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هن مهل بنو غطفان وارن وٽ سندن مهماني پئي ٿئي."

(هن غزوي تي) پاڻ سڳورن ﷺ تبصرو ڪندي فرمايو ته: "اڄ اسان جو سڀ کان ڀلو سوار ابو قتادة ﷺ ۽ سڀ کان ڀلو پيادو سلمه ﷺ آهن." پاڻ سڳورن ﷺ (غنيمت جي مال مان) مون کي ٻه ڀاڱا ڏنا، هڪ پيادي جو ۽ هڪ گوڙيسوار جو ۽ مديني موٽڻ مهل (اهو شرف بخشيائون جو) پنهنجي عضباء نالي ڏاڇيءَ تي مون کي پيلهه کنيائون.

هن غزوي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ مديني جي واڳ حضرت ابن امر مکتوم رضى الله عنه جي حوالي  
ڪئي هئي ۽ جهنڊو حضرت مقداد بن عمرو رضى الله عنه جي هٿ ۾ ڏنو هئائون.

\*\_\*\_\*

## غزوه خيبر ۽ غزوه وادي القري (محرم 7 هـ)

مديني جي اتر ۾ هڪ سو ميل پري خيبر نالي هڪ وڏو شهر هو. هتي قلعا به هئا ۽ بنيون به. هاڻي اها هڪ اهڙي وسندي وڃي رهي آهي، جتي جي آبهوا صحت لاءِ چڱي ڪانهي. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ حديبيه واري ٺاه جي ڪري جنگ احزاب جي ٽن ڌرين مان سڀ کان وڏي ۽ سگهي ڌر (قريشن) کان پوريءَ طرح مطمئن ٿي ويا ته پاڻ سڳورن ﷺ باقي ٻن ڌرين يعني يهودين ۽ نجد جي قبيلن سان هڪ هڪائي ڪرڻ جو سوچيو، جيئن هر پاسي سڪ ٿي وڃي ۽ مسلمان لاڳيتن خوني تڪررن مان آجا ٿي الله جي دعوت ڏيڻ ۾ مصروف ٿي وڃن.

جيئن ته خيبر سازش، فوجي ڪاررواين ۽ جنگ جي باهه پٽڪائڻ جو مرڪز هو، ان ڪري سڀ کان پهرين اهو ئي علائقو مسلمانن جي نظر تي چڙهيو.

خيبر تي مٿان الزام لڳائڻ جا دليل هي هئا ته اهي خيبر وارا ئي هئا، جن خندق واري جنگ ۾ مشرڪن جي سمورن گروهن کي، مسلمانن تي چاڙهيو هو. اهي ئي هئا، جن بنو قريظہ کي غداري ڪرڻ تي راضي ڪيو ۽ انهن ئي منافقن، بنوعطفان ۽ اعرابين سان لهن وڃڻ ڪئي هئي ۽ پاڻ به جنگ لاءِ سنبري رهيا هئا ۽ پنهنجن انهن ڪاررواين سان مسلمانن کي ڏاڍو تنگ ڪيو هئائون، ايستائين جو پاڻ سڳورن ﷺ کي شهيد ڪرڻ جو به رٿيو هئائون. انهن حالتن کان مجبور ٿي مسلمانن کي بار بار فوجي مهمون موڪلڻيون پيون ٿي. ويندي انهن سازش جي مهندار جهڙوڪ سلام ابن ابي الحقيق ۽ اسير بن زارم کي به ماري وڌو هئائون، پر پوءِ به انهن يهودين بابت مسلمانن کي اڃا گهڻو ڪجهه ڪرڻو هو. هن ڪم ۾ سڀني مسلمانن ڪجهه دير ڪئي هئي، ڇو ته هڪ وڏي ڌر يعني قريش، جيڪي انهن يهودين کان گهڻا، سگها ۽ ويڙهو هئا، مسلمانن سان اٽڪيل هئا، ان ڪري مسلمان انهن کي نظرانداز ڪري، يهودين ڏانهن نٿي وڌي سگهيا، پر جيئن ئي قريشن سان ٺاهه ٿيو ته انهن يهودي ڏوهارين سان هڪ هڪائي ڪرڻ جو وجهه ملي ويو.

**خيبر ڏانهن اسرڻ:** - ابن اسحاق جو بيان آهي ته: پاڻ سڳورن حديبيه کان موٽي ذي الحج جو سڄو مهينو ۽ محرم جا ڪجهه ڏهاڙا مديني ۾ رهيا ۽ پوءِ خيبر ڏانهن اسريا.

مفسرن جو چوڻ آهي ته الله تعاليٰ خيبر ڏيارڻ جو واعدو هن طرح ڪيو هو ته:

﴿وَعَدَ اللَّهُ مَعَانِمَ كَثِيرَةً تَأْخُذُونَهَا فَعَجَّلَ لَكُمْ هَذِهِ...﴾ (20) ﴿الفتح﴾

”الله تعاليٰ اوهان کي گهڻين غنيمن جو واعدو ڏنو آهي جن کي هٿ آڻيندؤ. پوءِ هي خيبر جون غنيمتون اوهان کي عطا ڪيائين.“

## اسلامي لشڪر جو تعداد:- جيئن ته منافق ۽ ڪچي ايمان وارا حديبيه جي سفر ۾ پاڻ سڳورن

ﷺ سان هلڻ بدران گهرن ۾ ويهي رهيا هئا، ان ڪري الله تعاليٰ پنهنجي نبي کي انهن بابت حڪم ڪندي فرمايو ته: ﴿سَيَقُولُ الْمُخَلَّفُونَ إِذَا انطَلَقْتُمْ إِلَىٰ مَعَانِمَ لِتَأْخُذُوهَا ذُرُوعًا تَتَّبِعُكُمْ يُرِيدُونَ أَنْ يُبَدِّلُوا كَلَامَ اللَّهِ قُلْ لَنْ تَتَّبِعُونَا كَذَلِكُمْ قَالَ اللَّهُ مِنْ قَبْلُ فَسَيَقُولُونَ بَلْ نَحْسُدُونَنَا بَلْ كَانُوا لَا يَقْفَهُونَ إِلَّا قَلِيلًا (15)﴾ (الفتح)

”جڏهن غنيمتون هٿ ڪرڻ لاءِ ويندو تڏهن پوئتي رهجي ويل چوندا ته اسان کي ڇڏيو ته اوهان سان هلون. گهرندا آهن ته الله جي وعدي جي مخالفت ڪن. ڪين چو ته اسان سان ڪڏهن نه هلندو. اهڙيءَ طرح الله اڳي ئي فرمائي چڪو آهي. پوءِ سگهو چوندا ته پر اوهين اسان سان ٿا حسد ڪريو، پر (هميشه تورڙي) ڪانسواءِ (ڪجهه به) نه سمجهندا هئا.“

تنهن کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ خيبر هلڻ جو پهه ڪيو ته پاڻ سڳورن ﷺ اعلان ڪيو ته ساڻن گڏ رڳو اهو ئي هلي سگهي ٿو، جنهن کي سچ پيچ جهاد ڪرڻ جي خواهش هجي. ان اعلان کانپوءِ رڳو اهي ئي ماڻهو هليا جن حديبيه جي وٽ هيٺان بيعت رضوان ڪئي هئي. انهن جو تعداد چوڏنهن سو هو.

هن پيري مديني جي واڳ سباع بن عرفط غفاري رضي الله عنه يا ابن اسحاق جي بيان مطابق ته نيميل بن عبدالله ليثي رضي الله عنه جي حوالي ڪئي وئي هئي. محقق پهرين راءِ کي صحيح سمجهن ٿا. (1) هن موقعي تي حضرت ابو هريرة رضي الله عنه مسلمان ٿي مديني پهتو هو. ان مهل حضرت سباع بن عرفط رضي الله عنه فجر جي نماز پڙهائي رهيو هو. نماز مان واندا ٿيا ته حضرت ابو هريرة رضي الله عنه ساڻن مليو. انهن کين زاد راه ڏنو ۽ حضرت ابو هريرة رضي الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچڻ لاءِ خيبر ڏانهن نڪتو. جڏهن خيبر پهتو ته (خيبر فتح ٿي چڪو هو.) پاڻ سڳورن ﷺ مسلمانن سان صلاح ڪري حضرت ابو هريرة رضي الله عنه ۽ سندن ساٿين کي به غنيمت جي مال ۾ شريڪ ڪيو.

## يهودين لاءِ منافقن جي ڊوڙڊڪ:- ان موقعي تي يهودين جي حمايت ۾ منافقن به چڱي

خاصي وٽ پڪڙ ڪئي. جيئن منافقن جي سردار عبدالله بن ابي خيبر جي يهودين کي اهو نياپو موڪليو ته هاڻي محمد ﷺ توهان ڏانهن ڌيان ڪيو آهي، ان ڪري هوشيار ٿيو ۽ سنبري ونو. ڏسو ڊڄجو نه، چو ته توهان جو تعداد ۽ ساز سامان وڌيڪ آهي ۽ محمد ﷺ جا ساٿي تورڙا ۽ خالي هٿين آهن ۽ انهن وٽ هٿيار به تورڙا ئي آهن.

<sup>1</sup> - فتح الباري (7/465)، زاد المعاد (2/133).

جڏهن خيبر وارن کي خبر پئي ته انهن ڪنانه بن ابي الحقيق ۽ هوزه بن قيس کي مدد وٺڻ لاءِ بنو غطفان ڏي موڪليو، چوڻهه اهي خيبر جي يهودين جا حليف ۽ مسلمانن خلاف ويڙهه ۾ انهن جا مددگار هئا. يهودين، کين اها آڇ ڪئي ته جي انهن مسلمانن کان کڻيو ته خيبر جي اڏاوت کين ڏني ويندي.

**خيبر جي واٽ تي:-** پاڻ سڳورا ﷺ خيبر وڃڻ لاءِ پهرين عصر نالي جبل اڪريا (ڪن عصر جي "ص" تي به زبر ڏني آهي) پوءِ صهباء جي واديءَ مان لنگهيا. ان کانپوءِ هڪ ٻي وادي "رجيع" ۾ پهتا. (هيءَ اها رجيع ناهي جتي عضل وقاره جي غداريءَ ڪري بنو لحيان هٿان انن اصحابي سڳورن رضي الله عنهم جي شهادت ۽ حضرت زيد ۽ حبيب رضي الله عنهم جن جي پڪڙجڻ ۽ پوءِ مڪي ۾ شهيد ٿيڻ جهڙو واقعو ٿيو هو.)

رجيع کان بنو غطفان جي وسندي رڳو هڪ ڏينهن ۽ هڪ رات جي پنڌ تي آهي. بنو غطفان وارا سنبري يهودين جي مدد ڪرڻ لاءِ خيبر ڏانهن روانا ٿيا هئا، پر واٽ تي گوڙ گهمسان ٻڌي سمجهيائون ته مسلمانن، سندن ٻارن ٻچن ۽ جانورن تي حملو ڪيو آهي، ان ڪري موٽي ويا ۽ خيبر کي مسلمانن لاءِ آڇو ڇڏي ڏنائون.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ انهن ٻنهي سونهن (رستو ڏيکاريندڙن) کي سڏايو، جيڪي لشڪر کي واٽ ڏسڻ لاءِ ڪنيا ويا هئا. انهن مان هڪڙي جو نالو حسيل هو. انهن ٻنهي کان پاڻ سڳورن ﷺ اهڙو گس پڇڻ تي گهريو، جنهن تي هلي خيبر ۾ اترئين پاسان يعني مديني بدران شام واري پاسان گهڙي سگهجي ته جيئن ان حڪمت عمليءَ سان هڪ پاسي ته يهودين جي شام پڇڻ جو گس بند ٿي وڃي ۽ ٻئي پاسي بنو غطفان ۽ يهودين جي وچ ۾ اچي کين مدد پهچڻ جي امڪان کي ئي ختم ڪري ڇڏجي.

هڪ سونهي چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! آئون توهان کي اهڙي ئي گس کان وٺي هلندس." پوءِ هو اڳيان اڳيان هلندي هڪ اهڙي جڳهه تي پهتو، جتان گهڻيون ئي واٽون ٿي نڪتيون. عرض ڪيائين ته: "يارسول الله ﷺ! هنن سڀني گسن تان توهان منزل تي پهچي سگهو ٿا." پاڻ سڳورن ﷺ کانس هڪ واٽ جو نالو پڇيو. هن ٻڌايو ته هڪ جو نالو حزن (سخت پٿريلو) آهي. پاڻ سڳورن ﷺ ان تان هلڻ لاءِ انڪار ڪيو. ٻئي جو نالو شاش (ويچي ۽ پريشانيءَ وارو) ٻڌايائين. پاڻ سڳورن ﷺ ان تي هلڻ کان به انڪار ڪيو. ٽئين جو نالو حاطب (ڪاثير) ٻڌايائون. پاڻ سڳورن ﷺ ان تي هلڻ کان به انڪار ڪيو. حسيل چيو ته هاڻي هڪڙو ئي گس وڃي بچيو آهي.



حضرت عمر رضي الله عنه پڇيو ته ان جو نالو ڇا آهي؟ حسيل چيو ته مرحب (ڪشادگي) پاڻ سڳورن عليه السلام ان تي هلڻ پسند ڪيو.

**وات جا ڪي واقعا: 1** حضرت سلم بن اڪوع رضي الله عنه جو بيان آهي ته: اسين پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ خيبر ڏانهن نڪتاسين. رات جو هلياسين پئي ته هڪ ماڻهوءَ عامر رضي الله عنه کي چيو ته: اي عامر رضي الله عنه! اسان کي ڪي املهه گفتا ٻڌائي. عامر رضي الله عنه شاعر هو، سواريءَ تان لٿو ۽ قوم جي ساراهه جا ڍڪ پرڻ لڳو. شعر هي هئا.

اللَّهُمَّ لَوْلَا أَنْتَ مَا اهْتَدَيْنَا وَلَا تَصَدَّقْنَا وَلَا صَلَّيْنَا  
فَاغْفِرْ فِدَاءً لَكَ مَا أَتَيْنَا وَنَبَّتُ الْأَقْدَامَ إِنْ لَاقَيْنَا  
وَأَلْقَيْنُ سَكِينَةً عَلَيْنَا إِنَّا إِذَا صَبَحَ بَنَا أَيْنَا  
وَبِالصَّبَاحِ عَوَّلُوا عَلَيْنَا

”اي الله! جي تون نه هجين ها ته اسين سڌي راهه تي نه هلي سگهون ها. نه صدقو ڪريون ها، نه نماز پڙهون ها. اسان توتي قربان! تون اسان کي بخش ڪر، جيستائين اسين تقوي اختيار ڪريون ۽ جيڪڏهن (ڪنهن سان) تڪرايون ته ثابت قدم رک. اسان تي سڪون نازل ڪر. جڏهن اسان کي للڪارجي ٿو ته اسين سڀنيو ساهيون ٿا ۽ للڪار مهل اسان تي ماڻهن ڀروسو ڪيو آهي.“

پاڻ سڳورن عليه السلام پڇا ڪئي ته: ”هي ڪير پيو ڳائي؟“ ماڻهن چيو ته: عامر بن اڪوع رضي الله عنه. پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: ”الله هن تي رحم ڪري.“ قوم جي هڪ ڇڻي چيو ته: ”هاڻي ته (سندن شهادت) واجب ٿي وئي. پاڻ سڳورن عليه السلام هن مان اسان کي وڌيڪ فائدو چو نه وٺڻ ڏنو.“<sup>(1)</sup> اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي ڄاڻ هئي ته (جنگ مهل) پاڻ سڳورا عليه السلام ڪنهن ماڻهوءَ لاءِ خاص طور تي خير جي دعا گهرندا هئا ته اهو شهيد ٿي ويندو هو.<sup>(2)</sup> اهڙو ئي واقعو خيبر جي جنگ ۾ حضرت عامر رضي الله عنه سان ٿيو. (انڪري ان ماڻهوءَ چيو ته سندن وڏي ڄمار لاءِ دعا چونه گهريائون ته جيئن اسين منجهانئن (عامر رضي الله عنه مان) وڌيڪ فائدو حاصل ڪري سگهون.)

2- خيبر جي ويجهو ئي صهبا نالي واديءَ ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام وڃين نماز پڙهي. پوءِ توشو گهرايائون ته رڳو ستو آندا ويا. پاڻ سڳورن عليه السلام جي حڪم سان سڀني جو توشو ملايو ويو. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام به کاڌا ۽ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم به کاڌا. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام سانجهي نماز لاءِ اٿيا ته رڳو گرڙي ڪيائون. اصحابي سڳورن به گرڙي ڪئي. پوءِ پاڻ سڳورن

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (603/2) صحيح مسلم (115/2).

<sup>2</sup> - صحيح مسلم (115/2).

ﷺ نماز پڙهي ۽ وضو به ڪونه ڪيو. (1) (اڳئين وضوءَ سان نماز پڙهي). پاڻ سڳورن ﷺ سمهڻي نماز به (اهڙيءَ طرح) پڙهي. (2)

**اسلامي لشڪر خيبر جي دامن ۾:** - مسلمانن، جنگ کان اڳ واري رات خيبر ۾ گذاري، پر يهودين کي خبر به ڪانه پئي. پاڻ سڳورن ﷺ جو دستور هو ته جڏهن رات جي وقت ڪنهن قوم جي ويجهو پڄندا هئا ته صبح ٿيڻ کان اڳ ويجهو ڪونه ويندا هئا. تنهنڪري ان ڏينهن جڏهن صبح ٿيو ته پاڻ سڳورن ﷺ اوندھ ۾ فجر جي نماز پڙهي. ان کانپوءِ مسلمان سوار تي خيبر ڏانهن وڌيا. هوڏانهن خيبر وارا اڻڄاڻائي ۾ پنهنجا قاهوڙا ۽ ڇيٻون وغيره کڻي ٻني ٻاري لاءِ نڪتا ته اوجھو لشڪر ڏسي رڙيون ڪندي شهر ڏانهن پڳا ته الله جو قسم! محمد ﷺ لشڪر ساڻ پهچي ويو آهي. پاڻ سڳورن ﷺ (اهو منظر ڏسي) فرمايو ته "الله اڪبر، خيبر تباھ ٿيو، الله اڪبر، خيبر تباھ ٿيو. جڏهن اسين ڪنهن قوم جي حد ۾ داخل ٿيون ٿا ته اتي جي هيسيل ماڻهن جو ڏينهن برباد ٿيو وڃي." (3)

پاڻ سڳورن ﷺ، لشڪر جي لهڻ لاءِ هڪ جاءِ چونڊي. ان تي حباب بن منذر رضه اچي پڇيو ته: "يا رسول الله ﷺ! هن جڳهه تي لهڻ جو حڪم الله تعاليٰ ڏنو آهي يا توهان جي پنهنجي راءِ آهي؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ها منهنجي راءِ ۽ تدبير آهي." هن چيو ته: "يا رسول الله ﷺ! هيءَ جڳهه (نظا) جي قلعي جي صفا ويجهو آهي ۽ خيبر جا سمورا ويڙهاڪ هن ئي قلعي ۾ آهن. ڪين اسان جي پوري پوري ڇاڻ رهندي ۽ اسان کي سندن حالتن جي خبر به نه پوندي. سندن تير اسان تائين پهچي ويندا ۽ اسان جا تير انهن تائين نه پهچي سگهندا. اسين انهن جي حملن کان به نه بچي سگهنداسين. هونئن به هيءَ جڳهه ڪجين جي وچ ۾ ۽ هيٺال تي آهي ۽ هتي جي زمين وبائي آهي. ان ڪري چڱو ٿيندو ته توهان ڪنهن اهڙي جاءِ تي هلڻ جو حڪم ڏيو جتي اهي جهڳڙالو نه هجن ۽ اسين اتي هلي رهون." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "تنهنجي ڏنل راءِ پلي آهي." ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ بيءَ جاءِ تي هليا ويا.

خيبر جي ويجهو جتان شهر ڏسڻ ۾ اچڻ لڳو، اتي پاڻ سڳورن ﷺ بيهي هيءَ دعا گهري:

اللَّهُمَّ رَبَّ السَّمَوَاتِ السَّبْعِ وَمَا أَضَلَّنَ وَرَبَّ الْأَرْضِينَ السَّبْعِ وَمَا أَقْلَنَ وَرَبَّ الشَّيَاطِينِ وَمَا أَضَلَّنَ فَإِنَّا نَسْأَلُكَ خَيْرَ هَذِهِ الْقَرْيَةِ وَخَيْرِ أَهْلِهَا وَخَيْرَ مَا فِيهَا وَتَعُوذُ بِكَ مِنْ شَرِّ هَذِهِ الْقَرْيَةِ وَشَرِّ أَهْلِهَا وَشَرِّ مَا فِيهَا.

1 - صحيح مسلم ۽ صحيح بخاري (603/2).

2 - مغازي الواقدي (غزوه خيبر ص: 112).

3 - صحيح بخاري غزوه خيبر (603/2، 604).

"اي الله! ستن آسمانن ۽ جن تي اهي سايو ڪن ٿا، انهن جا پاڻهارا! ۽ ستن زمينن ۽ جن کي اهي کڻيو بينيون آهن، انهن جا پاڻهارا! ۽ شيطانن ۽ جن کي انهن گمراه ڪيو، انهن جا رب! اسين توکان هن وسنديءَ جي پلائي ۽ هتي جي واسين جي پلائي گهرون ٿا ۽ هن وسنديءَ جي شر کان ۽ ان جي واسين جي شر کان پناه گهرون ٿا ۽ ان ۾ جيڪي ڪجهه آهي، ان جي شر کان پناه گهرون ٿا. (1)

(ان کانپوءِ فرمايائون ته: هلو) الله جو نالو وٺي اڳتي وڌو. (2)

**جنگ جي تياري ۽ خيبر جا قلعا:** - جنهن رات پاڻ سڳورن ﷺ، خيبر جي حدن ۾ پير پاتو، فرمايائون ته: "آئون جهنڊو هڪ اهڙي ماڻهوءَ کي ڏيندس، جيڪو الله ۽ ان جي رسول سان محبت ڪندو آهي ۽ جنهن سان الله ۽ ان جو رسول محبت ڪن ٿا. " صبح ٿيو ته اصحابي سڳورا رضي الله عنهم اچي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ گڏ ٿيا. هر ڪنهن اهو ئي سمجهيو ته جهنڊو کيس ملندو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته علي بن ابي طالب رضه ڪٿي آهن؟ اصحابي سڳورن رضه چيو ته يا رسول الله ﷺ! انهن جي اک ۾ آنڙي نڪتي آهي (3)

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ڪين وٺي اچو. ڪين آندو ويو. پاڻ سڳورن ﷺ سندن اکين تي پڪ هڻي ۽ دعا گهري ته پاڻ چڱو ڀلو ٿي ويو. ڄڻ ڪو سور هو ٿي ڪون! پوءِ ڪين جهنڊو ڏنو ويو. حضرت علي رضه چيو ته "يا رسول الله ﷺ! آئون ساڻن تيسٽائين وڙهان جيستائين اهي اسان جهڙا (مسلمان) ٿي وڃن؟" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "اطمينان سان وڃي سندن ميدان ۾ له، پوءِ ڪين اسلام جي دعوت ڏي ۽ اسلام ۾ الله جا جيڪي حق انهن تي لاڳو ٿين ٿا، سي ٻڌاءِ. الله جو قسمر، تنهنجي وسيلي الله تعاليٰ هڪ ڄڻي کي به هدايت ڏئي وڌي ته اهو تنهنجي لاءِ ڳاڙهن اٺن کان ڀلو آهي" (4)

خيبر جي آبادي ٻن حصن ۾ ورهايل هئي. هڪ منطق ۾ هيٺيان قلعا هئا.

(1) حصن ناعم (2) حصن صعب بن معاذ (3) حصن زبير (4) حصن ابي (5) حصن نزار

انهن مان ٽن مشهور قلعا وارو علائقو "نطاة" سڏبو هو ۽ باقي ٻن قلعا وارو علائقو "شق" سڏبو هو.

خيبر جي آباديءَ جو ٻيو حصو ڪٽيڀه سڏبو هو. ان ۾ رڳو ٽي قلعا هئا.

<sup>1</sup> - السلسلة الصحيحة - (6 / 258) (حديث نمبر 2759)، تراجمات اللالباني (ص 42) (حديث نمبر 16)

<sup>2</sup> - 1 بن هشام (329/2).

<sup>3</sup> - ان بيماريءَ ڪري پاڻ لشڪر کان پٺيان رهجي ويو هئو ۽ پوءِ اچي مليو.

<sup>4</sup> - صحيح بخاري: (2/606.605) ڪن روايتن مان پتو پوي ٿو ته خيبر جي هڪ قلعي جي فتح لاءِ ڪيل ڪوششن ۾ هر ناڪاميءَ کانپوءِ حضرت علي رضه کي جهنڊو ڏنو ويو هو. پر محققن آڏو وڌيڪ ڀروسو جوڳي ڳالهه اها ئي آهي جيڪا مٿي ڏنل آهي.

(1) حصن قموص (اهو بنو نضير جي قبيلي مان ابوالحقيق جي گهراني جو قلعو هو)

(2) حصن وطيح (3) حصن سالام

انهن اٺن قلعن کانسواءِ خيبر ۾ ٻيا قلعو ۽ ڪوٽ به هئا، پراهي ننڍڙا هئا ۽ قوت ۽ حفاظت ۾ مٿين قلعن جي مت نه هئا.

جنگ رڳو پهرئين منطق ۾ ٿي، ٻئي منطق جا ٿئي قلعو، گهڻن ئي ويڙهاڪن هوندي به بنا وڙهڻ جي مسلمانن کي ڏنا ويا.

**جنگ جو آغاز ۽ ناعم نالي قلعو هٿ ڪرڻ:-** مٿي ڄاڻايل اٺن قلعن مان سڀ کان

پهرين ناعم نالي قلعي تي حملو ڪيو ويو، چوٽه اهو قلعو، بيهڪ جي لحاظ کان يهودين لاءِ دفاعي مورچي جي حيثيت رکندو هو ۽ اهو ئي قلعو مرحب نالي طاقتور مڙس جو قلعو هو، جيڪو هزارن جو مت مڃيو ويندو هو.

حضرت علي رضي الله عنه مسلمانن جي فوج وٺي ان قلعي جي سامهون پهتو ۽ يهودين کي اسلام جي دعوت ڏنائون. انهن اها دعوت تڏي ڇڏي ۽ پنهنجي حاڪم مرحب جي هٿ هيٺ اچي مسلمانن جي آمهون سامهون بيٺا. جنگ جي ميدان ۾ پهچڻ کانپوءِ پهرين مرحب دويدو مقابلي جي دعوت ڏني، جنهن جي ڪيفيت سلم بن اڪوع رضي الله عنه هن طرح ٻڌائي ته: جڏهن اسين خيبر پهتاسين ته سندن بادشاهه مرحب پنهنجي تلوار کڻي هٿ ۽ وڏائيءَ سان آڪڙ جي اهو چوندي ظاهر ٿيو ته:

قَدْ عَلِمْتُ خَيْبِرُ أَنِّي مَرْحَبٌ      شَاكِي السَّلَاحِ بَطْلٌ مُجْرَبٌ  
إِذَا الْحُرُوبُ أَقْبَلَتْ تَلَهَبٌ

يعني (سڄي) خيبر ڄاڻي ٿي ته آئون مرحب آهيان. هٿيار پهريل جوڌو ۽ تجربيدڪارا! جڏهن ڇٽي جنگ هلندڙ هجي (پوءِ ڪو منهنجي بهادري ڏسي)

سندس سامهون منهنجو چاچو عامر رضي الله عنه لٿو ۽ چيائين ته:

قَدْ عَلِمْتُ خَيْبِرُ أَنِّي عَامِرٌ      شَاكِي السَّلَاحِ بَطْلٌ مُعَامِرٌ

يعني (سڄي) خيبر ڄاڻي ٿي ته آئون عامر آهيان، هٿيار پهريل جوڌو ۽ ويڙهو.

پوءِ ٻنهي هڪ ٻئي تي وار ڪيو. مرحب جي تلوار چاچا جي ڍال ۾ وڃي ڪٽي. چاچا عامر رضي الله عنه هيٺان کان کيس مارڻ چاهيو پر سندن تلوار ننڍڙي هئي. تنهن تي هن يهوديءَ جي جنگهه تي وار ڪيو ته تلوار جي چهنڀ موتي اچي سندن گوڏي ۾ لڳي. نيٺ ان ئي گهءَ ڪري سندن موت ٿيو.

پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجيون ٻئي آڱريون گڏي سندن باري ۾ فرمايو ته ان لاءِ بيتو اجر آهي. هو وڏو جوڏو ۽ مجاهد هو. سندن جهڙو عربستان ۾ گهٽ ئي ڪو ٿيو هجي. (1)

بهرحال حضرت عامر رضي الله عنه جي گھائجن کانپوءِ مرحب سان مهاڏو اٽڪائڻ لاءِ حضرت علي رضي الله عنه ميدان ۾ لٿو. حضرت سلمه رضي الله عنه ٻڌا ئي ٿو ته ان مهل حضرت علي رضي الله عنه هي شعر پڙهيا.

أنا الذي سمّيتي أمي حيدرَه  
كَلَيْتِ غَابَاتِ كَرِيهِ الْمُنْظَرَه  
أُوْفِيهِمْ بِالصَّاعِ كَيْلَ السَّنْدَرَه

يعني ”آئون اهو آهيان جو منهنجي ماءُ منهنجو نالو حيدر (شينهن) رکيو آهي، جهنگلي شينهن جهڙو هيبتناڪ. آئون انهن کي صاع بدران نيزي (جي انيءَ) تي ماپ پري ڪري ڏيندس.“

ان کانپوءِ مرحب جي مٿي تي اهڙي تلوار واهي ڪڍيائون جو وڃي پٽ ورتائين. پوءِ حضرت علي رضي الله عنه جي هٿان ئي سوپ حاصل ٿي. (2)

جنگ هلندي جڏهن حضرت علي رضي الله عنه قلعي جي ويجهو پهتا ته مٿان هڪ يهوديءَ جهاتي پائي پڇيو ته تون ڪير آهين؟ حضرت علي رضي الله عنه چيو ته ”آئون علي بن ابي طالب آهيان.“ يهوديءَ چيو ته: ”ان ڪتاب جو قسم! جيڪو حضرت موسيٰ عليه السلام تي لٿو هو! توهان ئي سوپارا آهيو. ان کانپوءِ مرحب جو ڀاءُ ياسر اهو چوندو ٻاهر نڪتو ته آهي ڪو جيڪو مونسان مهاڏو اٽڪائي. سندس للڪار تي حضرت زبير رضي الله عنه پڙ ۾ لهي پيو. ان تي سندن امڙ بيبي صفيه رضي الله عنها جن پڇيو ته: ”يا رسول الله ﷺ! ڇا منهنجو پٽ مارجي ويندو؟“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”نه پر تنهنجو پٽ هن کي ماريڻدو.“ نيٺ حضرت زبير رضي الله عنه ياسر کي ماري ڇڏيو.

ان کانپوءِ حصن ناعمر وٽ چٽي ويڙهه لڳي، جنهن ۾ گهڻا ئي وڏا وڏا يهودي مارجي ويا ۽ بچيلن ۾ وڙهڻ جو ست نه رهيو. تنهنڪري اهي مسلمانن جا حملا نه روڪي سگهيا. ڪن ڪتابن مان پتو پئي ٿو ته اها جنگ ڪافي ڏينهن هلندي رهي ۽ ان ۾ مسلمانن کي ڏاڍو مقابلو ڪرڻو پيو. تنهن هوندي به يهودي، مسلمانن کان ڪٿڻ جو آسرو پلي وينا هئا، ان ڪري ماٺ ميٺ ۾ اهو قلعو ڇڏي صعب نالي قلعي ۾ هليا ويا ۽ اهڙيءَ طرح مسلمانن، ناعمر نالي قلعي تي قبضو ڪري ورتو.

**صعب بن معاذ نالي قلعو ڪٿڻ:-** ناعمر نالي قلعي کانپوءِ صعب نالي قلعو، يهودين جو ٻيو مضبوط قلعو هو. مسلمانن، حضرت حباب بن منذر انصاري رضي الله عنه جي اڳواڻي ۾ ان قلعي تي چڙهائي ڪئي

1 - صحيح مسلم، (122/2) - (115/2) صحيح بخاري (603/2).

2 - مرحب جي قاتل بابت ڪتابن ۾ ڏاڍو اختلاف آهي ۽ ان ۾ به اختلاف آهي ته هو ڪهڙي ڏينهن ماريو ويو هو ۽ ڪهڙي ڏينهن قلعو فتح ٿيو. صحيحين جي روايتن ۾ به ان بابت ڪجهه اختلاف محسوس ٿئي ٿو. اسان مٿي جيڪا ترتيب ڏني آهي، اها صحيح بخاريءَ جي روايت کي نظر ۾ رکي جوڙي وئي آهي.

۽ تن ڏينهن تائين گهيو ڪري وينا. تئين ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ هن قلعي کي فتح ڪرڻ لاءِ خاص دعا گهري.

ا بن اسحاق جو بيان آهي ته بنو اسلم قبيلي جي هڪ شاخ بنو سهم وارا پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيا ۽ چيائون ته: "اسين هاڻي ٽڪجي پيا آهيون... اسان وٽ ڪجهه به ڪونه بچيو آهي." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "يا الله! تون هنن جو حال ڄاڻين ٿو. تون ڄاڻين ٿو ته انهن وٽ پيٽ گذر لاءِ ڪجهه به نه آهي ۽ مون وٽ به ڪجهه ڪونهي جو انهن کي ڏيان. تنهنڪري انهن کي يهودين جو اهڙو قلعو ڪٽراءِ، جيڪو سڀني کان وڌيڪ فائدي وارو هجي ۽ جتان سڀني کان وڌيڪ کاڌ خوراڪ ۽ چرپي هٿ اچي." دعا گهرڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جڏهن مسلمانن کي ان قلعي تي حملو ڪرڻ جي دعوت ڏني ته حملو ڪرڻ وارن ۾ سڀ کان اڳرا بنو اسلم وارا هئا. ان حملي ۾ قلعي وٽ دويدو مقابلا ۽ رتوڇاڻ ٿي پر الله تعاليٰ سڄ لهڻ کان اڳيئي صعب بن معاذ جو قلعو مسلمانن کي فتح ڪرايو. خير ۾ پيو ڪوبه اهڙو قلعو نه هو جتي هن قلعي کان وڌيڪ کاڌ خوراڪ ۽ چرپي هجي.<sup>(1)</sup> مسلمانن، هن قلعي مان ڪجهه منجنيقون ۽ دبابه<sup>(2)</sup> پڻ هٿ ڪيا.

ابن اسحاق جي هن روايت ۾ بڪن ڪٽڻ جو ذڪر ڪيو ويو آهي، ان جي ڪارڻ ئي ماڻهن (سوڀ ملندي ئي) گڏه ڪنا ۽ چلهن تي ديڳڙا کڻي ڇاڙهيائون. پر جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي خبر پئي ته پاڻ سڳورن ﷺ پالتو گڏه جو گوشت کائڻ کي حرام قرار ڏيئي ڇڏيو.

**زبير نالي قلعي جي فتح:-** ناعم ۽ صعب نالي قلعا هتان وڃائڻ کانپوءِ يهودي، نطاۃ جي سمورن قلعن مان نڪري اچي زبير نالي قلعي ۾ گڏ ٿيا. هي هڪ محفوظ قلعو هو ۽ جبل جي چوٽيءَ تي ٺهيل هو. رستو اڏيو ته ورن وڪڙن وارو ۽ ڏکيو هو جو هتي نه سوار ٿي پهچي سگهيا ۽ نه پيادا. ان ڪري پاڻ سڳورا ﷺ ان جو گهيرا ڪري ويهي رهيا ۽ تي ڏينهن ائين ئي وينا رهيا. تنهن کانپوءِ هڪ يهوديءَ اچي چيو ته: "اي ابو القاسم! جيڪڏهن توهان هڪ مهينو به گهيرا ڪري ويهو ته به انهن کي ڪا پرواهه ڪانه ٿيندي. باقي انهن جو پاڻي ۽ چشما زمين جي هيٺان آهن. اهي رات جو نڪري پاڻي پين ٿا ۽ پري ڪڍي وڃن ٿا. جيڪڏهن توهان انهن جو پاڻي بند ڪري ڇڏيو ته اهي اچي گوڏا کوڙيندا." خبر ملندي ئي پاڻ سڳورن ﷺ انهن جو پاڻي بند ڪري ڇڏيو. ان کانپوءِ يهودين ٻاهر نڪري ڏاڍي ويڙهه ڪئي، جنهن ۾ گهڻا ئي مسلمان شهيد ٿيا ويا ۽ اٽڪل ڏهه يهودي به مئا پر نيٺ قلعو فتح ٿي ويو.

<sup>1</sup> - ابن هشام (332/2).

<sup>2</sup> - ڪاٺ جو هڪ محفوظ ۽ بند گاڏيءَ جهڙو دڀو ٺاهيو هو. جنهن ۾ هيٺان کان ڪافي ماڻهو اندر ويهي قلعي جي فصيل تائين وڃي پهچندا هئا ۽ دشمنن جي حملي کان محفوظ رهندي. فصيل ۾ ڌار ڪري وجهندا هئا. اهو ئي دبابه سڏبو هو ۽ هاڻي ٽينڪ کي دبابه چئجي ٿو.

أبي نالي قلعي جي فتح:- زبير نالي قلعو هتان وڃائڻ کانپوءِ يهودي، ابي نالي قلعي ۾ وڃي بند ٿيا. مسلمانن ان جو به گهيراڙ ڪيو. هن ڀيري به ڪنڌار مٿس هڪ ٻئي کانپوءِ دويدو مقابلي لاءِ للڪاريندي ميدان ۾ لٿا، پر ٻئي مسلمان جوڌن هتان ماريا ويا. ٻئي يهوديءَ کي ماريندڙ، ڳاڙهو رومال ٻڌندڙ مشهور مجاهد حضرت ابو دجانہ سماڪ بن خرشه انصاري رضي الله عنه هو. اهو بي يهوديءَ کي ماري تڪڙ ۾ قلعي ۾ گهڙي پيو ۽ ساڻن گڏ اسلامي لشڪر به قلعي ۾ ڪاهي پيو. تروري دير ته قلعي ۾ ڏاڍي ويڙهه ٿي، پر پوءِ يهودين قلعي مان ڪسڪڻ شروع ڪيو ۽ نيٺ سڀئي ڀڄي وڃي نزار نالي قلعي ۾ لڪا، جيڪو خيبر جي پهرئين منطق جو آخري قلعو هو.

نزار نالي قلعي جي فتح:- هيءُ قلعو، علائقي جو سڀ کان مضبوط قلعو هو ۽ يهودين کي پوري پڪ هئي ته مسلمان، نهنن چوٽيءَ جو زور لڳائڻ کانپوءِ به هن قلعي ۾ ڪونه گهڙي سگهندا. ان ڪري هن قلعي ۾ اهي ٻارن ٻچن ساڻ اچي رهيا، جڏهن ته پهرين چئن قلعن ۾ ٻار ٻچا ڪونه رکيا هئا.

مسلمانن هن قلعي جو سختيءَ سان گهيراڙ ڪيو ۽ يهودين تي دٻاءُ وڌائون، پر جيئن ته قلعو مٿاهين ۽ محفوظ جبل تي هو، ان ڪري ان ۾ گهڙڻ جو وجهه نه پئي مليو. هوڏانهن يهودين ۾ قلعي مان ٻاهر نڪري مسلمانن سان مهاڏو اٽڪائڻ جي همت نه هئي. باقي تير وسائي ۽ پٿر اچلي سخت مقابلو ڪري رهيا هئا.

جڏهن اهو قلعو (نزار) فتح ڪرڻ وڌيڪ ڏکيائي محسوس ٿي ته پاڻ سڳورن عليه السلام منجنيق جا اوزار لڳائڻ جو حڪم ڏنو. لڳي ائين ٿو ته مسلمانن ڪجهه گولا اڇلايا به هئا، جن سان قلعي جي ڀتين ۾ ڌار پئجي ويا ۽ مسلمان اندر گهڙي ويا. ان کانپوءِ قلعي ۾ سخت ويڙهه ٿي ۽ يهودين بيچڙي طرح هارايو. اهي ٻين قلعن وانگر هن قلعي مان ماڻ مٿ ۾ ڀڄي نه سگهيا، پر اهڙيءَ افراتفري ۾ ڀڳا جو پنهنجا ٻار ٻچا به ڪونه وٺي وڃي سگهيا ۽ انهن کي مسلمانن جي رحم ۽ ڪرم تي ڇڏي ڏنائون.

هيءُ مضبوط قلعو هٿ ڪرڻ کانپوءِ خيبر جو پهريون اڌ يعني نطاۃ ۽ شق جو علائقو فتح ٿي ويو. هن علائقي ۾ ٻيا به ننڍا ننڍا قلعا هئا پر مٿيان قلعا ڪٽڻ کانپوءِ يهودين اهي قلعا به خالي ڪري ڇڏيا ۽ خيبر جي ٻئي منطق يعني ڪتبه ڏانهن ڀڄي ويا.

خيبر جي ٻئي اڌ جي فتح:- نطاۃ ۽ شق جو علائقو فتح ٿي چڪو ته پاڻ سڳورن عليه السلام ڪتبه، وطيح ۽ سالام واري علائقي ڏانهن رخ ڪيو. سالام، بنو نضير جي هڪ هاڪاري يهودي ابوالحقيق

جو قلعو هو. هوڏانهن نطا۽ ۽ شق جي علائقي مان هارائي پڇندڙ سڀئي يهودي به اتي اچي ترسيا هئا ۽ ڏاڍي پڪي قلعي بندي ڪئي هئائون.

اهل مغازي ان ڳالهه ۾ اختلاف رکن ٿا ته انهن تنهي قلعي مان ڪنهن به هڪ قلعي ۾ به جنگ ٿي هئي يا نه؟ ابن اسحاق جي بيان ۾ اهو واڌارو ڪيل آهي ته قموص نالي قلعو فتح ڪرڻ لاءِ جنگ وڙهي وئي هئي، پر ان جي مفهوم مان اها به ڄاڻ ملي ٿي ته اهو قلعو رڳو جنگ جي ذريعي ئي فتح ڪيو ويو هو ۽ يهودين پاران هٿيار ڦٽا ڪرڻ جي ڪا به ڳالهه ٻول نه ٿي هئي.<sup>(1)</sup> واقديءَ سڌو سنئون لکيو آهي ته هن علائقي جا ٽئي قلعو ڳالهيون ڪري مسلمانن کي ڏنا ويا هئا. ٽي سگهي ٿو ته قموص نالي قلعو ٿوري گهڻي ڏي وٺ کانپوءِ ڳالهيون ڪري حوالي ڪيو ويو هجي، باقي ٻيا ٻه قلعو بنا ڪنهن ويڙهه جي مسلمانن جي حوالي ڪيا ويا هئا.

جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ هن علائقي ڪتبه ۾ پهتا ته اتي جي رهاڪن جو سختيءَ سان گهيرا ڪيائون. اهو گهيرا ڇوڏنهن ڏينهن هليو. يهودي پنهنجن قلعي مان نڪتا ئي نه پئي. نيٺ پاڻ سڳورن ﷺ منجنيق هلائڻ جو پهه ڪيو. جڏهن يهودين کي تباهيءَ جي پڪ ٿي ته انهن پاڻ سڳورن ﷺ سان ٺاه لاءِ ڳالهه ٻول ڪئي.

**ٺاه لاءِ ڳالهه ٻول:** - پهرين ابن ابوالحقيق، پاڻ سڳورن ﷺ کي نياپو اماڻيو ته ڇا آئون توهان وٽ ڳالهيون ڪرڻ لاءِ اچي سگهان ٿو؟ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هاڻو" اهو جواب ملندي ئي هن پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي ان شرط تي ٺاه ڪيو ته قلعي ۾ جيڪا فوج آهي، ان جي جان بخشي ويندي ۽ انهن جا ٻار ٻچا انهن وٽ ئي رهندا. (يعني انهن کي ٻانهن ۽ ٻانهيون نه بنايو ويندو) پر اهي پنهنجا ٻار ٻچا وٺي خيبر جي علائقي مان ئي نڪري ويندا. باقي پنهنجو مال ملڪيت، باغ، زمينون، سون، چاندي، گهوڙا ۽ زرهون پاڻ سڳورن ﷺ جي حوالي ڪندا. رڳو ايترا ڪپڙا کڻي ويندا، جيترا ڪو انسان پنهنجي پٺ تي کڻي سگهي.<sup>(2)</sup>

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "پوءِ جيڪڏهن توهان مون کان ڪجهه لڪايو ته پوءِ الله ۽ ان جو رسول ﷺ (ٺاه کان) آڃا هوندا." يهودين اهو شرط منظور ڪيو ۽ ٺاه ٿي ويو.<sup>(3)</sup> هن ٺاه کانپوءِ ٽئي قلعو مسلمانن جي حوالي ڪيا ويا ۽ اهڙيءَ طرح خيبر جي فتح مڪمل ٿي.

<sup>1</sup> - ابن هشام (331/2، 336، 337).

<sup>2</sup> - پر سنن ابي دائود ۾ اهو واڌارو ڪيل آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ هن شرط تي ٺاه ڪيو ته يهودين کي اجازت هوندي ته خيبر مان نڪرڻ مهل پنهنجن سوارين تي جيترو مال کڻي سگهن، کڻي وڃن. (ڏسو ابو دائود (76/2)).

<sup>3</sup> - زادالمعاد (136/2).



**ابوالحقيق جي ٻنهي پتن جي بدعهدي ۽ انهن جو مارجڻ:** - هن ٺاه جي باني ابوالحقيق جي ٻنهي پتن گهڻو مال گم ڪري ڇڏيو. هڪ کل به غائب ڪيائون، جنهن ۾ مال ۽ حبي بن اخطب جا زيور هئا. اها حبي بن اخطب، مديني مان بنو نضير کي نيڪالي ملڻ مهل پاڻ سان کڻي آيو هو.

ابن اسحاق جو بيان آهي ته پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ ڪنانه بن ابي الحقيق کي آندو ويو. ان وٽ بنو نضير جو خزانو هو. پر پاڻ سڳورن عليه السلام جي پڇڻ تي هن اهو باسڻ کان انڪار ڪيو ته ڪو ڪيس خزاني واري جاءِ جو پتو آهي. ان کانپوءِ هڪ يهوديءَ اچي ٻڌايو ته آئون ڪنانه کي روزانو هڪ سڃي جاءِ تي ويندي ڏسندو هوس. ان تي پاڻ سڳورن عليه السلام ڪنانه کي چيو ته "هاڻي ٻڌاءِ ته جي اهو خزانو اسان تو وٽان هٿ ڪيو ته پوءِ ڀلي اسين توکي ماري ڇڏيون نه؟" هن چيو ته "ڀلي" پاڻ سڳورن عليه السلام ان سڃي جڳهه تي کوٽائيءَ جو حڪم ڪيو ۽ ان مان ڪجهه خزانو هٿ آيو. پاڻ سڳورن عليه السلام وري کانئس بچيل خزاني جو پڇيو پر هن وري به انڪار ڪيو. تنهن تي پاڻ سڳورن عليه السلام کيس حضرت زبير رضي الله عنه جي حوالي ڪيو ۽ فرمايو ته "هن کي سزا ڏي، ايستائين جو هن وٽ جيڪو ڪجهه آهي اهو سڀ اسان کي ڏئي وجهي. حضرت زبير رضي الله عنه سندن چاٽيءَ تي چقمق سان ڌڪ هنيا، تان ته هو اڌ مٿو ٿي ويو. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام کيس محمد بن مسلمه رضي الله عنه جي حوالي ڪيو ۽ جنهن کيس محمود بن مسلمه جي پالند ۾ ماري ڇڏيو. (محمود رضي الله عنه ناعمر نالي قلعي جي ڀت هيٺان چانو ۾ ويٺل هو جو هن مٿس تي چڪيءَ جو پٽو اڇلائي ماري ڇڏيو هو).

ابن قير جو بيان آهي ته پاڻ سڳورن عليه السلام، ابوالحقيق جا ٻئي پٽ مارائي ڇڏيا هئا. انهن ٻنهي خلاف مال لڪائڻ جي شاهدي ڪنانه جي سوٽ ڏني هئي.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام حبي بن اخطب جي نياڻي بيبي صفيه رضي الله عنها کي قيدين ۾ شامل ڪري ڇڏيو. جيڪا ڪنانه بن ابي الحقيق جي ڪنوار هئي ۽ اڃا تازو سندن رخصتي ٿي هئي.

**غنيمت جي مال جي ورڇ:** - پاڻ سڳورن عليه السلام، يهودين کي خيبر مان نيڪالي ڏيڻ جو پهه ڪيو هو ۽ ٺاه ۾ به اهو طئه ٿيو هو پر يهودين چيو ته: "اي محمد عليه السلام! اسان کي هتي رهڻ ڏيو. اسين هن جي سار سنڀال پيا ڪنداسين. چوٽه اسان کي توهان کان وڌيڪ هتي جي ڄاڻ آهي." ٻئي پاسي پاڻ سڳورن عليه السلام ۽ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم وٽ نه ڪو ايترا ٻانها هئا، جيڪي زمين جي سار سنڀال ۽ ٻني ٻاري جو ڪم ڪن ۽ نه ئي اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي ان ڪم ڪرڻ جي واندڪائي هئي. ان ڪري پاڻ سڳورن عليه السلام خيبر جي زمين ان شرط تي يهودين کي

ڏني ته سموري پوک ۽ سڀني ميون جو اڌ يهودي کڻندا ۽ جيستائين پاڻ سڳورا ﷺ چاهيندا، تيستائين ائين ٿيندو. (۽ جڏهن به چاهيندا کين جلاوطن ڪري ڇڏيندا). ان کانپوءِ حضرت عبدالله بن رواحہ رضی اللہ عنہم خيبر جي اُپت جو حساب ڪتاب رکڻ جو ڪم سونپيو ويو.

خيبر کي چٽيهه وڏن ڀاڱن ۾ ورهايو ويو، جن مان هر ڀاڱي جا هڪ سؤ ننڍا حصا هئا. جن جو ڪل تعداد چٽيهه سؤ ٿيو. انهن مان اڌ يعني ارڙهن سؤ پٽيون پاڻ سڳورن ﷺ ۽ مسلمانن لاءِ هيون. عام مسلمانن وانگر پاڻ سڳورن ﷺ جي به ان ۾ هڪڙي پٽي هئي. باقي ٻين ارڙهن سؤ پٽين وارو اڌ پاڻ سڳورن ﷺ، مسلمانن جي گڏيل ضرورتن ۽ هنگامي صورتحال لاءِ الڳ ڪيو هو. ارڙهن سؤ پٽين ۾ خيبر جي ورڇ ان لاءِ ڪئي وئي جو اهو الله تعاليٰ جي طرفان حديبيه وارن لاءِ هڪ عطيو هو. جيڪي موجود هئا، انهن لاءِ به ۽ جي نه هئا انهن لاءِ به. حديبيه وارن جو ڪل تعداد چوڏهن سؤ هو، جيڪي خيبر اچڻ مهل به سؤ گهوڙا به ساڻ وٺي آيا هئا. جيئن ته سوار کانسواءِ گهوڙي کي به پٽي ملندي آهي ۽ گهوڙي جي پٽي ٻن فوجين جي برابر هوندي آهي، ان ڪري خيبر کي ارڙهن سؤ پٽين ۾ ورهايو ويو ته به سؤ گهوڙيسوارن کي ٽن پٽين جي حساب سان ڇهه سؤ حصا مليا هئا ۽ ٻارنهن سؤ حصا پيادل فوج کي هڪ هڪ حصي جي حساب سان مليا هئا. (1)

خيبر مان مليل مال جي گهڻائيءَ جو اندازو صحيح بخاريءَ ۾ ابن عمر رضی اللہ عنہم جي هن روايت مان لڳائي سگهجي ٿو جنهن ۾ پاڻ فرمايو اٿن ته: "اسان خيبر جي فتح کان اڳ سکيا ستابا ڪونه هوندا هئاسين." اهڙيءَ طرح بيبي عائشه رضي الله عنها کان به هڪ حديث اچي ٿي ته "جڏهن خيبر فتح ٿيو ته اسان چيو ته هاڻي اسان کي بيت پري (ڪاٺ لاءِ) ڪارڪون ملنديون." (2) پوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ مديني پهتا ته مهاجرن، انصارين کي ڪجين جا اهي وڻ موٽائي ڏنا، جيڪي انصارين مدد طور (هجرت مهل) کين ڏئي ڇڏيا هئا. چوٽه هاڻي انهن کي خيبر مان مال کانسواءِ ڪجين جا ڪوڙ وڻ ملي ويا هئا. (3)

**حضرت جعفر بن ابي طالب ۽ اشعري اصحابين جو اچڻ:** - هن ئي غزوي ۾ حضرت جعفر بن ابي طالب رضی اللہ عنہم پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو. ساڻن گڏ اشعري مسلمان يعني حضرت ابو موسيٰ اشعري رضی اللہ عنہم ۽ ان جا ساٿي به هئا.

1 - زاد المعاد 137/2، 138.

2 - صحيح بخاري (3/609).

3 - زاد المعاد (148/2) صحيح مسلم (96/2).

حضرت ابو موسيٰ اشعري رضي الله عنه جو بيان آهي ته يمن ۾ اسان کي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي ظهور جو پتو پيو ته اسان يعني آئون ۽ منهنجا ٻه ڀائر پنهنجي قوم جا پنجاهه ڄڻا وٺي پنهنجو ديس ڇڏي هڪ ٻيڙيءَ ۾ چڙهي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ اچڻ لاءِ نڪتاسين. پر اسانجي ٻيڙيءَ اچي اسان کي نجاشيءَ جي ملڪ حبش ۾ ڦٽو ڪيو. اتي حضرت جعفر رضي الله عنه ۽ سندن ساٿين سان ملاقات ٿي. انهن ٻڌايو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم اسان کي (هتي) موڪليو آهي ۽ هتي رهڻ جو حڪم ڏنو آهي، اوهان به هتي ئي رهي پئو. تنهنڪري اسين به انهن سان گڏ رهي پياسين ۽ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ تڏهن پهتاسين، جڏهن خيبر فتح ٿي چڪو هو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم اسان جو به حصو لڳايو. پر اسان کانسواءِ اهڙي ڪنهن به ماڻهوءَ کي پتي ڪانه ڏني، جيڪو خيبر جي جنگ ۾ موجود نه هو. رڳو جنگ ۾ شريڪ ٿيلن کي حصو ڏنو ويو. باقي حضرت جعفر رضي الله عنه ۽ انهن جي ساٿين سان گڏ اسان جي ٻيڙيءَ وارن کي به پتي ڏني وئي ۽ انهن لاءِ غنيمت جي مال جي ورج ڪئي وئي. (1)

جڏهن حضرت جعفر رضي الله عنه، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ پهتو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سندن دلي آڌرڀاءُ ڪيو ۽ کين چمي ڏئي فرمايائون ته: "والله! خبر ناهي ته مون کي ڪهڙي ڳالهه جي وڌيڪ خوشي آهي؟ خيبر جي فتح جي يا جعفر رضي الله عنه جي اچڻ جي!" (2)

ياد رهي ته کين وٺي اچڻ لاءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم، حضرت عمرو بن اميه ضمري رضي الله عنه کي نجاشيءَ وٽ موڪليو هو ۽ ان کي چورائي موڪليو هو ته انهن کي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ موڪلي ڇڏي. تنهنڪري نجاشيءَ، ٻن ٻيڙين ۾ کين چاڙهي موڪليو. اهي ڪل سورنهن ڄڻا هئا ۽ ساڻن گڏ ڪجهه ٻار ۽ عورتون به هيون. ٻيا ماڻهو اڳيئي مديني پهچي چڪا هئا. (3)

**بيبي صفيه رضي الله عنها جن سان پرڻجڻ:-** اسان ٻڌائي آيا آهيون ته جڏهن بيبي صفيه رضي الله عنها جو مڙس ڪنانه بن ابي الحقيق، پنهنجي بدعهديءَ ڪارڻ ماريو ويو ته بيبي سڳوري رضي الله عنها کي به قيدي عورتن ۾ شامل ڪيو ويو. ان کانپوءِ جڏهن اهي قيدي عورتون گڏ ڪيون ويون ته حضرت دحيه ڪلبي رضي الله عنه پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي اچي چيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! مون کي انهن عورتن مان هڪ ٻانهي ڏيو." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "وڃي هڪ ٻانهي وٺي وٺ." انهن وڃي بيبي صفيه بنت حبيبي کي چونڊيو. ان تي ڪنهن اچي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي چيو ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم! توهان بني قريظہ ۽ بني نضير جي سيده صفيه کي دحيه ڪلبي رضي الله عنه جي حوالي

1 - صحيح بخاري (443/1) ۽ فتح الباري (7/484) کان (487).

2 - زاد المعاد (2/139). المعجم الصغير للطبراني (19/1).

3 - تاريخ خضري (128/1).

ڪري ڇڏيو، جڏهن ته اها رڳو اوهان جي شايان شان آهي! پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "دحيه کي صفيه سميت وٺي اچو." حضرت دحيه رضه کين کي وٺي آيو. پاڻ سڳورن ﷺ کين ڏسي، حضرت دحيه کي چيو ته: "قيدين مان بي ڪا ٻانهي وڃي وٺ." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ بيبي صفيه رضي الله عنها کي اسلام جي دعوت ڏني. انهن اسلام قبوليو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کين آزاد ڪري ساڻن شادي ڪئي ۽ سندن آزاديءَ کي ئي حق مهر قرار ڏنو. مديني موٽڻ مهل سدِ صهبا وٽ پهچي پاڻ حيص کان پاڪ ٿيون. ان کانپوءِ ام سليم رضي الله عنها کين پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ سينگارڻ ۽ رات جو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ موڪليو. پاڻ سڳورن ﷺ سهاڳ رات گذاري صبح جو ڪجين، گيهه ۽ ستو سان وليمي جي دعوت ڪئي ۽ اتي تي ڏينهن ساڻن گذاريائون. (1) ان موقعي تي پاڻ سڳورن ﷺ سندن منهن تي نيل جا نشان ڏسي پڇيو ته: "هي ڇا آهي؟" انهن ورائيو ته: "يا رسول الله! توهان جي خيبر اچڻ کان اڳ مون خواب ۾ ڏٺو ته چند پنهنجي جاءِ تان ٿئي اچي منهنجي هنج ۾ ڪريو آهي. الله جو قسم! تڏهن مون کي توهان جو تصور به ڪونه هو، پر جڏهن مون اهو خواب پنهنجي مٿس کي ٻڌايو ته هن منهنجي منهن تي ٿڌڻ هڻي چيو ته: "اهو جيڪو مديني ۾ بادشاهه ٿيو وينو آهي، تون ان جي آرزو پئي ڪرين." (2)

زهريلي پڪريءَ وارو واقعو: - خيبر جي فتح کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ مطمئن ۽ هڪ ڪرا تي ويٺا ته سلام بن مشڪم جي زال زينب بنت حارث، پاڻ سڳورن ﷺ کي پڪل پڪري هڏي طور موڪلي، هن اڳيئي پڇي ڇڏيو هو ته پاڻ سڳورن ﷺ کي پڪريءَ جو ڪهڙو حصو وڌيڪ وڻي ٿو. کيس ٻڌايو ويو ته "دستي" (اڳين ران). تنهن کانپوءِ هن دستيءَ تي چڱو خاصو زهر مڪيو. ٻين حصن تي به زهر مڪيائين. پوءِ اُٿي پاڻ سڳورن ﷺ آڏو رکيائين. پاڻ سڳورن ﷺ دستي کڻي هڪ ٽڪر چٻاڙيو، پر گهڻ بدران ٽڪي ڇڏيو ۽ فرمايو ته هيءَ هڏي ٻڌائي پئي ته هن ۾ زهر ملايو ويو آهي. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ زينب کي سڏيو ته هن اچي اقرار ڪيو. پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته تو ائين ڇو ڪيو؟ هن ورائيو ته مون سوچيو ته جي اهو (يعني پاڻ سڳورا ﷺ) بادشاهه آهي ته اسان جي ان مان جان چٽي ويندي پر جي نبي آهي ته کيس خبر ڏني ويندي. ان تي پاڻ سڳورن ﷺ کيس معاف ڪري ڇڏيو.

ان موقعي تي پاڻ سڳورن ﷺ سان حضرت بشر بن براء بن معرور رضه به ساڻ هيو. ان هڪ گرهه کائي ڇڏيو هو، جنهن جي ڪري پاڻ گذاري ويو.

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/54، 2/604، 606)، زاد المعاد (2/137).

<sup>2</sup> - زاد المعاد (2/137)، ابن هشام (2/336).

روايتن ۾ اختلاف آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ان عورت کي معاف ڪري ڇڏيو هو يا ماري ڇڏيو هو. ائين به چيو وڃي ٿو ته پهرين ته پاڻ سڳورن ﷺ کيس معاف ڪري ڇڏيو، پر جڏهن حضرت بشر رضى الله عنه زهر وگهي انتقال ٿي ويو ته پوءِ قصاص ۾ کيس به ماريو ويو. (1)

خيبر واري جنگ ۾ پنهنجي ڌرين جا مارجي ويل:- خيبر جي مختلف جهڙپن ۾ ڪل سورنهن مسلمان شهيد ٿيا. چار قريش، هڪ اشجع قبيلي مان، هڪ بنو اسلم قبيلي مان، هڪ خيبر وارن مان ۽ ٻيا انصاري هئا.

هڪ قول اهو به آهي ته انهن جهڙپن ۾ ڪل ارڙهن مسلمان شهيد ٿيا. علامه منصورپوريءَ اوڻيهه لکيا آهن. وڌيڪ سندن بيان آهي ته: "سيرت نگار خيبر جي شهيدن جو تعداد پنڌرنهن ٻڌائين ٿا. ڳولا ڪرڻ تي مون کي تيويهه نالا مليا. زينف رضى الله عنه بن وا ئل جو نالو رڳو واقديءَ ۽ زينف بن حبيب رضى الله عنه جو نالو رڳو طبريءَ جاڻايو آهي. بشر بن براء بن معرور رضى الله عنه جو موت جنگ کانپوءِ زهريلو گوشت کائڻ سان ٿيو، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ زينب نالي يهودن موڪليو هو. بشر بن عبدالمنذر رضى الله عنه بابت به روايتون آهن. هڪ اها ته پاڻ بدر جي جنگ ۾ شهيد ٿيو، ٻي اها ته خيبر جي جنگ ۾ شهيد ٿيو. منهنجي نظر ۾ پهرين روايت وڌيڪ صحيح آهي. (2)

بي ڌر يعني خيبر وارن جا ڪل تيانوي چڻا مئا.

فدڪ:- پاڻ سڳورن ﷺ خيبر پهچي محيصه بن مسعود رضى الله عنه کي فدڪ جي يهودين وٽ اسلام جي دعوت ڏيڻ لاءِ موڪليو، پر فدڪ وارن اسلام قبول ڪرڻ ۾ دير ڪئي. پوءِ جڏهن الله تعاليٰ خيبر جو قلعو فتح ڪرايو ته سندن دل ۾ به رعب ويهي ويو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي ماڻهو موڪلي خيبر وارن وانگر فدڪ جي اڌ ايت تي ٺاه ڪرڻ جي آڇ ڪيائون. پاڻ سڳورن ﷺ آڇ قبولي ۽ اهڙيءَ طرح فدڪ جي سرزمين خالص پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ڏني ٿي، ڇو ته مسلمانن ان تي گهوڙا ۽ اٺ نه ڊوڙايا هئا. (3) (يعني وڙهي فتح ڪانه ڪئي هئائون).

وادي القري:- پاڻ سڳورا ﷺ خيبر مان واندا ٿي وادي القري ويا. اتي به يهودين جي هڪ جماعت هئي ۽ انهن سان عربن جي هڪ جماعت به گڏجي وئي هئي.

<sup>1</sup> - زاد المعاد (2/ 139، 140) فتح الباري (497/7) اصل واقعو صحيح بخاريءَ ۾ مختصر به ۽ مڪمل به ڏنل آهي. (1/ 449، 610/2).

(860) ۽ ابن هشام (2/ 337، 338).

<sup>2</sup> - رحمة للعالمين (2/ 264، 269، 270).

<sup>3</sup> - ابن هشام (2/ 337، 353).

جڏهن مسلمان اتي لٿا ته يهودين، تيرن سان سندن آجيان ڪئي. اهي اڳيئي صفون ٻڌيو بيٺا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ جو هڪ ٻانهو مارجي ويو. ماڻهن چيو ته اهو جنتي آهي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هرگز نه ان هستيءَ جو قسم! جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي. هن خيبر جي جنگ ۾ غنيمت جي مال جي وڃ کان اڳ ان مان هڪ چادر چورائي هئي، اها باهه بڻجي ان تي پڙڪي رهي آهي. ماڻهن جو اهو ٻڌو ته هڪ چٽو وڃي هڪ يا ٻه تسما (چمڙي جو ٽڪر) کڻي آيو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته اهو هڪ يا ٻه تسما باهه جا آهن." (1)

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جنگ لاءِ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم جون صفون ٻڌيون. سڄي لشڪر جو جهنڊو حضرت سعد بن عبادة رضي الله عنه کي ڏنو ويو. ٻيو جهنڊو حباب بن منذر رضي الله عنه کي ۽ ٽيون جهنڊو عبادة بن بشر رضي الله عنه کي ڏنو ويو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ يهودين کي اسلام جي دعوت ڏني پر انهن آڇ ٽڙي ڇڏي ۽ پوءِ سندن هڪڙو ماڻهو ميدان ۾ لٿو. هيڏانهن حضرت زبير بن العوام نڪتو ۽ ان کي پورو ڪري ڇڏيائين. پوءِ ٻيو ماڻهو نڪتو. حضرت زبير رضي الله عنه ان جو به ڪم لاهي ڇڏيو. ان کانپوءِ وري هڪ چٽو آيو. ان جي مقابلي لاءِ حضرت علي رضي الله عنه ميدان ۾ لٿو ۽ کيس ماري وڌائين. اهڙيءَ طرح لاڳيتو سندن يارنهن چٽا مارجي ويا. هر ماڻهوءَ جي مرڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ بين يهودين کي اسلام جي دعوت ڏني ٿي.

ان ڏينهن نماز جو وقت ٿيڻ تي پاڻ سڳورا رضي الله عنه، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي نماز پڙهائي موتي يهودين جي سامهون اچي بيٺا ۽ کين اسلام، الله ۽ ان جي رسول جي دعوت ڏنائون. اهڙيءَ طرح وڙهندي وڙهندي شام ٿي وئي. ٻئي ڏينهن صبح جو پاڻ سڳورا رضي الله عنه ٻيهر آيا پر اڃا سج نيزي برابر به نه اڀريو هو جو هنن پنهنجو الهه تلهه آڻي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏنو. يعني پاڻ سڳورن ﷺ تلوار جي ذريعي فتح حاصل ڪئي ۽ الله تعاليٰ، انهن جو مال پاڻ سڳورن ﷺ کي غنيمت ڪري ڏنو. اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي تمام گهڻو سامان هٿ آيو.

پاڻ سڳورا رضي الله عنه وادي القري ۾ چار ڏينهن رهيا ۽ غنيمت جو مال اصحابي سڳورن رضي الله عنهم ۾ ورهائي ڇڏيائون. باقي زمين ۽ ڪجين جا باغ يهودين وٽ ئي رهڻ ڏنائون ۽ انهن بابت ساڻن به خيبر جهڙو ٺاهه ڪيائون. (2)

تيماء:- تيماء جي يهودين کي جڏهن خيبر، فدڪ ۽ وادي القري جي رهاڪن جي هٿيار ڦٽا ڪرڻ جي خبر پئي ته انهن مسلمانن سان وڙهڻ بدران هڪ ماڻهو موڪلي ٺاهه جي آڇ ڪئي. پاڻ

1 - صحيح بخاري (2/608).

2 - زاد المعاد (2/146، 147).

سڳورن ﷺ آڇ قبولي ۽ اهي يهودي مال متاع سميت اتي ئي رهيا. (1) انهن بابت هڪ لکت به پاڻ سڳورن ﷺ ڏني هئي. جيڪا هن طرح هئي.

"هيءَ لکت محمد رسول الله ﷺ پاران بنو عاديا لاءِ آهي. انهن جو ذمو اسان تي آهي ۽ انهن لاءِ جزيو آهي. انهن سان ڏاڍائي نه ٿيندي نه انهن کي ڏيهه نيڪالي ڏني ويندي. رات معاون ٿيندين ۽ ڏينهن مضبوط" (معني ته اهو ناھ سڌائين لاءِ هوندو). هيءَ لکت خالد بن سعيد رضی اللہ عنہ لکي هئي. (2)

مديني ڏانهن روانگي: - ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ مديني جي وات ورتي. رستي ۾ هڪ واديءَ مان لنگهائو ٿيا ته ماڻهو وڏي واڪي الله اڪبر! الله اڪبر! لا اله الا الله چوڻ لڳا. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "آرام آرام سان، توهان ڪنهن ٻوڙي ۽ غائب کي ڪونه پيا ياد ڪريو، پر اهڙي هستيءَ کي پيا پڪاريو جيڪا ٻڌندڙ ۽ ويجهو آهي." (3)

وات هلندي هڪ ڀيرو سڄي رات هلڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ رات جي پوئين پهر رستي ۾ ڪنهن جڳهه تي لٿا ۽ حضرت بلال رضی اللہ عنہ کي تاڪيد ڪري سٿا ته اسان لاءِ رات تي نظر رک. (يعني صبح سان نماز لاءِ اٿارجان). پر حضرت بلال رضی اللہ عنہ جي به اڪ لڳي وئي. پاڻ (اوپر ڏي مهڙ ڪري) پنهنجي سواريءَ کي ٽيڪ ڏئي ويٺو جو نند جو جهٽو اچي ويو. پوءِ ڪوبه سجاڳ نه ٿيو، تان ته اسان نڪري آئي. ان کانپوءِ سڀ کان پهرين پاڻ سڳورا ﷺ سجاڳ ٿيا، پوءِ (بين ماڻهن کي جاڳايائون) پاڻ سڳورا ﷺ واديءَ مان نڪري ٿورو اڳتي ويا. پوءِ ماڻهن کي فجر نماز پڙهائايون. چيو وڃي ٿو ته اهو واقعو ڪنهن ٻئي سفر ۾ ٿيو هو. (4)

خيبر جي جهڙين جو تفصيل ڏيان سان جاڇڻ سان خبر پوي ٿي ته پاڻ سڳورن ﷺ يا ته سنه 7 هـ جي صفر مهيني جي پڇاڙيءَ ۾ موتيا. يا وري ربيع الاول ۾.

آبان بن سعيد وارو سريو: - پاڻ سڳورا ﷺ سڀني سڀه سالارن کان وڌيڪ چڱيءَ طرح اها ڳالهه ڄاڻندا هئا ته حرام مهينا گذرڻ کانپوءِ مديني کي پوريءَ طرح خالي ڇڏڻ ڏاهپ جي خلاف آهي، جڏهن ته مديني جي پرياسي ۾ اهڙا بدوي رهيا ٿي، جيڪي ڦرلٽ ۽ ڌاڙا هڻڻ لاءِ وجهه پيا ڳوليندا هئا. ان ڪري جن ڏينهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ خيبر ڏانهن لشڪر وٺي ويا هئا، انهن ئي ڏينهن ۾ بدوين

1 - زاد المعاد (147/2).

2 - ابن سعد (279/1).

3 - صحيح بخاري (605/2).

4 - ابن هشام (340/2) اهو واقعو چڱو خاصو مشهور ۽ حديثن جي عام ڪتابن ۾ آيل آهي. زاد المعاد (147/2).

ڪي ديچارڻ لاءِ اَبان بن سعيد رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ نجد ڏانهن هڪ سريو موڪليو هئائون. اَبان بن سعيد رضي الله عنه پنهنجو ڪم چڱيءَ طرح اڪلائي موٽيو پئي ته پاڻ سڳورن عليه السلام سان خيبر ۾ ملاقات ٿين. تيستائين پاڻ سڳورا عليه السلام خيبر فتح ڪري چڪا هئا.

وڌيڪ امڪان آهي ته اهو سريو صفر سنه 7 هـ ۾ موڪليو ويو هو. ان جو ذڪر صحيح بخاريءَ ۾ ٿيل آهي. (1) حافظ ابن حجر لکي ٿو ته مون کي هن سريي جي ڄاڻ ڪانه ملي سگهي. (2)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (2/608، 609).

<sup>2</sup> - فتح الباري (7/491).



## غزوة ذات الرقاع (سنه 7 هـ)

جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ خندق واري جنگ جي تن ڌرين مان بن ڪي توڙڻ مان فارغ ٿيا ته ان کانپوءِ ٽين ڌر ڏانهن ڌيان ڏنائون. ٽين ڌر اهي صحرائي بدو هئا، جيڪي نجد جي رڻ پٽ ۾ رهندا هئا ۽ ڦرلٽ پيا ڪندا هئا.

جيئن ته اهي بدوي ڪنهن وسنديءَ يا شهر ۾ نه رهندا هئا ۽ سندن رهائش گهرن ۽ قلعن ۾ ڪانه هوندي هئي، ان ڪري مڪي ۽ خيبر وارن جي پيٽ ۾ انهن تي قابو پائڻ ۽ سندن ڏنگين ۽ ڦسرين کي پوريءَ طرح بنجو ڏيڻ ڏاڍو ڏکيو هو، تنهنڪري کين رڳو ڊيچارڻ لاءِ ڪاه ڪرڻ ئي فائديمند ٿي سگهي ٿي.

تنهنڪري انهن بدوين کي داڍو ڏيڻ لاءِ يا ڪن جي چوڻي ته مديني جي چوڌاري حملا ڪرڻ لاءِ گڏ ٿيڻ وارن بدوين کي چڙوچڙ ڪرڻ لاءِ ۽ کين سبق سيکارڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ حملو ڪيو، جيڪو غزوة ذات الرقاع جي نالي سان مشهور آهي.

عام سيرت نگارن هن غزوي جو سال سنه 4 هـ لکن ٿا، پر امام بخاريءَ ان جو سال سنه 7 هـ ٻڌايو آهي. جيئن ته هن غزوي ۾ حضرت ابو موسيٰ اشعري رضي الله عنه ۽ حضرت ابو هريرة رضي الله عنه شامل ٿيا هئا، ان ڪري اهو ان ڳالهه جو دليل آهي ته هي غزوه، خيبر جي لڙائيءَ کان پوءِ ٿيو. (مهينو شايد ربيع الاول هو.) چوڻي حضرت ابو هريرة رضي الله عنه ان وقت مديني پهچي اتان سنڌو پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ پهتو. ان مهل تائين خيبر فتح ٿي چڪو هو. اهڙيءَ طرح حضرت ابو موسيٰ اشعري رضي الله عنه به حبش کان ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو جڏهن خيبر فتح ٿي چڪو هو. تنهنڪري غزوة ذات الرقاع ۾ انهن ٻنهي اصحابي سڳورن جي شرڪت، ان ڳالهه جو دليل آهي ته اهو غزوه، خيبر واري جنگ کانپوءِ ٿيو هو.

سيرت نگار هن غزوي بابت جيڪي ڪجهه لکي ويا آهن، ان جو خلاصو اهو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ، انمار يا بنو غطفان قبيلي جي ٻن شاخن بنو ثعلبه ۽ بني محارب جي گڏجڻ جي خبر ٻڌي ته مديني جي واڳ حضرت ابوذر رضي الله عنه يا حضرت عثمان رضي الله عنه جي حوالي ڪري هڪدم چار سو يا ست سو اصحابي سڳورا ساڻ وٺي نجد ڏانهن هليا. مديني کان بن ڏينهن جي پنڌ تي "نخلة" وٽ پهتا ته سندن ٽڪراءُ بنو غطفان جي هڪ جماعت سان ٿيو، پر جنگ نه ٿي. البتہ پاڻ سڳورن ﷺ ان موقعي تي صلواة خوف پڙهائي هئي. صحيح بخاريءَ ۾ حضرت ابو موسيٰ اشعري رضي الله عنه کان روايت آهي ته "اسين پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ نڪتاسين. اسين ڪل ڇهه ڇڻا هٿاسين ۽ اٺ هڪڙو

ئي هو، جنهن تي واري واري سان چڙهياسين ٿي. اسان جا پير زخمي ٿي ويا. منهنجا به ٻئي پير زخمي ٿي ويا ۽ نهن چڙهي ويا، تنهنڪري اسان پنهنجن پيرن تي اڳڙيون ٻڏي ڇڏيون هيون. ان ڪري ئي هن غزوي جو نالو ذات الرقاع (اڳڙين وارو) پئجي ويو. ڇو ته ان غزوي ۾ اسان پنهنجي پيرن ۾ اڳڙيون ۽ پٽيون ويڙهي ٻڏي ڇڏيون هيون." (1)

صحيح بخاريءَ ۾ ئي حضرت جابر رضي الله عنه کان روايت آهي ته اسان ذات الرقاع ۾ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سان گڏ هئاسين. (دستور اهو هو ته) جڏهن اسان ڪنهن گهاتي وڻ هيٺ پهتاسين ٿي ته ان کي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم لاءِ ڇڏي ٿي ڏنوسين (هڪ پيري) پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم هڪ هنڌ لٽا ۽ ماڻهو وڻن جي چانور ۾ ويهڻ لاءِ هيڏانهن هوڏانهن ڪنڊن وارن وڻن ڏانهن پڪڙجي ويا. پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم به هڪ وڻ هيٺ لٽا ۽ ان ئي وڻ ۾ تلوار لٽڪائي سمهي پيا. حضرت جابر رضي الله عنه ٻڌائين ٿا ته اسان جي اڃا اڪ ئي مس لڳي هئي جو هڪ مشرڪ اچي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم مٿان سندن ئي تلوار کڻي اڀي ڪئي ۽ چيائين ته "تون مون کان ڊڄين پيو؟" پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "نه" هن چيو ته "هاڻي توکي مون کان ڪير بچائيندو؟" پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "الله"

حضرت جابر رضي الله عنه جو بيان آهي ته اسان اوچتو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جا سڏ ٻڌا. اسان پهتاسين ته ڏنوسين ته هڪ اعرابي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ ويٺو آهي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ٻڌايو ته "آئون ستو پيو هوس جو هن منهنجي تلوار کڻي مون تي اڀي ڪئي، ايتري ۾ آئون جاڳي پيس. اڀي ڪيل تلوار سندس هٿ ۾ هئي. هن مون کي چيو ته "توڪي مون کان ڪير بچائيندو؟" مون چيو ته "الله" هاڻي اهو هتي ويٺو آيو. پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ان تي ڪاوڙيل ڪونه هئا.

ابو عوانه رضي الله عنه جي روايت ۾ ايترو وادارو آهي ته (جڏهن پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سندس سوال جي جواب ۾ الله چيو ته) هن جي هٿ مان تلوار ڪري پئي. پوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم تلوار کڻي ورتي ۽ فرمايائون ته "هاڻي توکي مون کان ڪير بچائيندو؟" هن چيو ته "توهان سٺا پڪڙڻ وارا آهيو. (يعني توهان بهادرن وانگر احسان ڪريو). پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: تون شاهدي ڏين ٿو ته الله ڪانسواءِ ڪوبه عبادت جي لائق نه آهي ۽ آئون الله جو رسول آهيان." هن چيو ته "آئون توهان سان عهد ڪريان ٿو ته توهان سان لڙائي ڪونه ڪندس ۽ نه ئي توهان سان وڙهندڙن جو ساٿ ڏيندس." حضرت جابر رضي الله عنه جو بيان آهي ته ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کيس ڇڏي ڏنو ۽ پنهنجي قوم وارن کي وڃي ٻڌايائين ته آئون هڪ ڏاڍي پلي ماڻهوءَ وٽان ٿي توهان وٽ آيو آهيان. (2) صحيح بخاريءَ جي هڪ

1 - صحيح بخاري (592/2) صحيح مسلم (118/2).

2 - مختصر السيرة شيخ عبدالوهاب (ص: 264) ۽ فتح الباري (416/7).

روايت ۾ ٻڌايل آهي ته نماز جي تڪبير هنئي وئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ هڪ ٽولي کي ٻه رڪعتون نماز پڙهائي، پوءِ اهي پنهنجي هٿيا ته پاڻ سڳورن ﷺ ٻئي گروهه کي ٻه رڪعتون نماز پڙهائي. اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ جون چار رڪعتون ٿيون ۽ اصحابي سڳورن جون ٻه ٻه رڪعتون. (1) هن روايت مان خبر پئي ٿي ته اها نماز مٿئين واقعي کانپوءِ ئي پڙهائي وئي هئي.

صحيح بخاريءَ ۾ مسدد جي ابو عوانه رَضِيَ اللهُ عَنْهُ ۽ ان جي ابو بشر رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کان ٻڌل روايت ۾ ٻڌايو ويو آهي ته ان همراھ جو نالو غورث بن حارث هو. (2) ابن حجر ٻڌائي ٿو ته واقديءَ، ان واقعي جي تفصيل ۾ اعرابيءَ جو نالو دغثور ٻڌايو آهي ۽ ان اسلام قبوليو هو. پر هن غزوي تان موٽڻ مهل اصحابي سڳورن رضي الله عنهم هڪ مشرڪ عورت جهلي ورتي. ان تي سندس مٿس باس باسي ته هو محمد ﷺ جي ساٿين مان هڪ جو خون وهائيندو. تنهن کانپوءِ هو رات جو آيو. پاڻ سڳورن ﷺ پهري لاءِ بن جئن، حضرت عباد بن بشر ۽ عمار بن ياسر رضي الله عنهم کي بيهاريو هو. جڏهن هو پهتو ته حضرت عباد رَضِيَ اللهُ عَنْهُ نماز ۾ بيٺل هئا. هن انهيءَ ئي حالت ۾ کين تير هنيو. حضرت عباد رَضِيَ اللهُ عَنْهُ نماز توڙڻ کان سواءِ ئي تير کڍي اڇلائي ڇڏيو. هن پيو ۽ تيو تير به هنيو پر هن نماز نه ڀڳي ۽ سلام ورائڻ کانپوءِ پنهنجي ساٿيءَ کي سجاڳ ڪيو. ساٿيءَ (خبر چار وٺڻ کانپوءِ) چيو ته: "سبحان الله! توهان مون کي جاڳايو ڇو ڪونه؟" هن چيو ته مون هڪ سورة پئي پڙهي، ان کي اڌ ۾ ڇڏڻ ڪونه پئي چاهيم. (3)

سنگدل اعرابين کي ڊيچارڻ لاءِ هن غزوي وڏي ڪاميابي حاصل ڪئي. هن غزوي کانپوءِ ٿيل سرين جي تفصيل تي نظر وجهڻ کانپوءِ اسين ڏسون ٿا ته غطفان جي انهن قبيلن، هن غزوي کانپوءِ وري ڪنڌ ڪٽڻ جو ست نه ساريو. پر هري هري تي نيٺ هٿيار ڦٽا ڪيائون ۽ مسلمان ٿي ويا. تان جو انهن اعرابين جا گهڻائي قبيلن اسان کي مڪي جي فتح ۽ غزوة حنين مهل مسلمانن سان گڏ ڏسڻ ۾ اچن ٿا ۽ غزوه حنين ۾ غنيمت جي مال مان کين پتي به ڏني وئي هئي. مڪو فتح ڪرڻ کانپوءِ انهن ڏانهن صدقا وصول ڪرڻ لاءِ اسلامي حڪومت جا اهلڪار به موڪليا ويا هئا ۽ اهي باقائده پنهنجا صدقا ڏيندا به هئا.

مطلب ته ان حڪمت عمليءَ سان اهي ٿئي ڌريون ٿئي ويون، جن خندق واريءَ جنگ ۾ مديني تي چڙهائي ڪئي هئي. اهڙيءَ طرح سڄي علائقي ۾ سک ۽ شانتي ڦهلجي وئي. ان کانپوءِ ڪن

<sup>1</sup> - صحيح البخاري (1/407، 2/593).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (2/593).

<sup>3</sup> - زاد المعاد (2/112) هن غزوي بابت تفصيل لاءِ ڏسو ابن هشام (2/209، 203، 211، 112)، فتح الباري (7/417) \_

قبيلن، ڪن جڳهين تي گڙبڙ ڪئي به ته ان کي مسلمانن سولائيءَ سان سنڀالي ورتو. هن غزوي کانپوءِ ئي وڏن وڏن شهرن ۽ ملڪن کي فتح ڪرڻ جو رستو کلي پيو. چوته هن غزوي کانپوءِ ملڪ اندر حالتون پوريءَ طرح مسلمانن جي حق ۾ ٿي ويون هيون.

\*\_\*\_\*

## سنه 7 هجريء جا كجهه سر يا

هن غزوي تان موٽڻ کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ شوال سنه 7 هجريءَ تائين مديني پاڪ ۾ رهيا ۽ ان دوران ڪافي سر يا به موڪليائون، جن مان ڪن جو تفصيل هي آهي.

(1) سريه قديد (صفر يا ربيع الاول 7 هـ): - هيءُ سريو غالب بن عبدالله ليشي رضي الله عنه جي

هت هيٺ قديد ڏانهن بني ملح قبيلي کي سيڪت ڏيڻ لاءِ موڪليو ويو هو، ڇو ته انهن بشر بن سويد جي ساٿين کي ماريو هو، جنهن جو پلاند وٺڻ لاءِ هي سريو موڪليو ويو. هن سريي حملو ڪري گهڻن ئي ماڻهن کي ماري ڇڏيو ۽ ڍور ڍڳا ڪاهي آيا. ويري وڏو لشڪر وٺي پويان لڳا پر مسلمانن جي ويجهو پهتا ته مينهن وسڻ لڳو ۽ وڏي ٻوڏ اچي وئي، جيڪا ٻنهي ڌرين جي وچ ۾ هئي. اهڙيءَ طرح مسلمان خير سان موٽي آيا.

(2) حسمي وارو سريو: - ان جو ذڪر دنيا جي بادشاهن ڏانهن موڪليل خطن جي باب ۾ ٿي

چڪو آهي.

(3) تره وارو سريو: - هيءُ سريو حضرت عمر رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ موڪليو ويو. ساڻن گڏ

ٽيهه ڄڻا هئا، جيڪي رات جو سفر ڪندا هئا ۽ ڏينهن جو لڪي ويندا هئا، پر بنو هوازن کي خبر پئجي وئي ۽ اهي وٺي پڳا. حضرت عمر رضي الله عنه ان علائقي ۾ پهتا ته اتي ڪاريءَ وارا ڪڪ لڳا پيا هئا. تنهنڪري پاڻ مديني موٽي آيا.

(4) فدڪ جي پرياسي ۾ موڪليل سريو: - هيءُ سريو حضرت بشير بن سعد انصاري رضي الله عنه

جي اڳواڻيءَ ۾ ٽيهن ڄڻن سان بنو مره کي سيڪت ڏيڻ لاءِ موڪليو ويو. حضرت بشير رضي الله عنه ان علائقي ۾ وڃي رڍون ۽ ٻڪريون ۽ جانور ڪاهي موٽيا پئي ته رات جو وات ۾ دشمن کين اچي رسيا. مسلمانن ڏاڍا تير وسايا پر نيٺ سڀني جا تير کٽي ويا، جنهن کانپوءِ سڀئي مارجي ويا. رڳو حضرت بشير رضي الله عنه بچيا. کين زخمي حالت ۾ کڻي فدڪ پهچايو ويو ۽ اهي اتي يهودين وٽ رهيا، تان ته سندن گهءُ پرچي ويا ۽ پوءِ پاڻ مديني موٽي آيا.

(5) ميفعه وارو سريو (رمضان 7 هـ): - هي سريو حضرت غالب بن عبدالله ليشي رضي الله عنه جي

اڳواڻيءَ ۾ بنوعوال ۽ بنو عبد بن ثعلبه کي سيڪت ڏيڻ لاءِ يا چيو وڃي ٿو ته جهينه قبيلي جي شاخ حرقات کي سيڪت ڏيڻ لاءِ موڪليو ويو هو. مسلمانن جو تعداد هڪ سو ٽيهه هو. انهن دشمنن تي گڏيل حملو ڪيو ۽ جنهن به چوڻ چرا ڪئي، ان کي ماري ڇڏيائون. پوءِ جانور ۽ رڍون، ٻڪريون

ڪاهي آيا. هن ئي سريي ۾ حضرت اسامه بن زيد رضي الله عنه نهيڪ بن مرداس کي لا اله الا الله چوڻ کانپوءِ به ماري وڌو هو. ان تي پاڻ سڳورن عليه السلام کين چنڊ ڪيندي چيو هو ته: "تو هن جي دل چيري ڇو ڪونه ڏني ته هو سچو هو يا ڪوڙو؟"

(6) خيبر موڪليل سريو (شوال 7 هـ): - هي سريو تيهن چئن تي ٻڌل هو ۽ حضرت عبدالله بن رواح رضي الله عنه کي اڳواڻ ڪري موڪليو ويو هو. ٿيو هيئن ته اسير يا بشير بن زبير، بنو غطفان کي مسلمانن تي چڙهائيءَ لاءِ گڏ ڪري رهيو هو. مسلمانن اسير کي اها اميد ڏياري ته پاڻ سڳورا عليه السلام کين خيبر جو حاڪم ڪري رکندا، سندن تيهن ساٿين سميت کيس پاڻ سان هلڻ لاءِ راضي ڪري ورتو. پر قرقره نيار وٽ پهچي ڌرين ۾ بدگماني پيدا ٿي پئي. جنهن جي نتيجي ۾ اسير ۽ سندس ساٿين کي جان تان هٿ ڪڍڻو پيو.

(7) يمن و جبار ڏانهن موڪليل سريو: - جبار جي جيمر تي زبر آهي. اهو بنو غطفان، يا چيو وڃي ٿو ته بنو فراهه ۽ بنو عذره جو علائقو هو. هتي حضرت بشير بن ڪعب انصاري رضي الله عنه کي تي سؤ مسلمان ڏئي موڪليو ويو. مقصد هڪ وڏي ميڙ کي چڙوچڙ ڪرڻو هو، جيڪو مديني تي چڙهائي ڪرڻ لاءِ گڏ ٿي رهيو هو. مسلمانن راتين جو سفر ڪندا هئا ۽ ڏينهن جو لڪي ويندا هئا. جڏهن دشمنن کي حضرت بشير رضي الله عنه جي اچڻ جي خبر پئي ته اهي پڇي نڪتا. حضرت بشير رضي الله عنه گهڻائي جانور جهلي ورتا ۽ به ماڻهو به پڪڙجي پيا ۽ جڏهن ٻئي چڙا مديني پهتا ته اهي ٻئي چڙا پاڻ سڳورن عليه السلام جي هٿ تي مسلمان ٿي ويا.

(8) غابه ڏانهن موڪليل سريو: - هن کي ابن قيرم قضا ڪيل عمري کان پهرين 7 هـ جي سرين ۾ ڳٽايو آهي. ان جو خلاصو اهو آهي ته جشم بن معاويه قبيلي جو هڪ همراهه ڪافي ماڻهو وٺي غابه پهتو. هن بنو قيس کي مسلمانن سان وڙهڻ لاءِ گڏ ڪرڻ پئي چاهيو. پاڻ سڳورن عليه السلام، حضرت ابو حدره رضي الله عنه کي رڳو پن چئن سان اوڏانهن موڪليو. حضرت حدره رضي الله عنه ڪنهن حڪمت عمليءَ سان دشمنن کي ان مجراڻي ۽ گهڻا ئي اٺ ۽ پڪريون ڪاهي آيا. (1)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - زاد المعاد (2/149، 150) انهن سرين جو تفصيل رحمة للعالمين (2/229، 230، 231) زاد المعاد (2/148، 149، 150) تليخ الفهرم مع حواشي، (ص: 31) السيرة للشيخ عبدالله (ص: 322، 323، 324) تي ڏسي سگهجي ٿو.

## قضا ڪيل عمرو

ابن حڪم جو چوڻ آهي ته لاڳيتين روايتن مان ثابت آهي ته جڏهن ذي القعدة جو چنڊ ڏسجي ويو ته پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجن اصحابين کي حڪم ڪيو ته اهي عمري جي قضاء طور عمرو کن ۽ جيڪو به ماڻهو حديبيه ۾ حاضر هو، پٺيان نه رهي. تنهن کانپوءِ (ان مهل تائين) جيڪي شهيد ٿي چڪا هئا، انهن کي ڇڏي ٻيا سڀ ماڻهو هليا ۽ حديبيه وارن کانسواءِ به ڪي ماڻهو عمري لاءِ گڏ نڪتا. اهڙيءَ طرح تعداد به هزار ٿي ويو. عورتون ۽ ٻار انهن کانسواءِ هئا. (1)

پاڻ سڳورن ﷺ، ان موقعي تي ابو رهم غفاري رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کي مديني جي واڳ ڏني. سٺ اٺن ڪاهيائون ۽ ناجيه بن جندب اسلمي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کي انهن جي سار سنڀال جو ڪم سونپيائون. ذوالحليف کان عمري جو احرام ٻڌائون ۽ لبيڪ جي صدا هنيائون. پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ مسلمانن به لبيڪ پڪاريو ۽ قريشن پاران دوکو ڪرڻ جي ڊپ کان هٿيار پنهور ڪئي، ويڙهاڪن کي هوشيار ڪري نڪتا. جڏهن ياجج نالي واديءَ ۾ پهتا ته سمورا هٿيار يعني ڍالون، تير، نیزا وغيره اتي رکي ڇڏيائون ۽ سنڀال لاءِ اوس بن خولي انصاري رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جي هٿ هيٺ به سوڙ ڄڻا اتي ئي ڇڏي، باقي مسافريءَ جو هٿيار يعني مياڻن ۾ پاتل تلوارون ساڻ کڻي مڪي ۾ گهڙيا. (2)

مڪي ۾ گهڙڻ مهل پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجي ڏاڍي قصواء تي چڙهيل هئا. مسلمانن تلوارون ڇيلهه تي ٻڌي ڇڏيون هيون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي گهيري ۾ آڻي لبيڪ جي صدا هڻي رهيا هئا.

مشرڪ، مسلمانن جو تماشو ڏسڻ لاءِ (گهرن مان) نڪري ڪعبي جي اتر پاسي قعيقعان نالي جبل تي (وڃي چڙهيا) انهن پاڻ ۾ ڳالهين ڪندي چيو پئي ته توهان وٽ هڪ اهڙو ميڙ اچي رهيو آهي، جنهن کي يثرب جي بخار ٿڪائي ڇڏيو آهي. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي حڪم ڏنو ته اهي پهريان تي چڪر ڊوڙي پورا ڪن. باقي رڪن يماني ۽ حجر اسود جي وچ ۾ رڳو هلندي لنگهن. سڀئي (ست ٿي) چڪر ڊوڙڻ جو حڪم ان ڪري نه ڏنائون جو رحمت ۽ شفقت مقصود هئن. ان حڪم جو مقصد اهو هو ته مشرڪ، سندن سگهه ڏسي

1 - فتح الباري (700/7).

2 - فتح الباري (700/7) زاد المعاد (151/2).

وٺن. (1) ان کانسواءِ پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي اضطباع جو به حڪم ڏنو.

اضطباع جو مطلب اهو آهي ته ساڄو ڪلهو ڪليو رکجي (۽ چادر ساڄي ڪچ جي هيٺان لنگهائي اڳيان توڙي پٺيان بنهي پاسان) ان جو پيو چيڙو کابي ڪلهي تي رکي ڇڏجي. پاڻ سڳورا ﷺ مڪي ۾ ان جابلو لنگهه کان پهتا، جيڪو حجرون ۾ وڃي دنگ ٿئي ٿو. مشرڪ، کين ڏسڻ لاءِ قطارون ٻڏيو بيٺا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ لاڳيتو لبيڪ لبيڪ پڪاري رهيا هئا، تانجو (حرم پهچي) پنهنجي لٺ سان حجر اسود کي چهياڻون ۽ پوءِ طواف ڪيائون. اصحابي سڳورن ﷺ به طواف ڪيو. ان مهل حضرت عبدالله بن رواح رضه تلوار ٻڏيو، پاڻ سڳورن ﷺ جي اڳيان اڳيان هلندي هي شعر پڙهي رهيو هو ته:

خَلُّوا بَنِي الْكُفَّارِ عَنْ سَبِيلِهِ      خَلُّوا فَكُلَّ الْخَيْرِ فِي رَسُولِهِ  
 قَدْ أَنْزَلَ الرَّحْمَنُ فِي تَنْزِيلِهِ      فِي صُحُفٍ تُنْتَلَى عَلَى رَسُولِهِ  
 يَا رَبِّ إِنِّي مُؤْمِنٌ بِقِيلِهِ      إِنِّي رَأَيْتُ الْحَقَّ فِي قَوْلِهِ  
 بَأَنَّ خَيْرَ الْقَتْلِ فِي سَبِيلِهِ      الْيَوْمَ نَضْرِبُكُمْ عَلَى تَأْوِيلِهِ  
 ضَرْبًا يُزِيلُ الْهَامَ عَنْ مَقِيلِهِ      وَيُذْهِلُ الْخَلِيلَ عَنْ خَلِيلِهِ (2)

”ڪافرن جا اولادو! هن جو رستو ڇڏي ڏيو، هن جو رستو ڇڏي ڏيو، چو ته سڄي پلائي هن جي پيغمبريءَ ۾ ئي آهي. رحمان پنهنجي تنزيل (قرآن پاڪ) ۾ اها ڳالهه آندي آهي. يعني اهڙا صحيفا جن جي تلاوت هن جي پيغمبر تي ڪئي وڃي ٿي. اي پالڻهار! آئون هن جي ڳالهه تي ايمان رکان ٿو ۽ ان کي قبول ڪرڻ تي حق سمجهان ٿو ته بهترين قتل اهو آهي جيڪو الله جي رستي ۾ ٿئي. اڄ اسان هن جي تنزيل مطابق توهان کي اهڙي مار ڏينداسين جو کوپڙي وڃي پري ڪرندي ۽ دوست کي دوست جي به خبر نه رهندي.

انس رضه جي روايت ۾ اهو به آيل آهي ته ان تي حضرت عمر رضه چيو ته: ”اي ابن رواح! تون پاڻ سڳورن ﷺ جي اڳيان ۽ الله جي حرم ۾ شعر پيو پڙهين!“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: ”اي عمر رضه! هن کي ڇڏي ڏي، چو ته اهي (شعر) هنن لاءِ تير جي وار کان به تڪا آهن.“ (3)

1 - صحيح بخاري (1/218 - 2/610، 611) ۽ صحيح مسلم (1/412).

2 - مختلف روايتن ۾ هنن شعرن جي ترتيب ۾ وڏو فرق ڄاڻايل آهي. اسان مختلف شعر گڏ ڏئي ڇڏيا آهن..

3 - جامع ترمذي، ابواب الاستيذان و الادب، (2/107).



پاڻ سڳورن ﷺ ۽ مسلمانن تي چڪر ڊوڙي لڳايا. مشرڪن اهو ڏسي چيو ته اسان ته سمجهيو پئي ته يثرب جي بخار هنن جا لاهه ڪڍي ڇڏيا آهن، پر هي ته فلاڻي ۽ فلاڻي کان به وڌيڪ توانا پيا ڏسجن. (1)

طواف مان واندا ٿي پاڻ سڳورا ﷺ صفا ۽ مروه جي وچ ۾ ڊوڙيا. ان مهل سندن قربانيءَ جا جانور مروه جي ويجهو بيٺل هئا. پاڻ سڳورا ﷺ فارغ ٿيا ته فرمايائون ته "هيءَ قربانيءَ جي جاءِ آهي ۽ مڪي جون سڀ گهٽيون قربانگاهه آهن." ان کانپوءِ مروه ويجهو ئي جانور ڪنائون، اتي ئي مٿو ڪوڙايائون. مسلمانن به ائين ڪيو. ان کانپوءِ ڪجهه ماڻهو موڪليائون ته وڃي هٿيارن جي سنڀال ڪن ۽ اتي بيٺلن کي ڇڏين ته اهي اچي عمرو ادا ڪن.

پاڻ سڳورا ﷺ مڪي ۾ تي ڏينهن رهيا. چوٿين ڏينهن صبح ساڻ مشرڪن اچي حضرت علي رضه کي چيو ته: "پنهنجي صاحب کي چئو هاڻي هلڻ جي ڪن، چوته (ڏنل) وقت گذري ويو آهي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ مڪي مان نڪري اچي "سرف" وٺ رهيا. مڪي مان نڪرڻ مهل حضرت حمزة رضه جي نياڻي به ڇاڇا، ڇاڇا، چوندي اچي پهتي. ان کي حضرت علي رضه پاڻ سان وٺي ويو، پر پوءِ حضرت علي رضه، حضرت جعفر رضه ۽ حضرت زيد رضه ۾ تڪرار ٿي پيو. (هر هڪ چوي ته کين پالڻ جو وڌيڪ حق حاصل آهي.) پاڻ سڳورن ﷺ جن، حضرت جعفر رضه جي حق ۾ فيصلو ڏنو. چوته ان ٻارڙيءَ جي ماسي سندن گهر واري هئي.

ان ئي عمري واري سفر ۾ پاڻ سڳورا ﷺ، بيبي ميمون بنت حارث عامريه رضي الله عنها سان پرڻيا. ان مقصد لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ مڪي پهچڻ کان اڳ حضرت جعفر رضه کي پاڻ کان پهرين بيبي ميمون رضي الله عنها ڏانهن اماڻيو هو ۽ جنهن پنهنجو معاملو حضرت عباس رضه کي سونپيو هو. چو ته بيبي ميمون رضه جي پيڻ امر الفضل سندن گهر واري هئي. حضرت عباس رضه بيبي ميمون رضي الله عنها کي پاڻ سڳورن ﷺ سان پرڻائي ڇڏيو. پاڻ سڳورن ﷺ مڪي مان نڪرڻ مهل حضرت ابو رافع رضه کي پٺيان ڇڏيو ته اهي بيبي سڳوريءَ کي سوار ڪري پاڻ سڳورن ﷺ وٺ وٺي اچن. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ "سرف" پهتا ته بيبي صاحبه کي اتي پاڻ سڳورن ﷺ وٺ پهچايو ويو. (2)

هن عمري جو نالو "عمره قضاء"، يا ته ان ڪري پيو جو اهو عمرو حديبيه واري عمري جي قضاء طور ڪيو ويو هو يا ان ڪري جو اهو حديبيه واري ٺاهه مطابق ڪيو ويو هو. (۽ اهڙي ٺاهه کي

1 - صحيح مسلم (1/412).

2 - زاد المعاد (2/152).

عربيء ۾ قضا ۽ مقاضاه چوندا آهن). انهن ٻنهي ڪارڻ کي محققن ترجيح ڏني آهي. (1) هن عمري کي چئن نالن سان لکيو ويو آهي! عمره قضا، عمره قضيه، عمره قصاص ۽ عمره صلح (2)

## ڪجهه ٻيا سريا

(1) ابوالعوجاء رضي الله عنه وارو سريو (ذي الحج 7 هـ): پاڻ سڳورن عليه السلام پنجاهه ڄڻا حضرت ابوالعوجاء رضي الله عنه جي اڳواڻي ۾ بنو سليم کي اسلام جي دعوت ڏيڻ لاءِ موڪليو. پر بنو سليم وارن چيو ته توهان جنهن ڳالهه جي دعوت ڏيو پيا، اسان کي ان جي گهرج ڪانهي. ان تي ڇتي ويڙهه لڳي، جنهن ۾ ابوالعوجاء رضي الله عنه گهائجي پيو. تنهن هوندي به مسلمانن به ڄڻا پڪڙي ورتا.

(2) غالب بن عبدالله رضي الله عنه وارو سريو (صفر 7 هـ): - ڪين به سو ماڻهو ساڻ ڏئي فدڪ جي پرياسي ۾ حضرت بشير بن سعد جي ساٿين جي مارجڻ جي جاءِ تي موڪليو ويو. انهن دشمنن جي جانورن تي قبضو ڪيو ۽ سندن گهڻا ئي ماڻهو ماري ڇڏيا.

(3) ذات اطلح وارو سريو (ربيع الاول 8 هـ): - هن سريي جو تفصيل اهو آهي ته بنو قضاة، مسلمانن تي ڪاهڻ لاءِ وڏو ميڙ ڪڍي گڏ ڪيو هو. پاڻ سڳورن عليه السلام کي پتو پيو ته انهن، ڪعب بن عمير رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ رڳو پنڌرهن اصحابي سڳورا رضي الله عنهم ان پاسي موڪليا. اصحابي سڳورن رضي الله عنهم، انهن کي اسلام جي دعوت ڏني، پر انهن دعوت قبول ٿيڻ بدران ڪين تيرن سان زخمي ڪري سڀني کي شهيد ڪري ڇڏيو. رڳو هڪ ڄڻو بچيو، جيڪو مٿن جي وچ ۾ پيو هو. (3)

(4) ذات العرق وارو سريو (ربيع الاول 8 هـ): - هيءُ واقعو هن طرح ٿيو جو بنو هوازن، ڪئي پيرا دشمنن کي مدد ڏني هئي. ان ڪري پنجويهه ڄڻا حضرت شجاع بن وهب اسدي رضي الله عنه جي هٿ هيٺ انهن ڏانهن موڪليا ويا. اهي دشمنن جا جانور ڪاهي آيا، پر جنگ ۽ ڇيڙڇاڙ جي نوبت ڪانه آئي. (4)

<sup>1</sup> - زاد المعاد (172/1) - فتح الباري (500/7).

<sup>2</sup> - فتح الباري (500/7).

<sup>3</sup> - رحمة للعالمين (231/2).

<sup>4</sup> - رحمة للعالمين (231/2) ۽ تلقيع الفهوم (ص: 33) جو حاشيو.

## موتہ واري جهڙپ

موتہ (مير تي پيش ۽ واء ساکن) اردن ۾ بلقاء جي ويجهو هڪ واديءَ جو نالو آهي. جتان بيت المقدس بن ڏينهن جي پنڌ تي آهي. هيءَ جهڙپ اتي ئي ٿي هئي. هيءَ سڀ کان وڏي خوني جهڙپ هئي، جيڪا پاڻ سڳورن ﷺ جي حياتيءَ ۾ ٿي هئي ۽ اها ئي جهڙپ عيسائي ملڪن کي فتح ڪرڻ جو سبب بڻي. اها جمادي الاول 8 هه مطابق آگسٽ يا سيپٽمبر 629ع ڌاري ٿي.

**جهڙپ جو ڪارڻ:-** هن جهڙپ جو ڪارڻ اهو هو ته پاڻ سڳورن ﷺ، حارث بن عمير آزدي رضه کي هڪ خط ڏئي، بصري جي حاڪم وٽ موڪليو ته ان کي رومي قيصر جي بلقاء واري گورنر شربيل بن عمرو غسانيءَ جهلي ورتو ۽ شهيد ڪري ڇڏيو.

ياد رهي ته سفيرن ۽ قاصدن کي مارڻ ڏاڍو بيچرو ڏوهه هو، جيڪو جنگ جي اعلان جي برابر، بلڪ ان کان به وڌيڪ سمجهيو ويندو هو، ان ڪري جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي واقعي جي ڄاڻ ملي ته پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏاڍو ارمان ٿيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ ان علائقي تي چڙهائي ڪرڻ لاءِ تي هزار لشڪر تيار ڪري ورتو. (1) اهو سڀ کان وڏو اسلامي لشڪر هو، جيڪو ان کان پهرين رڳو خندق واري جنگ لاءِ تيار ڪيو ويو هو.

**لشڪر جا امير ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي وصيت:-** پاڻ سڳورن ﷺ، هن لشڪر جو سالار حضرت زيد بن حارثه رضه کي مقرر ڪيو ۽ فرمايو ته جي زيد رضه ماريو وڃي ته جعفر رضه ۽ جي جعفر رضه مارجي وڃي ته عبدالله بن رواحه رضه سپهه سالار ٿيندو. (2) پاڻ سڳورن ﷺ لشڪر لاءِ اڇو جهنڊو تيار ڪيو ۽ اهو حضرت زيد بن حارثه رضه جي حوالي ڪيو. (3) لشڪر کي پاڻ سڳورن ﷺ اها به وصيت ڪئي ته جنهن جاءِ تي حضرت حارث بن عمير رضه کي ماريو ويو هو، اتي پهچي اتي جي رهاڪن کي اسلام جي دعوت ڏين. جيڪڏهن اهي اسلام قبولين ته بهتر نه ته الله کان مدد گهري، ويڙه شروع ڪن. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: الله جو نالو وٺي، الله جي راهه ۾، الله جو انڪار ڪرڻ وارن سان جنگ جو ٿيو ۽ ڏسو دوکو نه ڪجو، خيانت نه ڪجو، ڪنهن ٻار

<sup>1</sup> - زاد المعاد (155/2) - فتح الباري (511/7).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (611/2).

<sup>3</sup> - مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 327).

يا عورت ۽ ڪنهن ڪراڙي کي يا گر جا گهر ۾ رهندڙ دنيا تياڳڻ واري کي نه مارجو. ڪجي يا پيو ڪو وڻ نه ڪتجو ۽ ڪابه جڳهه نه ڊاهجو. (1)

### اسلامي لشڪر جي نڪرڻ مهل حضرت عبدالله بن رواح رضي الله عنه جو روئڻ:-

جڏهن اسلامي لشڪر نڪرڻ لاءِ سنبريو ته ماڻهو، پاڻ سڳورن عليه السلام جي چونڊيل سپهه سالارن کان موڪلائڻ آيا. ان مهل هڪ سپهه سالار حضرت عبدالله بن رواح رضي الله عنه روئڻ لڳو. ماڻهن پڇيو ته: "توهان ڇو پيا روئو؟" هن ورائيو ته: "ان لاءِ نه ته ڪو دنيا جي محبت يا توهان جي صحبت ڇڏائڻ جو اونو اثر، پر مون پاڻ سڳورن عليه السلام کي الله جي ڪتاب جي هڪ آيت پڙهندي ٻڌو آهي، جنهن ۾ دوزخ جو ذڪر آهي. آيت هيءَ آهي ته:

﴿وَإِنْ مِنْكُمْ إِلَّا وَارِدُهَا كَانَ عَلَى رَبِّكَ حَتْمًا مَقْضِيًّا (71)﴾ (المريم)

"۽ اوهان مان ڪو اهڙو ڪونهي جو ان تي پهچڻ وارو نه آهي تنهنجي پالڻهار تي اهو انجام لازم مقرر آهي."

آئون نٿو ڄاڻان ته دوزخ ۾ وارد ٿيڻ کانپوءِ ڪيئن موتي سگهندس؟ مسلمانن چيو ته: "الله سلامتيءَ سان توهان جو ساٿي رهي، توهان پاران دفاع ڪري ۽ توهان کي اسان ڏانهن چڱائي ۽ غنيمت سان موٽائي. حضرت عبدالله رضي الله عنه تڏهن هيءَ شعر پڙهيو ته:

لَكِنِّي أَسْأَلُ الرَّحْمَنَ مَغْفِرَةً      وَضَرْبَةَ ذَاتِ فَرْعٍ تَقْذِفُ الزَّبَدَا  
أَوْ طَعْنَةَ بِيَدِي حِرَّانٍ مُجْهَرَةً      بِحَرِيَّةٍ تَنْفُذُ الْأَحْشَاءَ وَالْكَبِدَا  
حَتَّى يُقَالَ إِذَا مَرَّوَا عَلَيَّ جَدَنِي      يَا أَرْشِدَ اللَّهِ مِنْ غَارٍ وَقَدْ رَشَدَا

"پر آءٌ رحمان کان چوٽڪاري جو ۽ هڏيون پيچندڙ ۽ ڪوپڙي اڏائيندڙ تلوار جي ڌڪ جو يا ڪنهن نيزي باز جي هٿن، آڻڻن ۽ جگر جي آرپار ٿيندڙ نيزي جي ضرب جو سوال ڪريان ٿو ته جيئن جڏهن ماڻهو منهنجي قبر وٽان لنگهن ته چون ته هاڻ اهو غازي جنهن کي الله هدايت ڏني ۽ جيڪو هدايت يافته رهيو." (2)

ان کانپوءِ لشڪر نڪتو. پاڻ سڳورا عليه السلام ان سان گڏ ثنية الوداع تائين ويا ۽ اتان کانئن موڪلايائون. (3)

**اسلامي لشڪر جو اڳتي وڌڻ ۽ اوچتي مصيبت ۾ ڦاسڻ:-** اسلامي لشڪر اتر ڏانهن وڌندي "معان" وٽ پهتو. اها جڳهه حجاز جي اترئين ڀاڱي سان ڳنڍيل شامي (اردني) علائقي ۾ آهي. هتي لشڪر

1 - ساڳي ڪتاب رحمة للعالمين (271/2).

2 المعجم الكبير للطبراني - (18 / 469)

3 - ابن هشام (2/373، 374) - زاد المعاد (2/156) - مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص:327).

لٿو ۽ هتي ئي خابرن اچي خبر پهچائي ته هرقل (روم جو قيصر) بلقاء جي علائقي ۾ مآب وٽ هڪ لک رومي لشڪر سان لٿل آهي. سندس جهنڊي هيٺان لخر، جذام، بلقين ۽ بهرا ۽ بلي نالي عرب قبيلن جا وڌيڪ هڪ لک ماڻهو به اچي گڏ ٿيا آهن.

معان ۾ مجلس شوريٰ جي گڏجاڻي: - مسلمانن ته سوچيو به ڪونه هو ته ڪو ڪين هيڏي وڏي لشڪر سان منهن ڏيڻو پوندو، جيڪو هن پرڏيهه ۾ اوچتو سندن سامهون اچي ٿيو هو. سندن آڏو اهو سوال اٿي ڪٿو ٿيو هو ته سمنڊ وانگر ڇوليون هڻندڙ ٻن لکن جي لشڪر کي، تن هزارن جو ننڍڙو لشڪر ڪري به ته ڇا ڪري؟ مسلمان حيران هئا ۽ ان حيرانيءَ واري حالت ۾ به راتيون صلاح مشورو ڪرڻ ۾ گذري ويون. ڪن ماڻهن جو خيال هو ته دشمن جي تعداد جو اطلاع پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏنو وڃي. ان کانپوءِ يا ته اتان وڌيڪ مدد موڪلي ويندي يا وري ٻيو ڪو حڪم ڏنو ويندو. جنهن تي عمل ڪيو ويندو.

پر حضرت عبدالله بن رواحہ ﷺ ان راءِ جي مخالفت ڪئي ۽ اهو چئي ماڻهن کي تاءُ ڏياريو ته: "الله جو قسم! جنهن شيءِ کان توهان لهرايو پيا، اها ته شهادت آهي، جنهن جي طلب ۾ توهان نڪتا آهيو. ياد رهي ته دشمنن سان اسان جي لڙائي تعداد، سگهه ۽ گهڻائيءَ جي زور تي نه آهي، پر اسين رڳو دين جي زور تي وڙهندا آهيون، جنهن جو الله اسان کي شرف بخشيو آهي. ان ڪري اڳتي وڌو! اسان کي ٻن ڀولين مان هڪ ضرور ملندي. يا ته اسان زور تي وينداسين يا شهادت ماڻينداسين." نيٺ حضرت عبدالله بن رواحہ ﷺ جي راءِ سڀني مڃي.

اسلامي لشڪر جو دشمن ڏانهن وڌڻ: - مطلب ته اسلامي لشڪر، "معان" ۾ ٻه راتيون گذارڻ کانپوءِ دشمن ڏانهن وڌيو ۽ بلقاء جي هڪ وسندي، مشارف وٽ اچي هرقل جي فوج جي سامهون ٿيو. ان کانپوءِ وڌيڪ ويجهو اچي ويو ۽ مسلمان سوڙها ٿيندي ٿيندي "موت" طرف وڃي لٿا، پوءِ لشڪر جي جتابندي ڪئي وئي. ميمنه تي قطب بن قتادة عذري ﷺ کي رکيو ويو ۽ ميسره تي عباده بن مالڪ ﷺ کي.

جنگ چڙڻ ۽ سڀه سالارن جو هڪ ٻئي پويان شهيد ٿيڻ: - ان کانپوءِ موت ۾ ئي ڌرين جي پاڻ ۾ جهڙپ ٿي ۽ ڏاڍي چٽي ويڙهه ٿي. تن هزارن جو لشڪر، ماکڙ جهڙي ٻن لکن جي لشڪر سان مهاڏو اٽڪائي بيٺو هو. اها اچرج جوڳي جهڙپ هئي، ڏسڻ وارا اڪيون ڦاڙي ڏسي رهيا هئا. جڏهن ايمان جون هوائون هلن ٿيون ته اهڙا ئي اچرج جوڳا واقعا ٿين ٿا.

سڀ کان پهرين پاڻ سڳورن ﷺ جي لاڏلي حضرت زيد بن حارثه ﷺ جهنڊو سنڀاليو ۽ اهڙو ته بيچگريءَ سان وڙهيو، جنهن جو مثال مسلمان جانبازن کانسواءِ ڪير به پيش نٿو ڪري

سگهي. پاڻ وڙهندو رهيو، وڙهندو رهيو، نيٺ نيزن جي گهاٽن کان لاجار ٿي زمين تي ڪري پيو ۽ شهادت جو جام پيائين.

ڪانئن پوءِ حضرت جعفر رضي الله عنه جو وارو هو. ان جهٽ هڻي جهنڊو کڻي ورتو ۽ بيمثال ويڙهه ڪرڻ لڳو. جڏهن لڙائي چوٽ چڙهي ته پاڻ پنهنجي گهوڙي تان لهي پيو. ان جون ڪچيون (پويون تنگون) ڪٽي ڇڏيائين ۽ وار تي وار ڪندا رهيا ۽ دشمنن جا وار جهليندو به رهيو، تانجو هڪ دشمن جي ڌڪ سان سندن ساڄو هٿ ڪپجي ويو. ان کانپوءِ پاڻ جهنڊو ڪاپي هٿ ۾ جهليو ۽ ان کي لاڳيتو مٿي رکندو آيو. تانجو سندن ڪاپو هٿ به ڪپجي ويو. پوءِ ٻنهي بچيل ٻانهن سان جهنڊو ڇاتيءَ سان لڳائي جهليائين ۽ تيسٽائين ان کي اوچو رکيائون، جيستائين شهادت جو چولو نه ڍڪي وڌائين. چيو وڃي ٿو ته هڪ روميءَ کين تلوار جو اهڙو ڌڪ هنيو جو سندن ٻه اڌ ٿي ويا. الله کين ٻنهي ٻانهن جي بدلي ۾ جنت ۾ به پر ڏنا، جن سان اهي جتي وڻين، اتي اڏامي وڃن ٿا. ان ڪري سندن لقب جعفر طيار ۽ جعفر ذوالجناحين پئجي ويا. (طيار جي معنيٰ اڏامندڙ ۽ ذوالجناحين معنيٰ ٻن پيرن وارو) امام بخاريءَ، نافع جي واسطي سان ابن عمر رضي الله عنه جي روايت ڏني آهي ته: "مون موته واري جنگ کانپوءِ حضرت جعفر رضي الله عنه جي شهادت کانپوءِ سندن ويجهو بيهي سندن جسر تي لڳل نيزن ۽ تلوارن جا پنجاهه گهاٽا ڳڻيا، انهن مان ڪوبه پنيءَ تي لڳل ڪونه هو." (1)

هڪ ٻي روايت ۾ ابن عمر رضي الله عنه کان هيءُ بيان آيل آهي ته آئون به هن جنگ ۾ مسلمانن سان گڏ هوس. اسان جعفر بن ابي طالب رضي الله عنه کي ڳولهيو ته کين شهيدن ۾ ڏٺو ۽ سندن جسر تي نيزن ۽ تيرن جا نوي کان وڌيڪ گهاٽا ڏٺاسين. (2) نافع رضي الله عنه کان آيل روايت ۾ ايترو وڌارو ٿيل آهي ته "اسان اهي سڀ گهاٽا سندن جسر جي اڳئين حصي تي ڏٺا." (3)

اهڙيءَ طرح جانبازيءَ سان وڙهندي حضرت جعفر رضي الله عنه جي شهادت ماڻڻ کانپوءِ حضرت عبدالله بن رواح رضي الله عنه جهنڊو کنيو ۽ پنهنجي گهوڙي تي چڙهي اڳتي وڌيو ۽ پنهنجو پاڻ کي ويڙهه لاءِ تيار ڪرڻ لڳو، پر پاڻ ٿورو هڪيو پئي، ٿورو ترسيو به، پر نيٺ چيائين ته:

أَفَسَمْتُ يَا نَفْسُ لَتَنْزِلَنَّهُ ... كَارِهَةً أَوْ لَتَطَاوَعَنَهُ  
 إِنَّ أَجْلَبَ النَّاسِ وَشَدَّوْا الرِّتَّةَ ... مَالِي أَرَاكَ تَكَرَّهِيْنَ الْجَنَّةَ

1 - صحيح بخاري (611/2).

2 - صحيح بخاري (611/2).

3 - فتح الباري (512/7) بظاهر ته ٻنهي روايتن ۾ فرق آهي پر تطبيق اها ڪئي ٿي وڃي ته تيرن جا گهاٽا ملائڻ سان تعداد وڌيو وڃي (ڏسو فتح الباري).

”اي نفس! توکي قسم آهي ته تون ضرور دشمن جي مقابلي ۾ اچ. چاهي خوشيءَ سان اچين يا بيدليءَ سان. ماڻهو جيڪڏهن جنگ جوڻيو بيٺا آهن ۽ نيزا اڀا ڪريو بيٺا آهن ته پوءِ آئون توکي چو ڀيو جنت کان لهرائيندي ڏسان.“

ان کانپوءِ پاڻ مقابلي تي لهي پيا ايتري ۾ سندن سوٽ هڪ ماس لڳل هڏي کڻي آيو ۽ چيائين ته: ”هن سان ڪجهه هانءَ جو جهلو ڪري وٺ، ڇو ته اڄ ڪلهه تون ڏکين حالتن کي منهن ڏئي رهيو آهين.“ هن هڏي وٺي هڪ چڪ هنيو ۽ پوءِ اڇلائي، تلوار جهلي اڳتي وڌيو ۽ وڙهندي وڙهندي شهيد ٿي ويو.

**جهنڊو الله جي تلوارن مان هڪ تلوار جي هٿ ۾:** - ان مهل بنو عجلان قبيلي جي ثابت بن ارقم رضي الله عنه نالي هڪ اصحابيءَ جهٽ هڻي جهنڊو کنيو ۽ چيو ته: مسلمانو! پاڻ مان ڪنهن کي سپهه سالار ٺاهيو. اصحابي سڳورن رضي الله عنهم چيو ته: توهان ئي اهو ڪم ڪريو. هن چيو ته: مون کان اهو ڪم زور آهي. تنهن تي اصحابي سڳورن رضي الله عنهم، حضرت خالد بن وليد رضي الله عنه کي چونڊيو ۽ ان جهنڊو کڻندي ئي ڇٽي ويڙهه شروع ڪري ڏني. جيئن صحيح بخاريءَ ۾ خالد بن وليد رضي الله عنه جي زباني آيل آهي ته موته واري جنگ جي ڏينهن منهنجي هٿ جون نوَ تلوارون ٽٽيون هيون. پڇاڙيءَ ۾ مون وٽ رڳو هڪ يميني بانا (ننڍڙي تلوار) وڃي بچي. (1) هڪ ٻي روايت ۾ سندن بيان هن طرح آيل آهي ته منهنجي هٿان موته واري جنگ جي ڏينهن نوَ تلوارون ٽٽي ويون ۽ هڪ يميني بانا منهنجي هٿ ۾ چنبڙي پئي. (2)

هوڏانهن پاڻ سڳورن صلوات الله عليه، موته واري جنگ جي ڏينهن بنا ڪنهن خبر پهچڻ جي وحيءَ وسيلي ٻڌايو ته جهنڊو زيد رضي الله عنه کنيو ۽ اهو شهيد ٿي ويو. پوءِ جعفر رضي الله عنه کنيو اهو به شهيد ٿي ويو. پوءِ ابن رواحه رضي الله عنه کنيو اهو به شهيد ٿي ويو. (اوڏي مهل پاڻ سڳورن صلوات الله عليه جون اکيون لڙڪ وهائي رهيون هيون.) نيٺ جهنڊو الله جي تلوارن مان هڪ تلوار جهليو (۽ اهڙي جنگ ڪئي جو) الله ان کي سوڀارو ڪيو.

**جنگ جي پڇاڙيءَ:** - ڏاڍي دليري ۽ بهادري سان وڙهڻ کانپوءِ به مسلمانن جي ننڍڙي لشڪر جو رومين جي هيڏي وڏي سمنڊ آڏو پير ڄمائي بيهڻ اڻ ٿيڻي ڳالهه هئي، تنهنڪري هن نازڪ مرحلي ۾ حضرت خالد بن وليد رضي الله عنه مسلمانن کي هن گند مان ڪڍڻ لاءِ پنهنجي مهارت ۽ حد کان وڌيڪ هنرمنديءَ جو مظاهرو ڪيو.

1 - صحيح بخاري (611/2).

2 - صحيح بخاري (611/2).

هن جهڙپ جي پڄاڻيءَ بابت روايتن ۾ ڏاڍو اختلاف آهي. سڀني روايتن تي نظر وجهڻ کانپوءِ اها ڳالهه سمجهه ۾ اچي ٿي ته جنگ جي پهرئين ڏينهن حضرت خالد رضي الله عنه سڄو ڏينهن رومين سان مهاڏو اٽڪائي بيٺو رهيو پر پاڻ ڪنهن اهڙي جنگي چال جي گهرج محسوس ڪري رهيو هو. جنهن سان رومين کي ايترو ڊيڄاري ڇڏجي جو مسلمان ڪاميابيءَ سان پٺيان هڻي وڃن ۽ هو پٺيان لڳڻ جي همت به نه ڪري سگهن. حضرت خالد رضي الله عنه ڄاتو ٿي ته جيڪڏهن مسلمانن پويان پير ڪيا ۽ رومي سندن پويان لڳا ته مسلمانن لاءِ سندن چنبي مان نڪرڻ ڏاڍو ڏکيو ٿي پوندو.

پوءِ جڏهن ٻيو ڏينهن ٿيو ته حضرت خالد رضي الله عنه لشڪر ۾ ڦيرڦار ڪري نئي ترتيب جوڙي، مقدمي کي ساقه ۽ ميمنه کي ميسره ۽ ميسره کي ميمنه جي جڳهه تي رکيائون. اها حالت ڏسي دشمن ڇرڪي ويو ۽ چوڻ لڳو ته انهن کي مدد پهچي وئي آهي. مطلب ته رومين کي شروع کان ئي ڊپ ورائي ويو. پوءِ جڏهن ٻئي لشڪر آمهون سامهون ٿيا ۽ توري جهڙپ ٿي چڪي ته حضرت خالد رضي الله عنه لشڪر ۾ افراتفري ڦهلجڻ کان سواءِ مسلمانن کي ٿورو ٿورو پٺيان هٽائڻ شروع ڪيو. پر رومين ان ڊپ کان پيڇو نه ڪيو ته مسلمان دوکو پيا ڏين ۽ ڪنهن ريت ڪين رڻ پٽ ۾ اندر وٺي وڃڻ گهرن ٿا. ان جو نتيجو اهو نڪتو ته دشمن پنهنجي علائقي ۾ موٽي ويا ۽ مسلمانن جي پويان لڳڻ جو خيال به دل ۾ نه آندائون. هوڏانهن مسلمان ڪاميابيءَ ۽ سلامتيءَ سان پنٿي هٽيا ۽ مديني موٽي آيا. <sup>(1)</sup>

**پنهنجي ڌرين جا مارجي ويل:-** هن جنگ ۾ ٻارنهن مسلمان شهيد ٿيا. رومين جي مئلن جي خبر ڪانه پئجي سگهي، باقي جنگ جي تفصيل مان پتو پوي ٿو ته انهن جو چڱو خاصو تعداد مارجي ويو هو. اندازو لڳائي سگهجي ٿو ته جڏهن اڪيلي حضرت خالد رضي الله عنه جن جي هٿن ۾ نوَ تلوارون ٿيون هيون ته اهڙيءَ صورت ۾ مئلن ۽ گهايلن جو تعداد ڪيترو ٿيو هوندو.

**هن جهڙپ جو اثر:-** هن جهڙپ جون سختيون جنهن پلاند وٺڻ لاءِ سٺيون ويون هيون، جيتوڻيڪ مسلمان اهو پلاند نه وٺي سگهيا پر هن جهڙپ جي ڪري مسلمانن جي شهرت ۽ ساڪ کي چار چنڊ لڳي ويا. سڄي عربستان کي ڏندين آڱريون اچي ويون، ڇو ته رومين کي هن ڌرتيءَ جي سڀ کان وڏي طاقت سمجهيو ويندو هو. عرب سمجهندا هئا ته انهن سان مهاڏو اٽڪائڻ خودڪشي ڪرڻ جي برابر آهي، ان ڪري تن هزارن جي معمولي لشڪر جو ٻن لکن جي وڏي لشڪر سان ٽڪرائڻ کانپوءِ ڪو وڏو نقصان سهڻ کان سواءِ موٽي اچڻ، ڪنهن اڻ ٿيڻي ۽ وانگر ٿي هو. ان سان اها حقيقت به پڌري ٿي پئي ته عرب اڄ تائين جن ماڻهن کي ڄاڻندا سڃاڻندا هئا مسلمان انهن سڀني کان الڳ آهن. اهي الله پاران تائيد ڪيل ۽ سوڀارا ڪيل آهن ۽ سندن اڳواڻ سچ پيچ الله جو رسول آهي. ان ڪري اسين ڏسون

<sup>1</sup> - فتح الباري (513/7، 514) - زاد المعاد (156/2).



تا ته اهي ضدي قبيلن جيڪي مسلمانن سان لاڳيتو وڙهي رهيا هئا، هن جهڙپ کانپوءِ اسلام ڏانهن جهڪي ويا. جهڙوڪ بنو سليم، اشجع، ذبيان، غطفان ۽ فزاره وغيره قبيلن اسلام قبولي ورتو.

اها ئي جهڙپ آهي، جنهن سان رومين سان خوني ٽڪراءَ جي شروعات ٿي، جيڪو اڳتي هلي رومي ملڪن کي فتح ڪرڻ ۽ ڏورانهن علائقن تي اسلامي راڄ قائم ٿيڻ جو سبب بڻيو.

**ذات السلاسل وارو سريو:-** جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ کي موته واري جهڙپ دوران شام ۾ مشارف منجهه رهندڙ عرب قبيلن بابت پتو پيو ته اهي مسلمانن سان وڙهڻ لاءِ رومين جي جهنڊي هيٺ گڏ ٿي ويا هئا ته پاڻ سڳورن ﷺ کي اهڙي حڪمت عملي جوڙڻ جي گهرج محسوس ٿي، جنهن سان هڪ پاسي ته انهن عرب قبيلن ۽ رومين ۾ ويڇو وجهي ڇڏجي ۽ ٻئي پاسي خود مسلمانن سان ئي سندن دوستي ٿي وڃي ته جيئن ٻيهر ان علائقي ۾ مسلمانن جي خلاف ايڏو وڏو ميڙ گڏ نه ٿي سگهي.

ان مقصد لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عمرو بن عاص رضي الله عنه کي چونڊيو، ڇاڪاڻ ته سندن ڏاڏي "بلي" قبيلي جي هئي. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ موته واري جنگ کان جلد پوءِ يعني جمادي الآخر 8 هه ۾ ساڻن دوستيءَ جو ناتو وڌائڻ لاءِ حضرت عمرو بن عاص رضي الله عنه کي انهن ڏانهن موڪليو. چيو وڃي ٿو ته خابرن اهو ڄاڻ به ڏنو هو ته بنو قضاء، مديني جي پرياسي تي ڪاهڻ لاءِ فوج گڏ ڪري رهي آهي، تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عمرو بن عاص رضي الله عنه کي ان پاسي موڪليو. ٿي سگهي ٿو ته ٻئي سبب گڏ ڪيا ويا هجن.

مطلب ته پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عمرو بن عاص رضي الله عنه لاءِ هڪ اچو جهنڊو تيار ڪيو ۽ ان سان گڏ ڪاريون جهنڊيون به ڏنيون ۽ سندن هٿ هيٺ تي سو وڏن وڏن مهاجر ۽ انصاري صحابن جو جتو ڏئي کين روانو ڪيو. انهن وٽ تيهه گهوڙا به هئا. پاڻ سڳورن ﷺ حڪم ڏنو ته بلي ۽ عذره ۽ بلقين قبيلن جي جن به ماڻهن وٽان لنگهو کائڻ مدد گهرو. اهي رات جو سفر ڪندا هئا ۽ ڏينهن جو لڪي ويندا هئا. جڏهن دشمنن جي ويجهو پهتا ته خبر پيڻ ته انهن جو وڏو ميڙو لڳو پيو آهي. ان ڪري حضرت عمرو رضي الله عنه، حضرت رافع بن مڪيث جهني رضي الله عنه کي مدد وٺڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن موڪليو. پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت ابو عبيدة بن جراح رضي الله عنه کي جهنڊو ڏئي ٻه سو چئن جو جتو موڪليو. جنهن ۾ وڏا وڏا اصحابي سڳورا جهڙوڪ حضرت ابوبڪر ۽ عمر رضي الله عنه ۽ انصارين جا مک اڳواڻ به هئا. حضرت ابو عبيدة رضي الله عنه کي حڪم ڪيو ويو ته عمرو بن عاص رضي الله عنه سان وڃي ملن ۽ ٻئي گڏجي ڪم ڪن ۽ اختلاف نه ڪن. اتي پهچڻ کانپوءِ (هڪ ڀيري نماز ۾) حضرت ابو عبيدة رضي الله عنه امامت ڪرڻ گهري تنهن تي حضرت عمرو رضي الله عنه چيو ته: "توهان مون وٽ مدد ڏيڻ لاءِ

آيا آهيو امير آئون آهيان." ابو عبيدة رضي الله عنه سندن ڳالهه مڃي ۽ نماز حضرت عمرو رضي الله عنه ئي پڙهائيندو رهيو.

مدد پهچڻ کانپوءِ هيءُ لشڪر وڌيڪ اڳتي وڌي قضاء جي علائقي ۾ گهڙي ويو ۽ ان علائقي کي لتاڙيندي علائقي جي پٺئين پاسي وڃي نڪتو جتي هڪ لشڪر سندن سامهون اچي ويو پر جڏهن ان تي مسلمانن حملو ڪيو ته ماڻهو هيڏانهن هوڏانهن ڇڙوڇڙ ٿي پڇي ويا. ان کانپوءِ عوف بن مالڪ اشجعي رضي الله عنه کي قاصد ڪري پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ موڪليو ويو. جنهن اچي مسلمانن جي خير خبر ڏني ۽ جنگ جو تفصيل ٻڌايو.

ذات السلاسل (پهرين سين کي زبر يا پيش، ٻنهي سان پڙهڻ صحيح آهي.) وادي القريٰ کان اڳيان هڪ علائقي جو نالو آهي. هتان کان مدينو ڏهن ڏينهن جي پنڌ تي آهي. ابن اسحاق رضي الله عنه جو بيان آهي ته مسلمان، جذام قبيلي جي علائقي ۾ وهندڙ سلسل نالي هڪ چشمي وٽ لٿا هئا. ان ڪري هن مهر جو نالو ذات السلاسل پئجي ويو. (1)

خضره وارو سريو (شعبان 8 هـ): - هن سريي جو ڪارڻ اهو هو ته نجد ۾ محارب قبيلي جي علائقي ۾ خضره نالي هڪ جڳهه تي بنو غطفان وارا لشڪر گڏ ڪري رهيا هئا، تنهنڪري کين سيڪت ڏيڻ لاءِ پاڻ سڳورن عليه السلام، حضرت ابوقتادة رضي الله عنه کي پنڌنهن ڄڻا ڏئي موڪليو. انهن دشمنن جي گهڻن ئي ماڻهن کي ماريو پڪڙيو ۽ غنيمت جو مال هٿ ڪيو. ان مهر ۾ اهي پنڌنهن ڏينهن مديني کان ٻاهر رهيا. (2)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/623 \_ 626) - زاد المعاد (2/157).

<sup>2</sup> - رحمة للعالمين (2/233) - تليح الفهوم (ص:33).

## مڪي جي فتح

امام ابن قير لکي ٿو هيءَ اها وڏي سوپ آهي، جنهن سان الله تعاليٰ پنهنجي دين، پنهنجي رسول، پنهنجي لشڪر ۽ پنهنجي امانتدار گروهه کي عزت بخشي ۽ پنهنجي شهر ۽ پنهنجي گهر کي جنهن کي دنيا وارن لاءِ هدايت جو سرچشمو ڪيو اٿس، مشرڪن ۽ ڪافرن کان آجو ڪرايو. هيءَ سوپ ماڻڻ سان آسمان جا رهاڪو به تڙي پيا. هن سوپ جي ڪارڻ ئي ماڻهو الله جي دين ۾ بي حساب داخل ٿي پيا ۽ ڌرتي جو چهرو سهائي ۽ سوجهري جا چمڪاڻ ڪرڻ لڳو. (1)

**مڪي تي چڙهائيءَ جو ڪارڻ:** - حديبيه واري ٺاهه جي سلسلي ۾ اسين ٻڌائي آيا آهيون ته هن ٺاهه جو هڪ نقطو اهو به هو ته جيڪو به محمد ﷺ جو حليف ٿيڻ چاهيندو ٿي ويندو ۽ جيڪو به قريشن جو حليف ٿيڻ چاهيندو اهو ته انهن جو ٿيندو ۽ جيڪو قبيلو جنهن ڌر سان گڏبو ان منجهان ئي ليکيو ويندو، تنهنڪري اهڙي ڪنهن به قبيلي تي جيڪڏهن حملو يا ڪا جڻ ڪئي ويندي ته اهو ان ڌر تي حملو يا جڻ سمجهي ويندي.

هن شرط مطابق بنو خزاعه پاڻ سڳورن ﷺ جا حليف ٿيا ۽ بنو بڪر وارا قريشن جا اهڙيءَ طرح ٻئي قبيلو هڪٻئي کان محفوظ ۽ بي خوف ٿي ويا، پر جيئن ته انهن ٻنهي قبيلن ۾ جاهليت جي ڏينهن کان دشمني ۽ جهڳڙو هلندڙ هو، ان ڪري اسلام اتي پهتو ۽ حديبيه واري ٺاهه کانپوءِ جڏهن ٻنهي ڌرين سک جو ساهه ڪنيو ته بنو بڪر وارن وجهه وٺي، بنو خزاعه کان پراڻو پلاند ڪرڻ چاهيو ۽ نوفل بن معاويه ديبيءَ، بنوبڪر جي هڪ ٽولي سان، شعبان 8 هه ۾ بنو خزاعه تي رات جي اوندھ ۾ حملو ڪيو. ان مهل بنو خزاعه، وتير نالي هڪ چشمي وٽ لٿل هئا. سندن گهڻا ماڻهو مارجي ويا. ڪجهه جهڙپون ۽ ويڙهه به ٿي. هوڏانهن قريشن نه صرف هن حملي ۾ بنو بڪر کي هٿيارن جي مدد ڏني، پر سندن ڪجهه ماڻهو رات جي اوندھ جو فائدو وٺي ويڙهه ۾ شامل به ٿيا. بهرحال حملو ڪندڙ بنو خزاعه کي ڏکي حرم تائين وٺي آيا. حرم ۾ پهچي بنو بڪر وارن چيو ته: "اي نوفل! هاڻي اسين حرم ۾ گهڙي آيا آهيون. تنهنجو الهه تنهنجو الهه... (يعني توکي تنهنجي الله جو واسطو آهي) ان تي نوفل وراڻيءَ ۾ هڪ وڏي ڳالهه چئي ته: "بنو بڪر! اڄ ڪوبه الهه ڪونهي، پنهنجو پلاند پورو ڪريو. منهنجي سر جو قسم! توهان جيڪڏهن حرم ۾ چوري ڪري سگهو ٿا ته ڇا حرم ۾ پنهنجو پلاند نٿا وٺي سگهو!"

<sup>1</sup> - زاد المعاد (2/160).

هوڏانهن بنو خزاعه، مڪي پهچي بديل بن ورقاءَ خزاعي ۽ پنهنجي هڪ آزاد ڪيل غلام رافع جي گهرن ۾ پناهه ورتي ۽ عمرو بن سالم خزاعي اتان نڪري جلد مديني روانو ٿيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي سامهون بيهي رهيو. ان مهل پاڻ سڳورا ﷺ مسجد نبويءَ ۾ اصحابي سڳورن جي وچ ۾ ويٺا هئا. عمرو بن سالم چيو ته:

يَا رَبِّ إِنِّي نَاشِدُ مُحَمَّدًا      حَلْفَ آبِينَا وَأَبِيهِ الْأَثَلَدَا  
 قَدْ كُنْتُمْ وُلْدًا وَكُنَّا وَالِدًا      ثَمَّةَ أَسْلَمْنَا فَلَمْ نَنْزِعْ يَدَا  
 فَأَنْصُرْ هَذَاكَ اللَّهُ نَصْرًا أَيْدَا      وَادْعُ عِبَادَ اللَّهِ يَأْتُوا مَدَدَا  
 فِيهِمْ رَسُولُ اللَّهِ قَدْ تَجَرَّدَا      أَبْيَضَ مِثْلَ الْبَدْرِ يَسْمُو صُعَدَا  
 إِنَّ سَيْمَ حَسَفًا وَجْهَهُ تَرَبَّدَا      فِي فَيْلِقِ كَالْبَحْرِ يَجْرِي مُزِيدَا  
 إِنَّ قُرَيْشًا أَخْلَفُواكَ الْمَوْعَدَا      وَنَقَضُوا مِيثَاقَكَ الْمَوْكَدَا  
 وَجَعَلُوا لِي فِي كِدَاءٍ رُصَدَا      وَزَعَمُوا أَنْ لَسْتُ أَدْعُو أَحَدَا  
 وَهُمْ أَذَلُّ وَأَقَلُّ عَدَدَا      هُمْ يَبْتُونَا بِالْوَتِيرِ هُجَدَا  
 وَقَتَلُونَا رُكْعًا وَسُجْدَا

" اي پالڻهار! آئون محمد ﷺ آڏو سندن عهد ۽ سندن والد جي پراڻي عهد جي فرياد ڪريان ٿو. توهان اولاد هئا ۽ اسين جڻڻ وارا، پوءِ اسان توهان جي تابعداري اختيار ڪئي ۽ ڪڏهن به هٿ نه روڪيا الله تعاليٰ توهان کي هدايت ڏي، توهان اسان جي ڀرپور مدد ڪيو ۽ الله جي بانهن کي به سڏيو ته اهي به مدد لاءِ ايندا. انهن ۾ الله جو رسول ﷺ چوڏهينءَ جي چنڊ وانگر نروار هوندو. جيڪڏهن انهن تي ظلم ڪيو وڃي ۽ انهن جي توهين ڪئي وڃي ته سندن منهن ٽامڻي ٿيو وڃي. پاڻ ﷺ هڪ اهڙي لشڪر سان نروار ٿيندا، جيڪو سمنڊ وانگر چوليون هڻي رهيو هوندو. بيشڪ قريشن ناهه جي خلاف ورزي ڪئي آهي ۽ توهان جو هڪ مضبوط ناهه ٿوڙيو آهي. اهي مون لاءِ ڪڏهن به گهات هڻي وينا ۽ سمجهيائون ته آئون ڪنهن کي مدد لاءِ نه سڏي سگهندس اهي وڏا ڪميٽيا ۽ تعداد ۾ گهٽ آهن. انهن وٽير تي رات وچ ۾ حملو ڪيو ۽ اسان کي رکوع ۽ سجدي جي حالت ۾ قتل ڪيو. (يعني اسين مسلمان هئاسين ان ڪري اسان کي ماريو ويو)."

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اي عمرو بن سالم تنهنجي مدد ڪئي وئي. ان کانپوءِ آسمان تي هڪڙو ڪڪر جو ٽڪرو ڏسڻ ۾ آيو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هي ڪڪر بنو ڪعب جي مدد جي بشارت ڏئي رهيو آهي."

ان کانپوءِ بديل بن ورقاء خزاعيءَ جي اڳواڻيءَ ۾ بنو خزاعه جو هڪ ميٽر مديني ۾ پهتو. انهن پاڻ سڳورن ﷺ کي ٻڌايو ته ڪهڙا ڪهڙا ماڻهو مارجي ويا ۽ ڪهڙيءَ طرح قريشن، بنو بڪر جي مدد ڪئي هئي. ان کانپوءِ اهي مڪي موٽي ويا.

ناھ جي تجديد لاءِ ابوسفیان مديني ۾:- ان ۾ شڪ ڪونهي ته قريشن ۽ سندن حليفن جيڪي ڪجهه ڪيو، اها سنئين سڌي دوکي بازي هئي. قريشن کي به جلد ئي پنهنجي بدعهديءَ جو احساس ٿي ويو ۽ انهن حالتن جي سنگينيءَ کي ڏسندي صلاح مشوري لاءِ گڏجاڻي ڪونائي. جنهن ۾ طئه ڪيو ويو ته اهي پنهنجي سالار ابوسفیان کي پنهنجو عيوضي ڪري ٺاهه جي تجديد لاءِ مديني موڪليندا.

ٻئي پاسي پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن کي ٻڌايو ته قريش پنهنجي بدعهديءَ کانپوءِ هاڻي ڇا ڪرڻ وارا آهن. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ڇڻ ته آئون ابوسفیان کي پيو ڏسان ته اهو ٻيهر ٺاهه کي پڪو ڪرڻ ۽ ٺاهه جو مدو وڌائڻ لاءِ اچي ويو آهي."

ٻئي پاسي ابوسفیان رتا مطابق روانو ٿي عسفان پهتو ته بديل بن ورقاءَ سان ملاقات ٿيس. بديل، مديني کان مڪي واپس پئي آيو. ابوسفیان سمجهي ويو ته هو پاڻ سڳورن ﷺ وٽان پيو اچي. پڇيائين ته بديل! ڪٿان پيو اچين؟ بديل چيو ته آئون خزاعه وارن سان گڏ ٻئي ڀيري واري واديءَ ۾ ويو هوس. پڇيائين ته ڇا تون محمد ﷺ وٽ نه ويو هئين؟ بديل چيو ته "نه"

پر جڏهن بديل مڪي ڏانهن روانو ٿيو ته ابوسفیان چيو ته: جي هو مديني ويو هوندو ته اتي (پنهنجي اٺن کي) ڪجيءَ جون ڪڪڙيون ڪارايون هوندايئن. ان ڪري ابوسفیان ان جڳهه تي ويو، جتي بديل پنهنجو اٺ ويهاريو هو ۽ ان جو ليڏو پڇي ڏنائين ته ان ۾ ڪجيءَ جي ڪڪڙي ڏسڻ ۾ آيس. ابوسفیان چيو ته "آئون الله جو قسم ڪئي چوان ٿو ته بديل، محمد ﷺ وٽ ويو هو."

بهرحال ابوسفیان مديني پهتو ۽ پنهنجي نياڻي ام المؤمنين بيبي ام حبيبہ رضي الله عنها جي گهر ويو. جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي هنڌ تي ويهڻ چاهيائين ته بيبي سڳوريءَ هنڌ ويڙهي ڇڏيو. ابوسفیان چيو ته "ڏيءَ! تون هن هنڌ کي منهنجي لائق نٿي سمجهين يا مون کي هن هنڌ جي لائق نٿي سمجهين؟" ان فرمايو ته "هي الله جي رسول ﷺ جو بستر آهي ۽ توهان ناپاڪ مشرڪ آهيو." ابوسفیان چيو ته "الله جو قسم! تو ڀر اها ڏنگائي، مون کان ڌار ٿيڻ کانپوءِ آئي آهي."

پوءِ ابوسفیان اتان نڪري پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو ۽ ساڻن ڳالهه بول ڪرڻ چاهيائين. پاڻ سڳورن ﷺ کيس ڪابه ورندي ڪانه ڏني. ان کانپوءِ حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ وٽ ويو ۽ ان کي چيائين ته هو پاڻ سڳورن ﷺ سان ڳالهائي. ان ورائيو ته "آئون ائين نٿو ڪري سگهان." ان کانپوءِ حضرت

عمر رضي الله عنه جن وٽ پهتو ۽ ساڻن ڳالهائين. انهن جواب ڏنو ته: "آئون توهان جهڙن ماڻهن لاءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي سفارش ڪندس! الله جو قسم! ته جيڪڏهن مون وٽ هڪ لکڻ کانسواءِ ڪجهه به نه هجي ته آئون ان سان ئي توهان جهڙن ماڻهن سان جهاد ڪريان. ان کانپوءِ هو حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه وٽ پڳو. اتي بيبي فاطمه رضي الله عنها به ويٺل هئي ۽ امام حسن رضي الله عنه به، جيڪو اڃا ننڍڙو ٻار هو ۽ ريڙهيون پائي هلي رهيو هو. ابوسفيان چيو ته "اي علي رضي الله عنه! منهنجو توسان سڀني کان ويجھو نسبي لاڳاپو آهي. آئون هڪڙي ڪم سان آيو آهيان. ائين نه ٿئي ته جيئن خالي هٿين آيو هوس، تيئن ئي خالي هٿين وڃڻو پوي. تون مون لاءِ محمد صلى الله عليه وسلم کي سفارش ڪر." حضرت علي رضي الله عنه فرمايو ته "ابوسفيان! مون کي توتي ڏاڍو ڏک پيو ٿئي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم هڪ ڳالهه جو پڪو پيه ڪري ڇڏيو آهي. اسين هاڻي ان باري ۾ ساڻن ڪابه ڳالهه نٿا ڪري سگهون." ان کانپوءِ هن بيبي فاطمه رضي الله عنها ڏي منهن ڪري چيو ته "ڇا توهان ائين ڪري سگهو ٿيون جو پنهنجي هن پٽ کي حڪم ڪريو ته هيءُ ماڻهن جي وچ ۾ پناهه ڏيڻ جو اعلان ڪري سڏائين لاءِ عربن جو سردار ٿي وڃي؟ بيبي سڳوري رضي الله عنها فرمايو ته "والله! منهنجو پٽ اڃا ايڏو ڪونه ٿيو آهي جو ماڻهن کي پناهه ڏيندو وٽي. هونئن به رسول الله صلى الله عليه وسلم جي هوندي پيو ڪو پناهه ڏئي به نٿو سگهي."

سفارتي ڪوششون ناڪام ٿيڻ تي ابوسفيان جي اکين آڏو اوندھ ڇانئجي وئي. هن حضرت علي رضي الله عنه کي گهٻراهت، بي چيني ۽ مايوسيءَ جي حالت ۾ چيو ته: "ابوالحسن! آئون ڏسان پيو ته ڳالهه ڳري ٿي وئي آهي، تنهنڪري مون کي ڪا واٽ ڏس." علي رضي الله عنه چيو ته: "الله جو قسم! آئون تنهنجي لاءِ ڪجهه به نٿو ڪري سگهان. باقي تون به بنو ڪنانه جو سردار آهين، تنهنڪري تون پاڻ ماڻهن جي وچ ۾ بيهي امان جو اعلان ڪري ڇڏ. ان کانپوءِ پنهنجي شهر موٽي وڃ." ابوسفيان چيو ته: "ڇا تنهنجي خيال ۾ اهو مون لاءِ صحيح ٿيندو؟" علي رضي الله عنه فرمايو ته "نه" آئون ان کي ڪارآمد ته نٿو سمجهان، پر ان کانسواءِ ٻيو ڪو چارو به ته نٿو ڏسڻ ۾ اچي. ان کانپوءِ ابوسفيان مسجد ۾ بيهي اعلان ڪيو ته "آئون توهان جي آڏو امان جو اعلان ڪريان ٿو." پوءِ پنهنجي اٺ تي چڙهي مڪي ويو هليو.

قريشن وٽ پهتو ته انهن خبردار پڇيس. ابوسفيان چيو ته "آئون محمد صلى الله عليه وسلم وٽ ويس، ڳالهائيمانس ته هن ڪابه ورندي ڪانه ڏني. پوءِ ابو قحافه جي پٽ وٽ ويس ته ان مان به چڱائيءَ ڪانه پانير. ان کانپوءِ عمر بن خطاب رضي الله عنه وٽ ويس ته کيس پنهنجو ڪتر دشمن ڏٺم. پوءِ علي رضي الله عنه وٽ ويس ته اهو مڙئي نرم لڳو. هن مون کي هڪ صلاح ڏني ۽ مون ان تي عمل به ڪيو. نه ڄاڻ اها

ڪارآمد به آهي يا نه؟" ماڻهن پڇيس ته اها ڪهڙي طرح هئي؟ ابوسفیان چيو ته "اها صلاح اها هئي ته آئون ماڻهن جي وچ ۾ بيهي امان جو اعلان ڪريان ۽ مون ائين ئي ڪيو." قريشن چيو ته: "پوءِ محمد ﷺ ان کي لاڳو ڪري ورتو؟" ابوسفیان چيو ته: "نه". ماڻهن چيس ته "ناس تئين، هن (علي رضی اللہ عنہ) توسان مذاق ڪيو هو." ابوسفیان چيو ته "الله جو قسم ان کانسواءِ ٻيو ڪو چارو به ڪونه هو."

**جنگ جون گجهيون تياريون:-** طبرانيءَ جي روايت مان پتو پوي ٿو ته پاڻ سڳورن ﷺ دوڪي بازيءَ جي خبر پهچڻ کان تي ڏينهن اڳي ئي بيبي عائشه رضي الله عنها کي حڪم ڏنو هو ته پاڻ سڳورن ﷺ جو سامان تيار ڪيو وڃي، پر ڪنهن کي به خبر نه پوي. ان کانپوءِ بيبي عائشه رضي الله عنها وٽ حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ آيو ته پڇيائين ته ڏي؟! ڇا جي پئي تيار ٿي؟ انهن ورائيو ته: "والله! آئون نٿي ڄاڻان." حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ چيو ته "هي وقت بنو اصراف يعني رومين سان وڙهڻ جو ڪونهي پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جو ارادو ڪهڙي پاسي وڃڻ جو آهي؟" بيبي عائشه رضي الله عنها ورائيو ته والله! آئون نٿي ڄاڻان. تئين ڏينهن عمرو بن سالم خزاعي چاليهه سوار وٺي آيو ۽ يا رَبِّ اِنِّي نَاشِدٌ مُحَمَّدًا... الخ وارا شعر پڙهيائين ته ماڻهن کي پتو پئجي ويو ته قريشن دوڪي بازي ڪئي آهي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جنگ لاءِ سنبرڻ جو حڪم ڪندي چيو ته مڪي هلڻو آهي ۽ گڏوگڏ دعا به گهريائون ته اي الله! خبرن ۽ خبرن کي قريشن تائين پهچڻ کان روڪ ته جيئن اسين ان علائقي ۾ سندن مٿان اوچتو وڃي ڪڙڪون.

پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ڳالهه لڪائڻ لاءِ رمضان 8 هه جي شروع ۾ حضرت ابوقتادة بن ربيعي رضی اللہ عنہ جي اڳواڻيءَ ۾ اٺن ماڻهن تي ٻڌل هڪ سريو بطن اضر ڏانهن موڪليو. اها جڳهه، ذي خشب ۽ ذي المروة جي وچ ۾ مديني کان اٽڪل چئتيهه ميل پري آهي. مقصد اهو هو ته سمجهڻ وارا سمجهن ته پاڻ سڳورا ﷺ ان ئي علائقي ڏانهن ويندا ۽ اهڙا ئي افواهه ڦهلجي به ويا پر جڏهن هيءُ سريو پنهنجي رٿيل جڳهه تي پهتو ته کين خبر ملي ته پاڻ سڳورا ﷺ مڪي ڏانهن روانا ٿي چڪا آهن. تنهن تي اهي به وڃي ساڻن مليا. (1)

<sup>1</sup> - اهو ئي سريو آهي، جنهن ۾ محلم بن جثامه جي ملاقات عامر بن اضيظ سان ٿي ته عامل ڪيس سلام ڪيو، پر محلم بن جثامه ڪنهن پراڻي رنجش ڪارڻ کين ماري وڌو ۽ سندن اٺ ۽ سامان تي قبضو ڪري ورتو. تنهن تي اها آيت لٿي ته: ﴿وَلَا تَقُولُوا لِمَنْ أَلْفَىٰ إِلَيْكُمُ السَّلَامَ لَسْتَ مُؤْمِنًا﴾ (النساء) "جيڪو توهان کي سلام ڪري، ان کي نه چئو ته تون مومن ناهين." ان کانپوءِ صحابه سڳورا رضي الله عنهم، محلم کي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ وٺي آيا ته جيئن پاڻ سڳورا ﷺ ان لاءِ چوٽڪاري جي دعا ڪن پر جڏهن محلم، پاڻ سڳورن ﷺ آڏو پهتو ته پاڻ سڳورن ﷺ تي پيرا فرمايو ته: "اي الله! محلم کي نه بخشجان، ان کانپوءِ محلم ڪپڙي جي پلٽ سان لڙڪ اڳهندي اٿيو. ابن اسحاق جو بيان آهي ته سندس قوم وارا چون ٿا ته پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ سندس لاءِ چوٽڪاري جي دعا گهري هئي. ڏسو زاد المعاد (2/150) - ابن هشام (2/626، 627، 628).

هوڏانهن حاطب بن ابي بلتعہ رضي الله عنه جن، قريشن کي هڪ چني لکي ڄاڻ ڏنو ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم حملو ڪرڻ وارا آهن. انهن اها چني هڪ مائيءَ کي ڏني ۽ ان کي قريشن تائين پهچائڻ جو اجورو ڏنو. عورت، مٿي جي چوٽيءَ ۾ چني لڪائي نڪتي. پر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي وحيءَ ذريعي حاطب رضي الله عنه جي ان حرڪت جي خبر ڏني وئي. تنهن تي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم، حضرت علي رضي الله عنه، حضرت مقداد رضي الله عنه، حضرت زبير رضي الله عنه ۽ ابو مرثد غنوي رضي الله عنه کي اهو چئي موڪليو ته "وڃو، روضه خاڪ پهچو. اتي هڪ هودج نشين عورت ملندي. جنهن وٽ قريشن لاءِ هڪ چني هوندي." اهي سڳورا گهوڙن تي چڙهي جلد نڪتا. اتي پهتا ته عورت اتي ملين. تنهن کي هيٺ لهڻ جو چيائون ۽ پڇيائون ته "تو وٽ ڪو خط آهي ڇا؟" هن چيو ته "مون وٽ ڪوبه خط ڪونهي." انهن سڄي ڪجاوي ۾ گولهيو پر ڪجهه ڪونه هٿ آيو. تنهن تي حضرت علي رضي الله عنه کيس چيو ته "آئون الله جو قسم! ڪٿي ٿو چوان ته نه ڪو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ڪوڙ ڳالهائيو آهي ۽ نه ئي اسين ڪوڙ ڳالهائي رهيا آهيون. هاڻي يا ته تون خط ڪڍي ڏي يا وري اسين ٿا تنهنجي جهڙي ونون." جڏهن هن سندن ارادو پڪو ڏنو ته چيائين ته: "چڱو ڀلا منهن ٻئي پاسي ڪريو." انهن، منهن ٻئي پاسي ڪيو ته هن چوٽي کولي خط ڪڍي سندن حوالي ڪيو. اهي خط ڪٿي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ پهتا. ڏٺائون ته ان ۾ لکيل هو ته (حاطب بن ابي بلتعہ پاران قريشن ڏانهن) پوءِ قريشن کي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي نڪرڻ جي ڄاڻ ڏني ويئي هئي.<sup>(1)</sup> واقديءَ پنهنجي هڪ مرسل سند سان روايت ڪئي آهي ته حضرت حاطب رضي الله عنه، سهيل بن عمرو، صفوان بن اميه ۽ عڪرمه ڏانهن اهو لکيو هو ته "پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم، جنگ جو اعلان ڪري ڇڏيو آهي ۽ آئون نٿو سمجهان ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم توهان کانسواءِ ڪنهن ٻئي پاسي جو ارادو ڪيو هجي. آئون چاهيان ٿو ته توهان تي منهنجو احسان هجي."<sup>(2)</sup>

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم حاطب رضي الله عنه کي سڏائي پڇيو ته "حاطب! هيءُ سڀ ڇا آهي؟" هن ورائيو ته يا رسول الله! مون بابت (راءِ قائل ڪرڻ ۾) تڪڙ نه ڪريو. الله جو قسم! الله ۽ ان جي رسول تي منهنجو ايمان (پڪو) آهي. آئون نه ڪو مرتد ٿيو آهيان ۽ نه ئي قريو آهيان. ڳالهه اها آهي ته آئون قريشن منجهان ناهيان، پر ساڻن لاڳاپيل آهيان. منهنجا ٻار ٻچا اتي آهن، پر قريشن سان منهنجي مٿي مائٽي ڪانهي جو اهي منهنجن ٻارن ٻچن جي سار سنڀال ڪن. ان ڪري مون سوچيو ته انهن تي هڪ احسان ڪري ڇڏيان، جنهن جي بدلي ۾ اهي منهنجن مائٽن جي پرگهور لهن. ان تي

<sup>1</sup> - سهيليءَ، ڪن تاريخن جي حوالي سان خط جي هيءَ لکت ڏني آهي ته: "اما بعد! قريشيو! رسول الله صلى الله عليه وسلم توهان ڏانهن بوڏ وانگر وڌندڙ لشڪر ڪاهيو پيا اچن ۽ الله جو قسم! جيڪڏهن اهي اڪيلا به توهان ڏانهن ڪاهيندا ته الله سندن مدد ڪندو ۽ ساڻن ڪيل وعدو پورو ڪندو. تنهنڪري توهان پنهنجي باري ۾ سوچي وٺو. والسلام.

<sup>2</sup> - فتح الباري (521/7)



حضرت عمر رضي الله عنه چيو ته "يا رسول الله! مون کي ڇڏيو ته هن جي سر اڏائي ڇڏيان. چو ته هن الله ۽ ان جي رسول سان خيانت ڪئي آهي ۽ ڪيتيو (منافق) بڻجي ويو آهي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "ڏس! هيءُ بدر واري جنگ ۾ حاضر رهي چڪو آهي ۽ عمر رضي الله عنه! توکي ڪهڙي خبر؟ ٿي سگهي ٿو ته الله تعاليٰ بدر وارن کي (جاچي پرکي پوءِ) چيو هجي ته توهان کي جيڪي وڻي سو ڪريو، مون توهان کي بخشي ڇڏيو." اهو ٻڌي حضرت عمر رضي الله عنه جون اکيون پرچي آيون ۽ فرمايائين ته "الله ۽ سندس رسول ٿي وڌيڪ ڄاڻن ٿا." (1)

اهڙيءَ طرح الله تعاليٰ جاسوسن کي پڪڙائي وڌو ۽ مسلمانن جي جنگي تيارين جي خبر به قريشن کي نه ملي.

اسلامي لشڪر مڪي جي وات تي:- 10 رمضان سن 8 هجري تي پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم مدينو ڇڏي مڪي ڏانهن وڌيا. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سان گڏ ڏهه هزار اصحابي سڳورا رضوان الله عليهم اجمعين هئا. مديني جي واڳ ابو رهم غفاري رضي الله عنه کي ڏني وئي.

جحفه يا ان کان ٿورو اڳتي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو ڇاڇو حضرت عباس رضي الله عنه اچي پهتو. ٻارن ٻچن سان هجرت ڪري آيو هو. وري ابواء ۾ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو سوٽ ابوسفيان بن حارث ۽ پڦات عبدالله بن اميه مليا. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ٻنهي کي ڏسي منهن ڦيري ڇڏيو، ڇو ته اهي ٻئي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي ڏاڍو تنگ ڪندا هئا ۽ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي "هجو" ڪندا هئا. اهو ڏسي حضرت ام سلمه رضي الله عنها چيو ته ڪٿي ائين نه ٿئي جو توهان جو سوٽ ۽ پڦات ٿي سڀ کان وڌيڪ نياڳا نڪرن! ٻئي پاسي حضرت علي رضي الله عنه، ابوسفيان بن حارث کي سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ وڃو ۽ اها ئي ڳالهه ڪريو، جيڪا حضرت يوسف عليه السلام جي ڀائرن ڪئي هئي ته:

﴿تَاللّٰهِ لَقَدْ آتَرَكَ اللّٰهُ عَلَيْنَا وَإِنْ كُنَّا لَخَاطِئِينَ﴾ (91) (يوسف)

"الله جو قسم! بيشڪ الله اوهان کي اسان کان ڀلو ڪيو آهي ۽ بيشڪ اسين خطا ڪندڙ هئاسون." چو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي اها ڳالهه نه وڻندي ته ڪنهن ٻئي جو جواب توهان کان ڀلو هجي. تنهن تي ابوسفيان بن حارث ائين ئي ڪيو، جنهن تي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم هڪدم چيو ته:

﴿لَا تُرِيبَ عَلَيْكُمُ الْيَوْمَ يَغْفِرُ اللّٰهُ لَكُمْ وَهُوَ أَرْحَمُ الرَّاحِمِينَ﴾ (92) (يوسف)

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/422، 2/612). حضرت زبير ۽ حضرت ابو مرثد رضي الله عنهم جي نالن جو واڌارو صحيح بخاريءَ جي ڪن ٻين روايتن ۾ ٿيل آهي.

”اڄ اوهان تي ڪا ميار ڪانهي. الله! اوهان کي بخشيندو ۽ اهو (سڀني) باجهارن کان وڌيڪ باجهارو آهي.“

تنهن تي ابو سفيان بن حارث پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪجهه شعر ٻڌايا، جن مان ڪي هتي ڏجن ٿا.

لَعَمْرُكَ إِنِّي حِينَ أَحْمَلُ رَايَةً لَتَغْلِبَ حَيْلُ اللَّاتِ حَيْلُ مُحَمَّدٍ  
لِكَالْمُدْلِجِ الْحَيْرَانَ أَظْلَمَ لَيْلُهُ فَهَذَا أَوَانِي حِينَ أُهْدَى فَأَهْتَدِي  
هَدَانِي هَادٍ غَيْرُ نَفْسِي وَدَلَنِي عَلَى اللَّهِ مَنْ طَرَدْتُ كُلَّ مُطَرِّدٍ

”تنهنجي ڄمار جو قسم! جنهن وقت مون ان لاءِ جهندو ڪنيو هو ته لات جا شهسوار محمد ﷺ جي شهسوارن تي غالب اچي وڃن ته منهنجي ڪيفيت ان رات جي مسافر جهڙي هئي جيڪو ڪاري اونداهي ۾ حيران ۽ وائڙو هجي. پر هاڻي وقت اچي ويو آهي جو مون کي هدايت ڏني وڃي ۽ آئون هدايت وارو ٿيان. مون کي منهنجي نفس بدران هڪ هاديءَ هدايت ڏني ۽ الله جو رستو ان ماڻهوءَ ٻڌايو جنهن کي مون هر موقعي تي ڏٺڪاريو.“

اهو ٻڌي پاڻ سڳورن ﷺ، سندس ڇاتيءَ تي ڏک هڻي فرمايو ته ”تو مون کي هر موقعي تي ڏٺڪاريو هو.“<sup>(1)</sup>

**مرآلظهران ۾ اسلامي لشڪر جو لهڻ:-** پاڻ سڳورن ﷺ سفر جاري رکيو. پاڻ سڳورا ﷺ ۽ اصحابي سڳورا روزي ۾ هئا پر عسفان ۽ قديد جي وچ ۾ ڪديد نالي چشمي وٽ پهچي پاڻ سڳورن ﷺ روزو توڙي ڇڏيو.<sup>(2)</sup> ۽ ساڻن گڏ اصحابين سڳورن رضي الله عنهم به روزو توڙي ڇڏيو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ وري سفر جاري رکيو. نيٺ رات جي پهرين پهرن ۾ مرآلظهران (فاطمه نالي وادي) پهچي لهي پيا. اتي پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم تي ماڻهن ڌار ڌار باهه ٻاري. اهڙيءَ طرح ڏهه هزار باهه جا مچ ٻاريا ويا. پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عمر رضه کي پھري تي بيهاريو.

**ابوسفیان جو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچڻ:-** مرآلظهران ۾ خيما اڏي ويهڻ کانپوءِ حضرت عباس رضه، پاڻ سڳورن ﷺ جي اچي خچر تي چڙهي نڪتا. مقصد اهو هئڻ ته ڪو ڪاٺير يا ڪو ٻيو

<sup>1</sup> - وقت گذرڻ سان ابوسفیان جي اسلام ۾ خوبي آئي. چيو وڃي ٿو ته اسلام قبول ڪرڻ کانپوءِ شهر کان پاڻ سڳورن ﷺ آڏو ڪنڌ نه ڪنڌا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ به کين چاهيندا هئا ۽ کين جنت جي بشارت ڏيندا هئا ۽ فرمائيندا هئا ته ”مون کي اميد آهي ته هيءَ حمزه رضه جو مت ثابت ٿيندو. جڏهن سندن وفات جو وقت ٿيو ته چوڻ لڳا ته مون لاءِ روئجو نه، ڇو ته اسلام قبول ڪرڻ کانپوءِ مون ڪابه گناهه جهڙي ڳالهه نه ڪئي آهي.“

زاد المعاد (162/2، 163).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (613/2).

ماڻهو ملين ته ان کي قريشن وٽ خبر ڏئي موڪلجي ته جيئن مڪي وارا پاڻ سڳورن ﷺ جي مڪي ۾ گهڙڻ کان اڳ، پاڻ سڳورن وٽ اچي پناهه گهرن.

بئي پاسي الله تعاليٰ، قريشن کان سڀ خبرون روڪي ڇڏيون هيون. ان ڪري کين حالتن جي ڪابه خبر چار نه هئي. اهي ڏاڍا ڊنل هئا ۽ ابو سفيان باهران خبرون آڻڻ جي ڪوشش ڪري رهيو هو. تنهنڪري ان مهل به هو ۽ حڪير بن حزام ۽ بديل بن ورقاء خبر وٺڻ لاءِ ٻاهر نڪتل هئا.

حضرت عباس رضي الله عنه جو بيان آهي ته "آئون پاڻ سڳورن ﷺ جي خچر تي چڙهي وڃي رهيو هوس ته مون ابوسفیان ۽ بديل بن ورقاء کي ڳالهائيندي ٻڌو. اهي پاڻ ۾ ڏي وٺ ڪري رهيا هئا. ابوسفیان پئي چيو ته "الله جو قسم! مون اڄ کان پهرين اهڙي باهه ۽ اهڙو لشڪر ته ڪڏهن به ڪونه ڏٺو" ۽ جواب ۾ بديل چئي رهيو هو ته "الله جو قسم! اهي بنو خزاع آهن، جنگ انهن جا لاه ڪڍي ڇڏيا آهن." تنهن تي ابوسفیان چيو ته "بنو خزاع جي ايتري حيثيت ئي ڪانهي جو اهڙي سندن باهه ۽ سندن لشڪر ٿي سگهي."

حضرت عباس رضي الله عنه جو بيان آهي ته مون سندس آواز سڃاڻي چيو ته "ابو حنظله! هن به منهنجو آواز سڃاتو ۽ چيو ته "ابو الفضل! مون چيو ته "هاڻو." هن چيو ته "ڇا ڳالهه آهي؟ منهنجا ماءُ پيءُ توتان قربان." مون چيو ته "هي رسول الله ﷺ آهن، ماڻهن سميت، هاڻي قريش جي تباهي. واللہ!" هن چيو ته "هاڻي ڇا ڪرڻ گهرجي؟ منهنجا ماءُ پيءُ توتي قربان." مون چيو ته "والله جيڪڏهن هنن توکي ڏنو ته توکي ماري ڇڏيندا، تنهنڪري هن خچر تي ويهه ته آئون توکي رسول الله ﷺ وٽ وٺي هلاڻ ۽ تنهنجي لاءِ پناهه گهري وٺان. تنهن کانپوءِ ابوسفیان بيلهه ٿي وينو ۽ سندس بئي ساڻي موٽي ويا.

حضرت عباس رضي الله عنه جو بيان آهي ته آئون ابوسفیان کي وٺي هليس. جڏهن ڪنهن مڇ وٽان لنگهياسين تي ته ماڻهن هڪل ٿي ڪئي ته: "ڪير آهي؟" پر جڏهن ڏٺائون تي ته پاڻ سڳورن ﷺ جو خچر آهي ۽ آئون ان تي چڙهيل آهيان ته چيائون تي ته رسول الله ﷺ جو چاچو آهي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي خچر تي سوار آهي. "نيٺ اچي عمر رضي الله عنه جي مڇ وٽان لنگهياسين. انهن چيو ڪير آهي" ۽ پوءِ اتي مون ڏانهن وڌيو. جڏهن پٺيان ابوسفیان کي (وينل) ڏٺائين ته چوڻ لڳو ته: "ابوسفیان! الله جو دشمن! واهه مولا واهه! هن بنا ڪنهن عهد پيمان جي توکي (اسان جي) حوالي ڪري ڇڏيو آهي. ان کانپوءِ هو نڪري پاڻ سڳورن ﷺ ڏي پڳو ۽ مون به خچر کي اڙي لڳائي. آئون اڳتي نڪري ويس ۽ خچر تان ٽپو ڏئي پاڻ سڳورن ﷺ (جي خيمي ۾) وڃي گهڙيس. ايتري ۾ عمر بن خطاب رضي الله عنه به گهڙي آيا ۽ چيائون ته: "يا رسول الله! هي ابوسفیان آهي مون کي موڪل ڏيو ته سندس

سر ڪيبي ڇڏيان. " مون چيو ته "يا رسول الله! مون هن کي پناهه ڏني آهي. " پوءِ مون پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ويهي سندن مٿو جهلير ۽ چير ته "الله جو قسم! اڄ رات مون کانسواءِ ڪو ٻيو پاڻ سڳورن ﷺ سان سرگوشي ڪونه ڪندو. جڏهن ابوسفیان بابت حضرت عمر رضی اللہ عنہ هر هر چيو ته مون چيو ته "عمر! تورو ترس! الله جو قسم جيڪڏهن هيءُ بنو عدي بن ڪعب منجهان هجي ها ته تون اهڙي ڳالهه به نه ڪرين ها. " عمر رضی اللہ عنہ چيو ته "عباس! ترس! الله جو قسم! تنهنجو اسلام قبول ٿي منهنجي نظر ۾ خطاب جي اسلام قبول ٿي کان (جيڪڏهن هو قبولي ها ته) وڌيڪ پلو آهي ۽ ان جو ڪارڻ مون لاءِ رڳو اهو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ کي تنهنجو اسلام قبول ٿي، خطاب جي اسلام قبول ٿي کان وڌيڪ وڻندڙ آهي.

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "عباس! هن (ابوسفیان) کي پاڻ سان وٺي وڃي رهه. صبح جو مون وٽ وٺي اچجان. ان حڪم مطابق آئون کيس پاڻ سان وٺي ويس ۽ صبح جو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ وٺي آيس. پاڻ سڳورن ﷺ کيس ڏسندي ئي چيو ته "ابو سفیان! حيف هجي! ڇا اڃا به تنهنجي سمجهڻ جو وقت ڪونه ٿيو آهي ته الله کانسواءِ ڪوبه معبود ڪونهي؟" ابوسفیان وراڻيو ته: "منهنجا ماءُ پيءُ توهان تي قربان. توهان ڪيڏا نه سهپ وارا، گڻن وارا ۽ متن مائتن سان ڀلائي ڪرڻ وارا آهيو. آئون چڱيءَ طرح پروڙي ويو آهيان ته جيڪڏهن الله کانسواءِ ڪو ٻيو معبود هجي ها ته هيستائين منهنجي ڪنهن نه ڪنهن ڪم اچي چڪو هجي ها."

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ابوسفیان حيف هجي! ڇا اڃا تنهنجي سمجهه ۾ ڪونه آيو آهي ته آئون الله جو رسول آهيان؟" ابوسفیان چيو ته "منهنجا ماءُ پيءُ توهان تي قربان. توهان ڪيڏا نه سهپ وارا، ڪيڏا نه گڻن وارا ۽ ڪيڏا نه متن مائتن سان ڀلائي ڪرڻ وارا آهيو. ان ڳالهه جي باري ۾ ته اڃا مڙئي ڪو ڪتڪو اٿم. " ان تي مون چيو ته "اڙي! سر ڪتڪو کان پهرين اسلام قبولي وٺ ۽ شاهدي ڏئي وٺ ته الله کانسواءِ ڪير به عبادت جي لائق نه آهي ۽ محمد ﷺ، الله جو رسول آهي. " تنهن تي ابوسفیان اسلام قبوليو ۽ شهادت جو ڪلمو پڙهيو.

مون چيو ته "يا رسول الله! هيءُ اعزاز پسند ڪندو آهي. تنهنڪري کيس ڪو اعزاز ڏنو وڃي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "نڪ آهي ته پوءِ جيڪو به ابوسفیان جي گهر ۾ گهڙي وڃي، ان لاءِ پناهه آهي ۽ جيڪو پنهنجي گهر جو دروازو اندران بند رکي ان کي به امان آهي ۽ مسجد الحرام ۾ داخل ٿي وڃي، ان لاءِ به امان آهي.

**اسلامي لشڪر مرالظهران کان مڪي ڏانهن:-** اڱارو 17 رمضان سن 8 هـ جو صبح ساڻ پاڻ سڳورا ﷺ مرالظهران کان مڪي ڏانهن روانا ٿيا ۽ حضرت عباس رضی اللہ عنہ کي حڪم ڪيائون ته

ابوسفیان کي واديءَ جي سوڙهي رستي مٿان جبل جي گهٽ وٽ بيهاري ڇڏي ته جيئن اتان لنگهندڙ لشڪر کي ابوسفیان ڏسي سگهي. حضرت عباس رضي الله عنه ائين ئي ڪيو. اتان قبيلن پنهنجا پنهنجا جهنڊا کڻي لنگهي رهيا هئا. جڏهن اتان ڪو قبيلو لنگهيو ته ابوسفیان پڇيو ته عباس رضي الله عنه! اهي ڪير آهن؟ جواب ۾ حضرت عباس رضي الله عنه (مثال طور) ٻڌائيندا ويا ته بنو سليم آهن. تنهن تي ابوسفیان پڇيو ته منهنجو انهن سان ڪهڙو ڪم؟ وري ڪو قبيلو لنگهيو ته ابوسفیان پڇيو ته ته اي عباس! هي ڪير آهن؟ انهن ورائيو ته ته مزينہ آهن. ابوسفیان پڇيو ته منهنجو مزينہ سان ڪهڙو ڪم؟ نيٺ سمورا قبيلن هڪ هڪ ڪري لنگهي ويا. جڏهن به ڪو قبيلو لنگهيو ته ابوسفیان، حضرت عباس رضي الله عنه کان ضرور پڇا ڪئي ته ۽ جڏهن ان کيس ٻڌايو ته ته هن چيو ته منهنجو فلاڻن سان ڪهڙو ڪم؟ نيٺ پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم پنهنجي ساٿي جڻي جي گهيري ۾ لنگهيا. پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم، مهاجرن ۽ انصارن جي وچ ۾ گهيريل هئا ۽ انسانن بدران رڳو لوه جي قطار پئي ڏسڻ ۾ آئي. ابوسفیان پڇيو ته: سبحان الله! اي عباس رضي الله عنه! هي ڪير آهن؟ انهن ورائيو ته: "اهي انصارن ۽ مهاجرن جي ميڙ ۾ پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم اچي رهيا آهن." ابوسفیان چيو ته "پلاهنن سان وڙهڻ جوست ڪنهن ۾ آهي!" ان کانپوءِ هن وڌيڪ چيو ته: "ابوالفضل! تنهنجي پائيتي جي بادشاهي ته ڏاڍي زور وٺي وئي آهي." حضرت عباس رضي الله عنه چيو ته "ابوسفیان! اها نبوت اٿئي." ابوسفیان چيو ته "هاڻو! هاڻي ته ائين ئي چئبو."

ان موقعي تي هڪڙو ٻيو واقعو به ٿيو. انصارن جو جهنڊو حضرت سعد بن عبادة رضي الله عنه وٽ هو. اهي ابوسفیان وٽان لنگهيا ته چيائون ته:

الْيَوْمُ يَوْمُ الْمَلْحَمَةِ ، الْيَوْمُ نُسْتَحِلُّ الْحُرْمَةَ

"اڄ رتوڇاڻ ۽ مار ماران جو ڏينهن آهي. اڄوڪي ڏينهن لاءِ سڀ حرمتون حلال ڪيون وينديون." اڄ الله، قريشن جي مقدر ۾ ذلت ڏئي ڇڏي آهي. ان کانپوءِ جڏهن اتان پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم متيا ته ابوسفیان چيو ته: "يا رسول الله! توهان اها ڳالهه ٻڌي جيڪا سعد چئي؟ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پڇيو ته "سعد ڇا چيو؟" ابوسفیان چيو ته هيئن هيئن پيو چوي اهو ٻڌي حضرت عثمان رضي الله عنه ۽ حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه چيو ته: "يا رسول الله! اسان کي ڊپ آهي ته مٿان سعد رضي الله عنه قريشن ۾ مار ماران نه لاهي ڏي." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "نه پر اڄوڪو ڏينهن ته اهو ڏينهن آهي جنهن ۾ ڪعبه الله کي تعظيم ڏني ويندي اڄوڪو ڏينهن اهو ڏينهن آهي جنهن تي الله تعاليٰ قريشن کي عزت بخشيندو." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم حضرت سعد رضي الله عنه کي ماڻهو موڪلي کانئن جهنڊو وٺي

سندن پٽ قيس رضي الله عنه کي ڏٺو جڻ ته جهنڊو سعد رضي الله عنه جي هٿ مان نڪتو ئي ڪونه اهو به چيو وڃي ٿو ته پاڻ سڳورن عليه السلام، جهنڊو حضرت زبير رضي الله عنه کي ڏياريو هو.

**اسلامي لشڪر اوچتو قريشن جي مٿان:-** جڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام ابوسفیان وٽان لنگهي ويا ته حضرت عباس رضي الله عنه کيس چيو ته "هاڻي پنهنجي قوم وٽ ڊوڙي وڃ. ابوسفیان تيزيءَ سان مڪي پهتو ۽ وڏي واڪي هڪل ڪيائين ته "قريشيو! اهو محمد عليه السلام آهي توهان وٽ ايڏي وڏي لشڪر سان آيو آهي جو مقابلي جو ست ئي نٿو ساري سگهجي تنهنڪري جيڪو ابوسفیان جي گهر ۾ گهڙي ويندو ان کي پناهه آهي." اهو ٻڌي سندس زال هند بنت عتبہ اتي ۽ کيس مڃين کان جهلي چيائين ته "ماريو هن مشڪ وانگر چرٻيءَ سان ڀريل هن سنهڙين پنڊلين واري کي ستيا ناس ٿئي اهڙي خبر ڏيڻ واري جي."

ابوسفیان چيس ته "ستيا ناس ٿئي (ماڻ ڪر) ڏسو مٿان هن عورت جي چوڻ تي لڳا آهيو ڇو ته محمد عليه السلام هڪ اهڙو لشڪر وٺي آيو آهي جنهن سان مقابلي ڪرڻ جي سگهه اوهان ۾ ڪانهي ان ڪري جيڪو ابوسفیان جي گهر ۾ گهڙي ويندو ان لاءِ پناهه آهي." ماڻهن چيو ته مار ڪا پونئي، تنهنجو گهر اسان مان ڪيترن جي ڪر ايندو؟ ابوسفیان چيو ته "جيڪو پنهنجي گهر جو در اندران بند ڪري ويهي ان لاءِ به امان آهي ۽ جيڪو مسجد الحرام ۾ داخل ٿي وڃي ان کي به پناهه آهي اهو ٻڌي ماڻهو پنهنجن پنهنجن گهرن ۽ مسجد الحرام ڏانهن ڀڳا باقي ڪن لڄن ماڻهن کي اهو چئي (ڪر تي) لڳائي ڇڏيائون ته جيڪڏهن قريشن کي ڪا سرسي حاصل ٿي ته اسين ساڻن گڏ هوندا سين پر جي انهن کي ڪا تڪليف رسي ته اسين ڏنڊ ڀري ڏينداسين. قريشن جا اهي ڄت ۽ لڄر، مسلمانن سان وڙهڻ لاءِ عڪرم بن ابوجهل، صفوان بن أمية ۽ سهيل بن عمرو جي اڳواڻيءَ ۾ خندم ۾ گڏ ٿيا. انهن ۾ بنو بڪر جو هڪ ماڻهو حماس بن قيس به هو. جنهن ڪجهه ڏينهن اڳي پنهنجا هٿيار تيار ڪيا پئي ته سندس زال پچيس ته "ڇاجي پيو تيار ڪرين؟" هن چيس ته "محمد عليه السلام ۽ سندس ساٿين سان وڙهڻ لاءِ پيو سنبران." ان تي زال چيس ته "الله جو قسم! محمد عليه السلام ۽ سندس ساٿين جي سامهون ڪابه شيءِ نٿي بيهي سگهي." هن چيو ته "الله جو قسم! مون کي اميد آهي ته آئون سندس ڪن ساٿين کي تنهنجو ٻانهو بڻائي وٺندس." ان کانپوءِ هي شعر پڙهيائين.

إِنْ يُقْبَلُوا الْيَوْمَ فَمَالِي عَلَّهِ هَذَا سَلَا حُ كَامِلٌ وَاللَّهِ  
وَدُو غَرَارَيْنِ سَرِيْعُ السَّلَّةِ

"جيڪڏهن اڄ هو منهنجي مقابلي ۾ آيا ته منهنجي لاءِ ڪو بهانو نه بچندو. هي سمورا هٿيار، ڊگهي جهنب وارو نيزو ۽ جلد اڀي ٿيندڙ تلوار آهي.

**اسلامي لشڪر ذي طوى ۾ :-** پئي پاسي پاڻ سڳورا ﷺ مرالظهران مان نڪري ذي طوي پهتا ان دوران الله پاران عطا ڪيل سوپ جا تورا مڃڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجو ڪنڌ کڻي جهڪايو هو ايستائين جو سندن ڏاڙهي مبارڪ جا وار ڪجاوي جي ڪاٺيءَ سان اچي لڳا هئا. ذي طوى ۾ پاڻ سڳورن ﷺ لشڪر کي ترتيب ڏني. خالد بن وليد رضي الله عنه کي ميسره تي رکيائون، جنهن ۾ اسلم، سليم، غفار، مزين، جهيند ۽ ڪجهه ٻيا قبيلا شامل هئا ۽ حضرت خالد رضي الله عنه کي حڪم ڪيائون ته اهي مڪي جي هيٺان کان داخل ٿين ۽ جيڪڏهن قريش مهاڏو اٽڪائين ته انهن کي ماريندا اچي پاڻ سڳورن ﷺ سان صفا ۾ ملن.

حضرت زبير رضي الله عنه ميمنه تي هو. وٽن پاڻ سڳورن ﷺ جو جهنڊو به هو پاڻ سڳورن ﷺ کين حڪم ڏنو ته مڪي جي مٿئين پاسان يعني ڪڏاڻ کان داخل ٿي حجورن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو جهنڊو کوڙي اتي پاڻ سڳورن ﷺ جو انتظار ڪن.

حضرت ابو عبیده رضي الله عنه پيادن جو اڳواڻ هو کين حڪم ڪيو ويو ته پاڻ بطن نالي واديءَ مان ٿيندا اچي پاڻ سڳورن ﷺ سان ملن.

**اسلامي لشڪر مڪي ۾ :-** انهن هدايتن کانپوءِ سڀئي جڳا پنهنجن ڏسيل واٽن تي هلي پيا.

حضرت خالد رضي الله عنه ۽ سندن ساٿين جي راه ۾ جيڪي به مشرڪ آيا تن کي مٽايو ويو پر سندن ساٿين مان به ٻه جڳا ڪرز بن جابر فهري رضي الله عنه ۽ خنيس بن خالد بن ربيعه به شهيد ٿي ويا. ان جو ڪارڻ اهو هو ته اهي ٻئي جڳا لشڪر کان ڇڏي هڪ ٻئي رستي تي هلي پيا هئا، جتي کين گهيري ماريو ويو خندم پهچي حضرت خالد رضي الله عنه ۽ سندن ساٿين جو ٽڪراءُ قريش جي لڇرن سان ٿيو معمولي جهڙپ ۾ ٻارنهن مشرڪ مارجي ويا ۽ ان کانپوءِ مشرڪن ۾ ڀڄ پئجي وئي. حماس بن قيس، جنهن مسلمانن سان وڙهڻ لاءِ هٿيار تڪا ڪري رکيا هئا ڀڄي پنهنجي گهر ۾ وڃي گهڙيو ۽ پنهنجي زال کي چيائين ته: "دروازو بند ڪري ڇڏ. " هن چيو ته: "هوءَ جيڪا تو همار پئي هنئي، ان جو ڇا ٿيو؟" چوڻ لڳو ته:

|   |   |
|---|---|
| إِنَّكَ لَوْ شِهِدْتَ يَوْمَ الْخَنْدَمَةِ    | إِذْ فَرَّ صَفْوَانٌ وَفَرَّ عَكْرِمَةُ |
| وَاسْتَقْبَلْتَنَا بِالسُّيُوفِ الْمُسْلِمَةِ | يَقْطَعْنَ كُلَّ سَاعِدٍ وَجَمْحَمَةَ   |
| ضَرْبًا فَلَا نَسْمَعُ إِلَّا عَمَمَةً        | لَهُمْ نَهَيْتُ حَوْلَنَا وَهَمَمَةَ    |

لَمْ تَنْطِقِي فِي اللَّوْمِ أَدْنَى كَلِمَةٍ

”جيڪڏهن تون خندم جي ويڙهه ڏسين ها، جڏهن صفوان ۽ عڪرم ڀڄي نڪتا هئا ۽ ائين تلوارن سان اسان جي آجيان ڪئي وئي، جيڪي ٻانهون ۽ سسيون اهڙيءَ طرح لاهي رهيون هيون جو پٺيان گوڙ شور کانسواءِ ڪجهه به ٻڌڻ ۾ نه پئي آيو ته پوءِ تون مون تي ذري به ملامت نه ڪرين ها.“

ان کانپوءِ حضرت خالد رضي الله عنه مڪي جون گهٽيون لتاڙيندي اچي صفا جبل وٽ پاڻ سڳورن عليه السلام سان مليو.

بئي پاسي حضرت زبير رضي الله عنه اڳتي وڌندي حجورن ۾ مسجد فتح وٽ پاڻ سڳورن عليه السلام جو جهندو کوڙيو ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام لاءِ خيمو به لڳايو ۽ اتي ئي بيٺو رهيو تانجو پاڻ سڳورا عليه السلام اتي اچي پهتا.

پاڻ سڳورن عليه السلام جو مسجد الحرام ۾ گهڙي بت ڀڄڻ:- ان کانپوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام اتيا ۽ مهاجرن ۽ انصارن جي ميڙ ۾ مسجد الحرام ۾ گهڙيا اڳتي وڌي حجر اسود کي چمڪائون ۽ بيت الله جو طواف ڪيائون ان مهل سندن هٿ ۾ هڪ ڪمان جهليل هئي پاڻ ان ڪمان سان بيت الله جي چوڌاري ۽ ڇت تي رکيل ٽي سؤ سٺ بتن کي ڌڪ هڻندا ويا ۽ چوندا پئي ويا ته:

﴿جَاءَ الْحَقُّ وَزَهَقَ الْبَاطِلُ إِنَّ الْبَاطِلَ كَانَ زَهُوقًا﴾ (81) ﴿الاسراء﴾

”حق آيو ۽ باطل ڀڄي ويو. بيشڪ باطل آهي ئي ڀڄڻ وارو.“

﴿جَاءَ الْحَقُّ وَمَا يُبْدِئُ الْبَاطِلُ وَمَا يُعِيدُ﴾ (49) ﴿سبا﴾

”حق آيو ۽ باطل جو راج ختم ٿي ويو.“

پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڌڪ لڳڻ سان بت منهن ڀري وڃي ٿي ڪريا. پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجي ڏاڇيءَ تي ويهي طواف ڪيو هو ۽ احرام پاتل نه هجڻ ڪري رڳو طواف ٿي ڪيائون ان کانپوءِ حضرت عثمان بن طلحه رضي الله عنه کي سڏي کائڻ ڪعبي جون ڪنجيون ورتائون پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام جي حڪم سان ڪعبه الله کي کوليو ويو اندر گهڙيا ته تصويرون نظر آيون جن ۾ حضرت ابراهيم عليه السلام ۽ حضرت اسماعيل عليه السلام جون تصويرون به هيون ۽ انهن جي هٿن ۾ فال ڪيڻ وارا تير هئا. پاڻ سڳورن عليه السلام اهو منظر ڏسي چيو ته: ”الله انهن مشرڪن کي هلاڪ ڪري الله جو قسم! انهن ٻنهي پيغمبرن ڪڏهن به فال جا تير استعمال نه ڪيا هئا.“ پاڻ سڳورن عليه السلام ڪعبه الله جي اندر ڪاٺ جي ٺهيل هڪ ڪبوترِي به ڏني ان کي پنهنجن مبارڪ هٿن سان ڀڄي ڇڏيائون ۽ تصويرون ڏاهي ڇڏيائون.

ڪعبه الله ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام جي نماز ۽ قرآن جي خطاب:- ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام اندران در بند ڪري ڇڏيو حضرت اسامه رضي الله عنه ۽ حضرت بلال رضي الله عنه جن به اندر هئا پوءِ دروازي جي سامهون واري ڀت ڏانهن وڌيا ۽ ڀت کان ٿي هٿ اوري پهچي بيهي رهيا. ٻه ٽنڀا پاڻ سڳورن عليه السلام جي کاٻي پاسي، هڪ ساڄي پاسي ۽ ٽي پٺيان هئا. (تڏهن ڪعبه الله ۾ رڳو ڇهه ٽنڀا هئا.) پاڻ سڳورن عليه السلام اتي ئي نماز پڙهي، ان کانپوءِ بيت الله جي اندرئين ڀاڱي جو چڪر لڳايائون.



سڀني ڪنڊن ۾ تڪبير ۽ توحيد جا ڪلما چيائون ۽ پوءِ دروازو کولي ڇڏيائون. قريش (سامهون) مسجد الحرام ۾ قطارون ٻڏي وڌو ميڙ ڪري ويٺا هئا. کين پاڻ سڳورن ﷺ جون ڳالهيون ٻڌڻ جو انتظار هو. پاڻ سڳورا ﷺ دروازي جا ٻئي تاڪ جهلي بيٺا ۽ قريش (جيڪي) هيٺ هئا، تن کي هيئن مخاطب ٿيا ته: "الله کانسواءِ ڪوبه عبادت جي لائق نه آهي هو اڪيلو آهي ۽ سندس ڪوبه پائيوار ڪونهي هن پنهنجو واعدو سچو ڪري ڏيکاريو. پنهنجي ٻانهي جي مدد ڪئي ۽ اڪيلي ئي سڀني لشڪرن کي مات ڏني. ٻڌو! بيت الله جي ڪنجي رکڻ ۽ حاجين کي پاڻي پيارڻ کانسواءِ سمورو شرف خوبيون ۽ جانين جو اختيار. منهنجن ٻنهي پيرن جي هيٺان آهي (منهنجي اختيار ۾ آهن). ياد رکو قتل خطا، شبه عمد ۾ آهي، جيڪو ڪوڙن سان هجي يا ڏنڊن سان، مغلظ ديت آهي يعني سؤ اٺ، جن مان چاليهه ڏاڍيون ڍڪيون هجڻ گهرجن."

"اي قريشيو! الله توهان مان جهالت واري هوڏ ۽ ابن ڏاڏن تي ڪڏڻ جو انت آندو آهي. سڀئي ماڻهو آدم عليه السلام منجهان آهن ۽ آدم عليه السلام مٽيءَ مان." ان کانپوءِ هيءَ آيت پڙهيائون:

﴿يَا أَيُّهَا النَّاسُ إِنَّا خَلَقْنَاكُمْ مِنْ ذَكَرٍ وَأُنْثَىٰ وَجَعَلْنَاكُمْ شُعُوبًا وَقَبَائِلَ لِتَعَارَفُوا إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِنْدَ اللَّهِ أَتْقَاكُمْ إِنَّ اللَّهَ عَلِيمٌ خَبِيرٌ (13)﴾ (الحجرات)

"اي انسانو! بيشڪ اسان اوهان کي هڪ مرد ۽ هڪ عورت مان پيدا ڪيو ۽ اوهان کي ذاتين ۽ پاڙن ۾ ورهايو سون ته جيئن هڪ ٻئي کي سڃاڻي سگهيو. بيشڪ اوهان مان تمام عزت وارو الله وٽ اهو آهي، جيڪو ڏاڍو پرهيزگار آهي. بيشڪ الله ڄاڻندڙ ۽ خبر رکندڙ آهي."

**عام معافيءَ جو اعلان:-** ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "قريشيو! توهان ڇا ٿا پانيو ته آئون توهان سان ڪهڙو سلوڪ ڪرڻ وارو آهيان؟" انهن چيو ته "توهان ڏاڍا مهربان ڀاءُ ۽ مهربان ڀاءُ جا پٽ آهيو." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "پوءِ آئون توهان سان اها ئي ڳالهه ٿو ڪريان جيڪا حضرت يوسف عليه السلام، پنهنجن ڀائرن سان ڪئي هئي ته:

﴿لَا تَرِبَ عَلَيْكُمُ الْيَوْمَ﴾ "اڄوڪي ڏينهن توهان تي ڪا ميار ڪانهي."

**ڪعبي جي ڪنجي (حق حقدار کي ڏيڻ):** - ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ مسجد الحرام ۾ ويهي رهيا. حضرت علي رضيه الله عنه آيو سندن هٿ ۾ ڪعبي جي ڪنجي هئي. اچي چيائين ته "يا رسول الله ﷺ! اسان کي حاجين کي پاڻي پيارڻ جي اعزاز سان گڏ ڪعبه الله جي ڪنجي رکڻ جو اعزاز به ڏيڻ جي مهرباني ڪريو. الله توهان تي رحمت نازل ڪري." هڪ ٻيءَ روايت مطابق حضرت عباس رضيه الله عنه اها گذارش ڪئي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ چيو ته: "عثمان بن طلحه رضيه الله عنه ڪٿي آهي؟" کين سڏرايو ويو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "عثمان! هيءُ وٺ پنهنجي ڪنجي. اڄوڪو

ڏينهن نيڪي ۽ وفاداريءَ جو ڏينهن آهي. "طبقات ابن سعد ۾ روايت آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ڪنجي ڏيندي فرمايو ته: "هن کي سدائين لاءِ وٺ. توهان کان اها اهو ئي ڦريندو جيڪو ظالم هوندو. اي عثمان! الله تعاليٰ توهان کي پنهنجي گهر جو امين بڻايو آهي تنهنڪري هن الله جي گهر مان توهان کي جيڪي ڪجهه ملي ان کي حلال طريقي سان استعمال ڪجو."

**ڪعبي جي ڇت تي بلال رضی اللہ عنہ جي بانگ:** - نماز جو وقت ٿي ويو هو. پاڻ سڳورن ﷺ حضرت بلال رضی اللہ عنہ کي حڪم ڏنو ته ڪعبي تي چڙهي بانگ ڏين. ان مهل ابوسفیان بن حرب، عتاب بن أسيد ۽ حارث بن هشام ڪعبي جي اڳڻ ۾ ويٺا هئا. عتاب چيو ته "الله تعاليٰ اسيد کي ماري ان تي اها مهرباني ڪئي جو هو اها (بانگ) نه ٻڌي سگهيو، نه ته هن کي هڪ اڻوڻندڙ شيءِ ٻڌي پوي ها." تنهن تي ابوسفیان چيو ته "ڏسو! آئون ڪجهه ڪونه ڪيندس ڇو ته آئون جي ڳالهائيندس ته هي پٿريون به مون تي چغلي هڻنديون. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ انهن وٽ آيا ۽ فرمايائون ته: "هينئر اوهان جيڪي ڳالهيون ويني ڪيون، تن جي خبر مون کي پئجي وئي آهي." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ اها ڳالهه ٻولهي ورجائي تنهن تي حارث ۽ عتاب چيو ته "اسين شاهدي ٿا ڏيون ته توهان الله جا رسول آهيو. الله جو قسم! اسان سان اهڙو ڪوبه ماڻهو وينل ڪونه هو. جنهن لاءِ اسان چئون ته هن اهي ڳالهيون ٻڌي وڃي توهان کي ٻڌايون آهن."

**شڪراني جي نماز:** - ان ئي ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ ام هاني بنت ابي طالب رضي الله عنها جي گهر ويا ۽ اتي وڃي غسل ڪيائون ۽ سندن گهر ۾ ئي اٺ رڪعتون نماز پڙهيائون. اهو چاشت جو وقت هو. ان ڪري ڪنهن هن نماز کي چاشت جي نماز سمجهي ته ڪنهن شڪرائي ۽ سوپ جي نماز. ام هاني رضي الله عنها پنهنجن ٻن ڌرين کي پناهه ڏني هئي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "اي ام هاني رضي الله عنها! جنهن کي تو پناهه ڏني ان کي اسان به پناهه ڏني. اهو چوڻ جو ڪارڻ اهو هو ته ام هاني جن جي پيءُ حضرت علي رضی اللہ عنہ انهن ٻنهي کي مارڻ پئي گهريو. ان ڪري ام هاني رضي الله عنها، انهن ٻنهي کي لڪائي گهر جو دروازو بند ڪري ڇڏيو هو. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ اتي پهتا تڏهن کين عرض ڪيائون ۽ مٿي ڄاڻايل جواب ورتائون.

**جنگي ڏوهارين کي مارڻ جي چوٽ:** - مڪي جي فتح واري ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ، جنگي ڏوهارين مان نون جڻن کي ڏسندي ئي مارڻ جو حڪم ڏيندي فرمايو ته جيڪڏهن اهي ڪعبي جي پردي جي پٺيان به هت اچن ته به کين ماريو وڃي. انهن جا نالا هي هئا.

- (1) عبدالعزي بن خطل (2) عبدالله بن سعد بن ابي سرح (3) عڪرم بن ابي جهل (4) حارث بن نفيل بن وهب (5) مقيس بن صبابه (6) هبار بن اسود (7 ۽ 8) ابن خطل جون ٻه ٻانهيون

جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ جي هجو ڪنديون هيون (9) سارة، جيڪا عبدال مطلب جي اولاد مان ڪنهن جي ٻانهي هئي. ان وتان ئي حاطب ﷺ جو خط هت آيو هو.

ابن ابي سرح ﷺ جو معاملو هيئن ٿيو جو کيس حضرت عثمان ﷺ، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ وٺي وڃي سندن جان بخشڻ جي سفارش ڪئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سفارش قبول ڪندي انڪي مسلمان طور قبول ڪيو. پر ان کان اڳي پاڻ سڳورا ﷺ ٿوري دير تائين ان اميد تي ماٺ ۾ رهيا ته ڀلي ته ڪو اصحابي اتي کيس ماري وجهي. چوٽه اهو ماڻهو پهرين به اسلام قبولي، مديني هجرت ڪري پهتو هو پر پوءِ مرتد ٿي پڇي ويو هو. (بهرحال ان کانپوءِ هن پاڻ کي سنو مسلمان ثابت ڪري ڏيکاريو).

عڪرم بن ابي جهل يمن ڏانهن پڇي ويو پر سندس زال، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي سندس لاءِ امان گهري ۽ پاڻ سڳورن ﷺ امان ڏئي ڇڏي. ان کانپوءِ هوءَ عڪرم جي پٺيان وئي ۽ کيس موٽائي آئي. هن موٽي اچي اسلام قبوليو ۽ چڱو مسلمان نڪتو.

ابن خطل، ڪعبي جو ڀيرو جهلي لٽڪيو پيو هو. هڪ اصحابي اچي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڄاڻ ڏنو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "هن کي ماري ڇڏ." تنهن تي هن وڃي کيس ماري ڇڏيو.

مقيس بن صبابه کي حضرت نميله بن عبدالله ﷺ ماريو. مقيس به پهرين مسلمان ٿيو هو، پر پوءِ هڪ انصاريءَ کي ماري مرتد ٿي پڇي اچي مشرڪن وٽ پهتو هو.

حارث، مڪي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏاڍو تنگ ڪندو هو. کيس حضرت علي ﷺ

ماريو.

هبار بن اسود اهو ئي ماڻهو هو، جنهن پاڻ سڳورن ﷺ جي نياڻي بيبي زينب رضي الله عنها کي هجرت ڪرڻ مهل اهڙو ته جهٽڪو ڏنو هو جو پاڻ هودج مان هڪ دڙي تي ڪري پيون هيون. جنهن جي ڪري سندن حمل ضايع ٿي ويو هو. اهو به مڪي جي فتح واري ڏينهن پڇي ويو هو، پوءِ مسلمان ٿيو ۽ چڱائيءَ تي هليو.

ابن خطل جي ٻن ٻانهين مان هڪ مارجي وئي ۽ ٻيءَ پناهه ورتي. تنهن کانپوءِ مسلمان ٿي وئي. اهڙيءَ طرح ئي سارة لاءِ به پناهه گهري وئي ۽ اها به مسلمان ٿي وئي. (مطلب ته نون مان چار مارجي ويا ۽ پنجن جي جان بخشي وئي ۽ انهن اسلام قبوليو.)

حافظ ابن حجر جو چوڻ آهي ته "جن ماڻهن کي مارڻ جي چوٽ ڏني وئي هئي، انهن ۾ ابو معشر، حارث بن طلال خزاعيءَ جو به نالو ڳڻايو آهي. ان کي حضرت علي ﷺ ماريو. امام حاڪم، ان فهرست ۾ ڪعب بن زهير جو نالو ڄاڻايو آهي. ڪعب جو واقعو مشهور آهي. هن به پوءِ

اسلام قبول ڪري ورتو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي ساراهه ۾ (شعر) لکيائين. (ان ئي فهرست ۾) وحشي بن حرب ۽ ابوسفیان جي زال هند بن عتبہ بہ شامل آهي. جنهن اسلام قبوليو ۽ ابن خطل جي ٻانهي بہ انهن مان هئي. جيڪا مارجي وئي ۽ ام سعد بہ مارجي وئي، ابن اسحاق ائين ئي لکيو آهي. تي سڳهي ٿو ته ٻئي ٻانهيون ارنب ۽ ام سعد هجن ۽ اختلاف رڳو نالي يا ڪنيت يا لقب جي ڪري ٿيو هجي. (1)

**صفوان بن اميه ۽ فضاله بن عمير جو مسلمان ٿيڻ:-** جيتوڻيڪ صفوان کي مارڻ جي اجازت ڪانه ڏني وئي هئي ته بہ فریشن جو هڪ وڏو اڳواڻ هجڻ ڪري کيس جاني خطرو هو. ان ڪري اهو بہ ڀڄي ويو. عمير بن وهب جمحي رضي الله عنه، پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم وٽ اچي سندن لاءِ معافي گهري. پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم معافي ڏني ۽ نشانيءَ طور عمير رضي الله عنه کي اهو پتڪو بہ ڏنائون، جيڪو مڪي ۾ گهٽڻ مهل پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم جي مٿي تي ٻڌل هو. عمير رضي الله عنه، صفوان وٽ پهتو ته هو جدي مان سمنڊ رستي يمن وڃڻ جي لاءِ سنبري رهيو هو. عمير رضي الله عنه کيس موٽائي وٺي آيو. هن پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم کي چيو ته: مون کي بہ مهينا ڇڏيو. پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم فرمايو ته: توکي ڇئن مهينن جي موڪل آهي. ان کانپوءِ صفوان اسلام قبوليو. سندس گهر واري اڳيئي مسلمان ٿي چڪي هئي. پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم ٻنهي جو ساڳيو نڪاح برقرار رکيو.

فضاله هڪ دلير مڙس هو. جنهن مهل پاڻ سڳورا صلی اللہ علیہ وسلم طواف ڪري رهيا هئا ته هو مارڻ جي نيت سان پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم وٽ آيو. پر پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم ٻڌائي ڇڏيو ته سندس دل ۾ ڇا آهي. تنهن تي هو مسلمان ٿي ويو.

**فتح جي ٻئي ڏهاڙي پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم جو خطبو:-** فتح جي ٻئي ڏينهن پاڻ سڳورا صلی اللہ علیہ وسلم وري خطبو ڏيڻ لاءِ اتي بيٺا. الله تعاليٰ جي وڏائي ۽ پاڪائي بيان ڪرڻ کانپوءِ فرمايائون ته "الله تعاليٰ جنهن ڏينهن آسمان جوڙيو اهو قيامت تائين حرمت وارو آهي. جيڪو بہ ماڻهو الله ۽ آخرت تي ايمان رکي ٿو، ان لاءِ جائز نہ آهي ته هن (شهر) ۾ رت وهائي يا ڪو وڻ ڪٽي. جيڪڏهن ڪو ماڻهو ان مان حجت وٺي ته الله جي رسول صلی اللہ علیہ وسلم هتي رتوڇاڻ ڪيو ته ان کي ڇڏجڻو ته الله پنهنجي رسول کي چوٽ ڏني هئي، پر توکي ڪانهي ۽ مون لاءِ بہ اهو رڳو هڪ ڀل لاءِ حلال ڪيو ويو. اڄ ان جي حرمت اهڙيءَ طرح وري موٽي آئي، جهڙيءَ طرح ڪالهه ان جي حرمت هئي. اها ڳالهه هتي وينل ماڻهو، هتي نہ آيلن تائين پهچائي ڇڏين."

<sup>1</sup> - فتح الباري (8/11، 12).

هڪ روايت ۾ اهو واڌارو ٿيل آهي ته هتي جو ڪنڊو به نه پتجي، شڪار به نه پڄائجي ۽ ڪريل شيءِ نه کٽجي. باقي جنهن جي شيءِ آهي، اهو کڻي سگهي ٿو ۽ هتي جو گاهه به نه پٽيو وڃي. حضرت عباس رضي الله عنه پڇيو ته "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم پر اذخر (عربستان جو مشهور گاهه جيڪو چانهه ۽ دوا طور استعمال ٿئي ٿو). ڇو ته اها لوهار ۽ گهر جي (ضرورت واري) شيءِ آهي." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "اذخر پلي."

بنو خزاعه ان ڏينهن بنو ليث جو هڪ ماڻهو ماري وڌو هو. ڇو ته بنو ليث جي هٿان سندن هڪ ماڻهو جاهليت ۾ مارجي ويو هو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ان بابت فرمايو ته "خزاعه وارو! پنهنجو هٿ قتل کان روڪيو، ڇو ته ڪنهن کي مارڻ ۾ جيڪڏهن فائدو آهي ته گهڻي مار ماران ٿي وڻي. توهان هڪ اهڙو ماڻهو ماريو آهي، جنهن جو ڏنڊ (ديت) لازمي طور پريندس. ان کانپوءِ جيڪڏهن ڪنهن به ڪنهن کي ماريو ته مقتول جي وارثن کي ٻن ڳالهين جو حق هوندو. وڻين ته قاتل جو رت وهائين ۽ وڻين ته ان کان ڏنڊ (ديت) وٺن."

هڪ روايت ۾ آهي ته ان تي يمن جو هڪ ماڻهو ابو شاة اٿي بيٺو ۽ چيائين ته: "يا رسول الله صلى الله عليه وسلم اهو منهنجي لاءِ لڪائي ڏيو." پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "ابو شاة کي لڪي ڏيو." (1)

**انصارن جي اٿتڻ:-** جڏهن مڪو پوريءَ طرح فتح ٿي ويو ۽ سڀني کي ڄاڻ هئي ته اهو ئي شهر پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو پيدائشي وطن هو، ته انصارن پاڻ ۾ چيو ته "ڇا خيال آهي، هاڻي الله پنهنجي رسول صلى الله عليه وسلم کي پنهنجي ڌرتي ۽ پنهنجو شهر فتح ڪرائي ڏنو آهي ته هاڻي پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم هتي ئي رهندا؟ ان مهل پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم صفا ۾ هٿ کڻي دعا گهري رهيا هئا. دعا گهرڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پڇيو ته "توهان ڪهڙيون ٻيا ڳالهيون ڪريو؟" انهن ورائيو ته "يا رسول الله! ڪجهه به نه." پر جڏهن پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم زور ڀريو ته نيٺ انهن ڳالهه ٻڌائي ڇڏي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "خدا جي پناهه! هاڻي جيئڻ ۽ مرڻ اوهان سان ئي آهي."

**بيعت:-** جڏهن الله تعاليٰ، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ۽ مسلمانن کي مڪو فتح ڪرايو ته مڪي وارن پليءَ ڀت ڄاڻي ورتو ته هاڻي اسلام (قبولڻ) کانسواءِ ٻي ڪا واٽ نه آهي. ان ڪري اهي اسلام قبول ڪرڻ جي بيعت ڪرڻ لاءِ اچي گڏ ٿيا. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم صفا ۾ ويهي بيعت وٺڻ شروع ڪئي. حضرت عمر رضي الله عنه، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کان هيٺ ويٺل هو ۽ ماڻهن کان قسم کڻائي رهيو هو. ماڻهن پاڻ

<sup>1</sup> - انهن روايتن لاءِ ڏسو صحيح بخاري (1/22، 216، 247، 328، 329 - 2/615، 617)، صحيح مسلم (1/437، 438، 439)، ابن هشام (2/415، 416) ابوداؤد (1/276).

سڳورن ﷺ سان بيعت ڪئي ته هر ممڪن حد تائين پاڻ سڳورن ﷺ جي ڳالهه ٻڌندا ۽ چيو مڃيندا.

تفسير مدارڪ ۾ اها روايت آيل آهي ته جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ مردن جي بيعت مان آجا تيا ته اتي صفا ۾ ئي عورتن کان بيعت وٺڻ شروع ڪيائون. حضرت عمر رضه، پاڻ سڳورن ﷺ کان هيٺ ويٺل هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم تي عورتن کان بيعت وٺي رهيو هو ۽ انهن کي پاڻ سڳورن ﷺ جا فرمان ٻڌائي رهيو هو. ان دوران ابو سفيان جي زال هند بنت عتبہ ويس متائي اتي پهتي. هن، حضرت حمزة رضه جي مڙھ سان جيڪي ڪجهه ڪيو هو، تنهن جي ڪري ڏنل هئي ته متان پاڻ سڳورا ﷺ کيس سڃاڻي نه وٺن. ٻئي پاسي پاڻ سڳورن ﷺ (بيعت وٺڻ شروع ڪئي ته) فرمايائون ته " آئون توهان کان ان ڳالهه جي بيعت وٺان ٿو ته الله سان ڪنهن کي به شريڪ نه ڪنديون. حضرت عمر رضه (ساڳي ڳالهه ورجائيندي) عورتن کان بيعت ورتي ته اهي الله سان ڪنهن کي به شريڪ نه ڪنديون. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته " ۽ چوري نه ڪنديون. " ان تي هند ڳالهائي وڌو ته "ابو سفيان بخيل ماڻهو آهي. جيڪڏهن ان جي مال مان ڪجهه کڻي وٺان ته؟" ابوسفيان (جيڪو اتي بيٺل هو) چيو ته "توڪي جيڪو وٺي سو کڻ. تولا ۽ حلال آهي؟" پاڻ سڳورا ﷺ مسڪرائڻ لڳا. انهن هند کي سڃاڻي ورتو. فرمايائون ته: "جئبو ته تون هند آهين!" هن چيو ته: "هاڻو! الله جا نبي ﷺ جيڪو ٿي ويو، ان کي درگذر ڪريو، الله توهان کان درگذر ڪندو." ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته " ۽ زنا نه ڪنديون. " تنهن تي هند چيو ته پلا ڪا آزاد عورت به زنا ڪري ٿي ڇا! " پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته " ۽ پنهنجن ٻارن کي ڪونه ماري ڇڏيو. ان ڪري هند چيو ته: "اسان ننڍپڻ ۾ کين نپايو پر وڏا ٿيڻ تي توهان انهن کي ماري ڇڏيو. ان ڪري توهان ﷺ ۽ اهي ئي وڌيڪ ڄاڻن ٿا. " ياد رهي ته هند جو پٽ حنظل بن ابي سفيان، بدر واري لڙائيءَ ۾ مارجي ويو هو. اهو ٻڌي حضرت عمر رضه کلي کلي ڪيرو ٿي ويو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ به مسڪرائڻ لڳا.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته " ۽ ڪنهن تي به بهتان نه هڻنديون. " هند چيو ته "سچ پچ ته بهتان ڏاڍي خراب ڳالهه آهي ۽ توهان ﷺ اسان کي واقعي به سنين ڳالهه جو حڪم ڏئي رهيا آهيو. " پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته " ۽ ڪنهن به چڱي ڳالهه ۾ رسول ﷺ جي نافرمانِي نه ڪنديون. " هند چيو ته "الله جو قسم! اسين هن ميڙ ۾ پنهنجي دل ۾ توهان جي نافرمانِيءَ جو تصور به ڪونه ڪئي آيون آهيون. "

پوءِ موٽڻ شرط هند پنهنجو بت ڀڄي ڇڏيو. هوءَ بت ڀڄندي پئي وئي ۽ چوندي پئي وئي ته  
 "اسان تنهنجي باري ۾ دوکي ۾ هئاسين." (۱)

**مڪي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي رهائش ۽ سرگرميون:-** پاڻ سڳورا ﷺ مڪي ۾  
 اوڻيهه ڏينهن رهيا. ان دوران پاڻ ﷺ اسلام جي نشانين جي تجديد ڪندا رهيا ۽ ماڻهن کي سڌي  
 وات ۽ پرهيزگاريءَ جي تلقين ڪندا رهيا. انهن ئي ڏينهن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم تي  
 حضرت ابو اسيد خزاعي رضي الله عنه نئين سري کان حرم جي حدن ۾ ٽنپ بيهاريا. پاڻ سڳورن ﷺ  
 اسلام جي پرچار ڪرڻ ۽ پرياسي جا بت ڀڄڻ لاءِ ڪافي سريا به موڪليا ۽ اهڙيءَ طرح سمورا بت  
 ڀڳا ويا. پاڻ سڳورن ﷺ مڪي ۾ پڙهو ڏياريو ته جيڪو ماڻهو الله ۽ آخري تي ڀروسو رکي ٿو،  
 اهو پنهنجي گهر ۾ ڪوبه بت نه رکي بلڪه ان کي ڀڄي ڇڏي.

**سريا ۽ وفد:-** 1- مڪي جي فتح مان واندڪائي ملڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ 25 رمضان 8 هه تي  
 حضرت خالد بن وليد رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ عزي کي ڀڄڻ لاءِ هڪ سريو موڪليو. عزي، نخله ۾  
 رکيل هو. قريش ۽ سمورا بنو ڪنانه ان کي پوڄيندا هئا ۽ اهو سندن سڀ کان وڏو بت هو. بنو شيبان  
 ان جا مجاور هئا. حضرت خالد رضي الله عنه تيهه سوار وٺي نخله وڃي ان کي ڀڄي ڇڏيو. موٽڻ تي پاڻ  
 سڳورن ﷺ پڇيو ته "اتي تو ڪجهه ڏٺو به هو؟" حضرت خالد رضي الله عنه ورائيو ته "نه" تنهن تي پاڻ  
 سڳورن ﷺ فرمايو ته "تڏهن تو هن کي ڀڳو ٿي ڪونهي. وري وڃي ان کي ڀڄي ڇڏ." حضرت  
 خالد رضي الله عنه تلوار کڻي وري ويو. هن پيري (بت مان) هڪ اڳهاڙي، ڪاري ۽ وڪريل وارن واري عورت  
 سندن ڏانهن وڌي. مجاور هڪلون ڪري کيس سڏڻ لڳو پر ايتري ۾ حضرت خالد رضي الله عنه ايڏي زور سان  
 تلوار هنيو جو ان عورت جا ٻه اڏ ٿي ويا. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کي اڇي خبر ڏنائين. تنهن  
 تي پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "هاڻو! اهائي عزي هئي. هاڻي هوءَ آسرو پلي ويني آهي ته ڪو  
 تنهنجي ملڪ ۾ وري ڪڏهن سندس پوڄا ڪئي ويندي."

2- ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، عمرو بن عاص رضي الله عنه کي ساڳئي مهيني ۾ سواع نالي بت ڀڄڻ لاءِ  
 موڪليو. اهو مڪي کان ٽي ميل پري رهائڻ بنو هذيل جو هڪ بت هو. جڏهن حضرت عمرو رضي الله عنه  
 اتي پهتو ته مجاور پڇيو ته "توهين ڇا ٿا چاهيو؟" انهن چيو ته "مون کي پاڻ سڳورن ﷺ ان کي  
 ڊاهڻ جو حڪم ڏنو آهي." هن چيو ته "اهو ڪر توهان کان زور آهي." حضرت عمرو رضي الله عنه چيو ته  
 "ڇو ڀلا! هن چيو ته "توهان کي جهل ٿي ويندي." حضرت عمرو رضي الله عنه چيو ته "تڏهن تون اڃا  
 تائين باطل تي آهين؟ توتي افسوس! چاهي ٻڌندو ۽ ڏسندو آهي؟" ان کانپوءِ بت وٺ وڃي ان کي ڀڄي

<sup>1</sup> - مدارڪ التنزيل للنسفي تفسير آية البيعة.

چڏيائون ۽ پنهنجي ساٿين کي حڪم ڏنائون ته اهي ان خزاني واري جڳهه کي ڏاهي ڇڏين. پر ان مان ڪجهه ڪونه مليو. پوءِ مجاور کي چيائون ته "ڏي خبر ڇا تو پائين؟" هن چيو ته "مون الله تي ايمان آندو."

3- ساڳئي مهيني حضرت سعد رضي الله عنه بن زيد اشهلي کي ويهن سوارن سان گڏ منات ڏانهن موڪليو ويو. اهو قديد وٽ مشلل ۾ اوس ۽ خزرج ۽ غسان وغيره جو بت هو. جڏهن سعد رضي الله عنه اتي پهتو ته ان جي مجاور کين چيو ته "توهين ڇا ٿا چاهيو؟" پاڻ ورائيائين ته "منات کي ڏاهڻ تو گهران." هن چيو ته "تون ڄاڻ تنهنجو ڪم ڇاڻي." حضرت سعد رضي الله عنه منات ڏي وڌيا ته هڪ ڪاري اگهاڙي ۽ وڪريل وارن واري عورت نڪتي. اها پنهنجو سينو پٽي دانهون ڪري رهي هئي. کيس مجاور چيو ته "منات! پنهنجن ڪن نافرمانن کي ته پڪڙي وٺ. پر ايتري ۾ حضرت سعد رضي الله عنه تلوار هڻي هن کي پورو ڪري ڇڏيو. پوءِ اڳتي وڌي بت ڏاهي ڇڏيو ۽ ان کي توڙي ٿوڙي ڇڏيو. خزاني ۾ ڪجهه ڪونه مليو.

4- عزي کي ڏاهڻ کانپوءِ حضرت خالد بن وليد رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتو. پاڻ سڳورن عليه السلام کين ساڳئي مهيني شعبان 8 هـ ۾ بنو جذيمه ڏانهن موڪليو. پر مقصد حملو ڪرڻ نه پر اسلام جي پرچار ڪرڻ هو. حضرت خالد رضي الله عنه مهاجر ۽ انصاري ۽ بنو سليم جا ڪل ساڍا ٽي سو ڇٽا وٺي نڪتو ۽ بنو جذيمه وٽ پهچي اسلام جي دعوت ڏنائين. انهن أَسْلَمْنَا (اسان اسلام قبوليو) جي بجاءِ صَبَأْنَا (اسان پنهنجو دين ڇڏيو اسان پنهنجو دين ڇڏيو) چيو. تنهن تي حضرت خالد رضي الله عنه انهن کي مارڻ ۽ پڪڙڻ شروع ڪيو ۽ هڪ هڪ قيدي پنهنجي هر ساٿيءَ جي حوالي ڪيو. پوءِ هڪ ڏينهن حڪم ڪيو ته هر ماڻهو پنهنجي بانديءَ کي ماري ڇڏي. پر حضرت عبدالله بن عمر رضي الله عنه ۽ سندن ساٿين اهو حڪم مڃڻ کان انڪار ڪيو ۽ جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتا ته پيرائتي ڳالهه ڪري ٻڌايائون. پاڻ سڳورن عليه السلام ٻئي هٿ ڪنڀا ۽ ٻه پيرا فرمايو ته: "اي الله! خالد رضي الله عنه جيڪي ڪجهه ڪيو، منهنجو ان ۾ ڪو هٿ ڪونهي." (1)

ان موقعي تي رڳو بنو سليم وارن پنهنجا قيدي ماري هئا. انصارن ۽ مهاجرن ڪنهن کي نه ماريو هو. پاڻ سڳورن عليه السلام حضرت علي رضي الله عنه کي موڪلي سندن مقتولن جي ديت ۽ سندن ٿيل نقصان جو معاوضو پري ڏنو. ان معاملي ۾ حضرت خالد رضي الله عنه ۽ حضرت عبدالرحمان بن عوف رضي الله عنه جي وچ ۾ منهن ماري به ٿي پئي هئي. پاڻ سڳورن عليه السلام کي خبر ملي ته فرمايائون ته "خالد! ترس، منهنجن ساٿين کي ڪجهه چوڻ کان پاڻ جهل. الله جو قسم! جيڪڏهن احد جبل سون ٿي وڃي ۽ تون

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (1/450 - 2/622).



سڄي جو سڄو الله جي راه ۾ خريجي ڇڏين ته به تون منهنجن سائين مان ڪنهن هڪ ڄڻي جي هڪ صبح يا هڪ شام جي عبادت تائين نٿو پهچي سگهين." (1)

اها هئي مڪي جي فتح واري جنگ. اها ئي اها فيصله ڪن جهڙپ ۽ اها وڏي سوپ آهي، جنهن بت پرستيءَ جي سگهه کي پوريءَ طرح ٽوڙي ڇڏيو ۽ ان جا اهڙيءَ طرح ترا ڪڍيا جو عربستان ۾ وري ان جي نڪرڻ جو ڪوبه امڪان نه رهيو. چوٽه عام قبيلن مسلمانن ۽ بت پرستيءَ جي جهڙپ ۾ هڪ هڪ ٿي جو انتظار ڪري رهيا هئا. کين پليءَ پت پروڙ هئي ته حرم ۾ اهوئي رهندو. جيڪو حق تي هوندو. سندن ان يقين ۾ وڌيڪ مضبوطي اڌ صدي اڳ ٿيل ابره ۽ سندس سائين جي واقعي سان اچي وئي هئي. چوٽه عربن ڏسي ورتو هو ته ابره ۽ سندس سائين بيت الله تي ڪاهيو ته الله تعاليٰ کين هلاڪ ڪري ڇڏيو.

ياد رهي ته حديبيه وارو ٺاه هن واقعي جو پيش خيمو ثابت ٿيو. ان جي ڪري چوڏس امن امان ٿي ويو. ماڻهو هڪٻئي سان ڪليءَ طرح ڳالهائيندا هئا. اسلام بابت خيالن جي ڏي وٺ ۽ بحث مباحثا ٿيندا هئا. مڪي ۾ جيڪي مسلمان لڪ ۾ هئا، تن کي به ٺاه کانپوءِ پنهنجو دين ظاهر ڪرڻ ۽ ان جي پرچار ڪرڻ ۽ بحث مباحثا ڪرڻ جو موقعو مليو. انهن حالتن جي ڪري گهڻا ئي ماڻهو مسلمان ٿيا. تانجو اسلامي لشڪر، جيڪو اڳي ڪڏهن ٻن ٽن هزارن کان نه وڌيو هو، اهو هن غزوي ۾ ڏهه هزار ٿي ويو هو.

هن فيصلاڪن جنگ ماڻهن جون اکيون کولي ڇڏيون ۽ انهن تي پيل آخري پردو هٽي ويو، جيڪو اسلام قبول ٿيڻ ۾ رنڊڪ وجهي رهيو هو. هن سوپ کانپوءِ سڄي عربستان جي سياسي ۽ ديني آفق تي مسلمانن جو سج چمڪڻ لڳو ۽ هتي ديني ۽ دنياوي قيادت جي واڳ سندن هٿ ۾ اچي چڪي هئي.

ڄڻ ته حديبيه جي ٺاه کانپوءِ جيڪا مسلمانن جي حق ۾ چڱي تبديلي اچڻ شروع ٿي هئي، هن سوپ سان اها پوري ٿي وئي ۽ ان کانپوءِ هڪ نئون دور شروع ٿيو، جيڪو پوريءَ طرح مسلمانن جي حق ۾ هو ۽ جنهن ۾ پوري صورتحال مسلمانن جي قبضي ۾ هئي ۽ عرب قومن لاءِ رڳو هڪ ئي واٽ وڃي بچي هئي ته اهي جئن جي شڪل ۾ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي اسلام قبولين ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي دعوت ڏيڻ لاءِ دنيا جي چئني ڪنڊن ۾ ڦهلجي وڃن. ايندڙ ٻن سالن ۾ اهڙي قسم جون ئي تياريون ڪيو ويون.

<sup>1</sup> - هن غزوي جو تفصيل هيٺ ڏنل ڪتابن مان ڪيو ويو آهي. ابن هشام (2/389-437). صحيح بخاري 1/ كتاب الجهاد ۽ كتاب المناسك (2/612-615، 622) فتح الباري (8/3-27) صحيح مسلم (1/437، 438، 439-103/2، 103، 130) زاد المعاد (2/160-168) (168) مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 322-351).

## ٽيو مرحلو

هيءَ پاڻ سڳورن ﷺ جي پيغمبرائي زندگيءَ جو آخري مرحلو آهي. جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ جي پرچار جا نتيجا پڌرا ڪري ٿو. جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ تيويهه ورهين جي ڊگهي وٺ وٺان، ڏکيائين، محنتن، هنگامن ۽ فتنن فسادن ۽ خوني جهڙين کانپوءِ حاصل ڪيا هئا. ان ڊگهي دور ۾ مڪي جي فتح سڀ کان وڏي سرسي هئي، جيڪا مسلمانن کي ملي. ان جي ڪري حالتن جو رخ بدلجي ويو ۽ عربستان جي فضا ۾ فرق اچي ويو. اها سوپ حقيقت ۾ پاڻ کان اڳ ۽ پاڻ کانپوءِ جي ٻنهي دورن جي وچ ۾ هڪ وڏي ۽ وڏي جي حيثيت رکي ٿي. جيئن ته قريش، عربستان جي رهاڪن جي نظرن ۾ دين جا سنڀاليندڙ هئا ۽ سڄو عربستان سندن فرمانبردار هو، ان ڪري قريش جي هٿيار ڦٽا ڪرڻ جي معنيٰ اها هئي ته سڄي عربستان ۾ بت پرستي دين جو ڪم لهي ويو.

اهو آخري مرحلو ٻن ڀاڱن ۾ ورهائي سگهجي ٿو.

1. جهاد ۽ قتال

2. اسلام قبول ٿيڻ لاءِ قومن ۽ قبيلن جو هڪٻئي کان گوءِ ڪڍڻ

اهي ٻئي صورتون هڪٻئي سان ڳنڍيل آهن ۽ هن مرحلي ۾ هڪٻئي جي پٺيان ۽ گڏوگڏ به ٿينديون رهيون آهن. جڏهن ته اسان ڪتاب ۾ ٻنهي جو ذڪر ڌار ڌار ڪيو آهي. جيئن ته پٺئين صفحن ۾ جهڙپن ۽ جنگين جو ذڪر پئي هليو ۽ ايندڙ جنگ به ان جي هڪ ڪڙي آهي، ان ڪري هتي پهرين جنگين جو ئي ذڪر ڪجي ٿو.

## غزوه حنين

مڪي جي فتح هڪ اوجھي ضرب کانپوءِ حاصل ٿي هئي. جنهن تي عرب حيران هئا ۽ پاڙيسري قبيلن ۾ ايتري طاقت نه هئي جو هن اوجھي مٿان ڪڙڪيل واقعي کي منهن ڏئي سگهن. ان ڪري ڪن هٿيلن ۽ سگهن قبيلن کي ڇڏي، باقي سڀئي قبيلن هٿيار ڦٽا ڪري رهيا هئا. هٿيلن قبيلن ۾ هوازن ۽ ثقيف سڀ کان اڳڙا هئا. ساڻن گڏ مضر، جشم ۽ سعد بن ڪرب قبيلن ۽ بنو هلال جا ڪجهه ماڻهو به شامل ٿي ويا هئا. انهن سڀني ئي قبيلن جو تعلق قيس غيلان سان هو. کين اها ڳالهه انا جي خلاف پئي لڳي ته مسلمانن آڏو هٿيار ڦٽا ڪيا وڃن. ان ڪري انهن قبيلن، مالڪ بن عوف نصريءَ وٽ گڏ ٿي رٿيو ته مسلمانن تي چڙهائي ڪئي وڃي.

دشمن جو نڪرڻ ۽ اوطاس ۾ اچي لهڻ:— ان فيصلي کانپوءِ مسلمانن سان وڙهڻ لاءِ نڪتا ته سڀهه سالار مالڪ بن عوف، ماڻهن سان گڏ ڍور ڍڳا ۽ ٻار ٻچا به چڪي آيو ۽ اڳتي وڌي اچي اوطاس جي واديءَ ۾ لٿو. اها وادي حنين جي ويجھو بنو هوازن جي علائقي ۾ آهي، پر اها وادي حنين کان ڌار آهي. حنين، هڪ ٻي وادي آهي، جيڪا ذوالمجاز جي پاسي ۾ آهي. اتان کان عرفات واري واٽ کان مڪي جو رستو ڏهن ميلن کان وڌيڪ آهي.<sup>(1)</sup>

جنگي ماهر جي سڀهه سالار تي تنقيد:— اوطاس ۾ لهڻ کانپوءِ ماڻهو اچي سالار وٽ گڏ ٿيا. انهن ۾ دُرَيْد بن صم به هو. اهو جهور پوڙهو ٿي چڪو هو ۽ هاڻي جنگي ڄاڻ جي ڪري صلاحون ڏيڻ کانسواءِ ٻئي ڪنهن به ڪم جو نه رهيو هو، پر وڏو جوڌو ۽ جنگي ماهر رهيو هو. ان پيڇيو ته "توهان ڪهڙيءَ واديءَ ۾ اچي لٿا آهيو؟" وراڻي مليس ته "اوطاس ۾." هن چيو ته "اها سوارن جي گهوڙن ڍوڙائڻ لاءِ تمام پلي جڳهه آهي. نه ڪو پٿريلو آهي ۽ نه ڪو کڏا ڪوٺا اٿس. نه وري پريري لاهي اٿس، پر ڇا ڳالهه آهي جو آئون اٿن جي بڙبڙ، گڏهن جون هيٺيون ۽ ٻارن جو روڄ راڙو ۽ پڪرين جي مين مين پيو ٻڌان؟" ماڻهن ٻڌايس ته مالڪ بن عوف، فوج سان گڏ سندن ٻار ٻچا ۽ ڍور پڪريون به ڪاهي آيو آهي. تنهن تي دُرَيْد، مالڪ کي سڏائي پيڇيو ته "تو ائين چو ڪيو آهي؟" هن چيو ته "مون سوچيو ته هر ماڻهوءَ سان سندس گهر وارا ۽ مال لڳائي ڇڏيان ته جيئن ان جي حفاظت جي جذبي سان جنگ ڪن." دُرَيْد چيو ته "تون ته صفا ڪو ريڊيار آهين. (يعني تو سڄي عمر رڍون ئي چاريون آهن ڇا؟) ڀلا هار کائيندڙ کي به ڪا شيءِ روڪي سگهي ٿي؟ ڏس

<sup>1</sup> - فتح الباري (27/8، 42).

جيڪڏهن جنگ ۾ تون ٿو سوڀ ماڻين ته ان لاءِ به توکي تيرن ۽ تلوارن سان مسلح ماڻهو مفيد آهن ۽ جي هارائين ٿو ته پوءِ توکي پنهنجي ٻارن ٻچن ۽ مال لاءِ خوار ٿيڻو پوندو. "پوءِ دُرِيدَ ڪن قبيلن ۽ سردارن بابت پڇا ڪئي ۽ ان کانپوءِ چيائين ته "اي مالڪ! تو بنو هوازن جا ٻار ٻچا، سوارن جي سامهون آڻي ڪو چڱو ڪم نه ڪيو آهي. انهن کي سندن علائقي جي هٿيڪن ماڳن تي موڪلي ڇڏ. تنهن کانپوءِ گهوڙي جي پٺ تي ويهي بي دينن سان مهاڏو اٽڪاءِ. جيڪڏهن تون کڻي وئين ته پويان اچي توسان ملندا پر جي هاراجي ته به گهٽ ۾ گهٽ تنهنجا ٻار ٻچا ته هٿيڪا هوندا."

پر سڀه سالار مالڪ اها رت ٽڙي ڇڏي ۽ چيو ته "الله جو قسم! آئون ائين نٿو ڪري سگهان. تون پوڙهو ٿي ويو آهين ۽ تنهنجو عقل جواب ڏئي ويو آهي. واللہ! يا ته هوازن منهنجي اطاعت ڪن يا آئون هن تلوار تي ٽيڪ لڳايان ۽ اها منهنجي پٺ مان آريار ٿي وڃي." حقيقت ۾ مالڪ نٿي چاهيو ته هن جنگ ۾ دُرِيدَ جو نالو يا صلاح به شامل ٿئي. هوازن چيو ته اسان تنهنجي پويان آهيون. تنهن تي دُرِيدَ چيو ته "هيءُ اهڙي جنگ آهي، جنهن ۾ آئون نه (صحيح طور تي) شامل آهيان ۽ نه (صفا) ڌار آهيان.

يَا لَيْتَنِي فِيهَا جَدَعٌ ... أَحَبُّ فِيهَا وَأَضَعُ  
أَفُودُ وَطَفَاءَ الدَّمْعِ ... كَأَنَّهَا شَاةٌ صَدَعُ

"ڪاش آئون هن مهل جوان هجان ها. وٺ پڪڙ ۽ ڊوڙ ڏک ڪريان ها. ڊگهين تنگن، وڏن وارن ۽ پلي گهوڙي تي سواري ڪريان ها. (يعني ان تي چڙهي مسلمانن سان وڙهان ها.)"

دشمنن جا خبرو:- ان کانپوءِ مالڪ جا اهي خبرو پهتا، جيڪي مسلمانن جي چرير جي خبر چار وٺڻ ويا هئا. سندن حالت اها هئي جو سندن سنڌ سنڌ ساڻا ٿي ويا هئا. مالڪ چيو ته: "ستياناس ٿيئو! هي توهان کي ڇا ٿيو آهي؟" انهن ورائيو ته: "اسان چٽڪرن گهوڙن تي ڳورا چٽا انسان ڏنا، تنهن کانپوءِ اسان جي اها حالت ٿي وئي، جيڪا تون ڏسين پيو."

پاڻ سڳورن ﷺ جا خبرو:- ٻئي پاسي پاڻ سڳورن ﷺ کي به دشمنن جي ڪاهي اچڻ جون خبرون پهچي چڪيون هيون، تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ ابو حرد اسلمي رضه کي اهو حڪم ڏئي موڪليو ته انهن سان ملي جلي وڃي رهي ۽ حالتن جي نيڪ نيڪ خبر وٺي موتي اچي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڄاڻ ڏي. هن ائين ٿي ڪيو.

پاڻ سڳورا ﷺ مڪي کان حنين ڏانهن:- چنبر 6 شوال 8 هه تي پاڻ سڳورا ﷺ مڪي مان هليا. ان ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ کي مڪي ۾ رهندي اوڻيهون ڏينهن ٿيو هو. ٻارنهن هزار فوج پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ هئي. ڏهه هزار اها جيڪا مڪي فتح ڪرڻ مهل پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ

هئي ۽ ٻه هزار مڪي جا رهاڪو هئا، جن ۾ گهڻائي نون مسلمانن جي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ، صفوان بن اميه کان هڪ سو زرهون، سمورن اوزارن سان گڏ اوزاريون ورتيون ۽ عتاب بن اسيد رضه کي مڪي جو گورنر مقرر ڪيائون.

پنهنجن ڪانپوءِ هڪ سوار اچي ٻڌايو ته مون فلاڻي فلاڻي جبل تي چڙهي ڏٺو ته رڳو بنو هوازن پئي ڏسڻ ۾ آيا. ساڻن عورتون، جانور ۽ پڪريون به آهن. پاڻ سڳورن ﷺ مسڪرائيندي فرمايو ته "انشاء الله! سڀاڻي اهو سڀ مسلمانن جو مال غنيمت هوندو." رات تي ته حضرت انس بن ابي مرثد غنوي رضه پاڻمرادو پهرو ڏنو.<sup>(1)</sup>

حنين ويندي گس تي ماڻهن هڪ پير جو وڻ ڏٺو. جنهن کي ذات انواط چيو ويندو هو. (مشرڪ) عرب ان تي پنهنجا هٿيار لٽڪائيندا هئا ۽ ان وٽ پنهنجا جانور ڪهندا هئا ۽ اتي ميلو لڳائيندا هئا. ڪن فوجين پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ته "توهان ﷺ اسان لاءِ ذات انواط ٺاهي ڏيو، جيئن انهن جو ذات انواط آهي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "الله اڪبر! ان هستيءَ جو قسم جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، توهان اهڙي ئي ڳالهه ڪئي آهي، جهڙي موسيٰ عليه السلام جي قوم چئي هئي ته: ﴿اجْعَلْ لَنَا إِلَهًا كَمَا لَهُمْ آلِهَةٌ﴾ "اسان جي لاءِ به هڪ معبود بنا، جهڙي نموني انهن جي لاءِ معبود آهي" لڳي ٿو ته توهان به انهن جا پير ورتا آهن.<sup>(2)</sup>

وات تي ڪن ماڻهن لشڪر جي گهڻائي ڏسي چيو ته اسين اڄ هارائي ئي نٿا سگهون. پاڻ سڳورن ﷺ کي اها ڳالهه نه وڻي هئي.

**اسلامي لشڪر تي تيراندازن جو اوچتو حملو:-** اسلامي لشڪر، اڱاري ۽ اربع جي وچ واري رات جو 10 شوال تي حنين پهتو پر مالڪ بن عوف هتي پهرين پهچي، پنهنجو لشڪر رات جي پيٽ ۾ ئي هن واديءَ ۾ لاهي، ان کي رستن، لنگهن، لڪن، لڪل جڳهين ۽ دڙن ۾ ڦهلائي ۽ لڪائي ڇڏيو هو ۽ ان کي حڪم ڏئي ڇڏيو هو ته جيئن ئي مسلمان ڏسڻ ۾ اچن ته کين تيرن سان پروڻ ڪري ڇڏجو ۽ پوءِ انهن تي اوچتو ڪاهي پئجو.

ٻئي پاسي سج اڀرڻ مهل پاڻ سڳورن ﷺ لشڪر جي ترتيب ۽ تنظيم ڪئي ۽ جهنڊا ٻڌي ماڻهن ۾ ورهايا، پوءِ صبح ساڻ مسلمانن اڳتي وڌي حنين جي واديءَ ۾ پير پاتا. انهن کي دشمنن جي ڪاٻه ڄاڻ نه هئي ته ڪو واديءَ جي سوڙهن لنگهن تي ثقيف ۽ هوازن جا مانجهي مرد گهات هڻيو ويٺا آهن، ان ڪري اهي اڻڄاڻائيءَ جي حالت ۾ ڏاڍي اطمينان سان لهي رهيا هئا ته اوچتو متن تيرن

<sup>1</sup> - سنن ابي دائود مع المعبود (317/2) باب فضل الحرس في سبيل الله.

<sup>2</sup> - ترمذي (41/2)، مسند احمد (281/5).

جو وسڪارو شروع ٿي ويو. ان کانپوءِ هڪدم دشمنن جي ڪٽڪن گڏجي حملو ڪيو. ان اوجھتي ڪاھ جي ڪري مسلمان پاڻ جھلي نہ سگھيا ۽ انھن ۾ ڦڙڦوٽ پئجي وئي. اھا پڌري پٽ ھار ٿيندي ڏسي ابوسفیان بن حرب، جيڪو اڃا تازو مسلمان ٿيو ھو، چيو تہ "ھاڻي ھنن جي پيچ پيچان سمنڊ کان پھرين پوري ڪانہ ٿيندي." جبلہ يا ڪلدہ بن جنيد ھڪل ڪري چيو تہ "ڏسو اڄ جادو ڪوڙو ٿي ويو."

اھو ابن اسحاق جو بيان آھي. براء بن عازب رضي الله عنه جو صحيح بخاريءَ ۾ آيل بيان ان کان مختلف آھي. انھن چيو تہ ھوازن، تيرانداز ھئا. اسان حملو ڪيو تہ وٺي پڳا. تنھن کانپوءِ اسان غنيمت تي ڪاھي پياسين تہ اسان جي تيرن سان آجيان ڪئي وئي.<sup>(1)</sup>

حضرت انس رضي الله عنه جو صحيح مسلم ۾ ڏنل بيان ڏسڻ ۾ تہ ان کان ٿورو مختلف لڳي ٿو پر گھڻي حد تائين ان جي تائيد ڪري ٿو. حضرت انس رضي الله عنه جو بيان آھي تہ "اسان مڪو فتح ڪيو، پوءِ حنين تي چڙھائي ڪئيسين. مشرڪ اھڙو سھڻي نموني قطارون ٻڌي بيٺا ھئا، جھڙيون مون اڳي ڪڏھن نہ ڏٺيون ھيون. سوارن جي قطار، وري پيادن جي قطار، وري انھن جي پٺيان عورتون، وري رڍون پڪريون، پوءِ ٻيا جانور. اسين گھڻائيءَ ۾ ھئاسين. اسان جا سوار ميمن ۾ خالد بن وليد رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾ ھئا، پر انھن (دشمنن جي تير ھڻڻ ڪري) اسان جي پٺيان اچي پناھ ورتي ۽ ٿوري دير ۾ اسان جا سوار پيچي روانا ٿيا. اعرابي بہ پيچي ويا ۽ اھي ماڻھو بہ، جن کي تون چاڻي سڃاڻين ٿو."<sup>(2)</sup>

بھرحال جڏھن ڦڙڦوٽ پئي تہ پاڻ سڳورن عليه السلام ساڄي پاسي بيھي ھڪل ڪئي "ھيڏانھن اچو آئون عبدالله جو پٽ محمد عليه السلام آھيان." ان وقت پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ ڪجھہ مهاجرن ۽ ڪٽنب وارن کانسواءِ ڪير بہ نہ ھو.<sup>(3)</sup>

انھن نازڪ لمحن ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام جي بي مثال شجاعت پڌري ٿي. يعني اھڙي شديد پيچ پيچان ھوندي بہ پاڻ سڳورن عليه السلام جو چھرو مبارڪ ڪافرن ڏانھن ھو ۽ پاڻ سڳورا عليه السلام اڳتي وڌڻ لاءِ خچر کي اڙي ھڻي رھيا ھئا ۽ فرمائي رھيا ھئا تہ:

أَنَا النَّبِيُّ لَا كَذِبَ      أَنَا ابْنُ عَبْدِ الْمُطَّلَبِ

<sup>1</sup> - صحيح بخاري: باب ويوم حنين اذا عجبتمكم.

<sup>2</sup> - فتح الباري (29/8).

<sup>3</sup> - ابن اسحاق مطابق اھي نوَيا ڏھ چڻا ھئا. نوري جو بيان آھي تہ: پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ ٻارنھن چڻا ثابت قدم بيٺا رھيا. امام احمد ۽ حاکم، ابن مسعود رضي الله عنه کان روايت آندي آھي تہ آئون حنين واري ڏينھن پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ ھوس. ماڻھو پٺ ڏئي پيچي ويا ھئا، پر پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ اسي مهاجر ۽ انصار بيٺا رھيا. اسين پيادا ھئاسين ۽ اسان پٺ نہ ورائي. ترمذيءَ، سند حسن سان ابن عمر رضي الله عنه جي حديث ڏني آھي تہ: "مون پنھنجن ھمراھن کي حنين واري ڏينھن ڏٺو تہ انھن پٺ کڻي ڦيري آھي ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام سان گڏ ھڪ سو چڻا بہ نہ آھن. (فتح الباري 29/8، 30).

”يعني آئون نبي آهيان اهو ڪوڙ ڪونهي. آئون عبدالطلب جو پٽ آهيان.“

پر ان مهل ابو سفيان بن حارث رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڇچر جي واڳ جهلي بيٺو هو ۽ حضرت عباس رضي الله عنه رڪاب کڻي جهلي هئي ته متان تيزيءَ سان اڳتي نڪري نه وڃي. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام پنهنجي چاچي عباس رضي الله عنه کي، جن جو آواز ڳرو هو، حڪم ڪيو ته پاڻ صحابه سڳورن رضي الله عنه عنهم کي هڪل ڪري حضرت عباس رضي الله عنه جو بيان آهي ته مون وڏي واڪي هڪل ڪئي ته ”وڻ وارو...! (بيعت رضوان وارو) ڪٿي آهيو؟ واللہ اهي منهنجو آواز ٻڌي ائين مڙيا، ڇڻ ڳئون پنهنجن ٻچن ڏانهن مڙي ٿي ۽ وراثيائون ته ”هاڻو، هاڻو، اچون پيا، اچون پيا.“<sup>(1)</sup> حالت اها ٿي جو ڪنهن شخص پنهنجي اٺ کي موڙڻ جي ڪوشش ٿي ڪئي ۽ اهو نٿي مڙيو ته پنهنجي زره ان جي ڳچيءَ تي اچائي هئي. پنهنجي تلوار ۽ ڍال سنڀالي، اٺ تان ٽپي ٿي پيو ۽ اٺ کي ڇڏي سڏ ڏانهن ٿي پڳو. اهڙيءَ طرح جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ سو ڪن ماڻهو اچي گڏ ٿيا ته انهن، دشمنن جي آجيان ڪندي ٻيهر لڙائي شروع ڪري ڏني.

ان کانپوءِ انصارن کي هڪلون ڪيون ويون. ”او انصاريو! او... انصاريو!“ پوءِ اهي هڪلون بنوحارث بن خزرج تائين محدود ٿي ويون. ٻئي پاسي مسلمان جتا جهڙيءَ رفتار سان ميدان ڇڏي ويا هئا، اهڙيءَ رفتار سان ئي هڪٻئي جي پٺيان موٽڻ لڳا ۽ ڏسندي ئي ڏسندي ڇتي جنگ ڇڙي پئي. پاڻ سڳورن عليه السلام، جنگ جي ميدان ڏانهن نهاري ڏٺو ته ڇتي ويڙه پئي هلي. فرمايائون ته ”هاڻي باهه پٽڪي چڪي آهي.“ پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام پٺ تان هڪ مٺ جيتري مٽي کڻي دشمنن ڏانهن اچائيندي فرمايو ته ”شَاهَتُ الْوُجُوهُ“ (جهرا بگڙي وڃن). اها مٺ جيتري مٽي اهڙيءَ طرح پڪڙي جو دشمنن جو اهڙو ڪوبه ماڻهو نه بچيو، جنهن جي اک ۾ مٽي نه وئي هجي. ان کانپوءِ سندن سگهه ٽٽي پئي ۽ سندن ڪم لهي ويو.

**دشمنن جي هار:—** مٽي اچڻ جي ڪجهه گهڙين کانپوءِ دشمنن کي پڌري شڪست نصيب ٿي. ثقيف جا اٽڪل ستر ماڻهو مارجي ويا ۽ سندن سمورو مال، هٿيار، ٻار ۽ ٻچا مسلمانن جي هٿ لڳا. ان بابت ئي الله تعاليٰ پنهنجي هن قول ۾ ارشاد فرمايو آهي ته:

﴿وَيَوْمَ حُنَيْنٍ إِذْ أَعْجَبْتَكُمْ كَثْرَتُكُمْ فَلَمْ تُغْنِ عَنْكُمْ شَيْئًا وَضَاقَتْ عَلَيْكُمُ الْأَرْضُ بِمَا رَحُبَتْ ثُمَّ وَلَّيْتُم مُّدْبِرِينَ (25) ثُمَّ أَنْزَلَ اللَّهُ سَكِينَتَهُ عَلَى رَسُولِهِ وَعَلَى الْمُؤْمِنِينَ وَأَنْزَلَ جُنُودًا لَمْ تَرَوْهَا وَعَذَّبَ الَّذِينَ كَفَرُوا وَذَلِكَ جَزَاءُ الْكَافِرِينَ (26)﴾ (التوبة)

<sup>1</sup> - صحيح مسلم (100/2).

” ۽ (پڻ جنگ) حنين جي ڏينهن جو جڏهن اوهان جي گهٽائيءَ اوهان کي عجب ۾ وڌو ۽ اوهان کان اوهان جي گهٽائي ڪجهه به نه تاري سگهي ۽ زمين پنهنجي ويڪرائي هوندي (به) اوهان تي سوڙهي ٿي ويئي، پوءِ اوهين پٺيرا ٿي ڦريو. موتي الله پنهنجي پار کان آرام پنهنجي پيغمبر تي ۽ مؤمنن تي لائو ۽ (ملائڪن جو) لشڪر لائين جن کي نه ٿي ڏنو ۽ ڪفرن کي سزا ڏنائين ۽ اها ڪفرن جي سزا آهي.“

**دشمنن جو تعاقب ۾** :- هارائڻ کانپوءِ دشمنن جي هڪ ٽولي طائف ڏانهن پاڇا کاڌي، هڪ نخله ڏانهن ڀڳو ۽ هڪ اوطاس جي واٽ ورتي. ٻنهي ڌرين ۾ ٿورڙي جهڙپ به ٿي، ان کانپوءِ مشرڪ ڀڄي نڪتا. باقي هن ئي جهڙپ ۾ دستي جو اڳواڻ حضرت ابو عامر اشعري رضي الله عنه شهيد ٿي ويو. مسلمان شهسوارن جي هڪ ٻي جماعت، نخله ڏانهن ڀڄندڙ مشرڪن جي پويان لڳي ۽ دريد بن صهه کي وڃي پڪڙيائون. جنهن کي ربيع بن ربيع رضي الله عنه ماري ڇڏيو.

هارايل مشرڪن جي ٿئي ۽ سڀ کان وڏي ٽولي جي پٺيان پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم غنيمت جو مال ميڙي هٿيڪو ڪرڻ کانپوءِ پاڻ هليا هئا، جنهن طائف جي واٽ ورتي هئي.

**غنيمت:-** غنيمت جو مال هي هو، ڇهه هزار قيدي، چوويهه هزار اٺ، چاليهه هزارن کان مٿي ٻڪريون، چار هزار اوقيه چاندي (يعني هڪ لک سٺ هزار درهم، جنهن جو مقدار ڇهن ڪوئنٽلن کان ڪجهه ڪلو گهٽ ٿئي ٿو) پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم اهو سڀ ڪجهه گڏ ڪرڻ جو حڪم ڏنو. پوءِ اهو جعرانه ۾ حضرت مسعود بن عمرو غفاري رضي الله عنه جي نگرانيءَ ۾ رکيائون ۽ جيستائين طائف جي غزوي مان آجا نه ٿيا، اهو ورهائون ڪون.

قيدين ۾ شيماء بنت حارث سعديه به هئي، جيڪا پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي تيج شريڪ پيڻ هئي. کين پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ آندو ويو ۽ سندن تعارف ڪرايو ويو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم هڪ اهڃاڻ وسيلي کين سڃاڻي ورتو. پوءِ کين ڏاڍي عزت ڏنائون ۽ پنهنجي چادر ويڃائي ويهارايون ۽ احسان ڪندي کين سندن قوم ڏانهن موڪلي ڇڏيائون.



## طائف وارو غزوو

اهو غزوو حقيقت ۾ حنين واري جنگ جو ئي حصو هو. جيئن ته هوازن ۽ ثقيف جا گهڻا ڀاڳيلا پنهنجي اڳواڻ مالڪ بن عوف نصريءَ سان گڏ طائف ڏانهن ئي ڀڄي اچي قلعي ۾ لڪا هئا، تنهنڪري پاڻ سڳورا ﷺ، حنين مان واندا ٿي ۽ جعرانه ۾ غنيمت جو مال سنڀالي رکي، ان ئي مهيني شوال سنه 8 هـ ۾ طائف ڏانهن هليا.

هن مقصد لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ پهرين خالد بن وليد رضه جي اڳواڻيءَ ۾ هڪ هزار فوجين جو دستو روانو ڪيو، پوءِ پاڻ به طائف ڏانهن نڪتا. وات تي نخل، ڀوانيه، پوءِ قرن منازل ۽ پوءِ ليه وٽان لنگهيا. ليه ۾ مالڪ بن عوف جو هڪ قلعو هو. پاڻ سڳورن ﷺ اهو ڏهراڻي ڇڏيو. پوءِ اڳتي وڌندي طائف پهتا ۽ طائف ويجهو لهي گهيرو ڪري ڇڏيائون.

گهيرا ڪجهه ڊگهو ٿي ويو. جيئن صحيح مسلم ۾ حضرت انس رضه کان روايت آهي ته اهو چاليهه ڏينهن هليو. ڪن سيرت نگارن ان جو مدو ويهه ڏينهن ٻڌايو آهي. ڪن ڏهن ڏينهن کان وڌيڪ، ڪن ارڙهن ڏينهن ته ڪن وري پنڌرنهن ڏينهن.<sup>(1)</sup>

گهيرا ۽ هلندي ٻنهي پاسان تير ۽ پٿر اچلڻ رهيا، پر شروع ۾ ته مسلمانن تي ايڏا تير وسايا ويا، چڻ هوا ۾ مڪڙ اڏامي رهيا هجن. ان سان گهڻائي مسلمان گهڻائي پيا ۽ ٻارنهن چڻا شهيد ٿي ويا ۽ انهن (مسلمانن) کي پنهنجي ڪيمپ کڻي موجوده طائف واري مسجد وٽ اچڻو پيو.

پاڻ سڳورن ﷺ، انهن حالتن کي منهن ڏيڻ لاءِ طائف وارن لاءِ منجنيقون لڳايون ۽ ڪافي گولا اچليا، جنهن سان قلعي جي ڀت ۾ سوراخ ٿي پيو ۽ مسلمانن جو هڪ ٽولو دٻاڻي ۾ ويهي باه لڳائڻ لاءِ ڀت تائين پهچي ويو، پر دشمنن، انهن تي لوهه جا تتل ٽڪرا اچايا، جنهن سان مجبور ٿي مسلمان دٻاڻي منجهان نڪري آيا، پر ٻاهر ايندي ئي دشمنن، مٿن تيرن جي وسڪار لاهي ڏني، جن سان ڪي مسلمان شهيد ٿي پيا.

پاڻ سڳورن ﷺ دشمنن کي آڻ مڃائڻ لاءِ هڪ ٻي جنگي رٿا جوڙي حڪم ڏنو ته انگورن جا وڻ ڪٽي ساڙيا وڃن. مسلمانن اهو ڪم زور شور سان ڪيو. تنهن تي ثقيف وارن الله ۽ مٿي ماڻيءَ جا واسطا وجهي گذارش ڪئي ته وڻ ڪٽڻ بند ڪيا وڃن. پاڻ سڳورن ﷺ الله جي واسطي ۽ مٿي ماڻيءَ جي ڪري پنهنجو هٿ جهلي ورتو.

<sup>1</sup> - فتح الباري (45/8).

گهيرا ۽ هلندي پاڻ سڳورن ﷺ پڙهو گهماريو ته جيڪو به غلام قلعي مان لهي اسان وٽ ايندو، اهو آزاد آهي. ان پڙهي کانپوءِ تيهه جڻا قلعي مان نڪري اچي مسلمانن سان مليا. (1) انهن ۾ ئي حضرت ابوبڪره رضه به هو. پاڻ قلعي جي ڀت تي چڙهي هڪ چرخيءَ يا گراڙيءَ وسيلي (پوڻ جنهن سان ڪوه مان پاڻي ڀريو هو.) لٽڪي هيٺ آيا هئا جيئن ته (گراڙيءَ يعني پوڻ کي عربيءَ ۾ بڪره چون ٿا.) ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ سندن ڪنيت ابوبڪره رکي ڇڏي. انهن سڀني غلامن کي پاڻ سڳورن ﷺ آزاد ڪري ڇڏيو ۽ هر هڪ کي هڪ هڪ مسلمان جي حوالي ڪيو ته ان کي سامان ڏنو وڃي. اهو حادثو قلعي وارن لاءِ ڪاپاري ڌڪ هو.

جڏهن گهيرا ڊگهو ٿي ويو ۽ قلعو هٿ ايندي ڏسڻ ۾ نه پئي آيو ۽ مسلمانن تي تيرن جي وسڪار ۽ تتل لوهه اڇلايو ويو ۽ ٻئي پاسي قلعي وارن سڄي سال جو کاڌو پيئو گڏ ڪري ورتو هو. تنهن تي پاڻ سڳورن ﷺ نوفل بن معاويه ديلي سان صلاح ڪئي. ان چيو ته لومڙي پنهنجي گهر ۾ گهڙي وئي آهي. جيڪڏهن توهان ڄمي بيٺا ته (نيٺ) جهلي وٺندا ۽ جي ڇڏي هليا ويندا ته اهي توهان کي ڪجهه به ڪري نه سگهندا. اهو ٻڌي پاڻ سڳورن ﷺ گهيرو ختم ڪرڻ جو فيصلو ڪيو ۽ عمر رضه جي ذريعي پڙهو ڏياريو ته اسين انشاءَ الله سپاڻي موتي وينداسين، پر اهو اعلان اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي نه وڻيو. اهي چوڻ لڳا ته "هون! طائف فتح ڪري موٽبو!" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "چڱو پوءِ سپاڻي لڙائيءَ لاءِ هلنداسين." تنهن کانپوءِ ٻئي ڏينهن ماڻهو لڙائيءَ لاءِ ويا پر ڌڪ کائڻ کانسواءِ ڪجهه به هڙ حاصل نه ٿين ته ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ وري فرمايو ته "انشاءَ الله! اسين سپاڻي موٽنداسون. تنهن تي ماڻهن ۾ خوشيءَ جي لهر ڊوڙي وئي ۽ انهن ڪجهه ڪڇڻ کانسواءِ سامان ٻڌڻ شروع ڪيو. اها حالت ڏسي پاڻ سڳورا ﷺ مرڪندا رهيا. ان کانپوءِ جڏهن ماڻهو ٽپڙ ٻڌي هلڻ لڳا ته پاڻ سڳورن ﷺ هيئن فرمايو ته:

”اَبُيُون، تَابُيُون، عَابِدُون لَرَبَّنَا حَامِدُونَ“

يعني اسين موٽڻ وارا، توبه ڪرڻ وارا، عبادت گذار آهيون ۽ پنهنجي پاڻهار جي ساراهه ڪندا آهيون.

چيو ويو ته "يا رسول الله ﷺ! توهان ثقيف کي پڻيو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "اي الله! ثقيف کي هدايت ڏي ۽ انهن کي اسان ڏانهن آڻ."

**جعراڻه ۾ غنيمت جي مال جي ورڇ:-** پاڻ سڳورا ﷺ گهيرا ۽ ختم ڪري موٽيا ته جعراڻه ۾ غنيمت جي مال جي ورڇ ڪرڻ کانسواءِ گهڻائي ڏينهن ترسي پيا. دير ڪرڻ جو ڪارڻ اهو هو ته متان

1 - صحيح بخاري (260/2).

هوازن جو وفد تائب ٿي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي ۽ انهن جيڪي ڪجهه هٿان وڃايو آهي، اهو سڀ وٺي وڃي. پر دير ڪرڻ کانپوءِ به جڏهن ڪير نه پهتو ته پاڻ سڳورن ﷺ مال ورهائڻ شروع ڪيو ته جيئن قبيلن جا سردار ۽ مڪي جا چڱا مٿس، جيڪي وڏي لالچ سان ڏسي رهيا هئا، تن جون زبانون بند ٿي وڃن. مؤلفه القلوب<sup>(1)</sup> جو پاڳ سڀ کان پهرين وريو ۽ کين وڏيون وڏيون پٽيون ڏنيون ويون.

ابوسفیان بن حرب کي چاليهه اوقيه (چهه ڪلو کان ڪجهه گهٽ چاندي) ۽ هڪ سؤ اٺ ڏنا ويا.<sup>(2)</sup> هن چيو ته "منهنجو پٽ يزيد؟" پاڻ سڳورن ﷺ ايترو ئي يزيد لاءِ به ڏنو. هن چيو ته "۽ منهنجو پٽ معاويه؟" پاڻ سڳورن ﷺ ايترو ئي حصو معاويه کي به ڏنو. (يعني اڪيلي ابوسفیان کي پٽن سميت اٽڪل ارڙهن ڪلو چاندي ۽ ٽي سؤ اٺ ملي ويا.)

حڪيم بن حزام کي هڪ سؤ اٺ ڏنا ويا ته هن وڌيڪ سؤ اٺن جي گهر ڪئي. تنهن تي کيس پيا به سؤ اٺ ڏنا ويا. اهڙيءَ طرح صفوان بن اميه کي سؤ اٺ، وري سؤ اٺ ۽ وري سؤ اٺ (ڪل ٽي سؤ اٺ) ڏنا ويا.

حارث بن ڪلده کي به سؤ اٺ ڏنا ويا ۽ ڪن ٻين قريش ۽ غير قريش سردارن کي به سؤ سؤ اٺ ڏنا ويا. ڪن ٻين کي پنجاهه پنجاهه ۽ چاليهه چاليهه اٺ ڏنا ويا. ايستائين جو اها ڳالهه قهلجي وئي ته محمد ﷺ اهڙيءَ طرح عطيو ڏي ٿو ڇڻ کين ڪٿڻ جو ڊپ ئي ڪونهي. تنهن کانپوءِ اعرابي مال وٺڻ لاءِ ڪاهي پيا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي هڪ وڻ هيٺان اچي سوڙهو ڪيائون. اتفاق سان پاڻ سڳورن ﷺ جي چادر هڪ وڻ ۾ قاسي پئي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "منهنجي چادر ورائي ڏيو. ان هستيءَ جو قسم! جنهن جي هٿ ۾ منهنجي جان آهي، جيڪڏهن مون وٽ تهاڻه جي وٿن جيترا جانور هجن ته اهي به توهان ۾ ورهائي ڇڏيندس. پوءِ به توهان مون کي نڪو بخيل ڏسندؤ نه پاڙيو ۽ نه ئي ڪوڙو."

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي اٺ جي ڀر ۾ بيهي ان جي ٿوهي تان ڪجهه وار پٽيا ۽ چپٽيءَ ۾ جهلي مٿي ڪندي فرمايائون ته "والله مون لاءِ هن مال مان ڪجهه به نه بچيو آهي، ويندي ايترا وار به نه. رڳو خمس آهي ۽ اهو به توهان ۾ ئي ورهائيو آهي."

مؤلفه القلوب کي ڏيڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت زيد بن ثابت رضي الله عنه کي حڪم ڏنو ته غنيمت جو مال ۽ فوج کي گڏي، ماڻهن ۾ غنيمت جي مال جي وڃ جو ڪاٿو لڳائي. ان ائين

<sup>1</sup> - اهي ماڻهو جيڪي نوان مسلمان ٿيا هجن ۽ سندن دليون ڳنڍڻ لاءِ کين مالي مدد ڏني وڃي ته جيئن اهي اسلام کي مضبوطيءَ سان جهلين.

<sup>2</sup> - الشفاء بتعريف حقوق المصطفى للقاضي عياض (68/1).

ڪيو ته هڪ هڪ فوجيءَ جي پتيءَ ۾ چار چار اٺ ۽ چاليهه چاليهه ٻڪريون آيون. جيڪي شهسوار هئا، تن کي ٻارنهن اٺ ۽ هڪ سؤ ويهه ٻڪريون مليون.

اها وڃڻ ڏاهپ پري سياست تي ٻڌل هئي، چوٽه دنيا ۾ اهڙا گهڻائي ماڻهو آهن جيڪي پنهنجي عقل سان نه پر بيت وسيلي سڌا ڪيا ٿا وڃن. يعني جيئن جانورن کي گاهه جي مٺ ڏيکاربي ته اهي ان ڏانهن وڌندا اچي پنهنجي جاءِ تي پهچندا آهن، اهڙيءَ طرح مٺي جاڻايل ماڻهو پاڻ ڏانهن ڇڪڻ لاءِ به مختلف طريقا استعمال ڪيا آهن ته جيئن اهي ايمان سان مانوس ٿي ان لاءِ پرجوش ٿي وڃن.<sup>(1)</sup>

انصارن ۾ ڏک ۽ بيچينيءَ جي لهر: - اها سياست پهرين ته ڪنهن کي سمجهه ۾ نه آئي، ان ڪري ڪن اعتراض ڪيو. انصارن تي ان فيصلي جو وڏو اثر پيو هو. چوٽه اهي سڀئي حنين جي انهن عطين کان مورگوئي محروم رکيا ويا هئا. جڏهن ته مشڪل مهل انهن کي ئي سڏيو ويو هو ۽ اهي ئي اڏامي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتا هئا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان ملي اهڙي جنگ ڪيائون جو هارايل بازي فتح ۾ بدلجي وئي، پر هاڻي اهي ڏسي رهيا هئا ته ڇڏڻ وارن جا هٿ ڀريل هئا ۽ اهي پاڻ خالي هٿين هئا.<sup>(2)</sup>

ابن اسحاق، ابوسعيد خدری رضي الله عنه کان روايت آندي آهي ته جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ قريشن ۽ عرب قبيلن کي عطيا ڏنا ۽ انصارن کي ڪجهه نه مليو ته انصار دل ٽٽي دل ۾ وڃڻ ستنجڻ لڳا ۽ انهن ۾ چوڻ ٿيڻ لڳو. ايسٽائين جو ڪنهن چئي ڏنو ته الله جو قسم! پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجي قوم سان وڃي مليا آهن. ان کانپوءِ حضرت سعد بن عبادة رضي الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيو ۽ چيائين ته "يا رسول الله ﷺ! توهان هن مليل "فيءَ" جي مال جو جيڪي ڪجهه ڪيو آهي، تنهن تي انصار دل ٽٽي دل ۾ ڪڙهن پيا. توهان اهو پنهنجي قوم ۾ ورهائيو، عرب قبيلن کي وڏا وڏا عطيا ڏنا پر انصارن کي ڪجهه نه ڏنو." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته اي سعد! تنهنجو ان باري ۾ ڇا خيال آهي؟" ورائيائين ته "يا رسول الله ﷺ! آئون به پنهنجي قوم جو ئي هڪ فرد آهيان." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "چڱو پوءِ پنهنجي قوم کي خيمي ۾ آڻي ويهار." سعد رضي الله عنه جن انصارن کي آڻي خيمي ۾ گڏ ڪيو. ڪجهه مهاجر به آيا ته انهن کي اندر اچڻ ڏنو. پوءِ پيا ڪي ماڻهو آيا ته انهن کي موتائي ڇڏيو. جڏهن سڀ ماڻهو اچي گڏ ٿيا ته حضرت سعد رضي الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ کي اچي ٻڌايو ته سمورا انصار اچي مڙيا آهن. پاڻ سڳورن ﷺ انهن وٽ آيا ۽ الله جي حمد ۽ ثنا کانپوءِ فرمائون ته:

<sup>1</sup> - فقد السيره، محمد غزالي (ص: 298، 299).

<sup>2</sup> - فقد السيره، محمد غزالي (ص: 298، 299).

"انصاريو! توهان ۾ هيءَ ڪهڙي ڪسر پسر ٿي رهي آهي، جيڪا مون تائين پهتي آهي! ۽ اها ڪهڙي ڪاوڙ آهي جيڪا توهان دل ۾ رکيو ويٺا آهيو! ڇا ائين ڪونهي ته آئون توهان وٽ ان وقت آيو هوس جو توهان گمراهه هئا، الله توهان کي هدايت ڏني ۽ محتاج هئا، الله توهان کي غني بڻايو ۽ پاڻ ۾ وڙهيل هئا، الله توهان جون دليون ڳنڍي ڇڏيون؟" ماڻهن چيو ته "بلڪل! الله ۽ ان جي رسول جا اسان تي وڏا احسان آهن."

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "انصاريو! مون کي ورندي ڇو نه پيا ڏيو؟" انصارن چيو ته "يا رسول الله! ڀلا اسين ڪهڙي ورندي ڏيون؟ الله ۽ ان جي رسول جا اسان تي وڏا احسان آهن." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ڏسو! الله جو قسم! جيڪڏهن توهان چاهيو ته چئي سگهو ٿا ۽ سچ ئي چوندؤ ۽ توهان جي ڳالهه سچ ئي سمجهي ويندي ته پاڻ ﷺ اسان وٽ ان حالت ۾ پهتا جو سندن انڪار ڪيو ويو هو، اسان سندن تصديق ڪئي، کين نڌڪو ڇڏيو ويو هو، اسان سندن مدد ڪئي، کين تڙيو ويو هو، اسان کين نڪاڻو ڏنو، پاڻ ﷺ محتاج هئا، اسان سندن ڏک درد ونديا.

اي انصاريو! توهان دنيا جي هن عارضي دولت لاءِ پنهنجي دل ۾ ڪاوڙ رکي آهي، جنهن جي ذريعي مون ماڻهن جون دليون ڳنڍيون هيون ته جيئن اهي مسلمان ٿي وڃن ۽ توهان کي توهان جي اسلام جي حوالي ڪري ڇڏيو هئس. اي انصاريو! ڇا توهان ان ڳالهه مان خوش نه آهيو ته ماڻهو ته اٺ بڪريون ڪاهي وڃن ۽ توهان الله جي رسول کي ساڻ ڪري پنهنجن گهرن ڏي موٽو؟ ان هستيءَ جو قسم جنهن جي هٿ ۾ محمد ﷺ جي جان آهي، جيڪڏهن هجرت نه ٿئي ها ته آئون به انصارن منجهان ئي هڪ چڻو هجان ها. جيڪڏهن سڀ ماڻهو هڪڙي واٽ وٺن ۽ انصار بي واٽ تي هلن ته آئون به انصارن جي واٽ تي هلندس. اي الله رحم ڪر انصارن تي ۽ سندن پٽن تي ۽ سندن پٽن جي پٽن تي."

پاڻ سڳورن ﷺ جو خطاب ٻڌي ماڻهو ايترو رنا جو سندن ڏاڙهيون پُسي ويون ۽ چوڻ لڳا ته "اسين ان ۾ راضي آهيون ته اسان جي پٽيءَ ۽ ڀاڳ ۾ الله جو رسول هجي." ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ موٽي ويا ۽ اهي (انصار) چڙوچڙ ٿي ويا.<sup>(1)</sup>

**هوازن جي وفد جو پهچڻ:** - غنيمت جو مال ورهائجڻ کانپوءِ هوازن جو وفد مسلمان ٿي پهتو. اهي ڪل چوڏنهن چڻا هئا. سندن مهندار زهير بن سرد هو ۽ انهن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو رضاعي چاچو ابو بقران به هو. وفد سوال ڪيو ته مهرباني ڪري قيدي ۽ مال موٽائي ڏيو. هنن اهڙيءَ طرح ڳالهه ڪئي جنهن سان دليون نرم ٿي وڃن. (2) پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "مون سان

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/499، 500) - اهڙي هڪ روايت صحيح بخاريءَ ۾ به آهي (2/620، 621).

گڏ جيڪي ماڻهو آهن، تن کي ڏسو پيا ۽ مون کي سچ وڌيڪ وڻندو آهي. ان ڪري ٻڌايو ته توهان کي پنهنجا ٻار ٻچا پيارا آهن يا مال؟" انهن ورائيو ته "اسان جي نظر ۾ خانداني شرف جهڙي بي ڪابه شيءِ نه آهي." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "جڳو پوءِ جڏهن اڳين نماز پڙهي وٺان ته توهان اتي چڻجڻو ته اسين پاڻ سڳورن ﷺ کي مؤمنن لاءِ سفارشي ٿا ڪريون ۽ مؤمنن کي پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ سفارشي ٿا ڪريون ته جيئن پاڻ سڳورا ﷺ اسان جا قيدي اسان کي موٽائي ڏين." ان کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ نماز کان فارغ ٿيا ته انهن همراهن ائين ئي چيو جواب ۾ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "جيستائين حسي جو تعلق آهي ته جيڪي ڪجهه منهنجو ۽ بني عبدالمطلب جو آهي ته اهو توهان لاءِ آهي، باقي ٻين کان اٿون ٻين ماڻهن کان اجهو تو پيچي وٺان." تنهن تي انصارن ۽ مهاجرن اتي چيو ته "جيڪي ڪجهه اسان جو آهي، اهو سڀ به الله جي رسول ﷺ لاءِ آهي. ان کانپوءِ اقرع بن حابس چيو ته "پر جيڪي ڪجهه منهنجو ۽ بنو تمير جو آهي، اهو پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ڪونهي." عبيد بن حصن چيو ته "جيڪي ڪجهه منهنجو ۽ بنو فزاره جو آهي، اهو به پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ڪونهي." عباس بن مرداس به چيو ته: "جيڪي ڪجهه منهنجو ۽ بنو سليم جو آهي، اهو به توهان لاءِ نه آهي." تنهن تي بنو سليم چيو ته "نه سائين نه! جيڪي ڪجهه اسان جو آهي، اهو به پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ آهي." تنهن تي عباس بن مرداس چيو ته: "توهان منهنجي بيعزتي ڪئي آهي."

پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ڏسو هي همراھ مسلمان ٿي آيا آهن (۽ ان ڪري ئي) مون سندن قيدي ورهائڻ ۾ دير ڪئي هئي. هاڻي جڏهن مون انهن کي اختيار ڏنو تڏهن انهن ٻارن ٻچن کان وڌيڪ ڪا شيءِ نه سمجهي، تنهنڪري جنهن وٽ ڪو قيدي هجي، اهو پاڻي موٽائي ڏي ته ڏاڍو چڱو ٿيندو ۽ جيڪو پنهنجو حق روڪڻ ئي گهري ٿو ته اهو به سندن قيدي ته موٽائي ڏي. باقي ٻيهر جيڪو سڀ کان پهرين ڦي جو مال هٿ ايندو، ان مان ان ماڻهوءَ کي هڪ جي بدران ڇهون ڏبو." ماڻهن چيو ته "اسين الله جي رسول ﷺ لاءِ خوشيءَ سان ڏيڻ لاءِ تيار آهيون." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ائين خبر ڪانه پوندي ته ڪير راضي آهي ۽ ڪير نه، تنهنڪري توهان وڃو ۽ پنهنجن سردارن کي موڪليو ته اهي توهان جي ڳالهه مون تائين پهچائين." ان کانپوءِ سڀني، سندن ٻار ٻچا موٽائي ڏنا. رڳو عبيد بن حصن وڃي بچيو، جنهن جي پتيءَ ۾ هڪ پوڙهي آئي هئي. هن پهرين ته موٽائڻ کان انڪار ڪيو پر پوءِ نيٺ موٽائي ڏنائين. پاڻ سڳورن ﷺ هر هڪ قيديءَ کي هڪ هڪ قبضي ڇادر ڏئي موٽائي ڇڏيو.

عمرو ۽ مديني ڏانهن موت:- پاڻ سڳورن ﷺ غنيمت جو مال ورهائڻ کانپوءِ جعرانه ۾ ئي عمري جو احرام ٻڌو ۽ عمرو ادا ڪيو. ان کانپوءِ عتاب بن اسيد رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کي مڪي جي واڳ ڏئي پاڻ مديني روانا ٿيا. مديني ڏانهن موت 24 ذي القعدة سنه 8 هجريءَ تي ٿي. (1)

محمد غزالي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ لکي ٿو ته "انهن سوپ وارن ڏينهن ۾، جڏهن الله تعاليٰ پاڻ سڳورن ﷺ جي سر تي فتح مبين جو تاج رکيو هو ۽ انهن ڏينهن ۾ ڪيڏو نه وڏو فرق آهي، جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ هن ئي عظيم شهر ۾ اٿ ورهيه اڳ پهتا هئا.

پاڻ سڳورا ﷺ هتي ان حالت ۾ آيا هئا جو کين لوڏي ڪڍيو ويو هو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ پناهه جا گهرجاو هئا ڌاريا ۽ ڏنل هئا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي قرب ۽ پنهنجائپ جي ڳولا هئي اتي جي رهاڪن پاڻ سڳورن ﷺ کي اکين تي ويهاريو پاڻ سڳورن ﷺ کي (رهڻ لاءِ) جڳهه ڏنائون ۽ (هر طرح) مدد ڪيائون ۽ جيڪو نور پاڻ سڳورن ﷺ تي لائو ويو هو، تنهنجي پيروي ڪيائون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي ڪري سڄي دنيا جو وير پرايائون. هاڻي اهي ئي پاڻ سڳورا آهن جو جنهن شهر اڳي هڪ ڏنل مهاجر جي حيثيت ۾ کين پليڪار چيو هو، اهو شهر اڄ اٿن ورهين کانپوءِ ان حالت ۾ سندن آجيان ڪري رهيو هو جو مڪو پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿ هيٺ آهي ۽ ان پنهنجي وڏائي ۽ جهالت کي پاڻ سڳورن ﷺ جي پيرن ۾ رکي ڇڏيو آهي ۽ پاڻ سڳورا ﷺ سندس پٺيون خطائون درگذر ڪري ان کي اسلام جي ذريعي سرفراز ڪري رهيا آهن.

﴿إِنَّهُ مَنْ يَتَّقِ وَيَصْبِرْ فَإِنَّ اللَّهَ لَا يُضِيعُ أَجْرَ الْمُحْسِنِينَ﴾ (90) (يوسف)

"جيڪو پرهيزگاري ڪندو ۽ صبر ڪندو ته الله پلارن جو اجر نه وڃائيندو آهي."

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - فق السيرة (ص:303)، فتح مڪ ۽ طائف واري غزوي جي تفصيل لاءِ زاد المعاد (2/160\_201)-ابن هشام (2/389\_501) - صحيح بخاري (2/612\_622) - فتح الباري (8/3\_85).

## مڪي جي فتح کانپوءِ موڪليل سريا ۽ اهلڪار

هن ڊگهي ۽ ڪامياب سفر تان موٽڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ مديني ۾ ٿورو آرام ڪيو. ان دوران پاڻ سڳورا ﷺ وفدن سان ملندا رهيا ۽ حڪومت جا اهلڪار ۽ ديني پرچارڪ موڪليندا رهيا ۽ جن کي الله جي دين ۾ اچڻ ۽ عربن جي اڀرندڙ سگهه کي مڃڻ کان هٽ ۽ وڌائيءَ روڪي رکيو هو، تن کي اڻ مڃائيندا رهيا. انهن معاملن جو نچوڙ هتي پيش ڪجي ٿو.

**زڪواة وٺندڙ اهلڪار:** - مٿي اچي چڪو آهي ته مڪي جي فتح کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ سنه 8 هه جي پيچاڙيءَ ۾ مديني وريا هئا. سنه 9 هه جي محرم جو چنڊ نڪرندي ئي پاڻ سڳورن ﷺ قبيلن ڏانهن صدقا وٺڻ لاءِ اهلڪار موڪلڻ شروع ڪيا، جن جا نالا هي آهن.

### اهلڪار جو نالو

|   |   |
|---|---|
| بنو تميم  | 1- عيينه بن حصن <small>رضي الله عنه</small>       |
| اسلم ۽ غفار   | 2- يزيد بن الحصين <small>رضي الله عنه</small>     |
| سليم ۽ مزينه  | 3- عباد بن بشير اشهلي <small>رضي الله عنه</small> |
| جهينه   | 4- رافع بن مڪيث <small>رضي الله عنه</small>       |
| بنو فزاره   | 5- عمرو بن العاص <small>رضي الله عنه</small>      |
| بنو ڪلاب  | 6- ضحاک بن سفيان <small>رضي الله عنه</small>      |
| بنو ڪعب   | 7- بشير بن سفيان <small>رضي الله عنه</small>      |
| بنو ذيبان   | 8- ابن اللتيه ازدي <small>رضي الله عنه</small>    |
| شهر صنعاء (سندس موجودگيءَ ۾ سندن خلاف اسود عنسيءَ بغاوت ڪئي.) | 9- مهاجر بن ابي اميه <small>رضي الله عنه</small>  |
| حضر موت جو علائقو   | 10- زياد بن لبيد <small>رضي الله عنه</small>      |
| طي ۽ بنو اسد  | 11- عدي بن حاتم <small>رضي الله عنه</small>       |
| بنو حنظل  | 12- مالڪ بن نويره <small>رضي الله عنه</small>     |
| بنو سعد (جي هڪ شاخ)   | 13- زبيرقان بن بدر <small>رضي الله عنه</small>    |
| بنو سعد (جي ٻي شاخ)   | 14- قيس بن عاصم <small>رضي الله عنه</small>       |
| بحرين جو علائقو   | 15- علاء بن الحضرمي <small>رضي الله عنه</small>   |
| نجران جو علائقو (زڪواة ۽ جزبو ٻئي وٺڻ لاءِ)                   | 16- علي بن ابي طالب <small>رضي الله عنه</small>   |



ياد رهي ته اهي سمورا اهلڪار محرم سنه 9 هه ۾ ئي ڪونه موڪليا ويا هئا، پر ڪي دير سان تڏهن موڪليا ويا جڏهن ڄاڻايل قبيلن اسلام قبوليو هو. باقي اها پڪ آهي ته انهن اهلڪارن کي موڪلڻ جي شروعات محرم سنه 9 هجريءَ کان ٿي هئي ۽ ان سان ئي حديبيه واري ٺاهه کانپوءِ اسلام جي ڪامياب پرچار جي ڦهلاءَ جو ڪاٿو ڪري سگهجي ٿو. باقي رهيو مڪي جي فتح کانپوءِ وارو دور ته ان ۾ ته ماڻهو الله جي دين ۾ ٽولن جا ٽولا ٿي داخل ٿيا هئا.

سريا: - جهڙيءَ طرح قبيلن کان زڪواۃ وٺڻ لاءِ اهلڪار موڪليا ويا، تهڙيءَ طرح عربستان جي عام علائقن ۾ امن امان ٿي وڃڻ کانپوءِ به ڪن جاين تي ڪجهه فوجي مهمون موڪلڻيون پيون. جن جي فهرست هن ريت آهي.

(1) عيينه بن حصن فرازي وارو سريو (محرم سنه 9 هه) :- عيينه رضي الله عنه کي پنجاه سوار ڏئي بنو تمير ڏانهن موڪليو ويو. ڪارڻ اهو هو ته بنو تمير، قبيلن کي ڀڙڪائي جزبو ڏيڻ کان روڪي ڇڏيو هو. هن مهم ۾ ڪوئي مهاجر يا انصاري نه هو.

عيينه بن حصن رضي الله عنه رات جو سفر ڪندو هو ۽ ڏينهن جو لڪي لڪي اڳتي وڌندو هو. نيٺ رڻ پٽ ۾ اچي بنو تمير تي چڙهائي ڪيائين. اهي پٽ وٺي ڀڳا ۽ سندن يارنهن مرد، ايڪيه عورتون ۽ ٽيهه ٻار جهلجي پيا، جن کي مڪي آڻي رمل بنت حارث جي گهر ۾ رهايو ويو.

پوءِ ان سلسلي ۾ بنو تمير جا ڏهه سردار آيا ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام جي در تي اچي هن طرح سڏ ڪيائون "اي محمد عليه السلام! هيڏانهن اچ. " پاڻ سڳورا عليه السلام ٻاهر نڪتا ته اهي پاڻ سڳورن عليه السلام سان چنبڙي ڳالهائڻ لڳا. پوءِ پاڻ سڳورا عليه السلام ساڻن گڏ رهيا، ايستائين جو پاڻ سڳورن عليه السلام اڳين نماز پڙهائي. ان کانپوءِ مسجد نبويءَ جي اڳڻ ۾ ويهي رهيا. هنن وڏائي ۽ فخر ۾ مقابلي جي خواهش ظاهر ڪئي ۽ پنهنجي خطيب عطار بن حاجب کي اڳيان ڪيائون جنهن تقرير ڪئي. پاڻ سڳورن عليه السلام اسلام جي خطيب حضرت ثابت بن قيس بن شماس رضي الله عنه کي حڪم ڏنو، جنهن جوابي تقرير ڪئي. ان کانپوءِ هنن پنهنجي شاعر زبيرقان بن بدر کي سامهون آندو، جنهن ڪجهه وڏائي بيان ڪندڙ شعر پڙهيا. جواب ۾ اسلام جي شاعر حضرت حسان بن ثابت رضي الله عنه کي اڳيان آندو ويو.

جڏهن ٻئي خطيب ۽ شاعر واندا ٿيا ته اقرع بن حابس چيو ته انهن جو خطيب، اسان جي خطيب کان وڌيڪ اثرائتو ۽ سندن شاعر، اسان جي شاعر کان ڀلو ڳالهائيندڙ آهي. سندن آواز، اسان

جي آوازن کان بلند آهن ۽ سندن ڳالهين، اسان جي ڳالهين کان گهڻيون مٿي آهن. ان کانپوءِ انهن اسلام قبوليو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کين پليون سوکڙيون ڏنيون ۽ سندن ٻار ٻچا موتائي ڏنا. (1)

(2) قطب بن عامر وارو سريو (صفر سنه 9 هـ) :- هيءُ سريو ترهه جي ويجهو تباله جي علائقي ۾ خشم قبيلي جي هڪ شاخ ڏانهن موڪليو ويو هو. قطب رضي الله عنه ويهه ڄڻا وٺي نڪتو. ساڻن ڏهه اٺ هئا جن تي اهي واري واري سان چڙهيا ٿي. مسلمانن حملو ڪيو جنهن تي ويڙهه ٿي پئي ۽ ڌرين جا ڪافي ماڻهو گهائجي پيا قطب رضي الله عنه ڪن ٻين ماڻهن سان گڏ مارجي ويا. تنهن هوندي به مسلمان رڍون پڪريون ۽ ٻار ٻچا ڪاهي اچي مديني پهتا.

(3) ضحاڪ بن سفيان ڪلابي وارو سريو (ربيع الاول سنه 9 هـ) :- هي سريو بنو ڪلاب کي اسلام جي دعوت ڏيڻ لاءِ موڪليو ويو هو. پر جڏهن انهن انڪار ڪندي جنگ چيڙي وڌي ته مسلمانن کين شڪست ڏني ۽ هڪ ڄڻو مارجي به ويو.

(4) علقمه بن مجرز مدلجي وارو سريو (ربيع الاخر سنه 9 هـ) :- کين تي سوڙ ڄڻن جو لشڪر ڏئي جدي جي سامونڊي ڪناري ڏانهن موڪليو ويو. ڪارڻ اهو هو ته ڪي حبشي جدي جي سامونڊي پٽيءَ ويجهو گڏ اچي ٿيا ۽ انهن مڪي وارن جي خلاف ڌاڙا هڻڻ پئي چاهيو. حضرت علقمه رضي الله عنه سمنڊ ۾ لهي هڪ بيت تائين ويو. حبشين کي مسلمانن جي اچڻ جو پتو پيو ته اهي ڀڄي ويا. (2)

(5) حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه وارو سريو (ربيع الاول سنه 9 هـ) :- کين طيءَ قبيلي جي قلس (ڪليسا) نالي هڪ بت کي ڊاهڻ لاءِ موڪليو ويو. سندن هٿ هيٺ هڪ سو اٺن ۽ پنجاهه گهوڙن سميت ڏيڍ سوڙ ڄڻا هئا. جهنڊيون ڪاريون ۽ جهنڊو اچو هو. مسلمانن فجر مهل حاتم طائيءَ جي پاڙي تي ڇاپو هڻي قلس کي ڊاهي وڌو ۽ قيدي، جانور ۽ رڍون پڪريون جهلي ورتائون. انهن ۾ حاتم طائيءَ جي ڌيءَ به هئي. باقي حاتم جو پٽ عدي شام ملڪ ڏانهن ڀڄي ويو.

<sup>1</sup> - اهل مغازي ائين ٿي لکن ٿا ته هي واقعو محرم سنه 9 هـ ۾ ٿيو پر اها ڳالهه توري منجهيل آهي. ڇو ته واقعي جي اندرئين شاهديءَ مان پتو پوي ٿو ته اقرع بن حابس ان کان پهرين مسلمان نه ٿيو هو جڏهن ته سيرت نگار ٿي لکن ٿا ته جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ، بنو هوازن جي قيدين کي موٽائڻ جو چيو ته: ان ٿي اقرع بن حابس چيو ته: آئون ۽ بنو تمير ڪونه موٽائينداسين. ان ڪري ڳالهه جتي پئي آهي ته اقرع بن حابس ان محرم سنه 9 هـ واري واقعي کان اڳ مسلمان ٿي چڪو هو.

<sup>2</sup> - فتح الباري (59/8).

مسلمانن، قلس جي خزاني مان ٿي تلوارون ۽ ٿي زرهون هٿ ڪيون ۽ وات تي غنيمت جو مال ورهائايون. باقي چونڊ مال پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ ڌار ڪيو ويو ۽ حاتم جي گهراڻي جي وچ به ڪانه ڪئي وئي.

مديني پهتا ته حاتم جي ڌيءَ پاڻ سڳورن ﷺ کي ٻاجه لاءِ ٻاڏائيندي چيو ته "يا رسول الله! هتي جيڪو اچي سگهيو ٿي، اهو گم آهي. بابا مري ويو آهي ۽ آئون پوڙهي آهيان. خدمت ڪرڻ جي سگهه نٿي رکان. توهان مون تي ٿورو ڪريو الله توهان کي ان جو اجر ڏيندو." پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته "تنهنجي لاءِ ڪير اچي سگهيو ٿي." چيائين ته "عدي بن حاتم." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "اهو نه جيڪو الله ۽ رسول کان پڇي ويو آهي." پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ اڳتي وڌي ويا. ٻئي ڏينهن ٻيهر هن ساڳي ڳالهه ڪئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ وري به ساڳي ورندي ڏني. ٽئين ڏينهن وري به هن ساڳي ڳالهه ورجائي ته پاڻ سڳورن ﷺ احسان ڪندي کيس آزاد ڪري ڇڏيو. ان وقت پاڻ سڳورن ﷺ جي پير هڪ اصحابي سڳورو (شايد حضرت علي رضه) به بيٺل هو. ان چيس ته پاڻ سڳورن ﷺ کان پنهنجي لاءِ سواري به گهر. هن سواري به گهري ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سواري ڏيڻ جو به حڪم ڪيو.

حاتم جي ڌيءَ موٽي پنهنجي ڀاءُ عدي وٽ شام ملڪ ڏانهن وئي. ان سان ملاقات ٿيس ته کين پاڻ سڳورن ﷺ بابت ٻڌايائين ته پاڻ سڳورن ﷺ اهڙو ڪم ڪيو آهي جيڪو تنهنجو پيءُ به نه ڪري سگهي ها. انهن وٽ شوق سان وڃ (پر وڃ ضرور) تنهن تي عدي رضه ڪاهه خاطر وٺڻ کانسواءِ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو. پاڻ سڳورا ﷺ کين پنهنجي گهر وٺي ويا ۽ جڏهن اهي سامهون ٿي ويٺا ته پاڻ سڳورن ﷺ الله جي وڏائي ۽ واکاڻ بيان ڪرڻ کانپوءِ پڇيو ته: "تون ڇا کان پيو پڇين؟ ڇا لا اله الا الله چوڻ کان پيو پڇين؟ جي ائين آهي ته ٻڌاءِ ته ڇا توکي الله کانسواءِ ڪنهن ٻئي معبود جو پتو آهي؟" ان ورائيو ته "نه." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ٿوري دير ڳالهه ٻول ڪري وري چيو ته: "ڀلا تون ان کان ٿو پڇين ته الله اڪبر چيو وڃي ته ڇا الله کان وڏي ڪنهن شيءِ بابت چاڻي ٿو؟" انهن ورائيو ته "نه." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ٻڌ! يهودين تي الله جي ڪاوڙ آهي ۽ نصراني راهه تان تڙيل آهن." ان ورائيو ته "آئون ته سڌو سنئون مسلمان آهيان. اهو ٻڌي پاڻ سڳورن ﷺ جو چهرو خوشيءَ کان ٻهڪڻ لڳو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم سان کين هڪ انصاريءَ وٽ رهايو ويو ۽ هو صبح شام پاڻ سڳورن ﷺ جي خدمت ۾ حاضر ٿيندو رهيو. (1)

<sup>1</sup> - زاد المعاد (205/2).

ابن اسحاق، حضرت عدي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کان اها به روايت آندي آهي ته جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ، کين پنهنجي سامهون پنهنجي گهر ۾ ويهاريو ته فرمايو: "اي عدي بن حاتم! ڇا تون مذهبي طرح رکوسي ڪونه هئين؟" عدي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جو بيان آهي ته "مون چيو ته هاڻو بلڪل!" پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته "ڇا تون پنهنجي قوم ۾ مال غنيمت جي چوٿين پتي ڪونه وٺندو هئين؟" مون چيو ته "هاڻو بلڪل!" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "جڏهن ته اهو تنهنجي دين ۾ حلال نه هو." مون چيو ته "ها الله جو قسم! ۽ ان مان ئي مون کي پتو پيو ته پاڻ سڳورا رَضِيَ اللهُ عَنْهُ، الله جا سڃا رسول آهن. ڇو ته پاڻ سڳورا رَضِيَ اللهُ عَنْهُ اها ڳالهه ڄاڻندا آهن جيڪا ٻيا نٿا ڄاڻن." (1)

مسند احمد جي روايت آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "اي عدي! اسلام قبوليندين ته سلامت رهندين." مون چيو ته "آئون اڳيئي هڪ دين جو مڃيندڙ آهيان." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "آئون تنهنجي دين کي توکان وڌيڪ ٿو ڄاڻان." مون چيو ته "توهان منهنجو دين مون کان وڌيڪ (ڪيئن ٿا ڄاڻو؟)" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "هاڻو! ڇا ائين ڪونهي ته تون مذهبي طور تي رکوسي (2) آهين ۽ پوءِ به پنهنجي قوم جي غنيمت جي مال جي چوٿين پتي کائين ٿو؟" مون چيو ته "هاڻو بلڪل!" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "اهو تنهنجي دين مطابق حلال ڪونهي." پاڻ سڳورن ﷺ جي ان ڳالهه تي مون کي ڪنڌ جهڪائڻو پئجي ويو" (3)

صحيح بخاريءَ ۾ حضرت عدي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کان آيل آهي ته آئون پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ويٺو هوس ته هڪ جڻي اچي بڪون ڪٽڻ جي دانهن ڏني، پوءِ ٻئي جڻي اچي ڦر ٿيڻ جي دانهن ڏني. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "عدي! تو حيره ڏنو آهي؟ جيڪڏهن تنهنجي ڄمار ڊگهي ٿي ته تون ڏسي وٺيندين ته اٺ جي ڪجاوي ۾ وينل عورت حيره کان هلي ايندي، ڪعبه الله جو طواف ڪندي ۽ کيس الله کانسواءِ ڪنهن جو به ڊپ نه هوندو. جيڪڏهن تنهنجي ڄمار ڊگهي ٿي ته تون ڪسري جا خزانا فتح ڪندين ۽ جيڪڏهن تنهنجي ڄمار ڊگهي ٿي ته تون ڏسندين ته ماڻهو ٻڪ پري سون يا چاندي ڪيندو ۽ اهڙو ماڻهو ڳولهيڻدو، جيڪو اهو کانسواءِ وٺي، پر اهو وٺڻ وارو هٿ نه ايندس." ان روايت جي پڇاڙيءَ ۾ حضرت عدي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جو بيان آهي ته مون ڏٺو ته اٺ جي ڪجاوي ۾ وينل عورت حيره مان هلي اچي ڪعبه الله جو طواف ڪري ٿي ۽ کيس الله کانسواءِ ڪنهن کان به ڊپ نٿو ٿئي ۽ آئون پاڻ انهن ماڻهن ۾ هوس جن ڪسري بن هرمز جا خزانا هٿ ڪيا ۽ جيڪڏهن توهان جي

<sup>1</sup> - ابن هشام (581/2).

<sup>2</sup> - رکوسي مذهب، عيسائي ۽ صابئي مذهبن جي وچ ۾ هڪ ٽيون مذهب آهي.

<sup>3</sup> - مسند احمد (278\_257/4).

چمار وڏي ٿي ته توهان اها شيءِ به ڏسي وٺندؤ جيڪا نبي ابوالقاسم ﷺ فرمائي هئي ته ماڻهو  
مٺيون پري سون يا چاندي ڪيندو... الخ" (1)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (حديث نمبر: 1413، 1417، 3595، 6023، 6539، 6540، 6563، 7443، 7512).

## غزوه تبوك

مڪي جي فتح، سچ ۽ ڪوڙ جي وچ ۾ فيصلن جهڙپ هئي. هن جهڙپ کانپوءِ عربستان جي رهاڪن جي دلين ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي رسالت تي ڪوبه شڪ نه رهيو. ان ڪري ئي حالتن اوچتو پلٽو ڪاڌو ۽ ماڻهو الله جي دين ۾ وڏن وڏن جتن جي صورت ۾ داخل ٿيڻ لڳا. ان جو ڪجهه اندازو ان تفصيل مان لڳائي سگهجي ٿو جيڪا اسين وفدن جي باب ۾ ڏينداسين ۽ ڪجهه اندازو ان ميڙ مان لڳائي سگهجي ٿو. جيڪو حجة الوداع جي موقعي تي اچي گڏ ٿيو هو. بهرحال هاڻي اندرين مشڪلاتن جي جهڙوڪر پڄاڻي ٿي چڪي هئي ۽ مسلمان، الله جي شريعت جي تعليم عام ڪرڻ ۽ اسلام جي پرچار ڪرڻ لاءِ هڪ ڪرا تي چڪا هئا.

غزوي جا ڪارڻ: - پر هاڻي هڪ اهڙي طاقت مديني ڏانهن ڌيان ڏيڻ لڳي هئي، جيڪا بنا ڪنهن ڪارڻ جي مسلمانن سان چيڙچاڙ ڪري رهي هئي. اها طاقت رومين جي هئي، جيڪي هن ڌرتيءَ تي سڀ کان وڏي فوجي سگهه سمجهيا ٿي ويا. گذريل صحنن ۾ اهو ٻڌائي آيا آهيون ته هن چيڙچاڙ جي ابتدا شرحبيل بن عمرو غسانيءَ جي هٿان پاڻ سڳورن ﷺ جي سفير حضرت حارث بن عمير ازدي رضه جي مارجڻ سان تڏهن ٿي جڏهن هو پاڻ سڳورن ﷺ جو خط بصري جي حاڪم کي ڏيڻ لاءِ وڃي رهيو هو. اهو به ٻڌائي آيا آهيون ته پاڻ سڳورن ﷺ، ان کانپوءِ حضرت زيد بن حارثه رضه جي اڳواڻيءَ ۾ هڪ لشڪر موڪليو هو جنهن رومين جي علائقي موته ۾ خطرناڪ ٽڪر ڪاڌو پر اهو لشڪر انهن هنيبلن ظالمن کان پلاند وٺڻ ۾ ڪامياب نه ٿي سگهيو. باقي ان اوري پري جي عرب رهاڪن تي ڏاڍا سنا اثر ڇڏيا.

روم جو قيصر انهن اثرن کي ۽ انهن جي نتيجي ۾ عرب قبيلن ۾ روم کان آزادي ۽ مسلمانن سان ساٿ لاءِ پيدا ٿيڻ وارن جذبن کي نظر انداز نٿي ڪري سگهيو. سندس لاءِ اهو سچ پيچ هڪ "خطرو" هو جيڪو هوريان هوريان سندن سرحد ڏانهن وڌي رهيو هو ۽ عربن سان ملندڙ سرحد شام لاءِ للڪار بڻجندي پئي وئي. ان ڪري قيصر سوچيو ته مسلمانن جي سگهه کي هڪ وڏي ۽ ناقابل شڪست خطري جي شڪل وٺڻ کان اڳ ئي ٽوڙي ڇڏڻ ضروري آهي ته جيئن روم سان جڙيل عرب علائقن ۾ فتنن ۽ هنگاما اڀري سگهن.

ان حڪمت عمليءَ تحت موته واري جنگ کي هڪ سال گذرڻ کان اڳ قيصر روم جي رهاڪن ۽ پنهنجي ماتحت عربن يعني آل غسان وغيره تي ٻڌل فوج گڏ ڪرڻ شروع ڪئي ۽ هڪ ڇتي ۽ فيصلن جهڙپ جون تياريون ڪرڻ لڳو.

روم ۽ غسان جي تياريءَ جو چؤبڙول: - ٻئي پاسي مديني ۾ لاڳيتيون خبرون پهچي رهيون هيون ته رومي مسلمانن سان هڪ هڪاڻي ڪرڻ لاءِ سنبري رهيا آهن. ان جي ڪري مسلمانن کي هر وقت ڪٽڪو لڳو رهندو هو ۽ ڪوبه آواز ٻڌي سندن ڪن ڪڙا ٿي ويندا هئا. اهي سمجهندا هئا ته رومين جي لوڏا اچي وئي آهي. ان جو اندازو هن واقعي مان ڪري سگهجي ٿو ته ان ئي سال سنه 9 هه ۾ پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجن گهروارين کان ڪاوڙجي هڪ مهيني لاءِ ايلاءِ (1) ڪري ورتو هو ۽ ڪانئن ڌار ٿي هڪ ماڙيءَ تي وڃي رهيا هئا. اصحابي سڳورن کي پهرين ته صحيح ڳالهه جي خبر نه پئي. انهن سمجهيو ته پاڻ سڳورن ﷺ طلاق ڏئي ڇڏي آهي ۽ ان جي ڪري اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي ڏاڍو ڏک ٿيو. حضرت عمر بن الخطاب رضه هي واقعو هن طرح بيان ڪيو آهي ته "منهنجو هڪ انصاري ساٿي هو. جڏهن آئون (پاڻ سڳورن ﷺ وٽ) نه هوندو هوس ته اهو مون تائين خبرون پهچائيندو هو ۽ جڏهن هو نه هوندو هو ته آئون کيس خبرون پهچائيندو هوس. (اهي ٻئي پاڙيسري هئا ۽ مديني جي هيٺانهين علائقي ۾ رهندا هئا ۽ واري واري تي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ حاضري ڀريندا هئا.) تن ڏينهن ۾ اسان کي غسان جي بادشاهه جو ڪٽڪو لڳو پيو هوندو هو. اسان کي ٻڌايو ويو هو ته هو اسان تي چڙهائي ڪرڻ تو گهري ۽ سندس ڊپ اسان جي دلين ۾ ويهي ويو هو. هڪ ڏينهن اوچتو منهنجو انصاري ساٿي در کي ڌڪ هڻڻ لڳو ۽ چوڻ لڳو ته "ڪول، ڪول، ڪول!" مون چيو ته "ڇا غساني اچي ويا؟" هن چيو ته "نه پر ان کان به وڏي ڳالهه ٿي وئي آهي. پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجن گهروارين کان ڌار ٿي ويا آهن." (2)

هڪ ٻي روايت ۾ هيئن آهي ته حضرت عمر رضه چيو ته "هن ڳالهه جو چؤبڙول مثل هو ته آل غسان اسان تي چڙهائي ڪرڻ لاءِ گهوڙن کي نعلون پيا لڳرائين. هڪ ڏينهن منهنجو ساٿي پنهنجي واري تي ويو ۽ سومهڻيءَ مهل موتي اچي منهنجو دروازو ڪٽڻ لڳو ۽ چيائين ته "ڇا هو (عمر رضه) ستو پيو آهي؟" آئون گهٻرائجي ٻاهر نڪتس. هن چيو ته "وڏو حادثو ٿي ويو آهي. مون چيو ته "ڇا ٿيو؟ ڇا غساني اچي ويا؟" هن چيو ته "نه پر ان کان به وڏو حادثو پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجن گهر وارين کي طلاق ڏئي ڇڏي آهي... الخ." (3)

<sup>1</sup> - زال وٽ نه وڃڻ جو قسم ڪڻڻ. جيڪڏهن اهو قسم چار مهينا يا ان کان گهٽ مدي جو هجي ته شرعي طور تي ڪوبه حڪم نٿو لاڳو ٿئي پر جي ايلاءِ چئن مهينن کان مٿي جو هجي ته پوءِ چار مهينا گذرڻ کانپوءِ شرعي عدالت وچ ۾ پوندي ته مڙس يا ته زال کي زال ڪري رکي يا ان کي طلاق ڏي. ڪن اصحابين جو چوڻ آهي ته فقط چار مهينا گذرڻ سان طلاق ٿيو وڃي.

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (730/2).

<sup>3</sup> - صحيح بخاري (334/1).

هن مان ان صورتحال جي سنگينيءَ جو اندازو ڪري سگهجي ٿو جيڪا ان مهل رومين پاران مسلمانن جي آڏو آيل هئي. انهن ۾ واڌارو منافقن جي ان پروپيگنڊهه جي ڪري ٿيو جيڪا انهن رومين جي تياريءَ جون خبرون مديني پهچڻ کانپوءِ شروع ڪئي. اهو ڄاڻندي به ته پاڻ سڳورا ﷺ هر هنڌ ڪامياب آهن ۽ ڌرتيءَ جي ڪنهن به طاقت کان نٿا ڊڄن پر جيڪي رنڊڪون پاڻ سڳورن ﷺ جي آڏو اچن ٿيون اهي به تنهن پون تنهن هوندي به ڪپتيا اها آس لڳائي وينا هئا ته مسلمانن جي خلاف سندن دلين ۾ جيڪا پراڻي خواهش لڪل آهي ۽ جنهن وقت جي ڦرڻ جو اهي ورهين کان انتظار پيا ڪن هاڻي ان جي پوراڻي جو وقت ويجهو اچي ٿيو آهي. اها سوچ ڪري انهن هڪ مسجد جي شڪل ۾ (جيڪا مسجد ضرار جي نالي سان مشهور ٿي) هڪ سازش جوڙي ورتي جنهن جو بنياد ايمان وارن جي وچ ۾ ويڇو وجهڻ ۽ الله ۽ ان جي رسول سان ڪفر ۽ ساڻن وڙهڻ وارن کي گهات لڳائڻ جي جڳهه ڏيڻ جي مقصد تي رکيو هئائون ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي عرض ڪيائون ته ان ۾ نماز هلي پڙهايو. ان مان منافقن جو مقصد اهو هو ته اهي ايمان وارن کي دوکي ۾ رکن ۽ کين پتو پوڻ نه ڏين ته هن مسجد ۾ سندن خلاف سازشون پيون ٿين ۽ مسلمان هن مسجد ۾ اچڻ وڃڻ وارن تي نظر نه رکن اهڙيءَ طرح اها مسجد منافقن ۽ سندن ٻاهرين دوستن لاءِ هڪ محفوظ اڏي جو ڪم ڏي. پر پاڻ سڳورن ﷺ هن مسجد ۾ نماز پڙهڻ جو ڪم جنگ کان موٽڻ تائين ملتوي ڪري ڇڏيو، چوڻهه پاڻ سڳورا ﷺ تياري ڪري رهيا هئا. اهڙيءَ طرح منافق پنهنجي مقصد ۾ سوڀارا نه ٿيا ۽ الله تعاليٰ موٽڻ کان اڳ ئي کين پڌرو ڪري ڇڏيو. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، غزوي تان موٽڻ کانپوءِ مسجد ۾ نماز پڙهڻ بدران ان کي مورگوئي ڏهرائي ڇڏيو.

روم ۽ غسان جي تياريءَ جون خاص خبرون: - مسلمان انهن حالتن ۽ خبرن کي منهن ڏئي رهيا هئا جو کين اوچتو شام ملڪ کان تيل کڻي ايندڙ نبطين (1) کان پتو پيو ته هرقل چاليهه هزار سپاهين جو هڪ وڏو لشڪر تيار ڪيو آهي ۽ روم جي هڪ هاڪاري سپهه سالار کي ان جو اڳواڻ ڪيو آهي. پنهنجي جهنڊي هيٺ عيسائي قبيلن لخر ۽ جذام وغيره کي به گڏ ڪري ورتو اٿس ۽ سندن هر اول دستو بلقاء پهچي چڪو آهي. اهڙيءَ طرح هڪ وڏو خطرو سڄ پيچ اچي مسلمانن آڏو بيٺو هو.

فڪر جو ڳڻين حالتن ۾ واڌ: - جنهن ڳالهه جي ڪري وڌيڪ فڪر ٿيو اها اها هئي ته سخت اونهاري جا ڏينهن هئا ۽ ماڻهو غربت ۽ ڏڪر کي منهن ڏئي رهيا هئا. سواريون به گهٽ هيون ان

<sup>1</sup> - نابت بن اسماعيل عليه السلام جو نسل جن جو ڪنهن دور ۾ حجاز جي اتر ۾ عروج هو. زوال کانپوءِ اهي ماڻهو آهستي آهستي تي معمولي هاري ۽ واپارين جي درجي تي وڃي پهتا.



ڪري ماڻهن پنهنجي تر ۾ رهڻ پئي چاهيو. انهن تڪڙو هلڻ نٿي چاهيو. انهن سڀني کان وڌيڪ مسئلو پري جي پنڌ ۽ رستي جي ڏکيائين جو هو.

پاڻ سڳورن ﷺ پاران هڪ هڪاڻي جو فيصلو:- پر پاڻ سڳورا ﷺ بدلجندڙ حالتن جو ڳوڙهو اڀياس ڪري رهيا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ سمجهي رهيا هئا ته جيڪڏهن انهن فيصلن کان لمحن ۾ رومين سان وڙهڻ ۾ سستي ڪئي وئي ۽ رومين کي مسلمانن جي علائقن ۾ گهڙڻ ڏنو ويو ۽ اهي مديني تائين اچي پهتا ته اسلام جي پرچار تي ان جا ڏاڍا پوائنٽا اثر پوندا. مسلمانن جي فوجي ساڪر خراب ٿي ويندي ۽ اها جاهليت جيڪا حنين واري جنگ ۾ ڪاپاري ڌڪ لڳڻ ڪري پوين پساهن ۾ هڻي بيهڻ ڪرڻ لڳندي ۽ منافق جيڪي مسلمانن جي وقت بدلجڻ جو انتظار ڪري رهيا آهن ۽ ابو عامر فاسق ذريعي روم جي بادشاه سان رابطو رکيو ويو آهي ان مهل مسلمانن جي پٺ ۾ خنجر واهي ڪيندا جڏهن اڳيان کان رومين جي لوءِ خوني حملا ڪري رهي هوندي. اهڙيءَ طرح اهي سموريون ڪوششون رانگان وينديون جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ ۽ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم اسلام جي پرچار ڪرڻ لاءِ ڪيون هيون ۽ سموريون ڪاميابيون ناڪاميءَ ۾ تبديل ٿي وينديون جيڪي ڊگهين ۽ خوني جنگين ۽ لاڳيتي فوجي ڊوڙڊڪ کانپوءِ حاصل ٿيون آهن.

پاڻ سڳورا ﷺ انهن نتيجن کي سمجهي رهيا هئا ان ڪري وسيلن جي اثاڻ هوندي به پاڻ سڳورن ﷺ رٿيو ته رومين کي دارالاسلام ڏانهن وڌڻ جو موقعو ڏيڻ کانسواءِ سندن ئي علائقن ۾ گهڙي ساڻن هڪ هڪاڻي ڪئي وڃي.

رومين سان وڙهڻ لاءِ سنبرڻ جو اعلان:- اهو معاملو طئه ڪرڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ اعلان ڪرايو ته ويڙهه جي لاءِ تياري ڪئي وڃي. عرب قبيلن ۽ مڪي وارن کي به نياپو موڪليو ويو ته وڙهڻ لاءِ نڪري پون. پاڻ سڳورا ﷺ ڪندا هيئن هئا جو ڪنهن به غزوي تي وڃڻ جو ارادو هوندو هئن ته نڪرندا ڪنهن به پاسي لاءِ هئا. پر هتي جي حالتن ڪري هن پيري پاڻ سڳورن ﷺ صاف صاف اعلان ڪيو ته رومين سان جنگ جو رٿيو ويو آهي ته جيئن ماڻهو پوريءَ طرح سنبري نڪرن. ان موقعي تي پاڻ سڳورن ﷺ ماڻهن کي جهاد لاءِ همٿايو ۽ ان ئي سلسلي ۾ سورة توبه جو هڪ حصو به نازل ٿيو. گڏوگڏ پاڻ سڳورن ﷺ صدقي ۽ خيرات ڪرڻ جي فضيلت به بيان ڪئي ۽ الله جي راه ۾ پنهنجو پلو مال خرچڻ لاءِ همٿايو.

ويڙهه جي تياريءَ لاءِ مسلمانن جي ڊوڙ ڊڪ:- اصحابي سڳورن رضي الله عنهم جيئن ئي پاڻ سڳورن ﷺ جو حڪم ٻڌو ته پاڻ سڳورا ﷺ رومين سان وڙهڻ جي ڪوٺ پيا ڏين ته هڪدم حڪم مڃڻ لاءِ ڊوڙ ڊڪ ۾ لڳي ويا ۽ تڪڙا تڪڙا وڙهڻ لاءِ سنبرڻ لڳا. قبيلن ۽ راڄ

جيئي پاسن کان مديني پهچڻ لڳا ۽ سواءِ دليين ۾ منافقت رکندڙن جي ڪنهن به مسلمان هن غزوي ۾ پنٿي رهڻ گوارا نه ڪيو. باقي تي مسلمان مؤمن هجڻ جي باوجود به جنگ ۾ شامل ٿيڻ واري حڪم کان آجا آهن جو انهن ايمان تي هجڻ جي باوجود به هن غزوي ۾ شرڪت نه ڪئي. حالت اها هئي جو لنگهڻ ڪاٽيندڙ ۽ ضرورتمند ماڻهو به اچي پاڻ سڳورن ﷺ کي عرض ڪري رهيا هئا ته کين سواري ڏني وڃي ته جيئن اهي به رومين سان ٿيندڙ جنگ ۾ حصو وٺي سگهن ۽ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ ساڻن معذرت ڪئي تي ته:

﴿لَا أَجِدُ مَا أَحْمِلُكُمْ عَلَيْهِ تَوَلَّوْا وَأَعْيُنُهُمْ تَفِيضُ مِنَ الدَّمْعِ حَزَنًا أَلَّا يَجِدُوا مَا يُنْفِقُونَ﴾ (92) (التوبة)

”آئون (ڪو وهڻ) نه ٿو لهان جنهن تي اوهان کي ڇاڙهيان تڏهن اهي موٽن ۽ هن ڏک کان سندن اکيون ڳوڙها هاريندڙ هجن ته جيڪي (الله جي واٽ ۾) خرچين سو نه ٿا لهن.“

اهڙيءَ طرح مسلمانن صدقي ۽ خيرات ۾ به هڪ ٻئي کان گوءِ کڻي وڃڻ جي ڪوشش ڪئي. حضرت عثمان رضی اللہ عنہ، شام ملڪ لاءِ هڪ قافلو تيار ڪيو هو جنهن ۾ پلاڻ ۽ ڪجاوي ساڻ به سو اٺ هئا ۽ ٻه سو اوقيه (اتڪل ساڍا اوڻيهه ڪلو) چاندي هئي. انهن اهو سڀ ڪجهه صدقو ڪري ڇڏيو. ان کانپوءِ وري به هڪ سو اٺ پلاڻ ۽ ڪجاوي سميت صدقو ڪيائون. تنهن کانپوءِ هڪ هزار دينار (اتڪل ساڍا پنج ڪلو سونا سڪا) کڻي اچي پاڻ سڳورن ﷺ جي جهوليءَ ۾ وڌائون. پاڻ سڳورا رضی اللہ عنہ اهي جهوليءَ مان ڪيندا ٿي ويا ۽ چوندا ٿي ويا ته: ”اڄ کانپوءِ حضرت عثمان رضی اللہ عنہ جيڪي ڪجهه ڪندو کيس ان مان ڪوبه ڇيهو نه رسندو.“<sup>(1)</sup> ان کانپوءِ حضرت عثمان رضی اللہ عنہ جن وري به صدقو ڏنو ۽ وري به صدقو ڪيو. تانجو سندن صدقي جو ڪاٿو ڏوڪڙن کانسواءِ نو سو اٺ ۽ هڪ سو گهوڙن تائين وڃي پهتو.

ٻئي پاسي حضرت عبدالرحمان بن عوف رضی اللہ عنہ به سو اوقيه (اتڪل ساڍا اوڻيهه ڪلو) چاندي کڻي آيو. حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ پنهنجو سڀ ڪجهه آڻي پاڻ سڳورن ﷺ آڏو رکيو ۽ ٻارن ٻچن لاءِ الله ۽ ان جي رسول ﷺ (جي نالي کان) سواءِ ڪجهه نه ڇڏيو. سندن صدقي جو ڪاٿو چار هزار درهم هو ۽ سڀ کان پهرين پاڻ ئي پنهنجو صدقو کڻي آيو هو. حضرت عمر رضی اللہ عنہ پنهنجو اڌ مال خيرات ڪيو. حضرت عباس رضی اللہ عنہ به گهڻو مال کڻي آيا. حضرت طلحه رضی اللہ عنہ، سعد بن عبادة رضی اللہ عنہ ۽ محمد بن مسلمة رضی اللہ عنہ به گهڻو ڪجهه کڻي آيا. حضرت عاصم بن عدي رضی اللہ عنہ نوي وسق (ساڍا تيرنهن هزار ڪلو يا ساڍا تيرنهن تن) ڪارڪون کڻي آيو. ٻيا اصحابي سڳورا رضي الله عنهم به هڪٻئي جي پٺيان پنهنجا ٿورا گهڻا صدقا کڻي آيا. ايستائين جو ڪن ته هڪ مد (اڍائي

<sup>1</sup> - جامع ترمذي: (211/2).

ڪلو) يا به مد به صدقو ڪيو جو انهن ان کان وڌيڪ ست نٿي ساريو. عورتن به هار، ٻانهيون، ڇيرون ۽ منڊيون وغيره جيڪي پڇي سگهين اهو پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏياري موڪليو. ڪنهن به پنهنجو هٿ نه جهليو ۽ ڪابه ڪنجوسي نه ڏيکاري. رڳو منافق هئا جيڪي صدقن ۾ وڌي چڙهي حصو وٺڻ وارن کي توڪون هڻي رهيا هئا ته اهي رياڪار آهن ۽ جن وٽ پنهنجي محنت کانسواءِ ڪجهه نه هو تن تان چٿرون ڪندا هئا ته اهي هڪ يا ٻن ڪارڪن سان قيصر جي مملڪت فتح ڪرڻ نڪتا آهن.

**اسلامي لشڪر تبوك جي واٽ تي:** - هيڏي ساري ڊوڙڊڪ کانپوءِ اسلامي لشڪر تيار ٿيو ته پاڻ سڳورن ﷺ محمد بن مسلمه رضه کي يا چيو وڃي ٿو ته سباع بن عرفط رضه کي مديني جو والي مقرر ڪيو ۽ حضرت علي رضه کي پنهنجي گهر ٻار جي سار سنڀال لاءِ مديني ۾ رهڻ جو حڪم ڏنو پر منافقن کين توڪون هنيون تنهن تي پاڻ مديني مان هلي وڃي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو. پاڻ سڳورن ﷺ وري به کين مديني موڪليندي فرمايو ته: "ڇا تون ان ڳالهه ۾ راضي نه آهين ته مون سان تنهنجي اهڙي نسبت هجي جهڙي حضرت موسيٰ عليه السلام سان حضرت هارون عليه السلام جي هئي. البته مون کانپوءِ ڪو نبي نه ٿيندو."

بهرحال پاڻ سڳورا ﷺ اها تياري ڪري اترئين پاسي هليا (نسائيءَ جي روايت مطابق اهو خميس جو ڏينهن هو). منزل تبوك هتي ڀر لشڪر وڌو هو. ٽيهه هزار مانجهي مرد هئا. ان کان پهرين مسلمانن جو ايڏو لشڪر ڪڏهن به گڏ نه ٿيو هو ان ڪري مسلمان وڏو مال خرچ ڪرڻ کانپوءِ به پوريءَ طرح تياري نه ڪري سگهيا هئا ۽ ارڙهن چئن لاءِ هڪ هڪ ان هو جنهن تي اهي واري واري سان چڙهندا هئا. اهڙيءَ طرح کاڌي ۾ ڪڏهن ڪڏهن کين وٺڻ جا پن به کائي گذارو ڪرڻو ٿي پيو جنهن سان سندن چپ سڄي ٿي پيا. مجبور ٿي ڪوٽ هوندي به ان ڪهڙا پيا ته جيئن انهن جي پيٽ ۽ آنڊن ۾ گڏ ٿيل پاڻي پي سگهجي. ان ڪري هن (لشڪر) جو نالو جيش العسرة (غريبائو لشڪر) پئجي ويو.

تبوك جي واٽ تي لشڪر جو لنگهه حجر يعني ٿمود وارن جي علائقي مان ٿيو. ٿمود اها قوم هئي، جنهن وادي القري ۾ جبل تڪي گهر ٺاهيا هئا. اصحابي سڳورن رضي الله عنهم اتي جي ڪوه مان پاڻي ڀريو پر هلڻ مهل پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "هتي جو پاڻي متان پيو ۽ ان سان نماز لاءِ وضو به نه ڪجڙو ۽ جيڪو اٿو (هن پاڻيءَ سان) ڳوهيو اٿو اهو جانورن کي ڪارائي ڇڏيو ۽ پاڻ نه کائو." پاڻ سڳورن ﷺ اهو به حڪم ڏنو ته جنهن ڪوه مان حضرت صالح عليه السلام جي ڏاڇي پاڻي پيئندي هئي ان مان پلي پاڻي ڀريو.

صحيحين ۾ ابن عمر رضي الله عنهما کان روايت آهي ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم حجر (ثمود جي علائقي) مان لنگهيا ته فرمايائون ته " انهن ظالمن جي رهائش گاهن ۾ نه گهڙجو متان توهان به آئيءَ ۾ نه اچي وجو ها باقي روئندي پلي لنگهو. " پوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پنهنجو متو ڍڪيو ۽ تڪڙا هلندي واديءَ مان لنگهي ويا. (1)

وات تي لشڪر کي پاڻيءَ جي ڏاڍي گهرج ٿي. ايستائين جو ماڻهن اچي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ دانهيو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم الله کان دعا گهري. الله ڪڪر موڪليا ۽ مينهن وٺو. ماڻهن پيٽ پري پاڻي پيتو ۽ گهرج مطابق پاڻي کڻي به ورتو.

جڏهن تبوك جي ويجهو پهتا ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "سپاڻي انشاءَ الله توهان تبوك جي چشمي وٽ رسي ويندو ۽ منجهند کان پهرين ڪونه پهچندو تنهنڪري جيڪو اتي پهچي اهو تيستائين پاڻيءَ کي هٿ نه لڳائي جيستائين آئون نه پهچي وڃان. " حضرت معاذ رضي الله عنه جو بيان آهي ته اسين اتي رسياسين ته اتي ٻه جڙا اڳيئي پهچي چڪا هئا. چشمي مان ٿورو ٿورو پاڻي وهي رهيو هو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم پڇيو ته "ڇا توهان ٻنهي هن جي پاڻيءَ کي هٿ لڳايو آهي؟" انهن چيو ته "هاڻو. " پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم انهن ٻنهي کي جيڪي الله تعاليٰ چاهيو اهو چيو پوءِ چشمي مان ٻڪ سان ٿورو ٿورو پاڻي ڪڍيو ايستائين جو ٿورو پاڻي گڏ ٿي ويو. پوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ان مان هٿ منهن ڌرتو ۽ ان کي چشمي ۾ لاهي ڇڏيو. ان کانپوءِ چشمي مان گهڻو پاڻي وهڻ لڳو. صحابه سڳورن پيٽ پري پاڻي پيتو. پوءِ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "اي معاذ! جيڪڏهن تنهنجي جمار وڌي ٿي ته تون هن جڳهه تي هڪ باغ وڌندي ويجهندي ڏسندين." (2)

وات تي ئي يا تبوك پهچي (روايتن ۾ اختلاف آهي) پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته: "اڄ رات توهان تي تيز هوائون (واچوڙا) هلنديون تنهنڪري ڪير به نه اٿي ۽ جنهن وٽ اڻ هجي اهو ان جي رسي مضبوطيءَ سان ٻڏي ويهي. " تنهن کانپوءِ تيز هوائون هليون. هڪ ماڻهو اتي بيسو ته واچوڙي کيس کڻي وڃي ٽپيءَ جي ٻن جبلن وٽ ڦٽو ڪيو. (3)

وات تي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو معمول هو ته اڳين ۽ وچين نماز گڏ پڙهندا هئا ۽ سانجهي ۽ سومهڻي گڏ. جمع تقدير به ڪندا هئا ۽ جمع تاخير به. (جمع تقدير جو مطلب اهو آهي ته اڳين ۽ وچين، ٻئي نمازون اڳئين مهل ۽ سانجهي ۽ سومهڻي، ٻئي نمازون سانجهي مهل پڙهيون وڃن ۽

1 - صحيح بخاري: (637/2).

2 - مسلم (246/2).

3 - مسلم (246/2).

جمع تاخير جو مطلب اهو آهي ته اڳين ۽ وڃين، ٻئي وڃين مهل ۽ سانجهي ۽ سومهڻي، ٻئي سومهڻيءَ مهل پڙهيون.)

**اسلامي لشڪر تبوك ۾:** - اسلامي لشڪر تبوك ۾ لهي خيما کوڙيا. اهو لشڪر دشمنن سان هڪ هڪائي ڪرڻ لاءِ تيار هو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، لشڪر وارن کي بليغ خطبو ڏنو. پاڻ سڳورن ﷺ سهڻن قولن سان دنيا ۽ آخرت جي پلاهيءَ لاءِ رغبت ڏياري، الله جي عذاب کان ڊيڄاريو ۽ ان جي انعامن جي خوشخبري ڏني. اهڙيءَ طرح فوج جي همت وڌي. انهن ۾ کاڌ خوراڪ ۽ بين گهرجن جي اثاث جو به ازالو ٿي ويو. ٻئي پاسي رومين ۽ سندن حليفن جو حال اهو ٿيو جو پاڻ سڳورن ﷺ جي اچڻ جي خبر ٻڌي انهن کي اچي ڊپ ورايو ۽ اڳتي وڌي آمهون سامهون ٿيڻ جو ست نه ساري سگهيا ۽ ملڪ جي اندر مختلف شهرن ۾ تڙي پڪڙي ويا. سندن ان هلت جو اثر عربستان جي اندر ۽ ٻاهر مسلمانن جي فوجي ساک تي ڏاڍو چڱو پيو ۽ مسلمانن اهڙا اهڙا سياسي فائدا حاصل ڪيا جيڪي جنگ ٿيڻ سان ڪڏهن به ڪونه حاصل ٿين ها. تفصيل هن طرح آهي:

1. ايل جي حاڪم يحيٰ بن ربه، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي جزيو ڀرڻ قبولي ناهه ڪيو. جرباءِ ۽ اذرح جي رهاڪن به پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي جزيو ڏيڻ قبوليو. پاڻ سڳورن ﷺ کين هڪ لکت ڏني جيڪا انهن سنڀالي رکي. پاڻ سڳورن ﷺ، ايل جي حاڪم کي به هڪ لکت ڏني هئي جيڪا هن طرح هئي:

بسم الله الرحمن الرحيم: هيءُ امن جو پروانو الله پاران ۽ نبي محمد رسول الله ﷺ پاران يحيٰ بن ربه ۽ ايل جي رهاڪن لاءِ آهي. سمنڊن ۽ خشڪيءَ تي سندن بيڙين ۽ قافلن لاءِ الله جو ذمو آهي ۽ محمد ﷺ نبيءَ جو ذمو آهي ۽ اهو ئي ذمو انهن شامي ۽ سامونڊي رهاڪن لاءِ آهي، جيڪي يحيٰ سان گڏ هجن. ها! باقي انهن مان ڪو ماڻهو ڪا گڙبڙ ڪندو ته سندس مال، سندس جان ڪونه بچائي سگهندو ۽ جيڪو ماڻهو سندس مال کڻندو، ان لاءِ اهو حلال هوندو. کين ڪنهن به چشمي وٽ لهڻ ۽ خشڪيءَ توڙي سمنڊ جي ڪنهن رستي تي هلڻ کان روڪي نٿو سگهجي."

ان کان سواءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت خالد بن وليد رضى الله عنه کي چار سو ويهه سوارن جو دستو ڏئي دومة الجندل جي حاڪم اڪيدر ڏانهن موڪليو ۽ فرمايو ته "تون کيس روجهه (نيل ڳئون) جو شڪار ڪندي هت ڪندين." حضرت خالد رضى الله عنه اوڏانهن روانو ٿيو. جڏهن ايتري پنڌ تي پهتو جتان قلعو چتو ڏسڻ ۾ پئي آيو ته اوچتو هڪ روجهه ظاهر ٿي ۽ قلعي جي در سان سگ گسائڻ لڳي. اڪيدر ان جي شڪار لاءِ نڪتو. چانڊوڪي رات هئي. حضرت خالد رضى الله عنه ۽ سندن سوارن کيس وڃي پڪڙيو ۽ جهلي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ وٺي آيا. پاڻ سڳورن ﷺ سندس جان بخشي ڪندي به هزار

اٺ سو غلام، چار سو زرهون ۽ چار سو نيزا ڏيڻ جي شرط تي ٺاهه ڪيو. هن جزيو ڏيڻ جو به اقرار ڪيو. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، ساڻس يحن سميت دم، تبوڪ، ايلڊ ۽ تيماءَ وارن ساڳين شرطن تي ٺاهه ڪيو.

اهي حالتون ڏسي اهي قبيلو جيڪي هيستائين رومين جي اڳيان پٺيان پيا ڦرندا هئا سي سمجهي ويا ته هاڻي پنهنجن انهن پراڻن سرپرستن تي اعتماد جو وقت پورو ٿيو ان ڪري اهي به مسلمانن جا حامي بڻجي ويا. اهڙيءَ طرح اسلامي حڪومت جون سرحدون ڦهلجي وڃي سڌو سنئون رومي سرحدن سان مليون ۽ رومين جي چاڙتن جو گهڻي حد تائين انت اچي ويو.

مديني ڏانهن موت:- اسلامي لشڪر تبوڪ کان سوڀارو ٿي موٽيو ۽ ڪابه جهڙپ نه ٿي. الله تعاليٰ جنگ جي معاملي ۾ مؤمنن لاءِ ڪافي ثابت ٿيو، پر وات تي هڪ جڳهه تي گهاتيءَ وٽ ٻارنهن منافقن پاڻ سڳورن ﷺ کي مارڻ جي ڪوشش ڪئي. ان مهل پاڻ سڳورا ﷺ گهاتيءَ منجهان لنگهي رهيا هئا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ رڳو (ٻه ڇٽا) حضرت عمار رضه، جيڪو ڏاڇيءَ جي واڳ جهلي هلي رهيو هو ۽ حضرت حذيفه بن يمان رضه جيڪو ڏاڇي هڪلي رهيو هو. ٻيا اصحابي سڳورا پري واديءَ جي هيٺاهين مان لنگهي رهيا هئا. ان ڪري منافق وجهه وٺي پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن وڌيا. ٻئي پاسي پاڻ سڳورا ﷺ ۽ ٻئي اصحابي سڳورا رضي الله عنهم پنهنجي وات وٺيو پئي ويا ته پٺيان کان انهن منافقن جي پيرن جا آواز ٻڌائون. سڀني کي منهن تي ٻوٽا ٻڌل هئا ۽ اچي پاڻ سڳورن ﷺ کي ويجهو رسيو هئا جو پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت حذيفه رضه کي انهن ڏانهن موڪليو. انهن سندن سوارين جي منهن تي پنهنجي ڍال سان ڌڪ هڻڻ شروع ڪيا جنهن سان الله تعاليٰ کين ڊيڄاري وڌو ۽ اهي تڪڙا پڇي وڃي بين ماڻهن سان مليا. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت حذيفه رضه کي سندن نالا ٻڌايا ۽ سندن ارادي جي ڄاڻ ڏني. ان ڪري ئي حضرت حذيفه رضه کي پاڻ سڳورن ﷺ جو "رازدان" چيو وڃي ٿو. ان واقعي بابت قرآن شريف ۾ هيئن فرمايو ويو ته: ﴿وَهُمْ أَمَّا لَمْ يَنَالُوا...﴾ (74. التوبة)

" ۽ جنهن کي پهچي نه سگهيا تنهن لاءِ زور لائونون."

سفر جي پڇاڻيءَ تي جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ پري کان مديني جا آثار ڏٺا ته فرمايائون ته: "او اهو طاٻ، او اهو احد، اهو اهو جبل آهي جيڪو اسان سان محبت ڪري ٿو ۽ جنهن سان اسين محبت ڪريون ٿا." هوڏانهن مديني ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي اچڻ جي ڄاڻ پهتي ته عورتون، ٻار ۽ ٻارڙيون ڪاهي پيون ۽ وڏي اعزاز سان لشڪر جي آڃيان ڪندي هي گيت ڳايائون. (1)

1 - ابن قير ائين لکيو آهي. ان تي اڳيئي بحث ڪري آيا آهيون..

طَلَعَ الْبَدْرُ عَلَيْنَا      مِنْ ثَنِيَاتِ الْوَدَاعِ  
وَحَبَّ الشُّكْرُ عَلَيْنَا      مَا دَعَا لِلَّهِ دَاعٍ

يعني " اسان تي ثنيت الوداع کان چوڏهينءَ جو چند اڀريو. جيستائين سڏڻ وارو الله کي سڏي (تيسٽائين) اسان تي شڪر واجب آهي. " يعني فجر جي بانگ اچڻ تائين شڪر واجب آهي) پاڻ سڳورا ﷺ رجب ۾ تبوک ڏانهن روانا ٿيا هئا ۽ رمضان جي مهيني ۾ موٽيا. هن سفر ۾ پورا پنجاهه ڏينهن لڳا، ويهه ڏينهن تبوک ۾ ۽ ٽيهه ڏينهن اچ وڃ ۾. اهو پاڻ سڳورن ﷺ جي حياتيءَ جو آخري غزو هو جنهن ۾ پاڻ سڳورا ﷺ پاڻ هلي ويا هئا.

**مخالف:-** هي غزو پنهنجن خاص حالتن جي ڪري الله پاران هڪ وڏي آزمائش به هو. جنهن سان ايمان وارن ۽ بين ماڻهن جي سڃاڻپ ٿي وئي ۽ اهو الله جو ونهنوار به آهي. جيئن فرمايو اٿس ته: ﴿مَا كَانَ اللَّهُ لِيَذَرَ الْمُؤْمِنِينَ عَلَىٰ مَا أَنْتُمْ عَلَيْهِ حَتَّىٰ يَمِيزَ الْخَبِيثَ مِنَ الطَّيِّبِ...﴾ (179) ﴿آل عمران﴾ "الله کي نه جڳائيندو آهي ته جنهن تي اوهين آهيو تنهن تي مؤمنن کي (به) ڇڏي ڏي هيستائين جو پليت کي پاڪ کان ڌار ڪري."

تنهنڪري هن غزوي ۾ سمورن ايمان وارن شرڪت ڪئي ۽ ان ۾ نه هلڻ کي نفاق ۽ ڪپت جي نشاني ڄاتو ويو. حالت اها هئي جو جيڪڏهن ڪنهن پنٿي رهيل جو ذڪر پاڻ سڳورن ﷺ سان ڪيو ٿي ويو ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ٿي ته ان کي ڇڏي ڏيو، جيڪڏهن ان ۾ چڱائيءَ جا ڪٿا آهن ته الله تعاليٰ جلد ئي توهان وٽ پهچائي ڇڏيندس پر جي ائين ناهي ته پوءِ الله! توهان جي ان مان جان ڇڏائي آهي. مطلب ته هن غزوي ۾ يا ته اهي ماڻهو پنٿي رهيا جيڪي معذور هئا يا وري منافق جن الله ۽ رسول ﷺ تي ايمان آڻڻ جي ڪوڙي هار هنئي هئي ۽ ڪوڙا بهانا ڪري غزوي ۾ نه هلڻ جي موڪل گهري هئي يا ماڳهين موڪل وٺڻ بنا ئي ويهي رهيا هئا. ها باقي ٿي ڇڻا هئا جيڪي سچا ۽ پڪا مؤمن هئا پر پوءِ به بنا ڪنهن سبب جي پٺيان رهجي ويا هئا. الله تعاليٰ کين آزمائش ۾ وڌو ۽ پوءِ سندن توبه قبولي.

ان جو تفصيل هن طرح آهي ته موٽڻ مهل پاڻ سڳورا ﷺ مديني ۾ گهڙيا ته معمول مطابق سڀ کان پهرين مسجد نبوي ۾ ويا. اتي ٻه رڪعتون نماز پڙهيا ٿيون ۽ پوءِ ماڻهن جي ڪري ويهي رهيا. ٻئي پاسي منافق جن جو تعداد اسي کان مٿي هو، (1) اچي معذرت ڪرڻ ۽ قسم کائڻ لڳا.

<sup>1</sup> - واقديءَ ڄاڻايو آهي ته اهو تعداد انصاري منافقن جو هو. ان کانسواءِ بني غفار جهڙن اعرابين منجهان معذرت لاءِ اچڻ وارن جو تعداد پياسي هو. عبدالله بن ابي ۽ سندس پوئلڳ اڃا ڌار هئا ۽ اهي به چڱا خاصا هئا (ڏسو فتح الباري 8/119).

پاڻ سڳورن ﷺ انهن جا عذر قبوليندي بيعت ورتي ۽ چوٽڪاري جي دعا گهري ۽ سندن دلين جو حال الله تي ڇڏيو.

باقي رهيا تي مؤمن صادق يعني حضرت كعب بن مالڪ رضی اللہ عنہ، مراره بن ربیع رضی اللہ عنہ ۽ هلال بن اميه رضی اللہ عنہ، ته انهن سچ ڳالهائيندي چيو ته اسان بنا ڪنهن مجبوريءَ جي غزوي ۾ شريڪ نه ٿيا هئاسين. تنهن تي پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي حڪم ڏنو ته انهن تنهي سان ڳالهه ٻولهه بند ڪن. تنهنڪري سندن سخت بائيڪاٽ ڪيو ويو. ماڻهن اڪيون متائي ڇڏيو ۽ وشال ڌرتي انهن لاءِ سوڙهي ٿي پئي ۽ سندن ساهه مٿ ۾ ٿي پيو. سختي ايتري وڏي وئي جو چاليهه ڏينهن گذرڻ کانپوءِ حڪم ڏنو ويو ته پنهنجن عورتن کان به پري رهو. جڏهن پنجاهه ڏينهن پورا ٿيا ته الله تعاليٰ سندن توبه قبول ڪندي فرمايو ته:

﴿وَعَلَى الثَّلَاثَةِ الَّذِينَ خُلِفُوا حَتَّىٰ إِذَا ضَاقَتْ عَلَيْهِمُ الْأَرْضُ بِمَا رَحُبَتْ وَضَاقَتْ عَلَيْهِمْ أَنفُسُهُمْ وَظَنُّوا أَن لَّا مَلْجَأَ مِنَ اللَّهِ إِلَّا إِلَيْهِ ثُمَّ تَابَ عَلَيْهِمْ لِيَتُوبُوا إِنَّ اللَّهَ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ﴾ (118) ﴿التوبة﴾

”۽ انهن تن تي (به) جيڪي پوئتي رهيا، ايتري قدر جو زمين ايتري ويڪرائيءَ هوندي به مٿن سوڙهي ٿي وئي هئي ۽ سندن ساهه مٿن منجهيا هئا ۽ پانيائون ته (هاڻي) الله کانسواءِ ڪا جاءِ پناهه جي نه آهي. وري مٿن هن لاءِ ٻاجهه سان موٽيو ته توبه ڪن. تحقيق الله توبه قبول ڪندڙ مهربان آهي.“

اهو فيصلو نازل ٿيڻ تي مسلمان عام طور تي ۽ اهي ٽئي اصحابي سڳورا رضي الله عنهم خاص طور تي ڏاڍا خوش ٿيا. ماڻهن ڊوڙي اچي بشارت ٻڌائين. (سندن) منهن خوشيءَ کان بهڪڻ لڳا ۽ انعام ۽ صدقا ڏنائون. حقيقت ۾ اهو سندن حياتيءَ جو سڀ کان ڀلارو ڏينهن هو.

اهڙيءَ طرح معذوريءَ جي ڪري غزوي ۾ نه هلڻ وارن لاءِ الله تعاليٰ فرمايو ته:

﴿لَيْسَ عَلَى الضُّعْفَاءِ وَلَا عَلَى الْمَرْضَىٰ وَلَا عَلَى الَّذِينَ لَا يَجِدُونَ مَا يُنْفِقُونَ حَرَجٌ إِذَا نَصَحُوا لِلَّهِ وَرَسُولِهِ...﴾ (919) ﴿التوبة﴾

”نه ڪي عاجزن تي نه ڪي بيمارن تي نه ڪي اهي جو جيڪي خرچين سو نه ٿا لهن تن تي ڪو گناهه آهي. جڏهن ته الله ۽ سندس پيغمبر جا خير خواه هجن.“

انهن بابت پاڻ سڳورن ﷺ به مديني جي ويجهو رسي فرمايو هو ته ”مديني ۾ ڪجهه اهڙا به ماڻهو آهن، جو توهان جن جڳهين تي به سفر ڪيو ۽ جنهن واديءَ مان به لنگهيا، اهي توهان سان گڏ هئا ڪين سندن عذر روڪي رکيو هو.“ ماڻهن پڇيو ته ”يا رسول الله ﷺ اهي مديني ۾ هوندي به (اسان سان گڏ هئا؟)“ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته ”ها مديني ۾ هوندي به.“



هن غزوي جا اثر: - اهو غزوو عربستان جي مسلمانن جو اثر وڌائڻ ۽ انهن کي سگهو ڪرڻ لاءِ ڏاڍو ڪارائتو ثابت ٿيو. ماڻهن تي اها ڳالهه چڱيءَ طرح پڌري ٿي وئي ته هاڻي عربستان ۾ اسلام کانسواءِ ٻي ڪابه طاقت نٿي رهي سگهي. اهڙيءَ طرح جاهلن ۽ منافقن جون رهيل سهيل آسون آميدون به دم توڙي ويون، جيڪي هنن مسلمانن تي ڏکيا ڏينهن اچڻ جو سوچي دل ۾ سانڍي رکيون هيون. چوڻ ته انهن سمورين آسن ۽ اميدن جو محور رومي طاقت هئي ۽ هن غزوي ۾ ان جا به وڪا پڌرا ٿي ويا. ان ڪري هنن همراهن جا حوصلا ٽٽي ويا ۽ اهو سوچي حقيقتن آڏو هٿيار کڻي ڦٽا ڪيائون ته هاڻي ان کان پڇڻ يا چوڻڪارو پائڻ جي ڪابه واهه نه بچي آهي.

ان صورتحال جي ڪري هاڻي هن ڳالهه جي به گهرج ڪانه رهي هئي ته مسلمان منافقن سان دوستي ۽ نرمي رکن تنهنڪري الله تعاليٰ سندن خلاف سخت رويو اختيار ڪرڻ جو حڪم ڏنو. ايسٽائين جو سندن صدقا قبولڻ، سندن جنازي نماز پڙهڻ، انهن لاءِ چوڻڪاري جي دعا گهرڻ ۽ سندن قبرن تي بيٺهڻ کان جهلي ڇڏيو ۽ انهن مسجد جي نالي ۾ جيڪو سازش جو گهر بڻايو هو ان کي ڊاهي ڇڏڻ جو حڪم ڏنو. پوءِ انهن بابت اهڙيون ته آيتون لٿيون جو اهي صفا وائڪا ٿي پيا ۽ سندن سڃاڻپ ۾ ڪوبه شڪ شبهو ڪونه رهيو. ڇڻ ته مديني وارن لاءِ انهن آيتن انهن منافقن تي وڃي آڱريون رکيون هيون.

هن غزوي جي اثرن جو اندازو هن ڳالهه مان به لڳائي سگهجي ٿو ته مڪي جي فتح کانپوءِ (بلڪه ان کان به اڳ) جيتوڻيڪ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ عربن جا وفد اچڻ شروع ٿي ويا هئا، پر انهن جي وٺ وٺان هن غزوي کانپوءِ ئي ٿي. (1)

هن غزوي بابت قرآني آيتون: - هن غزوي بابت سورة توبه جون گهڻيون ئي آيتون لٿيون. ڪجهه نڪرڻ کان اڳ، ڪجهه سفر هلندي، ۽ ڪجهه مديني موٽڻ کانپوءِ. انهن آيتن ۾ غزوي جي حالتن جو ذڪر ڪيو ويو آهي، منافقن جا ڀول پڌرا ڪيا ويا آهن، مخلص مجاهدين جي فضيلت ٻڌائي وئي آهي ۽ سچا مؤمنن ۽ صادق جيڪي غزوي ۾ ويا هئا يا جيڪي ڪونه ويا هئا تن جي توبه قبولڻ جو ذڪر ڪيو ويو آهي. وغيره وغيره.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - هن غزوي جو تفصيل هيٺين ڪتابن مان ورتل آهي: ابن هشام (537\_515/2) - زاد المعاد (13\_2/3) - صحيح بخاري (633/2) ۽ 252/1، 414) وغيره - صحيح مسلم مع شرح نوري (246/2) - فتح الباري (126\_110/8) - مختصر السيرة للشيخ عبدالله (ص: 391-408).

## سنه 9 هه جا ڪي اهم واقعا

هن ئي سال سنه 9 هه ۾ تاريخي اهميت وارا ڪافي واقعا ٿيا.

1. تبوك کان پاڻ سڳورن ﷺ جي موٽڻ کانپوءِ عويمر عجلائي ۽ سندس زال جي وچ ۾ لعان ٿيو.

2. غامديه عورت ڪي، جنهن پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي زنا جو اقرار ڪيو. سنگسار ڪيو ويو. هن عورت ٻار ڄڻڻ کانپوءِ جڏهن ان کان ڪير پيئڻ ڇڏايو، تڏهن کيس سنگسار ڪيو ويو هو.

3. حبش جو بادشاهه اصحمه نجاشي گذاري ويو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ ان جي غائبانه جنازي نماز پڙهائي.

4. پاڻ سڳورن ﷺ جي نياڻي بيبي ام ڪلثوم رضي الله عنها گذاري وئي. جنهن جو پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏاڍو ڏک ٿيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت عثمان رضي الله عنه کي چيو ته جيڪڏهن منهنجي ٽين ڌيءُ هجي ها ته ان کي به توسان پرڻائي ڇڏيان ها.

5. تبوك کان پاڻ سڳورن ﷺ جي موٽڻ کانپوءِ منافقن جو مهندار عبدالله بن ابي مري ويو. پاڻ سڳورن ﷺ ان لاءِ چوٽڪاري جي دعا گهري ۽ حضرت عمر رضي الله عنه جي روڪڻ جي باوجود به سندس جنازي نماز پڙهي. جنهن تي وحي لٿي ۽ ان ۾ حضرت عمر رضي الله عنه جي راءِ سان سهمت ڪندي منافقن جي جنازي نماز پڙهڻ کان جهليو ويو.

\*\_\*\_\*

## حج سنه 9 هـ (حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جي اڳواڻيءَ ۾)

ساڳئي سال ذوالقعدة يا ذوالحج سنه 9 هـ ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام حج لاءِ حضرت ابوبڪر رضي الله عنه کي اڳواڻ ڪري موڪليو.

ان کانپوءِ سورة برأت جون منيٰ واريون آيتون نازل ٿيون، جن ۾ مشرڪن سان ڪيل ٺاهه، برابريءَ جي بنياد تي ختم ڪرڻ جو حڪم ڏنو ويو هو. هيءُ حڪم لهڻ کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام، حضرت علي بن ابي طالب رضي الله عنه کي موڪليو ته جيئن اهي پاڻ سڳورن عليه السلام پاران انهن جو اعلان ڪن. ائين ان ڪري ڪرڻو پيو جو خون ۽ مال لاءِ عهد ۽ پيمان جي سلسلي ۾ عربن جو اهو ئي ونهنوار هو (ته ماڻهو يا ته پاڻ اعلان ڪري يا پنهنجي گهراڻي جي ڪنهن ڀائيءَ کان اعلان ڪرائي. گهراڻي کان ٻاهر جي ڪنهن ماڻهوءَ جو ڪيل اعلان ڪونه مڃيو ويندو هو) حضرت ابوبڪر رضي الله عنه سان حضرت علي رضي الله عنه عرج يا ضحنان نالي واديءَ ۾ ملاقات ٿي. حضرت ابوبڪر رضي الله عنه پڇيو ته "امير آهين يا مامور؟" حضرت علي رضي الله عنه فرمايو ته "نه، پر مامور." پوءِ ٻئي اڳتي وڌيا. حضرت ابوبڪر رضي الله عنه ماڻهن کي حج ڪرايو. جڏهن (ڏهين تاريخ) قربانيءَ جو ڏينهن آيو ته حضرت علي رضي الله عنه، جمره وٽ بيهي ماڻهن ۾ اهو اعلان ڪيو، جنهن جو حڪم پاڻ سڳورن عليه السلام ڏنو هئو. يعني سمورن عهد وارن سان عهد ختم ڪيو ويو ۽ ڪين چئن مهينن جي چوٽ ڏني وئي (ته يا ته مسلمان ٿين يا جزيو ڏين يا لڏي وڃن) باقي جن مشرڪن، مسلمانن سان نڀائڻ ۾ ڪا ڪسر ڪانه ڇڏي هئي ۽ نه ئي مسلمانن خلاف ڪنهن جي مدد ڪئي هئائون، تن سان ڪيل ٺاهه، رٿيل مدي تائين برقرار رکيو ويو.

حضرت ابوبڪر رضي الله عنه، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم جو هڪ ميڙ موڪلي اهو پڙهو گهماريو ته هاڻي ڪوبه مشرڪ حج نٿو ڪري سگهي ۽ نه ئي ڪو اڳهاڙو ماڻهو بيت الله جو طواف ڪري ٿو سگهي.

اهو اعلان ڄڻ ته عربستان ۾ بت پرستيءَ جي پڄاڻيءَ جو اعلان هو. يعني ان سال کانپوءِ بت پرستيءَ جي موٽڻ جي امڪان جي به ڪا گنجائش نه رهي. (1)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> هن حج جي تفصيل لاءِ ڏسو صحيح بخاري (1/220، 451 - 626/2، 271) - زاد المعاد (3/25، 26) - ابن هشام (2/543-546) ۽ تفسير جي ڪتابن ۾ سورة برأت جون منيٰ واريون آيتون.

## غزون تي هڪ نظر

پاڻ سڳورن ﷺ جي غزون، سرين ۽ فوجي مهمن تي هڪ نظر وجهڻ کانپوءِ ڪوبه ماڻهو، جيڪو جنگ جي ماحول، پس منظر ۽ پيش منظر ۽ آثارن ۽ نتيجن جو علم رکندو هجي، اهو مڃڻ کانسواءِ رهي نه سگهندو ته پاڻ سڳورا ﷺ دنيا جا سڀ کان وڏا ۽ باڪمال فوجي اڳواڻ هئا. پاڻ سڳورن ﷺ جي سوچ سمجهه سڀني کان وڌيڪ صحيح ۽ بيدار مغزي سڀ کان گهري هئي. پاڻ سڳورا ﷺ جهڙيءَ طرح نبوت ۽ رسالت جي وصفن ۾ رسولن جا سردار ۽ سڀ کان وڏا نبي هئا، اهڙيءَ طرح فوجي قيادت جي وصف ۾ به سڀ کان وڏا ماهر ۽ عبقرت جا مالڪ هئا. چوڻو ته پاڻ سڳورن ﷺ جيڪي به لڙايون ڪيون، تن لاءِ اهڙين حالتن ۽ جهتن جو انتخاب ڪيائون، جيڪي ڏاهپ ۽ دليريءَ جو پڌرو مثال هيون. ڪنهن به ويڙهه ۾ حڪمت عملي، لشڪر جي ترتيب، حساس جڳهين تي ماڻهو بيهارڻ، جنگ ڪرڻ لاءِ پلي جڳهه جي چونڊ ۽ جنگي حڪمت عملي وغيره ۾ پاڻ سڳورن ﷺ کان ڪڏهن به ڪا چڪ نه ٿي. ان ڪري ئي ان بنياد تي پاڻ سڳورن ﷺ ڪڏهن به ڌڪ نه کاڌو، پر انهن سمورن جنگي معاملن ۽ مسئلن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ ثابت ڪري ڏيکاريو ته دنيا جي جن به وڏن سپهه سالارن جي اڳواڻي ڏني آهي، پاڻ سڳورا ﷺ انهن مڙني کان نرالي قسم جا جنگي سپهه سالار هئا. جن ڪڏهن شڪست جو منهن نه ڏنو. هن موقعي تي اهو ٻڌائڻ ضروري آهي ته احد ۽ حنين ۾ جيڪي ڪجهه ٿيو، تنهن جو ڪارڻ پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪمت عمليءَ جي خامي نه هو، پر ان جي پٺيان حنين جي ڪن ماڻهن جون ڪي ڪمزوريون هيون ۽ احد ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي نهايت اهم حڪمت عملي ۽ ضروري هدايت کي نهايت فيصلاڪن لمحن ۾ نظر انداز ڪيو ويو هو.

پوءِ به جڏهن ٻنهي غزون ۾ مسلمانن کي ڌڪ رسيو ته پاڻ سڳورن ﷺ، جنهن اڏولپڻي جو مظاهرو ڪيو، اهو پنهنجو مثال پاڻ آهي. پاڻ سڳورا ﷺ دشمنن سان مهاڏو اٽڪائي بيٺا رهيا ۽ پنهنجي حڪمت عمليءَ جي اٽلپ مثال سان يا ته سندن مقصد پورو ٿيڻ نه ڏنائون. (جيئن احد ۾ ٿيو) يا جنگ جو پاسو اهڙيءَ طرح پلٽائي ڇڏيائون جو مسلمانن جي هار سوڀ ۾ بدلجي وئي. (جيئن حنين ۾ ٿيو) حالانڪ احد جهڙي خطرناڪ صورتحال ۽ حنين جهڙي افراتفري، سپهه سالارن جا حوصلا خطا ڪرڻ لاءِ ڪافي هوندي آهي ۽ سندن اعصابن تي ايڏو ته برو اثر ڇڏي ٿي جو کين پاڻ بچائڻ کانسواءِ ٻيو ڪجهه نٿو سجهي.

ها ڳالھ ٻول ته انهن غزون جي نچ فوجي ۽ جنگي پهلوءَ کان هئي. باقي رهيا ٻيا پاسا ته اهي به ڏاڍا اهم آهن. پاڻ سڳورن ﷺ انهن غزون وسيلي امن امان قائم ڪيو. فتنن جي باه وسائي، اسلام ۽ بت پرستيءَ جي چڪتاڻ ۾ دشمنن جو ڏاڪو توڙي وڏو ۽ کين اسلام جي ڪليءَ طرح پرجار ڪرڻ ۽ ٺاه ڪرڻ تي مجبور ڪري وڌو. اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ انهن جنگين جي ذريعي اهو به ڄاڻي ورتو ته ڪير ساڻن سڃا آهن ۽ ڪير منافق، جيڪي دل ئي دل ۾ دوکي ۽ دولاڻ جا جذبا سانڍيو وينا آهن.

پاڻ سڳورن ﷺ عملي لڙاين وسيلي مسلمان سپه سالارن جي هڪ وڏي جماعت به تيار ڪري ورتي، جن پاڻ سڳورن ﷺ کانپوءِ عراق ۽ شام جي ميدانن ۾ فارس ۽ روم سان ٽڪر کاڌو ۽ جنگي رٿائن ۾ سندن وڏن وڏن سالارن کي مات ڏئي کين سندن ئي گهرن ۽ علائقن، مال ۽ باغن، چشمن ۽ ٻني ٻارن، آرام وارين ۽ عزت وارين جڳهين ۽ مزيدار نعمتن کان ڪڍي ٻاهر ڪيو.

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ انهن غزون وسيلي مسلمانن لاءِ رهاڻش، ٻني ٻاري ۽ ڏنڌي ڏاڙهيءَ جو انتظام ڪيو. بي گهر ۽ محتاج پناهگيرن جا مسئلا به حل ڪيا. هٿيار، گهوڙا، ساز ۽ سامان ۽ جنگ جا خرچ هٿ ڪيا ۽ اهو سڀ ڪجهه الله جي پانهن تي ٿورو به ظلم ۽ ڏاڍ ڪرڻ کانسواءِ حاصل ڪيائون.

پاڻ سڳورن ﷺ انهن سمورن سببن ۽ مقصدن کي به مٿائي ڇڏيو، جن لاءِ جاهليت ۾ جنگ جي باهه پڙڪي پوندي هئي. يعني جاهليت واري دور ۾ جنگ نالو هئي ڦرلٽ ۽ مار ماران جو، ظلم ۽ ڏاڍائيءَ جو، پلاند ۽ اذيتون ڏيڻ جو، ڪمزورن کي ڪچلڻ جو، آبادين کي ويران ڪرڻ جو ۽ عمارتون ڊاهڻ جو، عورتن جي لڄ لٽڻ جو ۽ پوڙهڻ، ٻارن ۽ ٻارڙين سان سنگدلي ڪرڻ جو، ٻني ٻارا برباد ڪرڻ ۽ وهڻن کي مارڻ جو ۽ زمين تي تباهي ۽ فساد ڪرڻ جو. پر اسلام ان جنگ جو روح مٿائي ان کي هڪ مقدس جهاد ۾ تبديل ڪري ڇڏيو. جنهن کي ڏاڍن چڱن سببن سان شروع ڪيو وڃي ٿو ۽ ان سان شريفانها مقصد حاصل ڪيا وڃن ٿا، جن کي هر زماني ۽ هر ملڪ ۾ انساني سماج لاءِ اعزاز جو باعث مڃيو ويو آهي. چو ته هاڻي جنگ جو مفهوم اهو وڃي ٿيو ته انسانن کي ڏاڍ ۽ ڏمر جي راڄ مان ڪڍي عدل ۽ انصاف جي راڄ ۾ آڻڻ لاءِ مسلح جدوجهد ڪئي وڃي. يعني هڪ اهڙي راڄ کي، جنهن ۾ ڏاڍو، هيٺي کي ڪاٺي رهيو آهي، ابتو ڪري اهڙو راڄ جوڙيو وڃي، جنهن ۾ طاقتور، ڪمزور ٿي وڃي، جيستائين کانس ڪمزور جو حق نه ورتو وڃي اهڙيءَ طرح هاڻي جنگ جي معنيٰ اها وڃي ٿي آهي ته انهن ڪمزور مردن، عورتن ۽ ٻارن کي چوٽڪارو ڏياريو وڃي، جيڪي دعائون ڪن ٿا ته "اي پالڻهار! اسان کي هن وسنديءَ مان ڪڍ، جتي جا رهاڪو ظالم آهن ۽ اسان لاءِ پنهنجي پاران ڪو والي موڪل ۽ پنهنجي پاران ڪو مددگار موڪل." هن جنگ جي معنيٰ اها وڃي

ٿي ته الله جي ڌرتيءَ کي ٺڳي ۽ دولاب، ڏاڍ ۽ ڏم، ڏوه ۽ برائيءَ کان پاڪ ڪري ان جي جاءِ تي امن امان، محبت ۽ پائيچارو، عدل ۽ انصاف، انسانيت ۽ شرافت جو نظام رائج ڪيو وڃي.

پاڻ سڳورن ﷺ جنگ لاءِ اخلاقي ضابطا به مقرر ڪيا ۽ پنهنجن فوجين ۽ سالارن لاءِ انهن جي پيروي ڪرڻ ضروري قرار ڏيندي، ڪنهن به حالت ۾ انهن کان ٻاهر نڪرڻ جي چوٽ نه ڏني. حضرت سليمان بن بريدہ رضي الله عنه جو بيان آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ جڏهن ڪنهن ماڻهوءَ کي ڪنهن لشڪر يا سربي جو اڳواڻ مقرر ڪندا هئا ته کين پنهنجي باري ۾ پرهيزگاري ۽ مسلمان ساٿين لاءِ چڱائيءَ جي وصيت ڪندا هئا. پوءِ چوندا هئا ته "الله جي نالي تي الله جي راهه ۾ جنگ ڪريو. جنهن، الله سان ڪفر ڪيو، تنهن سان وڙهو. جنگ ڪريو، ٺڳي نه ڪريو، دوکي بازي نه ڪريو، نڪ ڪن وغيره نه ڪتو، ڪنهن ٻار کي متان ماريو... الخ"

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ نرمي ڪرڻ جو حڪم ڏيندي فرمائيندا هئا ته "نرمي ڪريو، سختي نه ڪريو، ماڻهن کي سک ڏيو، متنفر نه ڪريو." (1)

جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ رات جو ڪنهن قوم وٽ پهچندا هئا ته صبح ٿيڻ کان اڳ چاپو نه هڻندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ ڪنهن کي باهه ۾ ساڙڻ کان ڏاڍي سختيءَ سان روڪيو هو. اهڙيءَ طرح ٻڏي مارڻ ۽ عورتن کي موجڙا هڻڻ ۽ کين مارڻ کان به جهليو ۽ ڦرلٽ ڪرڻ کان به جهليو. ويندي پاڻ سڳورن ﷺ اهو به فرمايو ته ڦر جو مال مردار وانگر ئي حرام آهي. اهڙيءَ طرح فصل تباھه ڪرڻ، جانور مارڻ ۽ وڻ ڪٽڻ کان به جهليو، سواءِ ان صورت ۾ جو اهو ڪم اٿتر تي پوي ۽ وڻ ڪٽڻ کانسواءِ ڪو چارو نه رهي. مڪو فتح ڪرڻ مهل پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته: "ڪنهن گهايل تي حملو نه ڪريو، ڪنهن پڇندڙ جي پويان نه لڳو ۽ ڪنهن قيديءَ کي نه ماريو." پاڻ سڳورن ﷺ اها سنت به جاري ڪئي ته سفير کي نه ماريو وڃي. پاڻ سڳورن ﷺ حليف (غير مسلم قبيلن جي ماڻهن) کي مارڻ کان به سختيءَ سان روڪيو ۽ ايستائين به چيائون ته: "جيڪو ماڻهو ڪنهن حليف کي ماريندو، اهو جنت جو واس به نه وٺي سگهندو. جڏهن ته ان جو واس چاليهه ورهين جي پنڌ تائين اچي ٿو."

اهي ۽ اهڙا ٻيا اعليٰ درجي جا قاعدا ۽ ضابطا هئا، جن جي وسيلي جنگ جو عمل، جاهليت جي گندگين کان صاف ۽ پاڪ ٿي، مقدس جهاد ۾ تبديل ٿي ويو.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح مسلم (82/2، 83) المعجر الصغير للطبراني (1/123-187).

## الله جي دين ۾ ٽولن جا ٽولا داخل ٿيڻ

جيئن ته اسين ٻڌائي آيا آهيون ته مڪي جي فتح هڪ فيصلاڪن جهڙپ هئي. جنهن بت پرستيءَ جا لاهه ڪڍي ڇڏيا ۽ سڄي عربستان لاءِ سچ ۽ ڪوڙ جي سڃاڻپ جو اهڃاڻ ثابت ٿي. ان جي ڪارڻ سندن شڪ ۽ شهبها ختم ٿي ويا، جنهن کانپوءِ انهن ڏاڍو تڪڙو اسلام قبوليو. حضرت عمرو بن سلمه رضي الله عنه جو بيان آهي ته "اسين هڪ چشمي وٽ (آباد) هئاسين. جتان ماڻهن جي اچ وڃ هوندي هئي. اسان وٽان قافلا لنگهندا هئا ۽ اسين کانئن پڇندا هئاسين ته ماڻهن جو ڪهڙو حال آهن؟ ان همراهه (محمد صلى الله عليه وسلم) جو ڪهڙو حال آهي؟ ۽ ڪيئن آهي؟ ماڻهو ٻڌائيندا هئا ته "هو سمجهي ٿو ته الله کيس پيغمبر ڪيو آهي، هن وٽ وحي موڪلي آهي، الله هي ۽ هي وحي موڪلي اٿس." اٿون اها ڳالهه ياد ڪري وٺندو هوس. ڇڻ ته اها منهنجي دل تي چٽجي ويندي هئي ۽ عرب اسلام جي دائري ۾ داخل ٿيڻ لاءِ مڪي جي فتح جو انتظار ڪري رهيا هئا. چوندا هئا ته "کيس ۽ سندس قوم کي (طاقت آزمائش لاءِ) ڇڏي ڏيو. جيڪڏهن هو پنهنجي قوم تي غالب ٿي ويو ته پوءِ سمجهو ته سچو نبي آهي. تنهن کانپوءِ جڏهن مڪي جي فتح ٿي ته هر قوم اسلام قبولڻ لاءِ (مديني) ڏانهن وڌي ۽ بابا به پنهنجيءَ قوم پاران ويو ۽ جڏهن پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽان ٿي موٽيو ته چيائين ته "الله جو قسم! اٿون اوهان وٽ هڪ سڄي نبيءَ وٽان ٿيو پيو اچان. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ٻڌايو ته فلاڻي فلاڻي نماز، فلاڻي فلاڻي وقت تي پڙهو ۽ جڏهن نماز جي مهل ٿئي ته توهان مان هڪ ڇڻو بانگ ڏي ۽ جنهن کي قرآن ياد هجي، اهو امامت ڪري." (1)

هن حديث مان اندازو ٿئي ٿو ته مڪي جي فتح وارو واقعو حالتون تبديل ڪرڻ، اسلام کي سگهارو ڪرڻ، عربستان جي رهاڪن کي سچ سمجهائي اسلام آڏو هٿيار ڦٽا ڪرڻ ۾ ڪيترا نه گهرا ۽ جتادار اثر ڇڏڻ جي ڪري اهميت رکي ٿو. اها ڪيفيت غزوه تبوك کانپوءِ اڃا وڌيڪ پڪي ٿي وئي. ان ڪري ئي اسان ڏسون ٿا ته انهن بن ورهين (سنه 9 ۽ 10 هـ) ۾ مديني اچڻ وارن وفدن جون قطارون لڳيون پيون هونديون هيون ۽ ماڻهو الله جي دين ۾ وڏن وڏن جتن جي شڪل ۾ داخل ٿي رهيا هئا. ايستائين جو اهو اسلامي لشڪر جيڪو مڪو فتح ڪرڻ مهل ڏهه هزار سپاهين تي ٻڌل هو، ان جو تعداد غزوه تبوك ۾ (جيڪو مڪو فتح ٿيڻ کي هڪ سال پورو ٿيڻ کان به اڳ ٿيو هو)، ايترو وڌي ويو جو اهو تيهه هزار فوجين تائين وڃي رسيو. وري اسين حجة الوداع مهل ڏسون ٿا ته هڪ لک چوويهه هزار يا هڪ لک چوئيتاليهه هزار مسلمانن جي ڇڻ ته ٻوڏ آيل هئي، جيڪي پاڻ

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (2/615\_616).

سڳورن ﷺ جي جوڌاري لبيڪ لبيڪ پڪاريندا، تڪبير جا نعرا هڻندا، الله جي وڏائي ۽ ساراه بيان ڪري رهيا هئا، جن سان آسمان گونججي رهيو هو. جبل توڙي ماتريون صءاء توحيد جا پڙاڏا ڪري رهيون هيون.

وفد:- سيرت نگارن جيڪي وفد ڄاڻايا آهن، تن جو تعداد ستر کان وڌيڪ آهي، پر هتي نه ڪو انهن سمورن جي ذڪر جو موقعو آهي، نه ئي ذڪر ڪرڻ مان ڪو لاپ حاصل ٿيندو، ان ڪري اسين رڳو انهن وفدن جو ذڪر ڪريون ٿا، جيڪي تاريخي اهميت رکن ٿا. پڙهندڙن کي اها ڳالهه ياد رکڻ گهرجي ته جيتوڻيڪ عام قبائلي وفد مڪي جي فتح کانپوءِ ئي مديني ۾ اچڻ شروع ٿي ويا هئا، پر ڪي ڪي قبيلاهڙا به هئا، جن جا وفد مڪي جي فتح کان اڳ ئي مديني پهچي ويا هئا. هتي اسين انهن جو ذڪر ڪريون ٿا.

(1) عبدالقيس وارو وفد:- هن قبيلي جو وفد به پيرا پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو. پهريون ڀيرو سنه 5 هـ ۾ يا ان کان به اڳ ۽ ٻيو ڀيرو عام وفد اچڻ مهل سنه 9 هـ ۾ پهريون ڀيرو اچڻ جو ڪارڻ اهو هو ته هن قبيلي جو هڪ ماڻهو منقذ بن حبان، واپاري وڪر کڻي مديني ايندو ويندو هو. اهو جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي هجرت کانپوءِ پهريون ڀيرو مديني آيو ۽ کيس اسلام جو پتو پيو ته هو مسلمان ٿي ويو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جو هڪ خط کڻي پنهنجي قوم وٽ ويو. انهن به اسلام قبوليو ۽ سندن تيرنهن يا چوڏنهن ڄڻن جو هڪ وفد حرمت واري مهيني ۾ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتو. هن ڀيري ئي هن وفد پاڻ سڳورن ﷺ کان ايمان ۽ مذهبي طريقن بابت سوال ڪيا هئا. هن وفد جو اڳواڻ الاشج العصري (1) هو، جنهن بابت پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو هو ته تو ۾ به گڻ اهڙا آهن، جيڪي الله تعاليٰ کي وڻندا آهن. هڪ ته دور انديشي ۽ ٻيو بردباري.

ٻيو ڀيرو هن قبيلي جو وفد، جيئن مٿي ٻڌايوسين ته وفدن واري سال آيو هو. ان مهل سندن تعداد چاليهه هو ۽ انهن ۾ علاء بن جارود عبدي به هو، جيڪو نصراني هو، پر پوءِ مسلمان ٿي ويو ۽ ڏاڍو چڱو مسلمان ٿيو. (2)

(2) دوس قبيلي جو وفد:- هي وفد سنه 7 هـ جي منڍ ۾ مديني آيو هو. ان مهل پاڻ سڳورا ﷺ خيبر ويل هئا. توهان مٿي پڙهي چڪا آهيو ته هن قبيلي جو سردار حضرت طفيل بن عمرو دوسي رضه انهن ڏينهن ۾ مسلمان ٿيو هو. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ اڃا مڪي ۾ هئا. پوءِ هن پنهنجي قوم ۾ موٽي اچي اسلام جي پرچار ڪئي پر سندن قوم لاڳيتو تاريندي ۽ دير ڪندي رهي.

<sup>1</sup> - مرعاة المفاتيح (71/1).

<sup>2</sup> - شرح صحيح مسلم للنووي (33/1) فتح الباري (85/8\_86).



نيٺ حضرت طفيل رضي الله عنه کانئن مايوس ٿي پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ اچي چيو ته توهان دوس قبيلي کي پٽيو. پر پاڻ سڳورن عليه السلام دعا گهري ته: "اي الله! دوس وارن کي هدايت ڏي." پاڻ سڳورن عليه السلام جي ان دعا سان هن قبيلي وارا مسلمان ٿي ويا. حضرت طفيل رضي الله عنه پنهنجي قوم جي ستر يا اسي گهراڻن جو ميڙ وٺي سنه 7 هه جي منڍ ۾ ان مهل مديني هجرت ڪري آيو، جڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام خيبر ويل هئا. تنهن کانپوءِ حضرت طفيل رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام سان خيبر ۾ وڃي مليو.

(3) فزده بن عمرو جذامي جو قاصد:- حضرت فزده رضي الله عنه رومي لشڪر جو هڪ عربي سالار هو. کين رومين پنهنجن سرحدن سان ڳنڍيل عرب علائقن جو گورنر بڻايو هو. سندن مرڪز معان (ڏکڻ اردن) هو ۽ ڇهه پاسي وارن علائقن تي سندن راڄ هو. هن، موت واري جنگ (سنه 8 هه) ۾ مسلمانن جي لڙائي، دليري ۽ جنگي حڪمت عملي ڏسي اسلام قبوليو ۽ هڪ قاصد موڪلي پاڻ سڳورن عليه السلام کي مسلمان ٿيڻ جي ڄاڻ ڏني ۽ سوکڙيءَ طور هڪ خچر موڪليو. رومين کي سندن مسلمان ٿيڻ جو پتو پيو ته انهن پهرين ته کين جهلي کڻي قيد ڪيو، پوءِ اختيار ڏنائون ته يا ته مرتد ٿي وڃ يا مرڻ لاءِ تيار ٿي وڃ. هن ڦرڻ کان مرڻ پسند ڪيو. جنهن تي کين فلسطين ۾ عرفاء نالي هڪ چشمي وٽ قاهيءَ تي چاڙهي شهيد ڪيو ويو.<sup>(1)</sup>

(4) صداء وارن جو وفد:- هي وفد سنه 8 هه ۾ جعرانه کان پاڻ سڳورن عليه السلام جي موٽڻ کانپوءِ پهتو. ان جو ڪارڻ اهو هو ته پاڻ سڳورن عليه السلام چار سؤ مسلمانن جي هڪ جڳي کي حڪم ڏنو هو ته يمن ۾ صداء قبيلي جي رهڻ وارا ماڳ لتاڙي اچن. اهو جڳو اڃا قنات نالي واديءَ جي چيڙي تي لتل هو ته حضرت زياد بن حارث صدائي کي پتو پئجي ويو. پاڻ تڪڙو تڪڙو پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ پهتو ۽ عرض ڪيائين ته منهنجي پٺيان جيڪي ماڻهو آهن، آئون انهن جو عيوضي ٿي آيو آهيان، تنهنڪري لشڪر کي موٽايو وڃي. آئون پنهنجي قوم جو ضامن ٿو پوان. تنهن تي پاڻ سڳورن عليه السلام لشڪر واپس گهرايو. ان کانپوءِ حضرت زياد رضي الله عنه پنهنجي قوم ۾ وڃي کين پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ هلڻ لاءِ همٿايو. سندن همٿائڻ تي پنڌرنهن ڄڻا پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ آيا ۽ اسلام جي بيعت ڪيائون. پوءِ پنهنجي قوم ۾ وڃي اسلام جي پرچار ڪرڻ لڳا ۽ انهن ۾ اسلام ڦهلجي ويو. حجة الوداع جي موقعي تي انهن مان هڪ سؤ ڄڻن اچي پاڻ سڳورن عليه السلام سان ملڻ جو شرف حاصل ڪيو.

(5) ڪعب بن زهير بن ابي سلمیٰ جو اچڻ:- هي همراه هڪ شاعر گهراڻي مان هو ۽ پاڻ به عربستان جو هڪ وڏو شاعر هو. هو ڪافر هو ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام جي هجو ڪندو هو. امام

<sup>1</sup> - زاد المعاد (3/45).

حاڪم جي چوڻي آهي ته هي به انهن ڏوهارين منجهان هو، جن بابت مڪي جي فتح مهل حڪم ڏنو ويو هو ته اهي ڪعبه الله جو پردو جهلي بينل ملن ته به کين ماريو وڃي، پر هي همراھ ٻڃي نڪتو. ٻئي پاسي پاڻ سڳورا ﷺ طائف واري غزوي (سنه 8 هـ) تان موٽيا ته ڪعب کي سندس پاءُ بجير بن زهير لکيو ته پاڻ سڳورن ﷺ، مڪي جا اهڙا گهڙائي ماڻهو مارائي ڇڏيا آهن، جيڪي پاڻ سڳورن ﷺ جي هجو ڪندا هئا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي تنگ ڪندا هئا. قريشن جي بچيل سچيل شاعرن کي جيڏانهن منهن لڳو، تيڏانهن پڇي ويا. تنهنڪري جيڪڏهن توکي ساهه پيارو هجي ته پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اڏامي پهچ. چوٽه ڪوبه ماڻهو توبه ڪري انهن وٽ اچي ٿو ته پاڻ سڳورا ﷺ کين مارائين ڪونه ٿا ۽ جيڪڏهن اها ڳالهه نٿو قبولين ته پوءِ جنهن پاسي پڇي سگهين، تنهن پاسي پڇي وڃ. تنهن کانپوءِ ٻنهي ڀائرن ۾ وڌيڪ لڪپڙهه ٿي، جنهن جي نتيجي ۾ ڪعب بن زهير کي ڌرتي سوڙهي محسوس ٿيڻ لڳي ۽ اچي ساهه سان لڳيس. تنهنڪري نيٺ مديني ۾ آيو ۽ جهيندو جي هڪ ماڻهوءَ وٽ مهمان ٿي رهيو ۽ ساڻس گڏ نماز به پڙهيائين. نماز کان واندو ٿيو ته جهيندو اشارو ڪيس ۽ هو اتي وڃي پاڻ سڳورن ﷺ جي پرسان ويٺو ۽ پنهنجو هٿ پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿ تي رکي ڇڏيائين. پاڻ سڳورا ﷺ کيس سڃاڻندا ڪونه هئا. هن چيو ته "يا رسول الله! ڪعب بن زهير توبه ڪري مسلمان ٿي ويو آهي ۽ توهان کان امن جو گهرجائو آهي. جي آئون ڪيس هتي وٺي اچان ته ڇا توهان سندس اسلام قبول ڪندؤ." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "هاڻو." هن چيو ته "آئون ڪعب بن زهير آهيان." اهو ٻڌي هڪ انصاري اصحابي هن تي جهپو هنيو ۽ کيس مارڻ جي موڪل گهري. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ڇڏي ڏينس. هي تائب ٿي، پنهنجين پوين ڳالهين تان هٿ ڪڍي آيو آهي." تنهن کانپوءِ ان ئي موقعي تي ڪعب بن زهير پنهنجو مشهور قصيدو پاڻ سڳورن ﷺ کي پڙهي ٻڌايو، جنهن جي ابتدا هيئن هئي:

بانت سعادُ فقلبي اليومَ متبول متيم اترها لم يفد، مڪبول

"سعاد (مون کان) پري ٿي وئي ته منهنجي دل بيقرار آهي، ان جي عشق ۾ گرفتار ۽ پيڙين ۾ جڪڙيل آهي. (منهنجي دل کي ڇڏائڻ لاءِ هن کي ويجهو ڪرڻ جو) فديو نه ڏنو ويو." هن قصيدي ۾ ڪعب، پاڻ سڳورن ﷺ سان معذرت ڪندي سندن ساراهه ڪندي هيئن اڳتي چيو آهي ته:

تُبَّتْ أَنْ رَسُولَ اللَّهِ أَوْعَدَنِي ... وَالْعَفْوُ عِنْدَ رَسُولِ اللَّهِ مَأْمُولُ  
مَهْلًا هَذَا الَّذِي أَعْطَاكَ نَافِلَةَ الْ... قُرْآنَ فِيهَا مَوَاعِيظٌ وَتَفْصِيلُ  
لَا تَأْخُذَنِي بِأَقْوَالِ الْوَشَاةِ وَكَمْ ... أُذْنِبُ وَلَوْ كَثُرَتْ فِي الْأَقَاوِيلِ

لَقَدْ أَقَوْمٌ مَقَامًا لَوْ يَقُومُ بِهِ ... أَرَى وَأَسْمَعُ مَا لَوْ يَسْمَعُ الْقَيْلُ  
 لَطَلَّ يَرَعْدُ إِلَّا أَنْ يَكُونَ لَهُ ... مِنَ الرَّسُولِ بِإِذْنِ اللَّهِ تَنْوِيلُ  
 حَتَّى وَصَعْتُ يَمِينِي مَا أَنَا زَعُهُ ... فِي كَفِّ ذِي نَقِمَاتٍ قَيْلُهُ الْقَيْلُ  
 فَلَهُوَ أَحْوَفُ عِنْدِي إِذْ أَكَلَمُهُ ... وَقِيلَ إِنَّكَ مَنسُوبٌ وَمَسْئُولُ  
 مِنْ ضَبْعِمُ بَضْرَاءِ الْأَرْضِ مُخْدَرُهُ ... فِي بَطْنِ عَثْرٍ غَيْلٌ دُونَهُ غَيْلُ  
 إِنَّ الرَّسُولَ لَنُورٌ يُسْتَضَاءُ بِهِ ... مُهَنْدٌ مِنْ سُيُوفِ اللَّهِ مَسْئُولُ

"مون کي ٻڌايو ويو آهي ته الله جي رسول مون کي ڌمڪي ڏني آهي، جيتوڻيڪ الله جي رسول مان درگذر جو آسرو آهي. اوهان ترسو چغلخورن جي ڳالهين تي يقين نه ڪريو. اها هستي توهان جي رهنمائي ڪري، جنهن توهان کي نصيحتن ۽ تفصيل سان پربل قرآن تحفي ۾ ڏنو آهي. جيتوڻيڪ مون بابت ڳالهيون گهڻيون ڪيون ويون آهن، پر مون ڏوهه نه ڪيو آهي. آئون اهڙي هنڌ بيسو آهيان ۽ اهي ڳالهيون ڏسان ۽ ٻڌان پيو جو جيڪڏهن هاڻي به اتي بيهي ۽ اهي ڳالهيون ٻڌي ۽ ڏسي ته هوند ڪنهي وڃي. سواءِ ان صورت جي جو ان تي الله جي اذن (اجازت) سان رسول ﷺ جي نوازش هجي. ايتري قدر جو مون پنهنجو هٿ ڪنهن تڪرار ڪانسواءِ ان پلازيءَ هستيءَ جي هٿ ۾ ڏئي ڇڏيو آهي، جنهن کي بدلي تي پورو اختيار آهي ۽ جنهن جي ڳالهه ورنائتي هوندي آهي، جڏهن آئون ساڻس ڳالهايان ٿو. جيتوڻيڪ مون کي چيو ويو آهي ته توڏانهن (فلاڻيون فلاڻيون ڳالهيون) منسوب آهن ۽ توکان ان جو پڇاڻو ڪيو ويندو ته هو منهنجي نظر ۾ ان شينهن کان به وڌيڪ خوفناڪ هوندو آهي، جنهن جي رهڻ جي جاءِ ڪنهن مومتمار واديءَ جي پيٽ ۾ موجود ڪنهن اهڙي سخت زمين ۾ هجي، جنهن کان اڳ به هلاڪت هجي. يقيناً پاڻ سڳورا ﷺ هڪ نور آهن، جنهن مان روشني حاصل ڪئي وڃي ٿي. الله جي تلوارن مان هڪ ابي هندي تلوار آهن."

تنهن کانپوءِ ڪعب بن اشرف، قريشي مهاجرن جي ساراهه ڪئي، چوڻ ڪعب جي اچڻ تي انهن مان ڪنهن به چڱائيءَ ڪانسواءِ ڪا ڳالهه يا حرڪت نه ڪئي هئي، پر مدح ۾ انصارن تي چتر ڪيائين. چوڻ سندن هڪ چٽي کيس مارڻ جي موڪل گهري هئي. چيائين ته:

يَمْسُونَ مَشْيَ الْجَمَالِ الزَّهْرِ يَعْصِمُهُمْ ... ضَرْبٌ إِذَا عَرَدَ السُّودُ التَّنَائِيلُ

"اهي (قريش) سهڻن لڏندڙ لڏندڙ اٺن وانگر هلن ٿا ۽ تلواربازيءَ جو هنر سندن حفاظت ڪري ٿو ۽ پاڙيا پتا سندن رستو ڇڏي پڇي وڃن ٿا."

پر جڏهن هو پڪو مسلمان ٿيو ته هن هڪ قصيدو انصارن جي ساراهه ۾ به لکيو ۽ اڳئين پل

جي تلافي ڪندي هن قصيدي ۾ چيائين ته:

مَنْ سَرَّهُ كَرْمُ الْحَيَاةِ فَلَا يَزَلْ ... فِي مَقْبِ مِنْ صَالِحِي الْأَنْصَارِ

وَرِثُوا الْمَكَارِمَ كَابِرًا عَنْ كَابِرٍ ... إِنَّ الْخِيَارَ هُمْ بَنُو الْأَخْيَارِ

"جنهن کي سنن اخلاقن واري زندگي پسند هجي، اهو سدائين پلارن انصارن جي ڪنهن ٽولي ۾ رهي. انهن چڱايون پنهنجن ابن ڏاڏن کان ورثي ۾ ورتيون آهن. حقيقت ۾ چڱا ماڻهو اهي ئي آهن، جيڪي چڱن جو اولاد آهن."

(6) عذره وارن جو وفد:- هي وفد، صفر سنه 9 هه ۾ مديني پهتو، جنهن ۾ ٻارنهن ڄڻا هئا. انهن ۾ حمزة بن نعمان رضي الله عنه به شامل هو. جڏهن وفد کان پڇيو ويو ته توهان ڪير آهيو؟ ته سندن نمائندي چيو ته "اسين بنو عذره آهيون. قصي جا (آخياڻي) مائيتا ڀائر. اسان ئي قصيءَ جو پاسو ورتو هو ۽ خزاع ۽ بنو بڪر کي مڪي مان ڏکي ڪڍيو هو. (هتي) اسانجون مائيتيون ۽ واسطا آهن." تنهن تي پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کين پليڪار ڪئي ۽ شام ملڪ فتح ڪرڻ جي بشارت ڏني ۽ کين پويين (ڪاهن عورتن) وٽ وڃڻ کان روڪيو ۽ اهڙين قربانين کان روڪيو، جيڪي اهي (شرڪ جي حالت ۾) ڪندا هئا. ان وفد اسلام قبوليو ۽ ڪجهه ڏينهن ترسي موٽي ويو.

(7) بليءَ وارن جو وفد:- هيءُ وفد ربيع الاول سنه 9 هه ۾ مديني آيو ۽ مسلمان ٿي ٿي ڏينهن اتي ترسيو. رهائش دوران وفد جي سردار ابوالضبيب پڇيو ته "ڇا مهماني ڪرڻ ۾ به ثواب آهي؟" پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "هاڻو! ڪنهن مالدار يا ڪنهن فقير سان جيترو به چڱو هلندي، اهو صدقو آهي." هن پڇيو ته "مهماني گهڻا ڏينهن ڪجي؟" پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "تي ڏينهن." هن پڇيو ته ڪنهن اڻڄاڻوٽيءَ جي وڃايل رڍ يا بڪري ملي ته ڇا ڪجي؟" پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "ها تولهه آهي يا تنهنجي ڀاءُ لاءِ آهي يا وري بگهڙ لاءِ آهي." ان کانپوءِ هن وڃايل اڻ بابت پڇيو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم فرمايو ته "ان ۾ تنهنجو ڪهڙو ڪم؟ ان کي ڇڏي ڏي. پاڻهي مالڪ وڃي کيس هٿ ڪندو."

(8) ثقيف وارن جو وفد:- اهو وفد رمضان سنه 9 هه ۾ تبوك کان پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي موٽڻ کانپو پهتو. هن قبيلي ۾ اسلام هن طرح ڦهليو جو پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ذي القعد سنه 8 هه ۾ جڏهن طائف واري غزوي تان موٽيا ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي مديني پهچڻ کان اڳ ئي هن قبيلي جي سردار عروه بن مسعود رضي الله عنه، پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم وٽ اچي اسلام قبوليو ۽ پوءِ پنهنجي قبيلي ۾ وڃي ماڻهن ۾ اسلام جي پرچار ڪئي. جيئن ته پاڻ پنهنجي قوم جو سردار هو ۽ رڳو اهو نه پر سندن چيو به مڃيو ويندو هو، پر کين قبيلي پاران پنهنجن ٻارن بچن کان به وڌيڪ پيارو سمجهندا هئا، تنهنڪري سندن ليڪي ماڻهو سندن پوٽواري ڪندا. پر جڏهن انهن اسلام جي دعوت ڏني ته توقع جي ابتڙ انهن تي هر طرف کان تيرن جو وسڪارو ڪيو ويو ۽ کين ماريو ويو. کين مارڻ کانپوءِ ڪجهه ڏينهن ته ائين ئي

گذري ويا. پوءِ کين احساس ٿيو ته ڀرياسي جو سڄو علائقو مسلمان ٿي چڪو آهي، جنهن سان وڙهڻ جو اسان ست نٿا ساري سگهون. تنهنڪري انهن پاڻ ۾ صلاح ڪئي ته هڪڙو ڄڻو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ موڪلين. ان ڪم لاءِ عبدالليل بن عمرو سان ڳالهه ٻول ڪيائون پر اهو راضي نه ٿيو. کيس ڊپ هو ته متان ساڻس به اهو سلوڪ نه ڪيو وڃي جيڪو عروه بن مسعود رضي الله عنه سان ڪيو ويو هو. ان ڪري هن چيو ته "آئون اهو ڪم تيستائين نٿو ڪري سگهان جيستائين مون سان گڏ ٻيا به ڪي ماڻهو نٿا موڪليو. ماڻهن اها گهر پوري ڪئي ۽ ساڻس گڏ حليفن مان ٻه ڄڻا ۽ بني مالڪ مان ٽي ڄڻا موڪليا. اهڙيءَ طرح ڪل ڇهن ڄڻن جو وفد سنڀري نڪتو. هن ئي وفد ۾ حضرت عثمان بن ابي العاص ثقيفي رضي الله عنه به هو جيڪو سڀني کان ننڍڙي ڄمار جو هو.

جڏهن اهي پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهتا ته پاڻ سڳورن ﷺ انهن لاءِ مسجد جي هڪ ڪنڊ ۾ خيمو کوڙايو ته جيئن اهي قرآن ٻڌي سگهن ۽ اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي نماز پڙهندي ڏسي سگهن. اهي همراھ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ايندا ويندا رهيا ۽ پاڻ سڳورا ﷺ کين اسلام جي دعوت ڏيندا رهيا. نيٺ سندن سردار چيو ته ڇا توهان پنهنجي ۽ ثقيف جي وچ ۾ هڪ (اهڙو) ٺاهه لکي ڏيندا جنهن ۾ زنا ڪرڻ، شراب پيئڻ ۽ وياح وٺڻ جي چوٽ هجي. سندن معبود لات سان ڪابه چيڙ ڇاڙ نه ڪئي وڃي. انهن تان نماز به معاف هجي ۽ سندن بت سندن هٿان نه پڇايا وڃن." پر پاڻ سڳورن ﷺ انهن مان ڪا ڳالهه نه مڃي. تنهنڪري انهن وري اڪيلائيءَ ۾ صلاح ڪئي پر کين پاڻ سڳورن ﷺ اڳيان هٿيار ڦٽا ڪرڻ کانسواءِ ٻيو ڪوبه گس نه سجهيو. نيٺ هنن پنهنجو پاڻ کي پاڻ سڳورن ﷺ جي حوالي ڪندي اسلام قبول ڪري ورتو. باقي اهو شرط وڌائون ته "لات" کي ڊاهڻ جو ڪم پاڻ سڳورا ﷺ پاڻ ڪرائين، ثقيف، ان کي پنهنجي هٿن سان ڪڏهن ڪونه ڊاهيندا. پاڻ سڳورن ﷺ اهو شرط مڃيو ۽ هڪ لکت ڏنائون ۽ عثمان بن ابي العاص ثقيفي رضي الله عنه کي سندن امير بنايائون. چوٽه اهي ئي اسلام کي سمجهڻ ۽ قرآن جي تعليم حاصل ڪرڻ ۾ سڀ کان اڳرو ۽ شوق رکندڙ هو. ان جو سبب اهو هو جو وفد جا رڪن روزانو صبح جو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ويندا هئا پر عثمان رضي الله عنه کي پنهنجي ديري تي ڇڏي ويندا هئا. جڏهن وفد موٽي اچي پنهنجن جو آرام ڪندو هو ته حضرت عثمان رضي الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي قرآن پڙهندو هو ۽ دين جون ڳالهيون پڇندو هو ۽ جيڪڏهن پاڻ سڳورا ﷺ آرامي هوندا هئا ته هو حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جن وٽ هليو ويندو هو. حضرت عثمان بن ابي العاص رضي الله عنه جي گورنري به ڏاڍي ڀلي ثابت ٿي. پاڻ سڳورن ﷺ جي هن جهان مان لاڏاڻي کانپوءِ جڏهن صديقي خلافت ۾ ارتداد جي لهر اتي ۽ ثقيف وارن به مرتد ٿيڻ جو پهه ڪيو ته کين عثمان بن ابي العاص رضي الله عنه سمجهائيندي چيو ته "ثقيف وارو! توهان سڀني کان پڇاڙيءَ

۾ مسلمان ٿيا آهيو. تنهنڪري سڀني کان پهرين مرتد نه ٿيو. " اهو ٻڌي ماڻهن ارتداد ڪرڻ کان پاڻ جهليو ۽ اسلام تي ثابت قدم رهيا.

بهرحال وفد، قبيلي وٽ موتي اصل ڳالهه لڪائي ۽ قبيلي آڏو لڙائي ۽ وڙهه وڙهان جون ڳالهيون ڪيون ۽ ڏکويل انداز ۾ ٻڌايو ته پاڻ سڳورن ﷺ کانئن گهر ڪئي آهي ته اسلام قبوليو ۽ زنا، شراب ۽ وياج کي ڇڏيو نه ته ڇٽي ويڙهه ڪئي ويندي. اهو ٻڌي ثقيف وارن تي پهرين ته جاهلن واري هوڏ سوار ٿي وئي ۽ اهي تن ڏينهن تائين وڙهه وڙهان جون ڳالهيون ڪندا رهيا، پر پوءِ الله تعاليٰ سندن دلين ۾ ڊپ وڌو ۽ انهن وفد کي ٻيهر پاڻ سڳورن ﷺ وٽ وڃي شرط مڃڻ جي گذارش ڪئي. تڏهن وفد وارن سڄي ڳالهه ٻڌاين ۽ جن ڳالهين تي ٺاه ٿيو هو اهي ظاهر ڪيون. ثقيف وارن اوڏي مهل ئي اسلام قبوليو.

ٻئي ڏينهن "لات" کي ڊاهڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ حضرت خالد بن وليد رضه جي اڳواڻي ۾ ڪجهه اصحابي سڳورا رضي الله عنهم موڪليا. حضرت مغيرة بن شعبه رضه جن اتي گرز ڪنيو ۽ پنهنجن ساٿين کي چيو ته "والله آئون ٿورو توهان کي ثقيف وارن تي ڪلائيندس. تنهن کانپوءِ "لات" کي گرز هڻي پاڻ ئي ڪري پيو ۽ ڇڙيون هڻڻ لڳو. اهو ڊرامو ڏسي طائف وارن کي اچي ڊپ ورايو. چوڻ لڳا ته "الله مغيرة کي هلاڪ ڪري هن کي ديويءَ ماري وڌو." تنهن تي حضرت مغيرة رضه ٽپ ڏئي اتي بيٺو ۽ چيو ته "الله توهان جو برو ڪري. هيءُ ته پٿر ۽ مٽيءَ جو تماشو آهي." پوءِ هن دروازي تي ڌڪ هنيو ۽ ان کي ڊاهي اچي پٽ ڪيائين. ويندي ان جا بنياد به ڪوتي وڌائين ۽ ان جا ڳهه ڳٽا ۽ ڪپڙا لٽا لاهي ورتائين. اهو ڏسي ثقيف وارن کي ماڻ لڳي وئي. حضرت خالد رضه ڳهه ۽ ڪپڙا کڻي پنهنجي ٽولي سان موٽيو. پاڻ سڳورن ﷺ سڀ ڪجهه ان ئي ڏينهن ورهائي ڇڏيو ۽ نبيءَ جي فتح ۽ دين کي اعزاز ملڻ تي الله تعاليٰ جا تورا مڃيا. (1)

(9) يمن جي شاهن جو خط:- تبوڪ کان پاڻ سڳورن ﷺ جي موٽڻ کانپوءِ حمير جي بادشاهن يعني حارث بن عبدالڪلال، نعيم بن عبدالڪلال ۽ رعين، همدان ۽ معافر جي اڳواڻن، نعمان بن قيل جو خط پهتو. خط آئيندڙ مالڪ بن مره رهاڊي هو. انهن بادشاهن پنهنجي اسلام قبولڻ ۽ شرڪ ۽ مشرڪن کان پاسو ڪرڻ جو ڄاڻ موڪليو هو. پاڻ سڳورن ﷺ کين جوابي خط لکي واضح ڪيو ته مؤمنن جا حق ۽ سندن ذميداريون ڪهڙيون آهن. پاڻ سڳورن ﷺ ان خط ۾ ٺاه ڪرڻ وارن لاءِ الله جو ذمو ۽ ان جي رسول ﷺ جو ذمو به ڏنو هو. پر شرط اهو هو ته اهي رٿيل جزبو

<sup>1</sup> - زاد المعاد (3/26، 27، 28)، - ابن هشام (2/537-542).

ڏيندا رهن. ان کانسواءِ پاڻ سڳورن ﷺ کجهه اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي يمن موڪليو ۽ حضرت معاذ بن جبل رضى الله عنه کي انهن جو اڳواڻ ڪيو.

(1) همدان وارن جو وفد:- هي وفد سنه 9 هـ ۾ تبوك کان پاڻ سڳورن ﷺ جي موٽڻ کانپوءِ پهتو. پاڻ سڳورن ﷺ سندن لاءِ هڪ لکت لکي، جيڪو کجهه انهن گهريو هو، اهو عطا ڪيو ۽ مالڪ بن نمط رضى الله عنه کي سندن اڳواڻ چونڊي سندن قوم جي مسلمانن لاءِ گورنر مقرر ڪيو ۽ ٻين ماڻهن کي اسلام جي دعوت ڏيڻ لاءِ حضرت خالد بن وليد رضى الله عنه کي موڪليائون. اهي اتي ڇهه مهينا رهي اسلام جي پرچار ڪندا رهيا پر ماڻهن اسلام نه قبوليو. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ حضرت علي بن ابي طالب رضى الله عنه کي موڪليو ۽ حڪم ڪيو ته خالد رضى الله عنه کي واپس موڪلين. حضرت علي رضى الله عنه جن همدان قبيلي وارن وٽ پهچي کين پاڻ سڳورن ﷺ جو خط پڙهي ٻڌايو ۽ اسلام جي دعوت ڏني ته سڀئي مسلمان ٿي ويا. حضرت علي رضى الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ کي انهن جي مسلمان ٿيڻ جي خوشخبري موڪلي. پاڻ سڳورا ﷺ خط پڙهي سجدي ۾ ڪري پيا ۽ پوءِ ڪنڌ مٿي کڻي فرمايائون ته همدان وارن تي سلام، همدان وارن تي سلام.

(11) بني فزاره جو وفد:- اهو وفد سنه 9 هـ ۾ تبوك کان پاڻ سڳورن ﷺ جي موٽڻ کانپوءِ پهتو. هن ڏهن کان کجهه مٿي ماڻهو هئا ۽ سڀئي اسلام قبولي چڪا هئا. انهن پنهنجي علائقي ۾ ڏڪار جي دانهن ڏني. پاڻ سڳورا ﷺ منبر تي چڙهيا ۽ ٻئي هٿ کڻي مينهن لاءِ دعا گهريائون. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "اي الله! پنهنجي ملڪ ۽ پنهنجن جانورن جي اڃ اجهاءِ، پنهنجي رحمت کي ڪشادو ڪر، پنهنجي مثل شهر کي جبار. اي الله! اسان تي اهڙو مينهن وساءِ جيڪو اسان جا ڏک سور ختم ڪري، راحت پهچائي، وڻندڙ هجي، سڀني لاءِ فائديمند هجي، ترت اچي، دير نه ڪري، لاپاڻتو هجي، ڇيهو نه رسائي. اي الله! رحمت جو مينهن، عذاب جي وسڪار نه ۽ نه ڊاهڻ واري ۽ نه ٻوڙڻ واري ۽ نه نقصان واري وسڪار. اي الله! اسان تي مينهن وسائي آسودو ڪر ۽ دشمنن جي خلاف اسان جي مدد ڪر." (1)

(12) نجران وارن جو وفد:- (ن تي زير، ج ساڪن) مڪي کان يمن ڏانهن ستين مرحلي تي هڪ وڏو علائقو هو، جنهن ۾ ٽيهتر وسنديون هيون. تڪي ۾ تڪو سوار به سڄي ڏينهن ۾ مس وڃي سڄو علائقو پار ڪري ٿي سگهيو. (2) هن علائقي ۾ هڪ لک کان مٿي ڪنڌار مڙس رهندا هئا، جيڪي سمورا عيسائي هئا.

1 - زاد المعاد (3/48).

2 - فتح الباري (8/94).

نجران جو وفد سنه 9 هه ڀر آيو. اهو سن ڄڻ تي مشتمل هو. چوويهه جڳا مڙس به هئا، جن مان ٽي ڄڻا ته نجران وارن جا مهندار ۽ اڳواڻ هئا، جن مان هڪڙو عاقب هو جنهن جي ذميداري حڪومت جو ڪم ڪار سنڀالڻ هو. ان جو نالو عبدال مسيح هو. ٻيو سيد جيڪو ثقافتي ۽ سياسي ڪمن ڪارين جو سنڀاليندڙ هو. ان جو نالو آبهه يا شرحبيل هو. ٽيو ڄڻو اسقف (وڏو پادري) هو. جيڪو ديني اڳواڻ ۽ روحاني پيشوا هو. ان جو نالو ابو حارث بن علقمه هو.

وفد مديني پهچي پاڻ سڳورن ﷺ سان مليو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کانئن ڪجهه سوال ڪيا ۽ پوءِ انهن به پاڻ سڳورن ﷺ کان ڪجهه ڳالهائون پڇيون. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، کين اسلام جي دعوت ڏني ۽ قرآني آيتون پڙهي ٻڌايون. پر پوءِ به انهن اسلام نه قبوليو ۽ پڇيو ته توهان مسيح عليه السلام بابت ڇا ڄاڻو ٿا؟ ان جي جواب لاءِ پاڻ سڳورا ﷺ هڪ ڏينهن لاءِ ترسيا، نيٺ پاڻ سڳورن ﷺ تي هي آيتون لٿيون:

﴿إِنَّ مَثَلَ عِيسَىٰ عِنْدَ اللَّهِ كَمَثَلِ آدَمَ خَلَقَهُ مِنْ تُرَابٍ ثُمَّ قَالَ لَهُ كُنْ فَيَكُونُ (59) الْحَقُّ مِنْ رَبِّكَ فَلَا تَكُنْ مِنَ الْمُحْتَرَبِينَ (60) فَمَنْ حَاجَّكَ فِيهِ مِنْ بَعْدِ مَا جَاءَكَ مِنَ الْعِلْمِ فَقُلْ تَعَالَوْا نَدْعُ أَبْنَاءَنَا وَأَبْنَاءَكُمْ وَنِسَاءَنَا وَنِسَاءَكُمْ وَأَنْفُسَنَا وَأَنْفُسَكُمْ ثُمَّ نَبْتَهِلْ فَنَجْعَلْ لَعْنَةَ اللَّهِ عَلَى الْكَاذِبِينَ (61)﴾ (آل عمران)

”الله وٽ عيسيٰ (جي پيدا ڪرڻ) جو مثال آدم جي مثال جهڙو ئي آهي. ان (آدم) کي مٽيءَ مان بڻايائين ۽ وري ان کي چيائين ته ٿي پئو ته ٿي پيو. (اها ڳالهه) تنهنجي پالڻهار وٽان سڄي آهي. تنهنڪري شڪ ڪندڙن مان نه ٿي. ان کان پوءِ جيڪو تو وٽ علم آيو جيڪو توهان ان بابت جهڳڙو ڪري ته ڄڻو ته (اسين) پنهنجن پٽن ۽ اوهان جي پٽن ۽ پنهنجين زالن ۽ اوهان جي زالن ۽ پاڻ کي ۽ اوهان کي سڏيون پوءِ زاريءَ سان دعا گهرون پوءِ الله جي لعنت ڪوڙن تي ڪريون.“

صبح ٿيو ته پاڻ سڳورن ﷺ انهن ئي آيتن جي روشنيءَ ۾ حضرت عيسيٰ عليه السلام بابت کين پنهنجي راءِ ٻڌائي ۽ کين سڄو ڏينهن سوچ ويچار لاءِ ڇڏي ڏنو پر انهن حضرت عيسيٰ بابت پاڻ سڳورن ﷺ جي ڳالهه مڃڻ کان انڪار ڪيو. پوءِ ٻئي ڏينهن صبح جو (جڏهن اهي وفد وارا حضرت عيسيٰ عليه السلام بابت پاڻ سڳورن ﷺ جي راءِ مڃڻ کان انڪار ڪري چڪا هئا) پاڻ سڳورن ﷺ کين مباحلي جي دعوت ڏني ۽ پاڻ سڳورا ﷺ، حسن حسين رضي الله عنهما ساڻ هڪ چادر ۾ ويڙهجي سيڙهجي آيا. پٺيان بيبي فاطمه رضي الله عنهما هئي. جڏهن وفد ڏٺو ته پاڻ سڳورا ﷺ سچ پچ سنبري آيا آهن ته اڪيلائي ۾ وڃي پاڻ ۾ صلاح مشورو ڪيائون. عاقب ۽ سيد ٻنهي هڪٻئي کي چيو ته ”ڏسو مباحلو متان ڪريو. الله جو قسم! جي اهو نبي آهي ۽ اسان ان تي لعنتون وڌيون ته اسين ۽ اسان جي پويان اسان جو اولاد ڪڏهن به



ڪامياب نه ٿينداسين. سڄي ڌرتيءَ تي اسان جو هڪ وار ۽ هڪ ننهن به تباهيءَ کان نه بچي سگهندو. " نيٺ انهن اها رت رتي ته پاڻ سڳورن ﷺ تي ئي پنهنجو فيصلو ڇڏي ڏجي. تنهن کانپوءِ انهن پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي چيو ته اسين توهان جي ڪيل مطالبي کي مڃڻ لاءِ تيار آهيون. ان آڇ کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کائنن جزيو وٺڻ قبوليو ۽ ٻه هزار ڪپڙن جي وڳن تي ٺاهڻ ٿيو. هڪ هزار رجب ۾ ۽ هڪ هزار صفر ۾. اهو به رٿيو ويو ته هر وڳي سان گڏ هڪ اوقيه چاندي (هڪ سؤ ٻاونجاهه گرام) به ڏيئي پوندي ان جي عيوض پاڻ سڳورن ﷺ کين الله ۽ ان جي رسول جو ذمو ڏنو ۽ دين بابت پوري آزادي ڏني. ان سلسلي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ هڪ لکت ڏني. انهن پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ته پاڻ سڳورا ﷺ انهن ڏانهن هڪ امير (امانت وارو) موڪلين. تنهن تي پاڻ سڳورن ﷺ ٺاهڻ وارو مال وٺڻ لاءِ حضرت ابو عبیده بن جراح رضى الله عنه کي موڪليو. تنهن کانپوءِ انهن ۾ اسلام پکڙجڻ لڳو. سيرت نگار لکن ٿا ته سيد ۽ عاقب. نجران موٽڻ کانپوءِ مسلمان ٿي ويا. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ کائنن صدقو ۽ جزيو وٺڻ لاءِ حضرت علي رضى الله عنه کي موڪليو ۽ ظاهر آهي ته صدقو مسلمانن کان ئي ورتو ويندو آهي.<sup>(1)</sup>

(13) بني حنيفه جو وفد:- هي وفد سنه 9 هـ ۾ مديني آيو. ان ۾ مسيلمه ڪذاب سميت سترنهن ڄڻا هئا.<sup>(2)</sup> مسيلمه جو نسبي سلسلو هن طرح آهي. مسيلمه بن ثمامه بن ڪبير بن حبيب بن حارث اهو وفد هڪ انصاري صحابيءَ جي جاءِ تي اچي لٿو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي اسلام جي دائري ۾ داخل ٿيو. باقي مسيلمه ڪذاب بابت مختلف روايتون آهن. سڀني روايتن کي گڏي ڏسو ته خبر پوي ٿي ته هن هن ۽ وڏائي ۽ فائدا وٺڻ جو اظهار ڪيو هو ۽ وفد جي ٻين ماڻهن سان پاڻ سڳورن ﷺ وٽ نه آيو هو. پاڻ سڳورن ﷺ پهرين ته ڳالهين ۽ چڱي هلت سان سندس دل وٺڻ چاهي پر جڏهن ڏٺائون ته هن ماڻهوءَ تي سندن هلت چلت جو ڪو چڱو اثر نه پيو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ورتو ته هن ۾ ڏنگائي لڪل آهي.

ان کان پهرين پاڻ سڳورن ﷺ اهو خواب ڏنو هو ته پاڻ سڳورن ﷺ آڏو سڄي ڌرتيءَ جو ڌن آڻي رکيو ويو آهي ۽ ان مان سون جا ٻه ڪنگڻ به پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿ ۾ اچي پيا آهن. پاڻ سڳورن ﷺ کي اهي ٻئي ڏاڍا ڳرا ۽ ڏکوئيندڙ لڳا. تنهن تي وحي نازل ڪئي وئي ته انهن ٻنهي کي ٿوڪ ڏئي ڇڏيو. پاڻ سڳورن ﷺ ٿوڪ ڏني ته اهي ٻئي اڏامي ويا. هن خواب جي تعبير پاڻ

<sup>1</sup> - فتح الباري (8/94، 95) - زاد المعاد (3/38-41) - نجران جي وفد جي تفصيل بابت روايتن ۾ چڱو خاصو اختلاف آهي ۽ ان ڪارڻ ئي ڪن محققن چيو آهي ته: نجران جو وفد به پيرا مديني آيو هو. پر اسان جي نظر ۾ اها ئي ڳالهه صحيح آهي، جيڪا مٿي ڄاڻايل آهي.

<sup>2</sup> - فتح الباري (8/87).

سڳورن ﷺ اها ڪئي ته ڪانئن پوءِ به ڪذاب (وڏا ڪوڙا) اڀرندا. تنهن کانپوءِ جڏهن مسيلم آڪڙ ۽ انڪار ڪيو ۽ چيائين ته جيڪڏهن محمد ﷺ حڪومت جي واڳ پاڻ کانپوءِ منهنجي حوالي ڪرڻ جو فيصلو ڪيو ته پوءِ آئون سندس پوئلڳي ڪندس ته پاڻ سڳورا ﷺ هن وت هلي ويا. ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿ ۾ ڪجيءَ جي هڪ ٿاري هئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ حضرت ثابت بن قيس بن شماس رضه هو. مسيلم، پنهنجن ساٿين سان ويٺو هو. پاڻ سڳورا ﷺ سندس مٿان وڃي بيٺا ۽ ڳالهيون ڪيائون. هن چيو ته "جيڪڏهن توهان چاهيو ته اسين حڪومت جي معاملي ۾ توهان کي آزاد ڇڏي ڏيون پر پاڻ کان پوءِ اسان لاءِ وصيت ڪري ڇڏيو." پاڻ سڳورن ﷺ (ڪجيءَ جي ٿاريءَ ڏانهن اشارو ڪندي) فرمايو ته "جيڪڏهن تون مون کان هيءَ ٽڪر گهريندين ته اهو به توکي ڪونه ڏيندس. تون پنهنجي باري ۾ الله جي مقرر ڪيل فيصلي کان اڳتي نٿو وڃي سگهين ۽ جي توڻي ڦيري ته الله تعاليٰ توکي ٽوڙي ڇڏيندو. الله جو قسم! آئون توکي اهوئي ماڻهو پيو سمجهان جنهن جي باري ۾ مون کي اهو (خواب) ڏيکاريو ويو هو ۽ هي ثابت بن قيس آهي. جيڪو توکي، منهنجي پاران جواب ڏيندو." ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ موتي ويا. (1)

نيٺ ائين ئي ٿيو. جنهن جو اندازو پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي فراست سان اڳيئي ڪري ورتو هو. يعني مسيلم ڪذاب، يمامه موٽڻ کانپوءِ سوڄ ويچار ڪري اها هار هنئي ته کيس پاڻ سڳورن ﷺ سان گڏ نبوت جي ڪم ڪار ۾ پاڻيوار ڪيو ويو آهي. تنهن کانپوءِ هن نبوت جي دعوا ڪئي ۽ سجع (شاعري جي هڪ صنف) جوڙڻ لڳو. پنهنجي قوم لاءِ زنا ۽ شراب حلال ڪري ڇڏيائين ۽ ان سان گڏوگڏ پاڻ سڳورن ﷺ بابت اها شاهدي به ڏيندو هو ته پاڻ سڳورا ﷺ الله جا نبي آهن. هن همراھ جي ڪري قوم فتنن ۾ پئجي وئي، سندس پوئلڳ ۽ چيو مڃيندڙ بڻجي وئي، جنهن جي ڪري ڳالهه ڳري ٿي پئي. کيس ايڏي عزت ڏني وئي جو کيس يمامه جو رحمان سڏيو وڃڻ لڳو.

هاڻي هن پاڻ سڳورن ﷺ کي هڪ خط لکيو ته "مون کي هن ڪم ۾ توهان جو ٻانهن پيلي ڪيو ويو آهي. اڌ راج اسان لاءِ آهي ۽ اڌ قريشن لاءِ." پاڻ سڳورن ﷺ جواب موڪليو ته "زمين الله جي آهي. اهو پنهنجن ٻانهن مان جنهن کي چاهي، ان جو وارث ڪندو آهي ۽ انجام پرهيڙگارن لاءِ آهي." (2)

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (2/627، 628) ۽ فتح الباري (8/87-93).

<sup>2</sup> - زاد المعاد (3/31، 32).

ابن مسعود رضي الله عنه کان روایت آهي ته ابن نوحه ۽ ابن اثال، مسيلم جا قاصد بڻجي پاڻ سڳورن عليه السلام وٽ آيا هئا. پاڻ سڳورن عليه السلام کانئن پڇيو ته "توهان شاهدي ڏيو ٿا ته آئون الله جو رسول آهيان؟" انهن ورائيو ته "اسان شاهدي ڏيون ٿا ته مسيلم، الله جو رسول آهي." پاڻ سڳورن عليه السلام فرمايو ته: "مون الله ۽ ان جي رسول (محمد عليه السلام) تي ايمان آندو. جيڪڏهن آئون ڪنهن قاصد کي مارايان ها ته توهان ٻنهي کي مارايان ها." (1)

مسيلم ڪذاب سنه 10 هـ ۾ نبوت جي دعوا ڪئي هئي ۽ ربيع الاول سنه 12 هـ ۾ صديقي خلافت ۾ يملمه ۾ مارجي ويو هو. کيس ماريندڙ اهو ئي وحشي هو، جنهن حضرت حمزة رضي الله عنه کي شهيد ڪيو هو.

هڪڙو نبوت جو هام هڻندڙ اهو هو، جنهن جي پڇاڻي اها ٿي، ٻيو نبوت جو دعوي دار اسود عنسي هو، جنهن يمن ۾ فساد برپا ڪري ڇڏيو هو. کيس پاڻ سڳورن عليه السلام جي هن جهان مان لاڏاڻي کان رڳو هڪ ڏينهن ۽ هڪڙي رات اڳ حضرت فيروز رضي الله عنه ماريو هو. پوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام تي وحي نازل ٿي ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي هن واقعي جي ڄاڻ ڏني. ان کانپوءِ يمن کان حضرت ابوبڪر رضي الله عنه وٽ باقائده خبر پهتي. (2)

(14) بني عامر بن صعصعه جو وفد:- هن وفد ۾ الله جو دشمن عامر بن طفيل، حضرت لبيد رضي الله عنه جو مائيتو ڀاءُ اربد بن قيس، خالد بن جعفر ۽ جبار بن اسلم شامل هئا. اهي سمورا پنهنجي قوم جا مک ۽ وڏا شيطان هئا. عامر بن طفيل اهو ئي ساڳيو آهي، جنهن بئر معونه وٽ ستر اصحابي سڳورن کي شهيد ڪرايو هو. انهن جڏهن مديني اچڻ جو ارادو ڪيو ته عامر ۽ اربد پاڻ ۾ ست سٽي ته پاڻ سڳورن عليه السلام کي ٺڳيءَ سان اوچتو قتل ڪري ڇڏينداسون. تنهن کانپوءِ جڏهن وفد مديني ۾ پهتو ته عامر، پاڻ سڳورن عليه السلام سان ڳالهائڻ لڳو ۽ اربد ڦيرو ڏئي پاڻ سڳورن عليه السلام جي پٺيان پهتو ۽ گرانٽ جيتري تلوار ميان مان ڪڍيائين تي پر الله تعاليٰ سندس هٿ شل ڪري ڇڏيو ۽ هو تراڙ ڪڍي نه سگهيو ۽ الله تعاليٰ پنهنجي نبيءَ جي حفاظت ڪئي. پاڻ سڳورن عليه السلام انهن ٻنهي کي پاراتو ڏنو، جنهن جي ڪارڻ موٽڻ مهل الله تعاليٰ اربد ۽ ان جي اٺ تي وڃ ڪيرائي، جنهن سان اربد سڙي مٽو. ٻئي پاسي عامر هڪ سلوليہ عورت وٽ ويو ۽ ان دوران سندس ڳچيءَ تي ڳوڙهو نڪري آيو. ان کانپوءِ هو اهو چوندو مري ويو ته: "آه، اٺ جي ڳوڙهي جهڙو ڳوڙهو ۽ هڪ سلوليہ عورت جي گهر ۾ موت؟"

<sup>1</sup> - مسند احمد مشڪوة (2/347).

<sup>2</sup> - فتح الباري (8/93).

صحيح بخاريء جي روايت آهي ته عامر، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ اچي چيو ته آئون توهان کي تن ڳالهين جو اختيار ٿو ڏيان. (1) توهان لاءِ واديءَ جا رهاڪو هجن ۽ مون لاءِ منهنجي آباديءَ جا (يعني جهنگ وارا توهان لاءِ هجن ۽ شهري ماڻهو مون لاءِ) (2) يا آئون، توهان کانپوءِ توهان جو خليفو بڻجان (3) نه ته آئون غطفان کي هڪ هزار گهوڙن ۽ هڪ هزار گهوڙين جي مدد ڏئي اوهان تي چڙهائي ڪرائيندس. "ان کانپوءِ هو هڪ عورت جي گهر ۾ طاعون جو شڪار ٿي ويو. (جنهن تي ڏک ۾) چيائين ته: "آه! ان جي ڳوڙهي جهڙو ڳوڙهو؟ ۽ اهو به فلاڻي جي هڪ عورت جي گهر ۾؟ مون وٽ منهنجو گهوڙو آڻيو. پوءِ هو ان تي سوار ٿيو ۽ پنهنجي گهوڙي تي ئي مري ويو.

**(15) تجيب وارن جو وفد:-** هي وفد پنهنجي قوم جا صدقا، جيڪي گرجائن ۾ ورهائڻ کانپوءِ به بچي پيا هئا، کڻي مديني ۾ آيو. وفد ۾ تيرنهن ڄڻا هئا، جيڪي قرآن ۽ سنتون پڇندا ۽ سکندا هئا. انهن پاڻ سڳورن ﷺ کان ڪجهه ڳالهيون پڇيو ته پاڻ سڳورن ﷺ اهي ڳالهيون ڪين لکي ڏنيون. اهي گهڻا ڏينهن ڪونه ترسيا. جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ ڪين سوکڙيون ڏنيون ته انهن ديري تي وينل هڪ نوجوان کي به موڪليو، جيڪو پٺيان رهجي ويو هو. نوجوان، پاڻ سڳورن ﷺ وٽ پهچي چيو ته "سائين! الله جوقسم! مون کي منهنجي علائقي کان ان کانسواءِ ٻي ڪابه شيءِ چڪي نه آئي آهي ته توهان، الله سائينءَ کان مون لاءِ اها دعا گهرو ته هو مون کي پنهنجي بخشش ۽ رحمت سان نوازي ۽ منهنجي مالداري منهنجي دل ۾ رکي ڇڏي." پاڻ سڳورن ﷺ اها ئي دعا گهري. نتيجي ۾ اهو همراھ ڏاڍو قناعت پسند ٿي ويو ۽ جڏهن ارتداد جي لهر اٿي ته نه رڳو اهو ته هو اسلام تي ثابت قدم رهيو، پر پنهنجي قوم کي به وعظ ۽ نصيحت ڪيائين جنهن سان اهي به اسلام تي ثابت قدم رهيا. پوءِ وفد وارن، حجة الوداع سنه 10 هه ۾ پاڻ سڳورن ﷺ سان ٻيهر ملاقات ڪئي.

**(16) طيءَ وارن جو وفد:-** هن وفد سان گڏ عربستان جو هاڪارو شهنسوار زيد الخليل رضه به هو. ان جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ سان ڳالهه بول ڪئي ته پاڻ سڳورن ﷺ سندن آڏو اسلام پيش ڪيو ته هن اسلام قبول ڪري ورتو ۽ ڏاڍو چڱو مسلمان نڪتو. پاڻ سڳورن ﷺ حضرت زيد رضه جي ساراهه ڪندي فرمايو ته "منهنجي آڏو عرب جي جنهن به ماڻهوءَ جا ڳڻ ڳايا ويا ۽ جڏهن اهو مون وٽ آيو ته مون کيس سندس شهرت کان گهٽ ئي ڏنو، پر ان جي ابتڙ زيد الخليل رضه جي شهرت، سندس ڳڻن جو ساٿ نه پئي ڏئي سگهي." پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ سندن نالو زيد الخير رضه رکي ڇڏيو.

اهڙيءَ طرح سنه 9 هه ۽ 10 هه ۾ لڳاتار وفد ايندا رهيا. سيرت نگارن، يمن، ازد، قضا، بني حارث بن ڪعب، غامد، بني منتفق، سلامان، بني عبس، مزينه، مراد، زبيد، ڪنده، ذي مره،

غسان، بني عيش ۽ نخع جا وفد ڄاڻايا آهن. نخع جو وفد آخري وفد هو. جيڪو محرم سنه 11 هه جي وچ ڌاري آيو هو ۽ ٻه سو ڇٽن تي مشتمل هو. باقي ٻين وفدن جو اچڻ سنه 9 هه ۽ 10 هه ۾ ٿيو. سنه 11 هه ۾ ڪي ٿورا ئي وفد آيا هئا.

انهن وفدن جي لاڳيتي اچ وڃ مان لڳي ٿو ته ان مهل تائين اسلامي تبليغ ڪيتري علائقي ۾ پکڙجي ۽ مقبول ٿي چڪي هئي. ان مان اندازو ٿئي ٿو ته عربستان وارا، مديني کي ڪيڏي نه قدر جي نظر سان ڏسندا هئا ۽ ان جي اڳيان هٿيار ڦٽا ڪرڻ کانسوا ڪوبه چارو نه پانڀائون. اصل ۾ مديني، عربستان جي گاديءَ جو هنڌ بڻجي ويو هو ۽ ڪنهن لاءِ به ان کي نظر انداز ڪرڻ ممڪن نه هو. ها باقي ائين نٿو چئي سگهجي ته ڪو انهن سڀني ماڻهن جي دلين تي اسلام اثر ڪري چڪو هو. ڇو ته انهن ۾ اڃا گهڻائي ڇت ۽ هوڏي اعرابي هئا، جيڪي رڳو پنهنجن سردارن جي چوڏ تي مسلمان ٿيا هئا، نه ته انهن ۾ مار ماران جي رجحان جون پاڙون پڪيون هيون، جنهن کان اڃا اهي آڃا نه ٿيا هئا ۽ اڃا اسلامي سکيا کين پوريءَ طرح سڌاري نه سگهي هئي. جيئن قرآن شريف جي سورة توبه ۾ اهڙن ڪن ماڻهن جون وصفون هن طرح ٻڌايون ويون آهن.

﴿الْأَعْرَابُ أَشَدُّ كُفْرًا وَنِفَاقًا وَأَجْدَرُ أَلَّا يَعْلَمُوا حُدُودَ مَا أَنْزَلَ اللَّهُ عَلَىٰ رَسُولِهِ وَاللَّهُ عَلِيمٌ حَكِيمٌ﴾  
(97) وَمِنَ الْأَعْرَابِ مَنْ يَتَّخِذُ مَا يُنْفِقُ مَغْرَمًا وَيَتَرَبَّصُّ بِكُمُ الدَّوَائِرَ عَلَيْهِمْ دَائِرَةُ السَّوْءِ وَاللَّهُ سَمِيعٌ عَلِيمٌ  
(98) ﴿التوبة﴾

"بدوي ڪفر ۽ منافقيءَ ۾ تمام سخت آهن ۽ هن (عادت) جوڳا آهن ته الله پنهنجي پيغمبر تي جيڪي حڪم لائڻا، تنهن جون (شرعي) حدون نه ڄاڻن ۽ الله ڄاڻندڙ حڪمت وارو آهي ۽ ڳوٺاڻن مان ڪي اهڙا آهن جو جيڪي خرچ ڪن ٿا سو چٽي ڄاڻندا آهن ۽ اوهان تي زماني جي ڦير گهير اچڻ جا منتظر آهن. زماني جو بيچڙو ڦيرو مٿن هجي (شال) ۽ الله ٻڌندڙ ڄاڻندڙ آهي."

جڏهن ته ڪن ٻين ماڻهن کي ساراهيو ويو آهي ۽ انهن بابت فرمايو ويو آهي ته:

﴿وَمِنَ الْأَعْرَابِ مَنْ يُؤْمِنُ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَيَتَّخِذُ مَا يُنْفِقُ قُرْبَاتٍ عِنْدَ اللَّهِ وَصَلَوَاتِ الرَّسُولِ أَلَا إِنَّهَا قُرْبَةٌ لَهُمْ سَيُدْخِلُهُمُ اللَّهُ فِي رَحْمَتِهِ إِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ رَحِيمٌ﴾ (99) ﴿التوبة﴾

"۽ بهراڙيءَ وارن مان ڪي اهڙا آهن جي الله ۽ قيامت جي ڏينهن کي مڃيندا آهن ۽ جيڪي خرچيندا آهن تنهن کي الله وٽ ويجهائيءَ جو ۽ پيغمبر جي دعا حاصل ڪرڻ جو وسيلو ڪري وٺندا آهن. بيشڪ اها انهن لاءِ ويجهائيءَ جو سبب آهي. الله کين پنهنجي رحمت هيٺ سگهو ئي داخل ڪندو. بيشڪ الله بخششهار مهربان آهي."

جيسنائين مڪي، مديني، ثقيف، يمن ۽ بحرین جي گهڻن شهري ماڻهن جو تعلق آهي ته انهن ۾ اسلام پڪو هو ۽ انهن مان ئي وڏا وڏا اصحابي سڳورا رضي الله عنهم ۽ مسلمانن جا سردار ٿي گذريا آهن.<sup>(1)</sup>

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - اها ڳالهه خضريءَ، محاضرات ۾ (144/1) تي چئي آهي ۽ جن وفدن جو ذڪر ڪيو ويو آهي يا جن ڏانهن اشارو ڪيو ويو آهي، تن جي تفصيل لاءِ صحيح بخاري (13/1، 630\_626/2) - ابن هشام (2\_503، 514\_510، 542\_537، 601\_560) - زاد المعاد (3\_26/60) - فتح الباري (8\_103\_83) رحمة للعالمين (1\_84/217).

## دعوت جي ڪاميابي ۽ اثر

هاڻي اسين پاڻ سڳورن ﷺ جي ڄمار جي آخري ڏهاڙن جي تذڪري تائين اچي پهتا آهيون. پر ان سلسلي ۾ قلم هلائڻ کان اڳ مناسب ٿيندو ته پاڻ ٿورو ترسي پاڻ سڳورن ﷺ جي هن عظيم الشان عمل تي هڪ مٿاڇري نظر وجهون، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ جي حياتيءَ جو مقصد آهي ۽ جنهن جي ڪري پاڻ سڳورن ﷺ کي سڀني نبين ۽ پيغمبرن تي اهو امتيازي مقام حاصل ٿيو ته الله سائينءَ پاڻ سڳورن ﷺ جي سر تي اڳين ۽ پوين جي سرداريءَ جو تاج رکي ڇڏيو. پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ويو ته:

﴿يَا أَيُّهَا الْمَزْمَلُ (1) قُمْ اللَّيْلَ إِلَّا قَلِيلًا (2)﴾ (المزمل)

"اي (پاڻ تي) ڪپڙي ويڙهڻ وارا، رات جو قيام ڪر پر ٿورو"

۽ ﴿يَا أَيُّهَا الْمُدْتِرُ (1) قُمْ فَأَنْذِرْ (2)﴾ (المدثر)

"اي (پاڻ تي) ڪپڙو ويڙهڻ وارا اتي پوءِ ڊيچار"

پوءِ ڇا ٿيو؟ پاڻ سڳورا اٿيا ۽ پنهنجي ڪلهي تي هن ڌرتيءَ جي سڀ کان وڏي امانت جو ڳرو بار کڻي، لاڳيتو بيٺا رهيا، يعني سڄي انسانيت جو بار، سموري عقيدتي جو بار ۽ مختلف ميدانن ۾ جنگ ۽ جهاد ۽ ڊوڙڊڪ جو بار.

پاڻ سڳورن ﷺ ان انساني ضمير جي ميدان ۾ جنگ ۽ جهاد ۽ ڊوڙڊڪ جو بار کنيو، جيڪو جاهليت جي وهمن ۽ تصورن ۾ ٻڌل هو، جيڪو شهنشاهت جي زنجيرن ۽ قنڌن ۾ ڦاٿل هو ۽ جڏهن ان ضمير کي پنهنجن ڪن اصحابين رضي الله عنهم جي صورت ۾ جاهليت ۽ زميني حياتيءَ جي هڪٻئي مٿان سٿيل بار کان آجو ڪرائي ورتو ته هڪ ٻئي ميدان ۾ هڪ ٻي جهڙپ، بلڪ جهڙپن تي جهڙپون شروع ٿي ويون. يعني الله جي دعوت جا اهي دشمن جن دعوت ۽ ان تي ايمان آڻيندڙن تي ۽ ان پاڪيزه ٻوٽي کي وڌڻ ويجهڻ، مٽيءَ ۾ پاڙون جهلڻ، فضا ۾ شاخون لهرائڻ کان اڳ ئي پاڙون پٽي ڇڏڻ گهريو ٿي. دين جي انهن دشمنن سان پاڻ سڳورن ﷺ جون لاڳيتيون جهڙپون شروع ٿي ويون ۽ اڃا پاڻ سڳورا ﷺ عربستان جي جنگين مان واندا نه ٿيا هئا جو روم، هن اڀرندڙ قوت کي من ۾ ڪرڻ لاءِ ان جي سرحدن تي تيارِي شروع ڪري ڏني.

انهن سمورين لڙاين مان اڃا پهريون معرڪو يعني ضمير جو معرڪو پڄاڻيءَ تي نه پهتو هو، چوٽه اهو دائمي معرڪو هو، جنهن ۾ شيطان سان مقابلو هو، جيڪو انساني ضمير جي گهراين ۾ گهڙي پنهنجو ڪم ڪري ٿو ۽ هڪ لمحي لاءِ به تڪجي نٿو. محمد ﷺ الله جي دعوت ڏيڻ ۾

پختا هئا ۽ مختلف ميدانن تي لڳاتار وڙهي رهيا هئا. دنيا پاڻ سڳورن ﷺ جي پيرن ۾ هئي پر پاڻ سڳورا ﷺ سادي ۽ ڏکي زندگي گذاري رهيا هئا. مؤمن. پاڻ سڳورن ﷺ جي چوڌاري امن ۽ سک جي چانو ڪري رهيا هئا، پر پاڻ سڳورا ﷺ وڏي محنت ۽ ڪوشش ڪري رهيا هئا. پوءِ به پاڻ سڳورا ﷺ صبر جو مظاهرو ڪري رهيا هئا. راتيون جاڳي پنهنجي پالڻهار جي عبادت ڪندا هئا، قرآن جي تلاوت ڪندا هئا ۽ سڄي دنيا کان ڪتبي الله سان لئون لڳائيندا هئا، جيئن جيئن پاڻ سڳورن ﷺ کي حڪم ڏنو ويو هو. (1)

اهڙيءَ طرح پاڻ سڳورن ﷺ پورا ويهه ورهيه لاڳيتين لڙاين ۾ گهاري ۽ ان دوران ڪو هڪ معاملو به پاڻ سڳورن ﷺ کي ٻئي معاملي کان غافل نه ڪري سگهيو. ايسٽائين جو اسلام جي دعوت ايڏي وڏي پيماني تي سرسي ماڻي ورتي جو عقل دنگ رهجي ويا. سڄو عربستان پاڻ سڳورن ﷺ جي هٿ هيٺ اچي ويو. ان جي آفق تان جاهليت واري ڌنڌ ڇڏي وئي. بيمار ذهن تندرست ٿي ويا. ايسٽائين جو بتن کي ڇڏيو ويو، بلڪ توڙي ڇڏيو ويو. فضا ۾ توحيد جا نعرا گونجڻ لڳا، ايمان جي نواڻ سان زندگي ماڻيندڙ بر جو باغ آذانن سان لرزڻ لڳو ۽ ان جي گهراين کي الله اڪبر جا آواز چيرڻ لڳا. قاري، قرآن جون آيتون پڙهندي ۽ الله جو حڪم قائم ڪرڻ لاءِ، چوڻ طرف ڦهلجي ويا.

چڙوچڙ قومون ۽ قبيلاهڪ ٿي ويا. انسان، بانهن جي بندگيءَ مان نڪري الله جي بندگيءَ ۾ داخل ٿي ويا. هاڻي نه ڪو قاهر آهي ۽ نه مقهور، نه مالڪ ۽ نه غلام، نه حاڪم نه محڪوم، نه ظالم ۽ نه مظلوم، پر سمورا ماڻهو الله جا ٻانها ۽ پاڻ ۾ ڀائر آهن. هڪٻئي سان محبت رکن ٿا ۽ الله جا حڪم پورا ڪن ٿا. الله سائينءَ انهن منجهان جاهليت جو هٿ ۽ هوڏ ۽ ابن ڏاڏن تي پڌائڻ جو خاتمو ڪري ڇڏيو آهي. هاڻي عربيءَ کي عجميءَ تي ۽ عجميءَ کي عربيءَ تي، اچي کي ڪاري تي ۽ ڪاري کي اچي تي ڪابه فضيلت نه آهي فضيلت جو معيار رڳو تقويٰ آهي، جيئن ته سمورا ماڻهو آدم عليه السلام جو اولاد آهن ۽ آدم عليه السلام مٽيءَ مان پيدا ٿيو آهي. مطلب ته پرچار جي ڪارڻ عربي وحدت، انساني وحدت ۽ اجتماعي عدل وجود ۾ اچي ويو. انساني نسل کي دنياوي مسئلن ۽ آخرت جي معاملن ۾ چڱائيءَ واري واٽ هٿ اچي وئي. ٻين لفظن ۾ ته زماني ۾ ڦيرو اچي ويو ۽ ڌرتيءَ جون حالتون بدلجي ويون. تاريخ جو رخ بدلجي ويو ۽ سوچڻ جو انداز بدلجي ويو.

<sup>1</sup> - في ظلال القرآن (29/168، 169).



هن دعوت کان اڳ دنيا تي جهالت جو راڄ هو. ان جو ضمير ڏيرُ ۽ روح بدبودار هو. سماجي قدر ۽ پيماننا بگڙيل هئا. ظلم ۽ غلامي هر طرف ڇانيل هئي. ڏوهارين جي خوشحالي ۽ حد درجي جي محرومين جي لهر دنيا کي اٿلائي پٽلائي ڇڏيو هو. ان تي ڪفر ۽ گمراهيءَ جا اونڌاها ۽ ڳرا پرڏا چڙهيل هئا. جيتوڻيڪ آسماني مذهب به هئا، پر انهن ۾ ڦيرڦار ٿي چڪي هئي ۽ ڪمزوريون گهڙي پيون هيون. انهن جي گرفت ختم ٿي وئي هئي ۽ رڳو بي جان ۽ بي روح قسم جي مذهبي رسمن جو مجموعو بڻجي ويا هئا.

جڏهن هن پرچار انساني زندگيءَ تي پنهنجو اثر ڏيکاريو ته انساني روح کي وهه ۽ اجاين رسمن، ٻانهپ، فساد ۽ افراتفريءَ کان نجات ملي ۽ معاشره هر طرح جي ظلم کان پاڪ ٿي ويو ۽ هڪ اهڙي دنيا تعمير ڪئي جنهن ۾ جسماني ۽ روحاني پاڪيزگي، تعمير ۽ ترقي، آزادي ۽ سڌارو، يقين ۽ معرفت، ايمان ۽ اعتقاد، انصاف ۽ شرافت ۽ عمل جي بنياد تي زندگيءَ جي اوسر، حياتيءَ جي ترقي ۽ حقدار کي حق ڏيارڻ هو.<sup>(1)</sup>

انهن تبديلين ڪارڻ عربستان اهڙي برڪتن ڀريل اٿل جو مشاهدو ڪيو، جنهن جو مثال انساني تاريخ جي ڪنهن به دور ۾ نه ڏٺو ويو ۽ عربستان جي تاريخ پنهنجن يادگار ڏينهن ۾ اهڙيءَ طرح پر نور نظر اچڻ لڳي، جهڙيءَ طرح ان کان اڳ ڪڏهن به نظر نٿا ٿي هئي.

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - في مقدمة ماذا خسراالعالم بانحطاط المسلمين (ص:14).

## حجة الوداع

اسلام جي پرچار جو ڪم پورو ٿي ويو ۽ الله سائين جي الوهيت کي مڃڻ ۽ ان کانسواءِ ڪنهن ٻئي معبود کي نه مڃڻ ۽ محمد ﷺ جي رسالت جي بنياد تي هڪ نئين سماج جي جوڙجڪ ۽ اڏاوت مڪمل ٿي وئي. هاڻي ڇڻ ته غيبي آواز پاڻ سڳورن ﷺ جي دل ۽ دماغ کي اهو احساس ڏياري رهيو هو ته دنيا ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي رهڻ جو مدو پڄاڻيءَ جي ويجهو پهچي چڪو آهي، تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ حضرت معاذ بن جبل رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کي يمن جو گورنر ڪري موڪليو ته موڪلائڻ مهل ٻين ڳالهين کانسواءِ اهو به فرمايائون ته "اي معاذ! تون شايد هن سال کانپوءِ مون سان ڪونه ملي سگهندين، پر ٿي سگهي ٿو ته منهنجي هن مسجد ۽ منهنجي قبر وٽان لنگهين." حضرت معاذ رَضِيَ اللهُ عَنْهُ اهو ٻڌي پاڻ سڳورن ﷺ جي وچوڙي جي ڏک ۾ روئڻ لڳو.

اصل ۾ الله سائينءَ گهريو ٿي ته پنهنجي پيغمبر ﷺ کي هن سموري پرچار جا اثر ڏيکاري ڇڏي، جنهن جي ڪري پاڻ سڳورن ﷺ ويهن ورهين کان به گهڻو عرصو، هر طرح جون صعوبتون سنئون هيون ۽ ان جي صورت اها ٿي جو پاڻ سڳورا ﷺ حج جي موقعي تي مڪي جي ڀرپاسي ۾ عرب قبيلن جي فردن ۽ نمائندن سان گڏ ٿين. پوءِ اهي پاڻ سڳورن ﷺ کان دين جا حڪم ۽ سمجهاڻيون وٺن ۽ پاڻ سڳورا ﷺ کائڻ اها پڪ وٺن ته پاڻ سڳورن ﷺ امانت ڏئي ڇڏي، الله جي پيغام جي پرچار ڪري ڇڏي ۽ امت جي خير خواهيءَ جو حق ادا ڪري ڇڏيو. الله تعاليٰ جي مرضيءَ مطابق پاڻ سڳورن ﷺ هن رحمت ڀري حج جو اعلان ڪيو ته عربستان جي مسلمانن جا ٽولن جا ٽولا پهچڻ شروع ٿي ويا. هر ڪنهن جي خواهش هئي ته هو پاڻ سڳورن ﷺ جي پيروي ڪن. (1) پوءِ چنڇر جي ڏينهن، جڏهن اڃا ذي القعدة ۾ چار ڏينهن پيا هئا ته پاڻ سڳورا ﷺ هلڻ لاءِ سنبريا. (2) وارن کي ڏٺائون، تيل مڪياڻون، گوڏ ٻڌائون، چادر اوڍيائون، قربانيءَ جي جانورن کي ڳانڀيون ٻڌائون ۽ اڳين نماز کانپوءِ روانا ٿي ويا ۽ وچينءَ مهل اچي ذوالحليفه وٽ پهتا. اتي به رڪعتون وچين نماز جون (سفر واريون) پڙهيائون ۽ رات به اتي ئي گذاريائون. صبح جو اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي فرمايائون ته "رات منهنجي پالڻهار پاران هڪ اچڻ واري اچي چيو ته هن ڀلاريءَ ماڻهيءَ ۾ نماز پڙهو ۽ چئو ته حج ۾ عمرو به آهي." (3)

1 - اها ڳالهه صحيح مسلم ۾ حضرت جابر رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کان آيل آهي. (394/1).

2 - حافظ ابن حجر ان جي ڏاڍي سٺي چنڊ چاڻ ڪئي آهي ۽ جيڪو ڪن روايتن ۾ آيل آهي ته ذوالقعدة ۾ پنج ڏينهن پيا هئا ته پاڻ سڳورا ﷺ نڪتا، ان جي تصحيح به ڪئي اٿس. فتح الباري (104/8).

3 - بخاريءَ اها روايت حضرت عمر رَضِيَ اللهُ عَنْهُ کان آندي آهي. (207/1)

پوءِ اڳين نماز کان اڳ پاڻ سڳورن ﷺ احرام ٻڌڻ لاءِ غسل ڪيو. تنهن کانپوءِ بيبي عائشه رضي الله عنها، پاڻ سڳورن ﷺ جي جسم مبارڪ ۽ مٿي مبارڪ تي پنهنجن هٿن سان ذريهر ۽ مشڪ آميز خوشبوءِ لڳائي. خوشبوءِ جي چمڪ پاڻ سڳورن ﷺ جي سيند ۽ ڏاڙهي مبارڪ ۾ به ڏسڻ ۾ پئي آئي پر پاڻ سڳورن ﷺ اها ڌرتي ڪانه ۽ جيئن جو تيسن رهڻ ڏني. پوءِ پنهنجي گوڏ ٻڌائون، چادر اوڍيائون، ٻه رڪعتون اڳين نماز جون پڙهيائون، تنهن کانپوءِ مصلي تي ٿي حج ۽ عمري، بنهي جو احرام گڏ ٻڌندي لبيڪ جي صدا بلند ڪيائون. پوءِ ٻاهر نڪتا، قصواء نالي ڏاڇي تي چڙهيا ۽ ٻه ڀيرا لبيڪ چيائون. تنهن کانپوءِ ڏاڇي تي چڙهيل کليل ميدان ۾ پهتا ته اتي به لبيڪ چيائون.

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ سفر جاري رکيو. هفتي کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ شام مهل مڪي جي ويجهو پهتا ته ڏي طوي ۾ لهي پيا. اتي ئي رات گذاريائون ۽ فجر نماز پڙهي غسل ڪيائون ۽ پوءِ صبح ساڻ مڪي ۾ داخل ٿيا. اهو آچر 4 ذي الحج جو ڏهاڙو هو. وات تي اٺ راتيون گذريون هيون. وڃڻي رفتار سان ايتراڻي ڏينهن لڳن ٿا. مسجد الحرام ۾ پهچي پاڻ سڳورن ﷺ پهرين ته ڪعبة الله جو طواف ڪيو ۽ پوءِ صفا ۽ مروه جي وچ ۾ ڊوڙيا پر احرام نه کوليائون. چوٿه حج ۽ عمري جو احرام گڏو گڏ ٻڌو هئائون ۽ پاڻ سان قربانيءَ جا جانور آندا هيائون. طواف ۽ سعي مان وندا ٿي پاڻ سڳورا ﷺ مڪي جي مٿئين پاسي حجون ۾ اچي رهيا پر ٻيو ڀيرو حج جو طواف ڪرڻ کانسواءِ ڪو طواف نه ڪيائون.

جن اصحابي سڳورن رضي الله عنهم پاڻ سان قربانيءَ جا جانور نه آندا هئا، تن کي پاڻ سڳورن ﷺ حڪم ڪيو ته پنهنجو احرام، عمري ۾ تبديل ڪري ڇڏين ۽ بيت الله جو طواف ۽ صفا ۽ مروه جي وچ ۾ سعي (تڪو هلڻ) ڪري پوريءَ طرح ڪري احرام مان نڪري اچن، پر جيئن ته پاڻ سڳورا ﷺ پاڻ احرام مان نه نڪري رهيا هئا، ان ڪري اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي به شڪ ٿيو. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "جيڪڏهن آئون پاڻ بابت اها ڳالهه اڳيئي ڄاڻي وٺان ها، جيڪا مون پوءِ ڄاڻي ته آئون قربانيءَ جا جانور نه آڻيان ها ۽ جي مون سان اهي نه هجن ها ته آئون به احرام مان نڪري اچان ها." پاڻ سڳورن ﷺ جو اهو چوڻ، اصحابي سڳورن ﷺ اکين تي رکيو ۽ جن وٽ قربانيءَ جا جانور نه هئا، اهي احرام مان نڪري آيا.

انين ذي الحج ترويه واري ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ منيٰ ۾ پهتا ۽ اتي 9 ذي الحج جي صبح تائين رهيا. اڳين، وچين، سانجهي، سومهڻي ۽ فجر (پنج نمازون) اتي ئي پڙهيائون ۽ پوءِ سج اُڀرڻ تائين ترسي پيا. ان کانپوءِ عرفه ڏانهن هليا. اتي پهتا ته نمره نالي واديءَ ۾ خيمو کتل هو.

ان ۾ ئي اچي رهيا. جڏهن سج لهي ويو ته پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم سان قصواء تي ڪجاوو ٻڌو ويو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ بطن نالي واديءَ ۾ اچي لٿا. ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ جي چوڌاري هڪ لک چوويهه هزار يا هڪ لک چوئيتاليهه هزار ماڻهن جو سمنڊ چوليون هڻي رهيو هو. پاڻ سڳورن ﷺ اتي هڪ وڏو خطبو ڏنو ۽ فرمايو ته:

"اي انسانو! منهنجي ڳالهه ٻڌي وٺو! چوٽه آئون نٿو ڄاڻان، ٿي سگهي ٿو ته هن سال کانپوءِ هن جاءِ تي آئون توهان سان ڪڏهن به نه ملي سگهان." (1)

توهان جو خون ۽ توهان جو مال هڪٻئي تي اهڙيءَ طرح حرام آهي، جهڙيءَ طرح اڄ جي ڏينهن، هلندڙ مهيني ۽ هن شهر جي حرمت آهي. ٻڌي ڇڏيو! جاهليت جي هر شيءِ منهنجن پيرن هيٺان لتاڙي وئي آهي. جاهليت جا خون به ختم ڪيا ويا ۽ اسان جي خون مان پهريون خون، جنهن کي آئون ختم ڪري رهيو آهيان، اهو ربيعه بن حارث جي پٽ جو خون آهي. اهو ننڍڙو، بنو سعد ۾ کير پي رهيو هو ته انهن ڏينهن ۾ هذيل قبيلي وارن کيس ماري ڇڏيو ۽ جاهليت جو وياج به ختم ڪيو ويو ۽ اسان جي وياج تي ڏنل مال مان سڀ کان پهريون وياج، جيڪو آئون ختم ڪري رهيو آهيان، اهو عباس بن عبدالمطلب ﷺ جو وياج آهي. هاڻي اهو سمورو وياج ختم آهي.

ها! عورتن بابت الله کان ڊڄو. چوٽه توهان انهن کي الله جي امانت ساڻ ورتو آهي ۽ الله جي ڪلمي سان حلال ڪيو آهي. انهن تي توهان جو اهو حق آهي ته اهي توهان جي هنڌ تي ڪنهن اهڙي ماڻهوءَ کي نه ويهڻ ڏين، جيڪو توهان کي نه وڻي. جيڪڏهن اهي، ائين ڪن ته توهان انهن کي مار ڪڍي ٿا سگهو، پر ڏاڍي مار نه ڪڍجو ۽ توهان تي انهن جو حق اهو آهي ته توهان انهن کي چڱائيءَ سان ڪارايو ۽ پهرايو.

آئون توهان ۾ اهڙي شيءِ ڇڏيو پيو ويان جو جيڪڏهن توهان ان کي سختيءَ سان جهلي بيٺا ته ڪڏهن به ڪونه تڙندا، اها آهي الله جو ڪتاب. (2)

ياد رکو! ته مون کانپوءِ ڪوبه نبي اچڻو نه آهي ۽ توهان کانپوءِ ڪابه امت ناهي، تنهنڪري پاڻهار جي عبادت ڪجو، پنج وقت نماز پڙهجو، رمضان جا روزا رکجو، پنهنجي مال جي زڪوٰه خوشيءَ سان ڏجو، پنهنجي پاڻهار جي گهر جو حج ڪجو ۽ پنهنجي حڪمرانن جي اطاعت ڪجو. ائين ڪندو ته پنهنجي پاڻهار جي جنت ۾ داخل ٿيندو. (3)

1 - ابن هشام (2/603).

2 - صحيح مسلم (1/397).

3 - ابن ماجه، ابن عساکر، رحمة للعالمين 1/263، معدن الاعمال (حديث نمبر 1108، 1109).

توهان کان مون بابت پڇاڻو ٿيندو ته توهان ڇا چوندؤ؟ اصحابي سڳورن رضي الله عنهن چيو ته اسين شهادت ٿا ڏيون ته توهان تبليغ ڪري ڇڏي، نياپو پهچائي ڇڏيو ۽ خير خواهيءَ جو حق ادا ڪري ڇڏيو.

اهو ٻڌي پاڻ سڳورن ﷺ شهادت واري آگر آسمان ڏانهن کڻي ۽ ماڻهن ڏانهن جهڪائيندي تي پيري فرمايو ته اي الله! شاهد ٿجان. (1)

پاڻ سڳورن ﷺ جا ارشاد، ربيع بن اميه خلف ﷺ وڏي واڪي ماڻهن تائين پئي پهچايا. (2) جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ خطبو ڏئي فارغ ٿيا ته الله تعاليٰ ياران هيءَ آيت لائي وئي. ﴿الْيَوْمَ أَكْمَلْتُ لَكُمْ دِينَكُمْ وَأَتَمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِي وَرَضِيتُ لَكُمُ الْإِسْلَامَ دِينًا...﴾ (3) (المائدة)

"اڄ اوهان جو دين اوهان لاءِ ڪامل ڪيم ۽ اوهان تي پنهنجي نعمت پوري ڪيم ۽ اوهان لاءِ دين اسلام پسند ڪيم"

حضرت عمر ﷺ اها آيت ٻڌي روئڻ لڳا. پڇيو ويو ته "توهان ڇو پيا روئو؟" فرمايائين ته "ان لاءِ جو ڪمال کانپوءِ زوال ٿي ته آهي." (3)

خطبي کانپوءِ حضرت بلال ﷺ بانگ ۽ پوءِ تڪبير چئي. پاڻ سڳورن ﷺ اڳين نماز پڙهائي. ان کانپوءِ حضرت بلال ﷺ ٻيهر تڪبير چئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ وچين نماز پڙهائي ۽ انهن ٻنهي نمازن جي وچ ۾ بي ڪابه نماز نه پڙهيائون. ان کانپوءِ سوار ٿي پنهنجي رهڻ واري جاءِ تي پهتا. پنهنجي ڏاڍي قصواءِ جو پيٽ تڪرين ڏانهن ڪيائون ۽ جبل مشاة (واريءَ جي دڙن) کي سامهون رکندي ۽ قبلي ڏانهن منهن ڪري لاڳيتو (ان ئي حالت ۾) وقوف فرمايائون، ايستائين جو سج لهڻ لڳو، ٿوري هٽياڻ ختم ٿي ۽ پوءِ سج جو گولو گر ٿي ويو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ، حضرت اسامه ﷺ کي پيلهه کنيو ۽ اتان روانا ٿي مزدلفه پهتا. مزدلفه ۾ سانجهي ۽ سومهڻي نماز هڪ بانگ ۽ ٻن تڪبيرن سان پڙهيائون. وچ ۾ ڪوبه نفل نه پڙهيائون. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ ليتي پيا ۽ پرهه ڦٽي تائين ليتيا رهيا. صبح ساڻ بانگ ۽ اقامت سان فجر نماز پڙهيائون. تنهن کانپوءِ قصواءِ تي چڙهي مشعر حرام پهتا ۽ قبلي ڏانهن منهن ڪري الله کان دعا گهريائون ۽ الله سائينءَ جي ساراهه ۽ وڏائي ۽ هيڪڙائي بيان ڪرڻ لڳا، تانجو چڱو خاصو سوجهرو ٿي ويو. ان کانپوءِ سج اڀرڻ کان اڳ ئي مني لاءِ نڪري پيا ۽ هن پيري فضل بن عباس ﷺ کي پيلهه کنيائون.

1 - صحيح مسلم (397/1).

2 - ابن هشام (605/2).

3 - بخاري عن ابن عمر، رحمة للعالمين (265/1). تفسير ابن ڪثير (15/2)

الدر المنثور (456/2)

بطن مُحسّر پهتا ته سواريءَ کي ٿورو تڪو ڊوڙايائون ۽ جيڪو وڃيون رستو جمره ڪبري تائين پهتو تي، اتان هلي جمره ڪبري (وڏي شيطان) تائين پهتا. تن ڏينهن ۾ اتي هڪ وڻ به هو ۽ جمره ڪبري ان وڻ جي نسبت سان به سڃاتو ويندو هو. تنهن کانسواءِ جمره ڪبري کي جمره عقبه ۽ جمره اولي به چوندا هئا. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جمره ڪبري کي ست پٿريون هنيون. هر پٿريءَ سان گڏ تڪبير چوندا پئي ويا. پٿريون ننڍڙيون ننڍڙيون هيون، جن کي چپٽيءَ ۾ جهلي اڇلائي سگهيو هو. پاڻ سڳورن ﷺ اهي پٿريون بطن نالي واديءَ ۾ بيهي هنيون هيون. ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ قربان گاهه ۾ پهتا ۽ پنهنجن پلارن هٿن سان 63 اٺ ڪٺائون. پوءِ (اهو ڪم) حضرت علي رضيه الله عنه جي حوالي ڪيائون ۽ انهن بچيل 37 اٺ ڪٺا. اهڙيءَ طرح پورا سو اٺ ڪٺا ويا. پاڻ سڳورن ﷺ حضرت علي رضيه الله عنه کي به پنهنجي قربانيءَ ۾ پائيوار ڪيو هو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جي حڪم سان هر اٺ جو هڪ هڪ ٽڪڙو ڪپي هنديءَ ۾ وجهي رڌيو ويو. پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ ۽ حضرت علي رضيه الله عنه، ان گوشت مان ڪجهه کاڌو ۽ ٻوڙ جو رس به پيئو.

تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ سوار ٿي مڪي ويا ۽ بيت الله جو طواف ڪيائون. (ان کي طواف افاضه چئجي ٿو.) ۽ مڪي ۾ ئي اڳين نماز پڙهيائون. تنهن کانپوءِ (زمزم جي کوھ وٽ) بنو عبدالمطلب وٽ آيا. اهي حاجين کي زمزم جو پاڻي پياري رهيا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "بنو عبدالمطلب! توهان پاڻي ڇڪيو. جيڪڏهن مون کي ڊپ نه هجي ها ته پاڻي پيارڻ جي هن ڪم ۾ ماڻهو توهان تي چڙهي پوندا ته آئون به توهان سان گڏ چڪيان ها." (يعني جيڪڏهن صحابه سڳورا رضوان الله عليهم اجمعين، پاڻ سڳورن ﷺ کي پاڻي پياري چڪيندي ڏسن ها ته هر ڪو صحابه پاڻ به پاڻي ڇڪڻ جي ڪوشش ڪري ها ۽ اهڙيءَ طرح حاجين کي زمزم جو پاڻي پيارڻ جو جيڪو شرف بنو عبدالمطلب کي حاصل هو، ان جو انتظام سندن وس ۾ نه رهي ها.) تنهن کانپوءِ بنو عبدالمطلب، پاڻ سڳورن ﷺ کي هڪ ڏول ۾ پاڻي ڏنو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ گهرج آهر پاڻي پيئو. (1)

اڄ آخري ڏينهن هو. يعني ذي الحج جي ڏهين تاريخ هئي. پاڻ سڳورن ﷺ اڄ به ڏينهن چڙهڻ کانپوءِ (چاشت مهل) هڪ خطبو ڏنو. خطبي ڏيڻ مهل پاڻ سڳورا ﷺ خچر تي چڙهيل هئا ۽ حضرت علي رضيه الله عنه پاڻ سڳورن ﷺ جا ارشاد صحابي سڳورن تائين پهچائي رهيو هو. اصحابي سڳورا ڪجهه وينل هئا ته ڪجهه بيٺل هئا. (2) پاڻ سڳورن ﷺ اڄوڪي خطبي ۾ به

1 - مسلم (400\_397/1).

2 - ابو داؤد (270/1).

ڪالھوڪيون گھڻيون ئي ڳالھيون ورجايون. صحيح بخاري ۽ صحيح مسلم ۾ حضرت ابوبڪر جو بيان آيل آھي ته پاڻ سڳورن ﷺ اسان کي يوم النحر (ڏھين ذي الحج) تي خطبو ڏنو ۽ فرمايائون ته:

"زمانو گھمي ڦري پنھنجي ان ڏينھن واري ھيٺ تي اچي پھتو آھي، جنھن ڏينھن اللہ تعاليٰ آسمان ۽ زمين کي پيدا ڪيو ھو. سال ٻارنھن مھينن جو آھي، جنھن ۾ چار مھينا حرمت وارا آھن. تي لاڳيتا يعني ذي القعد، ذي الحج ۽ محرم ۽ ھڪ رجب المضر. جيڪو جمادي الآخر ۽ شعبان جي وچ ۾ آھي.

پاڻ سڳورن ﷺ اھو به پڇيو ته ھي ڪھڙو مھينو آھي؟ اسان ورائيو ته: "اللہ ۽ ان جو رسول ﷺ ئي بھتر ڄاڻن ٿا." تنھن تي پاڻ سڳورا ﷺ ماڻ تي ويا، ايستائين جو اسان سمجھيو ته پاڻ سڳورا ﷺ ان جو ڪو ٻيو نالو رکندا. پر پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته "چاھي ذي الحج نه آھي؟" اسان ورائيو ته "ھاڻو چون!" پاڻ سڳورن ﷺ وري پڇيو ته "ھي ڪھڙو شھر آھي؟" اسان ورائيو ته "اللہ ۽ ان جو رسول ئي بھتر ڄاڻن ٿا." تنھن تي پاڻ سڳورا ﷺ وري به ماڻ تي ويا. ايستائين جو اسان سمجھيو ته پاڻ سڳورا ﷺ ان جو ڪو ٻيو نالو رکندا. پر پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته "چا اھو بلد (مڪو) نه آھي؟" اسان ورائيو ته "ھاڻو! بلڪل." پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته "پلاھي ڪھڙو ڏينھن آھي؟" اسان ورائيو ته "اللہ ۽ ان جو رسول ﷺ ئي بھتر ڄاڻن ٿا." تنھن تي پاڻ سڳورا ﷺ وري به چپ ٿي ويا، ايستائين جو اسان سمجھيو ته پاڻ سڳورا ﷺ ان جو ڪو ٻيو نالو رکندا، پر پاڻ سڳورن ﷺ وري پڇيو ته "چا اڄ يوم النحر (قربانيءَ جو ڏينھن، يعني ڏھين ذي الحج) نه آھي؟" اسان ورائيو ته "ھاڻو! بلڪل." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ته پوءِ ٻڌو، توهان جو خون، توهان جو مال ۽ توهان جي لڄ توهان تي اھڙيءَ طرح ئي حرام آھي، جھڙيءَ طرح توهان جي ھن شھر ۽ توهان جي ھن مھيني ۾ توهان جي اڄوڪي ڏينھن جي حرمت آھي. توهان ترٽي پنھنجي پاڻھار سان ملندؤ ۽ اھو توهان کان توهان جي عملن بابت پڇا ڪندو، تنھنڪري مون کانپوءِ گمراھ نه ٿي وڃجو جو ھڪٻئي سان مار ماران لاهي ڏيو. ٻڌايو! چا مون تبليغ ڪري ڇڏي؟ اصحابي سڳورن چيو ته "ھاڻو" پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته اي اللہ! گواھ رھجان. جيڪو ماڻھو موجود آھي ۽ جيڪو نه رسي سگھيو آھي، تنھن تائين (منھنجون ڳالھيون) پھچائي ڇڏجو. چوٽه ڪن اھڙن ماڻھن تائين (اھي ڳالھيون) پھچايون وينديون، اھي ڪن (موجود) ٻڌڻ وارن کان تمام گھڻو انھن ڳالھين کي سمجھي سگھندا. (1)

1 - صحيح بخاري (1/234).

هڪ روايت ۾ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ هن خطبي ۾ اهو به فرمايو ته "ياد رکو! ڪوبه ڏوهاري پاڻ کانسواءِ ڪنهن ٻئي جو ڏوهه نٿو ڪري (يعني ان ڏوهه ۾ ٻيو ڪو نه پر پاڻ ڏوهاري جهلبو آهي). ياد رکو! ڪوبه ڏوهاري پنهنجي پٽ، يا ڪو به پٽ پنهنجي پيءُ تي ڏوهه نٿو ڪري. (يعني پيءُ جي ڏوهه ۾ پٽ کي ۽ پٽ جي ڏوهه ۾ پيءُ کي ڪونه پڪڙيو ويندو). ياد رکو! شيطان مايوس ٿي چڪو آهي ته هاڻي توهان جي هن شهر ۾ ڪڏهن نه ڪا سندس پوڄا ڪئي ويندي. پر جن عملن کي توهان ليکي ۾ نٿا آڻيو، انهن ۾ سندس اطاعت ڪئي ويندي ۽ هو ان ۾ خوش هوندو. (1) ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ تشریح وارا ڏهاڙا (11، 12، 13 ذي الحج) منيٰ ۾ ئي رهيا. ان دوران پاڻ سڳورا ﷺ حج جا مناسڪ به ادا ڪندا رهيا ۽ ماڻهن کي شريعت جي سکيا به ڏيندا رهيا. الله جو ذڪر به ڪندا رهيا ۽ ملت ابراهيمي جي قربانيءَ واري رسم به قائم ڪندا رهيا ۽ شرڪ جا اهڃاڻ ۽ نشان پڻ مٽائيندا رهيا. پاڻ سڳورن ﷺ تشریح وارن ڏهاڙن ۾ به هڪ ڏينهن خطبو ڏنو. جيئن سنن ابي دائود ۾ "حسن" سند سان آيل آهي ته سراءِ بنت نبهان رضي الله عنها فرمايو ته پاڻ سڳورن ﷺ اسان کي رؤس واري ڏينهن (2) خطبو ڏنو ۽ فرمايو ته "چاهي تشریح جي ڏهاڙن مان وڃيون ڏينهن نه آهي؟ (3) پاڻ سڳورن ﷺ جو اڄوڪو خطبو به ڪلهوڪي (يوم النحر) خطبي جهڙو هو ۽ اهو خطبو سورة نصر جي نازل ٿيڻ کانپوءِ ڏنو ويو هو.

تشریح وارن ڏهاڙن جي پڇاڙيءَ تي ٻئي ڏينهن يوم النفر يعني 13 ذي الحج تي پاڻ سڳورا ﷺ منيٰ ڏانهن روانا ٿيا ۽ ابطح نالي واديءَ ۾ خيف بني ڪنانه وٽ اچي لٿا. ڏينهن جو بچيل حصو ۽ رات اتي گذاريائون ۽ اڳين، وڃين، سانجهي ۽ سمهڙي نماز اتي ئي پڙهيائون. پر عشاءَ کانپوءِ ٿورو سمهي اٿيا ۽ سوار ٿي بيت الله ڏانهن ويا ۽ آخري طواف ڪيائون. هاڻي حج جي سمورن مناسڪن کان آجا ٿي پاڻ سڳورن ﷺ سواريءَ جو منهن مديني ڏانهن ڪيو. ان لاءِ نه ته ڪو اتي وڃي آرام ڪندا. پر ان لاءِ ته هاڻي وري الله ڪارڻ، الله جي راهه ۾ هڪ نئون جهاد چيڙين. (4)

\*\_\*\_\*

1 - ترمذي (38/2، 135) مشڪوة (234/1).

2 - يعني 12 ذوالحج (عون المعبود 143/2).

3 - ابو دائود، (269/1).

4 - حجة الوداع جي تفصيل صحيح بخاري (631/2). فتح الباري (3/-) شرح كتاب المناسڪ ۽ (ج/8/103\_110) - ابن هشام (601/2)

605\_- زاد المعاد (1/196، 218\_240).



## آخري فوجي مهڙ

رومي شهنشاهيت کي اسلام ۽ مسلمانن جي زندهه رهڻ جو حق ڏيڻ کان عار هو. ان ڪري ان جي حدن ۾ رهڻ واري ڪنهن به ماڻهوءَ اسلام قبوليو ٿي ته ان جو پوءِ خير نه هو. جيئن معان جي (عرب نسل جي) رومي گورنر حضرت فرده بن عمرو جذامي رضي الله عنه سان ٿيو. انهن حالتن جي ڪري پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم صفر سنه 11 هـ ۾ هڪ وڏو لشڪر تيار ڪيو ۽ حضرت اسامه بن زيد رضي الله عنه کي ان جو سپهه سالار ڪري حڪم ڏنو ته بلقاء جو علائقو ۽ دارومر جي فلسطيني سرزمين سوارن جي پيرن هيٺان لتاڙي اچ. هن ڪارروائيءَ جو مقصد اهو هو ته رومين کي ڊيچارڻ سان گڏوگڏ سندن حدن ۾ رهندڙ عرب قبيلن جي دلجاڙ ڪئي وڃي ۽ اهو وهڙ ختم ڪيو وڃي ته ڪليسا جي تشدد تي ڪو پڇا ڳاڇا ڪرڻ وارو آهي ٿي ڪونه ۽ اسلام قبولڻ جو مطلب رڳو اهو آهي ته پنهنجي موت کي سڏيو وڃي.

ان موقعي تي ڪن ماڻهن، سپهه سالار جي ننڍي عمر تي تنقيد ڪئي ۽ ان مهڙ تي هلڻ ۾ دير ڪئي. تنهن تي پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم فرمايو ته توهان هن جي سپهه سالاريءَ تي تنقيد پيا ڪريو ۽ ان کان اڳ هن جي پيءُ تي به تنقيد ڪري چڪا آهيو. جڏهن ته الله جو قسم! اهو سپهه سالاريءَ جو اهل هو ۽ منهنجن پيارن مان هو ۽ هي به ان کان پوءِ منهنجن پيارن ماڻهن منجهان آهي. (1)

بهرحال اصحابي سڳورا رضي الله عنهم، اسامه رضي الله عنه جي هٿ هيٺ لشڪر ۾ شامل ٿي ويا ۽ لشڪر روانو ٿي مديني کان ٿي ميل پري جرف نالي جڳهه تي وڃي لٿو. پر پاڻ سڳورن صلی اللہ علیہ وسلم جي ناچاڪيءَ بابت تشویشناڪ خبرن جي ڪارڻ اڳتي نه وڌي سگهيو. بلڪه الله جي فيصلي جي انتظار ۾ اتي ئي رهڻ تي مجبور ٿي ويو ۽ الله جو فيصلو اهو هو ته اهو لشڪر حضرت ابوبڪر صديق رضي الله عنه جي خلافت جي ڏينهن جي پهرين فوجي مهڙ ليکي وڃي. (2)

\*\_\*\_\*

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (612/2).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (612/2) ۽ ابن هشام (606/2، 650).

## رفيق الاعليٰ ڏانهن سفر

**موڪلاڻيءَ جا اهڃاڻ:-** جڏهن دين جي دعوت پوري ٿي ۽ عربستان جي واڳ اسلام جي هٿ اچي وئي ته پاڻ سڳورن ﷺ جي ڳالهين ۽ هلت چلت مان اهڙا پسڻ پوڻ لڳا ته پاڻ سڳورا ﷺ هن عارضي حياتيءَ کي ڇڏڻ ۽ هن فاني جهان جي رهواسين کان موڪلائڻ وارا آهن. جهڙوڪ:

پاڻ سڳورن ﷺ سنه 10 هه جي رمضان ۾ ويهه ڏينهن اعتكاف ڪيو. جڏهن ته اڳي سدائين ڏهه ڏينهن اعتكاف ۾ ويهندا هئا. حضرت جبرئيل عليه السلام هن سال پاڻ سڳورن ﷺ کي ٻه ڀيرا قرآن شريف جو دور ڪرايو. جڏهن ته هر سال رڳو هڪڙو ڀيرو دور ڪرائيندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ حجة الوداع جي موقعي تي فرمايو ته "آئون نٿو ڄاڻان ته شايد هن سال کانپوءِ هن جڳهه تي توهان سان ملي سگهندس. جمره عقبه وٽ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "مون کان حج جو طريقو سکي وٺو، چوٽه ٿي سگهي ٿو ته آئون مٿئين سال حج نه ڪري سگهان." پاڻ سڳورن ﷺ تي تشريق جي وڃڻين ڏهاڙي تي سورة نصر لٿي ۽ ان سان پاڻ سڳورن ﷺ سمجهي ورتو ته هاڻي هن دنيا مان هلڻ جو وقت اچي پريو آهي ۽ اهو موت جو اطلاع آهي.

صفر سنه 11 هه جي منڍ ۾ پاڻ سڳورا ﷺ احد جبل وٽ هلي ويا ۽ شهيدن لاءِ مختلف دعائون گهريائون. ڄڻ ته جيئرن ۽ مٿن کان موڪلائي رهيا هئا. پوءِ موٽي اچي منبر تي ويٺا ۽ فرمايائون ته آئون توهان جي قافلي جو مهيندار آهيان ۽ توهان تي گواهه آهيان. الله جو قسم! آئون هن مهل پنهنجو حوض (حوض ڪوثر) ڏسي رهيو آهيان. مون کي ڌرتي ۽ ڌرتيءَ جي خزانن جون ڪنجيون ڏنيون ويون آهن ۽ الله جو قسم! مون کي اهو ڊپ نه آهي ته ڪو توهان مون کان پوءِ شرڪ ڪندو. پر اهو ڊپ آهي ته دنيا جي گهرجن تي پاڻ ۾ وڙهڻ لڳندو." (1)

هڪ ڀيري اڌ رات جو پاڻ سڳورا ﷺ بقيق ويا ۽ بقيق وارن لاءِ چوٽڪاري جي دعا گهريائون. فرمايائون ته "اي قبر وارو! توهان تي سلام! ماڻهو جنهن حال ۾ آهن، تنهنجي پيٽ ۾ توهان جنهن حال ۾ آهيو، اهي حال پلا آهن. فتنن، اونداهي رات جي ٽڪرن جيان هڪٻئي پويان هلندا پيا اچن ۽ پويون اڳئين کان به وڌيڪ بچڻو آهي." ان کانپوءِ اهو چئي قبرن وارن کي بشارت ڏنائون ته اسين به توهان سان اچي ملڻ وارا آهيون.

<sup>1</sup> - متفق عليه صحيح بخاري (585/2).

**مرض جو آغاز:-** 29 صفر سنه 11 هـ سومر جي ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ هڪ جنازي سان بقیع ویا. موٽڻ مهل وات تي ئي مٿي جو سور شروع ٿي وین ۽ بخار ایڏو وڌي وین جو مٿي تي ٻڌل پٽيءَ جي مٿان به محسوس ٿيڻ لڳو. اهو پاڻ سڳورن ﷺ تي مرض الموت جو آغاز هو. پاڻ سڳورن ﷺ ان ئي بيماريءَ واري حالت ۾ یارنهن ڏينهن نماز پڙهائي. بيماريءَ جو ڪل مدو تیرنهن یا چوڏنهن ڏينهن هو.

**آخري هفتو:-** پاڻ سڳورن ﷺ جي طبیعت ڏينهان ڏينهن بگڙجندي وئي. ان دوران پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجن بیبین سڳورین کان پڇندا رهیا ته آئون سپاڻي ڪٿي رهندس؟ ان سوال جو مقصد بیبین سڳوریون رضی اللہ عنہم سمجھي ویون تنهنڪري انهن اجازت ڏني ته پاڻ سڳورا ﷺ جتي وڌين اتي رهن. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ بیبي عائشه رضی اللہ عنہا جي گهر اچي ویا. اتي پاڻ سڳورا ﷺ حضرت فضل بن عباس رضی اللہ عنہ ۽ حضرت علي بن ابي طالب رضی اللہ عنہ جو سهارو وٺي پهتا هئا. سندن مٿي تي پٽي ٻڌل هئي ۽ پير گسري رهیا هئا. اهڙيءَ حالت ۾ پاڻ سڳورا ﷺ بیبي عائشه رضی اللہ عنہا جي گهر ۾ داخل ٿيا ۽ پوءِ حیاتي مبارڪ جو آخري هفتو اتي ئي گذاریائون.

بیبي عائشه رضی اللہ عنہا معوذات ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کان سکيل بیبن دعائون پڙهي پاڻ سڳورن ﷺ تي شوڪاريندي هئي ۽ برڪت جي اميد تي پاڻ سڳورن ﷺ جو هٿ مبارڪ پاڻ سڳورن ﷺ جي جسم مبارڪ تي ڦيريندي رهندي هئي.

**وفات کان پنج ڏهاڙا اڳ:-** وفات کان پنج ڏهاڙا اڳ اربع ڏينهن بخار وڌي ويو. جنهن جي ڪارڻ تڪليف وڌڻ ڪري پاڻ سڳورن ﷺ تي غشي طاري ٿيڻ لڳي. پاڻ سڳورن ﷺ فرمایو ته مون تي الڳ الڳ ڪوهن جي پاڻيءَ جون ست مشڪون هاريو ته جيئن آئون ماڻهن ۾ وڃي وصیت ڪري سگهان. "ان حڪم جي تڪميل ڪندي پاڻ سڳورن ﷺ کي هڪ ٽپ ۾ ويهاريو ويو ۽ مٿانئن ايترو پاڻي وڌو ويو جو پاڻ سڳورا ﷺ بس بس چوڻ لڳا.

ان مهل پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪجهه آرام مليو ۽ پاڻ سڳورا ﷺ مسجد ۾ آیا. مٿي تي پٽي ٻڌل هئا، منبر تي وينا ۽ ويهي خطبو ڏنائون. اصحابي سڳورا رضی اللہ عنہم اچي گڏ ٿيا هئا. فرمایائون ته "يهودين ۽ نصرانين تي اللہ جي لعنت هجي جو انهن پنهنجن نبين جي قبرن کي مسجدون بڻائي ڇڏيو."

بيء روايت ۾ آهي ته "يهودين ۽ نصرانين تي الله جي مار پوي جو انهن پنهنجن نبين جي قبرن کي مسجدون بڻائي ڇڏيو." (1) پاڻ سڳورن ﷺ اهو به چيو ته "توهان منهنجي قبر کي بت نه بڻائجو جو ان جي پوڄا شروع ٿي وڃي." (2)

پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجو پاڻ کي قصاص لاءِ پيش ڪيو ۽ فرمايو ته "مون ڪنهن جي پٺ تي ڪوڙو هنيو هجي ته هيءَ منهنجي پٺ حاضر آهي، اهو پلاند وٺي وٺي. ڪنهن جي بيعزتي ڪئي هجي ته اهو به بدلو وٺي وٺي."

ان کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ منبر تان هيٺ لٿا. اڳين نماز پڙهائون ۽ ٻيهر منبر تي وڃي ويٺا ۽ عداوت بابت مٿيون ڳالهيون دهرائون. هڪ ڇڻي اٿي چيو ته "منهنجا توهان تي ٿي درهم رهيل آهن." پاڻ سڳورن ﷺ فضل بن عباس رضى الله عنه کي فرمايو ته "هن کي ڏئي ڇڏ." ان کانپوءِ انصارن بابت وصيت ڪندي فرمايائون ته "آئون توهان کي انصارن بابت وصيت ڪريان ٿو. چوٽه اهي منهنجي دل ۽ جگر آهن. انهن پنهنجي ذميداري پوري ڪري ڇڏي، پر سندن حق اڃا رهن ٿا، تنهنڪري انهن جي نيڪوڪارن کان نيڪيون قبولجو ۽ خطاڪارن کان درگذر ڪجو. هڪ روايت ۾ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "ماڻهو وڌندا ويندا پر انصار گهٽبا ويندا. ايسٽائين جو اٿي ۾ لوڻ جيترا وڃي بچندا. تنهنڪري توهان مان جيڪو به نفعي ۽ نقصان واري ڪم جو والي بڻجي، اهو سندن نيڪوڪارن کان نيڪيون قبول ڪري ۽ خطاڪارن کان درگذر ڪري." (3)

تنهن کانپوءِ فرمايائون ته: "هڪ ٻانهي کي الله تعاليٰ اختيار ڏنو ته هو يا ته دنيا جي چمڪ ڌمڪ ۽ سونهن سينگار مان جيڪي وٺيس سو وٺي يا الله وٽ جيڪي ڪجهه آهي ان کي اختيار ڪري. تنهن تي ان ٻانهي الله تعاليٰ واري شيءِ کي اختيار ڪري ورتو." ابو سعيد خدرى رضى الله عنه جو بيان آهي ته اها ڳالهه ٻڌي حضرت ابوبڪر رضى الله عنه جن روئڻ لڳو ۽ فرمايائون ته "اسان پنهنجي ماءُ پيءُ سميت اوهان تان گهور وڃون." تنهن تي اسان کي اچرج ٿيو. ماڻهن چيو ته هن ڪراڙي کي ته ڏسو! پاڻ سڳورا ﷺ ته هڪ ٻانهي بابت پيا فرمائين ته الله سائينءَ ان کي اختيار ڏنو ته دنيا جي ڏيک وڌيڪ ۽ سونهن سينگار مان جيڪي وٺي اهو الله سائينءَ ڏيس يا هو الله وٽ جيڪي ڪجهه آهي ان کي اختيار ڪري ۽ هي ڪراڙو چوي پيو ته اسان جا ماءُ پيءُ پاڻ سڳورن ﷺ تان گهور وڃن. (پر

1 - صحيح بخاري 62/1 - مؤطا امام مالڪ (ص: 360).

2 - مؤطا امام مالڪ (ص: 65).

3 - صحيح بخاري (536/1).

ڪجهه ڏينهن کانپوءِ ڳالهه چئي ٿي وئي ته جنهن ٻانهي کي اختيار ڏنو ويو هو، اهي پاڻ سڳورا ﷺ ٿي هئا ۽ ابوبڪر رضی اللہ عنہ اسان سڀني کان وڌيڪ ڄاڻندا هئا. (1)

پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "مون تي پنهنجي سات ۽ مال سان سڀ کان وڌيڪ احسان ابوبڪر رضی اللہ عنہ جا آهن. جيڪڏهن آئون پنهنجي پالڻهار کانسواءِ ٻئي ڪنهن کي خليل بڻايان ها ته ابوبڪر رضی اللہ عنہ کي بڻايان ها. پر (ان سان) اسلامي پائيجاري ۽ محبت (جو لاڳاپو) آهي. مسجد ۾ ڪوبه دروازو نه ڇڏيو وڃي، پر اهي لازمي طور تي بند ڪيا وڃن، سواءِ ابوبڪر رضی اللہ عنہ جي دروازي جي." (2)

چار ڏينهن اڳ:- وفات کان چار ڏينهن اڳ خميس ڏينهن جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ جي تڪليف وڌي وئي ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته (ڪاغذ ۽ قلم) ڏيو ته آئون توهان کي هڪ لکت لکي ڏيان، جنهن کانپوءِ توهان ڪڏهن به گمراهه نه ٿيندا. "ان مهل گهر ۾ گهڻائي ماڻهو موجود هئا، جن ۾ حضرت عمر رضی اللہ عنہ به شامل هو ان چيو ته "پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏاڍي تڪليف آهي. هونئن به پاڻ وٽ قرآن آهي ۽ بس الله جو اهو ڪتاب ڪافي آهي. ان تي گهر ۾ موجود ماڻهن ۾ اختلاف ٿي پيو ۽ اهي پاڻ ۾ اٽڪي پيا. ڪن چيو ته (ڪاغذ ۽ قلم) آڻيو ته پاڻ سڳورا ﷺ لکي ڏين ته ڪو وري اها ڳالهه ڪري رهيو هو، جيڪا حضرت عمر رضی اللہ عنہ ڪئي هئي. اهڙيءَ طرح جڏهن گوڙ وڌي ويو ته پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "مون وٽان هليا وڃو." (3)

سابڻي ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ تن ڳاليهن جي وصيت ڪئي. هڪ اها ته يهودين، نصرانين ۽ مشرڪن کي عربستان مان ڪڍي ڇڏجڻ. ٻي اها ته (عرب قبيلن جي) وفدن جي چڱيءَ طرح ميزباني ڪجڻ. جهڙيءَ طرح پاڻ سڳورا ﷺ ڪندا هئا. باقي تي ڳالهه راوي ڀلجي ويو. شايد اها ڪتاب ۽ سنت کي مضبوطيءَ سان جهلي بيهڻ جي وصيت هئي يا اسامه واري لشڪر کي روانو ڪرڻ واري وصيت هئي، يا پاڻ سڳورن ﷺ جو اهو ارشاد هو ته نماز ۽ توهان جا زيردست. "يعني ٻانهن ۽ ٻانهين جو خيال رکجڻ"

پاڻ سڳورن ﷺ بيماري وڌڻ کانپوءِ به ان ڏينهن تائين سڀ نمازون پاڻ پڙهائيندا هئا. ان ڏينهن به سانجهي نماز پاڻ سڳورن ﷺ پاڻ پڙهائي ۽ ان ۾ سورة "والمسرات عرفا" پڙهيائون. (4)

1 - متفق عليه: مشکوة (2/546، 554) - صحيح بخاري (1/514).

2 - متفق عليه: مشکوة (2/546، 554) - صحيح بخاري (1/514).

3 - متفق عليه: صحيح بخاري (1/22، 429، 449 - 638/2).

4 - صحيح بخاري (2/637).

پر سمهڙيءَ مهل مرض ايڏو وڌي ويو جو مسجد ۾ وڃڻ جي طاقت نه رهي. بيبي عائشه رضي الله عنها جو چوڻ آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ پڇيو ته "ڇا ماڻهن نماز پڙهي ڇڏي؟" اسان چيو ته "نه، يا رسول الله ﷺ سڀئي اوهان جو انتظار پيا ڪن." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "مون لاءِ ٽپ ۾ پاڻي رکو." ائين ڪيو ويو. پاڻ سڳورن ﷺ غسل ڪيو ۽ ان کانپوءِ اٿڻ گهريو پر پاڻ سڳورن ﷺ تي غشي طاري ٿي وئي. ٿورو فرحت ٿين ته وري پڇيائون ته "ڇا ماڻهن نماز پڙهي ڇڏي؟" اسان چيو ته "نه، يا رسول الله ﷺ! سڀئي توهان جو انتظار پيا ڪن." ان کانپوءِ ٻيهر ۽ پوءِ ٽيهر ساڳيو واقعو ٿيو، جيڪو پهرين ٿيو هو. يعني پاڻ سڳورن ﷺ غسل ڪيو، اٿڻ گهريو ته پاڻ سڳورن ﷺ تي غشي طاري ٿي وئي. نيٺ پاڻ سڳورن ﷺ حضرت ابوبڪر رضه کي چورائي موڪليو ته اهي ماڻهن کي نماز پڙهائين. تنهن کانپوءِ انهن ڏينهن ۾ حضرت ابوبڪر رضه جن نماز پڙهائي. (1) پاڻ سڳورن ﷺ جي حياتيءَ ۾ انهن ڪل سترهن نمازون پڙهائون هيون.

ام المؤمنين عائشه رضي الله عنها، پاڻ سڳورن ﷺ کي ٽي يا چار ڀيرا چيو ته امامت جو ڪم حضرت ابوبڪر رضه بدران ٻئي ڪنهن جي حوالي ڪريو. سندن مطلب اهو هو ته ماڻهو حضرت ابوبڪر رضه (جي امامت) کي بدسوڻي نه سمجهن پر پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "توهان سڀئي يوسف واريون آهيو. (2) ابوبڪر رضه کي حڪم ڏي ته ماڻهن کي نماز پڙهائي. (3)

**هڪ يا ٻه ڏينهن اڳ:-** چنڇر يا آجر تي پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي طبيعت ۾ فرحت محسوس ڪئي، تنهنڪري ٻن چئن جي سهاري سان اڳين نماز لاءِ آيا. ان مهل ابوبڪر رضه، اصحابي سڳورن کي نماز پڙهائي رهيا هئا. اهي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏسي پنٿي هٿڻ لڳا. پاڻ سڳورن ﷺ اشارو ڪيو ته پٺيان نه هٿن ۽ سهارو ڏيڻ وارن کي چيائون ته مون کي هن جي پاسي ۾ ويهاريو. تنهن کانپوءِ پاڻ سڳورا ﷺ، حضرت ابوبڪر رضه جي کاٻي پاسي ويٺا. ان کانپوءِ ابوبڪر رضه جن،

<sup>1</sup> - متفق عليه: مشکوة (1/102).

<sup>2</sup> - حضرت يوسف عليه السلام جي سلسلي ۾ جيڪي عورتون عزيز مصر جي زال کي ملامت ڪري رهيون هيون، اهي بظاهر ته ان جي فعل جي بچڙاڻ جو اظهار ڪري رهيون هيون، پر يوسف عليه السلام کي ڏسي جڏهن انهن پنهنجون آڱريون کڻي وڌيون ته خبر پئي ته اهي پاڻ به حضرت يوسف عليه السلام تي اڪن چڪن هيون. اهو ئي معاملو هتي به هو. بظاهر ته پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو پئي ويو ته ابوبڪر رضه رقيق القلب آهي. توهان جي جڳهه تي بيهندو ته روئي پوڻ ڪري تلاوت ڪري نه سگهندو يا ٻڌائي ڪونه سگهندو. پر دل ۾ اها ڳالهه هئي ته جيڪڏهن الله نه ڪري پاڻ سڳورا ﷺ هن مرض ۾ گذاري ويا ته ابوبڪر رضه بابت نحوست ۽ بدشگونيءَ جو خيال ماڻهن جي دل ۾ ويهي ويندو. جيئن ته اها گذارش ڪرڻ ۾ بيبي عائشه رضي الله عنها سان ٻيون بيبيون سڳوريون به گڏ هيون. تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته توهان سڀ يوسف واريون آهيو. يعني دل ۾ هڪڙي اٿو ۽ زبان سان ٻي بيون ٻڌايو. بخاري مع الفتح (447/7) (حديث نمبر 4445)، مسلم كتاب الصلاة (313/1) (حديث نمبر 93، 94).

<sup>3</sup> - صحيح بخاري (99/1)

پاڻ سڳورن ﷺ جي نماز جي اقتداء ڪري رهيا هئا ۽ اصحابي سڳورن کي تڪبير ٻڌائي رهيا هئا. (1)

**هڪ ڏينهن اڳ:-** وفات کان هڪ ڏينهن اڳ آچر ڏينهن پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجا سمورا ٻانها آزاد ڪري ڇڏيا. ست دينار رکيل هئن. (2) اهي صدقو ڪري ڇڏيائون. پنهنجا هٿيار مسلمانن کي ڏئي ڇڏيائون. رات جو ڏيئو ٻارڻ لاءِ بيبي عائشه رضي الله عنها پاڙي مان تيل اڌارو ورتو. (3) پاڻ سڳورن ﷺ جي زره هڪ يهوديءَ وٽ تيهه صاع (اتڪل 75 ڪلو) جون جي بدلي ۾ گروي رکيل هئي. (4)

**ڄمار جو آخري ڏهاڙو:-** حضرت انس رضه جو بيان آهي ته سومر ڏينهن مسلمان نماز پڙهي رهيا هئا ۽ حضرت ابوبڪر رضه امامت ڪري رهيو هو ته اوچتو پاڻ سڳورن ﷺ، بيبي عائشه رضي الله عنها جي حجري جو پردو کنيو ۽ قطارون ٻڌي نماز پڙهندڙ اصحابي سڳورن کي ڏٺو ۽ مرڪڻ لڳا. بيبي پاسي ابوبڪر رضه کڙيءَ ۾ پنتي هڻي وڃي صف سان مليو. ان سمجهيو ته پاڻ سڳورا ﷺ نماز پڙهائڻ لاءِ اچڻ پيا گهرن. حضرت انس رضه جو بيان آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ (کي اوچتو ڏسي) مسلمان ايڏا سرها ٿيا جو چاهيائون ته نماز ۾ ئي فتني ۾ پئجي وڃن. (يعني پاڻ سڳورن ﷺ سان حالي احوالي ٿيڻ لاءِ نماز توڙين) پر پاڻ سڳورن ﷺ هٿ جي اشاري سان فرمايو ته پنهنجي نماز پوري ڪري وٺو. ان کانپوءِ حجري ۾ موٽي ويا ۽ پردو هيٺ ڪري ڇڏيائون (5) ان کانپوءِ پاڻ سڳورن ﷺ تي ڪنهن به نماز جو وقت نه آيو. ڏينهن چڙهڻ کانپوءِ چاشت مهل پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي نياڻي بيبي فاطمه رضي الله عنها کي سڏايو ۽ کين ڪن ۾ ڪا ڳالهه چئي. جنهن تي پاڻ روئڻ لڳي. پاڻ سڳورن ﷺ کين ٻيهر ويجهو سڏيو ۽ وري ڪن ۾ ڪا ڳالهه چئي ته پاڻ کلڻ لڳي. بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته پوءِ اسان جي پچڻ تي انهن ٻڌايو ته (پهريون ڀيري) پاڻ سڳورن ﷺ مون کي ڪن ۾ چيو ته پاڻ سڳورا ﷺ هن ئي بيماريءَ ۾ فوت ٿيندا، ان ڪري آئون رنيس. پوءِ انهن مون کي وري ڪن ۾ چيو ته خاندان مان پاڻ سڳورن ﷺ پٺيان سڀ کان پهرين آئون وينديس، تنهن تي آئون ڪليس. (6)

1 - بخاري (98/99/1).

2 - ابن سعد (237/2).

3 - ابن سعد (239/2).

4 - صحيح بخاري (حديث نمبر 2068, 2069, 2209, 2251, 2252, 2386, 2509, 2513, 2916, 4167).

5 - صحيح بخاري (2/640).

6 - صحيح بخاري (2/638).

پاڻ سڳورن ﷺ، بيبي فاطمه رضي الله عنها کي اها بشارت به ڏني ته بيبي سڳوري رضي الله عنها سڳي جهان جي عورتن جي سردار آهي. (1)

ان مهل پاڻ سڳورا ﷺ ڏاڍي تڪليف ۾ هئا اها حالت ڏسي بيبي فاطمه رضي الله عنها پاڻمراڻو رڙ ڪئي و اُ ڪرب آباه! "هائ بابا جي تڪليف." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "تنهنجي پيءُ تي اڄ کانپوءِ ڪابه تڪليف نه آهي." (2)

پاڻ سڳورن ﷺ، حسن ۽ حسين رضي الله عنهما کي گهرائي پيار ڪيو ۽ انهن سان چڱائي ڪرڻ جي وصيت ڪئي. پنهنجن پاڪ بيبين کي گهرايائون ۽ کين نصيحتون ڪيائون.

بئي پاسي هر لمحي تڪليف وڌندي پئي وئي ۽ ان زهر جو اثر به ظاهر ٿيڻ لڳو، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ کي خيبر ۾ ڏنو ويو هو. جيئن پاڻ سڳورا ﷺ، بيبي عائشه رضي الله عنها کي چوندا هئا ته "اي عائشه رضي الله عنها! خيبر ۾ جيڪو ڪاڏو مون ڪاڏو هو ان جي تڪليف برابر محسوس پيو ڪريان. هن مهل مون کي لڳي ٿو ته ان زهر ڪارڻ منهنجو اندر پيو وڃي." (3)

پاڻ سڳورن ﷺ، اصحابي سڳورن کي به وصيت ڪئي ۽ فرمايو ته "الصَّلَاةُ ، الصَّلَاةُ وَمَا مَلَكَتْ أَيْمَانُكُمْ (نماز، نماز ۽ توهان جا زير دست (يعني ٻانهن ۽ ٻانهيون).) پاڻ سڳورن ﷺ اهي لفظ ڪئي پيرا ورجايا. (4)

**سڪرات ۾ :-** پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ تي سڪرات شروع ٿي وئي ۽ بيبي عائشه رضي الله عنها پاڻ سڳورن ﷺ کي ٽيڪ ڏياري ويني. سندن بيان آهي ته "الله سائينءَ جي هڪ نعمت مون تي اها آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ منهنجي گهر ۾، منهنجي واري تي، منهنجي ڇاتيءَ سان ٽيڪ لڳائي وفات ڪري ويا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي گذارڻ مهل الله سائينءَ! پاڻ سڳورن ﷺ جو لعاب ۽ منهنجو لعاب گڏي ڇڏيو. تيو هيئن جو عبدالرحمان بن ابي بڪر پاڻ سڳورن ﷺ وٽ آيو، سندن هٿ ۾ ڏنڊ هو. پاڻ سڳورا ﷺ مون سان ٽيڪ لڳائي وينا هئا. مون ڏٺو ته پاڻ سڳورن ﷺ ڏنڊ کي پئي ڏنو. آئون سمجهي ويس ته پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏنڊ ڪيئي. مون پڇيو ته توهان لاءِ ڪٿي اڃان؟ پاڻ سڳورن ﷺ ڪنڌ لوڏي سان هائوڪار ڪئي. مون ڏنڊ اٿي پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏنو ته پاڻ سڳورن ﷺ کي ڪڙو لڳو. مون چيو ته اهو توهان کي نمر ڪري ڏيان؟ پاڻ سڳورن ﷺ اشاري

<sup>1</sup> - ڪن روايتن مان لڳي ٿو ته ڳالهه بول ۽ بشارت ڏيڻ جو اهو واقعو حياتي مبارڪ جو آخري ڏينهن نه پر آخري هفتي ۾ ٿيو. رحمة للعالمين (282/1).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (641/2).

<sup>3</sup> - صحيح بخاري (637/2).

<sup>4</sup> - صحيح بخاري (637/2).



سان هائوڪار ڪئي. مون ڏندڻ نرم ڪيو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ چڱيءَ طرح ڏندڻ ڏنو. پاڻ سڳورن ﷺ جي آڏو وڃي پيا. پاڻ سڳورا ﷺ ٻئي هت پائيءَ ۾ وجهي منهن ڏوئيندا پئي ويا ۽ چوندا پئي ويا ته "لَا إِلَهَ إِلَّا اللَّهُ إِنَّ لِمَوْتِ سَكَرَاتٍ - اللَّهُ كَانَسَوَاءَ كُو مَعْبُودٍ كُونَهِي. مَوْتِ لَاءِ ذِكْبَائِيُونِ آهَن." (1)

ڏندڻ ڏيڻ کان فارغ ٿيندي ئي پاڻ سڳورن ﷺ هت يا آگر مٿي ڪئي ۽ نگاهون ڇت ڏانهن ڪنيائون ۽ ٻنهي چين ۾ چرپر ٿي. مون ڪن ڏئي ٻڌو ته پاڻ سڳورا ﷺ فرمائي رهيا هئا ته "انهن نبين، صديقن، شهيدن ۽ صالحن سان گڏ جن کي تو پنهنجي انعام سان نوازيو آهي. اي الله! مون کي بخش، مون تي رحم ڪر ۽ مون کي رفيق اعليٰ ۾ پهچائي ڇڏ. اي الله! رفيق اعليٰ." (2)

آخري فقرو تي پيرا ورجاڻيون ۽ ان مهل هت جهڪي وين ۽ پاڻ سڳورا ﷺ رفيق الاعليٰ سان وڃي مليا. انا الله وانا اليه راجعون

اهو واقعو 12 ربيع الاول سنه 11 هـ سومر جي ڏينهن چاشت مهل ٿيو. ان وقت پاڻ سڳورن ﷺ جي ڄمار ٽيهٺ ورهيه ۽ چار ڏينهن هئي.

**غمر جو سمنڊ** - اها هانءُ ڌاريندڙ خبر هڪدم پڪڙجي وئي. مديني وارن تي غمر جو پهڙ اچي ڪريو. حضرت انس رضه جو بيان آهي ته جنهن ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ اسان وٽ آيا هئا، ان کان پلو ۽ سهائيءَ وارو ڏينهن مون ڪڏهن نه ڏٺو ۽ جنهن ڏينهن پاڻ سڳورا ﷺ گذاري ويا، ان کان برو ۽ اونڌاهو ٻيو ڪو ڏينهن مون نه ڏٺو. (3)

پاڻ سڳورن ﷺ جي وفات تي بيبي فاطمه رضي الله عنها ڏک ۾ فرمايو ته:

يَا أَبَتَاهُ أَحَابَ رَبًّا دَعَاهُ يَا أَبَتَاهُ مَنْ حِنَّةُ الْفِرْدَوْسِ مَأْوَاهُ يَا أَبَتَاهُ إِلَى جِبْرِيلَ نَعَاهُ (4)

"هائ ڙي بابا سائين! جنهن پالڻهار جو سڏ ورتايو. هائ ڙي بابا سائين! جنهن جو نڪاڻو جنت الفردوس ۾ آهي. هائ ڙي بابا سائين! اسين جبرئيل عليه السلام کي توهان جي موت جو ڄاڻ ڏيون ٿا."

**حضرت عمر رضه جو موقف** - وفات جي خبر ملڻ تي حضرت عمر رضه جا هوش اڏامي ويا. هن بيبي چوڻ شروع ڪيو ته "ڪي منافق سمجهن ٿا ته پاڻ سڳورا ﷺ وفات ڪري ويا آهن،

1 - صحيح بخاري (640/2).

2 - صحيح بخاري (638/2\_641).

3 - دارمي، مشڪوة (547/2).

4 - صحيح بخاري (641/2).

پر حقيقت اها آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ وفات نه ڪري ويا آهن، پر پنهنجي پالڻهار وٽ هلي ويا آهن. جهڙيءَ طرح حضرت موسيٰ عليه السلام جن ويا هئا ۽ پنهنجي قوم کان چاليهه راتيون غائب رهي ٻيهر انهن وٽ موٽي آيا. جڏهن ته واپسيءَ کان پهرين چيو پئي ويو ته اهي گذاري ويا آهن. الله جو قسم! پاڻ سڳورا ﷺ ضرور موٽندا ۽ انهن ماڻهن جا هٿ پير ڪيبي ڇڏيندا جيڪي سمجهن ٿا ته پاڻ سڳورن ﷺ جو موت ٿي چڪو آهي. (1)

**حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ جو موقف:-** ٻئي پاسي حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ پنهنجي گهران گهوڙي تي چڙهي آيو ۽ لهي مسجد نبويءَ ۾ داخل ٿيا. پوءِ ماڻهن سان ڳالهائڻ ٻولائڻ ڪانسواءِ سڌو بيبي عائشه رضي الله عنها وٽ پهتا ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي سڏ ڪيو. پاڻ سڳورن ﷺ جو جسم مبارڪ پٽي واري يميني چادر سان ڍڪيل هو. حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ، منهن مبارڪ تان پلٽي پري ڪري ان کي چميو ۽ روئڻ لڳو. پوءِ فرمايائين ته "منهنجا ماءُ پيءُ اوهان تان گهريان، الله سائين اوهان تي به موت گڏ نه ڪندو. جيڪو موت اوهان لاءِ لڪيل هو، اهو اچي ويو." ان کانپوءِ ابوبڪر رضی اللہ عنہ ٻاهر آيا. ان مهل حضرت عمر رضی اللہ عنہ ماڻهن سان ڳالهائي رهيا هئا. حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ، کين چيو ته "عمر ويهي رهه." حضرت عمر رضی اللہ عنہ جن ويهڻ کان انڪار ڪيو. ٻئي پاسي اصحابي سڳورن، حضرت عمر رضی اللہ عنہ کي ڇڏي حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہن ڏيان ڏنو. حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ جن فرمايو ته:

أَمَّا بَعْدُ فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ يَعْبُدُ مُحَمَّدًا صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ فَإِنَّ مُحَمَّدًا قَدْ مَاتَ وَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ يَعْبُدُ اللَّهَ فَإِنَّ اللَّهَ حَيٌّ لَا يَمُوتُ قَالَ اللَّهُ: ﴿وَمَا مُحَمَّدٌ إِلَّا رَسُولٌ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِهِ الرُّسُلُ أَفَإِنْ مَاتَ أَوْ قُتِلَ انْقَلَبْتُمْ عَلَى أَعْقَابِكُمْ وَمَنْ يَنْقَلِبْ عَلَى عَقْبَيْهِ فَلَنْ يَضُرَّ اللَّهَ شَيْئًا وَسَيَجْزِي اللَّهُ الشَّاكِرِينَ﴾ (144)

"۽ محمد ﷺ (الله جو) پيغمبر ئي آهي. بيشڪ ان کان اڳ ڪيترا پيغمبر گذري ويا. پوءِ جيڪڏهن اهو مري وڃي يا قتل ٿئي ته (اوهين) پنهنجين ڪڙين (پر پوئتي) ڦرندؤ ڇا؟ ۽ جيڪو پنهنجين ڪڙين (پر پوئتي) ڦرندو، سو الله کي ڪجهه به نقصان ڪڏهن به نه لائيندو ۽ الله شاکرن (احسان مڃيندڙن) کي ترت اجر ڏيندو."

اصحابي سڳورا جيڪي اڃا تائين حيران پريشان هئا انهن حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ جا اهي گستاخاڻا ٻڌا ته پڪ ٿي وين ته پاڻ سڳورا ﷺ سچ پچ گذاري ويا آهن. حضرت ابن عباس رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته والله لڳو ائين ٿي ڄڻ ماڻهن کي الله جي اها آيت وسري وئي هئي ۽ جڏهن حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ اها پڙهي ته سڀني کي ياد اچي وئي ۽ پوءِ هر ڪنهن جي زبان تي اها آيت هئي.

<sup>1</sup> - ابن هشام (2/655).

حضرت سعيد بن مسيب رضي الله عنه جو بيان آهي ته حضرت عمر رضي الله عنه فرمايو ته "والله مون جيئن ئي ابوبڪر رضي الله عنه کي اها آيت تلاوت ڪندي ٻڌو ته ڏاڍو اچرج ۾ وڻجي دنگ رهجي ويس. ايستائين جو منهنجن پيرن منهنجو بار کڻڻ کان انڪار ڪيو ۽ ابوبڪر رضي الله عنه کي هن آيت جي تلاوت ڪندي ٻڌي آئون پت تي ڪري پيس. چوڻه مون ڄاڻي ورتو هو ته سج پچ پاڻ سڳورا گذاري چڪا آهن. (1)

**ڪفن ۽ دفن:-** ٻئي پاسي پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڪفن دفن کان اڳ ئي جائشينيءَ تي اختلاف ٿي پيو. سقيف بنو ساعده ۾ مهاجرن ۽ انصارن ۾ ڏاڍا بحث مباحثا ۽ ڏي وٺ ٿي. نيٺ حضرت ابوبڪر رضي الله عنه جي خلافت تي اتفاق ٿي ويو. هن ڪم ۾ سومر جو سڄو ڏينهن گذري ويو ۽ اڃي رات ٿي. ماڻهو پاڻ سڳورن عليه السلام جي ڪفن دفن بدران هن ٻئي ڪم ۾ رڌل رهيا. پوءِ اها رات به لنگهي وئي ۽ اڱاري جو ڏينهن ٿيو. ان مهل تائين پاڻ سڳورن عليه السلام جو جسر مبارڪ هڪ پتي واري يميني چادر ۾ ڍڪيل هنڌ تي ئي پيو رهيو. گهر وارن باهريون در بند ڪري ڇڏيو هو.

اڱاري ڏينهن پاڻ سڳورن عليه السلام جا ڪپڙا لاهڻ کانسواءِ ئي ڪين غسل ڏنو ويو. غسل ڏيڻ وارا پلارا هي هئا. حضرت عباس رضي الله عنه، حضرت علي رضي الله عنه، فضل ۽ قثم بن عباس رضي الله عنه، پاڻ سڳورن جو آجو ڪيل غلام شقران رضي الله عنه، حضرت اسام بن زيد رضي الله عنه ۽ اوس بن خولي رضي الله عنه. حضرت عباس رضي الله عنه، فضل ۽ قثم رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام جو پاسو مٽائي رهيا هئا، حضرت اسام بن زيد ۽ شقران رضي الله عنه پاڻي هاري رهيا هئا، حضرت علي رضي الله عنه غسل ڏئي رهيا هئا ۽ حضرت اوس رضي الله عنه پاڻ سڳورن عليه السلام کي پنهنجي ڇاتيءَ سان تڪ ڏياري وينا هئا. (2)

ان کانپوءِ پاڻ سڳورن عليه السلام کي تن اچين يميني چادرن جو ڪفن ڏنو ويو. انهن ۾ ڪرتو ۽ پتڪو نه هو. (3)

پاڻ سڳورن عليه السلام جي آخري آرامگاهه بابت به اصحابي سڳورا رضي الله عنهم مختلف رايون جا هئا. پر حضرت ابوبڪر رضي الله عنه چيو ته مون پاڻ سڳورن عليه السلام کان اهو ٻڌو آهي ته هر نبيءَ جي تدفين اتي ٿيندي آهي، جتي اهي فوت ٿيا هجن. ان فيصلي کانپوءِ حضرت طلح رضي الله عنه، پاڻ سڳورن عليه السلام جو هنڌ کنيو، جنهن تي پاڻ سڳورن عليه السلام وفات ڪئي هئي ۽ ان جي هيٺان ئي قبر کوٽيائون. قبر ساميءَ (لحد) واري کوٽي وئي هئي. ان کانپوءِ واري واري سان ڏهه ڏهه اصحابي

1 - صحيح بخاري (2/640، 641).

2 - ابن ماجه (521/1)

3 - صحيح بخاري (1/169) - صحيح مسلم (1/306).

سڳورا حجري شريف ۾ اچي نماز پڙهي پئي ويا. ڪو امام نه هو. سڀ کان پهرين پاڻ سڳورن ﷺ جي گهراڻي (بني هاشم) جنازي نماز پڙهي. پوءِ مهاجرن ۽ پوءِ انصارن. مردن کانپوءِ عورتن ۽ انهن کانپوءِ ٻارن.

جنازي نماز پڙهڻ ۾ سڄو انگاري جو ڏينهن لنگهي ويو ۽ اچي اربع رات ٿي. رات جو پاڻ سڳورن ﷺ جو جسر مبارڪ دفنايو ويو. جيئن بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته اسان کي پاڻ سڳورن ﷺ جي تدفين جو پتو نه پيو. ايسنائين جو اسان اربع جي رات جي وچ ڌاري ڪوڏر هلڻ جو آواز ٻڌا. (1)

\* \* \*

<sup>1</sup> - مختصر السيرة للشيخ عبدالله 471 - وفات جي واقعي جي تفصيل لاءِ ڏسو صحيح بخاري: باب مرض النبي ﷺ ۽ ان کانپوءِ وارا ڪجهه باب فتح الباري سميت ۽ صحيح مسلم، مشڪوة المصابيح، باب وفات النبي ﷺ - ابن هشام (2/649\_665) - تليق الفهرم اهل الاثر (ص:38، 39) - رحمة للعالمين (1/277\_286) وقت جو تعين گهڻو ڪري رحمة للعالمين منجهان ورتو ويو آهي.

## پاڻ سڳورن ﷺ جو گهراڻو

1. هجرت کان اڳ مڪي ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جو گهراڻو. پاڻ سڳورن ﷺ ۽ بيبي خديجه الكبرى رضي الله عنها تي ٻڌل هو. پرڻجڻ مهل پاڻ سڳورن ﷺ جي ڄمار پنجويهه ورهيه هئي ۽ بيبي سڳوري رضي الله عنها جي ڄمار چاليهه ورهيه. بيبي خديجه رضي الله عنها پاڻ سڳورن ﷺ جي پهرين گهرواري هئي ۽ سندن هوندي پاڻ سڳورن ﷺ کا بي شادي نه ڪئي هئي. پاڻ سڳورن ﷺ جي ٻارن منجهان حضرت ابراهيم کانسواءِ ٻيا مڙئي پٽ ۽ نياڻيون ان ئي بيبي سڳوريءَ مان هئا. پٽن منجهان ته ڪوبه حيات نه رهيو. باقي نياڻيون حيات رهيون. انهن جا نالا هي آهن. زينب رضي الله عنها، رقيه رضي الله عنها، ام ڪلثوم رضي الله عنها ۽ فاطمه رضي الله عنها. بيبي زينب رضي الله عنها هجرت کان پهرين پنهنجي پڦاٽ حضرت ابوالعاص رضه سان پرڻيل هئي. رقيه ۽ ام ڪلثوم رضي الله عنهن، هڪ ٻئي پٺيان حضرت عثمان رضه سان پرڻيون. بيبي فاطمه رضي الله عنها بدر واري جنگ ۽ احد واري جنگ جي وچ واري مدي ۾ حضرت علي رضه سان پرڻائي وئي ۽ انهن مان ئي حسن رضه، حسين رضه ۽ ام ڪلثوم رضي الله عنها پيدا ٿيا.

ياد رهي ته پاڻ سڳورن ﷺ کي امت جي پيٽ ۾ اها امتيازي خصوصيت حاصل هئي ته پاڻ سڳورا ﷺ مختلف مقصدن تحت چئن کان مٿي شاديون ڪري ٿي سگهيا. اهڙيءَ طرح جن عورتن سان پاڻ سڳورا ﷺ پرڻيا، تن جو تعداد يارنهن هو. انهن مان نوَ بيبيون سڳوريون. پاڻ سڳورن ﷺ جي رحلت مهل حياتي هيون ۽ ٻه پاڻ سڳورن ﷺ جي زندگيءَ ۾ ئي وفات ڪري چڪيون هيون. (يعني بيبي خديجه رضي الله عنها ۽ ام الماسڪين بيبي زينب بنت خزيمه رضي الله عنها) انهن کانسواءِ ٻه ٻيون عورتون به آهن، جن بابت اختلاف آهي ته پاڻ سڳورا ﷺ انهن سان پرڻيا هئا يا نه، پر ان ڳالهه تي سڀئي متفق آهن ته انهن ٻنهي جي رخصتي نه ٿي هئي. هيٺ انهن بيبيون سڳورين جا نالا ۽ انهن جو تورو احوال ڏيون ٿا.

2. بيبي سوڌه بنت زمعه رضي الله عنها:- جنهن سان پاڻ سڳورا ﷺ، بيبي خديجه رضي الله عنها جي وفات کان ڪجهه ڏهاڙا پوءِ نبوت جي ڏهين سال شوال مهيني ۾ پرڻيا. پاڻ سڳورن ﷺ کان اڳ اها پنهنجي سوٽ سڪران بن عمرو سان پرڻيل هئي. جنهن جي گذارڻ ڪري پاڻ بيوهه ٿي وئي هئي.

3. بيبي عائشه بنت ابوبڪر رضي الله عنها:- جنهن سان پاڻ سڳورا ﷺ نبوت جي يارهين سال شوال جي مهيني ۾ پڙتيا. يعني بيبي سوده سان پڙتجڻ کان پورو هڪ سال پوءِ ۽ هجرت کان ٻه سال پنج مهينا اڳ. ان مهل سندن عمر ڇهه ورهيه هئي. پوءِ هجرت کان ست مهينا پوءِ شوال سنه 1 هجريءَ ۾ کين رخصت ڪيو ويو. ان مهل سندن عمر نوَ ورهيه هئي ۽ پاڻ باڪره هئي. کانئن سواءِ پاڻ سڳورن ﷺ بي ڪنهن به (ڪنواري) عورت سان نه پڙتيا هئا. بيبي عائشه رضي الله عنها پاڻ سڳورن ﷺ جي سڀ کان پياري گهر واري هئي ۽ امت جي عورتن ۾ سڀ کان وڌيڪ فقيه ۽ علم واري هئي.

4. بيبي حفصه بنت عمر بن خطاب رضي الله عنها:- سندن پهريون گهروارو خنيس بن حذافه سهمي رضه هو. جيڪو بدر ۽ احد واري لڙائيءَ جي وچ واري مدي ۾ گذاري ويو ۽ پاڻ بيوهه ٿي وئي. پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ ساڻن سنه 3 هه ۾ پڙتيا.

5. بيبي زينب بنت خزيمه رضي الله عنها:- پاڻ بنو هلال بن عامر بن صعصعه قبيلي منجهان هيون. ڏنڙيلن مسڪينن تي رحم ۽ مروت، رقت ۽ رافت ڪارڻ سندن لقب ام المساكين پئجي ويو هو. پاڻ حضرت عبدالله بن جحش رضه جن سان پڙتيل هيون. اهي بدر واري لڙائيءَ ۾ شهيد ٿي ويا ته پاڻ سڳورن ﷺ سنه 4 هه ۾ ساڻن شادي ڪئي. پر رڳو اٺ مهينا گذرڻ کانپوءِ اهي گذاري ويون.

6. ام سلمه هند بنت ابي اميه رضي الله عنها:- پاڻ ابو سلمه رضه سان پڙتيل هيون. جمادي الآخر سنه 4 هه ۾ اهو گذاري ويو ته ان کانپوءِ سنه 4 هه ۾ ئي پاڻ سڳورا ﷺ ساڻن پڙتيا.

7. زينب بنت جحش بن رباب رضي الله عنها:- پاڻ بنو اسد بن خزيمه قبيلي منجهان هئي ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي پڦات هئي. پهرين پاڻ حضرت زيد بن حارثه رضه سان پڙتيل هئي، جن کي پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجو پٽيلو ڪيو هو. پر حضرت زيد رضه سان نباھه نه ٿي سگهين ۽ انهن کين طلاق ڏئي ڇڏي. عدت پوري ٿيڻ کانپوءِ الله تعاليٰ هيءُ آيتون لائون ته:

﴿فَلَمَّا قَضَىٰ زَيْدٌ مِنْهَا وَطَرًا زَوَّجْنَاكَهَا...﴾ (37) ﴿الاحزاب﴾

"پوءِ جنهن مهل زيد (ان عورت) کان پنهنجي حاجت پوري ڪئي (يعني) طلاق ڏنائين. تنهن مهل ان کي توسان پڙتايوسون."

انهن سان لاڳاپيل سورة احزاب جون ٻيون ٻه آيتون لٿيون، جن ۾ متبني (گود ورتل ٻار جنهن کي سنڌيءَ ۾ پٽيلو چئجي ٿو.) جو فيصلو ڪيو ويو. ان جو تفصيل اڳتي ايندو. بيبي زينب سان پاڻ سڳورن ﷺ جو پرڻو ذي القعدة سنه 5 هه ۾ يا ان کان ٿورو اڳ ٿيو.

8. جویریہ بنت حارث رضي الله عنها:- سندن پيءُ خزاع قبيلي جي شاخ بنو المصطلق جو سردار هو. بيبي جویریہ رضي الله عنها، بنو المصطلق جي قيدين سان گڏ آندي وئي هئي ۽ حضرت ثابت بن قيس بن شماس رضي الله عنه جي پتيءَ ۾ آئي هئي جنهن، بيبي جویریہ رضي الله عنها سان مڪاتبت ڪئي. يعني هڪ رٿيل موڙي پري ڏيڻ تي آزاد ڪرڻ جو ٺاه ڪري ورتو. ان کانپوءِ پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم سندن رٿيل موڙي ادا ڪري ساڻن پرڻو ڪيو. اهو شعبان سنه 5 هـ يا 6 هـ جو واقعو آهي.

9. ام حبيبہ رملہ بنت ابي سفيان رضي الله عنها:- پاڻ عبیدالله بن جحش سان پرڻيل هئي ۽ ان سان گڏ حبش ڏانهن هجرت ڪئي هئائين. پر عبیدالله اتي پهچي مرتد ٿي ويو ۽ عيسائي مذهب قبول ڪري ورتائين ۽ پوءِ اتي ئي مري ويو. پر ام حبيبہ رضي الله عنها پنهنجي دين ۽ پنهنجي هجرت تي قائم رهي. جڏهن پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم سنه 7 هـ جي محرم ۾ عمرو بن اميه ضمري رضي الله عنه کي پنهنجو خط ڏئي نجاشيءَ ڏانهن موڪليو ته نجاشيءَ کي اهو به نياپو ڪيائون ته ام حبيبہ جو نڪاح پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم سان ڪري ڇڏي. هن ام حبيبہ رضي الله عنها کان مرضي پڇي پوءِ سندن نڪاح پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم سان ڪري ڇڏيو ۽ شرحبيل بن حسنہ رضي الله عنه سان گڏ کين پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم ڏانهن اماڻي ڇڏيو.

10. بيبي صفیه بنت حبي بن اخطب رضي الله عنها:- پاڻ بني اسرائيل منجهان هئي ۽ خيبر ۾ جهلي وئي هئي، پر پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم کين پنهنجي لاءِ چونڊيو ۽ آزاد ڪري ساڻن نڪاح ڪيو. اهو خيبر فتح ڪرڻ کانپوءِ سنه 7 هـ جو واقعو آهي.

11. حضرت ميمونہ بنت حارث رضي الله عنها:- پاڻ ام الفضل لبابه بنت حارث رضي الله عنها جي پيڻ هيون. ساڻن پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم ذي القعدة سنه 7 هـ ۾ عمره القضاء کان فارغ ٿيڻ يا صحيح قول مطابق احرام مان حلال ٿيڻ کانپوءِ پرڻيا.

اهي يارنهن بيبيون هيون، جيڪي پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم سان پرڻيون ۽ پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم جي صحبت ۽ سات ۾ رهيون. انهن مان ٻن يعني بيبي خديجہ رضي الله عنها ۽ بيبي زينب ام المساكين رضي الله عنها جي وفات پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم جي حياتيءَ ۾ ٿي ۽ باقي نوَ پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم جي وفات مهل حيات هيون. ان کانسواءِ ٻه ٻيون عورتون، جيڪي پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم وٽ رخصت ٿي نه آيون انهن مان هڪ بنو ڪلاب قبيلي منجهان هئي ۽ ٻي ڪنده قبيلي منجهان. پوئين عورت جونيه جي نسبت سان مشهور هئي. انهن جو پاڻ سڳورن صلوات الله عليهم سان پرڻو ٿيو به هو يا نه، ۽

سندن نالو ۽ نسب ڇا هو، ان بابت سيرت نگارن ۾ ڏاڍو اختلاف رهيو آهي، جنهن جي تفصيل ۾ وڃڻ جي ڪا گهرج نه آهي.

جيسٽائين ٻانهين جو معاملو آهي ته مشهور اهو آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ٻن ٻانهين کي پاڻ وٽ رکيو. هڪ ماريه قبطيه رضي الله عنها، جنهن کي مصر جي بادشاهه مقوقس سوکڙيءَ طور موڪليو هو. ان مان ئي پاڻ سڳورن ﷺ کي ابراهيم نالي پٽڙو ڄائو، جيڪو ننڍپڻ ۾ ئي 28 يا 29 شوال سنه 10 هه مطابق 27 جنوري سنه 632 هه ۾ گذاري ويو.

ٻي ٻانهي ريحانه بنت زيد رضي الله عنها هئي، جيڪا يهودين جي قبيلي بنو نضير يا بني قريظ منجهان هئي. اها بنو قريظ جي قيدين ۾ شامل هئي. پاڻ سڳورن ﷺ کين پنهنجي لاءِ چونڊيو ۽ اها پاڻ سڳورن ﷺ جي ٻانهي ٿي رهيون. ڪن محققن جو خيال آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ کين ٻانهي ڪري نه رکيو هو، پر آزاد ڪري شادي ڪئي هئائون. پر ابن قير، پهريئن قول کي صحيح ليکي ٿو. ابو عبیده رحمة الله انهن ٻن ٻانهين کانسواءِ ٻه ٻيون ٻانهيون به ڄاڻايون آهن، جن مان هڪ جو نالو جميله رضي الله عنها پڌائجي ٿو، جيڪا ڪنهن جنگ ۾ جهلجي پئي هئي ۽ ٻي ٻانهي بيبي زينب بنت جحش رضي الله عنها، پاڻ سڳورن ﷺ کي تحفي ۾ ڏني وئي هئي. (1) هتي ٿورو پاڻ سڳورن ﷺ جي حياتي مبارڪ جي هڪ پاسي تي غور ڪرڻ جي گهرج آهي. پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي جوانيءَ جي طاقت وارا ۽ ڀلا ڏينهن يعني اٽڪل تيهه ورهيه رڳو هڪ گهرواريءَ سان گذارو ڪيو ۽ اها به اهڙي جيڪا پوڙهائپ جي ويجهو هئي. يعني پهرين بيبي خديجه رضي الله عنها ۽ پوءِ بيبي سوڌه رَضِيَ اللهُ عَنْهَا. اهڙيءَ حالت ۾ ڇا اهو سوچڻ روا ٿي سگهي ٿو ته ايڏو عرصو گذرڻ کانپوءِ جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ پوڙهائپ جي ويجهو پهتا ته پاڻ سڳورن ﷺ ۾ اوجھو جنسي قوت ايڏي وڏي وئي جو پاڻ سڳورن ﷺ کي لاڳيتو نو شاديون ڪرڻيون پيون! نه سائين نه! پاڻ سڳورن ﷺ جي زندگيءَ جي انهن ٻن حصن تي نظر وجهڻ کانپوءِ ڪوبه سنئون سبتو ماڻهو اهو خيال به دل ۾ نه آڻيندو. حقيقت اها آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ ايتريون گهڻيون شاديون ڪن ٻين ڪارڻن تحت ڪيون هيون، جيڪي عام شادين واري مقصد کان تمام گهڻي وڏي ۽ عظيم مقصد واريون هيون. ان جي وضاحت اها آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ، بيبي عائشه رضي الله عنها ۽ بيبي حفصه رضي الله عنها سان شاديون، حضرت ابوبڪر رَضِيَ اللهُ عَنْهُ ۽ عمر رَضِيَ اللهُ عَنْهُ سان مائٽي ڪرڻ لاءِ ڪيون هيون. اهڙيءَ طرح بيبي رقيه رضي الله عنها ۽ پوءِ بيبي ام ڪلثوم رضي الله عنها جون شاديون هڪٻئي پٺيان حضرت عثمان رَضِيَ اللهُ عَنْهُ سان ڪيائون ۽ حضرت علي رَضِيَ اللهُ عَنْهُ جو پرڻو

<sup>1</sup> - زاد المعاد (1/29).



پنهنجي جگر جي ٽڪري بيبي فاطمه رضي الله عنها سان ڪيائون. انهن سڀني جو مقصد اهو هو ته انهن چئني سڳورن سان پاڻ سڳورن ﷺ جا ناتا سگهارا ٿي وڃن. چوڻي اهي چارئي بزرگ ڏکين حالتن ۾ اسلام لاءِ پاڻ اڀرڻ جي ڪري مشهور ۽ معروف هئا.

عربن جي سماجي وڻهنوار ۾ نانيءَ جو وڏو احترام ڪيو ويندو هو. سندن نظر ۾ نانيءَ جو رشتو مختلف قبيلن ۾ ويجهڙائپ پيدا ڪرڻ جو اهم ذريعو هوندو هو ۽ نانيءَ سان وڙهڻ ۽ جنگ ڪرڻ ڏاڍي شرم جوڳي ڳالهه هئي. ان وڻهنوار کي نظر ۾ رکندي پاڻ سڳورن ﷺ ڪجهه شاديون ان مقصد سان ڪيون ته جيئن مختلف ماڻهن ۽ قبيلن ۾ دشمنيءَ جو ٽوڙ ڪيو وڃي ۽ انهن ۾ ڪيني ۽ ڪروڙ جي چٽنگ کي وسايو وڃي. تنهنڪري جڏهن ابوجهل ۽ خالد بن وليد جي قبيلي بني مخزوم منجهان بيبي ام سلمه رضي الله عنها سان پاڻ سڳورن ﷺ پرڻو ڪيو ته خالد بن وليد ۾ اها سختي نه رهي، جنهن جو مظاهرو پاڻ احد واري جنگ ۾ ڪري چڪو هو. بلڪ تورا ڏينهن پڄاڻان انهن پنهنجي مرضي ۽ خوشيءَ سان اسلام قبولي ورتو. اهڙيءَ طرح جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ ابوسفیان جي نياڻي بيبي ام حبيبہ رضي الله عنها سان پرڻيا ته پوءِ وري ابوسفیان، ساڻن مهاڏو نه اٽڪايو ۽ جڏهن بيبي جوڀريه ۽ بيبي صفيه رضي الله عنهن پاڻ سڳورن ﷺ جي زوجيت ۾ آيون ته بني المصطلق ۽ بني نضير قبيلن وڙهڻ ڇڏي ڏنو. انهن ٻنهي بيبين سڳورين رضي الله عنهن سان پرڻجڻ کانپوءِ تاريخ ۾ انهن قبيلن جي ڪنهن شورش يا جنگي ڪوشش جو سراغ نٿو ملي، پر بيبي جوڀريه رضي الله عنها پنهنجي قوم لاءِ سڀني عورتن کان وڌيڪ ڀلائي ثابت ٿي، چو ته جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ ساڻن پرڻيا ته اصحابي سڳورن رضي الله عنهن اهو چئي سندن هڪ سؤ گهراڻن کي آزاد ڪري ڇڏيو ته اهي پاڻ سڳورن ﷺ جا ساهراڻا آهن. سندن دلين تي ان احسان جو جيڪو اثر ٿيو هوندو، اهو پڌرو پيو آهي.

سڀ کان وڏي ڳالهه اها آهي ته پاڻ سڳورن ﷺ هڪ اهڙي ائسڊريل قوم کي سڌارڻ، ان جي اخلاقي تربيت ڪرڻ ۽ ان کي تهذيب ۽ تمدن سڀڪارڻ آيا هئا، جيڪا قوم تهذيب ۽ ثقافت کان، تمدن جي اصولن جي پابنديءَ کان ۽ معاشري جي اڏاوت ۽ سڌاري ۾ بهرو وٺڻ جي ذميدارين کان اڻ ڄاڻ هئي ۽ اسلامي معاشري جي اڏاوت جن اصولن جي آڌار تي ڪرڻ هئي، انهن ۾ مردن ۽ عورتن جي ميلاپ جي گنجائش نه هئي، تنهنڪري ان اصول جي پابندي ڪندي، عورتن جي سڌو تربيت نه ٿي ٿي سگهي، جڏهن ته انهن جي تعليم ۽ تربيت جي گهرج مردن کان گهٽ اهم نه هئي، پر ڪجهه وڌيڪ ئي ضروري هئي.

ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ وٽ هڪ ئي واٽ بچي هئي ته پاڻ مختلف عمر ۽ لياقت واريون اهڙيون عورتون چونڊين جيڪي هن مقصد لاءِ ڪافي هجن. پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ انهن جي تعليم ۽ تربيت ڪن. انهن جي اخلاقي تربيت ڪن، انهن کي شريعت جا حڪم سيکارين ۽ اسلامي تهذيب ۽ ثقافت سان سينگارين سنوارين ته جيئن اهي ڳوٺاڻين توڙي شهري، پوڙهيون توڙي جوان، هر طرح جي عورتن جي تربيت ڪري سگهن ۽ انهن کي شريعت جا مسئلا سيڪاري سگهن. اهڙيءَ طرح عورتن ۾ پرچار جو ڪم چڱيءَ طرح ٿي سگهي.

تنهن کانپوءِ اسين ڏسون ٿا ته پاڻ سڳورن ﷺ جي گهريلو زندگيءَ جو احوال امت تائين پهچائڻ جو سهارو انهن ئي مؤمنن جي مائرن جي سر تي آهي. انهن ۾ به خاص طور تي اهي ذڪر جي قابل آهن، جن وڏي ڄمار پاتي. جهڙوڪ بيبي عائش رضی اللہ عنہا، جن پاڻ سڳورن ﷺ جي اٿي ويني ۽ ڳالهه ٻول جو ڍنگ پليءَ پت بيان ڪيو آهي.

پاڻ سڳورن ﷺ جو هڪ نڪاح هڪ اهڙي جاهلاڻي رسم توڙڻ لاءِ به ٿيو، جيڪا عربن جي معاشري ۾ پشتان پشت هلندي پئي آئي ۽ ڏاڍي پڪي پختي ٿي چڪي هئي. اها رسم هئي متبني (پتيلو) ڪرڻ جي. متبني کي جاهلاڻي دور ۾ اهي ئي حق ۽ حرمتون حاصل هيون، جيڪي سڳي پت کي ملنديون آهن. اهو دستور ۽ اصول عرب سماج ۾ ايتري قدر پاڙون پختيون ڪري ويو هو جو ان کي متاثر سولو نه هو، پر اهو انهن بنيادن ۽ اصولن سان سختيءَ سان ٽڪر کائيندو هو، جن کي اسلام، نڪاح، طلاق، ميراث ۽ ٻين معاملن ۾ مقرر ڪيو هو. ان کانسواءِ جاهليت جو اهو اصول پنهنجي جهول ۾ اهڙا گهڙائي فساد ۽ فحاشيون به جهليو بيٺو هو، جن سان معاشري کي پاڪ ڪرڻ اسلام جي اولين مقصدن مان هو. تنهنڪري ان جاهلاڻي رسم جي توڙ لاءِ الله تعاليٰ، پاڻ سڳورن ﷺ جو پرڻو بيبي زينب بنت جحش رضي الله عنها سان ڪرڻ جو حڪم ڏنو. بيبي زينب رضي الله عنها، پهرين حضرت زيد رضي الله عنه سان پرڻيل هئي، جيڪو پاڻ سڳورن ﷺ جو پتيلو هو، پر جيئن ته ٻنهي ۾ نياھ ڪونه پئي ٿي سگهيو، ان ڪري حضرت زيد رضي الله عنه طلاق ڏيڻ جو ارادو ڪيو. هي اهڙو وقت هو، جڏهن سڀئي ڪافر، پاڻ سڳورن ﷺ جي خلاف سندرو ٻڌيو بيٺا هئا ۽ خندق واري جنگ لاءِ گڏ ٿي رهيا هئا. ٻئي پاسي الله تعاليٰ پاران پتيلي ڪرڻ واري رسم جي پڄاڻيءَ جا اشارا ملي چڪا هئا. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ کي اهو انديشو پيدا ٿيو ته جيڪڏهن انهن ئي حالتن ۾ حضرت زيد رضي الله عنه طلاق ڏني ۽ پاڻ سڳورن ﷺ کي شادي ڪرڻي پئي ته منافق ۽ مشرڪ ۽ يهودي ڳالهه مان ڳالھوڙو ڪري پاڻ سڳورن ﷺ خلاف بڙدڪ مچائي ڇڏيندا ۽ سادڙن مسلمانن کي اجاين

وسوسن ۾ قاسائي، انهن تي وڏا اثر وجهندا. ان ڪري پاڻ سڳورن ﷺ جي ڪوشش هئي ته زيد رضی اللہ عنہ تعلق نه ڏي ته جيئن اهڙي صورتحال پيدا ٿي نه ٿئي.

پر الله تعاليٰ کي اها ڳالهه نه وڻي ۽ ارشاد ٿيو ته:

﴿وَإِذْ تَقُولُ لِلَّذِي أَنْعَمَ اللَّهُ عَلَيْهِ وَأَنْعَمْتَ عَلَيْهِ أَمْسِكْ عَلَيْكَ زَوْجَكَ وَاتَّقِ اللَّهَ وَتُخْفِي فِي نَفْسِكَ مَا اللَّهُ مُبْدِيهِ وَتَخْشَى النَّاسَ وَاللَّهُ أَحَقُّ أَنْ تَخْشَاهُ...﴾ (37) (الاحزاب)

”۽ (اي پيغمبر! ياد ڪر) جڏهن تو انهيءَ شخص کي چيو ٿي جنهن تي الله فضل ڪيو آهي ۽ تو (ب) مٿس احسان ڪيو، ته پنهنجي زال کي پاڻ وٽ جهل (۽) طلاق نه ڏي ۽ الله کان ڊڄ. ۽ تو پنهنجيءَ دل ۾ اها (ڳالهه) لڪائي ٿي، جنهن کي پترو ڪندڙ الله آهي ۽ ماڻهن کان ڊڄين ٿي، جڏهن ته الله (هن ڳالهه جو) وڌيڪ حقدار آهي جو ان کان ڊڄين.“

نيٺ حضرت زيد رضی اللہ عنہ، بيبي زينب رضي الله عنها کي طلاق ڏئي ڇڏي. جڏهن عدت پوري ٿي ته انهن سان پاڻ سڳورن ﷺ جي پرڻجڻ جو حڪم نازل ٿيو. الله سائينءَ! پاڻ سڳورن ﷺ تي اهو نڪاح لازم ڪري ڇڏيو ۽ ڪا به گنجائش نه ڇڏي هئي. ان سلسلي ۾ هيءَ آيت لٿي ته:

﴿فَلَمَّا قَضَى زَيْدٌ مِنْهَا وَطَرًا زَوَّجْنَاكَهَا لِكَيْ لَا يَكُونَ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ حَرَجٌ فِي أَزْوَاجِ أَدْعِيَائِهِمْ إِذَا قَضَوْا مِنْهُنَّ وَطَرًا...﴾ (37) (الاحزاب)

”پوءِ جنهن مهل زيد (ان عورت) کان پنهنجي حاجت پوري ڪئي (يعني) طلاق ڏنائين، تنهن مهل ان کي توهان پرڻايوسون. (هن لاءِ) ته مؤمنن تي پنهنجن پٽيلن جي زالن پرڻجڻ ۾ ڪا اوڪائي نه رهي، جڏهن اهي انهن کان پنهنجي حاجت پوري ڪن (يعني طلاق ڏين).“

ان جو مقصد اهو هو ته پٽيلن بابت جاهلاڻي رسم جو عملي توڙ ڪيو وڃي، جهڙيءَ طرح هن آيت سان زباني توڙ ڪيو ويو هو ته:

﴿ادْعُوهُمْ لِآبَائِهِمْ هُوَ أَقْسَطُ عِنْدَ اللَّهِ...﴾ (5) (الاحزاب)

”کين سندن پيٽرن جا (پٽ ڪري) سڏيو. اهو الله وٽ بلڪل انصاف آهي.“

﴿مَا كَانَ مُحَمَّدٌ أَبَا أَحَدٍ مِنْ رِجَالِكُمْ وَلَكِنْ رَسُولَ اللَّهِ وَخَاتَمَ النَّبِيِّينَ...﴾ (40) (الاحزاب)

”محمد ﷺ توهان جي مردن مان ڪنهن هڪ جو به پيءُ نه آهي پر الله جو پيغمبر سڀني کان پڇا ڙيءَ ۾ اچڻ وارو آهي“

هتي اها ڳالهه يار رکڻ گهرجي ته جڏهن سماج ۾ ڪو رواج پاڙون پختيون ڪري وٺندو آهي ته رڳو ڳالهين سان ان کي مٽائڻ يا تبديل ڪرڻ گهڻو ڪري ممڪن نه رهندو آهي، پر جيڪو ماڻهو ان کي ختم ڪرڻ جي هام هڻندو، ان لاءِ ان جو مثال قائم ڪرڻ ضروري ٿيو پوي. حديبيه واري ٺاه

مهل مسلمانن جيڪي ڪجهه ڪيو، تنهن مان ان حقيقت جي پليءَ پٽ پروڙ پئجيو وڃي ٿي جو ڪتي ته مسلمان ائين پئي پاڻ سڳورن تان گهور ويا جو جڏهن عروه بن مسعود ثقفيءَ کين ڏٺو ته پاڻ سڳورن ﷺ لعاب دهن اڇلايو ٿي ته اهو به ڪنهن نه ڪنهن اصحابي سڳوري جهڙي ٿي ورتو ۽ جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ وضو ڪيو ٿي ته اصحابي سڳورن، پاڻ سڳورن ﷺ جي وضوءَ جي پاڻي وٺڻ لاءِ اهڙيءَ طرح جهپ ٿي هنيا جو لڳو ٿي ته پاڻ ۾ اٽڪي پوندا. اهي ئي اصحابي سڳورا وڻ جي هيٺان مرڻ ۽ پنٿي نه هڻڻ جي بيعت ڪرڻ لاءِ هڪٻئي کان اڳڙا ٿي رهيا هئا ۽ انهن ئي اصحابي سڳورن ۾ حضرت ابوبڪر رضي الله عنه ۽ عمر رضي الله عنه جهڙا جانثار به موجود هئا، پر پاڻ سڳورن ﷺ تان جان گهورڻ کي سعادت ۽ ڪاميابي سمجهڻ وارن انهن ئي اصحابي سڳورن کي جڏهن پاڻ سڳورن ﷺ ناه ڪرڻ کانپوءِ حڪم ڏنو ته اتي قربانيءَ جا جانور ڪهو ته اهي پاڻ سڳورن ﷺ جو چيو مڃڻ لاءِ ڀريا به ڪونه. ايتري قدر جو پاڻ سڳورا ﷺ فڪرمند ٿي ويا، پر جڏهن بيبي ام سلمه رضي الله عنها مشورو ڏنو ته پاڻ سڳورا ﷺ ماڻ ڪري اتي پنهنجو جانور ڪهن ۽ پاڻ سڳورن ﷺ ائين ئي ڪيو ته هر ڪو سندن پيروي ڪرڻ لاءِ ڊوڙي پيو ۽ سڀني صحابن وڏي چڙهي پنهنجا آندل جانور ڪنا. ان واقعي منجهان سمجهي سگهجي ٿو ته ڪنهن پڪي رواج کي مٽائڻ لاءِ ڳالهون ڪرڻ ۽ عمل ڪرڻ جي اثرن ۾ ڪيڏو وڏو فرق آهي. ان ڪري پٽيلو ڪرڻ جي جاهلاڻي رواج جو عملي توڙ ڪرڻ لاءِ پاڻ سڳورن ﷺ جو نڪاح، پاڻ سڳورن ﷺ جي پٽيلي حضرت زيد رضي الله عنه جي طلاق ڏنل زال سان ڪرايو ويو.

اهو نڪاح ٿيندي ئي منافقن، پاڻ سڳورن ﷺ جي خلاف وڏي پيماني تي اڃائي واپلا ڪرڻ شروع ڪري ڏني ۽ طرحين طرحين جون افواهون پکيڙيائون، جن جا ڪجهه اثر سادڙن مسلمانن تي ضرور پيا. هن واپلا کي سگهارو ڪرڻ لاءِ هڪ شرعي نقطو به منافقن جي هٿ لڳي ويو ته بيبي زينب رضي الله عنها، پاڻ سڳورن ﷺ جي پنجين گهرواري هئي، جڏهن ته مسلمان هڪ ئي وقت رڳو چار ئي زالون رکي سگهيا ٿي. ان کانسواءِ هن سڄي ٻڌڪ مچائڻ جو اصل نقطو اهو هو ته حضرت زيد رضي الله عنه، پاڻ سڳورن ﷺ جو فرزند سمجهيو ويندو هو ۽ پٽ جي زال سان پرڻجڻ کي بچڙاڻ سمجهيو ويندو هو. نيٺ الله تعاليٰ سورة احزاب ۾ هن اهم موضوع بابت ڪافي آيتون لائون ۽ اصحابي سڳورن کي ڄاڻ ڏني ويئي ته اسلام ۾ پٽيلي جي ڪابه حيثيت ناهي ۽ اهو ته الله تعاليٰ ڪن وڏن ۽ اهم مسئلن لاءِ پنهنجي رسول ﷺ کي خاص طور تي گهڻيون شاديون ڪرڻ جي ايتري چوٽ ڏني آهي، جيڪا ڪنهن ٻئي کي مليل نه آهي.

امهات المؤمنين ساڻ پاڻ سڳورن ﷺ جي هلت چلت ڏاڍي شريفائي، عزت واري، بلند معيار ۽ سهڻي سپاء واري هئي. بيبيون سڳوريون به شرف، قناعت، صبر، تواضع، خدمت ۽ گهريلو ذميداريون سنڀالڻ جو سهڻو مثال هيون. جيتوڻيڪ پاڻ سڳورا ﷺ سادي سودي ۽ ڏکي حياتي گذاريندا هئا، جنهن جي سهڻپ ٻين جي وس جي ڳالهه نه هئي. حضرت انس رضي الله عنه جو بيان آهي ته "منهنجي ڄاڻ ۾ نه آهي ته ڪو پاڻ سڳورن ﷺ ڪڏهن ميدي جي نرم ماني کاڌي هجي، ايستائين جو پاڻ وڃي الله سائينءَ سان مليا ۽ نه پاڻ سڳورن ﷺ پنهنجي اکين سان ڪڏهن ڀڳل پڪري ڏني. (1) بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته به به مهينا لنگهي ويندا هئا، تئين مهيني جو چنڊ نظر اچي ويندو هو ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي گهر ۾ چلهه نه ٻرندي هئي. حضرت عروه رضي الله عنه پڇيو ته پوءِ پاڻ سڳورا ﷺ ۽ توهان ڪائيندا ڇا هئا؟ فرمايائون ته بس به ڪاريون شيون. يعني ڪجيون ۽ پاڻي. (2) هن موضوع جون گهڻيون ئي حديثون ملن ٿيون.

انهن ڏکين حالتن هوندي به بيبيون سڳورين رضي الله عنهن کان ڪڏهن به ڪا سزا لائق حرڪت نه ٿي. رڳو هڪ ڀيرو ائين ٿيو ۽ اهو به ان ڪري جو انساني فطرت جي تقاضا ٿي ڪجهه اهڙي آهي ۽ ٻيو ته ان ئي بنياد تي (الله تعاليٰ کي) ڪجهه شرعي حڪم به لاهڻا هئا. تنهن کانپوءِ ان موقعي تي الله سائينءَ آيت تخبير لائي، جيڪا هيءَ آهي:

﴿يَا أَيُّهَا النَّبِيُّ قُلْ لَأُزَوِّجَكُ مِنْ كُنْتُمْ تُرِدْنَ الْحَيَاةَ الدُّنْيَا وَزَيَّنَّاهَا فَمَتَّعَيْنَ أُمَّتَكَ وَأَسْرَحْنَا سَرَاحًا جَمِيلًا (28) وَإِنْ كُنْتُمْ تُرِدْنَ اللَّهَ وَرَسُولَهُ وَالذَّارَ الْآخِرَةَ فَإِنَّ اللَّهَ أَعَدَّ لِلْمُحْسِنَاتِ مِنْكُنَّ أَجْرًا عَظِيمًا (29)﴾ (الاحزاب)

"اي پيغمبر! پنهنجن زالن کي چئو ته جيڪڏهن اوهان دنيا جي حياتي ۽ ان جو سينگار گهرنديون هجو ته اچو ته اوهان کي اجورو ڏيان ۽ چڱيءَ طرح ڇڏيان ۽ جيڪڏهن اوهين الله ۽ سندس پيغمبر ۽ آخرت جي گهر (يعني بهشت) کي گهرو ٿيون ته بيشڪ اوهان مان نيڪ بختن لاءِ الله وڏو اجر تيار ڪيو آهي."

هاڻي انهن بيبيون سڳورين رضي الله عنهن جي شرف ۽ عظمت جو اندازو ڪريو ته انهن سڀني الله ۽ ان جي رسول کي ترجيح ڏني ۽ انهن مان ڪا هڪ به دنيا ڏانهن مائل نه ٿي.

اهڙيءَ طرح پهچن جي وچ ۾ جيڪي معاملن روز روز پيا ٿيندا آهن، گهڻين بيبيون سڳورين جي هوندي به اهڙا واقعا قسمتي ڪي ٿيندا هئا ۽ اهي به بشریت جي تقاضا موجب. الله تعاليٰ ان تي

<sup>1</sup> - صحيح بخاري (956/2).

<sup>2</sup> - صحيح بخاري (956/2).

به چوه چندي ته پوءِ ٻيهر اهڙي قسم جي ڪابه حرڪت نه ٿي. سورة تحرير جي منڍ وارين پنجن آيتن ۾ ان جو ئي ذڪر ڪيل آهي.

پڇاڙيءَ ۾ اهو عرض ڪرڻ ضروري ٿيندو ته اسين هتي گهڻين گهر وارين جي موضوع تي بحث ڪرڻ ضروري نٿا سمجهو. چوٽه جيڪي ماڻهو هن موضوع تي سڀني کان وڌيڪ ڏي وٺ ڪن ٿا، يعني يورپ وارا ته اهي پاڻ جهڙي نموني جي زندگي پيا گهارين. جنهن تلخيءَ ۽ بدبختيءَ جو جام نوش پيا ڪن. جهڙيءَ طرح رسوائين ۽ ڏوهن ۾ ٻڌل آهن ۽ گهڻين زالن رکڻ جي اصول کان هٽي. جن مسئلن ۾ وڃيو قاسن ٿا، اجاين بحثن کان پاسو ڪرڻ لاءِ ڪافي دليل آهن. يورپ وارن جي نياڳ پري حياتي، گهڻين زالن جي اصول جي سڄي هجڻ جي سڀ کان وڏي شاهدي آهي ۽ نظر وارن لاءِ ان ۾ وڏي عبرت آهي.

\*\_\*\_\*

## اخلاق ۽ ڪردار

پاڻ سڳورا اهڙن سهڻن ڳڻن سان سينگاريل هئا، جن جو پوريءَ طرح بيان ڪرڻ وس کان ٻاهر آهي. انهن ڳڻن جي ڪارڻ دليون پاڻ سڳورن ﷺ جي تعظيم ۽ قدر ڪرڻ لاءِ پاڻمراڻو تيار ٿي وينديون هيون. جيئن پاڻ سڳورن ﷺ جي حفاظت ۽ احترام ۾ ماڻهن اهڙيون اهڙيون جانثاريون ڏيکاريون، جن جو مثال دنيا جي ڪنهن به شخصيت لاءِ نٿو ملي. پاڻ سڳورن ﷺ جا ساٿي ۽ صحبتي، گهور وڃڻ جي حد تائين پاڻ سڳورن ﷺ سان محبت ڪندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ کي رهڙا چڻ به انهن کي گوارا نه هو. ڀلي ان لاءِ سندن ڪنڌ ڇوڻ ڪييا وڃن. اهڙي محبت جو ڪارڻ اهو هو ته ماڻهن جن ڳالهين تي مست ٿي ويندا آهن، انهن ڳڻن جو ايترو گهڻو ڀاڱو پاڻ سڳورن ﷺ کي مليل هو. جيترو ڪنهن ٻئي کي ڪونه مليو. هيٺ اسين عاجزيءَ سان انهن روايتن جو نت ڏيون ٿا، جن جو تعلق پاڻ سڳورن ﷺ جي ڳڻن سان آهي.

**حليو مبارڪ:-** هجرت مهل پاڻ سڳورا ﷺ، ام معبد خزاعه رضي الله عنها جي تنبوءَ وٽان لنگهيا ته هن پاڻ سڳورن ﷺ جي وڃڻ کانپوءِ پنهنجي مڙس آڏو پاڻ سڳورن ﷺ جي حليي مبارڪ جا نقش هن طرح چٽيا. "چمڪندڙ رنگ، روشن چهرو، سهڻو ڊول، نڪو بيت نڪرڻ جو عيب، نه ئي گنجي هجڻ جي خامي، جهان ۾ حسن جي قائم ڪيل معيار مطابق بڻايل وجود، ڪجليدار اکيون، پنبڻ ڊگها، آواز گرو، ڊگهي ڳچي، ڀرون ڪارا، سنهڙا ۽ جاڙا، چمڪندڙ ڪارا وار، ماڻ ۾ هجن ته باوقار، ڳالهائين ته پرڪشش، پري کان (ڏسڻ ۾) سڀني کان سهڻا ۽ رعبدار، ويجهي کان سڀ کان خوبصورت ۽ منڙا، ڳالهائڻ ۾ منڙا، ڳالهه چئي ۽ سڌي سنئين. نه مختصر نه اجائي. انداز اهڙو چڻ موتي چٽي رهيا هجن. وڃولو قد، نه ڪو بندرو جو اکين کي نه وڻي ۽ نه ئي ڊگهو جيڪو اڻوڻندڙ لڳي. پن تارين جي وچ ۾ اهڙي تاريءَ جيئن آهن. جيڪا سڀ کان وڌيڪ تازي ۽ ڏسڻ ۾ سهڻي لڳي. سندن ساٿي سندن چوڌاري گهيرو ڪري سندن ڳالهين غور سان ٻڌندا آهن. ڪو حڪم ڏين ته هڪدم پورائي لاءِ اتي ڪڙا ٿا ٿين. عزت ڏين ۽ فرمانبرداري ڪرڻ جي لائق، نه تڪو ڳالهائڻ وارا ۽ نه ئي اجائي ڳالهه ڪرڻ وارا." (1)

حضرت علي رضه، پاڻ سڳورن ﷺ جي وصف بيان ڪندي فرمايو ته: "پاڻ سڳورا ﷺ نه ڪو اجايا ڊگها هئا نه ئي صفا بندرا. ماڻهن جي حساب سان وڃولي قد جا هئا. وار نه گهڻا گهنديدار هئا ۽ نه ئي صفا سڌا، پر پنهي جي وچ ۾ هئا. گل نه ڪو گهڻا گوشت سان ڀريل هئا، نه

1 - زاد المعاد (45/2)

ئي ڪاڏي ننڍڙي ۽ نه نرڙ وينل. منهن ڪنهن حد تائين گولائيءَ وارو هئڻ. رنگ اچو گلابي، اکيون ڳاڙهسريون، پنڀڻيون ڊگهيون، جوڙ ۽ ڪلهن جون هڏيون ويڪريون. ڇاتيءَ کان دن تائين وارن جي هلڪي پتي باقي جسر وارن کان خالي. هٿن ۽ پيرن جي آڱرين تي گوشت چڙهيل. هلڻ مهل اُچت پير کڻندا هئا ۽ ائين هلندا هئا ڇڻ لاهيءَ تان هلي رهيا هجن. ڪنهن پاسي ڏيان ڏيندا هئا ته سڄي جسر سان ان پاسي توجه فرمائيندا هئا. ٻنهي ڪلهن مبارڪن جي وچ ۾ نبوت جي مهر هئڻ. پاڻ سڳورا ﷺ سمورن نبين جي خاتم هئا. سڀني کان وڌيڪ هٿ جا کليل ۽ سڀني کان وڌيڪ جرئت وارا. سڀني کان وڌيڪ سچ ڳالهائيندڙ ۽ سڀني کان وڌيڪ واعدو پاريندڙ سڀني کان وڌيڪ نرم طبيعت ۽ سڀني کان وڌيڪ شريف ساٿي. جيڪو به پاڻ سڳورن ﷺ کي اوجھو ڏسندو هو، اهو گھٻرائجي ويندو هو. جيڪو ڄاڻ سڃاڻ وارو ملندو هئڻ، (تنهن کي) محبوب رکندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ جي وصف بيان ڪرڻ وارو اهو ئي چئي سگهي ٿو ته مون پاڻ سڳورن ﷺ کان پهرين ۽ پوءِ پاڻ سڳورن ﷺ جهڙو ٻيو ڪوبه نه ڏٺو. (1)

حضرت علي رضی اللہ عنہ جي هڪ روايت ۾ آهي ته "پاڻ سڳورن ﷺ جو سر مبارڪ وڏو هو، جوڙن جون هڏيون وڏيون ويڪريون هئڻ. ڇاتيءَ تي وارن جي ڊگهي پتي هئڻ. جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ هلندا هئا ته ٿورو جهڪي هلندا هئا، ڇڻ ڪنهن لاهيءَ تان پيا لهن." (2)

حضرت جابر بن سمره رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورن ﷺ جو منهن مبارڪ ڪشادو هو، اکيون ڳاڙهسريون ۽ کڙيون سنهڙيون." (3)

حضرت ابوالطفيل رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورا ﷺ ڳوري رنگ، ملاحظت سان ڀريل چهري ۽ وچولي قد ڪاڻ جا هئا." (4)

حضرت انس بن مالڪ رضی اللہ عنہ جو ارشاد آهي ته "پاڻ سڳورن ﷺ جون تريون ويڪريون هيون ۽ رنگ چمڪندڙ. نه صفا اچو نه ڪڻڪ رنگو. وفات تائين مٿي ۽ چهري جا ويهه وار به اڃا نه ٿيا هئڻ." (5) رڳو لوندڙي جي وارن ۾ اڃاڻ هئي ۽ ڪجهه مٿي جا وار به اڃا هئڻ." (6)

حضرت ابو جحيفه رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته "مون پاڻ سڳورن ﷺ جي چپ جي هيٺ سونهاري مبارڪ (عنقڻه) جي وارن ۾ اڃاڻ ڏٺي." (1)

1 - ابن هشام (401/1، 402)، ترمذي مع شرح الاحوذى (303/4).

2 - ابن هشام (401/1، 402)، ترمذي مع شرح الاحوذى (303/4).

3 - صحيح مسلم (258/2).

4 - صحيح مسلم (258/2).

5 - صحيح بخاري (502/1).

6 - صحيح بخاري (502/1) ۽ صحيح مسلم (259/2).



حضرت عبدالله بن بسر رضي الله عنه جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورن عليه السلام جي سونهاري مبارڪ عنق (عنقه) ۾ ڪجهه وار اڃا هئا." (2)

حضرت براء رضي الله عنه جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورن عليه السلام جو جسم مبارڪ وڃولو هو. ٻنهي ڪلهن ۾ وڃڻي وڃي هئي. وار ٻنهي ڪنن جي پايڙين تائين هئڻ، مون پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڳاڙهو وڳو پهريون ڏٺو. ڪڏهن به ڪا شيءِ پاڻ سڳورن عليه السلام کان وڌيڪ سهڻي نه ڏٺي." (3)

پهرين پاڻ سڳورا عليه السلام اهل ڪتاب جي موافقت پسند ڪندا هئا، ان ڪري وارن ۾ ڪڍي ڏيندا هئا ته سينڌ نه ڪيندا هئا، پر پوءِ سينڌ به ڪڍڻ شروع ڪيائون." (4)

حضرت براء رضي الله عنه چوي ٿو ته "پاڻ سڳورن عليه السلام جو چهرو مبارڪ سڀني کان وڌيڪ سهڻو هو ۽ پاڻ سڳورن عليه السلام جو اخلاق سڀني کان پلو هو." (5) ڪانئن پڇيو ويو ته "پاڻ سڳورن عليه السلام جو چهرو مبارڪ تلوار جهڙو هو؟" ورائيائون ته "نه، پر چنڊ جهڙو." هڪ روايت ۾ آهي ته پاڻ سڳورن عليه السلام جو چهرو مبارڪ گول هو." (6)

ربيع بنت معوذ رضي الله عنها ٻڌايو ته "جيڪڏهن توهان پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڏسو ها ته لڳندو ها ته توهان اڀرندڙ سج کي ڏٺو آهي." (7)

حضرت جابر بن سمرة رضي الله عنه جو بيان آهي ته "مون هڪ ڀيري چانڊوڪي رات ۾ پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڏٺو، پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڳاڙهو وڳو پيل هو. مون پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڏسي وري چنڊ کي ڏٺو، نيٺ (هن نتيجي تي پهتس ته پاڻ سڳورا عليه السلام چنڊ کان وڌيڪ سهڻا آهن." (8)

حضرت ابو هريرة رضي الله عنه جو بيان آهي ته "مون پاڻ سڳورن عليه السلام کان وڌيڪ سهڻي ڪابه شيءِ نه ڏني. ڄڻ ته سج، پاڻ سڳورن عليه السلام جي چهری مبارڪ تان اڀري لهي رهيو هجي. مون پاڻ سڳورن عليه السلام کان وڌيڪ ڪنهن کي به تيز رفتار نه ڏٺو. ڄڻ ته پاڻ سڳورن عليه السلام لاءِ ڌرتي ويڙهي

1 - صحيح بخاري (501/1، 502).

2 - صحيح بخاري (502/1).

3 - صحيح بخاري (502/1).

4 - صحيح بخاري (503/1).

5 - صحيح بخاري (502/1) صحيح مسلم (258/2).

6 - صحيح بخاري (502/1) صحيح مسلم (259/2).

7 - دارمي - مشکوة (517/2).

8 - ترمذي في الشمائل (ص: 2) دارمي، مشکوة (518/2).

پئي وڃي. اسين ته پنهنجو پاڻ کي (هائڻي هائڻي) ٽڪائي ڇڏيندا هئاسين پر پاڻ سڳورا ﷺ بي اونا هوندا هئا." (1)

حضرت كعب بن مالڪ رضی اللہ عنہ جو بيان آهي ته "جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ خوش هوندا هئا ته چهرو مبارڪ ائين پيو جرڪندو هئن، ڇڻ ڇنڊ جو ڪو ٽڪرو هجي." (2)  
هڪ ڀيري پاڻ سڳورا ﷺ، بيبي عائشه رضي الله عنها وٽ ويٺا هئا. پگهر نڪتو ته چهري جا نقش ڇمڪڻ لڳا. اها حالت ڏسي بيبي عائشه رضي الله عنها، ابو كبير هذليءَ جو هي شعر پڙهيو.

واذا نظرت الى أسرة وجهه برقت كبرق العارض المتهلل (3)  
"جيڪڏهن سندن چهري جا نقش ڏسو ته اهي ائين ڇمڪندا آهن، ڇڻ روشن ڪڪر ڇمڪي رهيو هجي."

حضرت ابوبڪر رضی اللہ عنہ، پاڻ سڳورن ﷺ کي ڏسي هيءُ شعر پڙهندو هو:  
أمين مصطفى بالخير يدعو كضوء البدر زايله الظلام (4)  
پاڻ سڳورا ﷺ امين، چونڊيل ۽ پهتل آهن، خير جي دعوت ڏين ٿا، ڇڻ چوڏهينءَ جي ڇنڊ جي روشني آهن، جنهن سان اوندھ لڪ لڪوڻي پئي ڪيڏي.

حضرت عمر رضی اللہ عنہ، زهير جو هيءُ شعر پڙهندو هو، جيڪو هرم بن سنان لاءِ چيو ويو هو ته:  
لو كنت من شيء سوى البشر كنت المضيء لليله البدر  
"جيڪڏهن پاڻ ﷺ، بشر کان سواءِ ڪنهن شيءِ مان هجن ها ته پاڻ ﷺ ئي چوڏهينءَ جي رات کي روشن ڪن ها."

پوءِ فرمائيندا هئا ته پاڻ سڳورا ﷺ اهڙائي هئا. (5)  
جڏهن پاڻ سڳورا ﷺ ڪاوڙ ۾ هوندا هئا ته چهرو مبارڪ ڳاڙهو ٿي ويندو هئن. ڇڻ ته ٻنهي ڳلن تي ڏاڙهونءَ جا داڻا نيوڙيا ويا هجن. (6)

1 - جامع ترمذي مع شرح تحفة الاحوذى (306/4) مشکوة (518/2).

2 - صحيح بخاري (502/1).

3 - مخلص تهذيب تاريخ دمشق (325/1)، رحمة للعالمين (172/2).

4 - خلاصة السيرة (ص: 20).

5 - خلاصة السيرة (ص: 20).

6 - مشکوة (22/1) - ترمذي (35/2).

حضرت جابر بن سمره رضي الله عنه جو بيان آهي ته " پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جون ٽنگون سنهڙيون هيون. پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم کلڻ مهل رڳو مرڪندا هئا. (اڪيون ڪجليدار هئن) توهان ڏسو ها ته چڻو ها ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم سرمو پاتو آهي، جڏهن ته سرمو پاتل نه هوندو هئن." (1)

حضرت ابن عباس رضي الله عنه جو ارشاد آهي ته "پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي اڳين ٻنهي ڏندن مبارڪن ۾ وڻي هئي. جڏهن پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ڳالهائيندا هئا ته انهن ڏندن جي وچ مان نور وانگر نڪرندو محسوس ٿيندو هو." (2)

ڳچي مبارڪ چڻ ته ڪنهن چاندي چڙهيل گڏي جي ڳچي هئن. پنبڻ ڊگها، سونهاري گهاٽي، نرڙ ويڪري، ڀرون جاڙا، نڪ اوچو، ڳلن ۾ گهٽ گوشت ڀريل، ڇاتيءَ کان ڏن تائين وارن جي پٽي ۽ ان کانسواءِ ڇاتيءَ تي ڪٿي به ڪوبه وار نه. جيئن ته ٻانهن ۽ ڪلهن تي وار هئن. بيت ۽ ڇاتي سڌي ۽ ويڪري، ڪرايون وڏيون وڏيون، تري ويڪري، قد نڪتل. عضوا وڏا وڏا، جڏهن هلندا هئا ته اڇت هلندا هئا، ٿورو جهڪي هلندا هئا ۽ آرام آرام سان هلندا هئا." (3)

حضرت انس رضي الله عنه چوندو هو ته "مون ڪوبه حرير يا ديبا نه چهيو، جيڪو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي تريءَ کان وڌيڪ نرم هجي ۽ نه ڪڏهن ڪا عنبر يا مشڪ يا ڪا اهڙي خوشبوءِ سونگهي، جيڪا پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي خوشبوءِ کان بهتر هجي." (4)

حضرت ابو جحيفه رضي الله عنه جو بيان آهي ته "مون پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو هٿ مبارڪ پنهنجي منهن تي رکيو ته اهو برف کان وڌيڪ ٿڌو ۽ مشڪ کان وڌيڪ سڙهو هو." (5)

حضرت جابر بن سمره رضي الله عنه (جيڪو ٻار هو) ٻڌائي ٿو ته "پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم، منهنجي ڳل تي هٿ ڦيريو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي هٿ ۾ اهڙي تڏاڻ ۽ اهڙي خوشبوءِ محسوس ڪيم، چڻ پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ان کي عطر فروش جي عطردان مان ڪڍي آيا هجن." (6)

حضرت انس رضي الله عنه جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جو پگهر موتيءَ وانگر هوندو هو." ۽ بيبي ام سليم رضي الله عنها جو بيان آهي ته "اهو پگهر ئي سڀ کان سٺي خوشبوءِ هوندو هو." (1)

1 - جامع ترمذي مع شرح تحفة الاحوذى (4/306).

2 - دارمي مشكوة (2/518).

3 - خلاصة السيرة (ص: 19، 20).

4 - صحيح بخاري (1/503) ۽ صحيح مسلم (2/257).

5 - صحيح بخاري (1/502).

6 - صحيح مسلم (2/256).

حضرت جابر رضي الله عنه جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم ڪنهن وات تان ويندا هئا ۽ ڪانئن پوءِ ڪو اتان لنگهندو هو ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي وجود يا پگهر جي خوشبوءِ محسوس ڪري ڄاڻي وٺندو هو ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم هتان لنگهي ويا آهن." (2)

پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي ٻنهي ڪلهن مبارڪن جي وچ ۾ نبوت جي مهر هئي، جيڪا ڪبوتر جي بيضي جهڙي ۽ (رنگ ۾) جسم مبارڪ جهڙي ئي هئي. اها، ڪاٻي ڪلهي جي نرم هڏيءَ وٽ هئي ان تي حسي وانگر ترن جو ميڙ هو." (3)

**نفس جي ڪمالي ۽ سهڻا اخلاق:-** پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم فصاحت ۽ بلاغت ۾ ممتاز هئا. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي طبيعت جي رواني، لفظن جو نڪار، فقرن جي جزالت، معنيٰ جي صحت ۽ تڪلف کان دوري سان گڏوگڏ جامع ڪلمات سان نوازيو ويو هو. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي اٺلپ ڏاهپ ۽ عربستان جي سمورين ٻولين (لهجن) جو علم ڏنو ويو هو. تنهنڪري پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم هر قبيلي سان سندس ٻوليءَ ۽ محاورن ۾ ڳالهائيندا هئا. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ۾ اعرابين وانگر ڳالهائڻ جي سگهه ۽ شهرين جهڙي شائستگي هئي. وحيءَ تي ٻڌل الله جي تائيد اڃا ڌار هئن.

بردباري، سهپ، وس هوندي به درگذر ڪرڻ ۽ مشڪلن تي صبر ڪرڻ اهڙا ڳڻ هئا، جن سان الله سائينءَ پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي تربيت ڪئي. هر حليم ۽ بردبار کان به ڪانه ڪا پل چڪ يا زباني بي احتياطي ٿيو وڃي. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم جي ڪردار جي خوشي اها هئي جو پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم تي دشمنن پاران تڪليفون ۽ بدمعاشن جون ڏاڍيون جيترو وڌنديون ويون، پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم اوترو ئي صبر ۽ سهپ ۾ وڌندا ويا. بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم کي جڏهن به بن ڪمن مان چونڊ ڪرڻي پوندي هئي ته پاڻ اهو ڪم ڪندا هئا، جيڪو سولو هوندو هو، جيستائين ان ۾ گناهه جو ڪم نه هوندو هو. جيڪڏهن گناهه جو ڪم هوندو هو ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم سڀني کان وڌيڪ ان کان پري پڇندا هئا. پاڻ سڳورن صلى الله عليه وسلم ڪڏهن به ڪنهن کان ذاتي بدلو نه ورتو! جيڪڏهن الله جي حڪمن جي نافرمانِي ڪئي ويندي هئي ته پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم الله جي واسطي پلاند ضرور ڪندا هئا. (4)

پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم سڀني کان وڌ ڪاوڙجڻ کان پاسو ڪندا هئا ۽ سڀني کان جلدي راضي به ٿي ويندا هئا. ٻاجهه ڪرڻ جو ڳڻ اهڙو هئن، جنهن جو ڪاٿو ئي نشو ڪري سگهجي. پاڻ سڳورا صلى الله عليه وسلم

1 - صحيح مسلم (2/256).

2 - دارمي، مشڪوة (2/517).

3 - صحيح مسلم (2/259، 260).

4 - صحيح بخاري (1/503).

ان ماڻهوءَ وانگر بخشش ۽ نوازشون ڪندا هئا، جنهن کي کڻي وڃڻ جو اونو ئي نه هجي. ابن عباس رضي الله عنه جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورن عليه السلام جي سخاوت جو درياھ رمضان ۾ ان مهل جوش ۾ اچي ويندو هو. جڏهن جبرئيل عليه السلام پاڻ سڳورن عليه السلام سان ملاقات ڪندو هو ۽ حضرت جبرئيل عليه السلام، پاڻ سڳورن عليه السلام سان رمضان ۾ هر رات ملاقات ڪندو هو ۽ قرآن جو دور ڪرائيندو هو. بس پاڻ سڳورا عليه السلام خير جي سخاوت ۾ (رحمت جي خزانن جي پالوت ڪري موڪليا ويا آهن) سڀني کان اڳرا هوندا هئا." (1) حضرت جابر رضي الله عنه جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورن عليه السلام کان ڪا شيءِ گهري وئي هجي ۽ پاڻ سڳورن "نه" ڪئي هجي (اهو ممڪن ئي ڪونهي)." (2)

شجاعت، بهادري ۽ دليريءَ ۾ به پاڻ سڳورا عليه السلام پنهنجو مٿ پاڻ هئا. پاڻ سڳورا عليه السلام سڀني کان دلير هئا. ڏاڍن ڏکين ۽ سخت موقعن تي، جڏهن چڱا چڱا جوڌا جوان بيهي نه سگهيا، تڏهن پاڻ سڳورا عليه السلام پنهنجي جڳهه تي اٿل رهيا ۽ پٺيان هٿن بدران اڳتي وڌندا ويا ۽ ٿورو به نه هٻڪيا. وڏا وڏا بهادر به ڪڏهن پنٿي هٽندا آهن، پر پاڻ سڳورن عليه السلام سان اهڙي ڳالهه ڪڏهن به نه ٿي. حضرت علي رضي الله عنه جو بيان آهي ته "جڏهن لڙائي زور وٺندي هئي ۽ جنگ جا شعلا پڙڪي اٿندا هئا ته اسين پاڻ سڳورن عليه السلام جي آڌڪ وٺندا هئاسين. پاڻ سڳورن عليه السلام کان وڌيڪ ڪير به دشمنن جي ويجهو نه هوندو هو." (3)

حضرت انس رضي الله عنه جو بيان آهي ته هڪ رات مديني وارن کي خطرو محسوس ٿيو. ماڻهو گوڙ ڏانهن ڊوڙيا ته وات تي پاڻ سڳورا عليه السلام موٽندي ملين. پاڻ سڳورا عليه السلام ماڻهن کان اڳيئي آواز ڏانهن پهچي (خطري جي جاءِ جو معائنو ڪري) چڪا هئا. ان مهل پاڻ سڳورا عليه السلام، ابو طلحہ رضي الله عنه جي اگهاڙي پٺ واري گهوڙي تي چڙهيل هئا. تلوار لٽڪي رهي هين ۽ فرمائي رهيا هئا ته ڊڄو نه، ڊڄو نه. (4) (ڪوبه خطرو ڪونهي)

پاڻ سڳورا عليه السلام سڀ کان وڌيڪ لڄارا ۽ نظرون جهڪائي هلڻ وارا هئا. ابو سعيد خدري رضي الله عنه جو بيان آهي ته پاڻ سڳورا عليه السلام پرديدار ڪناري عورت کان به وڌيڪ لڄارا هئا. جڏهن پاڻ سڳورن عليه السلام کي ڪا ڳالهه نه وٺندي هئي ته منهن مان ئي خبر پئجي ويندي هئي. (5) پاڻ سڳورا عليه السلام ڪنهن ۾ به گهوري نه نهاريندا هئا. نظرون هيٺ رکندا هئا ۽ آسمان کان وڌيڪ زمين

1 - صحيح بخاري (502/1).

2 - صحيح بخاري (502/1).

3 - الشفاء، قاضي عياض (89/1).

4 - صحيح مسلم (252/2) - صحيح بخاري (407/1).

5 - صحيح بخاري (504/1).

ڏانهن نظرون وڌيڪ رکندا هئا. عام طور تي جهڪيل نظرن سان ئي ( ڪنهن کي تڪيندا هئا. حيا جو عالم اهو هو جو ڪنهن کي منهن تي ڪونه توڪيندا هئا ۽ ڪنهن جي ڪا اڻوڻندڙ ڳالهه پاڻ سڳورن ﷺ تائين پهچندي هئي ته نالو وٺي ان جو ذڪر نه ڪندا هئا، پر هيئن فرمائيندا هئا ته ڪي ماڻهو هيئن پيا ڪن. فرزدق جو هيءُ شعر پاڻ سڳورن ﷺ تي ٺهڪي ايندو هو ته:

يغضى حياء ويغضى من مهابته فلايكلّم الا حين يتيسم

" پاڻ ﷺ حيا جي ڪري نظرون هيٺ رکندا هئا ۽ سندن هيبت ڪري نظرون هيٺ رکيون وينديون هيون. تنهنڪري پاڻ سڳورن ﷺ سان اوڏي مهل ئي ڳالهه ٻول ڪئي ويندي آهي، جيڏي مهل پاڻ سڳورا مسڪرائي رهيا هوندا آهن."

پاڻ سڳورا ﷺ سڀني کان وڌيڪ عادل، پاڪدامن، سچار ۽ وڏا امانتدار هئا. اها ڳالهه دوست ۽ دشمن سڀ مڃيندا هئا. نبوت کان اڳ پاڻ سڳورن ﷺ کي امين چيو ويندو هو ۽ جاهليت واري دور ۾ به پاڻ سڳورن ﷺ وٽ فيصلن لاءِ مقدا آندا ويندا هئا. جامع ترمذي ۾ حضرت علي رضيه الله عنه کان روايت آهي ته هڪ پيري ابوجهل، پاڻ سڳورن ﷺ کي چيو ته "اسين اوهان کي ڪوڙو ڪونه پيا چئون، پر جيڪي ڪجهه اوهان کڻي آيا آهيو، ان کان انڪار پيا ڪريون." ان تي الله تعاليٰ هيءُ آيت لائي:

﴿فَإِنَّهُمْ لَا يُكَذِّبُونَكَ وَلَكِنَّ الظَّالِمِينَ بِآيَاتِ اللَّهِ يَجْحَدُونَ﴾ (1) (33) ﴿(الانعام)

"پوءِ اهي نه رڳو توکي ڪوڙو چوندا آهن پر ظالم الله جي آيتن جو (پڻ) انڪار ڪندا آهن."

هرقل، ابوسفيان کان پڇيو ته ڇا انهن (نبي ﷺ) جيڪا ڳالهه چئي آهي، ان جي چوڻ کان اڳ ماڻهو کين ڪوڙو ليڪيندا هئا؟ تنهن تي ابوسفيان ورائيو ته: "نه."

پاڻ سڳورا ﷺ سڀ کان وڌيڪ متواضع ۽ هٿ کان پري پڇندڙ هئا. جيئن بادشاهن جا نوڪر چاڪر بيٺل هوندا هئا، تيئن بيٺل کان پاڻ سڳورا ﷺ، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم کي جهليندا هئا. ڏتڙيلن جي پر گهور لهندا هئا، فقيرن سان گڏ اٿندا ويهندا هئا، غلامن جي دعوت قبوليندا هئا، اصحابي سڳورن رضي الله عنهم ۾ بنا ڪنهن مت پييد جي عام ماڻهن وانگر ئي ويهندا هئا. بيبي عائشه رضي الله عنها جو بيان آهي ته پنهنجي جتيءَ کي پاڻ ٽانڪو هڻندا هئا ۽ پنهنجا ڪپڙا پاڻ سبندا هئا ۽ پنهنجن هٿن سان اهڙا ڪم ڪندا هئا، جهڙا اوهان مان ڪو ماڻهو پنهنجي گهر ۾ ڪندو آهي. پاڻ سڳورا ﷺ به ٻين وانگر انسان هئا. پنهنجا ڪپڙا پاڻ ئي ڏسندا

هئا (ته مهاڻ انهن ۾ ڪا جون نه هجي). پنهنجي ٻڪري پاڻ ڏهندا هئا ۽ پنهنجا ڪم پاڻ ڪندا هئا. (1)

پاڻ سڳورا ﷺ سڀ کان وڌيڪ واعدو پاريندڙ هئا ۽ متن مائتن سان مهربانيون ڪندا هئا. ماڻهن سان شفقت ۽ باجهه سان ملندا هئا. رهڻ ڪرڻ ۽ ادب ۾ سڀني کان ڀلا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ جو اخلاق سڀني کان ڀلو هو. بداخلاقيءَ کان سڀني کان وڌيڪ نفرت ڪندا هئا ۽ پري پڇندا هئا. نه ڪو فحش ڳالهائڻ جي عادت هئڻ ۽ نه ئي ڪچهريءَ ۾ فحش ڳالهائيندا هئا. نه لعنتون وجهندا هئا، نه ئي بازار ۾ وڏي سر ڳالهائيندا هئا. نه ڪو وري برائيءَ جو بدلو برو ڏيندا هئا، پر معافي ۽ درگزر کان ڪم وٺندا هئا. ڪنهن کي پنهنجي پٺيان هلڻ نه ڏيندا هئا ۽ نه ئي ڪاڻڻ پيئڻ ۾ پنهنجن ٻانهن ۽ ٻانهين تي فوقيت اختيار ڪندا هئا. پنهنجي خدمتگار جو ڪم پاڻ ئي ڪندا هئا (۽ ان کي) ڪڏهن آف به نه چوندا هئا. نه ئي ان تي ڪو ڪم ڪرڻ يا نه ڪرڻ جي ڪري ڏمربا هئا. ڏترييلن سان محبت ڪندا هئا، انهن سان گڏ اٿندا ويهندا هئا ۽ انهن جي جنازن ۾ ويندا هئا. ڪنهن فقير کي ان جي فقر جي ڪارڻ گهٽ نه سمجهندا هئا. هڪ ڀيري پاڻ سڳورا ﷺ سفر ۾ هئا هڪ ٻڪري ڪهڻ ۽ پڇاڻڻ جو رٿيو ويو. هڪ جڻي چيو ته: ڪهڻ منهنجو ڪم. ٻئي چيو ته ڪل لاهڻ منهنجو ڪم. ٽئي چيو ته رڌڻ منهنجو ڪم. پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته ٻارڻ لاءِ ڪاٺيون ڪري اچڻ منهنجو ڪم. اصحابي سڳورن چيو ته: "اسين توهان جو ڪم ڪري وٺنداسين." پاڻ سڳورن ﷺ فرمايو ته "آئون ڄاڻان ٿو ته توهان منهنجو ڪم ڪري ڇڏيندا، پر مون کي اهو نٿو وڻي ته توهان تي فوقيت حاصل ڪريان. چو ته الله سائينءَ کي پنهنجي ٻانهي جي اها حرڪت نٿي وڻي ته پنهنجو پاڻ کي پنهنجن سائين ۾ وڏو سمجهيو وڃي." ان کان پوءِ پاڻ اتي ڪاٺيون گڏ ڪيائون. (2)

اچو ته ٿورو هند بن ابي هاله رضي الله عنه جي زباني پاڻ سڳورن ﷺ جا ڳڻ ٻڌون. هند پنهنجي هڪ روايت ۾ ٻڌايو آهي ته "پاڻ سڳورا ﷺ سدائين ڏکين حالتن ۾ گذاريندا هئا. سدائين سوچيندا رهندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ لاءِ سڪ نه هو. اجايو ڪو نه ڳالهائيندا هئا. دير تائين ماڻ ۾ ويٺا هوندا هئا. ڳالهه ڪلي ۽ چٽي ڪندا هئا. يعني چين ۾ نه ڳالهائيندا هئا. ٿورن لفظن ۾ سڄي ۽ هڪ ٽڪ ڳالهه ڪندا هئا، جنهن ۾ نه اجائي ڊيگهه هوندي هئي ۽ نه ڪا گهٽتائي. نرم مزاج هئا ۽ سخت گير نه هئا. نعمت معمولي هوندي هئي ته به ان جو قدر ڪندا هئا. ڪنهن به شيءِ مان عيب نه ڪيندا هئا. ڪاڻڻ جي شيءِ جي نه برائي ڪندا هئا ۽ نه تعريف. حق ڳالهه کي ڪو نقصان پهچندو هو

1 - مشڪوة (2/520).

2 - خلاصة السيرة (ص:22).

ته جيستائين بدلو نه وندا هئا، تيستائين پاڻ سڳورن ﷺ جي ڪاوڙ کي روڪڻ ممڪن نه هوندو هو. جيئن ته وڏي دل جا مالڪ هئا. پنهنجي ذات لاءِ نه غصو ڪندا هئا ۽ نه ئي بدلو وندا هئا. جڏهن پاڻ اشارو فرمائيندا هئا ته پوري هٿ سان اشارو فرمائيندا هئا ۽ هٿ پلٽو ڏئي حيرت جو اظهار ڪندا هئا ۽ جڏهن ڪاوڙيا هئا ته چهرو مبارڪ ٻئي طرف ڪري ڇڏيندا هئا ۽ جڏهن خوش هوندا هئا ته نگاهون هيٺ ڪري ڇڏيندا هئا. پاڻ سڳورن جو ڪلڻ اڪثر مسڪرائڻ تائين محدود هوندي هئي. مسڪرائيندا هئا ته ڏند مبارڪ برف جي ٻڙن وانگر ڇمڪندا هئا.

اجاين ڳالهين کان پاڻ جهليندا هئا. دوستن ۾ ٺاه ڪرائيندا هئا، توڙيندا ڪونه هئا. هر قوم جي معزز ماڻهوءَ کي عزت ڏيندا هئا ۽ ان کي ئي قوم جو والي بڻائيندا هئا. ماڻهن (جي ڏنگاين) کان محتاط رهندا هئا ۽ انهن کان پاڻ بچائيندا هئا، پر ان جي لاءِ ڪنهن جي به آڏو اٿوڻ ظاهر نه فرمائيندا هئا.

پنهنجن ساٿين جي سار سنڀال لهندا رهندا هئا ۽ ٻين ماڻهن جا حال احوال پيا پڇائيندا هئا. چڱي شيءِ کي ساراهيندا هئا ۽ بري شيءِ کي نديندا هئا. معتدل (وچترا) هئا، افراط ۽ تفريط کان پري هئا. غافل نه ٿيندا هئا ته متان ماڻهو به نه غافل ٿي وڃن. هر ڳالهه لاءِ سدائين تيار رهندا هئا. حق کان ڪنٽار نه ڪندا هئا، نه ئي حق کان تجاوز ڪري ناحق ڏانهن ويندا هئا. جيڪي ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ جي ويجهه هئا، اهي سڀني کان ڀلا هئا. انهن ۾ به پاڻ سڳورن ﷺ جي نظر ۾ ڀلاو اهو هو، جيڪو سڀني کان وڌيڪ خير خواه هجي ۽ سڀني کان وڌيڪ قدر ان ساٿيءَ جو ڪندا هئا، جيڪو سڀني کان وڌيڪ غمگسار ۽ مددگار هجي.

پاڻ سڳورا ﷺ اٿندي ويهندي الله جو ذڪر ڪندا رهندا هئا. جڳهه مقرر ڪونه ڪندا هئا. يعني پنهنجي لاءِ ڪا الڳ جاءِ مقرر نه ڪندا هئا ۽ جڏهن قوم وٽ پهچندا هئا ته ڪچهريءَ ۾ جتي جڳهه ملين، اتي ويهي رهندا هئا ۽ اهڙو حڪم به ڏيندا هئا. سڀني ويندن ڏانهن هڪ جيترو ڌيان ڏيندا هئا ۽ ڪير به ائين محسوس ڪونه ڪندو هو ته پاڻ سڳورا ﷺ ڪنهن ٻئي کي ڪانس وڌيڪ عزت ڏين ٿا. ڪير به پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ڪنهن ڪم سان ويهندو يا بيهندو هو ته پاڻ سڳورا ﷺ ان سان ايستائين صبر سان وينا هوندا هئا، جيستائين هو پاڻ نه اٿي وڃي. ڪير ڪا شيءِ گهرندو هئن ته ان کي اها شيءِ ڏيڻ يا ڪا چڱي ڳالهه ٻڌائي مطمئن ڪرڻ کانسواءِ نه ڇڏيندا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ سڀني سان ميٺ محبت سان پيش ايندا هئا. ايتريقدر جو هر ڪنهن لاءِ پيءُ جو درجو رکندا هئا. سڀني پاڻ سڳورن ﷺ آڏو هڪ جهڙو درجو رکندا هئا. ڪنهن کي ڪا فضيلت هئي ته رڳو پرهيزگاريءَ جي ڪري. پاڻ سڳورن ﷺ جي ڪچهري حلم ۽ حيا، صبر ۽ امانت واري



ڪچهري هوندي هئي. ان ۾ ڪير ڏاڍيان نه ڳالهائيندو هو ۽ نه گار گند ٿيندي هئي. ماڻهو پرهيزگاريءَ جي ڪري هڪٻئي سان محبت ۽ همدردي رکندا هئا. وڏن جو ادب ڪندا هئا ۽ ننڍن سان پيار. گهرجائن جي گهرج پوري ڪندا هئا ۽ اڻواقف کي پنهنجائپ ڏيندا هئا.

پاڻ سڳورن ﷺ جو چهرو مبارڪ سدائين بهڪندو رهندو هو. آساني ۽ نرميءَ کي پسند ڪندڙ هئا. سخت گير ۽ واسطا توڙيندڙ نه هئا. نه ڏاڍيان ڳالهائيندا هئا ۽ نه گار گند ڪندا هئا. نه اجايو ڏمريا هئا نه ڪنهنجي گهڻي ساراهه ڪندا هئا. جنهن شيءِ جي خواهش نه هوندي هئڻ. ان کان پاسو ڪندا هئا! پاڻ سڳورا ﷺ مايوس نه ٿيندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ تن ڳالهين کان پنهنجي نفس کي جهلي رکيو هو. هڪ رياءَ کان پيو ڪنهن شيءِ جي گهڻائيءَ کان ۽ ٿيو اجائي ڳالهه کان. تن ڳالهين کان ماڻهن کي محفوظ رکيائون. هڪ ڪنهن تي تنقيد نه ڪندا هئا، پيو ته ڪنهن کي شرمندو نه ڪندا هئا ۽ ٿيو ته ڪنهن جا عيب ظاهر نه ڪندا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ اها ئي ڳالهه زبان تي آڻيندا هئا، جنهن مان ثواب جي اميد هجي. جڏهن پاڻ ڳالهائيندا هئا ته وينل ائين ڪندڙ هيٺ ڪري ويهندا هئا، ڇڻ مٿن تي پڪي ويٺا هجن. جڏهن پاڻ ﷺ ماڻ ڪندا هئا ته پوءِ ماڻهو ڳالهه بول ڪندا هئا. ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ويهي هيڏانهن هوڏانهن جون ڳالهيون نه ڪندا هئا. پاڻ سڳورن ﷺ وٽ ويهي ڪو هڪڙو ڇڻو ڳالهائيندو هو ته ٻيا ماڻ ڪري ٻڌندا هئا، ايستائين جو هو پنهنجي ڳالهه پوري ڪري وٺي. جنهن ڳالهه تي سڀئي ڪلندا هئا ته ان تي پاڻ سڳورا ﷺ به ڪلندا هئا ۽ جنهن ڳالهه تي سڀ اچرج کائيندا هئا ته ان تي پاڻ سڳورا ﷺ به حيرت جو اظهار ڪندا هئا. ڪو اڻواقف تڪو ڳالهائيندو هئڻ ته پاڻ سڳورا ﷺ صبر کان ڪم وٺندا هئا ۽ فرمائيندا هئا ته "جڏهن توهان ڪنهن گهرجائوءَ کي ڏسو ته اهو ڪا گهر پيو ڪري ته ان کي گهربل سامان ڏئي ڇڏيو." پاڻ سڳورا ﷺ احسان جو بدلو ڏيندڙ ڪانسواءِ ڪنهن کان به تعريف جا طالب نه ٿيندا هئا. (1)

خارج بن زيد رضه جو بيان آهي ته "پاڻ سڳورا ﷺ پنهنجي ڪچهريءَ ۾ سڀني کان وڌيڪ باوقار هوندا هئا. پنهنجا پير سڌا ڪونه ڪندا هئا، گهڻو ڪري ماڻ ڪري ويٺا هوندا هئا. اجايو ڪونه ڳالهائيندا هئا. جيڪو ماڻهو اجائي ڳالهه ڪندو هو، ان کان منهن ڦيرائي ڇڏيندا هئا. پاڻ سڳورا ﷺ رڳو مسڪرائيندا هئا ۽ ڳالهه ڪري ڪندا هئا، نه ڪو اجائي نه ڪا گهٽتائي واري. پاڻ سڳورن ﷺ جي اصحابين جو ڪلڻ به پاڻ سڳورن جي پوٽواري ڪندي رڳو مسڪرائڻ تائين محدود هوندو هو." (2)

1 - الشفاء قاضي عياض (126\_121/1) ۽ شمائل ترمذي.

2 - الشفاء قاضي عياض (107/1).

مطلب ته پاڻ سڳورا ﷺ بيمثال ڳڻن سان سينگاريل سنواريل هئا. الله سائينء! پاڻ سڳورن ﷺ کي بيمثال ادب سان نوازيو هو. ويندي پاڻ ئي پاڻ سڳورن ﷺ جي ساراه ڪندي فرمايو اٿس ته:

﴿وَإِنَّكَ لَعَلَىٰ خُلُقٍ عَظِيمٍ﴾ (4) (القلم)

"۽ بيشڪ تون وڏي خلق تي آهي."

اهي اهڙا ڳڻ هئا جن جي ڪري ماڻهو پاڻ سڳورن ﷺ ڏانهن ڇڪجي آيا دلين ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جي محبت ويهي وين ۽ پاڻ سڳورن ﷺ جي اڳواڻيءَ ۾ اهو مرتبو ملين جو ماڻهو انهن تي گهور وڃڻ لڳا. انهن ئي ڳڻن جي ڪارڻ پاڻ سڳورن ﷺ جي قوم جي آڪڙ ۽ سختي، نرميءَ ۾ بدلجي وئي ۽ اهي الله جي دين ۾ تولن جا تولا ٿي داخل ٿيڻ لڳا.

ياد رهي ته اسان پنهنجن صفحن ۾ پاڻ سڳورن ﷺ جا جيڪي مثال ڄاڻايا آهن اهي سندن ڳڻن جا تمام ننڍڙا مثال آهن. نه ته پاڻ سڳورن ﷺ جي وڏائي ۽ شرف، شمائل ۽ خصائل جي بلندي ۽ ڪمال جو اهو عالم هو جو انهن کي پوريءَ طرح پروڙڻ ممڪن ئي ڪونهي.

پلا عالم وجود جي هن سڀني کان عظيم انسان جي عظمت جي انتها تائين ڪير ٿو پڇي سگهي، جنهن بزرگي ۽ ڪمال جي سڀ کان بلند چوڻيءَ تي پنهنجو نشيمن بڻايو ۽ پنهنجي رب جي نور سان اهڙيءَ طرح منور ٿيو جو الله جو ڪتاب ئي سندس وصف ۽ خلق قرار ڏنو ويو.

اللهم صل على محمد وعلى آل محمد كما صليت على ابراهيم وعلى آل ابراهيم إنك حميد مجيد  
اللهم بارك على محمد وعلى آل محمد كما باركت على ابراهيم وعلى آل ابراهيم إنك حميد مجيد

مبارڪپور صفي الرحمان مبارڪپوري

حسين آباد

ضلعو اعظم ڳڙھ (يوپي) هند

16 رمضان المبارڪ سنہ 1404ھ

\*\_\*\_\*

## عام اعلان

علم جي پياسن جي لاءِ هڪ عظيم خوشخبري

المكتبة الراشدية لصاحبها العلامة ابي محمد بديع الدين الراشدي رحمه الله  
 ۽ المركز الاسلامي للبحوث العلمية طرفان انتهائي مسرت ۽ خوشيءَ سان  
 هي اعلان ڪيو وڃي ٿو ته ڪافي عرصي کان اسان جي خواهش هئي ته علامه  
 سيد بديع الدين شاه راشديءَ رحمه الله جي عربي، اردو ۽ سنڌي ڪتابن کي  
 منظر عام تي آندو وڃي، الحمد لله انهيءَ مقصد ۾ ڪافي اڳڀرائي ٿي آهي ۽  
 ڪيترائي ڪتاب تنهي زبانن ۾ ڪمپوز ٿي چڪا آهن ۽ اهي جلد ڇپائي جي  
 مرحلي ۾ وڃڻ وارا آهن. خاص طور تي توحيد رباني جيڪو انشاء الله عن قريب  
 قارئین جي سامهون اچڻ وارو آهي. تفصيل هن ريت آهي:

| <u>عربي ڪتاب</u>                 | <u>اردو ڪتاب</u>      | <u>سنڌي ڪتاب</u>         |
|----------------------------------|-----------------------|--------------------------|
| 1- مقدمة التفسير                 | 1- توحيد خالص         | 1- نماز جون مسنون دعائون |
| 2- تفسير سورة الفاتحة            | 2- تنقيد سديد         | 2- نماز نبوي ﷺ           |
| 3- رفع الارتياح في معرفة الاصحاب | 3- حقوق العباد        | 3- فقه و حديث            |
| 4- اصول الالهام                  | 4- رموز راشدية وغيرها | 4- تميز توحيد            |
| 5- نقض قواعد علوم الحديث وغيرها  |                       |                          |

پاران :- اداره المركز ۽ سيد نصرت الله شاه الراشدي (مدير: المكتبة الراشديه)